अन्तर्गत उनका उपयोग करके संस्थान की कार्यकुशलता एवं उत्पादन को अधिकतम किया जाता है। विभिन्न प्रबन्ध विशेषज्ञों एवं विद्वानों ने वैज्ञानिक प्रबन्ध की अलग अलग परिभाषाएं दी हैं—

1. टेलर ने स्वयं लिखा है कि "प्रबन्ध सही रूप में जानने की कला है कि क्या कार्य किया जाना है और उसके करने का सर्वोत्तम तरीका कौनसा है।" उन्होंने लिखा है "प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य मालिकों हेतु अधिकतम सम्पन्नता के साथ साथ श्रमिकों हेतु सम्पन्नता प्राप्त करना है।" टेलर आगे वैज्ञानिक प्रबन्ध के विषय में लिखते हैं कि "वैज्ञानिक प्रबन्ध यह पक्के रूप में मानकर चलता है कि दोनों (श्रमिकों व मालिकों) के वास्तविक हित एक एवं समान हैं क्योंकि मालिकों की सम्पन्नता लम्बे समय तक बिना श्रमिकों की सम्पन्नता के चल नहीं सकती है। इसलिए यह सम्भव है कि श्रमिक को जो वह चाहता है—ऊंची मजदूरी—दी जानी चाहिए एवं मालिक को जो वह चाहता है—निम्न श्रम लागत—दी जानी चाहिए।"[1]

2. प्रो. मार्शल के अनुसार "यह (वैज्ञानिक प्रबन्ध) मुख्य रूप से एक बड़े व्यवसाय की कर्मचारी व्यवस्था की एक विधि है जिसका उद्देश्य अपने अधिकांश कर्मचारियों के दायित्वों की सीमा को घटाकर उनकी कार्यकुशलता बढ़ाना है तथा साधारण शारीरिक क्रियाओं के सम्बन्ध में दिए गए आदेशों पर विवेकपूर्ण अध्ययन करना।"

3. लायड डाड एवं लिंच (Lloyd Dodd & Lynch) के अनुसार "विस्तृत अर्थ में वैज्ञानिक प्रबन्ध की कार्य प्रणाली श्रमिकों, कच्चे माल, मशीनों तथा पूंजी के प्रयोग से अधिकतम लाभ प्राप्त करना है और इसके द्वारा उत्पादन की समस्त क्रियाओं पर—कारखाने के स्थानीयकरण एवं संरचना से लेकर वस्तुओं के अन्तिम वितरण तक नियन्त्रण करती है।"

4. ड्रकर (P. F. Drucker) के अनुसार "वैज्ञानिक प्रबन्ध का कार्य का संगठित अध्ययन, कार्य का सरलतम भागों में विश्लेषण और प्रत्येक भाग का श्रमिक द्वारा निष्पादन करने हेतु व्यवस्थित सुधार करना है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कह सकते हैं कि वैज्ञानिक प्रबन्ध प्रबन्ध समस्याओं के हल का मानवीय दृष्टिकोण है जो कि वैज्ञानिक अनुसंधान, विश्लेषण, नियम, सिद्धान्तों एवं परिणामों पर आधारित है। इसका प्रमुख उद्देश्य न्यूनतम व्यय पर अधिकतम लाभों को प्राप्त करना होता है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध की विशेषताएं

(Characteristics of Scientific Management)

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई प्रबन्ध की परिभाषाओं से प्रबन्ध की अग्रांकित विशेषताएं मालूम होती हैं—

1 F W Tayl Sc e t f c M nement p 21

प्रशासनिक सिद्धान्त एव प्रब`ध
(Adm nistrat ve Theo es and Managem nt)

1. नियोजित यवस्था—वज्ञानिक प्रब ध म नियोजित एव निश्चित योजना पायी जाती है। इस निश्चित योजना के द्वारा विभिन्न कार्यों को निश्चित तरीका द्वारा सम्पादित किया जाता है। समस्त काय योजनाबद्ध तरीके से होते हैं।

2. वज्ञानिक विश्लेषण तथा प्रयोग वज्ञानिक प्रब ध के अ तगत घटनाओं परिस्थितिया आदि क विषय मे तथ्य एकत्रित किए जाते हैं। इन तथ्यों का अवलोकन किया जाता है तथा फिर विश्लेषण करके इनक विषय म प्रयोग किए जाते हैं। इसके पश्चात् नियम व सिद्धा त बनाकर उनको यवहार रूप मे परिणत किया जाता है।

3. मानवीय दृष्टिकोण—वज्ञानिक प्रब ध के अ तगत मानवीय सम्ब धा पर विशेष जोर दिया जाता है क्योकि बिना अच्छे मानवीय सम्ब धा के कोई भी संस्थान विभिन्न स्तरा पर काय करन वाल कमचारिया का सहयोग प्राप्त नही कर सकता। अब श्रमिक को व्यापारिक वस्तु न समझकर उसे मानवीय साधन समझा जाता है।

4. साधनो का अधिकतम उपयोग—वज्ञानिक प्रब ध क अन्तगत कच्च माल मानवीय व भौतिक साधनो का योजनाबद्ध तरीक स काय का आवण्टन करके उनकी वि भन्न क्रियाओं का सम वय नियमन व निय त्रण इस ढग से किया जाता है कि काय कुशलता म वृद्धि हो एव साधना का अधिकतम उपयोग हो सके।

5. निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति—वज्ञानिक प्रब ध म किसी भी संस्थान के दिए हुए अथवा पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु समस्त शक्ति को जुटाया जाता है।

6. श्रमिको को प्रेरणात्मक मजदूरी की व्यवस्था—वज्ञानिक प्रब ध के अ तगत श्रमिका को उनकी योग्यतानुसार काय दिया जाता है तथा जो श्रमिक कुशलता से काय करता है उस प्रोत्साहन देन हेतु प्रेरणात्मक मजदूरी दी जाती है। इससे कायकुशल श्रमिका को और अधिक काय करने की प्रेरणा मिलती है।

7. श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण वज्ञानिक प्रब ध क अ तगत एक ही काय को विभिन्न भागा म विभाजित किया जाता है तथा प्र यक भाग का विभिन्न श्रमिक समूहो द्वारा पूरा करवाया जाता है तथा प्रत्यक विभाग हेतु विशेषज्ञ नियुक्त करके उत्पादन करवाया जाता है। इससे उत्पादन बड पमान पर होता है जिसस बड पमाने की मितव्ययिताए प्राप्त हाती हैं।

8. प्रमापीकरण—वज्ञानिक प्रब ध म प्रत्येक काय का प्रमाप निश्चित कर दिया जाता है। इसी प्रकार वस्तु का आकार, प्रकार, किस्म, भार आदि भी प्रमापित होता है। इससे काय प्रभावपूर्ण ढग स पूरा हो जाता है।

9. सहकारिता—वज्ञानिक प्रब ध के अ तगत प्रब ध म सफलता लाने हेतु पू जी व श्रम म सघर्ष के स्थान पर उनम सहयोग व पारस्परिक स्नेह की भावना उत्पन्न करना है। व्यक्तिगत हित क स्थान पर सामूहिक हित सर्वोपरि माना जाता है। इसम सामूहिक प्रयत्नो स सामूहिक हिता का पूरा किया जा सकता।

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक प्रशासनिक सिद्धात एव प्रबध हिदी माध्यम स लिखी गइ एक सरल एव सुबोध कृति है। प्रशासन एव प्रबध का क्षत्र भारत म अभिजात वग का एकाधिकार क्षत्र रहा है और इस कारण हिदी माध्यम स इस विषय पर लेखन एव साहित्य नहा के बराबर ह। प्रस्तुत कृति इस दृष्टि से एक अभाव की पूर्ति करता है। आशा है पाठक जगत इसका स्वागत करेगा।

प्रभदत्त शर्मा

परम्परागत प्रबन्ध
(Traditional Management)

प्रत्येक युग की प्रब ध व्यवस्थाए उस युग की सभ्यता आर्थिक सामाजिक राजनीतिक एव जीवन मूल्यो से प्रभ वित हुई हैं। इसक परिणामस्वरूप विभिन्न युगो म विभिन्न प्रब ध व्यवस्थाओ का विकास हुआ है। 1 वी शता दी की प्रब ध व्यवस्थाए परम्परागत प्रब ध (Traditional Management) के नाम स पुकारी जाती हैं।

परम्परागत प्रब ध व्यवस्था वह व्यवस्था है जो कि समयातीत (Out of date) हो गई है तथा इसक अ तगत अपनाई जा । वाली विधिया पद्धतियाँ सिद्धात एव नियम समय बीतने क साथ साथ बदल नहीं पायी हैं। ये सभी व्यवस्थाए वैज्ञानिक सिद्धान्तो एव विधियो पर आधारित न होकर व्यक्तिगत सिद्धान्तो एव व्यवहारो पर आधारित हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा हितो का अधिक ध्यान रखा गया है। इसीलिए इसे अंगूठा के नियम (Rule of Thumb) पर आधारित प्रबन्ध व्यवस्था भी कहा जाता है। इसम प्रब ध सम्ब धी सभी समस्याओ पर परम्परावादी दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इसम सामूहिक हितो के स्थान पर व्यक्तिगत हितो का अधिक ध्यान रखा जाता है। प्रब धक लकीर का फकीर रहता है। वह बदलती हुई परिस्थितियो म भी प्रब ध क नियमो विधियो सिद्धान्तो व व्यवस्थाओ मे कोई परिवतन नहीं करता है।

परम्परागत प्रब ध अप्रगतिशील अमानवीय एव अवैज्ञानिक होता है। इसम श्रमिको क काय की दशाए असन्तोषजनक होती हैं उनको प्रेरणात्मक मजदूरी नहीं दी जाती है श्रमिको के कल्याण एव श्रमिक क्षतिपूर्ति की कोई व्यवस्था नहीं होती है। प्रब धक तानाशाह होता है सभी अधिकारो तथा दायित्वो का केन्द्रीयकरण एक ही व्यक्ति के हाथो म होता है। काय के घण्टे लम्बे होते हैं तथा श्रमिको को एक व्यापारिक वस्तु मानकर उन्हें बहुत कम मजदूरी दी जाती है। इस प्रकार इस प्रब ध व्यवस्था म व्यक्तिगत हित (अधिकतम लाभ प्राप्त करना) को अधिक महत्त्व दिया जाता है। विकासशील देशो म अभी भी परम्परागत प्रब ध पाया जाता है क्योंकि इन देशो मे भौतिक साधनो की कमी है। यहाँ के प्रब धको म मानसिक क्रान्ति उत्पन्न नहीं हुई है। अब भी प्रब ध के क्षेत्र म व पुराने विचार पाए जाते हैं। वैज्ञानिक प्रगति भी इन देशो म पूर्ण रूप से नहीं हो पायी है तथा कर्मचारियो की शिक्षा एव प्रशिक्षण हेतु उचित व्यवस्था इन देशो मे पूर्ण रूप से विकसित नहीं की जा सकती है। जसे-जसे भौतिक साधनो की पूर्ति मे वृद्धि हो सकेगी तथा समय के अनुरूप प्रब धको मे मानसिक क्रान्ति उत्पन्न होगी तो धीरे धीरे वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों एव विधियो का अधिकाधिक उपयोग किया जा सकेगा।

प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध

(Administrative Theories and Management)

लेखन/सम्पादन

चन्द्रा पटनी

एम ए (राजनीति एवं अर्थनीति)

□

भूमिका

डा० प्रभुदत्त शर्मा

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष राजनीति विज्ञान

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

कॉलेज बुक डिपो

83 त्रिपोलिया बाजार (आतिश गेट के पास)

जयपुर-2 (राजस्थान)

विचारधारा को एक निराशावादी धारणा बनकर विरोध किया है। उनके अनुसार श्रमिकों को एक सक्रिय एवं उत्तरदायी बनाकर उद्देश्य के द्वारा प्रबन्ध का कार्य सौंप सकते हैं। इससे सम्स्थान का कार्य ठीक ढंग से चलेगा।

(iv) समन्वित दृष्टिकोण का अभाव (Lack of an Integrated Approach)—वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत समय अध्ययन गति अध्ययन थकान अध्ययन आदि के अलग अलग प्रयोग किए जाते हैं। प्रत्येक कार्य को अलग से आवण्टित कर दिया जाता है। लेकिन कार्य तथा उसकी प्रत्येक क्रिया के बारे में अलग अलग समयों पर किए जाते हैं इससे प्रति घण्टा उत्पादन तो बढ़ता है लेकिन दीर्घकाल में उत्पादन घट जाता है। अतः इन विभिन्न कार्यों एवं इनकी क्रियाओं में समन्वय किया जाना अति आवश्यक है।

(v) प्रो. ड्रकर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचना करते हुए लिखा है कि इसके अन्तर्गत कार्य करने वालों को सोचने वालों से पृथक कर दिया गया है। एक पक्ष कार्य को सोचने (Thinking) का कार्य करता है तथा दूसरी ओर कार्य करने वाले (Doing) होते हैं। इन दोनों को पृथक कर देने से कार्य उचित समय पर और सही रूप में पूरा नहीं किया जाता है। यह उसी प्रकार अनुचित है जब खाने का कार्य (Function of Eating) एक शरीर द्वारा किया जाए तथा पचाने का कार्य (Function of Digesting) दूसरे शरीर से किया जाए। जिस प्रकार भोजन खाने व उसे पचाने के कार्यों को पृथक नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार प्रबन्ध के सोचने सम्बन्धी कार्य (Function of Thinking) को कार्य करने के कार्य (Doing Function) से पृथक करना उचित नहीं होगा। दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा एक दूसरे की सफलता हेतु दोनों में पारस्परिक एवं निकट का सम्बन्ध होना चाहिए।

4 औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा आलोचना (Criticism by Industrial Psychologists)—टेलर द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचना औद्योगिक मनोवैज्ञानिक द्वारा निम्न आधारों पर की गई है—

(i) वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को कार्य एक दिए हुए ढंग से करना पड़ता है जो कि सबसे अच्छा तरीका होता है। लेकिन मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि सभी कर्मचारी व श्रमिक सबसे अच्छे ढंग से कार्य नहीं कर सकते हैं क्योंकि प्रत्येक श्रमिक की योग्यता, कार्य करने का ढंग आदि अलग-अलग होते हैं। सभी श्रमिकों की कार्यकुशलता एक सी नहीं रखी जा सकती है।

(ii) यान्त्रिक दृष्टिकोण (Mechanical Approach)—वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक एक मशीन का अंग मात्र बनकर रह जाता है। एक मानवीय साधन के सक्रिय एवं प्रेरित सामूहिक सदस्यों के रूप में वह कार्य नहीं कर पाता है। श्रमिकों को मानवीय साधन बाद में समझा जाता है तथा उत्पादन का

TOPICS FOR STUDY

Public Administration as a Social Science D velopment of the Discipline of Public Administration in India Contemporary Approaches to the Study of Public Aoministration Behavioural Systems and Structural functional Approaches Its relation to Political Science Economics Sociology Law and Psychology

Concepts of Formal Organisation Unity of Command Chief Executive Division of Wo k Hierarchy Span of Control Line and Staff with special reference to the contributions of Gulick Urwick and Mooney

Scientific Management—Contributions of Taylor and Fayol Or an sation Analysis—Chester Barnard

Hawthorne Experiments—Concepts of Informal Organisation Motivation Morale with special reference to the contributions of Elton Mayo McGregor Likert

Administrative Behaviour—Decis on Making (H Simon) Concept of Management and its Techniques—Authority Leader ship Supervision and Control Co-ordination Communication Public Relations Centralisation Decentralisation

Delegation Participative Mana ement Group Dynamics

Modern Aids to Mana ement—Automation Cybernetics PERT CPM

P b h d b C ll g Bo k Depot T po ia (N ar At sh Gat) Ja p r 2
P d t M onl ht Pr nt s J pu

जटिल संगठनों में व्यक्ति के योगदान के लिए प्रतिस्पर्धा रहती है तथा इनमें स्वामिभक्ति के लिए संघर्ष अपरिहार्य बन जाता है। यह संघर्ष केवल एक ही स्तर के अधीनस्थ संगठनों में ही नहीं होता वरन् उच्चतर एवं अधीनस्थ संगठनों के बीच भी होता है।

औपचारिक संगठनों का जन्म और विकास (The Origin and Growth of Formal Organisations)— संगठनों का इतिहास इतिहास से भी पुराना है। उसके बारे में हमें कुछ पता नहीं है किन्तु प्रारम्भ में संगठन किस प्रकार जन्मा होगा यह हम अब जो होता है उसे देख कर अनुमान लगा सकते हैं। अब यदि हम नए संगठनों का निरीक्षण करें तो पाएँगे कि उनका जन्म इन चार में से किसी एक प्रकार से हुआ है—

(1) अचानक (Spontaneous)—इस प्रकार से अनेक संगठनों का जन्म होता है। यह तब बनता है जब दो या अधिक व्यक्ति एक साथ, बिना किसी नेतृत्व के अथवा पहल के किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास करते हैं। अनेक पारिवारिक संगठन इसके उदाहरण हैं। दुर्घटना के समय ऐसे संगठन बन जाते हैं। ऐसे संगठन अधिकतर अल्पजीवी होते हैं किन्तु हजारों में एक संगठन दीर्घजीवी भी हो जाता है।

(2) संगठन के लिए एक व्यक्ति के प्रयासों का प्रत्यक्ष परिणाम—अधिकांश स्थायी प्रकृति के संगठन इस प्रकार बनते हैं। यह इच्छुक व्यक्ति एक उद्देश्य लेकर चलता है इसे वे अन्य को बताता है तथा उन लोगों को उसे सहयोग देने के लिए प्रेरित करता है।

(3) किसी बड़े संगठन द्वारा अलग से एक छोटे संगठन की रचना—कोई संगठन अपने एक सदस्य को नया संगठन बनाने को भेज देता है। व्यक्तिगत मिशनरियों द्वारा चर्च के संगठन का प्रसार इसी रूप में हो सका। वाणिज्यिक संगठनों में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। इनके द्वारा एक व्यक्ति को दूरस्थ प्रदेश में शाखा कार्यालय खोलने को भेज दिया जाता है।

(4) विद्रोह या बाहरी ताकत के कारण वर्तमान संगठन में हुए बिलगाव के परिणामस्वरूप—वर्तमान काल में विद्यमान अनेक संगठनों का जन्म इसी प्रकार से हुआ है। जब बहुत समय तक एक संगठन कार्य करता है तो उसके संगठन कार्य तथा लक्ष्य बढ़ जाते हैं और इसलिए उसका विभाजन कर नए संगठन बनाना आवश्यक हो जाता है। यह रचना विकास के परिणामस्वरूप हुई लेकिन संघर्षपूर्ण उद्देश्यों के कारण या बाहरी दबाव के कारण भी ऐसा हो सकता है। फूट डालो और राज करो की नीति पर चलने वाली उच्च सत्ता द्वारा भी ऐसे संगठन बना दिए जाते हैं। इस प्रकार के संगठनों को तो नया संगठन कहना भी अधिक तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

दो शब्द

'प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध' आज एक स्वतन्त्र विज्ञान का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। राजनीति, कानून, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान सभी से उसके अपने सम्बन्ध हैं तथा सभी पर उसका अपना प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव भी। प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध को आज के विकासशील देशों में योजनाबद्ध प्रगति एवं आर्थिक समायोजन का शस्त्र अधिक माना जाने लगा है। आधुनिक युग के समाजशास्त्रियों ने विद्यार्थियों को चिन्तन और व्यवहार की आचरण सम्बन्धी नई दिशाएं दी हैं और जैसे जैसे प्रशासनिक सिद्धान्त विकसित होते गये प्रशासनिक शोध कसौटियों पर कसे जाने लगे हैं, वैसे वैसे ही समूह, मानव में सम्बन्ध अथवा सामूहिक आचरण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त लोक प्रशासन पर हावी होते उसके अपने बनते जा रहे हैं। सामाजिक अर्थव्यवस्था एवं मानव मूल्यों के निरन्तर बदलाव के इस संक्रमण युग में प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध निश्चय ही शाश्वत परीक्षण एवं प्रयोगों का विषय बन चुका है। उसके नित्य बढ़ते एवं बदलते ज्ञान का विस्तार उसका वैज्ञानिक अध्ययन चाहता है जिससे उसकी क्रियात्मकता में उपयोगिता एवं व्यावहारिकता का समन्वय हो सके।

प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबन्ध में ऐसी ही कुछ उठती उभरती नई रेखाओं का चित्रण है। भावी प्रशासन की भाषा (हिन्दी) के सामाजिक ज्ञान भण्डार में या तो इस प्रकार के प्रयास नगण्य हैं या शब्दकोषों की सहायता से किए गए केवल जड़ अनुवाद हैं जो हिन्दी की सेवा के स्थान पर उस पर किया गया अहसान मात्र लगते हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रयास जैसा भी है ईमानदारी से किया गया हिन्दी ज्ञान भण्डार की अभिवृद्धि का प्रयत्न है। प्रयास के पीछे यदि कोई प्रेरणा है तो केवल हिन्दी माध्यम का वह विद्यार्थी जगत है जिसे बिना अंग्रेजी पढ़ाए लोग अंग्रेजी ग्रन्थ पढ़ने का उपदेश देते हैं। निश्चय ही हम उन अंग्रेजी ग्रन्थों के ऋणी हैं जिनसे हमने स्वतन्त्रतापूर्वक यथास्थान उधार लिया है।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में मेरे गुरुवर डा. प्रेमदत्त शर्मा एवं डा. हरिश्चन्द्र शर्मा की पुस्तकों में से यथेष्ट सामग्री ली गई है जिनके प्रति मैं विद्वान लेखकों एवं प्रकाशकों की हार्दिक आभारी हूं।

—सम्पादिका

सकता है। यह मित्रतापूर्ण हो सकता है अथवा शत्रुतापूर्ण भी सकता है। इनका जन्म चाहे कैसे भी हुआ हो किन्तु ये सम्पर्क अन्तःसम्पर्क तथा सामूहीकरण प्रभावित व्यक्तियों के अनुभवों दृष्टिकोणों तथा भावनाओं को बदल देते हैं। कभी कभी हम यह पता रहता है कि हम प्रभावित हो रहे हैं। भीड़ में रह कर हम देखते हैं कि दूसरों पर भी यह प्रभाव पड़ता है। कभी कभी हम स्वयं पर या अन्य पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई नहीं देता। अनौपचारिक संगठन का अर्थ बताते हुए चेस्टर बर्नार्ड ने लिखा है कि "इसे व्यक्तिगत सम्पर्कों एवं अन्त क्रियाओं तथा लोगों के सम्बद्ध समूहीकरणों का सकल योग है।[1] यद्यपि सामान्य अथवा संयुक्त उद्देश्यों को इस परिभाषा से बाहर रखा गया है किन्तु ऐसे संगठन का यह परिणाम हो सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अनौपचारिक संगठन अनिश्चित और संरचनाहीन होता है। इसका कोई निश्चित उपसभाग न होगा। यह दूर दूर स्थित एक आकारहीन भीड़ समझा जा सकता है। अनौपचारिक संगठन एक समाज का हो सकता है या एक राज्य का हो सकता है। जितने भी औपचारिक संगठन होते हैं उनसे सम्बन्धित अनौपचारिक संगठन भी होते हैं।

अनौपचारिक संगठन के परिणाम (Consequences of Informal Organisations)—अनौपचारिक संगठन के प्रभाव दो प्रकार के होते हैं—(क) इसके द्वारा कुछ दृष्टिकोण समझ रीति रिवाज आदतें एवं संस्थाएं स्थापित की जाती हैं तथा (ख) यह ऐसी परिस्थितियाँ बना सकता है जिसमें औपचारिक संगठन जन्म ले सकें।

अनौपचारिक संगठनों का सर्वाधिक सामान्य प्रभाव यह है कि इनसे रीति रिवाज प्रथाएं लोक रीतियाँ, संस्थाएं, सामाजिक मानदंड एवं आदर्श जन्म लेते हैं जो सामान्य समाज शास्त्र सामाजिक मनोविज्ञान तथा सामाजिक मानव शास्त्र के विषय हैं। इन संगठनों के कार्य अचेतन अथवा गैर बुद्धिपूर्ण होते हैं तथा लोगों की आदतों के परिचायक होते हैं। दूसरी ओर औपचारिक संगठन के कार्य प्रायः बुद्धिसंगत तार्किक होते हैं। अनौपचारिक संगठन एक प्रकार से ऐसी स्थिति रखते हैं कि इसके फलस्वरूप औपचारिक संगठन का जन्म होता है। औपचारिक संगठन में जो सहयोग की इच्छा आवश्यक होती है उसके लिए पहले से सम्पर्क तथा प्रारम्भिक अन्त क्रियाएं वांछनीय हैं। यह बात तब अधिक स्पष्ट हो जाती है जबकि औपचारिक संगठनों का जन्म अचानक होता है। अनौपचारिक संगठन किसी न किसी रूप में औपचारिक संगठन की स्थापना पर दबाव डालते हैं तथा बिना औपचारिक संगठन की स्थापना के ये अधिक समय तक नहीं चल सकते। परिवार के रूप में गठित अनौपचारिक संगठन क्रमशः राज्य तथा धर्म के जटिल औपचारिक संगठनों के कारण

[1] By informal organisation I mean the aggregate of the personal contacts and interactions and the associated groupings of people.
—Chester I Barnard, op cit, p 115

अनुक्रमणिका

किस प्रकार आरम्भ हो जाता है आदि बातें विचारणीय समस्याए हैं। व्यापारिक एव प्रशासकीय सगठनो के विस्तार न अनेक प्रयोगो द्वारा इन समस्याओं का वज्ञानिक अध्ययन करने का प्रयास किया है। इन प्रयोगो के आधार पर उन्होंने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। इन निष्कर्षों न सगठन के स्वरूप एव प्रक्रिया से सम्बन्धित विचारो तथा धारणाओं म क्रान्तिकारी परिवतन कर दिया है।

मानवीय व्यवहार स्कूल को मानवीय सम्बध नेतृत्व व्यावहारिक विज्ञान के नाम स भी पुकारा जाता है। मानवीय व्यवहार विचारधारा मनोवज्ञानिक सामाजिक एव समाजशास्त्रीय उपलब्धियो का प्रबध क्षेत्र म लागू करती है (मेयो तथा बजर के शब्दों म भौतिक चरो की अपेक्षा सामाजिक चर अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। मानवीय व्यवहारवादियो की मा यता है कि यदि श्रमिक काय पर सन्तुष्ट हैं तो उत्पादन स्वत ही अधिक होने लगेगा। व्यक्तिगत एव सामूहिक व्यवहार का श्रमिको एव कमचारियो की काय प्ररणा उत्पादकता सम्प्रेषण और नियन्त्रण पर अनुकूल प्रभाव पडता है।)

सगठन की शास्त्रीय विचारधारा (The Classical Theory of Organization) औपचारिक सगठन (Formal Organisation) का समथन करती है जबकि सामाजिक मनोवज्ञानिक सिद्धान्त (Socio Psychological Theory) अथवा मानव-सम्बन्ध विचारधारा (The Human Relation Theory) अनौपचारिक सगठन (Informal Organization) पर बल देती है। रायलिस बजर ने लिखा है हम मानवीय समस्याओं का समाधान अधिकाशत गर मानव य उपकरणो द्वारा गर मानवीय तथ्यो एव आँकडो के सन्दभ मे करते हैं। मेरा मान्यता व मत है कि मानवीय समस्याओं का समाधान भी मानवीय होना चाहिए। सवप्रथम हम देखते हैं मानवीय समस्या को समझ लेना चाहिए और तत्पश्चात् उस उसी रूप म ग्रहण करना सीखना चाहिए न किसी अन्य तरीके से। मानवीय समस्या के मानवीय समाधान के लिए मानवीय तथ्यो और आँकडो तथा मानवीय उपकरणो की आवश्यकता होती है। सामाजिक म विज्ञानिक या मानव सम्ब धी विचारधारा के सार को प्रकट करते हुए श्री अवस्थी एव माहेश्वरी ने लिखा है कि इसके द्वारा मनुष्यो मानवीय प्रेरणाओं और शास्त्रीय विचारधारा के अनुरूप सिद्धान्तो की अपेक्षा अनौपचारिक समूह काय पद्धति पर विशेष बल दिया जाता है। यह विचारधारा औपचारिक स गठन स्वरूप को अस्वीकार करती है और उसके स्थान पर सगठन के दिन प्रतिदिन की काय प्रणाली का महत्व देती है। इस विचारधारा की मान्यता है कि सगठनात्मक व्यवहार काफी जटिल होता है और उसमें कायरत व्यक्तियो पर विभिन्न दिशाओं म परस्पर प्रभाव पडता है। अत सगठन सम्बन्धी समस्याओं के विश्लेषण और समाधान के लिए मनुष्य की बहुपक्षीय प्रकृति का ज्ञान परमावश्यक है। इस विचारधारा या मानव सम्बध विचारधारा सामाजिक

की जा सकती । अन्त मे यह ध्यान रखना चाहिए कि पाश्चात्य देशो में अनौपचारिक सगठन काफी सीमा तक औपचारिक होता जा रहा है लेकिन भारत जसे विकासशील देश म ऐसा नही है । इसका मुख्य कारण यह है कि पाश्चात्य देशो म सगठनात्मक प्रवाह की गति बडी तीव्र रही है । भारत जसे देश म उसकी तीव्रता मे धीमापन है निर्बलता है । पाश्चात्य देशो म उदाहरण के लिए श्रम के बन्द अनेक सगठनात्मक समस्याओ के समाधान का काम करते रहते हैं लेकिन भारत मे शायद ही एसे काम इनके द्वारा किए जाते हैं ।

सामाजिक मनोवैज्ञानिक या मानववादी दृष्टिकोण अथवा विचारधारा को विस्तार से समझने के लिए हम पृथक केन्द्रीय शीर्षको के अन्तर्गत मानवीय व्यक्तित्व की विशेषताओ सगठन से भावनाओ मानवीय व्यवहार और सामाजिक वातावरण सगठन म सामाजिक सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धो की प्रकृति और सगठन मानव सम्बन्धो पर हार्थोन प्रयोगो और कुछ अन्य प्रयोगो पर विचार करना होगा ।

अनौपचारिक सगठन (Informal Organisation) की अवधारणा पर पूर्व अध्याय म औपचारिक सगठन के प्रसग म विचार कर चुके हैं । सकेत रूप म हम यहा पुन दोहरा सकते हैं कि अनौपचारिक सगठन यह मानकर चलता है कि कार्य करने वाले मनुष्यो के व्यक्तित्व का संगठन के स्वरूप एव व्यवहार पर प्रभाव अवश्य पडता है । एक प्रभावी अध्यक्ष इस प्रकार व्यवहार कर सकता है कि उसके अधीन कार्य करने वाले लोग केवल आज्ञाकारी बालक बनकर रह जाए । इसके विपरीत कभी-कभी अधीनस्थ कर्मचारी भी इतना प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला बन जाता है कि अध्यक्ष की शक्तियों का प्रयोग उस कर्मचारी द्वारा ही किया जाता है । प्राय देखा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति की सेवाए अधिक मूल्यवान हैं तो उसे स्थान देने के सगठन के औपचारिक रूप म तदनुकूल परिवर्तन भी किया जाता है । कोई भी औपचारिक योजना चाहे वह कितनी भी योग्यता एव कुशलता के साथ बनायी जाए उस समय तक महत्व नही रखती जब तक कि परिवर्तित वातावरण एव परिस्थितियो के अनुसार वह अपने आपको समायोजित न कर ले । दूसरे शब्दो म औपचारिक सगठन को उपयोगी एव प्रभावशाली बनने के लिए थोडा बहुत अनौपचारिक बनना पडता है । अनौपचारिक व्यवहार प्राय औपचारिक सगठन के रिक्त स्थानो की पूर्ति करता है ।

मानव सम्बन्धो पर कुछ प्रयोग एल्टन मेयो के निष्कर्ष
(Some Experiments on Human Relations Conclusions of Elton Mayo)

(मानव व्यवहार पर उसके चरित्र आदतों भावनाओ मूल्य समाज व्यवस्था आदर्श परम्परा एवं एसे ही अन्य तत्वो का जो प्रभाव पडता है वह सगठन म भी उसकी क्रियाओ को एक नवीन मोड देने का कारण बन जाता है।)

अनौपचारिक नेता बना हुआ था। उस कमरे में उसे सबसे अधिक पसन्द किया जाता था और उसने संगठन के मानकों को पूरी तरह अपना रखा था। उसके सुझावों पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता था। इस प्रकार उसके समूह पर उसका सर्वाधिक नियन्त्रण था। वह काम को सम्पन्न कराने की सामर्थ्य रखता था तथा इस सीमा तक संगठन के अन्य कर्मचारियों के सामने वह अपने समूह का वक्ता बन जाता था। स रूप म उसने एक सामाजिक समूह के रूप म काम करने म मजदूरों की सहायता की। इस अध्ययन ने यह दिखा दिया कि एक फोरमैन का अपने समूह पर अधिक प्रभाव नहीं था और उसे समूह के उन मानकों को मानकर चलना पड़ता था जिन पर नियन्त्रण रखने की उससे आशा की जाती थी। बाद के प्रयोगों ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि एक फोरमैन अपने आपको मान्य तथा अपने पद को सार्थक बनाना चाहता है तो उसे अपने नतृत्व का प्रयोग मानव सम्बन्धों के अनुसार करना होगा।

एक समूह पर नतृत्व के प्रभाव का विशद् अध्ययन लिपिट तथा व्हाइट द्वारा किया गया था।[1] यह अध्ययन कर्ट लेविन के निर्देशन म सन् 1930 म प्रारम्भ अध्ययन शृंखला की एक कड़ी थी। इस अध्ययन म नतृत्व के प्रकारों का अध्ययन किया गया था। तीन प्रकार के नेताओं को बच्चों के क्लब तथा उद्योग के चार वर्गों के निर्देशन का काम सौंपा गया। उनमें से एक नेता सत्तावादी (Authoritarian) था। उसे समूह क्रियाओं का निर्देशन करना था। प्रजातान्त्रिक नेता को निर्देशनकारी सुझाव देने थे बालकों को प्रोत्साहन देता था तथा समूह म भाग लेता था। तीसरे प्रकार का नेता व्यक्तिवादी विचारों का था। इसका काम था समूह के सदस्यों म ज्ञान का प्रसार करना। उसने समूह के कार्यों म बहुत कम भाग लिया तथा भावनात्मक रूप से बहुत कम सम्बद्ध रहा।

इस प्रयोग का लक्ष्य था कि विभिन्न समूहों के सामान्य वातावरण का परीक्षण किया जाय तथा यह देखा जाय कि नेता के परिवर्तन से समूह तथा उसके व्यक्तिगत सदस्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है। साथ ही यह भी मालूम करना था कि नतृत्व के विभिन्न प्रकारों ने समूह के कार्यों को किस प्रकार प्रभावित किया। समूह के सदस्यों म उच्च स्तर की लोकप्रियता शक्ति एव बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्रतिद्वन्द्विता की। प्रयोग के समय अनेक बातों का सूक्ष्म अवलोकन किया गया। उदाहरण के लिए यह जानने की चेष्टा की गई कि जब नेता कमरा छोड़कर चला जाता था तो समूह के सदस्य किस प्रकार व्यवहार करते थे। प्रयोग के परिणाम स्वरूप भारी अन्तर सामने आये। प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व के अधीन रहने वाले समूह म आपसी सम्बन्ध बहुत गहरे और मित्रतापूर्ण हो गए तथा उसके सदस्य समूह के

1 R Lippitt and White, G ... "An Experimental Study of Leadership and ..."

किया जाएगा। दूसरे ग्रुप को प्रबन्ध ने परिवर्तन की आवश्यकता समझाई उनके प्रभाव समझाए और उनसे यह कहा कि वे कुछ प्रतिनिधि चुन लें जो प्रशिक्षण कार्यक्रमों का निर्धारण करने में सहायता कर सकें। तीसरे ग्रुप को भी दूसरे की भांति यह बता दिया गया कि परिवर्तन हो रहा है तथा क्या हो रहा है किन्तु इस ग्रुप के सभी सदस्यों से यह कहा गया कि नए कार्यों का रूप एवं योजना निर्माण तथा पुनः प्रशिक्षण कार्य में सहायता देने के लिए योगदान दें।

प्रयोग के परिणामों ने यह स्पष्ट कर दिया कि जिन दो समूहों ने पुनः प्रशिक्षण एवं कार्यक्रम की योजना बनाने जैसे कार्यों में योगदान किया था वे बड़ी जल्दी ही परिवर्तनों के साथ समायोजित हो गए जबकि प्रथम समूह के मजदूर ऐसा न कर सके। दूसरे तथा तीसरे समूहों ने अपने उत्पादन को बढ़ा लिया जबकि पहला ग्रुप ऐसा नहीं कर पाया उसका उत्पादन घटने लगा। तृतीय समूह ने जिसका पूर्ण योगदान था द्वितीय की तुलना में अच्छा काम किया। इसके अतिरिक्त प्रथम समूह में अनेक कठिनाइयां आयीं तथा घटनाएं घटीं जबकि शेष दो ग्रुपों में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ।

बाद में प्रथम समूह के साथ एक दूसरा प्रयोग किया गया। अब की बार इस समूह के लोगों का उनका कार्य बदलने के लिए बाध्य किया गया किन्तु अब उन्होंने पुनः प्रशिक्षण की योजना एवं अन्य कार्यक्रमों में वैसा ही सक्रिय भाग लिया जैसा कि तृतीय ग्रुप के लोगों ने पूर्व प्रयोग में लिया था। परिणाम प्रभावित रहा। उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हो गई तथा समूह के सदस्यों के मन में संताप बढ़ा। इस प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो गया कि पहले उनके द्वारा परिवर्तनों का जो विरोध किया गया था वह इस समूह के सदस्यों के व्यक्तित्व के कारण नहीं हुआ था।

संचार का महत्त्व (Importance of Communication)

अनेक प्रयोगों तथा मेयो और लेविन के लेखों द्वारा मानवीय सम्बन्ध के दृष्टिकोण ने विभिन्न श्रेणियों के बीच संचार पर बहुत जोर दिया। यह कहा गया कि संगठन के निम्न कर्मचारियों को यह बताया जाए कि निश्चित कार्य क्यों किया जा रहा है। उच्च अधिकारियों द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया में निम्न अधिकारियों द्वारा भाग लेने के महत्त्व पर विशेषकर उन विषयों में जो उनको प्रभावित करते हैं जोर दिया गया। नेतृत्व के प्रजातन्त्रात्मक स्वरूप का समर्थन किया गया क्योंकि इसमें संचार व्यवस्था अधिक सक्रिय होती है अधिकाधिक लोग भाग ले सकते हैं और साथ ही यह स्वेच्छाचारी न होकर न्यायपूर्ण होती है तथा मजदूरों के केवल कार्य से ही नहीं उनकी समस्याओं से भी सम्बन्धित रहती है।

इन प्रयोगों ने बहुत समय तक अनेक विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया तथा लोकप्रिय साहित्य में इनका पर्याप्त प्रकाशन किया गया। मानव सम्बन्धों के इनसे निष्कर्ष निकाले गए। कई हजार कार्यपालिकाओं ने तथा निम्न श्रेणी के सुपरवाइजरों

आधारित होना चाहिए और य श्रमिका क लिए लाभप्रद होनी चाहिए। श्रमिका को इस बात का स्पष्ट भान होना चाहिए कि उन्ह पारितोषण दिया गया है अथवा क्या नही दिया गया है ?

अवित्तीय अभिप्ररणाए (Non monetary Motivation) वे दनिक अभिप्ररणाए होनी हैं जो श्रमिका की आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करती हैं। श्रमिका के लिए मुद्रा अपरिहार्य है किन्तु यह भी आवश्यक है कि उनकी मनोवनानिक और सामाजिक आवश्यकताओ की सन्तुष्टि हो अत प्रबन्धका को चाहिए कि श्रमिकों को इन आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु आवश्यक अभिप्ररणाए दें। यदि एक ओर मुद्रा के रूप म वित्तीय अभिप्ररणाए दी जाए और दूसरी ओर मनोवनानिक तथा सामाजिक सन्तुष्टि क लिए अवित्तीय अभिप्ररणाए भी दी जाए तो दाना के सयोग स औद्योगिक उत्पादकता की समस्या का प्रभावी समाधान निकल सकता है। अवित्तीय अभिप्ररणाए श्रमिका का मुद्रा म न दी जाकर अन्य किसी रूप म दी जाती है। इस प्रकार की अभिप्ररणाओ क फलस्वरूप श्रमिका की अनुपस्थिति और प्रत्यावरण म कमी आती है तथा प्रबन्धक एव पयवक्षक अपने नतृत्व के उत्तरदायित्वो का आसानी स निर्वाह कर सकते हैं। काय गाओ म सुधार होने स स्वस्थ मनोवनानिक वातावरण का विकास होता है जिसस उद्योग म शान्ति की स्थापना होती है और उत्पादन क्रियाए अधिक गतिशील बनती हैं। अवित्तीय अभिप्ररणाओ क प्रमुख प्रारूप हैं—भय का अभाव नौकरी की सुरक्षा किए गए कार्यों क बारे मे मान्यता प्रबन्ध म सहभागिता पदोन्नति क अवसर अधिकारा का प्रत्यायोजन अच्छा नेतृत्व काय म गव भावना की अनुभूति उपक्रम म कमचारी की वयक्तिक स्थिति क प्रति आदर कमचारियो को सम्मति देने का अधिकार सामाजिक प्रतिष्ठा प्रशसा या दण्ड आदि।

(स) व्यक्तिगत एव समूह अभिप्ररणाए—इन दोना अभिप्ररणाओ (Individual and Group Incentives) के रूप म भी वित्तीय और अवित्तीय दोनो प्रकार हो सकती हैं। व्यक्तिगत अभिप्ररणा म किसी कमचारी अथवा श्रमिक को काय के प्रति अधिक प्रोत्साहित करने क लिए व्यक्तिगत रूप म अभिप्ररणाए दी जाती हैं। इन अभिप्ररणाओ क मुख्य उदाहरण हैं—प्रशसा पत्र प्रमाण पत्र सम्मान विकास के अवसर नौकरी की सुरक्षा आदि। समूह अभिप्ररणाए जसा कि नाम से स्पष्ट है किसी समूह स सम्बन्ध रखती है अर्थात् व अभिप्ररणाए किसी एक कमचारी को न दी जाकर सभी कमचारियो को (समूह को) दी जाती है। इनक मुख्य उदाहरण हैं—लाभ सहभागिता सुझाव व्यवस्था समितिया का निवारण विभागीय पारितोषण अधिलाभाश आदि।

किसी भी उद्योग म चाह वह निजी क्षत्र का हो चाह राज क्षत्र का व्यक्तिगत अभिप्ररणाओ स अनेक लाभ प्राप्त होत हैं यथा—कमचारी को अधिक काय करने

भय एवं दण्ड का सिद्धान्त आधुनिक युग मे उचित नही समझा जाता। यह सिद्धान्त औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भिक चरणों मे जब श्रमिक रोजगार की तलाश मे भटकते फिरते थे और भूखा मरते थे बड़ा सफल सिद्ध हुआ और इसीलिए पूँजीपतियों की शोषक प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। उस समय श्रमिकों की दशा इतनी दीन हीन थी कि वे एकतन्त्रवादी प्रबन्ध व्यवस्था के प्रति आवाज न उठाकर चुपचाप काम करते रहते थे। आज भी यद्यपि अनेक विद्वान इसे परम्परागत सिद्धान्त का समर्थन करते हैं तथा अधिकांश का यह मत यही है कि भय एवं दण्ड से श्रमिक कार्य के लिए अभिप्रेरित न होकर हतोत्साहित होते हैं। इस सिद्धान्त को प्रयोग मे लाने से कर्मचारियों और श्रमिकों की कार्य क्षमता तथा उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह एक ऋणात्मक अभिप्रेरणा (Negative Motivation) है जिसका उपयोग यथासाध्य नही किया जाना चाहिए।

(7) पुरस्कार सिद्धान्त (Reward Theory)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता एफ डब्ल्यू टेलर ने किया था। इसके अनुसार पुरस्कार तथा कार्य की उत्तम दशाएं कर्मचारी को प्रसन्नता देती हैं तथा प्रसन्नचित्त तथा सन्तुष्ट कर्मचारी अधिक कार्य करने के लिए अभिप्रेरित होते हैं। कर्मचारी को जितना अधिक पुरस्कृत किया जाएगा वह उतना ही अधिक कार्य करने को प्रेरित होगा। टेलर ने इसी विचार के आधार पर विभेदात्मक मजदूरी पद्धति (Differential Price Rate System) के अनुसार मजदूरी भुगतान का सुझाव दिया था। पुरस्कार सिद्धान्त मे कार्यों के विशिष्टीकरण विवेकीकरण और यन्त्रीकरण पर जोर दिया जाता है ताकि मानवीय प्रयासों का अधिकतम उपयोग हो सके। टेलर ने यह भी विचार प्रकट किया कि मौद्रिक अभिप्रेरणाएं संस्था मे कार्यरत व्यक्ति मे कार्य के प्रति इच्छा और उत्साह जाग्रत करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं और पद वृद्धि के लिए इन्हीं को आधार बनाया जाना।

आधुनिक प्रबन्ध विद्वानो के मतानुसार पुरस्कार एक उत्प्रेरक तत्व तो है किन्तु अभिप्रेरणा का साधन नहीं। यह व्यक्ति को केवल सन्तुष्टि प्रदान कर सकता है उसे अभिप्रेरणा प्रदान नही कर सकता। पीटर एफ ड्रकर के शब्दों मे मौद्रिक पुरस्कारों से सन्तुष्टि अभिप्रेरणा के लिए पर्याप्त नहीं है। आज के युग मे अमौद्रिक अभिप्रेरणाओं का भी उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान है जितना कि मौद्रिक अभिप्रेरणाओं का।

(8) करट तथा स्टिक सिद्धान्त (Carrot and Stick Theory of Motivation)—यह सिद्धान्त भय एवं दण्ड तथा पुरस्कार विचार का परिवर्तित और मशाबित रूप है जो इस बात पर बल देता है कि दण्ड तथा पुरस्कार दोनों के संयोजन से कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विशेष कार्य के लिए कर्मचारी को पुरस्कृत किया जा सकता है पर साथ ही

1

लोकप्रशासन एक सामाजिक विज्ञान, भारत मे लोक प्रशासन के अनुशासन का विकास

(Public Administration as a Social Science Development of Discipline of Public Administration in India)

लोक प्रशासन आधुनिक शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु ह।[1] विकासशील और विकसित दोनो ही प्रकार के देशो के लिए सुनियोजित और सुदृढ लोक प्रशासन अनिवार्य है। एक पुलिस राज्य के क्षेत्र से निकल कर राज्य सस्था ज्यो-ज्यो कल्याणकारी राज्य के क्षेत्र म प्रवेश करती जा रही है लोक प्रशासन का महत्त्व बढता जा रहा है। डिमाक (Dimock) ने ठीक ही लिखा है कि वतमान समय म लोक प्रशासन व्यवहारिक रूप से हमारे समस्त जीवन और कार्यो पर छा चुका है तथा वह हमारी सभ्यता का मूलाधार बन गया है। लोक प्रशासन आधुनिक सभ्य समाज का अग है जिसम राज्य के उस स्वरूप ने जन्म लिया है जिसे हम प्रशासी राज्य (Administrative State) कहते हैं।

जटिल समाज की चुनौतियाँ जसे जसे लोक प्रशासन पर नए उत्तरदायित्व डालती हैं वसे-वसे ही यह एक अध्ययन विज्ञान (Academic Discipline) के रूप म वयस्क होता हुआ प्रबन्ध विज्ञान (Management Science) की ओर उन्मुख हो रहा है। दूसरे शब्दो म जिस तरह लोक प्रशासन राजनीति विज्ञान से पृथक हुआ उसी तरह विशेषीकरण के प्रभावो ने प्रबन्ध विज्ञान को लोक प्रशासन स पृथक कर दिया ह।

लोक प्रशासन आज के समाज म एक एसी गत्यात्मक शक्ति है जिसमे लोगो द्वारा प्रभावित होने का लचीलापन भी है और लोगो का नतृत्व करने की क्षमता भी। इसे समाज की एक अत्यधिक स्थाई शक्ति कहा जा सकता है क्योकि राजनीतिक सरकारें बदलती रहती हैं पर प्रशासन उस दृष्टि स कदाचित ही बदलता

1 Wh t Introduction to the St dy f Publ Admin t t p

तथा भयावह हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में संगठन के निर्णयों की सीमा में अधिक है और संगठन जितना विशाल और जितना महत्त्वपूर्ण एवं सार्वजनिक कार्य करता है उतने ही उसके निर्णय मूल्य जटिल होते चले जाते हैं। संगठनात्मक दृष्टि से भी संगठन का निर्णयकारी यन्त्र जिस प्रकार का तन्त्र स्थापित करता है वह निर्णय प्रक्रिया की वैज्ञानिकता एवं निर्णय की गुणात्मकता और गम्भीरता से प्रभावित करता है। संगठन की कुछ उपलब्धियाँ होती हैं जिन्हें साइमन ने गिवन्स (Givens) का नाम दिया है। इसी प्रकार नीति और नेतृत्व के कुछ शुड्स (Shoulds) होते हैं और गिवन्स तथा शुड्स (Givens and Shoulds) में निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तारतम्य बैठाना पड़ता है। इस तालमेल को बैठाने में जो प्रक्रिया काम में लाई जाती है उसे ही निर्णय प्रक्रिया कहते हैं। इस निर्णय प्रक्रिया के विभिन्न चरण होते हैं जो तार्किक रूप में एक दूसरे से सम्बद्ध हैं और इनकी उद्देश्यपरकता इस प्रक्रिया को वैज्ञानिक बनाती है।

निर्णय लेने की प्रक्रिया के चरण
(The Steps of Decision Making Process)

निर्णय प्रक्रिया प्रशासन को अनुशासित करने वाली एक राजनीतिक प्रक्रिया का प्रतिबिम्ब मान कही जा सकती है। जिन राजनीतिक अवस्थाओं में राजनीतिक निर्णय एक या कुछ थोड़े से व्यक्ति लेते हैं वहाँ प्रशासन का निर्णय क्षेत्र भी सीमित अथवा बन्द हो सकता है। इसी तरह जनतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था (Open Decision Model) उन्मुक्त निर्णय प्रक्रियाओं को जन्म देती है। विल्सन और एलेक्सिस ने इन गुप्त और उन्मुक्त प्रशासनिक निर्णय प्रक्रियाओं का गम्भीर अध्ययन किया है और उनकी मान्यता है एक सीमित निर्णय प्रक्रिया (Closed Decision Model) में जबकि निर्णायक तत्त्व (i) विकल्पों के ज्ञान (ii) विकल्पों की प्राथमिकता के नियम, और (iii) उत्पादन आय परिणाम प्राप्ति को अधिकतम बनाने के प्रयासों पर निर्भर करते हैं। इसके विपरीत एक बहुचयनकारी खुले प्रतिमान (Multiple Choice Open Model) में उद्देश्य पूर्वपरिभाषित नहीं माने जाते और विकल्पों की खोज तथा प्राथमिकता के निर्णय भी हर बार विचार विनिमय और परिस्थितियों के सदर्भ में बदलते रहते हैं। दूसरे शब्दों में, निर्णय का उन्मुक्त प्रतिमान मानव ज्ञान और आचरण की पृष्ठभूमि पर अधिक बल देता है जबकि बन्द प्रतिमान में उपयोगिता के प्रसूचक (Utility Index) कुछ ऐसे स्वयं सिद्ध मूल्य होते हैं जो यह मानकर चलते हैं कि निर्णयकर्त्ता उपयोगिता का सही अर्थ जानता है। प्रशासन की दुनिया में उन्मुक्त निर्णय प्रतिमान इसलिए अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं क्योंकि वे निर्णय प्रक्रिया की यथार्थताओं तथा निर्णयकर्त्ताओं की क्षमताओं से परिचित कराकर निर्णय प्रक्रिया के अध्ययन में अधिक गहन अन्तर्दृष्टि और तत्त्वों की समग्रता का बोध करा पाते हैं।

है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि एक देश का जीवन उसके प्रशासन के गुणों के अनुरूप बन जाता है और कोई भी कल्याणकारी राज्य जिसकी आर्थिक व्यवस्था योजनाबद्ध है और जिसका संविधान गणतन्त्रीय है विस्तृत तथा एकीकृत ढांचे वाले प्रशासन के बिना नहीं चल सकता।[1]

लोक प्रशासन का अर्थ
(Meaning of Public Administration)

लोक प्रशासन की व्याख्या संकुचित और व्यापक दोनों ही रूपों में की गई है। इसके अर्थ के स्पष्टीकरण और विवेचन के लिए यह स्वाभाविक है कि लोक एवं प्रशासन दोनों शब्दों में निहितार्थ ढूंढ जाए। लोक या पब्लिक शब्द की व्याख्या तीन अर्थों में की जा सकती है। प्रथम तो वह जो व्यक्तिगत नहीं (Non Private) है दूसरे ऐसा विषय जो समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को छूता हो अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता हो तथा तीसरे ऐसा कार्य जो चाहे एक हो या कुछ व्यक्तियों को ही प्रभावित करे किन्तु वह प्रभाव इतना गम्भीर हो कि सारा समाज उसकी उपेक्षा न कर सके। इस प्रकार पब्लिक शब्द व्याख्या की दृष्टि से कठिन होते हुए भी मोटे तौर पर समाज के उन कार्यों को अपने में समाविष्ट करता है जो मूलतः सामाजिक हैं। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति का भोजन करना उसका प्राइवेट कार्य है किन्तु यदि वह जहर खाकर आत्महत्या करता है तो यह तुरन्त सार्वजनिक बन जाएगा।

प्रशासन शब्द अंग्रेजी शब्द Administer का हिन्दी रूपान्तर है और यह अंग्रेजी शब्द लेटिन भाषा के Ad + ministrate शब्दों की सन्धि से बनता है जिसका शब्दार्थ है काम करवाना (Getting things done)। प्रत्येक प्रशासक स्वयं तो कार्य करता ही है किन्तु उसे प्रशासक इसलिए कहा जाता है कि वह औरों से भी काम करवाता है। दूसरे शब्दों में प्रशासन चलाने के लिए जब काम करवाया जाता है तो स्वाभाविक है कि उन कार्यों के लिए योजनाएं (Planning) बनाई जाएं योजनाओं की क्रियान्विति के लिए संगठन (Organisation) स्थापित किए जाएं उन संगठनों में कर्मचारियों (Staffing) की नियुक्ति की जाए फिर उन्हें दिशा निर्देश (Direction) दिए जाएं उनके कार्यों का समायोजन (Co-ordination) किया जाए और अन्त में प्रतिवेदन (Reporting) व्यवस्था और बजट (Budget) प्रणाली द्वारा उन्हें नियन्त्रित किया जाए। इस सारे उपक्रम को प्रशासन की तकनीकी भाषा में पोस्डकार्ब (POSDCORB) कहा जाता है। उद्देश्य की दृष्टि से पोस्डकार्बिंग (POSDCORBING) प्रशासन है और इस तरह व्यापक अर्थ में उसे

1 *Karve D G* Directive Principles of the Constitution of the India Journal of Public Administration Vol I No 1 January March 195 p 12

हा नही रखती तो इस दिशा म उसे आगे नही बढ़ना चाहिए। यदि कानून के अनुसार वह कुए बना तो सकती है किन्तु इसके लिए उस उच्च अधिकारियो अथवा अधीनस्थ पचायतो स पूछना चाहिए तो ऐसी स्थिति म कोई निर्णय लेने स पूर्व उस अपनी इन सीमाओ के अनुसार व्यवहार करना होगा। इन वधानिक सीमाओ पर विचार करने के अतिरिक्त वह पचायत समिति यह भी देखेगी कि क्या उसका बजट इतना है कि कुए बनवाए जा सकें। उसकी शक्ति पर किसी प्रकार की सीमाए न होने पर भी यदि समिति का बजट पर्याप्त न हो तो वह किसी प्रकार का निर्णय नही ले सकती। यदि बजट मे इतना धन है कि कुए बनवाए जा सकें तो निर्णायक द्वारा तीसरी बात यह जाएगी कि क्या यह व्यवहार लोकाचार (Mores) के अनुरूप रहेगा। यदि गाव की अशिक्षित और रूढ़िवादी जनता यह कहे कि अमुक स्थान पर अथवा अमुक समय म या अमुक रूप स कुए का निर्माण न ी किया जाना चाहिए तो उस समिति का निर्णय लेते समय य सारी बातें ध्यान म रखनी होगी और उसका निर्णय यथासम्भव इनके अनुरूप रहेगा। लोकाचार के विरुद्ध लिए गए निर्णय ज ता के विरोध का कारण बनते हैं। इसके फलस्वरूप लोक प्रशासन जन-सहयोग से वंचित हो जाता है और जन विरोध क कारण अपयश का भ गी बनता है।

जो कुए बनाए जाने हैं उनका कितना महत्त्व होगा वे जनता के लिए कितने उपयोगी होग जिस स्थान पर उन्ह निर्मित किया जा रहा है क्या वहा पानी निकलेगा यदि दूसरे स्थान पर उन्ह खोदा जाए तो क्या अधिकतम जनता लाभान्वित हो सकेगी आदि बातो से सम्बन्धित त यो की जानकारी करने के पश्चात् ही समिति को अन्तिम निर्णय लेना चाहिए। तथ्यो की जानकारी ऐतिहासिक सदर्भ मे की जा सकती है। इसके लिए यह देखना जरूरी है कि पहले जब कुए बनाए गए थे तो वे कहा खोदे थे और उनका उपयोग कित ा हुआ। कुए खुदवाने म समिति के सदस्यो का कितना उत्साह है तथा गाव वालो म व कितना मोरेल उत्पन्न कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त नवीन कुओ के निर्माण से भविष्य किस प्रकार उज्ज्वल बनेगा इस सम्बन्ध म अनुमान किया जाना भी जरूरी है। जब इस कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जाएगा तो उच्च अधिकारी दबाव समूह एव अधीनस्थ अधिकारी आदि का जो प्रभाव पड़ेगा उसके सम्बन्ध म भी पहले स सोच लेना जरूरी है। इस प्रकार पचायत समिति द्वारा लिया जाने वाला निर्णय अनेक तत्वो को ध्यान म रखने पर जारी होता है। इन सब तत्त्वो के आधार पर लिया गया निर्णय कल्पना पर आधारित न होकर वास्तविकता के धरातल पर होगा। भारतीय प्रशासन की आलोचना करते समय प्राय यह कहा जाता है कि उसके द्वारा लिए जाने वाले निर्णय विषयपरक (Subject) अधिक होते हैं साथ ही वे जाति धर्म भाषा प्रदेश की सीमाओ म बध कर पक्षपातपूर्ण बन जाते हैं।

निर्णय लेने के तरीके का एक अन्य समाधान व्यवहारवादियो द्वारा प्रस्तुत

उद्देश्य प्राप्त और उद्देश्य निर्धारण (Goal getting and Goal setting) की एक कला और विज्ञान कहा जा सकता है।

उपर्युक्त दृष्टिकोणों में से किसी की भी पूर्णत उपेक्षा नहीं की जा सकती। डिमाक तथा कार्निग का कथन है कि अध्ययन के रूप में प्रशासन उन सरकारी प्रयासों के प्रत्येक पहलू का परीक्षण करता है जो कानून और लोकनीति को लागू करने के लिए किये जाते हैं। एक प्रक्रिया के रूप में इसमें वे सभी चरण सम्मिलित हैं जो कोई संस्थान अधिकार क्षेत्र प्राप्त करने से अपना अन्तिम वोट रखी जाने तक निर्धारित करता है (किन्तु इसमें कार्यक्रम के निर्माण में उस संस्थान का भाग यदि कोई हो तो भी मुख्य रूप से सम्मिलित है) एवं व्यवसाय के रूप में यह किसी सार्वजनिक संस्थान में दूसरों के कार्यों का संगठन और संचालन करता है।[1]

साराश यह है कि वास्तव में दोनों शब्द (लोक+प्रशासन) मिलकर सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के विषय में लोक प्रशासन का नीति निर्माण और नीति क्रियान्विति का अर्थ स्पष्ट करते हैं। उदाहरणार्थ विल्सन (Wilson) की परम्परागत भाषा के अनुसार लोक प्रशासन कानून के विस्तृत एवं व्यवस्थित प्रयोग (A detailed and systematic application of law) का ही दूसरा नाम है।[2] विल्सन का यह परिभाषा कानून के प्रयोग और उसमें विस्तार तथा व्यवस्था पर बल देती है चूंकि विल्सन कानून को नीति का पर्यायवाची मानते हैं। एक अन्य लेखक फिफनर (Pfiffner) भी लोक प्रशासन को निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करने की एक प्रणाली बतलाता है।[3] एल डी व्हाइट की परिभाषा जो बहुत लम्बे समय से आधारभूत परिभाषा मानी जाती है लोक प्रशासन को इन शब्दों में प्रस्तुत करती है— लोक प्रशासन में वे सभी क्रियाएं सम्मिलित हैं जिनका उद्देश्य वैध सत्ता द्वारा निर्धारित लोकनीति को पूरा करना अथवा लागू करना (The fulfilment or enforcement of public policy) होता है।[4] हरबर्ट साइमन (Simon) तो लोक प्रशासन को राष्ट्रीय राजकीय तथा स्थानीय सरकारों की कार्यकारिणी शाखाओं की सभी गतिविधियों का पर्यायवाची मानता है।[5] लोक प्रशासन की कुछ और प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

लोक प्रशासन वह प्रशासन है जिसका सम्बन्ध केन्द्रीय अथवा स्थानीय शासन की क्रियाओं से होता है।[6] —पर्सी मेक्वीन

1 Dimock and Koenig, Public Administration, p
2 W Wilson The Study of Administration Political Science Quarterly 1941 pp 481 566 See also Political Science Quarterly Vol 2 pp 197 ... June 1887
3 J M Pfiffner and Presthus Public Administration p 3
4 L D White Introduction to the Study of Public Administration p 1
5 Simon and Others Public Administration p 7
6 Percy McQueen Journal of Public Administration Vol III p 281

प्रथम, यह एक अधीनस्थ तथा उसके अध्यक्ष के बीच की क्रिया हो सकती है। ऐसा तब होता है जब एक कार्यकर्ता के मन म कोई सुझाव उत्पन्न होता है और वह उस अपने अध्यक्ष को देना चाहता है। दूसरे यह अधीनस्थो के एक समुदाय तथा उनके अध्यक्ष के बीच क्रिया प्रतिक्रिया का रूप धारण कर सकता है। यह उस स्थिति म होता है जब अध्यक्ष अपने अधीनस्थो को एक साथ ही एक सामान्य समस्या पर चार करने के लिए या कुछ सुझाव प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित करे।

यद्यपि टेनिनबाम तथा मासारिक यह मानते हैं कि तीसरे सोपान पर अधीनस्थो के योगदान की सम्भावना नहीं है किन्तु फिर भी साइमन एव उसके अनुयायियो का यह मत भी उल्लेखनीय है कि कोई भी अध्यक्ष जब निर्णय लेता है तो उस पर सगठन के कार्यकर्ताओ एव बाह्य परिस्थितियो का बहुत अधिक प्रभाव पडता है। यह प्रभाव प्राय अप्रत्यक्ष होता है और कभी कभी यह अध्यक्ष की इच्छा से भिन्न अथवा विपरीत भी होता है। इस प्रकार के योगदान को एकांगी होने के कारण सही अर्थों मे योगदान नही कहा जा सकता क्योकि दोनो ही सम्बन्धित पक्ष समान रूप से रुचि नही लेते।

प्रजातन्त्रात्मक प्रक्रिया के सम्भावित लाभ
(The Possible Advantages of the Democratic Pattern)

निर्णय लेने की यह व्यवस्था जिसम उच्च अधिकारी एव अधीनस्थ अधिकारी सहयोगपूर्वक काय करते हैं तथा सामर्थ्य के अनुसार योगदान करते हैं अपने कुछ लाभ रखती है। यही कारण है कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थो के सुझावो को सुनने के लिए उत्सुक रहता है तथा कई बार स्वय पहल करके निर्णय की प्रक्रिया म उन्हे योगदान करने के लिए आमन्त्रित करता है। योगदानपूर्ण एव सामूहिक रूप से लिए गए निर्णयो का महत्त्व एव उपयोगिता का आधार वह आवश्यकता है जिसके अनुसार एक अध्यक्ष को बौद्धिक निर्णय लेना चाहिए तथा लिए गए निर्णय के सम्भावित परिणाम अधिक से अधिक वांछनीय एव कम से कम अवांछनीय हो। निर्णयो के लेने म कम से कम जोखिम उठाने की दृष्टि से अध्यक्ष यह उचित समझता है कि सगठन के अन्य सदस्यो को यथासम्भव योगदान प्राप्त करता रहे।

टेनिनबाम तथा मासारिक ने प्रजातन्त्रात्मक प्रयासो के रूप म योगदान के विभिन्न लाभो का वर्णन किया है जो मुख्य रूप म इस प्रकार हैं—

(1) व्यक्तिगत रुचि—जब अधीनस्थ कर्मचारी यह अनुभव करते हैं कि सगठन के निर्णयो म उनका भी कुछ योगदान है तो सगठन के कार्यों म वे अधिक से अधिक व्यक्तिगत ध्यान देने लगते हैं और पूर्ण रुचि के साथ उनको सफल बनाने की दिशा म प्रयास करते हैं। इसके परिणामस्वरूप सगठन के कार्यों के परिणामो की

प्रशासन का सम्बन्ध काय करने से है। नाक प्रशासन प्रशासन विनान वा वर ग्रश ह जिसका सम्बन्ध शासन से ह ग्रन इसका सम्बन्ध मूलत कायकारिणी स हा जाना है क्योकि कायकारिणी ही शासकीय कार्यों का करने के लिए उत्तरदायी होती है। हलाँकि व्यवस्थापिका ग्रौर न्यायपालिका से भी सम्बन्धित कुछ समस्याए लोक प्रशासन के क्षेत्र म ग्राती हैं।[1] —लूथर गुलिक

प्रशासन का काय करना ह ग्रौर जिस प्रकार राजनीति विनान नीतियो क निर्माण हेतु जनता की इच्छा को सगठित करन के सर्वोत्तम साधनो की खोज करता है उसी प्रकार लोक प्रशासन का विज्ञान उन नीतियो के क्रियान्वयन की सर्वोत्तम रीतियो की खोज करता है।[2] —मरमन

लोक प्रशासन का काय जनता के प्रय नो म समन्वय की स्थापना करना काय कराना ह ताकि वह ग्रपने निश्चित उद्देश्यो ग्रथवा ध्येयो की प्राप्ति करने क लिए मिलकर काय कर सके। प्रशासन म उन क्रियाग्रो का समावेश हाता है जो ग्रत्यधिक प्राविधिक ग्रथवा वशयिक होती हैं यथा—सावजनिक स्वास्थ्य की चिन्ता ग्रौर कागजात का निर्माण ग्रादि। 'उसम हजारो ग्रौर लाखो कायकर्त्ताग्रो के कार्यों का प्रबन्ध निदेशन ग्रौर ग्रधीक्षण भी निहित है। इन्ही म उनके प्रय नो म व्यवस्था ग्रौर क्षमता ग्राती है ... ।'[3] —फिफ्नर

प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के क्या तथा कैसे स है। क्या का ग्रथ विषय-वस्तु स है ग्रथात् एक क्षेत्र का तकनीकी ज्ञान जो प्रशासको का काय करने की सामर्थ्य प्रदान करता है। कैसे प्रबन्ध की तकनीकी है ग्रथात् वे सिद्धान्त जिनके ग्रनुसार सहकारी योजनायें सफल बनाई जाती हैं। दोनो ही ग्रपरिहाय हैं ग्रौर दोना के मिलने से ही प्रशासन की स्थापना होती है।[4] —डिमाक

लोक-प्रशासन बहुरूपीय है ग्रौर इसका परिभाषा करना ग्रत्यन्त कठिन है। सरकार के बदलते हुए कार्यों के सन्दभ म ही इसे समझा जा सकता है। —ग्लन

नाक प्रशासन की ये परिभाषायें कुछ व्यापक तथा कुछ सकीर्ण दृष्टिकोण लिए हुए हैं। कुछ परिभाषायें लोक प्रशासन की प्रकृति के बारे म सकीर्ण किन्तु क्षेत्र के बारे मे व्यापक दृष्टिकोण वाली हैं ग्रौर कुछ ऐसी है जो प्रशासन की प्रकृति ग्रौर क्षेत्र दोना के सम्बन्ध म व्यापक राय कायम करती है। लोक प्रशासन के व्यापक दृष्टिकोण वाली परिभाषायें ग्राज ज्यादा मान्य हैं क्योकि लोक प्रशासन का हम किसी भौतिक विनान की भाति सुनिश्चित तरीको से परिभाषित नहीं कर सकत ग्रौर न ही उसकी सवमान्य स्पष्टतम सीमा रेखा खीच सकते हैं।

1 *L Gull k & L Urwick* Papers o th Science Adm nistration p 191
2 Journ l of Public Adm n stratio Vol I No 3
3 *Pfiffn r* Public Administration p 6
4 Am ican Polit cal Science Rev ew Vol XXXI pp 31 32

3 न्यायपूर्ण व्यवहार (Just Behaviour)—जब किसी अभिकरण को व्यक्तिगत रूप से मनुष्यो की क्रियाओ का नियमित करना होता है तो उसके लिए न्यायपूर्ण व्यवहार के कुछ मापदण्ड स्थापित किए जाते हैं। सरकारी व्यवस्था म सदा ही यह मौलिक सिद्धान्त रहता है कि जब सरकार नियमन करती है तो ऐसा करते समय वह व्यक्ति के अधिकारो का यथोचित् सम्मान देती है। नियम बनाने एव उनको लागू करने का तरीका स्वच्छापूर्ण नही होना चाहिए वह कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुकूल ही होना चाहिए। कर्मचारियो पर लागू होने वाले नियम न्यायसगत तथा समान होने चाहिए। उनमे किसी के प्रति पक्षपात नही झलकना चाहिए। अलग अलग विभागो म एक सा कार्य करने वाले दो कर्मचारियो को समान वेतन प्राप्त होना चाहिए।

4 व्यक्तिगत मूल्य (Personal Values)—ऊपर जिन मूल्यो का वर्णन किया गया है वे सगठनात्मक हैं क्योकि वे सगठन का लक्ष्य प्राप्ति की ओर सकेत करते हैं। इनके अतिरिक्त कर्मचारी के व्यक्तिगत मूल्य भी निर्णय का प्रक्रिया पर बहुत प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए उसके कार्य की गति इस बात से भी तय की जाएगी कि उसमे सामर्थ्य कितनी है तथा वह स्वय कितना उत्साह रहा है? व्यक्ति सगठन के निर्णयो का प्राय अपने लक्ष्यो के आधार पर वेतन अथवा अवेतन रूप से मूल्याकन करता रहता है जैसे—वेतन वृद्धि या पदोन्नति अप्रोनस्य तथा उच्च अधिकारियो के साथ सम्बन्ध भौतिक आराम तथा इसी प्रकार के अन्य लाभ। ये व्यक्ति के कार्यों को प्रभावित करते रहते हैं।

एक सगठन का अस्तित्व एव सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर होती है कि उसके कर्मचारी एव भागीदार पर्याप्त रूप से सगठन के मूल्यो के अनुसार काम करें। सगठन के व्यवहार म व्यक्तिगत मूल्य तब बीच म आते हैं जब व्यक्ति का व्यवहार सगठन के मूल्यो की मांगो के साथ सघर्षपूर्ण हो। उदाहरण के लिए एक निरीक्षक किसी व्यक्ति का अनुत्तरदायित्वपूर्ण स्थिति म इसलिए रख सकता है क्योकि वह उसका मित्र है। सकारात्मक रूप से सगठन यह प्रयास करता है कि कर्मचारी अपने व्यक्तिगत मूल्यो को सगठन के मूल्यो के अनुरूप ढाल। इसके लिए यह उन लोगो को पारितोषिक एव लाभ प्रदान करता है जो सगठन के मूल्यो को आगे बढाते हैं और उस व्यवहार के लिए दण्ड देता है जो इन मूल्यो के साथ सघर्ष करता है। योग्यतापूर्ण कार्य करने वालो का वेतन बढा दिया जाता है अधिक उत्पादन करने वाले को अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है—ये सभी उन भौतिक प्रेरको के उदाहरण हैं जो कर्मचारियो को सगठन द्वारा प्राप्त होते हैं। लोक प्रशासन के सुप्रसिद्ध विचारक बर्नार्ड (Chester I Barnard) का कहना है कि सगठन द्वारा व्यक्ति के लिए प्रदान किए जाने वाले मुख्य प्रेरक निम्नलिखित हैं—

(1) भौतिक लालच—धन अथवा सामान।

वास्तव में लोक प्रशासन की सभी परिभाषाओं में आज नीति और उसकी क्रियान्विति पर बल दिया जाने लगा है। नीति मन्त्व किसी उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में बनाई जाती है तथा नीति के क्रियान्वयन में गतिविधियाँ और कार्यक्रम होना स्वाभाविक है। अतः लोक प्रशासन का सम्बन्ध उद्देश्य, नीति और गतिविधि तीनों से है। तीनों में तालमेल बिठाना लोक प्रशासन है। जो लोग लोक प्रशासन को नीति विज्ञान (Policy Science) मानते हैं वे उसे राजनीति (पॉलिटिक्स) के समीप ले जाते हैं और उनके मत में मन्त्री और विधायक भी लोक प्रशासक हैं। इस तरह के दृष्टिकोण को प्रशासन का एकीकृत दृष्टिकोण (Integral View of Administration) कहा जाता है। इसके विपरीत जो लोक प्रशासन में केवल उच्च प्रकार के निर्णयों को ही महत्त्व देते हैं वे प्रशासन को एक प्रबन्धकर्ता की दृष्टि से देखते हैं और उन्हीं लोगों को वे प्रशासक कहना चाहेंगे जो तकनीकी दृष्टि से कार्य करवाने में वैज्ञानिक दक्षता रखते हों। इस प्रकार की विचारधारा को प्रशासन का प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण (Managerial View of Administration) की संज्ञा दी गई है।

मोटे तौर पर लोक प्रशासन सार्वजनिक नीति के निर्माण और कार्यान्वयन में पाँच बातों से सम्बन्धित है। पहला प्रशासन-यन्त्र या मशीन जिसे लोक प्रशासन के विद्यार्थी संगठन सिद्धान्तों का नाम देते हैं। दूसरे व्यक्ति या सरकारी कर्मचारी जिनकी समस्यायें लोक प्रशासन में कर्मचारी वर्ग प्रशासन (Personnel Administration) के नाम से जानी जाती हैं। तीसरा वित्त (Money) जिसकी व्यवस्था का नियन्त्रण और सञ्चालन वित्त प्रशासन (Financial Administration) कहा जाता है। चौथा प्रशासन में कुछ साधन सामग्री और ज्ञान होते हैं जिन्हें आज के प्रबन्ध विज्ञान (Management Science) के अन्तर्गत कार्याध्ययन (Work Study) पद्धति अध्ययन (Method Study) तथा सामग्री-व्यवस्था (Materials Management) कहते हैं। अन्त में प्रशासन में कार्य करने की कुछ प्रणालियाँ और पद्धतियाँ होती हैं जिन्हें प्रबन्धात्मक तकनीक (Managerial Techniques) के नाम पर आज के प्रबन्ध वैज्ञानिक मॉडल्स की संज्ञा देते हैं। सार्वजनिक वित्त और वैज्ञानिक कार्य प्रणालियों का एक उद्देश्यपरक समन्वय और समुचित अनुपात लोक प्रशासन को आज के युग का महत्त्वपूर्ण सामाजिक विज्ञान सिद्ध करता है। लोक प्रशासन एक नीति विज्ञान है एक व्यवसाय है मानवीय आचरण से सम्बन्धित सामाजिक गतिविधि है और कुल मिलाकर एक ऐसी प्रक्रिया है जो राजनीति का एक अविभाज्य अंग है। वह सरकार का प्रतिनिधित्व करता है और उसका प्रतीक भी माना जाता है। लोक प्रशासन में मानव आचरण को सामूहिकता के सन्दर्भ में देखा जा सकता है और इस दृष्टि से नेतृत्व सम्प्रेषण निर्णय प्रक्रियायें

अ वीकार कर लिया है तो वह व्यक्ति सम्भवत एक लम्बे भाषण द्वारा अ य सदस्यो के विचारो स अपनी सहमति स्पष्ट करगा। यदि उसकी राय अ य सदस्यो क विपरीत है तो वह शायद चुप रहगा तथा कुछ बेचनी का अनुभव करेगा। इसी प्रकार सम्मेलन के दूसर सद यो की स्थिति का निर्धारण बहुत कुछ आ शक अचतन एव अबौद्धिक व्यक्तिगत लक्ष्यो द्वारा किया जाता है। सम्मलन म प्रस्तुत प्रस्तावो क लाभ त । हानि व्यक्तिगत लाभ हानि क सदभ म तय किए जात हैं। किसी भी सम्मलन क परिणाम बहुत कुछ इस बात स निश्चित किए जात है कि उसकी प्रक्रिया म भाग लन वाल सदस्य सतुष्ट थे अथवा असतुष्ट।

कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य प्ररणाए
(Some Important Factual Motives)

सगठन म प्रशासकीय निर्णय लते समय जिन तथ्य प्ररणाओ का प्रभाव अधिक पडता है उनका वर्गीकरण करना बडा कठिन है। प्रशासन म वाछनीय तथ्यगत ज्ञान की विभिन्नता उतनी ही व्यापक होनी चाहिए जितनी सरकार द्वारा क्रियाए की जानी हैं अथवा जितने प्रकार की तकनीको का यह प्रयोग करगी। योग्यता एव ज्ञान द्वारा एक कमचारी विभिन्न स्थितियो क साथ सम्पक बनाए रख सकता है तथा उन पर विचार कर सकता है। यह योग्यता एव ज्ञान तत्कालीन स्थितियो क प्रति प्राप्त होने वाली सूचना स भिन्न है। एक जगलात अधिकारी को ज ान की आग बुझाने का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसस पहले कि वह वास्तविक आग का सामना करे इस बात की सूचना होनी चाहिए कि आग कहा लगी है यह कितनी भयानक है हवा तथा मौसम की स्थिति कसी है आदि। इस प्रकार तथ्य प्र रणाए मुख्य रूप से दो भागो म विभाजित हो जाती है—प्रथम समस्या का सामना करने की कमचारी की योग्यता एव ज्ञान द्वितीय उस समस्या स सम्बधित विभिन्न सूचनाए।

सगठन क कमचारियो द्वारा य दोनो प्रकार की प्र रणाए भिन्न भिन्न रूप म प्राप्त की जाती है अत इनके बीच अन्तर करना महत्त्वपूर्ण है। यदि व स्थायी योग्यता एव कुशलता विकसित करना चाहते है तो व ऐसा प्रशि ण एव अनुभव क आधार पर ही कर सकते हैं। दूसरी ओर वे घटनास्थल की सूचना प्रत्यक्ष निरीक्षण अथवा द्रत सचार माध्यम स ही प्राप्त कर सकत ह। अनेक सरकारी अभिकरणो मे कुछ विशिष्ट इकाइया होती हैं जिनका काय यह देखना होता है कि कमचारियो का उनके काय स सम्बधित सभी सभी सूचना प्राप्त होती रहे। प्रशि ण इकाइया उनकी योग्यता एव ज्ञान का विकास करती हैं बुद्धिपूर्ण इकाइयाँ सामयिक सूचना एकत्रित एव प्रसारित करती है। ये दोनो ही व्यवस्था सनिक सगठनो म पर्याप्त सक्रिय रहती है किन्तु अधिकाश बड नागरिक सगठनो म भी य व्यवस्था होती है।

कमचारियो क व्यवहार को प्रभावित करने वाल अनेक तथ्यो म से

द अरक दृष्टिकोण और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त प्रशासन की पाठ्यपुस्तकों में स्थान पाते रहे हैं।

लोक प्रशासन का क्षेत्र ✓

(Scope of Public Administration)

लोक प्रशासन के क्षेत्र के विषय में दृष्टिकोण उतने ही भिन्न हैं जितने कि वर्तमान जीवन में लोक प्रशासन की भूमिकाओं के विषय में। राजनीति विज्ञान की भाँति लोक प्रशासन के क्षेत्र की सीमा रेखा निर्धारित करना भी अत्यन्त दुष्कर कार्य है क्योंकि—(1) लोक प्रशासन एक नया विषय है तथा एक क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित ज्ञान के रूप में उसका जन्म हाल ही के वर्षों की घटना है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में इस विषय का काफी विकास हो चुका है तथापि भारत जैसे विकासशील देश से अभी यह विषय ज्ञान के एक पृथक शास्त्र के रूप में गत दशक में ही स्थान पा सका है। (2) लोक प्रशासन का एक विकासशील शास्त्र है तथा लोक-कल्याणकारी राज्य के क्षेत्र विस्तार के साथ ही लोक प्रशासन का क्षेत्र भी निरन्तर परिवर्तन परिवर्धन का और गतिशील है। (3) लोक प्रशासन के अन्तर्गत प्रशासन की परिभाषा पर विद्वानों में अभी तक मतैक्य नहीं हो पाया है। कुछ विचारक प्रशासन के एकीकृत दृष्टिकोण के समर्थक हैं तो अन्य विचारक प्रबन्धात्मक दृष्टिकोण के। इस प्रकार जहाँ प्रथम मत के अन्तर्गत लोक प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है वहाँ दूसरी विचारधारा उसे सीमित रूप में प्रस्तुत करती है। लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में मुख्यतः तीन प्रकार की विचारधारायें प्रचलित हैं—

1. पोस्डकार्ब (POSDCORB) विचारधारा
2. पाठ्य विषय की विचारधारा
3. समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक विचारधारा।

पोस्डकार्ब विचारधारा

लोक प्रशासन के परम्परावादी लेखक जिन्हें संकीर्ण विचारधारा का पोषक कहा जाता है लूथर गुलिक व पोस्डकार्ब (POSDCORB) को ही लोक प्रशासन का प्रमुख और एकमात्र क्षेत्र मानते हैं। पोस्डकार्ब की रचना कुछ अंग्रेजी शब्दों के प्रथम अक्षर को मिलाकर मे हुई है और ये अक्षर निम्नलिखित क्रियाओं का बोध कराते हैं—

P (Planning)—योजनायें बनाना या नियोजन करना। दूसरे शब्दों में इसका आशय है—कार्यों की रूपरेखा तैयार करना एवं निश्चित ध्येय की प्राप्ति के लिए नीतियों को निर्धारित करना।

O (Organization)—संगठन अर्थात् अधिकारी वर्ग के एक ऐसे स्थायी ढाँचे का निर्माण करना जिसके द्वारा निश्चित उद्देश्य के लिए काम के उप विभागों

सत्ता और शक्ति (Authority and Power)

सत्ता और शक्ति बहुत कुछ मिलते जुलते शब्द हैं। कभी-कभी इनको पर्यायवाची शब्द के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। लेकिन प्रशासन की भाषा में ये दोनों शब्द अपना विशेष अर्थ रखते हैं और एक के लिए दूसरे का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इन दोनों में एक स्पष्ट अन्तर यह होता है कि सत्ता का रूप एक प्रकार से कानूनी है जबकि शक्ति (Power) का रूप कानूनी होना आवश्यक नहीं है। शक्ति (Power) के बारे में अपने अध्ययन के आधार पर लासवेल (Lasswel) ने अपने विचार विस्तारपूर्वक प्रकट किए हैं। वे अपनी पुस्तक पावर (Power) में शक्ति-परिवार (Family of Power) में शक्ति के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हैं। उनके कथनानुसार शक्ति और कुछ न होकर केवल एक प्रभाव है। शक्ति के कार्यों पर अनेक प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं ये सभी प्रभाव शक्ति-परिवार के सदस्य हैं। जब शक्ति को कानून का रूप दे दिया जाता है तो वह सत्ता (Authority) बन जाती है। सत्ता का अर्थ उस बिन्दु से है जहाँ पर निर्णय लिए जाते हैं। जब हम वास्तविक व्यवहार का निर्णय करते हैं तो हमको यह ज्ञात नहीं रहता कि यथार्थ में निर्णय कौन ले रहा है। प्रशासनिक निर्णयों पर अनेक ऐसे बाहरी प्रभाव पड़ते हैं जिनको प्रायः न देखा जा सकता है और न अनुभव किया जा सकता है। सत्ता की परिभाषा देते हुए कई विचारक यह मानते हैं कि सत्ता कानूनी रूप में निर्णय लेने की शक्ति है।

परम्परावादी विचारधारा में आज्ञा देने का अधिकार और आज्ञापालन का कर्त्तव्य जमीं में जनाए स्थापित की गई थी उनमें शक्ति का कानूनी रूप प्रकट होता है। जब औपचारिक (Formal) रूप से एक व्यक्ति को आज्ञा देने का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है तो उसमें कानूनी स्वीकृति झलकती है। यहाँ सामाजिक तथा अनौपचारिक तत्वों का कोई महत्त्व नहीं रहता। यह जरूरी नहीं होता कि जिस व्यक्ति को आज्ञा देने का अधिकार प्रदान किया गया है उसमें आज्ञा देने की सामर्थ्य भी हो। आज्ञा देने की सामर्थ्य को शक्ति कहा जा सकता है। इस प्रकार जिस व्यक्ति के पास सत्ता है उसके पास शक्ति का होना आवश्यक नहीं है। कई बार कुछ लोग शक्ति का प्रयोग बिना किसी सत्ता के भी करते हैं। शक्तिविहीन सत्ता के व्यवहार की तुलना एक कठपुतली से की जा सकती है। कठपुतली का जो भी कार्य होता है वह देखने वालों को तो ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं कठपुतली ही उसे कर रही है किन्तु यथार्थ में उनके व्यवहार का सूत्रधार कोई अन्य व्यक्ति होता है। इस उदाहरण में कठपुतली के पास सत्ता है, पर शक्ति नहीं। जब संगठनों का हम अध्ययन करते हैं तो ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं जबकि पद-सोपान के उच्च अधिकारी जिनको औपचारिक रूप में अधिकार मिले हुए हैं उनका प्रयोग

की व्यवस्था की जाए उन्हें क्रमबद्ध किया जाए उनकी व्याख्या की जाए और उनमें समन्वय स्थापित किया जाए।

S (Staffing)—कार्मिक संगठन या कर्मचारियों की व्यवस्था करना। दूसरे शब्दों में उपयुक्त व्यक्तियों को विभिन्न पदों पर नियुक्त करना उनको प्रशिक्षण देना तथा उनके लिए कार्य करना अनुकूल दशाओं का निर्माण करना अर्थात् समूचा कार्मिक प्रबन्ध।

D (Directing)—निर्देशन करना। इसका अभिप्राय है शासन सम्बन्धी निर्णय लेना उन्हें के अनुरूप कर्मचारियों को विशिष्ट एवं सामान्य आदेश तथा सूचनाएं देना तथा उनका नेतृत्व करना।

Co (Co-ordinating)—समन्वय करना अथवा कार्य के विविध अंगों का परस्पर सम्बन्ध करना और उनमें समन्वय स्थापित करना अर्थात् उनमें परस्पर व्याप्ति (Overlapping) तथा मुठभेड़ को बचाना।

R (Reporting)—प्रतिवेदन या रिपोर्ट तैयार करना अर्थात् प्रशासकीय कार्यों की प्रगति के बारे में उन लोगों को सूचनाएं देना जिनके प्रति कार्यपालिका उत्तरदायी है तथा निरीक्षण अनुसंधान अभिलेखन आदि द्वारा इस प्रकार की सूचनाओं का संग्रह करना।

B (Budgeting)—बजट तैयार करना या वित्तीय प्रशासन। इसके अन्तर्गत शामिल हैं—वित्तीय योजना तैयार करना हिसाब किताब रखना प्रशासकीय विभागों का वित्तीय साधनों द्वारा अपने नियन्त्रण में रखना आदि। वस्तुतः अपने व्यापक अर्थ में सम्पूर्ण वित्त प्रशासन को समाहित करता है।

पोस्डकार्ब विचार वर्ग की मान्यता है कि योजना संगठन कर्मचारियों का निर्देशन कार्यों का समायोजन तथा नियन्त्रण रिपोर्ट बजट की तैयारी आदि वे मौलिक बातें हैं जिनका ज्ञान किसी भी प्रशासक के लिए अनिवार्य है और यदि पोस्डकार्ब की इन प्रक्रियाओं का मौलिक ज्ञान किसी व्यक्ति को है तो वह सभी प्रकार के संगठनों में किसी भी प्रकार के क्षेत्र का प्रशासन चला सकता है। ये प्रक्रियाएं अथवा प्रविधियां प्रशासन अर्थात् प्रबन्ध के समस्त क्षेत्रों पर समान रूप से लागू होती हैं। यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन को एक विशिष्ट तकनीकी ज्ञान मानता है और इस दृष्टि से प्राइवेट तथा पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के अन्तर को क्षेत्रीय न मानकर पद्धतीय मानता है। पोस्डकार्ब को लोक प्रशासन का क्षेत्र मानने वाले लूथर गुलिक का इस बात पर आग्रह है कि लोक प्रशासन एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जिसे एक विज्ञान की तरह पढ़ा जाना चाहिए। आज इसी विशिष्टीकृत ज्ञान के विचार को नवीन प्रबन्ध विज्ञान (Management Science) आगे बढ़ा रहा है। पोस्डकार्ब क्रियाओं को प्रशासन का अनिवार्य मूलबिन्दु मानता है तथा अमरिका में प्रशासन सम्बन्धी अध्ययन में एक पीढ़ी से भी अधिक समय से यह विचार विशेष प्रभावशाली रहा है।

किसी संगठन में विचारकता को तभी प्राप्त करने के लिए एक मौलिक कदम यह उठाया जा सकता है कि विचारक को सत्ता के औपचारिक पदसोपान में उच्च स्तर प्रदान कर दिया जाए अर्थात् उसे एक ऐसी कुर्सी पर बठा दिया जाए जहाँ से उसके निर्णयों को संगठन के स्तर सदस्य स्वीकार कर सकें। जिन संगठनों को प्रक्रिया (Process) के आधार पर गठित किया जाता है उनमें यह गुण अपने आप आ जाता है जब विशिष्टता से सम्बन्धित सभी निर्णय एक ही विभाग द्वारा लिए जाते हैं तो यह सम्भव हो जाता है कि निर्णय लेने का कार्य इस प्रकार निश्चित कर दिया जाए जिसमें आवश्यक तकनीकी योग्यता भी रखी जा सके। जब निर्णय लिए जाते हैं तो उनमें अनेक प्रकार की तकनीकी सहायता की आवश्यकता होती है। यह सहायता उस समय प्राप्त नहीं हो सकती जब निर्णयों का संचार सत्ता के औपचारिक पदसोपान तक ही सीमित रहे। साइमन का मत है कि निर्णय लेने में सभी प्रकार की विशेषज्ञता का लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि सत्ता को औपचारिकता से मुक्त किया जाए। दबावों या सत्ता (Authority of Sanctions) की भाँति विचारों की सत्ता (Authority of Ideas) को भी संगठन का समन्वय करते क्षेत्र (Area of Acceptance) कहा है जबकि बर्नार्ड (Bernard) ने उपेक्षा का क्षेत्र (Zone of Indifference) कहकर पुकारा है। यदि उच्च अधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय इस क्षेत्र से बाहर हैं तो उनको स्वीकार नहीं किया जाएगा। यही कारण है कि जब सत्ताधारी उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों को आज्ञा देता है तो इस बात का ध्यान रखता है कि आज्ञा इस क्षेत्र से बाहर न हो। अधिकारियों का दोनों श्रेणियों के बीच का सम्बन्ध केवल इस क्षेत्र के अन्तर्गत ही रह सकता है। अधीनस्थ अधिकारियों की स्वीकृति का यह क्षेत्र प्रत्येक संगठन में एक जैसा नहीं होता और न ही एक संगठन में भी सदैव एक जैसा होता है। स्वीकृति के क्षेत्र का स्वरूप एवं आकार निश्चित करने में अनेक बाहरी दबावों एवं तथ्यों का प्रभाव रहता है।

परिस्थितियों का प्रभाव

(The Influence of Circumstances)

संगठन किन परिस्थितियों में कार्य कर रहा है तथा उसके सदस्यों के नियम किस प्रकार के हैं, आदि बातें भी यह निश्चित करने में महत्वपूर्ण योग देती हैं कि सत्ता का प्रभाव कितना महत्वपूर्ण होगा। उदाहरण के लिए हम एक ऐसे संगठन को ले सकते हैं कि जिसकी सदस्यता स्वेच्छा पर आधारित है तथा जिसके उद्देश्यों को भली प्रकार परिभाषित नहीं किया गया है। इस प्रकार के संगठन में स्वीकृति का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। इसके विपरीत स्थिति सैनिक संगठन में पाई जाती है। सैनिक संगठन में व्यवहार की परम्पराएँ तथा उससे सम्बन्धित दबावों की

पोस्डकाबवादी यह दृष्टिकोण आज अनेक दृष्टियो से अमान्य अथवा अपूर्ण समझा जाता है—

प्रथम तो यह दृष्टिकोण इतना सकीर्ण है कि इस पर लोक प्रशासन शब्द से प्रकट होने वाला अर्थ पूरी तरह लागू नही किया जा सकता। पोस्डकाब की प्रक्रियाए तो परिवार सस्था एव स्थानीय इकाइया आदि कही भी देखी जा सकती हैं। अत सगठन चलाने का यह विशेष ज्ञान लोक प्रशासन नही हो सकता।

दूसरे इस सकीर्ण क्षेत्रवादी दृष्टिकोण मे यह दुर्बलता है कि सदर्भ का ध्यान नही रहता। लोक प्रशासन मे लोक हित लोक-कल्याण एव लोक-उद्देश्य का ध्यान पोस्डकाब गतिविधियो के लिए आवश्यक है। अत सन्दर्भ से बाहर मौलिक ज्ञान अपूर्ण एव हानिकारक हो सकता है। पोस्डकाब दृष्टिकोण लोक-उद्देश्य की चर्चा नही करता। अत यह इसी तरह लोक प्रशासन का सम्पूर्ण क्षेत्र नही है इसे मात्रा की तयारी करने मात्र का यात्रा नही कहा जा सकता।

तीसरे मानव सम्बन्ध दृष्टिकोण के लेखको का कहना है कि पोस्डकाब को लोक प्रशासन कहना प्रशासन का एक अत्यन्त निर्जीव शुष्क मृत चित्र प्रस्तुत करना है। हाथार्न प्रयोग (Hawthorne Experiments) के बाद लोक प्रशासन के क्षेत्र मे यह सिद्धान्त स्वीकृत होता जा रहा है कि प्रशासन एक मानवीय कला है एक सामाजिक विज्ञान है जिसे केवल नट (Nut) और बोल्ट (Bolt) का रूप नही दिया जा सकता। वस्तुत पोस्डकाब की क्रियाए प्रशासन नहीं बल्कि औजार मात्र हैं।

(2) पाठ्य विषय सम्बन्धी विचारधारा

जो लेखक पोस्डकाब को बहुत सकुचित क्षेत्र मानते हैं उनकी यह मान्यता है कि लोक प्रशासन का क्षेत्र विषय की दृष्टि से निर्धारित किया जाना चाहिए तकनीक की दृष्टि से नही। लुविस मरियम (Lewis Merriam) एक ऐसा ही लेखक है जो एक कैची की दो फलको (Blades) की तरह लोक प्रशासन के क्षेत्र मे विषय और तकनीक दोनो को स्थान देता है। उसका कहना है कि किसी भी अभिकरण द्वारा प्रभावपूर्ण एव बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशासन केवल तभी सम्भव है जब उसकी विषय-वस्तु का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए। प्रशासन का मुख्य तत्त्व सजातीय क्रियाए (Like activities) हैं जो जनता के लिए व्यापक और विविध सेवा प्रस्तुत करती है जसे—कानून एव व्यवस्था शिक्षा स्वास्थ्य कृषि सामाजिक सुरक्षा आदि। इतना महत्त्वपूर्ण कार्य अथवा व्यापक सेवाए पोस्डकाब प्रक्रियाओ मे समविष्ट नहीं होती।

पाठ्य विषय सम्बन्धी विचारधारा अथवा व्यापक-क्षेत्र के समर्थक लोक प्रशासन को नीति विज्ञान मानते हैं और विषय की दृष्टि से उसे विस्तृत कर सरकार की कार्यकारिणी के समकक्ष बना देते हैं। यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन के क्षेत्र को सरकार की सम्पूर्ण गतिविधियो तक (Government in action) व्यापक बना

प्रतिबन्ध लगे रहते हैं जिनकी अवहेलना करने पर उनका प्रभाव ना समाप्त हो ही जाता है साथ ही उनका अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। वर्तमान युग में अनेक तत्वों ने सत्ता की स्थिति पर क्रान्तिकारी प्रभाव डाले हैं। इन प्रभावों के परिणामस्वरूप सत्ता प्रकृति अपने पूर्ववर्तियों में कुछ कुछ बदल चुकी है। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकताओं ने सत्ताधारियों की स्वच्छाचारी प्रकृति पर जो अंकुश लगाए हैं उनके कारण उनकी शक्तियों पर अनेक सामान्य स्थापित हो गई हैं। मुख्य अधिकारियों के बढ़ते हुए उत्तरदायित्वों व नए कार्यों के फलस्वरूप यह भी आवश्यक हो गया है कि वे अपनी सत्ता का हस्तान्तरण करें। हस्तान्तरण अथवा प्रत्यायोजन (Delegation) की प्रक्रिया में सत्ताधारी व्यक्ति अपने कार्यों को सम्पन्न करने में अपने अधीनस्थों का सक्रिय सहयोग माँगता है और यह सहयोग जिस रूप में लिया जाता है उस पर मानव-सम्बन्धों का भारी प्रभाव रहता है।

हस्तान्तरित सत्ता का प्रयोग करते समय अथवा सत्ताधारी की आज्ञाओं का पालन करते समय संगठन के सदस्यों द्वारा जो व्यवहार किया जाता है वह बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक तत्वों से प्रभावित रहता है। इसका अर्थ यह है कि वह पूर्ण रूप से बौद्धिक प्रकृति का नहीं होता। किसी भी परिस्थिति में बौद्धिक आधार पर अपनाया जाने वाला मार्ग केवल एक ही होता है। पर्याप्त विचार विमर्श के बाद उस एक कदम को करने का निर्णय लिया जाता है तथा वही सभी सदस्यों द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए। संगठन के वास्तविक व्यवहार का दर्शन करने पर ज्ञात होता है कि उनका व्यवहार प्राय बौद्धिक विकल्प में पर [illegible] ट जाता है। वे ऐसे कार्य करने लगते हैं जिनका कारण बौद्धिक कारण नहीं बताया जा सकता। जब सत्ता की व्यवस्था को एक संगठन में स्थापित किया जाता है तो प्राय मानवीय व्यवहार के इस अबौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलू पर ध्यान नहीं दिया जाता। कई विचारकों का यह मत है कि एक व्यक्ति जब अन्य व्यक्ति के निर्णयों को स्वीकार करता है तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करता है तब उसके व्यवहार में [illegible] प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता। मनोविज्ञान केवल उस क्षेत्र को निश्चित करने में महत्वपूर्ण भाग लेता है जिसमें सत्ता का पालन किया जा सकता है किन्तु सत्ता का पालन करते समय व्यक्ति का व्यवहार कैसा होगा इस बात से मनोविज्ञान का सम्बन्ध नहीं होता।

सत्ता एवं मनोविज्ञान के मध्य स्थित सम्बन्धों पर उक्त विचार अधिक सार्थक व मान्य नहीं दिखाई देते। इसका कारण यह है कि यदि हम इनको पृथक कर दें तो इस स्थिति का स्पष्टीकरण कैसे किया जा सकता है जबकि उच्च पदाधिकारी के आदेशों की अलग-अलग व्याख्याएँ की जाती हैं तथा उनको अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा विभिन्न रूपों में समझा जाता है। उनकी मनःस्थिति के आधार पर ही इस बात का निर्णय किया जाता है कि सत्ता के आदेशों को क्रियान्वित करते समय वे

दिया जाता है। ये गतिविधियाँ अधिकतर कार्यकारिणी से सम्बन्धित हैं किन्तु विधायिका न्यायपालिका और जनता से उनके सम्बन्ध भी लोक प्रशासन के विषय हैं। लोक प्रशासन को इस तरह राजनीति और सरकार के निकट लाने वाले ये विचारक मानते हैं कि नीति विज्ञान होने के कारण लोक प्रशासन तीन प्रकार के काम करता है—पहला यह नीति निर्माता राजनीतिज्ञों को सामग्री प्रदान करता है, दूसरे यह नीति निर्माण और कार्यान्विति में रिक्तता को भरता है, एवं तीसरे, एक प्रक्रिया के रूप में यह अनवरत रूप में नीति को प्रभावित करता है। इस प्रकार लोक प्रशासन का क्षेत्र केवल शुष्क तकनीकी के ज्ञान तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका क्षेत्र नीति निर्माण और व्यवहार से सम्बन्धित सभी गतिविधियों को गहराई में समझना और परखना है।

समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक विचारधारा

इस दृष्टिकोण के समकालीन लेखक इतने आगे बढ़ चुके हैं कि वे लोक प्रशासन का अध्ययन समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से करने लगे हैं। आज का लोक प्रशासन तकनीक तथा विषय का ज्ञान मात्र न रहकर उन समग्र परिस्थितियों और वातावरण को भी अपने में सम्मिलित करता है जिनके अन्तर्गत शासन प्रक्रिया चलती है। फ्रेड रिग्स जो परिस्थिति विज्ञान सम्बन्धी (Ecological) अध्ययन का प्रवर्तक है कहता है कि लोक प्रशासन का अर्थ-व्यवस्था, संचार व्यवस्था राजनीति संस्कृति तथा प्रतीक आदि को ध्यान में रखकर अध्ययन किया जाना चाहिए। तुलनात्मक प्रशासन के क्षेत्र में हैडी एवं स्टोक (Heady and Stoke) के प्रयत्न आज लोक प्रशासन की संस्कृति अथवा संस्कृति से आबद्ध लोक प्रशासन की प्रक्रियाओं पर बल देते हैं। भ्रष्टाचार मनोबल मानव-सम्बन्ध प्रशासकीय नेतृत्व आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनकी समाजशास्त्रीय स्थितियों के सन्दर्भ में ही ठीक प्रकार विवेचना की जा सकती है।

वास्तव में पोस्डकार्ब और पाठ्य विषय सम्बन्धी दोनों ही विचारधाराएं एक दूसरे की विरोधी न होकर पूरक हैं। पोस्डकार्ब का विचार प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलू पर और विषयवस्तु वाला विचार प्रशासन के व्यावहारिक पहलू पर जोर देता है। लोक प्रशासन के पूर्ण चित्र के लिये इन दोनों का होना समान रूप से आवश्यक है। यह कहना चाहिए कि लोक प्रशासन का अध्ययन क्षेत्र पोस्डकार्ब की धुरी से आरम्भ होकर एक वृहत्तर वृत्त के रूप में ज्ञान की समाजशास्त्रीयता को अपने में आवेष्टित करने लगा है। लोक प्रशासन आज काम करने का तकनीकी ज्ञान तो बताता ही है अपितु ये तकनीकें किन क्षेत्रों में किन स्थितियों में प्रभावशाली होती हैं—यह भी इसके क्षेत्र का एक अंग है। जो पोस्टकार्ब प्रणाली पुलिस प्रशासन पर लागू होती है वह विकास प्रशासन पर लागू नहीं होती। इस तरह विकास प्रशासन का जो स्वरूप पाकिस्तान में या थाइलैण्ड में है वह घाना और अर्जेण्टाइना से भिन्न है।

बवलस तथा बरिट (Bavelas and Barret) ने अनेक प्रयोगों के आधार पर यह बताया है कि सूचना के आदान प्रदान की विभिन्न परिस्थितियों का नेतृत्व पर क्या प्रभाव पड़ता है। उनका मत है कि यदि सगठन के सभी व्यक्ति सूचना के आदान प्रदान का समान रूप से अवसर प्राप्त कर सकें तो कोई नेता पैदा नहीं हो सकेगा लेकिन जो व्यक्ति अधिकाधिक आवश्यक सूचना प्राप्त कर सकता है वह कभी न कभी एक नेता बन जाएगा और इस प्रकार व्यक्तियों का वह समूह भी अपने आपको इस प्रकार व्यवस्थित कर लेगा कि वह नेता बन सकेगा। बवलस तथा बरिट के प्रयोग मुख्यत मजदूरों के स्तर पर किए गए थे जिन्हें हम प्रबन्ध स्तर पर ज्यों का त्यों लागू नहीं कर सकते। प्रबन्धात्मक स्तर में नेतृत्व के विकास के लिए परिस्थितियाँ बनने में सगठन की सरचना और सत्ता के निर्धारण का महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है। कई बार सगठन की सरचना ऐसी होती है जिसमें अधीनस्थ अधिकारी से उसके निम्न कार्यकर्ताओं द्वारा सहायता की आशा की जाती है। इस प्रकार की परिस्थिति के निर्माण से अधीनस्थ को नेता बनने का अवसर प्राप्त होता है। कुण्ट्ज तथा ओ डोनेल (Koontz and O Donell) ने इस प्रकार की स्थितियों को नेतृत्व के अवसर प्रदान करने का सिद्धान्त (The Principle of Leadership Facilitation) कहा है।[1]

3 अनुयायी विचारधारा (The Follower Theory)

यह नेतृत्व से सम्बन्धित तीसरी विचारधारा अनुयायियों के गुणों पर जोर देती है। एक नेता के आवश्यक गुणों पर विचार करते समय यह देखना चाहिए कि उस जिन लोगों का नेतृत्व करना है उनका व्यक्तित्व कैसा है उनकी व्यक्तिगत विशेषताएं क्या हैं आदि। नेतृत्व किए जाने वाले व्यक्तियों का भी अध्ययन किया जाना जरूरी है। सनफोर्ड (Sanford) का यह कहना बिल्कुल सही है कि एक व्यक्ति के रूप में यह एक अनुयायी ही होता है जो नेता को समझता है जो परिस्थितियों को समझता है और जो अन्तिम रूप से नेता को स्वीकार या अस्वीकार करता है। अनुयायी के समझने के अभिप्राय दृष्टिकोण आदि का यह निश्चय करने में बहुत महत्त्वपूर्ण योग रहता है कि वह क्या समझेगा और उसके सम्बन्ध में क्या प्रतिक्रिया करेगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक नेता के व्यक्तिगत गुण वास्तव में चाहे कुछ भी हों किन्तु उसे नेता बनाने में उत्साह अभिव्य तभी हो सकता है जब अनुयायियों द्वारा उनको स्वीकार कर लिया जाए। नेतृत्व के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ अनुयायियों द्वारा बना दी जाती हैं। अनुयायी [illegible] एक प्रकार

1 H r ld K ntz and Cy l O D n ll P n pl s of Management pp 29?

2 Fillmore H S nford Lead h p Id nt fi at on and Acc pt nce - In G up Leade h p and M ed t d by H ld G etzkow n ? d 434

लोक प्रशासन का क्षेत्र आज अपने ज्ञान की वैज्ञानिकता के विस्तार के लिए सम्बन्धों सम्बन्धों अन्तर-सम्बन्धों परिणामों और उनसे जन्म लेने वाली प्रक्रियाओं को भी अपने क्षेत्र के अन्तर्गत मानता है। लोक प्रशासन के क्षेत्र का यह विस्तार तीन चरणों में हुआ है। पहला तकनीकी ज्ञान दूसरा विषय सम्बन्धी ज्ञान एवं तीसरा सम्बन्ध और अन्तर-सम्बन्ध विषयक ज्ञान। संगठन नौकरशाही सेवी-वर्ग की समस्याओं तथा वित्त प्रशासन का जब लोक प्रशासन के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है तो उनका यह अध्ययन केवल सैद्धान्तिक न होकर इस दृष्टि से किया जाने लगा है कि इन सिद्धान्तों पर राजनीतिक सांस्कृतिक तथा क्षेत्रीय विषय के विशेषीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है। कुल मिलाकर लोक प्रशासन का क्षेत्र आज इतना विस्तृत हो गया है कि उसमें आज सरकार की सारी गतिविधियाँ और राजनीति के सारे अन्तर सम्बन्ध समा जाते हैं। क्षेत्र की दृष्टि से आज व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक प्रशासन (Private and Public Administration) का अन्तर भी गौण होता जा रहा है। फेलिक्स ए नीग्रो (Felix A Nigro) ने लोक प्रशासन के क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं का सारांश निम्नानुसार देने की चेष्टा की है[1]—

लोक प्रशासन

(1) सरकारी ढाँचे में एक सहकारी वर्गीय प्रयत्न है

(2) यह सरकार की तीनों शाखाओं (कार्यपालिका व्यवस्थापिका न्याय पालिका) तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है

(3) यह सरकारी नीति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है और इस तरह राजनीतिक प्रक्रिया का एक अंग है

(4) यह नीति प्रशासन से अधिक महत्त्वपूर्ण है और बहुत कुछ उसमें भिन्न भी

(5) अध्ययन एवं प्रयोग के क्षेत्र में हाल ही के वर्षों में यह मानवीय तत्त्व सम्बन्धी दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुआ है तथा

(6) समाज को सेवाएं प्रदान करने में यह अनेक निजी व्यक्तियों और वर्गों से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित है।

लोक प्रशासन की प्रकृति एक सामाजिक विज्ञान

(Nature of Public Administration Social Science)

सामाजिक विज्ञानों की दुनिया में यह विवाद प्रत्येक अध्ययन विषय के सम्बन्ध में चलता है कि उसे कला माना जाए या विज्ञान। वास्तव में समस्या कला बनाम विज्ञान न होकर कला और विज्ञान दोनों की पूरकता को सिद्ध करने की है। ऐसी

को महत्त्व देने वाली विचारधारा द्वारा परिस्थितिवादी दृष्टिकोण के महत्त्व को नहीं भुलाया जाता किन्तु इसका कहना है कि व्यक्तिगत गुण एवं अनुकूल परिस्थितियां के साथ-साथ अनुयायियों की आवश्यकताओं को भी नेतृत्व की मान्यता में सम्मिलित कर लेना चाहिए। हेमेन के शब्दों में "अनुयायियों की आवश्यकताओं का सन्तोष नेतृत्व करने की मान्यता का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।"[1]

डेविस कीथ (Devis Keith) आदि लेखकों ने स्पष्ट किया है कि अनुयायियों का चरित्र एवं दृष्टिकोण नेताओं के भाग्य का निर्णायक होता है। नेता और अनुयायी के बीच का सम्बन्ध एक परिवर्तनशील सम्बन्ध है अर्थात् यह तभी तक रहता है जब तक कि अनुयायी का स्वार्थसिद्धि होता है। अनुयायी नेता को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का एक सर्वश्रेष्ठ साधन समझता है। जब भी कोई समस्या उत्पन्न होती है वह उसका सहारा ढूंढता है। एक समूह के सदस्य अपने नेता का अनुगमन इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें ऐसा करने से सन्तोष तथा अवलम्ब मिलता है। कोई भी व्यक्ति-समूह नेता के बिना एक इकाई के रूप में कार्य नहीं कर सकता।

किसी भी व्यक्ति को जब एक व्यक्ति-समूह नेता मानता है तो ऐसा वह इसलिए नहीं करता कि उस व्यक्ति में बुद्धि न न कुशलता आदि विशेषताएं हैं अपितु कारण यह है कि नेता के व्यक्तिगत गुणों के माध्यम से उस समूह को अपनी आवश्यकताओं की सिद्धि दिखाई देती हैं। व्यक्ति का स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण जो जीवन की एक वास्तविकता है प्राय उसे यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि यदि कोई व्यक्ति बुद्धिमान् है तो हुआ करे इससे क्या फर्क पड़ता है। जब तक उस व्यक्ति की बुद्धिमत्ता एक मनुष्य के हित-साधन में सहायता प्रदान नहीं करती तब तक वह उसका महत्त्व मानने के लिए तैयार नहीं होता। सगठन के जीवन में भी इन सभी बातों का पूरा प्रभाव रहता है और इसलिए यदि कोई व्यक्ति नेता बनना चाहता है तो उसे अधिकाधिक लोगों के स्वार्थों को सन्तुष्ट करने की विशेषता का विकास करना होगा। एक व्यक्ति दूसरे के साथ किस प्रकार के सम्बन्ध रखेगा इसका निश्चय इस बात में होता है कि वह व्यक्ति पहले व्यक्ति के कितने काम निकाल सकता है। अनुयायियों के दृष्टिकोण के अनुसार एक व्यक्ति के नेता बनने के आधार पर उस समूह के सदस्यों में एक समझौता किया जाता है। इस समझौते के अनुसार सभी सदस्य यह स्वीकार करते हैं कि अमुक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा उनकी आवश्यकताओं को अधिक पूरा कर सकता है अतः उसे नेता बनाया जाना चाहिए। नेता का उदय एक दूसरे रूप में भी हो सकता है जब एक व्यक्ति अपने कार्यक्रमों एवं नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए यह आवश्यक समझे कि उसे नेतृत्व

---

1 Hemann op cit p 445

कोई कला नहीं है जिसका कोई वैज्ञानिक नियम न हो और इसी प्रकार कन्स से बने वैज्ञानिक को एक कलाकार सिद्ध किया जा सकता है। ताजमहल स्थापत्य कला का उत्तम प्रदर्शन है यह कहना उतना ही सही है जितना यह कि ताजमहल अभियान्त्रिकी विज्ञान का चमत्कार है। अपोलो-14 जब चाँद पर जाता है तो वह विज्ञान की उपलब्धि है किन्तु उसे वहाँ तक ले जाने वाले चन्द्रयानी वैज्ञानिक से कलाकार अधिक हैं। संगीतकार को भी संगीत के स्वरों का अनुशासन वैज्ञानिक ढंग से सीखना पड़ता है।

लोक प्रशासन कला के रूप में

डा फाइनर मोरिस कोहन आदि के विचारानुसार लोक प्रशासन को एक विज्ञान नहीं माना जा सकता। यथार्थवादी विचारक के रूप में डा एल डी व्हाइट का यह कहना है कि लोक प्रशासन अगर न विज्ञान है अथवा कला, यह बात भविष्य के निर्णय के लिए छोड़ देनी चाहिए क्योंकि यह एक विकसित अध्ययन है जिसकी वैज्ञानिकता समय के साथ बढ़ती जा रही है। एल उर्विक ने प्रशासन को एक कला माना है और उनका कहना है कि अन्य कलाओं की भाँति प्रशासन की कलाओं को भी खरीदा नहीं जा सकता। वस्तु स्थिति यह है कि लोक प्रशासन सदैव से एक कला विशेष के रूप में जाना माना जाता रहा है। लोक प्रशासन को उत्तम कला की संज्ञा दी जा सकती है और उसके लिए वही तर्क दिए जा सकते हैं जो राजनीति को सर्वोच्च विज्ञान अथवा सिद्ध विज्ञान मानने के क्रम में अरस्तू ने दिए थे। एक प्रशासन को कुशल बनाने के लिए अनिवार्य है कि विशेष कौशल का विकास किया जाए। धनुर्विद्या चित्रकारी-मूर्तिकला तथा ऐसी ही अन्य कलाओं की भाँति प्रशासन को भी सीखा जा सकता है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र मैक्यावली का दि प्रिंस अबुल फजल का आइन अकबरी आदि रचनाएं प्रशासन के मार्ग की उलझनों को दूर करने में सहायक होकर प्रशासकीय कुशलता का विकास करता है। ऑर्डवे टीड ने माना है कि संक्षेप में प्रशासन एक सुन्दर कला है।

लोक प्रशासन को जब कला कहा जाता है तो उसमें पाँच बातें निहित होती हैं—

पहला कला एक व्यक्तिगत, वैयक्तिक, असामान्य और अनूठा अनुभव है। कलाकार जन्मजात होता है उस जगह दूसरा नहीं होता और जिसकी प्रतिभा प्रकृतिक रूप से किसी विशेष में मुड़ती है। इसी प्रकार लोक प्रशासक जन्मजात होते हैं। प्रशासन के कितने ही नियम बना लिए जाएं प्रशासन एक ऐसी कला है जिसे कुछ लोग औरों की तुलना में अधिक श्रेष्ठता से सम्पादन करते।

दूसरा कला में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अभिव्यक्ति होती है और यह विवाद चलता है कि कला कला के लिए है अथवा समाज के लिए है। लोक प्रशासन की क्रिया मान्य है उसके उद्देश्य शिव (कल्याणकारी) हैं और ...

सौन्दर्य उसे कलात्मकता देता है। प्रशासन प्रशासन के लिए है या जनता के लिए है यह विवाद प्रशासन को एक ऐसी कला सिद्ध करता है जो यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की ओर संकेत करती है।

तीसरा प्रत्येक कला में एक सृजनात्मक अभिव्यक्ति होती है (Art is a creative beauty)। कला निर्माण है सृजन और सृजन द्वारा उदात्त वृत्तियों का परितोष किया जा सकता है। लोक प्रशासन चाहे कितना ही भौतिक एवं समाज की जड़ बातों से सम्बन्धित हो उसका मुख्य उद्देश्य एक नए समाज की रचना करना या उसके निर्माण में अपना योग देना है। प्रशासक का सुख एक कलाकार का सुख है और उसे अपने कार्य से वैसा ही सन्तोष मिलता है जैसा एक कलाकार को अपनी कला को देखकर मिलता है। यदि प्रशासक द्वारा बनाए गए नियम अथवा सिद्धान्त व्यवहार में उपयोगी और सफल सिद्ध होते हैं तो यह उसके लिए गौरव की बात है।

चौथा कला सिद्धान्त और व्यवहार के अन्तःसम्बन्ध का बोध है। कला में अमूर्त में मूर्त रूप की अभिव्यक्ति होती है। लोक प्रशासन भी अमूर्त सिद्धान्त और व्यवहार की सामाजिक दुनिया के बीच पाई जाने वाली स्थिति का अध्ययन है। यह व्यवहार से सिद्धान्त बनाता है और सिद्धान्त को व्यवहार में लागू करता है। यह मानव जगत लोक प्रशासकों के लिए एक प्रयोगशाला है जहाँ मानव व्यवहार और स्वभाव का अध्ययन करते हुए आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुकूल लोक प्रशासन द्वारा नियम अथवा सिद्धान्त बन ए जाते हैं और तब फिर उन नियमों अथवा सिद्धान्तों को सम्बन्धित मानव समाज पर व्यवहार में लागू करने का प्रयत्न किया जाता है।

पाँचवाँ प्रत्येक कला का अपना एक माध्यम एवं साधन होता है। उदाहरणार्थ, चित्रकला का साधन रंग, संगीत का साधन स्वर, साहित्य का शब्द तथा भाव है। प्रशासन रूपी कला के भी तीन मुख्य साधन हैं—सर्वप्रथम वह स्वयं को संगठन द्वारा व्यक्त करता है, तत्पश्चात् वह स्वयं को संगठन के उद्देश्यों द्वारा प्रकट करता है और फिर स्वयं का इन्हीं लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश द्वारा स्वरूप प्रदान करता है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी अपनी दृष्टि से संगीत, चित्रकला, शिल्पकला आदि की शैलियों और स्वरूपों में परस्पर भिन्नता होती है अथवा ये सब एक दूसरे से कम या अधिक पृथक होते हैं, उसी प्रकार शासन की शैलियों और स्वरूपों में भी सर्वत्र एकरूपता नहीं पाई जाती।

इस तरह प्रशासन को एक कला कहना न असंगति है और न ही अतिशयोक्ति। जब तक यह मानव-जीवन का एक अंग है तब तक उसकी कलात्मकता किसी न किसी रूप में विद्यमान रहेगी। विवाद यह हो सकता है कि वह कितने अंशों में कला है या कौन सी कला है। किन्तु उसके कला होने से नकारा नहीं जा सकता। अतः आइवे टीड के अनुसार "यदि मिट्टी अथवा रंगों से बनी कृति कलाकृति है यदि

स्वरों के आपसी संगुफन के उतार-चढ़ाव को संगीत कहते हैं यदि शब्दों और भावों के संचयन का नाम साहित्य है—और ये सभी ललित कलाएँ हैं तो हम उस क्रम को भी ललित कला की संज्ञा देने का पूरा अधिकार है जो व्यवस्था सम्बन्धी क्षेत्र का, सार्थक ढंग से व्यक्तियों और अलग-अलग समूहों के निकट लाता है।[1]

लोक प्रशासन सामाजिक विज्ञान के रूप में

लोक प्रशासन एक कला होते हुए भी एक विज्ञान है, और यह प्रश्न प्रायः अधिक विवादास्पद है। लोक प्रशासन को सामाजिक विज्ञान के रूप में नकारना पूर्णतः भ्रामक और गलत होगा। इसकी वैज्ञानिकता को सिद्ध करने के लिए यह देखना होगा कि विज्ञान और वैज्ञानिकता क्या है।

विज्ञान एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जिसकी तकनीक भी विशेष हो सकती है। सभी ज्ञानों को मोटे रूप में तीन समूहों में बाटा जा सकता है। एक पदार्थ का ज्ञान जिसे पदार्थ विज्ञान (Natural Science) कहा जाता है। दूसरा मानव जीवन का ज्ञान जिसे मानविकी (Humanities) कहते हैं। तीसरा सामाजिक ज्ञान, जिसे समाज विज्ञान (Social Science) की संज्ञा दी जाती है। एक विज्ञान में मुख्य रूप से तीन विशेषताएं होती हैं—(1) वह ज्ञान का एक व्यवस्थित भण्डार होता है (2) उसके परिणाम अथवा निष्कर्ष सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं शाश्वत होते हैं, तथा (3) उसकी अध्ययन विधि परिमाणात्मक एवं निश्चयात्मक होती है। यह उल्लेखनीय है कि कोई भी विज्ञान अपनी पूर्णता में शत प्रतिशत विज्ञान नहीं होता किन्तु वह अपनी वैज्ञानिकता को निरन्तर प्रयोग द्वारा बढ़ा सकता है।

वैज्ञानिक निष्कर्षों में कुछ विशेषताएं आवश्यक मानी जाती हैं जैसे—सार्वभौमिकता, सार्वकालिकता, भविष्यवाणी करने की क्षमता, निश्चितता, प्रदर्शनशीलता, मूल्य-तटस्थता, सृजनशीलता और परिमाणात्मकता। इस प्रकार के निश्चयों तक पहुंचने के लिए विज्ञान जिस विश्लेषण-पद्धति का अनुकरण करता है उसे वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं और इस वैज्ञानिक पद्धति में मुख्य चरण होते हैं—अवधारणा, निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, सत्यापन, पुष्टिकरण, संग्रहीकरण आदि। इस तरह विज्ञान सार रूप में नवीनता की निरन्तरता के साथ तटस्थतापूर्वक की गई शोध है। चांद के धरातल पर चट्टानें हैं यह निष्कर्ष भी वैज्ञानिक है और जिस पद्धति से यह निकाला गया है वह भी वैज्ञानिक है। औरंगजेब सन् 1707 में मरा यह निष्कर्ष भी कुछ अंशों में वैज्ञानिक है पर उतना वैज्ञानिक नहीं जितना चन्द्रतल पर चट्टानों का पाया जाना। चिकित्सा विज्ञान आज भी मनुष्य की मौत या इलाज के बारे में वैसी भविष्यवाणी नहीं कर सकता जैसी अपोलो के ग्राउण्ड कण्ट्रोल के वैज्ञानिक कर सकते हैं। फिर भी चिकित्सा कम वैज्ञानिक नहीं है।

1 O dw y T ad Art of P bl Adm ist ti

इस प्रकार कोई भी सामाजिक विज्ञान उतना सुनिश्चित नही हो सकता जितना भौतिक विज्ञान। यथार्थता और पूर्वानुमान की क्षमता जितनी भौतिक विज्ञान म पाई जाती है उतनी सामाजिक विज्ञान म नही। सामाजिक विज्ञान को अपने तत्वो पर इतना अधिक नियन्त्रण प्राप्त नही होता कि वह उन्हें जिस प्रकार चाहे प्रयोग कर सके। राजनीति विज्ञान मे ऐसा कोई सुनिश्चित सिद्धान्त नहीं है जिसका अनुसरण कर निरपवाद रूप से क्रान्तियो को टाला जा सके अथवा निर्वाचनो म बहुमत प्राप्त किया जा सके। लोक प्रशासन के पास भी एसा कोई पूर्ण निश्चित सिद्धान्त नही है जिनके द्वारा सत्त्व इच्छानुसार परिणाम निकाला जा सके। यही कारण है कि प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता और उसक समथक लोक प्रशासन को अथवा अन्य सामाजिक अध्ययन को विज्ञान मानने स इन्कार करत हैं। इसके विपरीत सामाजिक अध्ययन का विज्ञान मानने वाला का तक है कि पूर्ण निश्चितता और यथार्थता विज्ञान की सच्ची कसौटी नही है बल्कि किसी भी अध्ययन की वैज्ञानिकता मूलत इस बात पर निभर है कि वह अध्ययन म किस सीमा तक वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग कर सकता है। जिस किसी भी अध्ययन म वैज्ञानिकता पद्धति का प्रयोग सम्भव है उसे विज्ञान कहा जायगा। निश्चय ही वह भौतिक विज्ञान की भाति सुनिश्चित विज्ञान न होकर सामाजिक विज्ञान अथवा बहुत कुछ अनिश्चित विज्ञान की श्रेणी म आएगा। सामाजिक विज्ञाना की विषयवस्तु मानव है और यद्यपि मानव-स्वभाव का विश्लेषण करना उतना सरल नहीं है जितना भौतिक पदार्थों का तथापि मानव-स्वभाव क बारे म भी मोट तौर पर कुछ सावजनिक निष्कष निकाल जा सकत हैं। यदि ऐसा न होता तो सामाजिक व्यवहार का वतमान समूचा आधार ही समाप्त हो जाता। आशय यह है कि मानव स्वभाव का और इसी कारण प्रशासकीय व्यवहार का भी वैज्ञानिक रूप म वर्गीकरण तथा अध्ययन सम्भव है और उसक बारे म सामान्य निष्कष निकाल जा सकत है चाहे वे भौतिक विज्ञान के सूत्रो की भाति शत प्रतिशत सही न हो तथापि सभावनाओ के रूप म उनकी उपयोगिता स इकार नही किया जा सकता।

लोक प्रशासन को समाज विज्ञान मानत समय यह प्रश्न उठता है कि निष्कष एव पद्धति की दृष्टि स वह कितन अश तक वैज्ञानिक है अथवा वैज्ञानिक हो सकता है। एक समाज विज्ञान होन क कारण यह तो मानकर चलना होगा कि वह भौतिक शास्त्र या रसायनशास्त्र नहीं बन सकता किन्तु यह कहना भी सही नहीं है कि उसके निष्कष और नियम उतन ही अराजकतावादी हैं जसे—पिकासो की चित्रकला। लोक प्रशासन क सारे लेखक इस दृष्टि स तीन विचार-वर्गों म बाँट जा सकत ह। कुछ लोग तो यह मानत हैं कि लोक प्रशासन विज्ञान ह ठीक ऐसा ही जसे बहुत से प्राकृतिक विज्ञान ह और परसन, बर्नार्ड तथा विधन इस दृष्टिकोण क समथक हैं। दूसरे कुछ लेखक जिनम वाल्डो और वालास प्रमुख हैं मानते हैं कि

लाक प्रशासन कभी विज्ञान नहा बन सकता। इस बारे म सार प्रयास निरर्थक है। तीसरे विचार वग म आज के अधिकतर लखक आत हैं जिनका मान्यता है कि हम विज्ञान नहीं है लकिन हाकर रहग और यह सम्भव ह। क्योंकि टेलर साइमन फिफ्नर रिग्ज आदि लेखको ने अपनी इस मान्यता के लिए कवल तर्क ही नही दिए है अपितु वज्ञानिक शोधा म लोक प्रशासन का पहले स अधिक वज्ञानिक बनाया है।

पहला विचार-वग यह मानता है कि विज्ञान एक सापेक्ष स्थिति ह। जन्तु विज्ञान और वनस्पति विज्ञान रसायन शास्त्र कभी नही बन सकत किन्तु तुलना के आधार पर वनस्पति विज्ञान को नकारना न उचित है और न सम्भव है। लोक प्रशासन की भी एसी ही सापक्ष स्थिति है। इसके अपने सिद्धान्त हैं सद्धान्तिक वज्ञानिक प्रणाली है। विभिन्न क्षेत्रो म प्रयाग हो रह हैं। यह एक निरीक्षणात्मक सामाजिक विज्ञान है और बयड क शब्दा म यह इस प्रकार क अनुभूत नियमा को सग्रहीत कर चुका है जो व्यवहार म सही हैं और भविष्यवाणी की क्षमता रखत हैं। इस विचार वग के तक हैं कि हम एक अधविकसित विज्ञान हैं। वज्ञानिक अवधारणा लाक प्रशासन की दुनिया म तजी से प्रविष्ट हा रही ह। है और चाहिए दोना की हा दृष्टि स लाक प्रशासन म आशातीत प्रगति हुइ है।

लाक प्रश सन को विज्ञान न मानन वाला दूसरा विचार-वग अधिकतर वहा तक दता ह जा अधिकतर सभी समाज विज्ञाना के विरुद्ध दिए जा सकते हैं। इन लखका का कहना ह कि—(1) लोक प्रशासन का क्षेत्र इतनी विविधताए लिए हुए है कि वज्ञानिक पद्धतिया इसम प्रयुक्त ही नहा हा सकता। (2) यदि लाक प्रशासन न कुछ वज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित कर भी लिए हा तो न उन पर सहमति हो सकेगी और न व प्रयाग म ही आ सकग। (3) लोक प्रशासन अपन आपको मूल्या से कभी स्वतन्त्र नहा कर सकेगा और चाहिए विज्ञान अपन आप म आत्मविरोध ह। (4) जस जसे लाक प्रशासन विकसित हागा सामाजिकता के अबौद्धिक आचरण उस वज्ञानिकता का दुनिया स उतनी ही दूर ल जायेंगे। कुल मिलाकर इन लोगा का तर्क है कि लोक प्रशासन क निष्कष अवज्ञानिक हैं और इसका पद्धति म भी वज्ञानिकता नहीं है। दूसरे शब्दा म लोक प्रशासन की दुनिया म सिद्धान्त अव्यावहारिक हैं और व्यवहार कभी सिद्धान्त क अनुरूप नहीं हाता। अत वज्ञानिकता का सारा उपक्रम एक निष्फल चेष्टा है जिसका परिणाम तुच्छताओं पर धन शक्ति और स्रोतो का अपव्यय करना हागा।

जा लाग तीसरे विचार-वग म आत हैं व आशावादी कमठ एव उद्यमशील समाज-वज्ञानिक ह। इन लागा का कहना ह कि हम निकट भविष्य म विज्ञान इस लिए बनन जा रहे हैं कि—

(1) लाक प्रशासन क पास आज अध्ययन क नए यन्त्र आत जा रह है जिसस हमारी परीक्षण विधिया अधिक प्रभावी बन सकेंगी। जिस तरह चन्द्र यात्रा आज

इसलिए सम्भव बन सकी है कि ग्रास्ट्रो फिजिक्स के पास कम्प्यूटर जैसे विलक्षण यन्त्र हैं। लोक प्रशासन म पिछले पच्चीस वर्षों म जो शोधकार्य हुआ है उसने इस अध्ययन को नये यन्त्र प्रदान किए हैं।

2. यदि हम आज के लोक प्रशासन साहित्य की तुलना उन शोध निष्कर्षों स करें जो ह्वाइट और विलोबी के आरम्भिक ग्रन्थों म प्रतिपादित किए गए हैं तो मालूम होगा कि वैज्ञानिकता की दिशा म हम काफी बढ चुके हैं। हरबर्ट साइमन की पुस्तक Administration Behaviour और Models of Men ऐसे शोध ग्रन्थ हैं जिनमे लोक प्रशासन की वैज्ञानिक अध्ययन विधि और वैज्ञानिक निष्कर्ष स्पष्टता एव निश्चितता से निखरे हैं।

3. प्राकृतिक विज्ञानों की दुनिया म ज्ञान और शोध की जो अन्तर्निर्भरता बहुत पहले स चली आ रही है आज सामाजिक विज्ञानों म भी पैदा होने लगी है। समाज शास्त्र मनोवैज्ञानिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त आज लोक प्रशासन के परिणामों और प्रयोगो म सहायक सिद्ध हो रहे हैं। जैसे जैसे यह बहुअध्ययनवादी दृष्टिकोण (Multi-disciplinary approach) विकसित होता है लोक प्रशासन के ज्ञान की गहनता विश्वसनीयता एव मौलिकता बढती है। यह मान्यता तर्कसंगत प्रतीत होती है कि समाजशास्त्र स अपनी वैज्ञानिक प्रणाली उधार लेकर लोक प्रशासन अधिक शीघ्र अपनी वैज्ञानिकता का विकास कर सकेगा।

सभी विज्ञान विकास की प्रणाली स ज्ञान-सचय करते हुए अपनी आज की वैज्ञानिकता के स्तर पर आए हैं। अभी हाल के प्रयोग परीक्षण एव नवीनताओं ने लोक प्रशासन के अध्ययन शास्त्र को अभूतपूर्व ढग स प्रगतिशील बनाया है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक सिद्धान्तशास्त्रियों की भाँति आज लोक प्रशासन शास्त्रियों का दल आगे आ रहा है। शोध के नए नए माडल (Model) आविष्कृत किए जा रहे हैं और गणितीय पद्धति स परिमाणात्मक अध्ययन बहुत कुछ आगे बढ हैं। Field Research के क्षेत्र म माइक्रो और मैक्रो अध्ययन विकसित हुए हैं और प्रबन्ध तकनीक (Management Technique) की दिशा मे तो Work Study Methods Study PERT Systems Analysis Linear Programming आदि विस्मयकारी वैज्ञानिक तकनीक प्रकाश म आई हैं जिनके कम्प्यूटरी प्रयोग स अकगणित और बीज गणित जैसे समीकरण बनने लगे हैं। आज का लोक प्रशासन विशेषत डाक्टर अथवा इन्जीनियर की तरह एक सलाहकार (Consultant) बन चुका है। गत तीन दशाब्दियों की लोक प्रशासन की प्रगति और उसके अध्ययन की दिशा इतनी उत्साहवर्धक है कि तकनीक और अध्ययन विधियों की दृष्टि से लोक प्रशासन अन्य सामाजिक विज्ञानों के समकक्ष आ चुका है और शायद शीघ्र ही आगे निकल जाएगा। अध्ययन विधि की वैज्ञानिकता निष्कर्षों को अपने आप ही अधिक वैज्ञानिक बनाती है और इस तरह भविष्य म वह दिन समीप लगता है जब

लोक प्रशासन के क्षेत्र मे साइमन रिग्ज वीडनर ला स्वल्लार सायस आदि के अनुयायी अपनी इन शोधो को आगे बढ़ाते हुए लोक प्रशासन को एक प्राकृतिक विज्ञान का स्तर दिलवा सकें और सामाजिक ज्ञान होते हुए भी लोक प्रशासन प्राकृतिक ज्ञान जैसा लगने लगे।

लोक प्रशासन का महत्त्व
(Importance of Public Administration)

वर्तमान समय मे लोक प्रशासन व्यावहारिक रूप म हमारे समस्त जीवन और कार्यों पर छा चुका है। यह हमारी सभ्यता का मूल आधार बन गया है। लोक प्रशासन आधुनिक सभ्य समाज का अंग है। इसने राज्य के उस स्वरूप ने जन्म लिया है जिसको हम प्रशासकीय राज्य की संज्ञा देते हैं। समाज की नयी या चुनौतियां लोक प्रशासन पर नए नए उत्तरदायित्व डाल रही हैं अत लोक प्रशासन आज समाज की एक गतिमान शक्ति बन चुका है। इसका प्रशासको के लिए महत्त्व है समाज के लिए महत्त्व है छात्रो के लिए महत्त्व है और हमारी सभ्यता के लिए महत्त्व है। यह ठीक ही कहा गया है कि आधुनिक औद्योगिक एव नगरीय सभ्यता की जटिलताओ ने राज्य के कार्यों म कल्पनातीत वृद्धि कर दी है अब आज हम एक ऐसी अवस्था मे पहुच गए हैं जहाँ समाज के लगभग सम्पूर्ण जीवन का प्रबंध राज्य के हाथों म आ गया है। समाज का हित अधिकाधिक मात्रा म शासन प्रबंध की कुशलता पर निर्भर होता जा रहा है और अब व्यक्तियो के अलग अलग कार्यों पर निर्भर नहीं रहा है। यह शासन प्रबंध ही लोक प्रशासन है। यदि लोक प्रशासन असफल हो जाए तो आधुनिक समाज और सभ्यता का समूचा महल बालू की भांति ढह जाएगा। चा स ए बयड ने ठीक ही लिखा है कि प्रशासन के विषय से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई विषय नहीं होता। सभ्य शासन तथा मेरे विचार से स्वय सभ्यता का भविष्य भी हमारी इस क्षमता पर निर्भर करता है कि हम एक सभ्य समाज के कार्यों की पूर्ति के लिए एक कुशल प्रशासकीय दर्शन, विज्ञान और व्यवहार का विकास कर सकें। प्रो डानहम ने तो यहाँ तक कहा है— यदि हमारी सभ्यता असफल हुई तो उसके लिए प्रशासन की असफलता प्रमुख रूप से उत्तरदायी होगी।

लोक प्रशासन की बहुमुखी उपयोगिता और इसके महत्त्व का विवेचन अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नानुसार करना उपयुक्त होगा—

(1) प्रशासन राज्य के स्वरूप का एक विशिष्ट भाग—पहले की अपेक्षा वर्तमान समय म राज्य के कार्य अधिक जटिल हो गए हैं जिसके परिणाम के रूप म राज्य की विभिन्न नीतियों का सामजस्य के साथ व्यवहार मे लाने के लिए प्रशासकीय विज्ञान के रूप म स्वतन्त्र चिंतन की आवश्यकता भी विकसित हुई। राज्य के कार्य क्षेत्र के अनुरूप प्रशासकीय विज्ञान ने राज्य को समाज सेवा का उचित मार्ग

दिखलाया। समय-समय पर राज्य अपनी समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न में विभिन्न प्रयोग करता रहा। ये प्रयोग प्रायः अनजाने में ही प्रशासकीय विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त बन गए और जब जिस तरह से राज्य के विभिन्न अंग व्यवस्थापिका कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका आदि की विवेचना होती है उसी तरह से प्रशासकीय भाग की भी विवेचना होती है। प्रशासन भी राज्य के स्वरूप के विशिष्ट भाग के रूप में स्वीकृत है। यह प्रशासकीय विज्ञान की मान्यता का ही परिणाम है कि प्रशासन के कार्य में संलग्न व्यक्तियों को योग्यता के अनुसार चुना जाता है।

(2) लोक प्रशासन का व्यक्ति के लगभग सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्ध—आज लोक प्रशासन ने व्यक्ति और समाज के सम्पूर्ण जीवन को आच्छादित कर लिया है। एक विद्वान् लेखक के शब्दों में— आधुनिक समाज में पालने से लेकर चिता तक जीवन के प्रत्येक मोड़ पर व्यक्ति लोक प्रशासन से सम्बन्धित रहता है। सत्य तो यह है कि गर्भवती महिलाओं की सुरक्षा की व्यवस्था करके लोक प्रशासन व्यक्ति के जन्म से पहले से ही उसमें रुचि लेने लगता है तथा उसकी मृत्यु के बाद तक उसमें रुचि लेता रहता है जैसे वह उसकी मृत्यु का सरकारी अभिलेख में उल्लेख करता है उसके अवयस्क बच्चों की देख रेख भी करता है। जन्म होते ही उसका उल्लेख सरकारी अभिलेख में कर दिया जाता है प्रसव तथा बाल कल्याण केन्द्र में बच्चे के जीवन के प्रारम्भिक कुछ सप्ताहों तक उसकी माँ तथा उसके स्वयं के जीवन की देख भाल रखी जाती है तथा उसके बाद टीका लगाने वाला सरकारी कर्मचारी उसका टीका लगाता है। जब बालक कुछ वर्ष का हो जाता है तो वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा संचालित विद्यालय में जाता है। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् वह अपना जीवन व्यवसाय आरम्भ करता है। बहुत से लोगों को लोक सेवाओं में रोजगार प्राप्त होने की सम्भावना रहती है तथा अन्य लोग व्यापार उद्योग अथवा अन्य किसी व्यवसाय का आश्रय लेते हैं। इन सब व्यवसायों पर राज्य किसी न किसी रूप में नियन्त्रण करता है। हमारे भोजन और जल की शुद्धता हमारे चारों ओर की स्वच्छता हमारी सड़कों की अच्छी दशा गैस व बिजली आदि की व्यवस्था का दायित्व स्थानीय अधिकारियों पर रहता है। करदाता की हैसियत से तथा लोक प्रशासन द्वारा जुटाई जाने वाली अनेक वस्तुओं और सेवाओं के उपभोक्ता के रूप में हम में से प्रत्येक व्यक्ति उससे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। जब हमारे ऊपर बेरोजगारी अभाव प्राकृतिक संकट महामारी तथा युद्ध आदि का प्रकोप होता है तो हम लोक प्रशासन से सहायता की अपेक्षा करते हैं। वास्तव में यह कल्पना नहीं की जा सकती कि यदि लोक प्रशासन से प्राप्त सुविधाएं और संरक्षण समाप्त हो जाए तो हमारे जीवन की क्या स्थिति हो। इतना तो निश्चित है कि वह सभ्य जीवन की अवस्था नहीं होगी।

(3) प्रशासकों के लिए महत्त्व—राज्य के कार्यों को चलाने का भार प्रशासकों पर है। प्रशासक राज्य के विविध कार्यों को तभी सफलतापूर्वक सम्पन्न

कर सकते हैं जब उन्हें प्रशासन का समुचित ज्ञान हो। लोक प्रशासन उन्हें यह ज्ञान प्रदान करता है। लोक प्रशासन के गम्भीर अध्ययन से वे यह सीख पाते हैं कि प्रशासनिक कठिनाइयों का सामना कैसे किया जाए, प्रशासनिक नीतियों में समन्वय कैसे बनाया जाए, कर्मचारियों को अनुशासन में कैसे रखा जाए। संचार साधनों को प्रभावशाली कैसे बनाया जाए आदि। लोक प्रशासन प्रशासकों को नेतृत्व का गुण सिखाता है। यह प्रशासकों और कर्मचारियों के बीच मानवीय सम्बन्धों की स्थापना का पाठ पढ़ाता है। यह प्रशासकों को प्रशासनिक सिद्धान्तों का ज्ञान देता है अतः वे प्रशासक कुशल बन पाते हैं।

(4) नीति को व्यावहारिक जामा पहनाने वाले यन्त्र—यह मानकर कि प्रशासन नीति का अनुगामी होता है इसके वर्तमान महत्त्व का कम सही ही अनुमान लगा सकते हैं। नीति केवल साधारण नियमों की रूप रेखा प्रस्तुत करती है किन्तु लोक प्रशासन सामाजिक आवश्यकता और आर्थिक बचत की दृष्टि से एक निर्णय लेता है जिससे नीति को व्यावहारिकता प्राप्त होती है उसमें बदलती हुई परिस्थितियों उपकरणों आदि के अन्तरों का प्रशासन अपने कौशल से सम्भावना करता है यदि वे ऐसा न करें तब या तो नीतियाँ असफल होंगी अथवा प्रत्येक समस्या के लिए नीति निर्धारण के स्तर पर लौटकर पुनः विवेचना करना आवश्यक होगा—ऐसा करने से समय धन तथा श्रम का अपव्यय ही अधिक होगा। अपने इस स्वरूप के लिए प्रशासन में योग्य निर्देशन का महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्रशासन समाज से सीधा सम्बन्ध रखता है समाज परिवर्तनशील है इसलिए प्रशासन में भी इतना लचीलापन होना चाहिए कि वह समय के अनुरूप चल सके समय के अनुरूप सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की दृष्टि से लोक प्रशासन को ढालते रहना चाहिए क्योंकि राज्य के अन्य अंगों की जनता से इस प्रकार का दैनिक सम्बन्ध नहीं है। व्यवस्थापिका में जनता के प्रतिनिधियों के रहने के बाद भी यह कार्य उसके लिए आसान नहीं रहता है क्योंकि उन्हें प्रशासकीय तकनीक की जानकारी उचित रूप से नहीं रहती इसलिए प्रशासन स्वयं जनता की अभिरुचि और उसके होने वाले परिवर्तनों और आवश्यकताओं का मूल्यांकन करता है। अपने कार्यों के प्रति जनता की क्या प्रतिक्रिया है इसे जानने के लिए वे विशेष प्रयत्नशील रहते हैं।[1] जनतान्त्रिक उद्देश्यों को जनता तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से प्रशासन का ही होता है राज्य का जनतान्त्रिक स्वरूप राज्य की नीतियों में परिलक्षित अवश्य होता है किन्तु वास्तविक जनतान्त्रिक उपलब्धि प्रशासन के द्वारा ही होती है।

(5) सामाजिक व्यवस्था स्थिरता और प्रगति की महान शक्ति—लोक प्रशासन सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक स्थिरता बनाए रखने में भारी योग

1 F M Marx Elements of Public Administration p 72

देता है। आज क युग म भोजन जल प्रकाश वस्त्र निवास जसी प्राथमिक आवश्यकताओं की व्यवस्था कुशलतापूवक तभी सम्भव है जबकि लोक प्रशासन सचेत रहे। लोग आज जीवन के सभी क्षेत्रो म लोक प्रशासन की सहायता के आकाक्षी हैं। इस प्रकार यह आज के युग की सामाजिक व्यवस्था का अन्तरग भाग बन चुका है। समाज को स्थिरता और दृढता प्रदान करने वाली यह एक प्रमुख शक्ति है। सामाजिक जीवन म परिवतनो और उथल पुथल का चक्र चलता रहता है। जातिय आदि के कारण सामाजिक व्यवस्था बिगडती दिखाई देती है। सरकारें आए दिन बदलती रही हैं लेकिन इन सब परिस्थितियो म शासन का ढाँचा समाज को स्थिरता प्रदान करता है। लोक प्रशासन पुरातन और नवीन क बीच समुचित समन्वय स्थापित करता है। इस प्रकार यह समाज का बिखरन स बचाता है। लोक प्रशासन सामाजिक व्यवस्था और स्थिरता लाकर सामाजिक प्रगति क लिए सुदृढ आधारभूमि तयार करता है। यह सामाजिक प्रगति के स्वस्थ कारको को प्रोत्साहन देता है। लोक प्रशासन की कुशलता के फलस्वरूप आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र म उन्नति के नए-नए मार्ग खुलते रहते हैं बाधाओं का निराकरण होता रहता है। इसमे सन्देह नहीं कि एक कुशल और स्वस्थ लोक प्रशासन सामाजिक प्रगति का मापदण्ड है।

(6) सामाजिक परिवतन की प्रेरक शक्ति—लोक प्रशासन स्वस्थ सामाजिक परिवतनो को प्रेरणा देता है। सर जोशिया स्टेम्प क अनुसार प्रशासकीय कमचारी समाज का प्रेरणा देने वाले स्रोत हैं। व हर स्तर पर उसका माग दशन करते हैं उसे प्रोत्साहन और परामश देते हैं।

(7) समस्याओं के समाधान मे सहायक—लोक प्रशासन का सम्बन्ध विभिन्न कार्यों और समस्याओं को हल करने से है ताकि निर्धारित लक्ष्य पूरे हो सकें। समस्याओं क समाधान म जागरूक रहने के फलस्वरूप ही लोक प्रशासन अपने महत्त्व को बनाए रखता है। क्या हम इस दृष्टि से लोक प्रशासन के ऋणी नहीं हैं कि वह बेरोजगारी के निदान और आर्थिक समस्याओं के समाधान क प्रति सदव उत्सुक रहता है।

(8) स्थायी सेवा सगठन—सरकार चाहे उसका राजनीतिक स्वरूप कुछ भी हो सदव परिवतनशील है। इसक विपरीत लोक सेवक अर्थात् लोक प्रशासन के कमचारी स्थायी सगठन क अग होते हैं अत सरकार की परिवतनशीलता से उत्पन्न कु प्रभावो से वे प्रशासन मे व्यवस्था नहीं आने देते। वे न केवल सेवा के लक्ष्य को पूरा करते हैं बल्कि वास्तविक सेवा कार्यों को सम्पन्न करते हैं।

(9) अधिकारी और प्रभुता के बीच समन्वय लाने वाली शक्ति—लोक प्रशासन का म हत्त्व इस दृष्टि से भी है कि यह अधिकारी और प्रभुता के बीच समन्वयकारी शक्ति है। राज्य की प्रकृति अपनी सत्ता को अधिकाधिक बढाने और

प्रदर्शित करने की होती है। लोकतान्त्रिक मान्यताओं ने राज्य की प्रभुसत्ता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है लेकिन राज्य की असीमित शक्ति नागरिकों के लिए स्वतन्त्रता का खतरा भी हो सकती है। लोक प्रशासन प्रभुसत्ता के निरंकुश सिद्धान्त और नागरिक अधिकारों के बीच उचित समायोजन करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। वह पारस्परिक विरोधों को कम करके सहयोग के तत्वों को प्रबल बनाता है।

(10) छात्रों के लिए उपयोगिता—लोक प्रशासन का अध्ययन छात्रों के लिए तो बहुत ही उपयोगी है। छात्र ही देश के भावी नागरिक हैं। वे ही देश के भावी प्रशासक हैं। लोक प्रशासन का अध्ययन उन्हें सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करता है जिसका व्यवहार में उपयोग वे भविष्य में कर सकते हैं। इसके अध्ययन से छात्रों में उन गुणों को सीखने की प्रेरणा जाग्रत होती है जो प्रशासकों के लिए समाज सेवकों के लिए आवश्यक है।

(11) युद्धकाल में लोक प्रशासन का महत्त्व—आधुनिक युग समग्र युद्ध का युग भी है और आधुनिक युद्धों में देश की प्रतिरक्षा के लिए देश की सम्पूर्ण जनशक्ति और उसके समस्त साधनों का संगठन नियमन आवश्यक होता है। इस गुरुतर कार्य का दायित्व भी लोक प्रशासन के कन्धों पर है। शान्तिकाल में जो कार्य क्षेत्र निजी उपक्रम और प्रबन्ध के लिए छोड़ दिए जाते हैं युद्धकाल में उनमें से अनेक को लोक प्रशासन के अधीन कर लिया जाता है। द्वितीय महायुद्ध के समय यह भार प्रशासन पर डाल दिया गया था कि वह वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, वितरण और उपभोग तथा व्यापार एवं विनियोग के सामान्य मार्गों पर विभिन्न प्रकार के आवश्यक नियन्त्रण तथा परमिट व कोटा के नियम लागू करे।

(12) संस्कृति और प्रशासन का सम्बन्ध—संस्कृति एवं प्रशासन के पारस्परिक सम्बन्ध को मान्यता देते हुए बार्नेट ने लिखा है— प्रशासन को एक ऐसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार अथवा उपाय के रूप में निर्धारित किया जा सकता है जिसके माध्यम से विषय समाज में सभ्य मनुष्य अपनी संस्कृति को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है। कुछ अमेरिकी विद्वानों के मतानुसार उनका समाज आज प्रबन्धकीय क्रान्ति (Managerial Revolution) के दौर से गुजर रहा है। जेम्स बर्नहम के मतानुसार उन्नीयमान समाज (Emerging Society) का मुख्य गुण उसका प्रबन्धकीय स्वभाव है और प्रबन्धकों ने आधुनिक समाज पर एक प्रकार से अपना अधिकार अथवा नियन्त्रण स्थापित कर लिया है। एक अमरिकी मिनस्टर राल्फ फलण्ड्स ने तो यहाँ तक कह दिया है कि आधुनिक आर्थिक प्रणाली को पूँजीवाद के स्थान पर प्रबन्धवाद (Managerism) कहना अधिक उपयुक्त होगा।

आज यह लगभग सर्वमान्य मत है कि आधुनिक समाज में लोक प्रशासन की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है परन्तु इस महत्त्व की मात्रा के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। हरबर्ट फाइनर का मत है कि प्रशासकीय प्रक्रिया सर्वत्र पाई जाती है

और सभी व्यवसाय में उस सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है, अतः प्रशासन के वैज्ञानिक अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता है। पाल पिगोरस के मतानुसार प्रशासन का मुख्य काम समाज में यथास्थिति को बनाए रखना है जबकि इससे भिन्न ब्रुक्स एडम्स का विश्वास है कि प्रशासन का महत्व इसलिए है क्योंकि उसके माध्यम से सामाजिक परिवर्तन को सुगम बनाया जा सकता है। जे। जम्स बर्नहम का मत है कि प्रशासकों अथवा प्रबंधकों के हाथों में आज इतनी अधिक शक्ति आ गयी है कि हम उसके लिए प्रबन्धकीय क्रान्ति की संज्ञा देना उपयुक्त है। चार्ल्स ए. बियर्ड ने इस मत का समर्थन करते हुए कहा है कि प्रशासन को मानवीय प्रविधि (Human Technology) के विज्ञान की अभिव्यक्ति माना जाना चाहिए जिसके द्वारा मनुष्य ने जटिल वातावरण के साथ अपना अनुकूलन स्थापित किया है।

यह निष्कर्ष स्थापित करना सर्वथा उपयुक्त होगा कि लोक प्रशासन केवल वर्तमान सभ्य जीवन का संरक्षक ही नहीं है बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन और सुधार सम्पादन का एक शक्तिशाली अस्त्र भी है। लोक प्रशासन एक ऐसी गत्यात्मक शक्ति है जो जन इच्छा का अनुसरण करने के साथ-साथ उसका मार्गदर्शन भी करता है। लोक प्रशासन एक परोक्ष सत्ता ही नहीं है वरन् प्रत्यक्ष एवं सक्रिय शक्ति भी है जो आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के निवारण के लिए प्रयत्नशील है। भारत में लोक प्रशासन एक ऐसे समाजवादी समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील है जो क्षुधा और निर्धनता से मुक्त होगा जिसमें शिक्षा के अवसर सबको सुलभ होंगे जिसमें अस्पृश्यता का अन्त हो जाएगा स्त्रियों का पुरुषों के सामाजिक स्तर और अधिकार बराबर अवसर सुलभ होंगे एक व्यापक सर्वतोमुखी आर्थिक एवं सामाजिक विकास होगा तथा अवांछित विषमताओं के स्थान पर समानताओं और लोक कल्याण की प्रस्थापना होगी। हम यह नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिक राज्य के लक्ष्यों में मूलभूत परिवर्तन पैदा होने के फलस्वरूप लोक प्रशासन के उद्देश्यों में भी नूतन प्रवृत्तियों का उदय हुआ है और नवीन लोक प्रशासन समाज से निकटता पर अत्यधिक बल देता है तथा लोक प्रशासन और सामाजिक समस्याओं में प्रत्यक्ष और महत्वपूर्ण सम्बन्ध जोड़ता है। लोक प्रशासन आधुनिक सभ्यता का हृदय (Heart of Modern Civilization) है। यह समाज की एक अपरिहार्य स्थायी शक्ति है। लोक प्रशासन की असफलता का अर्थ है कि वर्तमान समाज और सभ्यता का सम्पूर्ण ढांचा बिखर जाना।

लोक प्रशासन और विकासशील समाज—
भारत के विशेष सन्दर्भ में
(Public Administration and Development Societies with Special Reference to India)

विकासशील समाजों के सन्दर्भ में लोक प्रशासन की भूमिका को यदि

क्रान्तिकारी की संज्ञा दें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। चुस्त दृढ़ उत्तरदायित्व पूर्ण जन-समस्याओं के प्रति जागरूक और प्रबल रूप में जन हित आकांक्षी है तो विकासशील समाजों की समृद्धि और प्रगति के द्वार खुलते जाएँगे और वे तेजी से विकसित समाजों की श्रेणी में आ खड़े होंगे। इन समाजों में लोक प्रशासन जितना ढीला होगा प्रगति की रफ्तार भी उतनी ही ढीली और विकसित समाजों की श्रेणी में आ खड़े होने का मार्ग भी उतना ही लम्बा होगा। विकासशील समाजों में गम्भीर आर्थिक राजनीतिक सामाजिक और प्रशासनिक समस्याएं विद्यमान हैं। राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है अतः बचत नहीं हो पाती। बचत न होने से पूंजी का वांछित निर्माण नहीं होता फलस्वरूप आर्थिक विकास के क्रियाकलाप गति नहीं पाते। प्रति व्यक्ति आय कम होने से देश में उपभोग की मात्रा कम होती है परिणामतः घरेलू बाजार का क्षेत्र सीमित रहता है अन्ततोगत्वा देश की अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। आय कम होने से बचत और पूंजी निर्माण को आघात पहुंचता है और माँग तथा उपभोग के कम होने से पूंजी विनियोग के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह पाता। लघु-पैमाने पर उत्पादन व्यय होने से बड़े उत्पादन की बचत सम्भव नहीं हो पाती। समुचित आर्थिक रचना का अभाव विभिन्न आर्थिक समस्याओं को विषम बना देता है। आर्थिक विकास अवरुद्ध होने से देश में बेरोजगारी की समस्या गुरुतर होती जाती है। विकासशील देश विभिन्न सामाजिक समस्याओं से भी ग्रसित रहते हैं यथा जनसंख्या में वृद्धि और जनसंख्या का निम्न गुणस्तर होना सामाजिक और संस्थागत बाधाएं तथा रूढ़ियां कुशल साहसियों का अभाव आदि। विकासशील देशों की प्रमुख राजनीतिक समस्याओं में हम राजनीतिक अस्थिरता नियोजन के प्रति उदासीनता श्रमिकों के शोषण व बन्धन आदि को ले सकते हैं। राजनीतिक अस्थिरता एक ओर तो आर्थिक सामाजिक विकास के लिए दृढ़ और स्थायी नीतियों को अवरुद्ध करती है दूसरी ओर राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को निर्बल बनाती है। विकासशील समाज प्रशासनिक दृष्टि से प्राय बहुत अकुशल अवैज्ञानिक और पिछड़े हुए होते हैं। देश की गरीबी और अशिक्षा जनता में चारित्रिक स्तर को ऊंचा नहीं उठने देती फलस्वरूप कुशल और ईमानदारी प्रशासनिक अधिकारियों की सदा कमी बनी रहती है और राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा निजी हितों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। भ्रष्टाचार का इतना बोलबाला रहता है और समाज में एक घुन लग जाता है। इसके अतिरिक्त प्राथमिकता की समस्या भी बनी रहती है। देश के सन्तुलित विकास के लिए विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता का क्रम देने की समस्या विद्यमान रहती है। इन विभिन्न समस्याओं के अतिरिक्त विकासशील देश या समाज और भी अनेक समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं।

इन समस्याओं के प्रकाश में विकासशील समाजों में लोक प्रशासन का महत्त्व और दायित्व स्वतः स्पष्ट है। एक कुशल सक्रिय और दूरदर्शी लोक प्रशासन इन समस्याओं के निदान में बहुत कुछ सहायक हो सकता है। लोक प्रशासन का काम नीतियों को अमली जामा पहनाना है। सरकार नीति निर्धारण कर देती है लेकिन इन नीतियों का क्रियान्वित करने का भार अन्ततोगत्वा लोक प्रशासकों पर होता है। यदि नीतियाँ कोरी कागजी रह जाए तो उनका कोई महत्त्व नहीं है यदि नीतियों का क्रियान्वयन ढीला ढाला होगा तो वाञ्छित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकेंगे हम लक्ष्य प्राप्ति से दूर रहेंगे और यदि नीतियों का क्रियान्वयन गलत ढंग से किया गया तो हम निश्चित रूप से पथभ्रष्ट हो जाएँगे। दूसरी ओर यदि लोक प्रशासन नीतियों को सही रूप में लागू करता है प्रभावी ढंग से उन्हें अमली जामा पहनाता है जनता को नीतियों के प्रति विश्वास में लेकर आगे बढ़ता है तो सभी चुनौतियों और समस्याओं का मुकाबला करते हुए देश और समाज तेजी से आगे बढ़ता है। इस प्रकार विकासशील समाजों में समृद्धि और प्रगति की वास्तविक कुञ्जी लोक प्रशासन के हाथ में है।

विकासशील समाजों में लोक प्रशासन की भूमिका को हम अधिक स्पष्टता के साथ निम्न बिन्दुओं में समाहित कर सकते हैं—

(1) विकासशील समाजों में प्रशासन का मुख्य काम आर्थिक जीवन को नियमित और नियन्त्रित करना है। वह श्रमिकों के सम्बन्धों को इस प्रकार नियमित करता है कि मालिक श्रमिकों का शोषण नहीं कर सकेगा। सरकार नीति बना देती है किन्तु प्रशासक उस नीति को लागू करते हैं। उपभोक्ताओं के हित में एकाधिकारियों के कार्यों पर अंकुश रखा जाता है। हानिकारक तथा अस्वास्थ्यकर वस्तुओं के उपयोग को नियन्त्रित किया जाता है तथा आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की व्यवस्था की जाती है।

(2) भारत जैसे विकासशील देश अथवा समाज में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है अतः सार्वजनिक उपक्रमों का प्रभावी प्रशासन लोक प्रशासन का एक गुरुतर दायित्व है। सार्वजनिक उपक्रमों से आशय उन औद्योगिक संस्थाओं से है जिन पर राज्य का स्वामित्व होता है और जिनका प्रबंध व संचालन राजकीय प्रशासन द्वारा किया जाता है। लोक प्रशासन को सार्वजनिक उपक्रमों सम्बन्धी नीति का ध्यान रखते हुए यह देखना होता है कि अर्थव्यवस्था के सर्वोत्तम शिखरों पर प्रभावी नियन्त्रण रह सके एवं वाणिज्यिक अधिशेष उपलब्ध हो सके जिससे आगे आर्थिक विकास के लिए धन मिल सके। सार्वजनिक उपक्रमों के मुख्यतः चार रूप प्रचलित हैं—विभागीय उपक्रम सार्वजनिक निगम सार्वजनिक कम्पनियाँ एवं बोर्ड द्वारा प्रबंध। इन विभिन्न प्रकार की संस्थाओं में नीति और ढाँचे के अनुरूप लोक प्रशासन अपनी भूमिका निभाता है।

( ) विकासशील समाजों में यह और अधिक आवश्यक है कि लोक प्रशासन चुस्त कर्त्तव्यपरायण और सक्रिय बना रहे। विकासशील देशों की अपनी अलग अलग समस्याएं हैं अतः विकसित देशों की तुलना में लोक प्रशासन का दायित्व इन देशों में अधिक है। यह आवश्यक है कि प्रशासकीय अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ सम्भागीदारी का व्यवहार करें उन्हें अपनी टीम का साथी मानकर चलें। यह आवश्यक है कि लोक प्रशासन दक्षता और अनुशासन का पूरा ध्यान रखे।

(4) विकासशील समाजों में आर्थिक नियोजन का सर्वोपरि महत्त्व है जिसका मूल उद्देश्य लोकतान्त्रिक और कल्याणकारी कार्यविधियों द्वारा तीव्र गति से प्रगति करना है और उस चुनौती का मुकाबला लोक प्रशासन को करना होगा। इसके लिए प्राय योजना आयोग और सम्बन्धित मशीनरी का गठन किया जाता है जो लोक प्रशासन का ही एक भाग है। आर्थिक नियोजन एक ऐसी चुनौती है तथा ऐसा प्रयोग है जिसकी सफलता असफलता पर न केवल भारत में बल्कि सम्पूर्ण एशिया और अफ्रीका में लोकतन्त्र का भविष्य टिका हुआ है। आर्थिक नियोजन सम्बन्धी सभी नीतियां को प्रभावकारी ढंग से लागू करना लोक प्रशासन का ही काम है। यदि लोक प्रशासन कर्त्तव्यच्युत और उदासीन है तो योजनाएं क्रियान्वित नहीं हो सकेंगी आर्थिक नियोजन का मूल उद्देश्य नहीं हो सकेगा और देश और समाज का पिछड़ापन बना रहेगा तथा सम्पूर्ण साधना का अपव्यय होगा।

(5) विकासशील समाजों में लोक प्रशासन को भावनात्मक रूप से जनता के निकट आकर जनता का विश्वास जीतना चाहिए। भावनात्मक कुण्ठा की गाँठ पड़ी रहने पर लोक प्रशासक अपनी भूमिका निवाह नहीं कर सकते। भारत में प्रशासन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पहले स्थिर हो चुका था किन्तु भावनात्मक रूप से स्वतन्त्रता के बाद जिन परिवर्तनों को आना चाहिए था वे अभी तक नहीं आ सके हैं। इसी का परिणाम है कि न तो प्रशासन जनता का विश्वास प्राप्त कर पाया है और न ही जनता प्रशासन को अपने हितों का व्यावहारिक रूप देने वाली संस्था के रूप में ही देखती है। दोनों के बीच में एक ऐसी दरार है जो प्रशासन के पूरे लाभ को उपलब्ध नहीं होने देती है। यह ठीक है कि पिछले वर्षों में जितनी सामाजिक सेवाओं का संगठन हुआ है उससे जनता की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास हो रहा है किन्तु इनकी कार्यप्रणाली में इतनी अधिक प्रक्रिया की जटिलता है कि ये वास्तव में जनता को अपनी सेवाएं देने में अभी तक असमर्थ हैं। प्रशासक वास्तव में एक जनसेवक है इस भावना में व्यावहारिकता की आवश्यकता है एवं प्रयत्नों की आवश्यकता है जिसमें जनता निर्भीक होकर प्रशासन से लाभ उठा सके यह सब क्रान्तिकारी परिवर्तन की अपेक्षा रखते हैं। प्रशासन की श्रृंखला में जगह जगह व्यक्तिगत और विभागीय स्तर पर भावनात्मक कुण्ठा की गाँठ पड़ी हुई है जिसने बिना आत्मसंतोष अथवा आत्मप्रशंसा के कोई भी ... नहीं होता है किन्तु

सामान्य रूप से होना चाहिए उत्तम पथ की दलीलें कार्यप्रक्रिया—प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा के द्वन्द्व चला करते हैं।

(6) भारत विकासशील देशों में अग्रणी है जहां पचायत राज की स्थापना और स्थानीय शासन के विस्तार के कारण लोक प्रशासन के प्रभाव और उत्तरदायित्व में काफी विस्तार हुआ है। संविधान के अनुसार स्वायत्त शासन को राज्य सूची में रखा गया है। ग्राम को शासन की इकाई माना गया है और यह निश्चित किया गया है कि प्रत्येक ग्राम पचायत की स्थापना राज्य सरकार का पवित्र कर्तव्य होगा। जनसख्या अभिवृद्धि के साथ साथ नगरीय ग्रामीण स्थानीय शासन का महत्त्व बढ रहा है और फलस्वरूप राज्य प्रशासन का महत्त्व भी। स्थानीय स्वायत्त शासन जन कल्याणकारी है और अपने सीमा क्षेत्र का उल्लघन न करें इसके लिए राज्य प्रशासन का नियन्त्रण और हस्तक्षेप आवश्यक है। लोक प्रशासन के नियन्त्रण और हस्तक्षेप की प्रवृत्ति इस प्रकार की होनी चाहिए कि जिससे पचायती राज सस्थाओं की कार्यकुशलता बढ सके वे स्वय को निष्क्रियता से मुक्त करें और जनता के धन का सदुपयोग करने के लिए प्रेरित हो। पचायती राज सस्थाओं में जनता के धन का अपव्यय न हो सके इसके लिए लोक प्रशासन का प्रभावी अकुश रखना अपेक्षित है। किसी भी प्रणाली में नियन्त्रण एव सन्तुलन की आवश्यकता सर्वमान्य है। सुरक्षा और बचाव की कुशल एव प्रभावशील पद्धति न केवल लोकतन्त्र तथा राष्ट्र के व्यापक हित की दृष्टि से ही अपितु पचायती राज सस्थाओं के हित में भी आवश्यक है। पचायती राज सस्थाएं प्रशासन के अविच्छिन्न अग के रूप में विकसित होनी चाहिए और राष्ट्रीय नीतियों तथा राज्य के सावैधानिक दायित्वों का इनके द्वारा पालन किया जाना चाहिए।

(7) *भारत जैसे विकासशील समाज में लोक प्रशासन को यह समझ कर चलना चाहिए कि आर्थिक विकास किसी भी व्यवस्था में समग्र विकास की दृष्टि से केवल साधन हो सकता है साध्य नहीं। विकास की समग्रता सामाजिक परिवर्तन की सार्थकता की अपेक्षा रखती है। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि योजनाबद्ध* आर्थिक विकास इस प्रकार से नियोजित किया जाए कि पूरा का पूरा समाज राजनीतिक आधुनिकीकरण के माध्यम से वाछित सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर हो सके। सामाजिक व्यवस्था राजनीतिक एव आर्थिक व्यवस्थाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण विकास तथा प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक परिवर्तन की लक्ष्य प्राप्ति इस दृष्टि से सम्पन्न हो सके कि आर्थिक विकास सार्थक बने और राजनीतिक आधुनिकीकरण व्यवस्था को अपने गन्तव्य की ओर ले जा सके। ये तीनों ही कार्य राजनैतिक व्यवस्था के सम्मुख नई चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं और प्रशासक को भी एक नया सन्दर्भ प्रदान करते हैं। इन लक्ष्यों की सम्प्राप्ति के लिए प्रशासन को भी यह समझना होगा कि चाहे उसकी सवैधानिक स्थिति कुछ भी हो उसका दर्शन उसका परिवेश तथा उसके तत्त्व पहले जैसे नहीं रह

सक्त । कल्याणकारी राज्य सामाजिक न्याय धर्म निरपेक्षतावाद समाजवाद और संविधान के प्रति प्रतिबद्धता आज लोक सेवा के दर्शन के रूप में भारतीय संविधान की आत्मा में अन्तर्निहित हैं । इसी प्रकार पचायती राज विरोधी दल चुनाव आयोग न्यायालयों की रिट व्यवस्था के परिवेश में भारतीय संविधान की जनतान्त्रिक सीमाएं चाहे प्रशासन को हस्तक्षेप लगे किन्तु इनका विद्यमान होना अनिवार्य है ।

(8) भारत जैसे विकासशील देश में प्रशासन में शासक मन्त्री और प्रशासकीय लोक सेवक के मध्य सम्बन्धों को इस प्रकार से विकसित करना होगा कि शासक दल के बदलते रहने से प्रशासकीय दक्षता एवं तटस्थता में कोई गम्भीर व्यवधान न पड़े । संसदीय व्यवस्था में यह तो मानकर ही चलना होगा कि विभिन्न प्रकार के विरोधी दल शासन में आयेंगे । उनकी बदलती हुई विरोधी नीतियों को क्रियान्वित करने में क्या इसकी तटस्थता एवं अनाम स्थिति राजनीतिक व्यवस्था को सह्य हो सकेगी । यदि तटस्थता जनतन्त्र अथवा विकास प्रशासन में सम्भव नहीं है तो क्या प्रतिबद्ध प्रशासन तन्त्र ही भारतीय प्रशासन के सम्मुख एक मात्र विकल्प है ? फिर प्रतिबद्धता भी कितनी और किसके प्रति ? इन प्रश्नों का समुचित उत्तर ही भारत में लोक प्रशासन की भूमिका का वधानिक परिसीमन कर सकेगा ।

(9) जनतन्त्र के बढ़ते हुए प्रसार ने भारत जैसे विकासशील समाज में समाजवाद एवं कल्याणकारी राज्य के नारे को शक्ति दी है । सामाजिक कल्याण तथा आर्थिक विकास के नए क्षेत्र विकास प्रशासन के नाम से उभर कर सामने आए हैं । इन क्षेत्रों के प्रशासन के लिए भारतीय लोक प्रशासन को व्यक्तिगत प्रशासन की कार्य कुशलता एवं उत्पादकता के साथ प्रतियोगी बनना पड़ेगा । पुरानी विभागीय पद्धति एवं नौकरशाही का तन्त्र चरमरा कर टूट रहा है और सार्वजनिक उद्यम (पब्लिक एन्टरप्राइज) के क्षेत्र में नए-नए प्रशासनिक प्रयोग किए जा रहे हैं । जनतन्त्र का यह समाजवादी दबाव भारतीय प्रशासन की रीति नीतियों एवं कार्मिक वर्ग आदि के प्रशासन में नई चुनौतियाँ लाता है । जनतन्त्र की माग है कि इस क्षेत्र का प्रशासन सार्वजनिक हित में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप संचालित किया जाए ।

(10) विकासशील समाजों में लोक प्रशासन को अपनी औपनिवेशिक कार्य प्रवृत्तियों से बाहर निकल कर जनतन्त्रात्मक चुनौतियों के बीच में कार्य करना से खेगा । इसके लिए उसे बदलते समाज की बदलती आकांक्षाओं के साथ समझौता करना होगा । चुने हुए प्रतिनिधियों राजनीतिक विरोधियों एवं उदासीन जनसाधारण के बीच रहते हुए उसे ऐसी भूमिका निभानी होगी जो सभी को सन्तुष्ट भी रख सके और साथ ही साथ व्यवस्था एवं विकास के प्रशासनों में तालमेल भी बिठा सके ।

(11) विकासशील समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं और लोक प्रशासन संक्रमण की चुनौती को तभी स्वीकार कर सकता है जबकि

सार्वजनिक लोक प्रतिमा सुधरे। जनता के साथ उसके वर्तमान शत्रुता अथवा कटुता के सम्बन्धों का यदि भारतीय प्रशासन ठीक करना चाहता है तो उसे अपनी कार्यकुशलता एवं जन सेवा का स्तर ऊँचा करना होगा। जनसाधारण प्रशासन को अपना मित्र केवल उसी स्थिति में स्वीकार कर सकता है जबकि उसका औपनिवेशिक स्वरूप एवं कार्य प्रणालियाँ जनतान्त्रिक उद्देश्यों की अनुरूपता में बदल।

(12) भारत जैसे विकासशील देश में विकास और आयोजना ने प्रशासन को आर्थिक प्रशासन और विकास प्रशासन (डवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन) के नए नए क्षेत्र दिए हैं। इन क्षेत्रों का प्रशासन एक ओर जबकि समाजवाद और सर्वधर्म की चुनौतियों के साथ जुड़ा है तो दूसरी ओर उसका राजनीतिक प्रशासन जनतन्त्रात्मकता के कारण काफी जटिल बनता जा रहा है। लोक प्रशासन को देश के राजनीतिक ढाँचे में रहते हुए नए क्षेत्रों की चुनौतियों का सामना करना होगा। सदियों में पिछड़े और रूढ़ियों से ग्रस्त विकासशील समाजों में लोक प्रशासन को सीमित निष्क्रिय अवस्था से निकल कर विशाल सक्रिय और विकासोन्मुख प्रशासन का रूप लेना होगा। लोक प्रशासन को ऐसा आकार और स्वरूप ग्रहण करने में सांविधानिक शक्तियों को सहयोग देना होगा। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि नए परिवेश के अनुसार लोक प्रशासन का उन्मुक्त किया जाए। जहाँ राजनेताओं को लोक प्रशासन का अनुप्रेरित करना है वहाँ यह भी आवश्यक है कि लोक प्रशासन राजनेताओं का सहयोगी एवं अनुगामी बने। जन प्रतिनिधियों को परामर्श देने के साथ साथ वह उनका आज्ञाकारी भी हो और जनतान्त्रिक के सभी उपायों के उत्तर में अनुशासित आचरण करे।

(13) विकासशील समाजों में बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ नई-नई समस्याएँ जन्म ले रही हैं और जब तक लोक प्रशासन सजग और प्रगतिशील नहीं होता तब तक इन समस्याओं का सामना नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ यदि पुलिस प्रशासन शिथिल और उदासीन है तो चोरियाँ डाकेजनियाँ हत्याएँ और विभिन्न प्रकार के अपराधों का बढ़ना स्वभाविक है। यदि पुलिस प्रशासन सजग कर्त्तव्य परायण और चुस्त है तो अपराधों पर प्रभावी रोक लग सकेगी और जनता में असुरक्षा की भावना नहीं पनपेगी।

इस प्रकार विकासशील समाजों में लोक प्रशासन के दायित्व गुरुतर हैं उनकी भूमिका अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि हम भारत को लें तो विगत कुछ दशकों में भारतीय राजनीति का एक ऐसा मंदम और संयोग रहा है कि प्रशासनिक विकास राजनीतिक विकास के साथ मेल नहीं खा सका है। एक ओर जनतान्त्रिक जागरण और विकास की आकांक्षाओं ने परम्परावादी प्रशासन के ढाँचे पर नए उत्तरदायित्व डाले हैं तो दूसरी ओर राजनीतिक दबावों के कारण बदलते हुए केन्द्र राज्य सम्बन्धों के तनाव ने प्रशासन को एक विषम स्थिति में [illegible] केन्द्र और राज्य दोनों ही स्तरों पर नीति निर्माण के

प्रश्न राजनीतिक निर्धारण के प्रश्न बने रहे हैं किन्तु फिर भी नीति और प्रशासन म किसी एक की महत्ता कम नहीं की जा सकी। जसे-जसे सरकार अधिक जटिल बनती जा रही है वसे वसे नीति निर्माण की प्रक्रिया म प्रशासनिक महत्त्व उतना ही बढ़ता जा रहा है। सांविधानिक तन्त्र पर जब भी कोई सकट आता है तो प्रशासन से नयी-नयी अपेक्षाए की जाने लगती हैं। राजनीतिक परिवतनों की आंधी म उसकी भमिका क विषय म नए नए दशन दिए जाते हैं किन्तु भारतीय प्रशासन स्वय अपनी सीमा रेखाए बनाने और पहचानने के प्रयास म दिग्भ्रमित सा लगता है। उसकी नयी भूमिका उसके सांविधानिक परिप्रेक्ष्य का एक सम्यक परीक्षण चाहती है। भारतीय प्रशासन को भारतीय सविधान म प्रस्थापित ससदीय जनतन्त्र और सघवाद परिप्रेक्ष्य म समझने एव विश्लेषित करने के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय प्रशासन की जनतन्त्रात्मक सीमाओ को पहचानते हुए केन्द्र राज्यों के बदलते हुए सघीय परिवेश म प्रशासन की भूमिका को मूल्यांकित किया जाए।

भारत मे लोक प्रशासन के अनुशासन का विकास
(Development of Discipline of Public Administration in India)

सदियो पुराने भारत के इतिहास म जिस प्रकार अनेक प्रकार के शासन और राजनीतिक व्यवस्थाए आई और गई उसी प्रकार उनके अपने प्रशासन और प्रशासनिक व्यवस्थाओ का उतार चढाव भी मिलता रहा। भारतीय इतिहास का हिन्दू युग जिस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से उन्नत और विकसित माना जाता है उसी प्रकार हिन्दू युग का प्रशासन भी भारतीय इतिहास का एक गौरवपूर्ण पृष्ठ है। मध्य युग म अलाउद्दीन खिलजी शेरशाह और अकबर जसे कुछ प्रसिद्ध नाम हैं जिन्होंने मुगलकालीन प्रशासन को स्थापित किया सुदृढ़ बनाया और उसमे कितने ही नये प्रयोग भी किए। अग्रेज जब भारतवर्ष मे आए तो मुगल शासन की तरह मुगल प्रशासन भी पतनोन्मुख होने के साथ साथ अस्त व्यस्त स्थिति म था। बगाल म दीवानी अधिकार प्राप्त करने के समय से लेकर 1857 तक कम्पनी शासन ने अपने आपको एक ऐसी स्थिति म पाया जिसम मुगलकालीन प्रशासन उनके अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यो के अनुरूप नहीं था। 1758 से 1947 तक ब्राउन की सरकार ने ससदीय सस्थाओ को सवधानिक सीमाओ मे रखते हुए विकसित करने के अनेक प्रयत्न किए जिसके फलस्वरूप भारतीय प्रशासन का भी राजनीतिक और आर्थिक सुधारो की दृष्टि से एक नया प्रयोग क्षेत्र माना जाने लगा।[1]

1 पी डी शर्मा बी एम शर्मा नीलम ग्रोवर भारत म लोक प्रशासन (भारतीय प्रशासन का इतिहास) पृष्ठ 13

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय प्रशासन में विकास और सुधार की प्रक्रिया जारी रही और एक स्वतन्त्र विकासशील देश की आवश्यकताओं के अनुरूप उसे ढालने का प्रयत्न किया गया। पुरानी विरासत को नए परिवेश में सजोने के प्रयत्न चलते रहे और आज भी जारी हैं। स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय प्रशासन के विकास का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि भारत पहला स्वतन्त्र देश है जिसने प्रशासन के जरिए आर्थिक विकास करते हुए प्रशासनिक ढाँचे में विस्तार और विविधता लाकर भी उस ढाँचे को बनाए रखने और इस प्रकार विस्तृत होने वाले प्रशासन का संसदीय लोकतन्त्र तथा आर्थिक विकास के साथ तालमेल बनाए रखने का अन्य नव स्वतन्त्र देशों की तुलना में विशेष सफल प्रयास किया है। इन तीनों कसौटियों पर आधारित भारतीय प्रशासन की सफलता एशिया और अफ्रीका के नए स्वतन्त्र देशों के लिए अनुकरणीय है। अनेक कमियों के बावजूद भारतीय प्रशासन में सन्तुलन लचीलापन कार्य क्षमता आदि के विशिष्ट गुण विद्यमान हैं और संकट काल में तथा विशिष्ट अवसरों पर भारतीय प्रशासन ने अपनी कार्य क्षमता का जो परिचय दिया उसे विश्व के अग्रणी देशों ने भी सराहा है। समयानुसार सभी स्तरों पर प्रशासन को पुनर्गठित करने और सजने-सँवारने की प्रक्रिया चलती रहती है और ऐसे उपाय किए जाते हैं कि उसकी कार्य क्षमता और कार्य बढ़ता में ठोस विकास हो।

विरासत और निरन्तरता

भारतीय प्रशासन अपने वर्तमान रूप में विरासत और निरन्तरता का फल है। यद्यपि इसके विकास की कड़ियाँ किसी-न-किसी रूप में सुदूर अतीत से जुड़ी हुई हैं तथापि मुख्यतः यह ब्रिटिश काल की देन मानी जानी चाहिए। वी सुब्रह्मण्यम् के अनुसार वर्तमान प्रशासनिक प्रक्रिया का सिलसिला सदियों तक विचारों का रहा, न कि संस्थाओं का। संस्थागत सिलसिला अंग्रेजों के शासन काल की देन है।

प्रशासनिक प्रक्रिया का सिलसिला अंग्रेजों के शासनकाल से स्वतन्त्र भारत तक अक्षुण्ण रहा है कुछ ने इसकी निन्दा की है कुछ ने सराहना। ऐसे भी विद्वान् हैं जिनका यह दावा है कि यह सिलसिला कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्रशासनिक सुधार आयोग तक लगातार चला आ रहा है। यह सिलसिला सदियों तक विचारों का था न कि संस्थाओं का जैसा कि चीन के मैंडरिनेट में है। यह संस्थागत सिलसिला अंग्रेजों के शासन में मुख्यतः वकीलों शिक्षकों प्रशासनिक कर्मचारियों जैसे शिक्षित भारतीय पेशेवर लोगों के मध्यम वर्ग के उदय से बना रहा। सर्वप्रथम इस वर्ग में अधिकांशतः शंकराचार्य द्वारा पूरे भारत में निर्मित विशिष्ट सांस्कृतिक वर्ग के लोग थे। इस वर्ग के लोगों ने हिन्दू तथा मुगल काल से चले आ रहे विचारों का सिलसिला बनाये रखा। किन्तु यह पाश्चात्य व्यावसायिक मध्यम वर्ग की प्रकृति थी यद्यपि काफी समय तक पाश्चात्य देशों की तरह यहाँ व्यवसायी औद्योगिक मध्यम वर्ग का अस्तित्व नहीं रहा।

इस मध्यम वर्ग ने प्रशासन और राजनीति दोनों में इस सिलसिले को दो प्रकार से बनाये रखा। इस वर्ग के कुछ सदस्यों ने लोक सेवाओं और व्यवसायों में प्रवेश किया तथा कुछ ने प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सत्ता प्राप्त की। अतः राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों के सभी स्तरों पर ये एक दूसरे को सामान्यतया समझते थे। अपने आप तो इनसे केवल एक कारनरिग्यन मध्यवर्गीय राजनीतिक नेतृत्व ही उत्पन्न होता किन्तु विवेकानन्द और तिलक द्वारा शुरू किये गये आधुनिकता का पुट लिये हुए धार्मिक पुनरुत्थान ने कठोर तपस्या और आत्म संयम का महत्त्व बताया और गाँधीजी ने सार्वजनिक जीवन में इसके अपनाये जाने पर विशेष बल दिया तथा मध्यम वर्ग के राष्ट्रवादियों को जन नेतृत्व की ओर प्रेरित किया जिससे इस वर्ग की राजनीति में प्रमुखता बनी रही। परिणामतः भारतीय राजनीतिक नेतृत्व ने लोक सेवाओं और मतदाताओं के बीच किसी भी अन्य विकासशील देश की अपेक्षा अधिक प्रभावी मध्यस्थता का काम किया है। प्रशासन इसके माध्यम से जनता की मांगों और दबाव के प्रति उचित रूप से सम्वेदनशील रह सका है। यह तंजानिया जैसे अफ्रीकी देशों की तरह के अधिक प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रवेश के बिना अथवा चीन जैसे पूर्णतया सैद्धान्तिक प्रवेश के बिना ही सम्भव हुआ है।

अंशतः इसी से प्रशासनिक ढांचे में क्रमबद्धता बनी रही किन्तु इसके कुछ अन्य कारण भी थे। जिला कलक्टरों तथा मन्त्रालयों के विभागों और लोक निगमों का पुराना संग्रथित ढांचा अभी भी लाभप्रद समझा गया और सन् 1947 में इसे भंग करने का अर्थ होता अंधकार में छलांग लगाना। दूसरे देश के विभाजन के कारण ऐसा प्रयास करने के लिए समय भी नहीं मिला। साथ ही बुद्धिमत्ता इसी में समझी गई कि अंशतः राजनीतिज्ञों और प्रशासनिक कर्मचारियों के बीच परस्पर आदान प्रदान द्वारा सामने आए और अंशतः प्रशासनिक सुधार समितियों और आयोगों द्वारा सुझाए गए संशोधन करके इसी ढांचे का उपयोग किया जाय। आर्थिक विकास भी वर्तमान तन्त्र के माध्यम से ही प्राप्त करने का प्रयास किया गया यह योजना आयोग की एकमात्र नयी विशेषता थी।[1]

भारतीय लोक प्रशासन की संस्थागत निरन्तरता चाहे मुख्यतः अंग्रेजी शासन की देन हो लेकिन यह भी सत्य है कि अनेक वर्तमान प्रशासनिक संस्थाएँ से प्राचीन भारतीय किसी न किसी रूप में परिचित थे। ईसा से लगभग 5000 वर्ष पूर्व की सिन्धु घाटी सभ्यता अत्यन्त विकसित थी और विद्वानों का अनुमान है कि उस समय के धर्म निरपेक्ष राज्य में प्रशासन का रूप सुविकसित रहा होगा। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के अवशेषों से ज्ञात होता है कि उस समय अनेक स्वतन्त्र

1 वी सुब्रह्मण्यम भारतीय प्रशासन (प्रकाशन विभाग भारत सरकार) 1974 पृष्ठ 2–3

समुदायो की अपेक्षा एक केन्द्रीकृत राज्य था।[1] 3000 ई पूर्व म यहा नगरपालिकाए सुस्थापित हो चुकी थी। भारतीय प्रशासन का यह प्रागैतिहासिक विवरण यद्यपि अधिक निश्चित नही है तथापि इसे अतीत के गौरव की एक उल्लेखनीय झाकी अवश्य माना जा सकता है।

ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय लोक प्रशासन के विकास को प्राचीन काल राजपूत काल सल्तनत काल मुगल काल ब्रिटिश काल और स्वातन्त्र्योत्तर काल म विभाजित किया जा सकता है

प्राचीनकालीन प्रशासन

प्राचीन काल में विभिन्न समयो म विभिन्न प्रशासन प्रचलित रहे। सिन्धु घाटी सभ्यता काल के प्रशासन के बारे म हमारा ज्ञान अधिकतर अनुमान पर आधारित है। खुदाई म प्राप्त अवशेषो से विद्वानो ने यही निष्कर्ष निकाला ह कि मोहनजोदडो और हडप्पा साम्राज्य व्यवस्थित और सुशासित थे। पुरोहित लोग शासन करत थे जो सुमेर और अकाद क पुरोहित राजाओ क समान थे। राज्य का स्वरूप मुख्यत केन्द्रीकृत था और नगरपालिका शासन म लोग अपरिचित नही थे।

ऋग्वैदिक काल मे भारतीय प्रशासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक हो था। राज्य और राजा को जन कल्याण साधक माना जाता था। प्रजाधर्म क विरुद्ध काय करने वाले राजा और पदाधिकारी पदच्युत किय जा सकत थे। राजा अपने विभिन्न मन्त्रियो क परामर्श स शासन काय चलाता था। मन्त्रियो म सबसे प्रमुख स्थान पुरोहित का था। राजदरबार म गाव के हितो और निवासियो का प्रतिनिधित्व ग्रामाणी नामक पदाधिकारी करता था। सभा और समिति नामक जन-सस्थाए भी थी। समिति सम्पूर्ण प्रजा की सस्था थी और राजा का निर्वाचन करती थी। सभा समिति से छोटी सस्था थी जिसकी सहायता स राजा दैनिक राज्य-काय करता था तथा अभियोगो का निर्णय करता था। इन दोनो सस्थाओ का राजा के ऊपर बडा नियन्त्रण था। यह नियन्त्रण आगे चलकर धीरे धीरे शिथिल हो गया।

उत्तर वैदिककाल मे राजा का पद पैतृक हो गया और राजा बहुत-कुछ स्वच्छन्द हो गया फिर भी वह निरकुश नही था। अभी उसके निर्वाचन का सिद्धान्त नष्ट नही हुआ था और उसके उत्तराधिकारी पर राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियो का प्रभाव रहता था। शासन के सचालन मे राजा प्रतिष्ठित मन्त्रियो की एक परिषद् की सहायता लेता था। प्रधानमन्त्री को मुख्यामात्य कहा जाता था। सभा समिति और मन्त्रि-परिषद् का राजा पर प्रभाव था। राज्य की शासन व्यवस्था को सुविधाजनक बनाने के लिए अनेक विभागो की रचना की गई थी यथा—वित्त विभाग निरीक्षण विभाग आरक्षण और सेना विभाग। स्थानीय शासन का कार्यभार एक विशेष मन्त्री

1 *A L B sh m* The Wonder That was Ind a 1954 p 15
2 *R Cald r* Th I heritors 1961 p 99

वन्न करता था। उसका मुख्य काय ग्राम ग्रौर विश के ग्रधिकारियो पर नियन्त्रण रखना ग्रौर उनके पारस्परिक झगडो का निपटारा करना था।

महाकाव्य काल म राज्य ग्रधिकाशत राजतन्त्रात्मक थे पर कुछ राज्य गणतन्त्रात्मक भी थ। राजा निरकुश शासन का प्रयास प्राय नही करता था क्योकि सामता सनिक नताग्रो उच्च कुलीनो मन्त्रियो ग्रादि का उस पर काफी प्रभाव होता था। राजा की सहायता ग्रौर पद प्रदशन के लिए केन्द्रीय प्रशासन म दो सस्थाए थी—मन्त्रि परिषद् ग्रौर सभा। केन्द्रीय प्रशासन लगभग 18 विभागो म विभक्त था। प्रशासनिक सुविधा के लिए राज्य को कई इकाइयो म बाटा जाता था। सबसे छोटी इकाई ग्राम था। 10 20 100 ग्रौर 1000 ग्रामो के पृथक पृथक ग्रधिकारी होते थे जिन्ह क्रमश ग्रामिक विशतिय शतग्रामी ग्रौर ग्रधिपति कहा जाता था। जनपद काल (6000 ईसा पूव स 1000 ईसा पूव) म भी राजतन्त्र प्रचलित था किन्तु ग्रनक जनपदो म गणतन्त्रात्मक शासन भी था। भारत कई राज्यो म बट चुका था तथा विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ग्रपनी सीमा पर पहुँच चुकी थी। राजतन्त्रात्मक जनपदो म राज्य का ग्रन्तिम ग्रधिकार राजा के हाथ म था जबकि गणतान्त्रिक जनपदो म राजसत्ता गण ग्रथवा समूह म निहित होती थी।

मौय काल म राजा ही साम्राज्य का प्रमुख होता था ग्रौर कायकारी यायिक एव विधायी शक्तियाँ ग्रन्तिम रूप से उसी मे निहित थी। चन्द्रगुप्त मौय (3 2 ईसा पूव–298 ईसा पूव) एक कुशल सेनानायक ग्रौर विजेता होने के साथ ही एक उच्च कोटि का शासक भी था। चन्द्रगुप्त के शासन का स्वरूप प्रबुद्ध राजतन्त्र (Enlightened Despotism) था। पूरी सत्ता राजा के ग्रधीन थी किन्तु राजा का ध्येय प्रजा का ग्रधिक स ग्रधिक कल्याण करना था। प्रजा के कल्याण म ही राजा ग्रपना हित समझता था। राजाज्ञा सर्वोच्च थी। राजा ग्रकेला राज्य नही सभाल सकता था। उसकी सहायता के लिए मन्त्रि परिषद् तथा सुनियोजित ग्रधिकारी वग होता था। मेगस्थनीज ने राजा के परामशदाताग्रो म (i) मन्त्रिगण (ii) न्यायाधीश (iii) सनापति व (iv) कोषाध्यक्ष का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने राज्याधिकारियो का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। उसके ग्रथशास्त्र म 18 तीर्थो (उच्च ग्रधिकारियो) का उल्लेख है—(1) मन्त्री—राजा का सर्वोच्च परामशदाता (2) पुरोहित—यह भी राजा को राज्य-कार्यो तथा धार्मिक कार्यों म परामश देता था (3) सनापति—सेना का ग्रध्यक्ष (4) युवराज—राजा का उत्तराधिकारी तथा परामशदाता (5) दौवारिक—मुख्य स्वागत ग्रधिकारी तथा द्वार रक्षक (6) ग्रन्तर्वेशिक—ग्रन्त पुर का रक्षक (7) प्रशस्त्रि (राष्ट्रपाल)—पुलिस का सर्वोच्च ग्रधिकारी (8) समाहर्ता—ग्राय-सग्रहक (9) सन्निधाता—कोषाध्यक्ष (10) प्रदेष्टि—क्षेत्रीय ग्रधिकारी ग्रथवा दण्डनायक (11) नायक—पदल सेना का मुख्य ग्रधिकारी ग्रथवा नगर कोतवाल (12) व्यावहारिक—

न्यायाधीश (13) नगर निरीक्षक—स्थानीय निकायों का अधिकारी (14) कारागाराध्यक्ष—उद्योग तथा व्यापार का अधीक्षक (15) अन्तपाल—सीमा सुरक्षा सम्बन्धी अधिकारी (16) कर्मान्तिक—खानों का अध्यक्ष (17) महापौर—नगर का सर्वोच्च अधिकारी और (18) आटविक—वन विभाग का अध्यक्ष। इनमें से प्रथम चार अधिकारी मन्त्रिमण्डल के अन्तरंग सदस्य थे जिनसे राजा महत्वपूर्ण विषयों पर परामर्श लेता था और अन्य 14 विभागाध्यक्ष थे जिनसे भी राजा समय समय पर परामर्श लेता था। इनको बहुत ऊँचे वेतन दिये जाते थे। समूचा राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तपति विश्वस्त तथा अधिकतर राजकुल के व्यक्ति होते थे। प्रान्त क्षेत्रों में विभक्त थे। क्षेत्र का मुख्य अधिकारी प्रदेष्टा कहलाता था। वह सामान्य प्रशासन, कर वसूली तथा शान्ति व सुरक्षा की देखभाल करता था। उसको दण्डनायक (Magistrate) के अधिकार भी होते थे। क्षेत्र ग्रामों में विभक्त थे। ग्राम का अधिकारी गोप होता था। 10 ग्रामों पर एक सग्रहण तथा 200 ग्रामों पर एक खार्वटिक होता था। 400 ग्रामों का अधिकारी द्रोणमुख कहलाता था तथा 800 ग्रामों पर एक स्थानीय होता था। ग्राम प्रशासन की इकाई थे तथा गोप प्रशासन की रीढ़ था। गोप ग्राम की जनगणना करता था जिसमें जाति तथा आय व्यय के साधनों का भी उल्लेख होता था। यह अधिकारी वर्तमान पटवारी के समकक्ष था।

मौर्यकालीन नगर-व्यवस्था की विदेशियों तक ने बहुत प्रशंसा की है। पाटलिपुत्र की नगरपालिका का प्रशासन 30 सदस्यों की एक परिषद् के हाथ में था। यह परिषद् छः समितियों में विभक्त थी। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। पहली समिति उद्योग और शिल्प की तथा दूसरी विदेशियों की देखभाल करती थी। तीसरी समिति सम्पत्ति का लेखा जोखा रखती थी और जनगणना की व्यवस्था करती थी। चौथी समिति व्यापार पर नियन्त्रण रखती थी माप-तोल का नियमन करती थी और बिक्री की वस्तुओं पर राज्य की मोहर लगाती थी। यह एक प्रकार से बिक्री का लाइसेंस था। पाँचवीं समिति व्यापारियों द्वारा तैयार माल का निरीक्षण करती थी तथा छठी विक्रय कर वसूल करती थी। सब समितियाँ अपना अपना काय पृथक् पृथक् करती थीं किन्तु कुछ काय विभिन्न समितियों के सहयोग तथा परामर्श से भी होते थे जैसे सार्वजनिक भवनों की देखभाल तथा बाजार बन्दरगाहों तथा धर्म स्थानों की रक्षा का काय आदि। कौटिल्य ने भी नगर व्यवस्था का वर्णन किया है किन्तु उसने समितियों का उल्लेख नहीं किया है। उसने उन सब कार्यों से सम्बन्धित अधिकारियों का वर्णन किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से विदित होता है कि नगर चार वार्डों में बाँटा जाता था। प्रत्येक वार्ड एक स्थानीय के अधीन होता था। प्रत्येक वार्ड को उपवार्डों में बाँटा जाता था जो गोप के अधीन होते थे। गोप अपने उप वार्ड के स्त्री पुरुषों तथा उनकी सम्पत्ति की व्यक्तिगत

जानकारी रखता था। नगर में आग से रक्षा के लिए व्यवस्था होनी था तथा सड़कों की सफाई गन्दे पानी के लिए नालियों का प्रबन्ध निषिद्ध वस्तुओं की बिक्री पर रोक आदि सभी के लिए नियम थे।

राज्य की सारी आय नियमित अनुमान पत्र (बजट) के अनुसार खर्च होती थी। व्यय की मुख्य मदें ये थीं—राज परिवार धार्मिक कृत्य सेना दौत्य राज वेतन भत्ता शिक्षा वृत्ति दान यातायात सिंचाई भवन निर्माण और अन्य लोकोपकारी कार्य। राजस्व विभाग का संचालन समाहर्त्ता करता था और उसकी अधीनता में कई अध्यक्ष थे जैसे—शुल्काध्यक्ष सूत्राध्यक्ष (सूत और कपड़े के निरीक्षक) सीताध्यक्ष (सरकारी खेती के निरीक्षक) सुराध्यक्ष सूनाध्यक्ष (बूचड़खाने के अध्यक्ष) गणिकाध्यक्ष मुद्राध्यक्ष आकराध्यक्ष (खान के निरीक्षक) पण्याध्यक्ष (दुकान के निरीक्षक) आदि। एक विषय (जिला) के राजस्व अधिकारी को युक्त कहते थे। युक्त कभी कभी राज्य की आय को गुप्त रूप से गबन भी कर जाते थे।

गुप्तकालीन साम्राज्य और प्रशासन मौर्यकाल के समान केन्द्रित और गठित नहीं था। गुप्त साम्राज्य का स्वरूप बहुत कुछ मण्डल व्यवस्था पर आधारित था और बहुत से सामन्त राजा गुप्तों की अधीनता में साम्राज्य के विभिन्न भागों में शासन करते थे। गुप्तकाल में एकतान्त्रिक शासन प्रणाली पूर्ववत् थी राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था और राज्य की अन्तिम सत्ता उसके हाथ में थी। मौर्यकाल की भाँति ही गुप्तकाल में भी मन्त्रिपरिषद् की प्रथा थी किन्तु उसकी रचना और कर्त्तव्यों के बारे में पूरा उल्लेख नहीं मिलता। गुप्त काल का प्रशासन डा पाण्डेय के अनुसार इस प्रकार था—सन्धि विग्रहिक (सन्धि और युद्ध के मन्त्री परराष्ट्र मन्त्री) अक्षपटलाधिकृत (राजकीय कागज पत्र के मन्त्री) आदि मन्त्रियों का पता उत्कीर्ण लेखों से लगता है। इनकी सहायता से सम्राट शासन करता था। मन्त्रियों का पद प्रायः राजाओं के समान होता जा रहा था। उस समय की विशेष राजनीतिक परिस्थिति में कई मन्त्रियों के हाथ में शासन और सेना दोनों के अधिकार होते थे। सारा केन्द्रीय शासन कई विभागों में सगठित था जिसका प्रबन्ध मन्त्री अमात्य कुमारामात्य युवराज-कुमारामात्य आदि अधिकारी करते थे। सारा गुप्त साम्राज्य शासन की सुविधा के लिए कई इकाइयों में बंटा हुआ था। सबसे बड़ा विभाग प्रान्त था जिसको देश या भुक्ति कहते थे। प्रान्तीय शासक भौगिक भोगपति गोप्ता, उपरिक महाराज और राजस्थानीय कहलाते थे। प्रान्तों से छोटा क्षेत्र प्रदेश कहलाता था जो आजकल की कमिश्नरी के बराबर था और इससे छोटा विभाग विषय कहलाता था जो जिले के समकक्ष था। विषयों के ऊपर विषयपति कुमारामात्य अथवा महाराज शासन करते थे। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम था जिसका मुख्य अधिकारी ग्रामिक महत्तर अथवा भोजक होता था। प्रादेशिक और स्थानीय शासन सचालन के लिए विभिन्न अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। नगर शासन के सम्बन्ध में राजधानी में विषयपति की सहायता के लिए एक परिषद

थी। भूमि का क्रय विक्रय परिवर्तन ग्रादि इसी के अधीन होता था। गाँव का प्रबन्ध करने के लिए भी एक परिषद् होती थी जिसका प्रमुख ग्रामिक महत्तर अथवा भोजक होता था। मौर्यों के बाद विदेशी आक्रमणों के शान्त होने पर गुप्तों ने एक निश्चित योजना के अनुसार प्रान्तीय शासन प्रबन्ध की वास्तव में स्थापना की जिसमें प्रजा सुखी और समृद्ध थी।

राजपूतकालीन प्रशासन

राजपूत काल में राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था का ही बोलबाला था। राजपद वंश-परम्परागत होता था। राजा को परामर्श देने के लिए मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था थी। मन्त्री अपने अपने विभागों का प्रबन्ध करते थे। प्रशासन में लोक हित की आशा की जाती थी लेकिन शासक वर्ग की स्वच्छाचारिता बढ़ती जा रही थी। गणतन्त्र समाप्त प्राय हो रहे थे। मन्त्री पद भी वंशानुगत हो चले थे। केन्द्रीय शासन सुगठित नहीं था क्योंकि प्रान्तीय शासन पर उन सामन्तों का ही अधिकार होता था जो प्राय स्वतन्त्र रूप से शासन करते थे। जागीर प्रथा के प्रचलन से सामन्तों के अधिकारों में भारी वृद्धि हो रही थी। प्राय युवराज अथवा राजकुल के व्यक्तियों को ही प्रान्तीय शासक बनाया जाता था। प्रान्तीय शासन भी अनेक विभागों में विभक्त होता था। प्रत्येक विभाग का एक अधिकारी होता था जिसके अधीन बहुत से कर्मचारी होते थे। ग्राम पंचायतों का महत्त्व घट गया था उन पर भी सामन्तों का अधिकार था। साम्राज्य प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त होता था—इस प्रकार शासन-पद्धति गुप्तकालीन शासन पद्धति के आधार पर थी। शासन के मुख्य विभागों का ढाँचा भी मुख्यत गुप्तकालीन था किन्तु उनमें अव्यवस्था और विशृंखलता आ गई थी। शासन की सुविधा हेतु समितियों का निर्माण किया जाता था और उन्हें विविध कार्य सौंपे जाते थे। नगर प्रबन्ध के लिए पट्टनाधिकारी होता था जिसे उन सभी कर्त्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता था जो आधुनिक नगरपालिका के प्रशासक करते हैं।

सल्तनतकालीन प्रशासन

सल्तनत काल (1206–1526 ई) का प्रशासन मूलत सैनिक प्रशासन था। दिल्ली के सुल्तान निरकुश स्वेच्छाचारी शासक थे फिर भी सर्वाधिक निरकुश शासक भी शासन का सम्पूर्ण कार्य अकेला नहीं कर सकता था। उसे किसी न किसी कारणवश अपने अमीरों और सरदारों के सक्रिय समर्थन पर निर्भर रहना होता था। दिल्ली के सुल्तानों को अपने शासन के आरम्भ से ही अधिकारियों की एक व्यवस्थित श्रृंखलायुक्त एक शासनतन्त्र की व्यवस्था करनी पड़ी। अपने अनुभव और तकनीकी ज्ञान के कारण राज्य के लिए उनकी सेवाएं बहुमूल्य थीं और कोई भी शासक इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता था। यद्यपि ये अधिकारी किसी प्रकार भी सुल्तानों के अधिकारों को प्रतिबन्धित नहीं करते थे, बल्कि सुल्तानों की [illegible]

योग्य अधिकारियों के परामर्श से कुछ न कुछ मार्गदर्शन ग्रहण करते थे और नीतियां का निर्धारण करते समय उनके परामर्श को ध्यान में रखते थे। मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं थी। एक मन्त्री के अधीन प्रायः एक से अधिक विभाग होते थे। सबसे बड़ा मन्त्री वजीर कहलाता था। वह प्रधानमन्त्री था और उसकी स्थिति राजा तथा प्रजा के बीच की थी। वजीर सरकार की सम्पूर्ण मशीनरी का अध्यक्ष होता था उसका कार्यालय दीवान ए विजारत कहलाता था और उसकी सहायता के लिए अधिकारियों की एक श्रृंखला होती थी। प्रमुख मन्त्रियों के अतिरिक्त राजधानी में और भी पदाधिकारी होते थे जो या तो अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण विभागों के अध्यक्ष होते थे अथवा उनका सम्बन्ध मुख्यतया सुल्तान के घरेलू प्रबन्ध से होता था। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तीय शासक को सूबेदार कहा जाता था। प्रत्येक प्रान्त में केन्द्र की ही भाँति विभिन्न विभाग थे। प्रान्त शिकों में बटे हुए थे जिनके प्रधान शिकदार कहलाते थे। शिकों को सरकारों में, सरकारों को परगनों में और परगनों को ग्रामों में बाँटा जाता था। नगर प्रशासन केन्द्रीयकृत नौकरशाही द्वारा संचालित था किन्तु गाँवों में अभी भी स्वायत्तता थी। स्थानीय शासन की पुरातन परम्पराएं प्रायः प्रचलित थीं।

मुगलकालीन प्रशासन

मुगलकाल में सम्राट ही सम्पूर्ण शासन और राज्य का एकछत्र स्वामी होता था। शासन पूर्णतः केन्द्रीकृत था लेकिन प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से प्रान्तीय और स्थानीय शासन की व्यवस्था थी। केन्द्रीय शासन में सम्राट और मन्त्रिगण सम्मिलित थे। मन्त्रियों का स्वतन्त्र अस्तित्व कुछ भी नहीं था वे सम्राट की मर्जी के अधीन थे। सम्राट स्वेच्छाचारी थे तथापि प्रायः प्रजा के हित का ध्यान रखते थे। अकबर ने जनहित को सर्वोपरि महत्त्व दिया किन्तु औरंगजेब जैसे सम्राट ने जनहित की उपेक्षा की। प्रशासनिक विषयों पर प्रायः सम्राट मन्त्रियों से परामर्श लेते थे उनके विचारों का प्रायः आदर भी करते थे लेकिन अन्तिम निर्णय उनका अपना होता था। मोनेट के अनुसार—"कभी कभी सम्राट मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर अपना निर्णय बदल भी लेता था किन्तु मन्त्रिमण्डल सम्राट की किसी बात के मानने के लिए विवश नहीं कर सकता था।" केन्द्रीय शासन में साधारणतया मन्त्रियों की संख्या 4 से 6 तक थी पर उनकी सहायता के लिए कुछ निम्नस्तरीय मन्त्री भी होते थे। प्रमुख मन्त्री थे—वजीर (प्रधानमन्त्री) दीवान (उपमन्त्री) मीरबख्शी (सेना मन्त्री) मुख्य सदर (धर्मार्थ विभाग का अध्यक्ष) खान-सामान (घरेलू विभाग का अध्यक्ष) काजी उलकजात (मुख्य न्यायाधीश) मोहतसिब (जन आचरण की देख रेख करने वाला मन्त्री)। मुगल साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त थे जहाँ केन्द्र की तरह ही शासन चलता था। सूबेदार प्रान्त का सबसे

बड़ा अधिकारी होता था जिसे सिपहसालार या नाज़िम भी कहा जाता था। सूबेदारों की नियुक्ति और पदच्युति सम्राट द्वारा की जाती थी। प्रान्तों में वह सम्राट का प्रतिनिधि था। प्रान्त के वित्तीय विभाग का मुख्य अधिकारी दीवान होता था। दीवान और सूबेदार एक दूसरे की गतिविधियों पर निगाह रखते थे और सम्राट को दोनों से प्रान्तीय मामलों के बारे में अलग अलग रिपोर्ट प्राप्त होती थी। सदरकाजी बख्शी तथा कुछ अन्य अधिकारी भी होते थे। प्रत्येक प्रान्त अनेक सरकारों अथवा जिलों में विभक्त होता था। फौजदार सरकार का कार्यपालक अधिकारी था। उसकी स्थिति आधुनिक जिलाधीश जैसी थी। उसके अधीन सेना का एक टुकड़ी भी रहती थी। पुलिस व्यवस्था के लिए सरकार के विभिन्न नगरों में कोतवाल रहते थे। परगना लगान की इकाई था। परगने के मुख्य अधिकारी शिकदार आमिल कानूनगो आदि होते थे। शिकदार मुख्य कार्यपालक था जिसकी स्थिति बहुत-कुछ आधुनिक तहसीलदार जैसी थी। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई था। परगनों गाँवों में विभाजित थे। गांवों का प्रबन्ध पंचायतें करती थीं। गाँव की सफाई सुरक्षा शिक्षा सिंचाई झगड़ों के फैसले आदि का भार उन्हीं पर था। गाँवों के तीन महत्वपूर्ण अधिकारी होते थे—मुकद्दम गाँव की देखभाल करता था पटवारी लगान वसूल करता था और चौधरी पंचायतों की सहायता से झगड़े सुलझाता था। सुरक्षा की दृष्टि से प्रत्येक गाँव में एक चौकीदार भी होता था।

ब्रिटिश काल में प्रशासन का विकास

भारत में ब्रिटिश प्रशासन का बीजरूप में प्रारम्भ 1600 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के साथ हुआ। प्रारम्भ में उसका उद्देश्य भारत में व्यापार करना था पर धीरे धीरे उसने सक्रिय राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया। प्रारम्भ में उसकी प्रादेशिक महत्त्वाकांक्षाएं बलवती होती गई और शीघ्र ही वह इस देश में एक प्रमुख यूरोपीय शक्ति बन गई। सन् 1772 से 1858 का युग ऐसा रहा जिसे हम कम्पनी सरकार के काल से जानते हैं। कम्पनी का शासन तो रहा ही, किन्तु ब्रिटिश संसद् भी भारतीय प्रशासन सम्बन्धी मामलों में अधिकाधिक रुचि लेने लगी। सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम ने एक जबरदस्त परिवर्तन का आधार तैयार कर दिया और सन् 1858 से भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन का शुभारम्भ हो गया। भारत सरकार का संचालन कम्पनी से ताउन के हाथ में आ गया।

डा. पी. डी. शर्मा ने लिखा है कि भारत में मोटे प्रशासन जैसा मुगल युग में था और जिस प्रकार की स्थिति में अंग्रेजों ने उसे सन् 1947 में छोड़ा उसे देखकर यह कहा जा सकता है कि वह एक जिला आधारित प्रशासन था, जिसमें प्रतिष्ठा और पद सोपान वेतन स्तर आदि के भारी अन्तरों के साथ केन्द्रीय प्रशासन और राज्य-स्तरीय प्रशासनों के लिए दो भिन्न भिन्न दिशाएं उभरीं। राजस्व और व्यवस्था इस प्रशासन के मूल आधार रहे और विकास कार्य का प्रशासन इन्हीं में

समाविष्ट रहा। अंग्रेजी युग के इस इतिहास को निम्न छ भागों में विभाजित कर इसका एक विकास क्रम बनाया जा सकता है—

1 संवैधानिक सरकार
2 केन्द्रीय सचिवालय
3 लोक सेवायें
4 राजस्व और न्याय प्रशासन
5 वित्तीय प्रशासन एवं
6 स्थानीय स्वराज्य।

1 संवैधानिक सरकार—प्रारम्भ में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपनी मनमानी करती रही। कम्पनी के शासन की वैधानिक और व्यावहारिक आधार पर कठोर आलोचनाएं हुई जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश संसद ने अनेक नियमनकारी विधेयक पास किये। सन् 1773 के रेगूलेटिंग एक्ट द्वारा ब्रिटिश संसद ने कम्पनी के शासन में हस्तक्षेप कर कार्यपालिका और व्यवस्थापिका सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। बम्बई और मद्रास की प्रेसीडेंसी को कलकत्ता प्रेसीडेन्सी के अधीन कर दिया गया जिसका प्रशासन एक गवर्नर जनरल और चार पार्षदों को सौंपा गया सपरिषद् गवर्नर जनरल को कम्पनी के गैर सैनिक सेवकों के लिए अध्यादेश जारी करने की शक्ति दी गई। इन अध्यादेशों पर नव निर्मित सर्वोच्च न्यायालय का प्रतिबन्ध रखा गया जिसके न्यायाधीशों की नियुक्ति क्राउन द्वारा की जाती थी। इस अधिनियम द्वारा भारतीय प्रशासन का दायित्व कम्पनी और ब्रिटिश सरकार के बीच बंट गया। नवीन व्यवस्था में कभी कभी गवर्नर जनरल अपनी परिषद् के सम्मुख शक्तिहीन सिद्ध होता था जबकि अनेक बार परिषद् को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निष्क्रिय बना दिया जाता था। इसी आधार पर भारतीय संवैधानिक सुधार की रिपोर्ट (1918) ने सन् 1773 के अधिनियम को प्रशासनिक यन्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का हननकर्ता बताया। पिट्स अधिनियम सन् 1784 द्वारा छ आयुक्तों का एक नियन्त्रक मण्डल स्थापित हुआ जिसे कम्पनी के निर्देशकों का नियन्त्रण करने की शक्ति सौंपी गयी। सन् 1786 के अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल को परिषद् से अधिक शक्तियां प्रदान की गई और उसे मुख्य सेनापति बनाया गया। सन् 1793 1813 1833 1853 और 1854 के चार्टर अधिनियमों ने प्रशासन की दृष्टि से महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। कम्पनी द्वारा कलक्टर का पद रखा गया जो राजस्व एकत्रित करने और गांवों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी था। वह मजिस्ट्रेट और सर्वोच्च पुलिस अधिकारी भी था। बाद में कार्नवालिस ने राजस्व प्रशासन को न्यायिक एवं पुलिस कार्यों से पृथक कर दिया फिर भी कलक्टरों के हाथों में शक्ति केन्द्रित होती गई। सन् 1857 के बाद राजस्व पुलिस और मजिस्ट्रेट के कार्य कलक्टर के नियन्त्रण में आ गये। वह जिले का कर्ताधर्ता बन गया। सन् 186 में एक नागरिक ने मजाक रूप में कहा कि जिलाधीश सारे दिन प्रतिवेदन भेजता रहता

* और सारी रात पत्र व्यवहार करता है। पायली के कथनानुसार 'भारत में एक अत्य त केन्द्रित शासन का आविर्भाव इन्ही अधिनियमो का फल था।'[1]

सन् 1833 के अधिनियम ने व्यापार पर कम्पनी के एकाधिकार को समाप्त किया और इसकी व्यावसायिक गतिविधियो को पूर्णत रोक दिया। अधिनियम ने केन्द्रीकृत प्रशासन की स्थापना की। सन् 1857 के प्रथम स्वत त्रता सग्राम न यह स्पष्ट कर दिया कि कम्पनी का प्रशासन एव नीतिया असन्तोषजनक थीं। फलत भारत सरकार का सचालन कम्पनी से क्राउन ने ले लिया। अब ब्रिटिश ससद् ने एक के बाद एक अनेक महत्वपूर्ण अधिनियम बनाये जिनम कुछ निम्नलिखित हैं—

(क) 1858 के अधिनियम द्वारा भारतीय प्रशासन ब्रिटिश सरकार ने अपने प्रत्यक्ष नियन्त्रण म ले लिया। अब इसकी बागडोर साम्राज्ञी विक्टोरिया के हाथो म आ गई तथा समस्त वधानिक प्रशासनिक एव वित्तीय शक्तियाँ भारत सचिव तथा उसकी परिषद् म केन्द्रित हो गइ। भारत म सत्ता का केन्द्रीयकरण गवनर जनरल तथा उसकी परिषद् म निहित हो गया। इसका प्रयोग अनेक अधिकारियो द्वारा किया जाने लगा। इस प्रकार शासन नौकरशाही म परिवर्तित हो गया जिसका सगठन एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था (Hierarchy) के रूप म किया गया। निम्न अधिकारी अपने उच्च अधिकारियो के अधीन रह कर एजेन्ट के रूप में काय करते थे। यह श्रेणीबद्ध सगठन इस प्रकार था—
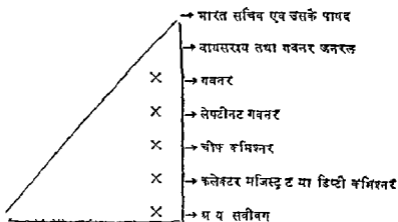
पायली के कथनानुसार ऊपर से नीचे तक समस्त व्यवस्था एक त तु के साथ मानो जुडी हुई थी अत अति केन्द्राकृत थी और इसका व्यवहार इस्पात के

1 एम वी पायली भारतीय संविधान 1966 पृ 34

ढाँचे की तरह अनम्य था। इसमें निरंकुश शासन के सभी चिह्न विद्यमान थे। देशी रियासतों का शासन भी इसका अपवाद नहीं था।[1]

महारानी विक्टोरिया ने 1 नवम्बर 1858 को एक घोषणा प्रसारित की जिसमें ब्रिटिश सरकार की भारत सम्बन्धी भावी योजनाओं का उल्लेख था।

(ख) 1861 के भारत परिषद् अधिनियम द्वारा व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के संगठन में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इसमें पहली बार प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं की स्थापना हुई। ये सच्चे अर्थ में सम्पूर्ण नहीं थी और इनके अधिकार अत्यन्त सीमित थे। ये सरकार की व्यवस्थापिका समिति मात्र थीं। गवर्नर जनरल को कार्य संचालन के लिए नियम बनाने की शक्ति सौंपी गई, उसका प्रयोग करके लार्ड केनिंग ने कार्यपालिका परिषद् को मन्त्रिमण्डल बनाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

(ग) सन् 1892 के भारत परिषद् अधिनियम से केन्द्रीय और प्रान्तीय परिषदों की सदस्य संख्या में वृद्धि हुई, व्यवस्थापिकाओं की सदस्य संख्या और शक्तियों का भी विस्तार हुआ।

(घ) सन् 1909 के भारत परिषद् अधिनियम द्वारा कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इससे यद्यपि व्यवस्थापिकाओं की सदस्य संख्या में वृद्धि हुई तथापि बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहा और कार्यपालिका का व्यवस्थापिका पर नियन्त्रण कायम रहा। उत्तरदायी सरकार स्थापित नहीं की गई। इसकी साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति प्रजातन्त्र विरोधी और देश में फूट डालने वाली थी। इससे सर्वत्र प्रशासन का स्तर नीचा हुआ। जनता की राजनीतिक आकांक्षाएं सन्तुष्ट नहीं हो सकीं। लोक सेवाओं में अधिक भारतीयों को प्रवेश प्राप्त नहीं हुआ। कार्यपालिका पर संसदीय नियन्त्रण स्थापित न हो सका और स्थानीय संस्थाएं सरकारी नियन्त्रण में बनी रहीं। प्रशासन अत्यन्त धीमा और दब्बू बन गया।

(ङ) सन् 1919 के मोण्ट फोर्ड सुधार भारत के प्रशासनिक विकास में विशेष महत्त्व रखते हैं। इससे पहले भारतीय प्रशासन की तीन मुख्य विशेषताएं थीं—केन्द्र में सत्ता का केन्द्रीकरण, विधायी कार्यों पर कार्यपालिका का नियन्त्रण और सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन का अन्तिम दायित्व ब्रिटिश संसद् के हाथ में। 20 अगस्त 1917 को भारत सचिव माण्टेग्यू ने घोषणा की कि प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों का अधिक से अधिक सहयोग लिया जायगा और स्वशासन की

1 I t lly the e w s l ttle to d sti gu h the dm ist t on of the tat B th w e t t c in chara t pt that o e w mp al be vol t to racy d th oth pe al ut c acy —A hok Ch d I d n Adm n t at o p 21

संस्थाओं का क्रमिक विकास किया जायगा। तदनुसार सन् 1919 के भारत सरकार अधिनियम ने भारत में स्वशासन की स्थापना के लिए उल्लेखनीय कदम उठाये। इसने प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना की। इसमें नौकरशाही और प्रजातन्त्र को परस्पर आश्चर्यजनक रूप में मिलाया गया। एकात्मक सरकार होते हुए भी केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के कार्य स्पष्ट निश्चित कर दिए गये। द्वैध शासन के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकार के दो भाग हो गए। एक भाग पूर्णत नौकरशाही के अधीन था और दूसरे को कुछ सीमा तक लोकप्रिय बनाया गया। गवर्नर को असाधारण शक्तियाँ सौंपी गई। प्रान्तों को पहले की अपेक्षा अधिक अधिकार दिए गए। सुरक्षित विषयों पर गवर्नर और उसकी परिषद् का एकाधिकार रखा गया किन्तु हस्तान्तरित विषयों में उत्तरदायी मन्त्रियों को सौंप गए। केन्द्र की कार्यपालिका परिषद् में भारतीयों को स्थान दिया गया।

(च) सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम ने प्रान्तों में स्वायत्त सरकार और केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना की। इसने देश में संघात्मक व्यवस्था का समर्थन किया। प्रान्तीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति समस्त प्रान्तीय विषयों तक व्याप्त हो गई। प्रान्तों की आय के प्रमुख स्रोत भू राजस्व आबकारी कर कृषि आय पर कर भूमि और भवनों पर कर व्यवसाय पर कर आदि निश्चित किये गए। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया गया—स्वेच्छा से काम में ली जाने वाली शक्तियाँ व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ और व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी मन्त्रियों की सलाह से काम में आने वाली शक्तियाँ। वित्तीय क्षेत्र में उसे पर्याप्त अधिकार थे।

ब्रिटिश संसद् द्वारा पारित विभिन्न अधिनियमों का यदि गम्भीरता से विश्लेषण किया जाए तो जैसा कि डा पी डी शर्मा ने लिखा है इस सारे क्रमिक विकास में तीन विशेषताएँ दिखाई देंगी—

1 भारत में प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना और उनकी सदस्य संख्या और प्रकृति का क्रमिक विकास।

2 इन संस्थाओं के माध्यम से शासन का जनतन्त्रीकरण और उत्तरदायित्व की प्रकृति का विकास।

3 भारतीय शासन का भारतीयकरण और भारतीयों को प्रभावशाली ढंग से शासन में लिए जाने वाले अवसरों की वृद्धि।

इन तीनों प्रवृत्तियों ने जो मदबाकिस्ती नीति सम्बन्धी थी भारतीय प्रशासन को अनेक रूपों में प्रभावित किया—

(1) मदबाकिस्ती नीतियों ने उच्च सेवाओं को भारत मन्त्री के अधीन रखकर विशेष सुविधाएँ प्रश्रय और संरक्षण दिए जो विकास के साथ बने रहे।

(ii) सेवाओं को विशेष भूमिका सौंपी गई और उनके हितों की रक्षा गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व बने।

(iii) इन संरक्षण और विशेषाधिकारों की नीति ने भारत में केन्द्रीकृत अखिल भारतीय सेवाओं को जन्म दिया जो केन्द्रीय और प्रान्तीय सेवाओं से भिन्न आज भी विद्यमान हैं।

(iv) अंग्रेजी प्रशासन स्थायित्व और व्यवस्था को महत्त्व देता था, अतः साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए एक सुदृढ़ नौकरशाही उसका आधार स्तम्भ बनी और सम्पूर्ण प्रशासन व्यवस्था केन्द्रित रही।

(v) कांग्रेस की मांगों के फलस्वरूप सभी अधिनियमों में इस बात का सिद्धान्ततः स्वीकार किया गया कि प्रशासन का भारतीयकरण एक अनिवार्यता है और उत्तरदायी शासन की प्रक्रिया का विकास किस प्रकार सम्भव है।

इन सब बातों ने प्रशासन का एक सुगठित नौकरशाही के रूप में प्रस्तुत किया और यही रूप स्वतन्त्र भारत को विरासत में मिला जिसमें समयानुकूल सुधार किए गए और देश के नेतृत्व का यह प्रयत्न रहा कि प्रशासन वास्तविक अर्थों में जनसेवक बन सके।

केन्द्रीय सचिवालय—ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत को जो प्रशासनिक रचना दी उसका नाम में केन्द्रीय सचिवालय की एक विशेष भूमिका थी। कम्पनी शासन में बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन केन्द्रीय सरकार का सचिवालय गठित किया गया जिसमें सन् 1833 के चार्टर अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक मितव्ययता की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किए गए। सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह था कि राजस्व और वित्त विभागों को मिलाकर एक विभाग बना दिया गया। सन् 1843 1855 और 1862 से 19 9 तक सचिवालय में विभागों का गठन-पुनर्गठन होता रहा। अनेक नये विभागों का निर्माण हुआ। सन् 1919 से 1947 तक का समय केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रहा। सन् 1919 की स्मिथ कमेटी के सुझाव पर सचिवालय का जो पुनर्गठन हुआ उसमें 11 विभाग रखे गये जिनके नाम थे—

1 गृह विभाग (Home)	2 विदेश विभाग (Foreign Affairs)
3 वित्त विभाग (Finance)	4 सेना विभाग (Army)
5 वाणिज्य विभाग (Commerce)	6 उद्योग विभाग (Industries)
7 रेल विभाग (Railways)	8 शिक्षा तथा स्वास्थ्य (Education & Health)
9 लोक निर्माण विभाग (P W D)	
10 व्यवस्थापन विभाग (Legislative Department)	
11 राजस्व तथा कृषि विभाग (Pevenue and Agriculture)	

बाद के वर्षों में ल्वेलिन समिति, व्हीलर समिति और मैक्सवेल समिति ने केन्द्रीय सचिवालय के सुधार के लिए और भी सुझाव प्रस्तुत किये। द्वितीय महायुद्ध

के कारण जब स्थिति नाजुक हो गई तो सन् 1945 में सचिवालय का पुनर्गठन आवश्यक समझा गया। इससे पूर्व सन् 1941 में ही नागरिक सुरक्षा (Civil Defence) सूचना तथा प्रसारण (Information & Broadcasting) तथा भारतीय समुद्र पार (Indian Overseas) विभाग स्थापित किये जा चुके थे। युद्ध के कारण सुरक्षा समन्वय (Defence Co-ordination) का नया विभाग खुला और युद्ध आपूर्ति मण्डल (War Supply Board) गठित किया गया। सन् 1942 में खाद्य विभाग स्थापित हुआ और उद्योग (Industries) तथा नागरिक आपूर्ति (Civil Suppl s) को फिर से एक कर दिया गया। सन् 1944 में योजना तथा विकास (Planning & Development) नामक विभाग बना जो इस बात का परिचायक था कि ब्रिटिश शासन अपनी नीतियों में तेजी से परिवर्तन कर रहा था। युद्ध के बाद यद्यपि सचिवालय में और भी सामान्य परिवर्तन किये गए, लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन शिक्षा, स्वास्थ्य और कृषि मन्त्रालयों का विभाजन था। गृह मन्त्रालय का जन्म भी इसी समय हुआ। 15 अगस्त 1947 को सत्ता हस्तान्तरण के समय नयी दिल्ली के केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे जिन्हें पुनर्गठित करने और सुधारने के लिए स्वतन्त्र भारत की सरकार ने श्री गिरिजाशंकर बाजपेयी की अध्यक्षता में सचिवालय पुनर्गठन समिति (Secretarial Reorganisation Committee) की स्थापना की।

लोक सेवाएं —ब्रिटिश शासन काल में लोक-सेवाएं सचिवालय से अधिक तीव्र गति से बदलीं।[1]

भारतवर्ष की वर्तमान लोक-सेवाओं का विकास मुगलकालीन प्रशासन में ढूंढा जा सकता है। यद्यपि मुगल शासकों ने अखिल भारतीय सेवाओं के काडरों का गठन नहीं किया था किन्तु केन्द्रीय प्रतिरक्षा व्यवस्था उस युग में भी थी और राजस्व, समाज कल्याण तथा शान्ति एवं व्यवस्था आदि क्षेत्रों में कुछ शाही लोक सेवाएं बहुत पहले ही गठित हो चुकी थी। मुगल सूबेदारों ने कितनी ही प्रकार की स्थानीय लोक सेवाएं बनाईं और विकसित कीं तथा उन्हें कार्यों शक्तियों विशेषाधिकारों एवं उत्तरदायित्वों से भी अभिसिंचित किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लन्दन से अपने कम्पनी सेवक चुनते समय अत्यन्त सावधानी बरती किन्तु सुसंगठित काडर प्रणाली के अभाव के कारण उस शताब्दी का आचार संहिता ने सारी व्यवस्था को लूट प्रथा में बदल डाला। इसके अतिरिक्त कम्पनी एक वाणिज्यिक संस्था थी और वाणिज्यीय नौकरियों की प्रकृति योग्यता पर आधारित प्रशासकीय सेवाओं के विकास में एक भारी बाधा सिद्ध हुई। फिर भी वारेन हेस्टिंग्ज तथा लार्ड कार्नवालिस जैसे गवर्नर जनरलों ने भू-राजस्व की वसूली तथा शान्ति और

1 पी डी शर्मा जुलाई 1975 का राजशास्त्र समीक्षा में प्रकाशित लेख भारतीय लोक सेवा संरचना की विसंगतियाँ पृष्ठ 14–17

व्यवस्था की स्थापना के क्षेत्र म लार्ड मेवाम्रा की म्राधारशिला रखकर ग्रत्यत नी स्पृहणीय प्रारम्भिक काय किया। सन् 1781 की के नीवरण योजना क अनुसार राजस्व मण्डल (बोर्ड ग्राफ रेवेन्यू) का गठन हुग्रा। 6 वष बाद सन् 1787 मे एक ग्र य योजना के ग्रतगत जिला कलक्टर के पद म जिला राजस्व मजिस्ट्रेसी तथा याय प्रशासन का काय एकीकृत किया गया। सेटनकार क ग्रनुमार कानवालिस कोड न सत्ता की सीमाग्रा को परिभाषित किया याय की भ्रूण हत्या के विरुद्ध नियमित अपीली व्यवस्था की पद्धतियाँ निर्मित की ग्रौर राजस्व पुलिस तथा दीवानी ग्रौर फौजदारी यायिक क्षेत्रा मे भारतीय लोक सेवाग्रा का स्थापना की।

लाड वलजली न ग्रपने लोक प्रशासको का बडी सावधानी से चयन कर उन्ह फोर्ट विलियम कॉलेज म प्रशिक्षणाथ भेजा। मुनरो माल्कम मेटकाफ एलफिन्स्टन तथा ग्र य कितने ही गणमान्य लोक सेवकों ने इसी युग म लाड वलेजली के ग्रधीन ग्रपना करियर ग्रारम्भ किया। इन सुयोग्य सेवका न स्थायी प्रशासन क क्षेत्र मे ऐसी नयी ग्रौर गौरवशाला परम्पराग्रों की सृष्टि की जिनके महत्त्वपूण परिणाम ग्रागामी पीढी के लिए ग्र य न उपयोगी सिद्ध हुए। इस समय तक भारतवष के ग्रौपनिवेशिक प्रशासन मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा कवनेंटेड (प्रसविद) ग्रौर ग्रनकवनेंटेड (ग्रप्रसविद) दो प्रकार की सेवा व्यवस्थाए जन्म ले चुका थी। ग्रप्रसविद (ग्रनकवेनेंटेड) लोक सेवा की ग्रावश्यकता कम्पनी प्रशासन न इसलिए ग्रनुभव की कि कम्पनी क राजनीतिक काय बढ़त जा रहे थे ग्रौर लार्ड विलियम ब टक उदार भारतीयकरण का नीति क प्रबल पापका म स एक था। बोर्ड ग्राफ ड यरेक्टस क द्वारा मनोनयन नीति का दुरुपयोग जब एक भ्रष्टाचार काण्ड के रूप म कम्पनी प्रशासन को बदनाम करन लगा ता सन् 1854 म सर चार्ल्स वुड न लाड मेकाल की ग्रध्यक्षता म एक समिति नियुक्त कर स्थिति को सामा य बनाने की कोशिश की। इस समिति ने उन नियमो तथा उपनियमो की यवस्था की जिनके ग्रनुसार कवेनेंटेड (प्रसविद) लोक सेवा सामा य उन्मुक्त प्रतियोगिता क लिए खोल दी गई। फलत हलीबरी कॉलेज जो ग्रब तक भर्ती ग्रौर प्रशिक्षण का केन्द्र था सन् 1885 म बन्द कर दिया गया।

सन् 1858 म कम्पनी शासन के ग्र त ग्रौर उसक स्थान पर ब्रिटिश क्राउन की सरकार की स्थापना ने प्रशासन तन्त्र को सरकार बना दिया। सर एडमण्ड ब्लट के शब्दा म उच्च भारतीय प्रशासनाधिकारी वास्तव म भारत के मालिक (ग्रोनर) बन बठे। किसी सत्ता के प्रति उत्तरदायी होने क स्थान पर वे स्वय को ग्रापस म एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी समझने लगे। इस मनोवृत्ति का एक परिणाम यह निकला कि भारतीय प्रशासन मे उच्च सेवाग्रो के भारतीयकरण की माँग उठने लगी। सन् 1886 स 1923 तक जिन शाही ग्रायोगो की नियुक्ति हुई वे भारतीय लोक-सेवाग्रो के इतिहास म तीन चरण कहे जा सकते हैं। प्रथम ग्रायोग

न (जिसे एचीसन आयोग 1886 भी कहा जाता है) भारत सरकार को यह सलाह दी कि वह स्टेट्यूटरी सिविल सर्विस (संविधिक नागरिक सेवा) व्यवस्था को समाप्त कर प्रान्तीय लोक सेवाओं का गठन करे। इस आयोग ने कवेनेंटेड लोक सेवाओं में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड और भारतवर्ष में साथ-साथ प्रतियोगी परीक्षा के प्रस्ताव को अस्वीकार किया किन्तु उसकी अन्य सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने कम्पनी सेवाओं में चले आ रहे कवेनेंटेड तथा अनकवेनेंटेड के भेद को समाप्त कर इम्पीरियल (साम्राज्यिक) और प्राविन्शियल (प्रान्तीय) लोक सेवाओं से दो नये वर्गों का गठन किया। दूसरा आयोग, जिसे इस्लिंगटन आयोग के नाम से अधिक जाना जाता है सन् 1917 में गठित हुआ। इस आयोग ने इंगलैण्ड और भारत में साथ साथ ली जाने वाली प्रतियोगिता भर्ती परीक्षाओं की राष्ट्रीय माँग को स्वीकृति दी। इसने यह भी अनुशंसा की कि भारतीय उच्च लोक सेवाओं में 25 प्रतिशत पद भारतीयों के लिए सुरक्षित रख जायें और इन सुरक्षित पदों पर चुने जाने वाले कुछ भारतीय प्रत्यक्ष भर्ती व्यवस्था द्वारा लिए जाय और शेष को प्रान्तीय लोक सेवाओं में से पदोन्नत किया जाए। आयोग ने इम्पीरियल और प्राविंसियल लोक सेवाओं के गठन पर बल ही नहीं दिया वरन् उनके सम्बन्धों के विकास के लिए भी दिशा निर्देश प्रस्तुत किये। सन् 1923 में रायल कमीशन (जिसे ली आयोग के नाम से जाना जाता है) गठित किया गया। इस आयोग के अध्यक्ष ली आफ फेरहम बने। ली की यह निश्चित मान्यता थी कि द्वैध शासन व्यवस्था के अन्तर्गत जो विषय हस्तान्तरित प्रान्तीय विषय हैं उनके प्रशासन को चलाने वाली प्रान्तीय लोक सेवाओं पर राजनीतिक नियन्त्रण को कठोर बनाया जाये। इस आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप ही भारतीय लोक सेवाओं में भारतीयकरण की प्रक्रिया के दो भिन्न भिन्न रूप सामने आये। एक आई.सी.एस. में भारतीयकरण और दूसरा केन्द्रीय सेवाओं में भारतीयकरण। सन् 1919 का भारत सरकार अधिनियम वह पहला कानूनी पत्र था जिसने ब्रिटिश क्राउन की इन सेवाओं का एक निश्चित एवं सुस्पष्ट वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इस अधिनियम के अनुसार जिन सेवाओं और विभागों के सदस्य स्थायी तथा प्रत्यक्ष रूप से सुप्रीम गवर्नमेंट के अधीन थे उन्हें भविष्य में सेंट्रल सर्विसेज या केन्द्रीय सेवायें कहा गया। इस प्रकार की सेवायें थी—रेलवे कस्टम, आडिट एण्ड अकाउंटस तथा मिलिट्री अकाउंटस। इसी प्रकार इस श्रेणी के विभागों में डाकतार विभाग के कर्मचारी आये हैं जिन्हें इम्पीरियल सर्विस का स्तर नहीं दिया गया। अन्य इम्पीरियल सेवाओं का फिर से नामकरण किया गया और उन्हें अखिल भारतीय सेवाओं की संज्ञा दी गई। ये आल इण्डिया सर्विसेज थी। इण्डियन सिविल सर्विस (आई.सी.एस.) इण्डिया पुलिस (आई.पी.) इण्डिया सर्विस आफ इंजीनियर्स तथा [illegible] भारतमंत्री के

अभिभावकत्व में अपना अपना कार्य करती थी। प्रान्तीय सेवाओं के नाम उनके अपने प्रान्तों के नाम पर रखे गये जैसे बम्बई सिविल सर्विस, मद्रास सिविल सर्विस इत्यादि। साइमन योजना के अनुसार प्रस्तावित इन संघीय और प्रान्तीय लोक सेवाओं के अधिकारों और विशेषाधिकारों को सन् 1935 के भारत अधिनियम में कानूनी रूप दिया गया और इन सेवाओं के कर्मियों की पदोन्नति, वेतनमान, अवकाश व सेवानिवृत्ति की शर्तों इत्यादि की व्यवस्था को सुरक्षित बनाया गया। इसी अधिनियम ने संघीय तथा प्रान्तीय लोक-सेवा आयोगों का गठन किया जिनका कार्य दोनों प्रकार की लोक सेवाओं के विभिन्न क्षेत्रों में कार्मिक अभिकरणों के रूप में कार्य करते रहना था।

लोक सेवाओं का ब्रिटिशकालीन यह संक्षिप्त विवरण लोक सेवाओं के गठन के विषय में निम्नलिखित निष्कर्षों की ओर संकेत करता है[1]—

1 बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतवर्ष में लोक सेवाओं का जो संगठन हुआ और जिसे प्रकृति विकसित होकर सामने आई उसमें राजस्व वसूली तथा कानून और व्यवस्था बनाये रखने के साम्राज्यवादी हित सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक तत्व रहे।

2 औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में संघीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिस केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ने जन्म लिया उसमें तीन प्रकार की लोक सेवाएं उभर कर सामने आईं—(i) अखिल भारतीय सेवाएं (ii) केन्द्रीय सेवाएं तथा (iii) प्रान्तीय सेवाएं। अखिल भारतीय सेवाओं से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे लोकतन्त्रात्मक तथा संघीय व्यवस्था के प्रयोग में अपनी विशेष भूमिका निभायेंगी।

3 साम्राज्यवादी युग में विकास और कल्याण सम्बन्धी गतिविधियों के अभाव में तथा औपनिवेशिक सरकार के राजस्व तथा मजिस्टसी के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण केन्द्र तथा प्रान्त दोनों ही स्तरों पर तकनीकी एवं विशेषज्ञ लोक सेवाएं या तो जन्म ही नहीं ले सकीं अथवा अधीनस्थ स्थिति में रहते हुए अपने अपने शैशवकाल में ही बनी रहीं।

प्रान्तों का पुनर्गठन—ब्रिटिश युग में विभिन्न राजनीतिक और गैर राजनीतिक कारणों से तीन प्रकार की राजनीतिक इकाइयों का जन्म हुआ—(1) गवर्नर के प्रान्त (2) लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के प्रान्त एवं (3) चीफ कमिश्नर के प्रान्त। गवर्नर के प्रान्तों में गवर्नर की सहायता के लिए कौंसिलें होती थीं जबकि शेष दो प्रान्तों का प्रशासन बिना कौंसिलों के चलाया जाता था। भारत में प्रान्तों का निर्माण तीन प्रेसीडेंसी टाउनों के विस्तार के साथ प्रारम्भ हुआ जो बाद में बम्बई, बंगाल और मद्रास के मुख्य प्रान्त कहलाये। ब्रिटिश शासन के प्रसार के साथ साथ नये प्रान्तों का निर्माण शुरू हुआ जिसमें आगरा और प्रेसीडेन्सी बंगाल असम बिहार उड़ीसा

1 वही पृष्ठ 17–1

पंजाब यू पी सी पी और सिंध के नाम उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजों ने बड़े (Major) तथा छोटे (Minor) प्रान्तों का नाम दिया और इनके तत्वावधान में सम्पूर्ण जिला प्रशासन का निर्माण किया। प्रान्तीय स्तर पर विभिन्न समितियाँ नियुक्त हुईं जिन्होंने अलग अलग प्रान्तों में प्रशासन के संगठन और विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। 1935 के अधिनियम ने भारतीय मानचित्र को बदला। स्वतन्त्रता प्राप्ति तक कांग्रेस भाषायी प्रान्तों को प्रशासन के जनतन्त्रीय साधन मानती रही और स्वतन्त्र भारत की सरकार ने भारतीय संविधान में ए बी सी राज्य में बँटे हुए भारतीय मानचित्र को फजल और आयोग 1955 की सिफारिशों पर भाषायी ढंग से पुनर्गठित किया जिसके फलस्वरूप आन्ध्र महाराष्ट्र हरियाणा आदि कितने ही नये राज्य बने।

वित्त प्रशासन—वित्त प्रशासन के विकास का इतिहास भारत में केन्द्र राज्य सम्बन्ध का इतिहास है। सन् 1858 से 1919 तक के काल में देश में जिस केन्द्रीकृत व्यवस्था ने जन्म लिया, उसके अन्तर्गत वित्त का विकेन्द्रीकरण करना लगभग असम्भव था। 1919 से 1947 के बीच विकेन्द्रीकरण के कितने ही प्रयोगों के बावजूद व्यवहार में प्रान्तीय सरकारों की स्थिति केन्द्रीय सरकारों के एजेन्ट की बनी रही और केन्द्रीकृत व्यवस्था में कोई दरार नहीं आयी।

राजस्व और न्याय प्रशासन[1]—अंग्रेजों ने जब देश का शासन सम्भाला तो उन्होंने मुगल व्यवस्था के चारों ओर राजस्व वसूली के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का विकसित किया। इन सिद्धान्तों को विकसित करने के लिए उन्होंने दो मुख्य तत्त्व निर्धारित किये—एक तो यह कि राजस्व व्यवस्था ऐसी न हो कि वह सन् 1857 जैसी राजनीतिक अव्यवस्था और गदर की स्थिति को दोहराये, दूसरी यह कि राजस्व प्रशासन में भारतीय ग्रामीण जीवन कृषि व्यवस्था उत्पादन स्थिति और आपातकालीन स्थिति को देखते हुए सिद्धान्तों का निर्धारण और निरूपण किया जाय। अंग्रेजों ने राजस्व प्रशासन के लिए इस बात को भी महत्त्वपूर्ण माना कि सभी प्रान्तों में छोटे छोटे स्तर पर एक ऐसा प्रशासनिक संगठन खड़ा किया जाय जिसमें न्यायालयों का एक पद-सोपान हो और यह प्रशासनिक संगठन राजस्व प्रशासन की नीतियों का क्रियान्वित कर सके।

अंग्रेजों ने भारत में में राजस्व प्रशासन के दो मुख्य सिद्धान्त प्रतिस्थापित किये—(1) उन्होंने सम्पत्ति जैसी संस्था को कानून के माध्यम से भूमि के साथ जोड़ा। जो जमीन पहले केवल एक जमीन मात्र थी वह राजस्व नियमों के अन्तर्गत भू सम्पत्ति के रूप में कानूनी संरक्षण का विषय बनी (2) उन्होंने कृषकवर्ग के अधिकारों की सम्पत्ति के माध्यम से व्याख्या की और कृषकों के माल गुजारी या दीवानी अधिकारों

1 पी डी शर्मा जुलाई 1973 की राजस्थान समीक्षा में प्रकाशित लेख भारत का प्रशासनिक इतिहास पृष्ठ 57

को सुरक्षित करने के लिए राजस्व विधि (Revenue Laws) राजस्व अधिकरण (Revenue Courts) तथा राजस्व न्यायाधीश (Revenue Magistrates) की व्यवस्था की। नीचे के स्तर पर मुगलकालीन पटवारी गिरदावर कानूनगो तहसीलदार के पद यथावत ही बने रहे। किन्तु उनके ऊपर के स्तर पर राजस्व अधिकारियों का एक लम्बा और ऊँचा पद सोपान खड़ा कर दिया गया और उनको नये कानून और नयी नीतियों को क्रियान्वित करने का कार्य सौंपा गया। राजस्व मण्डल का नया प्रान्तीय संगठन अस्तित्व में आया और डिवीजनल कमिश्नरों के माध्यम से जिला स्तर पर पर्यवेक्षण का कार्य चलता रहा। राजस्व प्रशासन की भाँति न्याय प्रशासन भी भारतीय और ब्रिटिश पद्धतियों तथा संस्थाओं का सम्मिश्रण था। सन् 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने न्याय व्यवस्था पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया था। उन्होंने मुगलकालीन परम्पराओं को सुरक्षित रखते हुए उसमें न्याय के अंग्रेजी सिद्धान्तों को मूर्तरूप देने की कोशिश की। होल्ट मैकेंजी नामक एक अंग्रेज आई सी एस अधिकारी ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये जिनके आधार पर भारत में न्याय प्रशासन का विकास दो दिशाओं में हुआ—(1) दीवानी और फौजदारी न्याय को अलग अलग व्यवस्थाओं के रूप में अलग अलग कानूनों और प्रक्रिया विधियों के रूप में सुधारा एवं विकसित किया गया। (2) भारत जैसे कानूनी विभिन्नता के देश में जहाँ धर्म जाति क्षेत्र सम्बन्धी विभिन्न पूर्ण परम्पराओं और कानूनों का जाल फैला हुआ था उन्होंने कानून के संहिताकरण और एकीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल की जिससे कालान्तर में कानून के शासन का सिद्धान्त जन्म ले सका। 83496 169/12423

सन् 1935 तक भारत का न्याय प्रशासन स्वतन्त्र न्यायपालिका के सिद्धान्त की अवहेलना करता रहा किन्तु सन् 1935 के अधिनियम में पहली बार यह स्वीकार किया गया कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय न्याय व्यवस्थाएं पृथक् की जायें और संघीय न्यायालय जैसी स्वतन्त्र अस्तित्व वाली संस्था भारत में स्थापित की जाय।

न्याय प्रशासन के एक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में पुलिस प्रशासन भी रहा। अंग्रेजों ने जान-बूझकर पुलिस प्रशासन को लगभग अविकसित स्थिति में रखा। सन् 1857 की क्रान्ति के बाद अंग्रेजों ने पुलिस व्यवस्था को सम्भालने की दिशा में गम्भीरतापूर्वक सोचा और सन् 1861 का पुलिस अधिनियम बनाकर एक महत्त्वपूर्ण पहल की। पुलिस को प्रान्तीय विषय बनाकर अंग्रेजों ने उत्तरदायित्व सिद्धान्त को प्रोत्साहन दिया लेकिन दूसरी ओर उनकी यह मजबूरी भी बनी रही कि वे अखिल भारतीय पुलिस संगठन जैसी चीज भारत जैसे विशाल देश में व्यावहारिक नहीं थी। अंग्रेजों ने भारतीय पुलिस को ग्रामीण व्यवस्था के साथ मिलाकर देखा और फलतः भारतीयों के स्वाधीनता संग्राम की प्रगति के साथ साथ पुलिस प्रशासन के इतिहास का अप्रकाशित सन्दर्भों में देखा गया—

(1) पुलिस सिविल प्रशासन या कलक्टर के अधिरक्षण (Supervision) में काम करे और कानून तथा व्यवस्था का अधिकारी पुलिस अधीक्षक न होकर जिलाधीश को माना जाय।

(2) पुलिस की प्रक्रियाओं को न्याय प्रशासन की प्रक्रियाओं के साथ अखिल भारतीय अधिनियम आई पी सी सी आर पी सी और इण्डियन ऐविडेंस एक्ट के अन्तर्गत सुनियोजित किया जाय।

(3) पुलिस प्रशासन में नीचे के स्तर पर स्थानीय और उच्च स्तर पर आई सी एस की तुलना मे कम योग्य अंग्रेजों को जो मानसिक की अपेक्षा शारीरिक दृष्टि से अधिक कुशल थे लिया गया।

पुलिस प्रशासन को जानबूझकर अपरिवर्तित रखना अंग्रेजों की नीति थी और यही कारण था कि सौ वर्ष के लम्बे इतिहास में पुलिस का आधुनिकीकरण विशेषीकरण तथा जनतन्त्रीकरण सम्भव नहीं हो सका। पुलिस प्रशासन के वर्ग यूरोपीय प्रान्तीय अपर सबोर्डिनेट और लोअर सबोर्डिनेट के रूप में चलते रहे और प्रान्तों के गृह मन्त्रालय इनका प्रशासनिक उत्तरदायित्व सम्हाले रहे यहाँ तक कि बड़े शहरों की पुलिस भी बहुत कम विशेषज्ञ पुलिस बन सकी।

स्थानीय प्रशासन—अंग्रेजों के भारत आगमन के समय तक मुगल-इतिहास की केन्द्रीकृत परम्पराओं के कारण स्वराज जैसी संस्थाएं लगभग नष्ट हो चुकी थीं। अंग्रेज अपने देश में स्थानीय स्वाराज के समर्थक रहे थे लेकिन भारत में उनके सामने दुविधा यह थी कि यदि स्थानीय स्वराज को विकसित किया जाय तो उसके फलस्वरूप आने वाले जन जागरण पर साम्राज्यवाद नहीं चल सकता।

ब्रिटिश शासन काल में भारत में स्थानीय स्वराज का विकास उल्टे ढंग से हुआ। वह गाँवों के बदले पहले शहरों में शुरू हुआ। वह कुछ क्षेत्रों में पूर्ण विकसित होकर बाद के युग में धीरे धीरे विकसित हुआ। उसमें अंग्रेजी राजनीति के सिद्धान्त और भारतीय जीवन की जाति धर्म की विशेषताएं आपस में टकराती रहीं और वह विकेन्द्रीकरण के विश्वास और केन्द्रीकरण की आवश्यकताओं के बीच झूलता रहा। फिर भी यह कहना अयुक्ति नहीं होगी कि आज जो भी स्थानीय स्वराज्य भारत में विकसित हो सका है उसका पूरा श्रेय अंग्रेजों को ही दिया जाना चाहिए। आर्थिक समस्यायें स्थानीय जातिवाद भारतीयकरण की नीतियाँ जिला प्रशासन का सन्दर्भ इसके विकास का दम घोटते रहे किन्तु इन सब बाधाओं के बावजूद कुछ तत्त्व इसे आगे बढ़ाते रहे। भारत में स्थानीय स्वराज्य का विकास तीन युगों से गुजरा। पहला सन् 1857 से 1892 तक दूसरा सन् 1892 से 1919 तक और तीसरा सन् 1919 से 1947 तक। पहले युग में कम्पनी शासन ने जो थोड़ी बहुत मेयर कोर्ट और म्युनिसिपल मजिस्ट्रेटों की संस्थाएं स्थापित कीं उन्होंने कलकत्ता बम्बई और मद्रास शहरों में काफी सफलतापूर्वक कार्य किया। सन् 1892 तक इन तीनों बड़े शहरों में स्थानीय स्वराज का विकास उत्साहवर्द्धक

रहा। लॉर्ड रिपन का वायसरायकाल भारत में स्थानीय स्वराज्य का स्वर्णकाल था। उसी के समय में चुनाव सिद्धान्त के साथ-साथ देश के अलग अलग प्रान्तों में स्थानीय स्वराज्य का जाल फैला और राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। किन्तु सन् 1909 के विकेन्द्रीकरण प्रतिवेदन ने रिपन की नीति को समाप्त करने की कोशिश की और सन 1909 के मार्ले मिंटो सुधारों के आते आते अंग्रेजों का भारतीयों में अविश्वास काफी बढ़ गया और स्थानीय स्वराज्य के विकास की गति रुक गया। सन् 1909 से 1947 के काल में स्थानीय स्वराज्य के विकास को कोई उल्लेखनीय गति नहीं मिली। आजादी के बाद स्थानीय स्वराज्य के विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं।

इस प्रकार भारतीय प्रशासन का विकास ब्रिटिश शासन की नीति और तत्कालीन देश और प्रान्तों की परिस्थितियों की अन्तःप्रक्रियाओं के फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ता हुआ स्वतन्त्र भारत के प्रशासन की स्थिति तक पहुँचा। अंग्रेज जो प्रशासन का एक नया कानूनी दर्शन लेकर हिन्दुस्तान आये थे अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए हिन्दू समाज की जातिवादी एवं परिवार व्यवस्था के साथ कोई छेड़छाड़ करना नहीं चाहते थे। इसी प्रकार साम्राज्यवादी सन्दर्भ में यह भी सम्भव नहीं था कि प्रचलित मुगलकालीन नौकरशाही या सामन्तवादी प्रशासनतन्त्र को समाप्त कर कोई नया प्रयोग किया जाय। फलस्वरूप अंग्रेजी जीवन दर्शन और प्रशासन की मान्यताओं का भारतीय प्रशासन में हिन्दू एवं मुगल ढाँचा के साथ प्रयोग किया गया। परिणाम यह निकला कि इस विकास क्रम से निकल कर आने वाला भारतीय प्रशासन तीनों व्यवस्थाओं की अच्छाइयाँ ग्रहण करने के स्थान पर अन्तर्विरोधों में फँस कर रह गया। भारतीय प्रशासन के विकास के इतिहास में साम्राज्यवाद की अवहेलना करना अंग्रेजी शासन के लिए आत्महत्या सिद्ध हो सकता था इसीलिए विकास के इतिहास में एक केन्द्रीभूत प्रशासन (Centralized Administration) तथा जिला प्रशासन पर अधिक बल रहा और विकास प्रशासन (Development Administration) का नाम तक सुनने को नहीं मिला। सन् 1857 के तथाकथित गदर के पश्चात् अंग्रेजों ने यह कोशिश की कि भारतीय उच्च सेवाओं पर योग्य अंग्रेज युवकों का वर्चस्व बना रहे और राष्ट्रीयतावादी भारतीयकरण की माँग को प्रशासनिक सेवाओं के निम्न स्तरों पर धीरे धीरे खपाया जाय। उन्होंने सेवाओं की न केवल भारतीयों को प्रशासनिक प्रशिक्षण देने का ही संकल्प लिया बल्कि समय-समय पर उन्हें कौंसिलों में मनोनीत कर राजनीतिक साझेदारी को भी प्रोत्साहित किया। नौकरशाही प्रशासकों की स्वामिभक्तिपूर्ण यह राजनीतिक भूमिका एक ओर आन्दोलनों का कारण बनी तो दूसरी ओर तर्क यह दिया गया कि भारतीय सेवाओं को अनाम बेनाम एवं तटस्थ भाव से प्रशासन चलाने का कार्य एवं प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इस तर्क के द्वारा भारतीय सेवाओं के उच्च भारतीय अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे भारत की राष्ट्रीय राजनीति

मे तटस्थ रहे और स्वामिभक्ति से काय करें किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि अंग्रेज आई सी एस अधिकारी अपने देश की साम्राज्यवादी राजनीति के प्रति तटस्थ होकर निरपेक्ष हो जाय।

अंग्रेज जब भारत मे प्रशासनिक सगठन एव सेवाओं के विकास म लगे हुए थे तब उनका एक प्रयास यह भी था कि प्रशासन के माध्यम से वे अपनी सैनिक एव कूटनीतिक विजय को भारतीय जनता की दृष्टि म उचित स्थान दिलावें। इस दृष्टि से उन्होंने सारे देश म एक सी कानून व्यवस्था को स्थापित किया जो आज कानून का शासन कहलाती है। अंग्रेजों ने सारे देश के लिए कानून का पजीकरण किया प्रादेशिकता का सम्मान करते हुए कुशलता एव मितव्ययता के सिद्धान्तों को प्रशासन मे बद्ध करने के लिए मनोबल से प्रयोग किये और व्यक्तिगत सेवा और स्वामिभक्ति की सस्कृति मे अनुबन्ध सेवाओं (Contract Services) के ढाचे को विकसित किया। इस सन्दर्भ सीमा मे उनके अपने निहित स्वार्थ थे किन्तु सुधार एव विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि भारतीय समाज म एक अंग्रेजी पढ लिखे शहरी मध्यम वर्ग को पैदा कर उन्हें सरकारी सेवाओं की ओर आकर्षित होने के लिए प्रेरित किया जाय। शासक और शासित के बीच का यह प्रशासकीय भारतीय मध्यम वर्ग धीरे धीरे अंग्रेजी व्यवस्था का आधार-स्तम्भ बना और इसका सहारा लेकर जहा एक ओर प्रशासन में योग्यता और भारतीयकरण के सिद्धान्त पनपे वहीं दूसरी ओर एक ऐसी प्रजातान्त्रिक नौकरशाही का विकास हुआ जिसे सामान्य परिवर्तित स्थिति से तालमेल बठाने म आज भी कठिनाइयाँ आ रही हैं।

सक्षेप मे ब्रिटिश काल म भारतीय सविधान और प्रशासन के विकास का इतिहास राष्ट्रीय आन्दोलन के परिवेश म विकसित होने वाली प्रवृत्तियो के प्रभाव और उपलब्धियो का इतिहास है। प्रशासन के माध्यम से अंग्रेजो ने अपनी जीत का औचित्यीकरण (लजिटिमाइजेशन) किया साम्राज्यवाद को सीधा और साथ साथ अपने राजनीतिक दशन के आधार पर नयी सस्थाए बनायीं और मुगल कालीन सस्थाओं का नवीनीकरण किया। मुगल युग म जो प्रशासन क्रियात्मक रूप मे केन्द्रीकृत था वह धीरे धीरे अंग्रेजी युग मे भौगोलिक एव कार्यात्मक रूप से (ज्योग्राफिकली एण्ड फकशनली) केन्द्रीकृत बना। सेवाओं म विशेषीकरण पनपा और प्रशासनतन्त्र सरकारी व्यवस्था के कायकलापो के साथ इतना व्यापक बना कि स्थानीय इकाइयाँ और सस्थाए बौना बन कर रह गयी। विकास के उदारतावादी सिद्धान्तो के बावजूद भी भारतीय समाज भारतीय प्रशासन से अछूता एव पृथक रहा जिसके फलस्वरूप भारतीय प्रशासक एक दूसरे से निकटता से सम्बन्धित होते हुए भी अपनी अलग अलग दुनियाओं मे जीते और सोते रहे। आज भी भारतीय प्रशासन की सबसे बडी चुनौती यही है कि वह जिस समाज का प्रशासन चला रहा है उसका सच्चे अर्थों मे प्रतिनिधि बन और उसके प्रति प्रभावी रूप से अपना सही उत्तरदायित्व निभा सके।

स्वातन्त्र्योत्तर प्रशासन

15 अगस्त 1947 को भारत दासता की जंजीरों से मुक्त हुआ। 25 जनवरी 1950 को स्वतन्त्र भारत का संविधान लागू होने तक भारत पर शासन ब्रिटिश पद्धति पर ही (जैसा स्वतन्त्रता के पूर्व था) चलता रहा। केन्द्रीय प्रशासन 1935 के अधिनियम के अनुसार जारी रहा। 26 जनवरी 1950 को स्वतन्त्र भारत के संविधान के लागू होने के पश्चात् भारतीय प्रशासन के सन्दर्भ में मूलभूत बात स्पष्ट हुई।

प्रथम केन्द्र और राज्य दोनों ही स्तरों पर संसदीय प्रकार के लोकतन्त्र की स्थापना और निर्वाचित विधानमण्डल के प्रति कार्यपालिका का उत्तरदायित्व।

द्वितीय संघात्मक शासन प्रणाली जिसमें केन्द्र और राज्यों के बीच संविधान द्वारा शक्तियों का विभाजन इस तरह कि केन्द्र शक्तिशाली बना रहे और संकटकाल में राज्यों के प्रशासन को भी अपने हाथ में ले सके।

भारत की सांविधानिक व्यवस्था से यह स्पष्ट हो गया कि लम्बे पूर्व अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर वेस्ट मिंस्टर प्रारूप को प्रमुख प्राथमिकता देकर ब्रिटिश पद्धति की संसदात्मक सरकार को स्वीकार किया है जिसमें प्रधानमन्त्री और मन्त्रिपरिषद् का विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। संसद् में अपने दल को बहुमत और विश्वास प्राप्त कर वही देश के वास्तविक प्रशासन को संचालित नियन्त्रित और निर्देशित करता है। संविधान के अनुसार केन्द्रीय सरकार की कार्यपालिका शक्तियाँ यद्यपि राष्ट्रपति में निहित हैं तथापि संविधान की विभिन्न धाराएं यह भी सुनिश्चित कर देती हैं कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट के समरूप औपचारिक प्रमुख के रूप में प्रधानमन्त्री और मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से कार्य करेगा। प्रधानमन्त्री अपनी केबिनेट के प्रमुख के रूप में सम्पूर्ण केन्द्रीय कार्यपालिकीय प्रशासन का नेतृत्व करेगा। ब्रिटिश संसदीय प्रणाली की भांति व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखेगी अर्थात् प्रधानमन्त्री और उसकी मन्त्रिपरिषद् अपने समस्त कार्यों के लिए सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगा। इंग्लैण्ड की भांति भारत में भी कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के मध्य शक्तियों के पृथक्करण का अभाव है।

राष्ट्रपति की स्थिति सांविधानिक अध्यक्ष की है वास्तविक शक्ति मन्त्रिपरिषद् में निहित है। राष्ट्रपति राज्य का प्रधान है शासन का प्रधान नहीं। शासन का समस्त कार्य प्रधानमन्त्री और उसके सहयोगियों के हाथ में है। राष्ट्रपति अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग मन्त्रिपरिषद् की सहायता और मन्त्रणा से करता है और मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। सांविधानिक प्रधान होने का यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति के पद का कोई महत्त्व ही नहीं है। वह राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। वह सरकार

द्वारा शासन संचालन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह दलगत राजनीति से ऊपर रहकर और एक निष्पक्ष व्यक्ति होने के नाते मंत्रि-परिषद् के निर्णयों पर काफी प्रभाव डाल सकता है और समय समय पर प्रधानमन्त्री को उचित सलाह दे सकता है। ये सब बातें बहुत हद तक उसके व्यक्तित्व पर आधारित हैं।

भारत में प्रशासन की धुरी प्रधानमन्त्री है जो अपने सहयोगियों की सहायता से कार्यपालिका और संसद् दोनों का वास्तविक नेतृत्व करता है। प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रि-परिषद् ही राज्य को चलाने वाला यन्त्र है और यही वह धुरी है जिसके चारों ओर सरकारी चक्र घूमता है। मन्त्रि-परिषद् के सदस्य तीन श्रेणियों में विभक्त हैं—मन्त्रि मण्डलीय अथवा केबिनेट मन्त्री, राज्य मन्त्री तथा उपमन्त्री। केबिनेट मन्त्री मन्त्री-परिषद् के सर्वप्रमुख सदस्य होते हैं। इनकी समिति को मन्त्रि मण्डल अथवा कबिनेट (Cabinet) कहा जाता है जो मन्त्रि-परिषद् की धुरी होता है। मन्त्रि मण्डल स्तर का मन्त्री किसी एक मन्त्रालय का प्रमुख होता है और कितनी ही बार एक ही मन्त्री को एक से अधिक मन्त्रालयों का प्रमुख नियुक्त कर दिया जाता है। कभी कभी किसी मन्त्री को बिना विभाग का मन्त्री (अविभागीय मन्त्री) भी बना दिया जाता है। राज्य स्तर के मन्त्री को या तो किसी विभाग का प्रमुख बना दिया जाता है अथवा किसी मन्त्रिमण्डल स्तर के मन्त्री के साथ सहयोग के लिए रख लिया जाता है। उपमन्त्री को प्राय स्वतन्त्र उत्तरदायित्व नहीं सौंपा जाता। वह मन्त्रिमण्डल के स्तर के मन्त्री या राज्य मन्त्री को उनके कार्यों में सहयोग प्रदान करता है।

मन्त्रि मण्डल सम्पूर्ण देश के सुप्रबन्ध के लिए उत्तरदायी है। मन्त्रि मण्डल द्वारा नीति निर्धारित कर चुकने के उपरान्त सम्बद्ध विभाग उन निर्धारित नीति की क्रियान्विति या तो प्रचलित विधि के अनुसार करते हैं अथवा संसद् को नया विधेयक प्रस्तावित करते हैं। मन्त्रि मण्डल ही संसद् का कार्यवाही करने का आदेश देता है और जब तक संसद् का बहुमत मन्त्रिमण्डल के प्रति निष्ठावान है तब तक मन्त्रिमण्डल अपनी कठिन नीति संसद् से स्वीकार करा लेता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपने-अपने विभागों का प्रबन्ध करते हैं और अपने कार्यों के लिए सामूहिक रूप से संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं। मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण नियुक्तियों के सम्बन्ध में परामर्श देता है या सिफारिश करता है और इस परामर्श अथवा सिफारिश को ठुकराया नहीं जाता। सरकार के विभिन्न विभागों में तालमेल बैठाना मन्त्रिमण्डल का ही काम है। मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय नीतियों को निश्चित करने वाली देश के सर्वोच्च पदाधिकारियों का नियन्त्रण करने वाली शासकीय विभागों के आपसी झगड़ों का निपटारा करने वाला तथा सरकार के विभिन्न विभागों में तालमेल रखने वाली महत्वपूर्ण संस्था है।

मन्त्रिमण्डल के पास कार्य भार इतना अधिक होता है कि वह शासन की

बारीकियों पर ध्यान नहीं दे पाता अत उसे परामर्श देने के लिए दो प्रकार के स्टाफ अभिकरण हैं—मन्त्रिमण्डलीय समितियाँ और मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय। मन्त्रिमण्डलीय समितियाँ दो प्रकार की हैं—स्थाई (स्टैण्डिंग) तथा तदर्थ (एडहाक)। स्थायी समितियों मे प्रतिरक्षा वित्तीय प्रशासनिक सगठन ससदीय एव विधि सम्बन्धी समितियों की गणना होती है। तदर्थ समितियों का निर्माण समयानुसार तब किया जाता है जब आवश्यक और नवीन समस्याए उपस्थित हो जाती हैं। *विभिन्न मन्त्रालयों विभागों के लिए परामर्शदात्री समितियाँ हैं जो मन्त्रालयों और* ससद दोनो के बीच विचार विमर्श के लिए एक मच का काम करती हैं।

मन्त्रालय अपने उत्तरदायित्व के क्षेत्र के भीतर सरकार की नीति के निर्माण के लिए और उस नीति के निष्पादन तथा उसके पुनरीक्षण के लिए जिम्मेदार होता है। सामान्यत भारत सरकार का एक सचिव एक मन्त्रालय का प्रशासनिक प्रमुख होता है। वह अपने मन्त्रालय के भीतर नीति और प्रशासन सम्बन्धी सभी मामलों में बारे मे मन्त्री का मुख्य सलाहकार होता है। जहाँ किसी मन्त्रालय मे काम की मात्रा इतनी अधिक हो कि एक सचिव से सम्भाले न सम्भलती हो वहा एक या अधिक उपभाग बनाये जा सकते हैं और प्रत्येक उपभाग के प्रभारी एक या अधिक विशेष सचिव अतिरिक्त सचिव या सयुक्त सचिव नियुक्त किए जा सकते हैं। ऐसे मामलों मे विशेष सचिव अतिरिक्त सचिव या सयुक्त सचिव को उसके उपभाग की परिधि मे आने वाले सारे कार्यों के सम्बन्ध मे काम करने और जिम्मेदारी उठाने की अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी जाती है परन्तु कुल मिलाकर सारे मन्त्रालय के प्रशासन का सामान्य उत्तरदायित्व प्राय सचिव का ही रहता है। कुछ मन्त्रालयों मे विशिष्ट सचिव भी हो सकते हैं जिन्हे किसी विशेष विभाग का उत्तरदायित्व दिया गया होता है। विशिष्ट सचिवों का मन्त्री से सीधा सम्बन्ध होता है।

मन्त्रिमण्डल सचिवालय के अन्तर्गत *कार्मिक विभाग साँख्यिकी विभाग* और मन्त्रिमण्डल कार्य विभाग है। मन्त्रिमण्डल कार्य विभाग उच्चतम स्तर पर निर्णय किए जाने की प्रक्रिया मे समन्वय करने का महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और प्रधानमन्त्री के निर्देश के अनुसार काम करता है।

केन्द्रीय सरकार मे विभागीय सगठन को सराश रूप मे ना गवस्थी एव महेश्वरी ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया है—

भारत सरकार की शक्तियाँ तथा कार्य मन्त्रालयों मे विभाजित है। सरकारी कार्य विभाजन सम्बन्धी के अनुच्छेद 77 (3) के अन्तर्गत निर्मित कार्य सम्बन्धी नियमो के अन्तर्गत किया जाता है एव प्रधानमन्त्री के परामर्श पर राष्ट्रपति के द्वारा किया जाता है। इसमे प्रत्येक मन्त्री को सौंपे गए कार्य विशेष रूप मे निश्चित कर दिए जाते हैं और एक पूरा मन्त्रालय या किसी मन्त्रालय का एक या अधिक से अधिक विभाग होते हैं। केन्द्रीय सरकार के मन्त्रालयों की सरचना त्रि स्तरीय (Three tier)

है। इसमें (1) राजनीतिक शीर्ष पर मंत्री होता है जिसकी सहायता के लिए एक या अधिक राज्यमंत्री उपमंत्री या संसदीय सचिव होते हैं (2) सचिवालयीय-संगठन तथा मंत्रालय से संलग्न कार्यालय जिसका प्रमुख सचिव होता है और जो स्थायी कर्मचारी होता है और (3) मंत्रालय के अधीन विभाग या विभागों का कार्यपालक संगठन (Executive Organization) जिसके सर्वोच्च अधिकारी को महानिदेशक (Director General) महानिरीक्षक (Inspector General) आदि नामों से पुकारा जाता है।

जब सरकारी नीतियों के निष्पादन के लिए कार्यकारी निर्देशन के विकेन्द्रीकरण तथा क्षेत्रीय अभिकरणों की स्थापना की आवश्यकता होती है वहाँ मंत्रालय में अधीन सहायक संगठन भी होते हैं जो संलग्न तथा अधीन कार्यालय कहे जाते हैं। सम्बद्ध मंत्रालयों द्वारा निर्धारित ये संलग्न कार्यालय नीतियों के परिपालन के लिए आवश्यक कार्यकारी निर्देश देने के लिए उत्तरदायी होते हैं। ये तकनीकी सूचना के भण्डार के रूप में भी कार्य करते हैं तथा मंत्रालय को सम्बन्धित प्रश्नों के तकनीकी मामलों में मंत्रणा देते हैं। अधीन कार्यालय क्षेत्रीय विभागों या अभिकरणों के रूप में जो सरकारी निर्णयों के विस्तृत निष्पादन के लिए उत्तरदायी होते हैं कार्य करते हैं। सामान्यतः वे किसी संलग्न कार्यालय के निर्देशन में कार्य करते हैं या जहाँ सन्निहित कार्यकारी निर्देशन अधिक नहीं होता वहाँ वे सीधे मंत्रालय के अधीन कार्य करते हैं।

मंत्री मंत्रालय का राजनीतिक तत्त्व है। उसकी सहायता के लिए आवश्यकतानुसार राज्यमंत्री उपमंत्री तथा संसदीय सचिव नियुक्त किए जाते हैं। ये राजनीतिक अधिकारी मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन के साथ ही बदलते हैं इनकी पदावधि स्थायी नहीं होती। इन राजनीतिक तत्त्वों का भाग्य निश्चय ही उस राजनीतिक दल के भाग्य से जुड़ा रहता है जिससे वे सम्बन्धित होते हैं। सत्ताधारी दल के अपदस्थ होने का अर्थ है राजनीतिक तत्त्व—मंत्री तथा उसके अन्य राजनीतिक सहयोगियों का निष्कासन। मंत्री विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष होता है। वह विभाग की नीति का व्यापक रूप से निर्धारण करता है और विभागों में उत्पन्न विशेष नीति विषयक मामलों को निश्चित करता है। मंत्री इस महत्त्वपूर्ण कार्य का सम्पादन लोक-सेवा के स्थायी कर्मचारियों की विशेष सहायता के बिना अकेले नहीं कर सकता। लोक-सेवा के कर्मचारी सांख्यिकी तथा अन्य प्रकार की आवश्यक सूचना उसे प्रदान करते हैं। विभाग की व्यापक नीति का निर्धारण करने के अतिरिक्त उसके निष्पादन पर मंत्री सामान्य दृष्टि भी रखता है अपने अधीन प्रशासन को गति प्रदान करना उसका ही कार्य है। प्रशासकीय व्यवस्था से कुछ निश्चित विशेषता अन्तर्निहित होने के कारण उसके कर्त्तव्य का यह पक्ष काफी महत्त्वपूर्ण होता है। अन्त में मंत्री अपने विभाग के क्रिया-कलापों तथा नीतियों के

लिए ससद् क समक्ष उत्तरदायी होता है। ससदीय प्रजातन्त्र का एक सवैधानिक सिद्धान्त मन्त्री का होना होता है।

विभाग के काय सचालन के सम्बन्ध म उपमन्त्री का प्राय कोई विशिष्ट प्रशासकीय उत्तरदायित्व नही होता।

मत्री विभाग का अध्यक्ष अवश्य होता है किन्तु विभाग का प्रधान तो सचिव हो है। राजनीतिक प्रधान के अधीन विभाग का सचिवालयीय सगठन काय करता है। सचिवालय प्रशासन का मस्तिष्क है जो सम्पूर्ण शासकीय क्रिया-कलापो को सचालित तथा नियन्त्रित करता है। सचिवालय ही दस कमचारी प्रदान करता है जो नीतियो तथा क्रियाओ के प्रभावशाली ढग पर क्रियान्वयन के लिए अपरिहाय होते हैं। जब कोई नीति स्वीकार की जाती है तो उस नीति के निष्पादन पर निरन्तर ध्यान रखना सचिवालय का ही काम है। सचिवालय का प्रधान सचिव होता है जो विभाग के सम्पूर्ण प्रशासनिक क्रिया-कलापो तथा नीतियो पर परामश देने के लिए मन्त्री का प्रधान परामशदाता होता है। उसका कत्तव्य है कि वह विषय के सभी सम्बद्ध त थ्यो को मन्त्री के सामने उपस्थित करे ताकि मन्त्री उस पर ठीक निणय दे सके। यह आवश्यक है कि वह अपने मन्त्री को सम्पूण सूचना देता रहे।

विभाग के सचिवालयीय सगठन म दो प्रकार के कमचारी काय करते हैं—(1) अधिकारी वग और (2) अधीनस्थ-वग। पहले वग म सचिव उपसचिव तथा अवरसचिव आते हैं। यदि विभाग बडा है तो सयुक्त सचिव या अतिरिक्त सचिव भी होते हैं जिन्हें विभाग के किसी अग का काय सौंपा जाता है। वे अपने उस क्षेत्र म आने वाले सभी विषयो के सम्बन्ध में मन्त्री से सीधा सम्पक रखते हैं। सयुक्त सचिव या अतिरिक्त सचिव का स्तर लगभग सचिव के स्तर के समान होता है। वे कायभार से दबे सचिव का भार हल्का करते हैं। सयुक्त तथा अतिरिक्त सचिव से आशा की जाती है कि महत्त्वपूर्ण मामलो पर मुख्य सचिव से परामश लेते रहे।

अधिकारी वग प्राय भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Administrative Service) के सदस्य होते हैं। पहले इसे भारतीय नागरिक सेवा (Indian Civil Service) कहते थे। इन अधिकारियो की भरती केन्द्रीय सरकार द्वारा विभिन्न राज्यो की भारतीय प्रशासनिक सेवा (I A S) अधिकारियो म से पदाविधि प्रणाली के अन्तगत की जाती है।

सचिवालय के अधीनस्थ कमचारी वग म लिपिक-वग आता है। इसमे उच्च व निम्न वर्गीय होते हैं। व निम्न वर्गीय लिपिको की भर्ती प्रतियोगी परीक्षाओ के द्वारा की जाती है जबकि उच्च-वर्गीय लिपिको की भर्ती आशिक रूप म भिन्न प्रणाली म पदोन्नति की रीति म अर्थात् निम्न-वर्गीय लिपिको म से और आशिक रूप म प्रतियोगी परीक्षाओ द्वारा की जाती है।

सचिवालय मन्त्री को परामर्श देता है अत वह मन्त्री का परामर्शदाता होता है। उसके द्वारा नीति विन्यास मे मन्त्री की सहायता की जाती है अत व्यवहार मे सचिवालय नीति अभिकरण की अपेक्षा मन्त्रणा अभिकरण ही अधिक है। नीति का निष्पादन निष्पादकीय सगठन का दायित्व होता है जिसका अपना प्रधान होता है और जो सचिवालय के बिल्कुल अधीन होता है। सचिव जो सचिवालय का प्रमुख होता है नीति विन्यास मे मन्त्री का प्रधान परामर्शदाता होता है। विभाग का कार्यपालकतन्त्र एक पृथक सगठन होता है जो स्वय विभाग कहलाता है। इसका अपना प्रधान अधिकारी होता है। सचिवगण मन्त्रियो के आँख-कान हैं विभाग के प्रधान उनके हाथ होते है। ये प्रधानमन्त्री द्वारा अनुमोदित नीति तथा कार्यक्रम का पालन करते है। इसके अतिरिक्त वे विभागो का प्रशासन चलाते हैं और अपने क्षेत्र से सम्बन्धित मामलो पर सचिवालय को तकनीकी मन्त्रणा भी देते रहते हैं। अत यह आवश्यक है कि उनके तथा सचिवालय के बीच पूर्ण सद्भाव रहना चाहिए किन्तु व्यवहार मे विभाग के कार्य सचालन मे सचिवालय मे अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण सद्भावना का अभाव दिखाई पडता है।[1]

भारत मे केन्द्रीय सरकार के विभागो की सख्या 1962 मे 35 थी जो बढकर 1975 मे 53 हो गई। 1952 मे भी मन्त्रालयो और विभागो की सख्या 53 ही थी।

विकास के समस्त दायित्व आज भी लोक सेवा के सहारे मुख्यत राज्यो पर है। देश मे न्यायिक प्रणाली के शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है और प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है। सविधान मे कार्यपालिका और व्यवस्थापिका की तरह सघ और राज्यो के लिए दोहरी न्यायपालिका की व्यवस्था नहीं है। प्रत्युत एक ही न्याय शृङ्खला सघ और राज्यो के कानूनो का प्रशासन करती है। इस एकल न्यायिक व्यवस्था ने भारत मे न्यायिक क्षेत्र धिकार सम्बन्धी एकता स्थापित कर दी है साथ ही समूचे देश के लिए एकल न्यायिक सवर्ग (Cadre) की भी स्थापना कर दी है। उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किया गया एक लेख (Writ) न केवल समूचे देश मे केन्द्रीय राज्यीय तथा स्थानीय क्षेत्रो पर लागू होता है वरन् विधि के प्रत्येक क्षेत्र—सॉविधानिक दीवानी फौजदारी (दण्ड) आदि मे लागू होता है।

केन्द्रीय प्रशासन के लिए भारत मे कुछ केन्द्रीय सेवाए अलग से रखी गई है यथा रेल्वे सेवाए आयकर सेवाए डाक एव तार सेवाए आबकारी सेवाए आदि। ये सेवाए केन्द्रीय सूची के विषयो के प्रशासन के लिए विशेष रूप से स्थापित की गई हैं।

1 अवस्थी एव माहेश्वरी लोक प्रशासन पृष्ठ 11 –117

भारत म प्रशासन क विकास की प्रक्रिया जारी है अभी हम किसी निश्चित बिन्दु पर आकर नहीं पन्च हैं परिस्थितियो और आवश्यकतानुसार पुनसगठन और परिवनन के दौर चलते रहत हैं।

ब्रिटिश प्रभाव और देन
(British Impact and Its Legacies)

भारतीय प्रशासन के ब्रिटिश योगदान की ओर सकन करते हुए वी पी मनन ने लिखा है 1765 जब कम्पनी ने बगाल बिहार और उडीसा म राजस्व एकत्र करने का अधिकार प्राप्त किया तभी से यहाँ एसी प्रशासनिक और राजनीतिक यवस्था का विकास होने लगा जो भारत के लिए अनजान थी। भारतीय प्रशासन पर ब्रिटिश प्रभाव और ब्रिटिश देन का बहुत कुछ अनुमान ब्रिटिश काल म भारतीय प्रशासन क विकास स हा जाता हैं तथापि अधिक स्पष्टता क लिए अलग अलग बिन्दुओ म निम्नलिखित प्रकार स यक्त करना उपयुक्त होगा—

1 ब्रिटिश शासन म भारत का राजनीतिक दष्टि स सगठित और एकीकृत किया गया। यह ब्रिटिश प्रशासनिक यवस्था का ही प्रभाव है कि सम्पूण देश का शासन प्रशासन एक सूत्र म बधा हुआ ह ।

2 अधिनियम द्वारा जा अखिल भारतीय सघ प्रस्तावित किया गया था वह रुपरखा म ससार के अन्य सघा से भिन्न था। भारतीय सविधान न भी जिस सघ की स्थापना की है वह एक अनाखा ही सघ है। साथ ही भारतीय सघ रूपरेखा म काफी सीमा तक अधिनियम द्वारा प्रस्तावित सघ के अनुरूप ह।

3 अधिनियम द्वारा शक्ति विभाजन करत हुए तीन विषय सूचिया तयार की गई थी—सघीय सूची प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची। नवीन सविधान म भी इसी प्रकार का शक्ति विभाजन किया गया है। शक्तियो के विभाजन का आधार भी लगभग वही ह जो 1935 क अधिनियम के लिए अपनाया गया था।

4 अधिनियम द्वारा प्रस्तावित सघ म केन्द्र का अधिक शक्तिशाली बनान की यवस्था की गई थी और गवनर जनरल का प्रान्तीय क्षत्र म हस्तक्षेप करन की इतनी अधिक शक्ति दी गई थी कि वह उसक बल पर सघात्मक सरकार का एकात्मक सरकार म बदल सकता था। नवीनतम सविधान म भी इसी प्रकार की व्यवस्था की गई है और स्पष्ट रूप स यह प्रावधान ह कि राष्टपति की आपातकालीन घोषणा द्वारा सघीय सविधान का एकात्मक रूप दिया जा सक।

5 अधिनियम की तरह भारतीय सविधान म भी इस प्रकार क सरक्षण (Safeguards) की व्यवस्था की गई ह जिनम स कुछ चुनाव आयोग अल्पसख्यक वर्गो क धार्मिक सास्कृतिक और भाषा सम्बन्धी अधिकारा आदि क रूप म हैं। सर्वोच्च यायालय को निम्न स्तर क यायालयो पर नियन्त्रण रखन का अधिकार और केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकारा के शासन का कतिपय अवस्थाओ म अपन

अधिकार में रहने की व्यवस्था आदि भी भारतीय संविधान में दिए गए कुछ संरक्षण हैं।

6 ब्रिटिश अथवा वेस्टमिंस्टर नमूने पर ही भारतीय संविधान में एक मन्त्रि परिषद् की व्यवस्था की गई है जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री करता है और यह मन्त्रिपरिषद् राष्ट्रपति को उसके कार्यों व प्रयोग में सलाह तथा सहयोग देती है। अर्नेस्ट बार्कर का कथन है कि वास्तविक और नाम मात्रीय कार्यपालिका की द्वैधता ब्रिटिश संसदीय पद्धति का निचोड़ है। भारत में भी राष्ट्रपति के रूप में ब्रिटिश सम्राट की भाँति नाम मात्रीय औपचारिक कार्यपालिका तथा प्रधानमन्त्री और मन्त्रि परिषद् के रूप में वास्तविक कार्यपालिका की स्थापना की गई है।

7 ब्रिटिश-काल में केन्द्रीयकरण की जिस प्रवृत्ति ने जन्म लिया उससे तीन प्रकार की लोक सेवायें उभर कर सामने आयी—अखिल भारतीय सेवायें, केन्द्रीय सेवायें तथा प्रान्तीय सेवायें। स्वतन्त्र भारत में प्रशासनिक कार्य इन्हीं तीन प्रकार की अस्त व्यस्त और बिखरी हुई लोक सेवाओं के साथ प्रारम्भ हुआ। ये सेवायें अपने विभिन्न कार्यकारी क्षेत्रों में कार्यरत थीं और इन्हें एक दूसरे के कार्यों तथा पदों की दृष्टि से पृथक् तथा समानान्तर भी नहीं कहा जा सकता। इनमें से कुछ विशेष प्रकार के सेवाओं को ऐतिहासिक संयोग ने प्रभुत्वता की स्थिति में ला खड़ा किया और उनमें एलिटिज्म, जनरलिज्म तथा प्रशासनिक हेजिमनी की परम्परायें विकसित हुई। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तकनीकी लोक सेवाओं का अभाव अथवा महत्वपूर्ण स्थिति एक सार्वदेशिक स्थिति थी और भारत में भी ये सेवायें केवल इसी कारण गौरवपूर्ण नहीं बन सकी क्योंकि औपनिवेशिक सरकार न तो इतनी सक्षम थी और न ही आत्मघातक प्रवृत्ति की विकासशील गतिविधियों में कोई रुचि रखती थी अतः भारतीय संविधान निर्माताओं के सामने प्रशासनतन्त्र के नए ढाँचे के आविष्कृत करने की बात कम स्वतन्त्रता थी। देश के विभाजन ने इस बात को और भी अधिक आवश्यक बना दिया कि प्रशासन के क्षेत्र में यथास्थिति रखकर आगे बढ़ा जाए। डा. भीमराव अम्बेडकर, सरदार वल्लभभाई पटेल नौकरशाही के नये अभिभावक बने और देश की लोकतान्त्रिक और सघात्मक व्यवस्था में परिवर्तन करने के उपरान्त भी भारत के गणतन्त्रवादी संविधान में यह निर्णय लिया गया कि इंडियन सिविल सर्विस तथा इण्डियन पुलिस सर्विस नाम की अखिल भारतीय सेवाओं को कायम रखा जाए। परिणामस्वरूप अखिल भारतीय सेवायें केन्द्रीय सूची सातवीं सिन्यूल में प्रवेश पा सकी और राज्य सभा को यह अधिकार दिया गया कि यदि वह उचित समझे तो 2/3 बहुमत से पारित एक प्रस्ताव द्वारा भविष्य में नई अखिल भारतवर्षीय सेवायें गठित कर सकती है।[1]

1 पी डी शर्मा भारतीय लोक सेवा संरचना की विसंगतियाँ पृष्ठ 18

8 ब्रिटिश शासन काल में अखिल भारतीय स्तर पर एक कुशल प्रशासनिक संगठन की रचना की गई और सदियों बाद देश में कानून के शासन का श्रीगणेश हुआ।

9 अंग्रेजों ने भारत में जनतन्त्रात्मक सरकार की बहुमूल्य परम्पराएं डालीं और उन्हें अपनी विरासत के रूप में छोड़ गए।

10 1947 में जब हम आजादी मिली तो भारत की लोक सेवायें एक बहुत अच्छी और सुविधापूर्ण स्थिति में थी। लन्दन में रहने वाला भारत मंत्री उनका संरक्षक था और उन्हें स्टील फ्रेम की संज्ञा दी जाती थी। शांति व्यवस्था राजस्व और न्यायिक प्रशासन में निपुण जनरलिस्ट प्रशासन सारे भारत में फैला हुआ था और अखिल भारतवर्षीय केन्द्रीय प्रान्तीय तथा अधीनस्थ सेवाओं का चार वर्गों में वर्गीकरण स्थापित हो चुका था।

11 भारत जैसे विशाल राज्य में जहाँ राजकीय इकाइयां यूरोप के अनेक सार्वभौम राष्ट्रीय राज्यों से भी क्षेत्रफल में बड़ी हैं जिला प्रशासन जैसी क्षेत्रीय इकाइयों का अपना महत्त्व है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी भारत में जिला व्यवस्था मध्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था का आधार थी और लगभग तीन शताब्दी तक फैले अंग्रेजी प्रभाव एवं शासन के युग में भी इस व्यवस्था ने प्रशासनिक क्षमता एवं राजनीतिक उद्देश्य प्राप्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की। अंग्रेजी युग में यह व्यवस्था कितने ही प्रयोगों एवं नीति विषयक उतार चढ़ावों से गुजरी है और स्वातन्त्र्योत्तर भारत में आज भी यह धारणा प्रशासन के सभी स्तरों पर समान रूप से पाई जाती है कि भारतीय प्रशासन का यह मेरुदण्ड अभी काफी लम्बे समय तक आधारभूत प्रशासन के रूप में चलता रहना चाहिए।

12 भारत में वर्तमान में स्थानीय स्वशासन का जो ढांचा या संयन्त्र प्रचलित है वह लगभग उसी रूप में चल रहा है जैसा ब्रिटिश काल में प्रचलित था। यद्यपि स्थानीय शासन संस्थाओं की स्थिति सत्ता और दायित्वों में एक मौलिक अन्तर आया है और स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरूप वास्तविक रूप में लोकतान्त्रिक हो गया है तथापि उनका ढांचा ब्रिटिशकाल के ढाँचे पर ही आधारित है और शहरी एवं ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं का जाल सारे देश में सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने के लिये बिछाया गया है।

13 प्रशासन में सचिवालय और निदेशालय प्रणाली तथा लोक सेवा में सामान्यज्ञ की प्रधानता ब्रिटिशकाल से अब तक निरन्तर जारी है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारत में बहुत कुछ ब्रिटिश नमूने की शासन पद्धति को अपनी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर स्वीकार किया गया है। भारतीय प्रशासन का जो स्वरूप आज हमारे सामने है

वह एक लम्बी विकास यात्रा का परिणाम है और उस पर ब्रिटिशकालीन प्रशासन की गहरी छाप है। तथापि यह सुनिश्चित है कि परिवतन और विकास की प्रक्रिया जारी है ताकि देश की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशासनिक तन्त्र की क्षमता म वृद्धि होती रहे। परिवतन कभी न रुकने वाली एक प्रक्रिया है और यह सदव चलती रहेगी।

भारत मे लोक प्रशासन के विशिष्ट लक्षण

1 भारत म लोक प्रशासन कानून पर आधारित है। सारे काम कानून की अधिकार सीमा के भीतर ही होने चाहिए। न्यायालय इस बात को देखता है कि प्रशासन कहीं कानून का उल्लघन तो नही कर रहा। कानून का उल्लघन करने वाली कार्यवाहियो को न्यायालय अवध घोषित कर सकता है।

2 भारत म ससद् इगलण्ड की पार्लियामेंट की भाँति सावभौम सत्ताधारी सस्था नही है। फलत इसके कानून बनाने की अधिकार सीमा पर सवधानिक नियन्त्रण है। सविधान की सीमा रखा म ही ससद् कानून बनाने को सक्षम है। यदि ससद् चाहे तो एक विशिष्ट प्रक्रिया से सविधान म सशोधन तो कर सकती है पर सविधान की धाराओं का उल्लघन नहीं कर सकती। यदि कभी ससद् ऐसा करती है तो उसे उच्च अथवा उच्चतम न्यायालय असवधानिक घोषित कर सकता है।

3 लोक प्रशासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियो द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। लोकसभा तथा राज्य-सभा म तो जनता के प्रतिनिधियो के सामने सरकार को अपनी नीति के सम्बन्ध म सफाई प्रस्तुत करनी होती है।

4 प्रशासन की व्यवस्था सघात्मक है। भारत सघ राज्यो तथा केन्द्र शासित प्रदेशो को मिला कर बना है। राज्यो तथा केन्द्र के बीच प्रशासनिक विषयो क बटवारे के लिए सविधान म तीन सूचियो—यथा केन्द्र-सूची राज्य सूची तथा समवर्ती सूची की व्यवस्था की गई है। यहा शक्ति का बटवारा इस प्रकार है कि केन्द्र अधिक शक्तिशाली बन गया है।

5 लोक प्रशासन सरचना कमचारी वग एव स्वभाव की दृष्टि स असनिक है। *सनिक एव असनिक प्रशासन अलग अलग रखा जाता है। सेना के अधिकारी* असनिक विभागो म नही रक्खे जाते।

6 यहाँ प्रशासन का आधार विधि का शासन है। सभी के लिए एक ही न्यायाधिकरण तथा एक ही दण्ड विधान है। जिन देशो म प्रशासनिक सविधि की प्रथा होती है वहाँ प्रशासक वग के लिए अलग न्यायाधिकरण तथा कानून व्यवस्था होती है।

7 यहाँ कुछ अखिल भारतीय सेवाओ का निर्माण किया गया जसे भारतीय प्रशासकीय सेवा (Indian Administrative Service) भारतीय पुलिस सेवा

(Indian Police Service)। इन सेवाओं के सदस्यों का चयन केन्द्रीय लोक-सेवा आयोग करती है। इनकी सेवा शर्तें केन्द्रीय सरकार निर्धारित करती है। भारतीय प्रशासकीय सेवा के सदस्यों का राज्य के सभी पदों पर एकाधिकार होना है तथापि ये अधिकारी राज्यों में काम करते हैं पर राज्य सरकार इनके विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं कर सकती। यदि इनके विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी हो तो यह केन्द्रीय सरकार द्वारा लोक सेवा आयोग के परामर्श से ही की जा सकती है।

8 लोक प्रशासन अब विशेषज्ञों का क्षेत्र बनता जा रहा है। राजकीय सेवाओं में जिन व्यक्तियों को लिया जाता है वे आजीवन वहीं रहते हैं। आज शायद ही कोई ऐसा व्यवसाय है जिसके विशेषज्ञों की सरकार में आवश्यकता न हो।

9 प्रशासकीय व्यवस्था में सिद्धान्त एवं व्यवहार में अन्तर है। सिद्धान्त रूप से तो राष्ट्रपति में सारी कार्यपालिका शक्तियाँ निहित हैं। मन्त्रिमण्डल का कार्य सहायता एवं परामर्श देना है। वस्तुतः स्थिति यह है कि राष्ट्रपति नाम मात्र का प्रधान है। कार्यपालिका शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल तथा प्रधानमन्त्री के हाथों में निहित हैं। कानूनी दृष्टि से विभागीय प्रशासन में प्रत्येक निर्णय मन्त्री महोदय का ही होना है पर वास्तविकता यह है कि मन्त्रियों के नाम से उच्च पदाधिकारी निर्णय लेते हैं। कई बार तो मन्त्रियों को निर्णयों का पता तब चलता है जबकि संसद् में प्रश्न पूछे जाते हैं या समाचार-पत्रों में आलोचना होती है।

10 लोक प्रशासन व्यापक स्तर पर चलाया जाता है। प्रजातन्त्र के विकसित होने एवं सरकार द्वारा नई जिम्मेदारियाँ को अपने ऊपर ले लेने के कारण प्रशासन का काम बहुत अधिक हो गया है।[1]

---

1 बी एम सिन्हा लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार पृ 154–55

2

लोक प्रशासन के अध्ययन के समकालीन दृष्टिकोण—व्यवहारवादी व्यवस्थावादी और सरचनात्मक—कार्यात्मक दृष्टिकोण, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान से उसका सम्बन्ध

(Contemporary Approaches to the Study of Public Administration—Behavioural Systems and Structural Functional Approaches—Its Relation to Political Science Economics Sociology Law and Psychology)

अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाति लोक प्रशासन के लिए भी यह प्रश्न मूल महत्त्व का है कि उसका अध्ययन किस दृष्टि एव विधि से किया जाय। मौलिक शोध द्वारा सामान्य नियमों का विकास करना (High level generalisation) किसी भी गम्भीर अध्ययन का उद्देश्य होता है। लोक प्रशासन को चाहे किसी भी दृष्टि या किसी भी अध्ययन प्रणाली के माध्यम से देखा परखा या विश्लेषित किया जाए उसके अध्ययन-सम्बन्धी दृष्टिकोण (Approaches) में दो सावधानियाँ बरतना आवश्यक है—(1) एक तो यह दृष्टिकोण रहस्यात्मक (Mystical) अन्तर्ज्ञानपरक (Intuitive) अथवा विशुद्ध विचारात्मक (Normative) कम और प्रयोगात्मक (Experimental) अनुभवपरक (Pragmatic) एव व्यावहारिक (Empirical) बुद्धि पर आधारित अधिक हो तथा (2) अध्ययन की पूर्णता के हित में दृष्टि इतनी व्यापक एव गहन हो कि वह विशेषीकरण के साथ साथ व्यवस्था की समग्रता का आभास दे सके और इस तरह विवेच्य विषय को विभिन्नताओं के सन्दर्भ में आक सके। अध्ययन विधियाँ 'दृष्टि' की मूल मान्यताओं पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए यदि दृष्टि विधिपरक (Legal) या सगठनात्मक (Structural) है तो अध्ययन विधियाँ ऐतिहासिक (Historical) या वर्णनात्मक (Descriptive) होगी। यदि दृष्टि व्यवहार और आचरण (Behaviour) पर बल देती है तो पद्धतियाँ प्रयोगात्मक तथा निरीक्षणात्मक (Observational) आदि होगी। आज के नए शोधकर्ता लोक प्रशासक में सभी दृष्टियों और विधियों को सामान्यीकृत करना चाहते है जिसके फलस्वरूप उनकी चुनौतियाँ अधिक गम्भीर है।

नाक प्रणासन क अध्ययन क्षेत्र म कुछ निम्नलिखित प्रमुख दृष्टिकोण रहे हैं—

(क) परम्परावादी अथवा सगठनात्मक दृष्टिकोण (Traditional or Structural Approach)

(ख) व्यवहारवादी दृष्टिकोण (Behavioural Approach)

(ग) व्यवस्थावादी दृष्टिकोण (Systems Approach) एव

(घ) सगठनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural Functional Approaches)

(क) परम्परावादी अथवा सगठनात्मक दृष्टिकोण

परम्परावादी या सगठनात्मक दृष्टिकोण को ह्वाइट विलाबी और एण्डरसन के युग का दृष्टिकोण माना जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जबकि लोक प्रशासन का विज्ञान जन्म ले रहा था इन लेखकों ने युग की अनुरूपता से वैधानिकता स्वीकार की और एक कानूनी दृष्टि से प्रशासन प्रक्रिया को देखते हुए वैधानिकता औपचारिकता ऐतिहासिकता एव वैचारिकता को प्रधानता दी। परम्परावादियों की यह दृष्टि यह मानकर चलती थी कि लोक प्रशासन की मूल समस्याए सगठन के कानूनी ढाचे में जन्म लेती हैं जो सगठन के अन्तर्सम्बन्धों को औपचारिकता से प्रस्तुत कर उनकी समस्याओं के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण के लेखक सगठन के सिद्धान्त, सगठनों की विविधताए एव सगठन की आवश्यकताए आदि प्रश्नों को केन्द्रीय बनाकर चले हैं। इतिहास और कानून इनके दो प्रमुख स्रोत हैं और उनसे अपनी सामग्री लेते हुए वे वैधानिक और वैचारिकता को प्रधानता देते हैं।

इस तरह हम परम्परावादी दृष्टिकोण को सगठनात्मक (Structural) वैधानिक (Legal) औपचारिक (Formal) ऐतिहासिक (Historical), विशुद्ध विचारात्मक (Normative) तथा वर्णनात्मक निर्धारित दृष्टिकोण (Descriptive Prescriptive Approach) कहा जाता है। इस स्कूल के लेखकों ने प्रत्यायोजन पर्यवेक्षण नियन्त्रण रेखा नौकरशाही आदि के सिद्धान्तों को इस तरह देखा है जैसे ये ढाचे के प्रश्न हों और यदि ऐसा कर लिया जाए तो ऐसा अपने आप हो जाएगा। बाइबिल के दस उपदेशों की तरह यह दृष्टि समस्याओं का सरलीकरण करती है और सस्थाओं के बाहर देखने को तैयार नहीं है। गुलिक उर्विक मूनी फयल आदि लेखकों ने अपने सगठनों के ग्राफ और मानचित्र प्रस्तुत किए हैं और कानूनी ज्ञान को प्रशासनिक ज्ञान का पर्यायवाची समझा है।

इस दृष्टिकोण की पाच दुर्बलताए रही हैं—

1 प्रथम तो यह लोक प्रशासन के क्षेत्र को इतना सकीर्ण बनाता है कि उसे एक पृथक् अध्ययन शास्त्र कहना कठिन होगा।

2 दूसरे वर्णन पर केन्द्रित य अध्ययन इतने सतही (Superficial) लगते है कि इनमे विवेचना और विश्लेषण (Analysis) का अभाव खटकता है।

3 इन अध्ययनो म यथ की जति आदर्शवादिता है जो यह मानकर चलती है कि व्यक्ति एक वस्त ही तक एव विवेक-सम्पन्न आचरण करने वाला प्राणी है।

4 फलस्वरूप इस दृष्टि ने समस्याओ को न चनकर स्वय को कवल उपदशा तक ही केन्द्रित रखा है।

5 लोक प्रशासन का एक बहुत बडा मानवीय एव सामाजिक पहलू इस दृष्टि के क्षेत्र से इसलिए ओझल रहा कि यह कानून और वर्णन की सीमा रखाओ के बाहर था। कुल मिलाकर यह दृष्टि जटिल प्रशासनिक समस्याओ का सरल सकीर्ण एव चिह्नवादी मानकर देखने का प्रयत्न है जो आज की जटिल प्रशासनिक प्रक्रियाओ का विश्लेषण नही कर सकती।

परम्परावादी दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए जो पद्धतिया अपनाई जाती रही है उनम मुख्य य हैं—

(1) वधानिक पद्धति (Legal Approach)
(2) एतिहासिक पद्धति (Historical Approach)
(3) विषय-वस्तु पद्धति (Subject matter Context) एव
(4) वज्ञानिक पद्धति (Scientific Approach)।

(1) वधानिक पद्धति (Legal Approach)—यूराप के जमनी बेल्जियम फ्रास आदि बन्त से देशो म लोक प्रशासन का अध्ययन वधानिक अथवा विधान शास्त्रीय दृष्टि से किया गया है। इन देशो म लोक विधि (Public Law) का सावधानिक (Constitutional) और प्रशासकीय (Administrative) विधि म विभाजित किया गया है तथा लाक प्रशासन का अध्ययन प्रशासकीय विधि के आधार पर किया जाता है। सांविधानिक विधि का उद्दश्य मौलिक रूप से सरकार के तीनो अगो का अलग अलग वणन कर उनके आपसी सम्बन्धो की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करना है जबकि प्रशासकीय विधि का सम्बन्ध राज्य स्थानीय शासन सस्थाओ सावजनिक निगमो तथा सरकार के विभिन विभागो के सगठना कार्यो उनके सह सम्बन्धी तत्वो आदि की व्याख्या करने से है। इस प्रकार फ्रास जमनी बेल्जियम आदि राष्ट्रो म प्रशासन सम्बन्धी अध्ययन मुख्यत प्रशासकीय सत्ता एव उसकी प्रक्रियाओ के वधानिक या कानूनी आधारो तक ही सीमित रहा है। फ्रास म प्रशासकीय कमचारियो के प्रशिक्षण के समय वधानिक ज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। इग्लण्ड और अमरिका मे भी लोक प्रशासन के अध्ययन की वधानिक पद्धति को काफी समथन मिला है और इसीलिए प्रशासकीय विधि तथा प्रशासकीय न्याय का अध्ययन आरम्भ हुआ है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे नियामक अभिकरणो

(Regulatory Agencies) और उनकी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ वैधानिक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि लोक प्रशासन का वैधानिक ढाँचे में काम करना होता है अतः उस ढाँचे को समझने के लिए अथवा उस पर प्रकाश डालने के लिए वैधानिक दृष्टिकोण उपयोगी है तथापि इस पद्धति अथवा दृष्टिकोण का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दृष्टियों की उपेक्षा की गई है। समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि का सर्वदा परित्याग करने के फलस्वरूप प्रशासन का वैधानिक अध्ययन एकदम शुष्क, औपचारिक तथा रूढ़िवादी बन जाता है। प्रशासकीय कार्यकलापों और व्यवहार के सजीव आधारों की उपेक्षा सर्वथा अमान्य है।

(2) ऐतिहासिक पद्धति (Historical Approach)—ऐतिहासिक ज्ञान किसी भी प्रशासन के अध्ययन के लिए मूल्यवान है। जो प्रशासन भूतकालीन प्रशासकीय संस्थाओं के अनुभवों से लाभ उठाता है वह सुगमता से सफलता की ओर अग्रसर होता है। प्रायः हर राष्ट्र का प्रशासन प्राचीन परम्पराओं से बहुत कुछ प्रभावित रहता है और उन परम्पराओं को तब तक न समझा जा सकता जब तक कि इतिहास का ज्ञान न हो अथवा ऐतिहासिक पद्धति का अध्ययन न किया जाए। बहुत सी आधुनिक प्रशासकीय समस्याओं का समाधान इतिहास द्वारा संचित प्रशासकीय अनुभवों में अन्तर्निहित है। इतिहास बतलाता है कि अनेक वर्तमानकालीन प्रशासकीय संस्थाओं और व्यवस्थाओं को किस प्रकार आरम्भ किया गया और विकास के किन चरणों को पार करते हुए उन्हें वर्तमान रूप दिया जा सका। कौटिलीय अर्थशास्त्र से मौर्यकालीन शासन पद्धति और प्रशासकीय संस्थाओं की विस्तृत सूचना प्राप्त होती है तो प्रो. ह्वाइट की दि फैडरलिस्ट्स (1948) तथा जैफरसोनियस (1951) में अमेरिका के प्रथम चालीस वर्षों के अमेरिकी संघ प्रशासन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में ऐतिहासिक ज्ञान की अनुपस्थिति में प्रशासन का अध्ययन अपूर्ण रहता है।

प्रशासन की ऐतिहासिक पद्धति से मिलती-जुलती कथात्मक अथवा संस्मरणात्मक पद्धति (Biographical Method) है जिसका आशय है विख्यात एवं निपुण प्रशासकों के अनुभवों और कार्यों के अभिलेखों की अध्ययन प्रणाली। ये संस्मरण चाहे स्वयं उन्होंने लिखे हों अथवा दूसरों ने, यह निश्चित है कि उनके अध्ययन से प्रशासकीय समस्याओं तथा निर्णय प्रक्रियाओं का बहुत कुछ वास्तविक और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। यद्यपि संस्मरणात्मक पद्धति ज्ञान प्राप्ति की दृष्टि से उपयुक्त है और इंग्लैण्ड में आज भी लोकप्रिय है तथापि इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें राजनीतिक प्रभाव का आधिक्य पाया जाता है। ये संस्मरण

है। इस दोष स बचने के लिए वतमान समय म प्रशासकीय अनुभव प्राप्त लोग अपन अनुभवो को इस प्रकार लेखबद्ध करन का प्रयास कर रह है जो लोक प्रशासन विज्ञान की प्रगति म महायक हो सक। भारत जसे नव स्वतन्त्रता प्राप्त देश के लिए यह एक बहुत बडी सेवा होगी कि देश क प्रशासकीय सगठन के निर्माता अपन प्रशासकीय जीवन के अनुभवो को स्वय लेखबद्ध करें। श्री ायस्कर न अपन अनुभव लिपिबद्ध किए हैं और उनकी पुस्तक हमारे वतमान तथा भावी प्रशासको के लिए बडी उपयोगी सिद्ध हो सकती ह।

(3) विषय वस्तु पद्धति (Approach from the Subject Matter Context)—इस पद्धति के अन्तगत प्रशासन के कि ही सामान्य सिद्धान्तो का अध्ययन नही किया जाता वरन् विशिष्ट सेवाओ अथवा कायक्रम विशेष क अध्ययन पर बल दिया जाता है। उदाहरणाथ शिक्षा प्रतिरक्षा पुलिस राजस्व का निर्धारण एव सग्रह आदि विशिष्ट विभाग पृथक पृथक रूप से अध्ययन की विषय-वस्तु बनते हैं। इग्लण्ड भारत आदि मे इस पद्धति का प्रयोग इन विशष सेवाओ के अध्ययन क लिए काफी समय से किया जा रहा है। सयुक्त राज्य अमेरिका म लम्बे अर्से से स्थानीय प्रशासन की समस्याओ का अध्ययन इसी पद्धति से होता रहा है और हाल ही क वर्षों म राष्ट्रीय स्तर पर अमरिकी प्रशासन के अध्ययन क्षत्र म भी इस पद्धति का प्रयोग किया जाने लगा है। इस अध्ययन-पद्धति म अन्तर्निहित दशन यह ह कि सगठन और प्रशासन लक्ष्य प्राप्ति के दो प्रभावशाली साधन हैं तथा प्रयोगो से पृथक करके उनका अध्ययन उपयोगी नही होगा। विशिष्ट सेवाओ अथवा विभागो द्वारा जो अभिलेख सर्वे अथवा शोध प्रायोजना के प्रतिवेदन आदि रखे जाते हैं उनस बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है जिसके आधार पर प्रशासन के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश डाला जा सकता है। इस क्षत्र म गौस एव वाकाट की पुस्तक पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड दि यूनाइटेड स्टेटस डिपाटमेंट आफ एग्रीकल्चर एक अच्छी पुस्तक है और उसके प्रकाशन के बाद विभागीय अथवा अन्तर्विभागीय प्रशासकीय सेवाओ और कायक्रमो के अध्ययन पर और भी बहुत सी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

(4) वज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) एव व्यवहारवाद (Behaviouralism)—लोक प्रशासन के अध्ययन म वज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management) आन्दोलन लोक प्रशासन की समस्याओ का अध्ययन वज्ञानिक पद्धतियो और मान्यताओ के अनुसार करना चाहता है। लोक प्रशासन के क्षत्र म इस पद्धति को लोकप्रिय बनाने का श्रेय फ्र डारक टलर (F W Taylor) को ह अत इसे टेलरवाद (Taylorism) भी कहा जाता है। टेलर के अनुसार निजी उद्योग के क्षत्र और लोक प्रशासन के क्षत्र म कायकुशलता सम्बन्धी समस्याए समान

आग्रह काम करने के एक ही सर्वोत्तम तरीके पर है। तदनुसार प्रत्येक प्रकार के कार्य के प्रबन्ध के लिए सर्वोत्तम सिद्धान्त वैज्ञानिक आधार पर खोजे जा सकते हैं।

काफी लम्बे समय से संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक प्रशासन के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। इस विचारधारा को पर्याप्त समर्थन मिला है कि लोक प्रशासकीय कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए व्यक्तिगत अथवा निजी प्रशासन की भाँति वैज्ञानिक विचारधारा का प्रयोग किया जा सकता है तथा उसके बारे में बहुत कुछ सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन सम्भव है। वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार उन कार्यों का विश्लेषण किया जाता है जो जनता के सम्मुख रखे गए हों उनके साथ व्यक्तियों का तालमेल बैठाया जाता है उनके साथ लक्ष्यों में सम्बन्धित व्यापक अनुभवों का सम्पर्क स्थापित किया जाता है और तत्पश्चात् नेतृत्व आदेश आदि के द्वारा लक्ष्यों के एक समूह से दूसरे समूह में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह वैज्ञानिक प्रबन्धवाद कार्यकुशलता को मुख्य लक्ष्य के रूप में ग्रहण करते हुए प्रशासन को ऐसी तकनीकी समस्या मानता है जो मूल रूप में समविभाजन के कार्यों के विशेषीकरण से सम्बन्धित है।[1] लोक प्रशासन में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग का आशय यह है कि पर्यवेक्षण प्रकार विश्लेषण आदि को अपनाकर सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण किस सीमा तक किया जा सकता है। टेलरवादी दृष्टिकोण का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें मानवीय तत्व के महत्त्व की उपेक्षा कर दी गई है। टेलरवाद की कमी को इंगित करते हुए उर्विक ने लिखा है कि यह बात अधिकाधिक स्पष्ट रूप से अनुभव की जा रही है कि कार्य कार्य में व्यक्ति को लगाने और कार्यों का व्यवस्थित तथा परस्पर सम्बन्धित करने की समस्याओं के साथ ही एक चौथी समस्या वर्ग (Group) के रूप में ही गतिशील तथा शक्तिशाली बनाने की है। प्रबन्ध का यह चौथा पहलू सम्भवतः इन चारों से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और जटिल है।

(ख) व्यवहारवादी दृष्टिकोण

(Behavioural Approach)

व्यवहारवाद केवल एक दृष्टि ही नहीं बल्कि एक समग्र क्रान्ति कहा जाता है। परम्परावादी दृष्टि केवल लोक प्रशासन में ही नहीं बल्कि सभी सामाजिक विज्ञानों के लिए इतनी अपूर्ण और अपर्याप्त पाई गयी कि उनमें अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी ज्ञान की खोज होना स्वाभाविक था। दूसरे विश्व युद्ध के अवसान पर लोक प्रशासन के लेखक यह अनुभव करने लगे कि नारोक्तियों से काम नहीं चलेगा जो ज्ञान के नाम पर स्वयं सिद्ध बातें प्रस्तुत करती हैं। हरबर्ट साइमन ने तो लोक प्रशासन

1 W ldo Op c t pp 47 61
2 L F Urwick Th Pattern f Ma gem t pp 50 51

की लोकोक्तियाँ (Proverbs of Administration) नाम से एक लेख भी लिखा और यह कहा कि वर्णनात्मक दृष्टि आवश्यक होते हुए भी पर्याप्त नहीं है।[1]

साइमन के पीछे-पीछे डाहल मटन कीन्स सायमन हैडी स्टोक्स रिग्स आदि दर्जनों महत्त्वपूर्ण लेखक लोक प्रशासन को व्यवहारवादी चश्मे से देखने के लिए आगे आए। उन्होंने औपचारिक दृष्टि को अस्वीकार नहीं किया बल्कि उसमें व्यवहारवादी मान्यताएं जोड़कर उसे पूर्ण बनाने की दिशा में पहल की। अतः व्यवहारवादी दृष्टि परम्परावादी दृष्टि का स्थान नहीं लेती बल्कि उसकी पूरक है जिसका आग्रह है कि लोक प्रशासन के अध्ययन में विशेष बल इस बात पर दिया जाना चाहिए कि प्रशासनिक संगठन में मानवीय व्यवहार का स्वरूप क्या होता है और विभिन्न प्रकार के संगठन किस प्रकार अपनी गतिविधियां संचालित करते हैं। व्यवहारवादियों का दावा है कि विभिन्न प्रकार के संगठनों में मानवीय व्यवहार और आचरण का निष्पक्ष परीक्षण तथा अध्ययन सम्भव है। व्यवहारवादियों का यह भी तर्क है कि प्रशासनिक संगठनों की व्यावहारिक गतिविधियों को सावधानीपूर्वक अध्ययन करके प्रशासन और संगठन के बारे में निश्चित रूप से कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।[2]

वास्तव में व्यवहारवादी दृष्टि की मूल मान्यताएं चार हैं जिनका ईस्टन डहल कटलिन आदि राजशास्त्रियों ने विस्तार से विवेचन किया है—

1 प्रथम तो व्यवहारवादी यह मानते हैं कि अध्ययन की इकाई (Unit of Conceptualisation) जब तक बहुत विशाल (Macro) रहेगा तब तक अध्ययन गहन नहीं बन सकेगा। अतः इस विशालता को विशेषीकरण की दृष्टि से तोड़कर लघुतम (Micro) की इकाइयों में परिवर्तित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए किसी भी भीमकाय संगठन का वर्णन करने के साथ-साथ यदि यह अध्ययन किया जाए कि इस संगठन में पर्यवेक्षण प्रक्रिया किन किन तत्त्वों से बाधित होती है तो अध्ययन अधिक सार्थक और उपयोगी होगा। व्यवहारवादी दृष्टि से छोटे छोटे विषयों पर गम्भीर अध्ययन और विश्लेषण को प्राथमिकता दी है।

2 व्यवहारवादी दृष्टि अध्ययनों की वैज्ञानिकता की बहुत बड़ी समर्थक है। साइमन ने चाहे एक स्पष्ट हाकर है पर शासन को आधारित करने का बीड़ा उठाया था। सभी व्यवहारवादी यह मानते हैं कि लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक बौद्धिक उद्यम और उसकी अध्ययन विधियां में अनुभूत ज्ञान से अधिक यह आवश्यक है कि अवधारणाएं एवं निष्कर्ष स्थायी निश्चित एवं सार्वदेशिक बन सकें। ये लोग विज्ञान की विस्तृत प्रणाली जैसे प्रयोग, वर्गीकरण, सत्यापन आदि का लोक प्रशासन के सिद्धान्तों के परीक्षण के लिए उचित उपयोगी एवं व्यावहारिक मानते हैं। व्यवहार

1 Herbert H Simon The Proverbs of Administration Public Administration Review (Winter 1946)

वादी दृष्टि की मान्यता है कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में यदि ज्ञान को आगे बढ़ाना है और उसे व्यावहारिक प्रशासन की कुशलता के लिए निरन्तरता से संग्रहीत करना है तो वैज्ञानिक अध्ययन विधि कठोरता से लागू की जानी चाहिए। चूँकि यह ज्ञान को गहराई सच्चाई एवं निष्पक्षता से परीक्षण कर विश्वसनीय बनाती है। इस दृष्टि से व्यवहारवादी निरीक्षणवादी, अनुभववादी एवं प्रयोगवादी शोधकर्त्ता की कोटि में आते हैं।

3 व्यवहारवादी संहिता यह चाहता है कि ज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक विधि से संचित एवं सुरक्षित यह ज्ञान भण्डार एक कदम विशेष को ध्यान में रखकर आगे बढ़ाया जाए। दूसरे शब्दों में इस ज्ञान की समग्रता एवं सच्चाई इस बात पर निर्भर करेगी कि वह ज्ञान के अन्य पहलुओं से कितना सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए लोक प्रशासन के क्षेत्र में किसी भी निष्कर्ष का परीक्षण इस सन्दर्भ में किया जाना चाहिए कि राजनीति मनोविज्ञान समाजशास्त्र आदि अन्य अध्ययन क्षेत्रों में चालू रहे अनुसंधान उसे कितना स्वीकार्य मान सकेंगे। स्पष्ट शब्दों में व्यवहारवादी दृष्टि अन्तर्निर्भरता और अन्तर्अध्ययन सम्बन्धी ज्ञान की एक समर्थित दृष्टि है। एक ओर जबकि यह लोक प्रशासन को अन्तर्शास्त्रीय (Inter-disciplinary) अध्ययन मानती है तो दूसरी ओर इसकी मान्यता यह भी है कि लोक प्रशासन एक स्वतन्त्र एवं स्वशासित विज्ञान (Autonomous discipline) है। वैज्ञानिक पद्धति अपनाने के बाद व्यवहारवादियों के लिए अन्तर्निर्भरता की दृष्टि से ज्ञान की समग्रता को देखना और स्वीकार करना स्वाभाविक था।

4 व्यवहारवाद एक अनुभवमूलक सिद्धान्त का प्रणयन करना चाहता है। अनुभव निरीक्षण प्रयोग सम्भावित परिस्थिति विवेचन आदि के आधार पर सम्पूर्णता की रचना में विश्लेषण करने वाले व्यवहारवादी यह मान कर चलते हैं कि लोक प्रशासन एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में अपनी स्वतन्त्र विचारधारा आविष्कृत कर सकता है।

इस प्रकार विश्लेषण गहनता वैज्ञानिक विधि एवं अन्तर्सम्बन्धों का उपयोग में लाने वाली व्यवहारवादी दृष्टि 1960 के आसपास अपने चरमोत्कर्ष पर थी। अमरिकी राजनीतिक संस्कृति जीवन प्रणाली तथा विज्ञान चलन के सम्मान ने इसके विकास में सहायता की। लोक प्रशासन के अध्ययन को इसने मशीनी माइक्रो वादिता से व्यावहारिकता एकाग्रता से समग्रता तथा वर्णन से विश्लेषण की ओर मोड़ा। जैसे जैसे इन अध्ययनों का जोर बढ़ता गया इनकी दुर्बलताएँ भी सामने आने लगी। इस दृष्टि पर भी यह अभियोग लगाया गया कि (1) यह मूल्य-तटस्थ (Value Neutral) नहीं है अतः वैज्ञानिक नहीं हो सकती (2) इसके प्रयोग और परीक्षणों में इतनी सीमाएँ हैं कि इसके ज्ञान की गहराई और उसके निष्कर्ष सर्वमान्य बन सकना सम्भव नहीं है (3) स्वयं व्यवहारवादियों का व्यवहार या

आचरण आलोचना से परे नहीं रहा है एवं (4) इनके अध्ययन-यन्त्र आज चाहे कितने भी विकसित हो चुके हों, सामाजिक जीवन के क्षेत्र में उनकी गति, प्रभाव शीलता एवं उपयोगिता सीमित एवं अपूर्ण है।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अध्ययन में प्रयुक्त की जाने वाली कुछ अन्य पद्धतियाँ ये हैं—

(1) मनोवैज्ञानिक पद्धति (Psychological Approach) एवं
(2) परिमाणात्मक मापक पद्धति (Quantitative Measurement Method)।

मनोवैज्ञानिक पद्धति (Psychological Approach)—लोक प्रशासन के अध्ययन में मनोवैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग का श्रेय मिस फॉलेट को प्राप्त है। इस पद्धति में अन्तर्निहित मान्यता यह है कि प्रशासन मानव-व्यवहार से सम्बन्धित है अतः मनोविज्ञान द्वारा उसे अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। मनोविज्ञान मानवीय आचरण का विज्ञान है और लोक प्रशासन का सम्बन्ध भी आचरण से है। अतः मनोवैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से उसके विभिन्न पहलुओं को उजागर किया जा सकता है। मिस फॉलेट ने बतलाया है कि व्यक्तियों और समूहों की इच्छाएँ, उनके पूर्वाग्रह और नैतिक मूल्य प्रशासन के भीतर उनके व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। मनोविज्ञान हमारे जीवन में इतना घुल मिल गया है कि बहुत-सी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं का समाधान मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को समझे बिना नहीं किया जा सकता। प्रशासन के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तियों और समूहों की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रशासन के अन्तर्गत एक प्रकार के अनौपचारिक संगठन का निर्माण हो जाता है जो औपचारिक संगठन को संशोधित कर न केवल उसका पूरक बन जाता है बल्कि इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेता है कि उसकी अवहेलना करने पर प्रशासन स्वयं संकट में पड़ सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रशासन आवश्यक रूप से मानव समूहों की समस्या है। व्यावसायिक प्रशासन के क्षेत्र में तो मनोवैज्ञानिक पद्धति बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। इसके फलस्वरूप मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा विकसित हो गयी है जिसे औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) कहा जाता है।

परिमाणात्मक मापक पद्धति (Quantitative Measurement Method)—किसी भी क्षेत्र में सही वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति इस बात पर निर्भर है कि उसमें तथ्यों और परिमाणों की सांख्यिकीय माप (Quantitative Measurement) कहाँ तक सुलभ है। लोक प्रशासन मूलतः एक सामाजिक विज्ञान है जिसमें गुणात्मक पक्ष पर विशेष बल दिया जाता है। अतः इसमें परिमाणात्मक मापक पद्धति का वैसा प्रयोग नहीं हो सकता जैसा भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में संभव है।

उदाहरणार्थ शिक्षा की प्रगति का मूल्याकन केवल सफल विद्यार्थियो के आधार पर ही नही किया जा सकता बल्कि उसके गुणात्मक पहलू पर भी विचार करना होता है। तथापि लोक प्रशासन के दो क्षत्रो म परिमाणात्मक मापक पद्धति का प्रयोग किया जा रहा है—(1) जब प्रशासन क सम्बन्ध म जनमत अथवा उसकी प्रतिक्रिया जाननी हो तथा (2) जब किसी प्रशासकीय अभिकरण क कर्मचारियो की सख्या और वित्तीय आवश्यकताओ के बारे म निर्णय करने की दृष्टि स उसके कार्यभार का परिमापन करना हो।

प्रशासकीय नीतियो और कार्यवाहियो के बारे म जनमत जानन क सम्बन्ध म सम्पूर्ण जनता का मत नही लिया जाता वरन् किसी विशेष नीति स प्रभावित होन वाले लोगो म से कुछ लोगो के मतो का नमून के तौर पर सग्रह कर लिया जाता है और उसके आधार पर यह निर्धारित किया जाता ह कि प्रशासकीय कार्यक्रम का कौनसा अश जनता को अप्रिय लगेगा जिसे हटा देना चाहिए। इस प्रकार के मत प्रतिचयन अथवा मत सग्रह (Opinion Sampling) के द्वारा प्रशासकीय कार्यक्रमो क पुनर्गठन सशोधन अथवा परिवर्तन म काफी सहायता मिलती है।

कार्यभार के परिमाण के लिए परिमाणात्मक पद्धति का प्रयोग वहा अधिक सम्भव है जहा कार्य काफी मात्रा म एक ही प्रकार का हो और उस बराबर दोहराया जाता हो जैसे टाईपिंग और फाइलिंग का कार्य। काम की कुल मात्रा को एक कर्मचारी द्वारा अपेक्षित दनिक कार्य की मात्रा स विभाजित करके यह मालूम किया जाता है कि कुल कितन कर्मचारियो की आवश्यकता होगी। समय के साथ लोक प्रशासन के क्षत्र म परिमाप क सूक्ष्म साधनो का भी तजी स विकास होता जा रहा है। इस दिशा म अमरिका म भारी प्रगति हुई है। लागत लेखाविधि (Cost Accounting) स यह पता लगा लिया जाता है कि प्रशासन की प्रत्येक इकाई की क्या लागत आएगी। एक ही प्रकृति क विभिन्न प्रशासकीय अभिकरणो के प्रति इकाई की लागत की तुलना करके उनम से प्रत्येक की तुलनात्मक कार्यक्षमता का बहुत कुछ सही ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है। विभिन्न सेवाओ जैसे नगरपालिका सेवाओ के परिमापन के विषय म नए नए सिद्धान्तो का आविष्कार होन लगा है। रिडले तथा साइमन न इस पद्धति का विशेष समर्थन किया है तथापि इस बारे म इनके द्वारा किए गए प्रयत्न अधिक सफल सिद्ध नही हुए है। उनका विचार है कि शिक्षा अथवा इस प्रकार की नई सेवाओ के लिए कार्य व्यावहारिक परिमापन योजना तैयार करने की दिशा म अभी व्यापक शोध और चिन्तन की आवश्यकता है।[1]

1 W S Sa Ma g th P b Se v c P A V l XXX 195 pp 315-320

(ग) व्यवस्थावादी दृष्टिकोण
(Systems Approach)

अमरीकी सामाजिक विज्ञान में 1970 में एक उत्तर-व्यवहारवादी क्रान्ति (Post Behavioural Revolution) का श्रीगणेश हो चुका है। व्यवहारवाद के विरुद्ध आज औचित्य (Relevance) और उद्देश्यहीनता (Goalless ness) के नारे लगाए जा रहे हैं। लोक प्रशासन की दुनिया में भी ऐसा लगता है कि यदि परम्परावादी दृष्टि थीसिस (Thesis) थी तो व्यवहारवादी दृष्टि ने एण्टीथीसिस (Anti th sis) की भूमिका निभाई है और आज सिंथीसिस (Synthesis) के रूप में नाना दृष्टियों के समन्वय से एक संगठनात्मक प्रकार्यात्मक या व्यवस्थावादी दृष्टिकोण (Structural Functional or Systems Approach) जन्म ले रहा है। 1970 के बाद का लोक प्रशासन संगठन की मिली जुली मान्यताओं के सन्दर्भ में नौकरशाही विकास प्रशासन मनोबल एवं उत्प्रेरक साधनों का अध्ययन की ओर प्रवृत्त हो रहा है।

परम्परावादी एवं व्यवहारवादी दृष्टिकोण से भिन्न व्यवस्थावादी दृष्टि (Systems Approach) एक ऐसी दृष्टि है जो व्यवस्था को केन्द्रीय तत्त्व मानकर उसी के चारों ओर अपने अध्ययन को मापक बनाना चाहती है। व्यवस्थावादी दृष्टि लोक प्रशासन को ऐसा सुनियोजित एवं गतिशील यन्त्र मानती है जिसका अध्ययन उसी प्रकार किया जाना चाहिए जैसे एक मोटरकार अथवा साइकिल का किया जा सकता है। कार या एक सिस्टम होता है। किसी भी सिस्टम में निम्न विशेषताएं मोटे तौर पर देखी जा सकती हैं—

1 सिस्टम एक उद्देश्य विशेष को ध्यान में रखकर अपनी संगठन रचना एवं व्यूह रचना निर्धारित करता है।

2 सिस्टम में विभिन्न अंग विशेषीकृत रूप से अलग अलग कार्य करते हैं किन्तु उनका समग्र कार्य सिस्टम को गति देना और उद्देश्य तक पहुंचना है।

3 सिस्टम में प्रकार्यात्मक विशेषीकरण (Functional Special sation) के साथ साथ एक गम्भीर प्रकार की अन्तर्निभरता होती है और एक अंग की आवश्यकता से अधिक स्थिरता सारी व्यवस्था (System) को तोड़ सकती है। यदि मोटरकार व्यवस्थावादी दृष्टिकोण (System Approach) के अनुसार न चले तो वह झुकाम लेगी ठीक वह सकता है पर इस दृष्टि से मूल के सिस्टम को जर्जरीला बना देगा।

4 सिस्टम एक गतिशील (On going Process) प्रक्रिया होती है। उसमें क्रिया प्रतिक्रियाएं और उनके अन्तसम्बन्ध अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। सिस्टम की सफलता की यह मांग है कि समग्रता और प्रक्रिया का कुल मिलाकर उसकी प्रभावशीलता की दृष्टि में आंका जाए।

5 सिस्टम के चलन के लिए कुछ इन-पुटस (Inputs) डालना पड़ता है जो एक प्रक्रिया विशेष में निकल कर आउट-पुट (Output) में बदल जाती है। उदाहरणार्थ कार में इन-पुट के रूप में डाला गया पट्रोल कार के सिस्टम में गुजर कर यात्रा की दूरी के रूप में आउट-पुट देता है और इस प्रक्रिया में स्वयं नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार राजनीति और प्रशासन में कुछ इन-पुट्स दानी जाती हैं जो सेवा उत्पादन सुरक्षा आदि के रूप में आउट पुट बनकर व्यवस्था में निकलती है।

इस तरह व्यवस्थावादी दृष्टि न केवल वर्णन है न व्यवहार एवं आचरण का परीक्षण। यह लोक प्रशासन के ढांचे और अधिकारियों को उस प्रक्रिया और अन्तर्निभरता के संदर्भ में देखती है जो नियोजित कार्य का भूमिका निभा रहे हैं। व्यवस्थावाद (System) में यान्यता प्रभावोत्पादकता और क्षमता (Efficiency Effectivity and Capacity) तीन विशेषताओं का होना जरूरी है। यह यह आवश्यक नहीं कि तीनों ही एक साथ मिल सके। एक अच्छे सिस्टम में तीनों स्तरों पर ये तीन प्रभाव माप जा सकते है। लोक प्रशासन का निम्नतम स्तर प्रभावशाली मध्यस्तर कार्यकुशल और शीर्षस्तर स्वस्थ उपादेयता का धारक होना चाहिए। लोक प्रशासन के प्रबन्ध क्षेत्र में आज व्यवस्थावादी अध्ययनों एव विश्लेषणों की धूम है। अध्ययन के विचार में यह दृष्टि व्यापक अधिक उपयोगी एव अधिक उद्देश्यपूर्ण एवं प्रबन्धपरक है।

इस तरह लोक प्रशासन का क्षेत्र जिस तरह विस्तृत होता जा रहा है और इसकी अध्ययन विधियों में वैज्ञानिकता पनप रही है इसकी दृष्टियाँ परिपक्व एव प्रौढ़ बनती जा रही हैं। वैसे सभी सामाजिक विज्ञान इस प्रक्रिया से गुजर रहे हैं किन्तु लोक प्रशासन एक व्यावहारिक विषय अधिक होने के कारण इन नई दिशाओं और दृष्टियों से अधिक आन्दोलित हुआ है। संगठनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural Functional Approach) तथा व्यवस्थावादी विश्लेषण (System Analysis) कुछ ऐसे प्रयोग हैं जो लोक प्रशासन के विकास को वर्णनात्मकता के स्तर से उभारकर विश्लेषण एव विवेचना के स्तर पर पहुंचाते हैं। इस दृष्टि से सभी प्रयास हुए हैं और जैसे-जैसे यन्त्रीकरण (Automation and Cybernatics) का युग प्रगति करता इन दृष्टिकोणों के प्रयोग की उपयोगी सम्भावनाएं अनन्त ही नहीं बल्कि अभूतपूर्व भी होंगी।

(घ) संगठनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

(Structural Functional Approach)

सामाजिक विश्लेषण में इस दृष्टिकोण का प्रयोग टालकट पार्सन्स (Talcott Parsons) राबर्ट मर्टन (Robert Merton) मेरियन लेवी (Marian Levy) ग्रेब्रियल आमण्ड (Gabriel Almond) डेविड एप्टर (David Apter)

आदि विगना द्वारा किया गया है। इस दृष्टिकोण म सामाजिक सगठन क रूप तथा कार्यों के आधार पर उस व्यवस्था का मूल्याकन किया जाता है। सगठन (Structures) मूत अथवा अमूत दोनो प्रकार क हो सकते हैं। मूत सगठना म सरकारी विभाग तथा ब्यूरो आदि का नाम लिया जा सकता है तथा अमूत सगठनो म सत्ता का विश्लेषण आदि बातें आती है।

लोक प्रशासन म इस दृष्टिकोण का उल्लेख सवप्रथम 1955 म ड्वाइट वाल्डो (Dwight Waldo) ने किया था। उन्होंने इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला था। प्रो रिग्स को वाल्डो का विचार अच्छा लगा और उन्होंने दो वष बाद ही इस दृष्टिकोण के आधार पर अपना कृषका औद्योगिकी (Agraria Industrial) माडल प्रस्तुत किया। उसके बाद रिग्स तुलनात्मक लोक प्रशासन म इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रयोग कर्त्ता बन गए।

यह दृष्टिकोण व्यवस्था विश्लेषण क नाम स भी जाना जाता है। इसकी मान्यता है कि लोक प्रशासन की व्यवस्था का सगठन (Structure) होता है। यह गतिशील मशीन क समकक्ष होता है। इसके द्वारा समग्र रूप म कुछ काय किए जाते हैं तथा इसके विभिन्न अग प्रत्यग भी अपन स्थान और क्षमतानुसार अपना अपना काय करत है। ढाँचे का समग्र रूप ही व्यवस्था है। यह व्यवस्था ही इस दृष्टिकोण म अध्ययन का केन्द्रीय तत्व मानी जाती है। इस दृष्टिकोण के समथकों की मान्यता है कि लोक प्रशासन एक सुनियोजित एव गतिशील यत्र है तथा इसका अध्ययन उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार एक मोटर कार या साइकिल का अध्ययन किया जाता है। मान लीजिए साइकिल एक व्यवस्था है। वह जिन पडल पहिए चेन हैण्डिल फ्रेम चिमटा आदि से मिलकर बनती है उनम से प्रत्येक का अपना विशेष काय होता है। जब ये सभी अग अन्तर्निभरता एव सामूहिकता म काय सम्पन्न करते हैं तो इसे सगठनात्मक काय (Structural Function) कहा जाता है। इसका विवेचन और विश्लेषण करना ही सगठनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण है। प्रत्येक व्यवस्था की अपनी कुछ विशेषताएं होती हैं। ये इस प्रकार हैं—

(क) प्रत्येक व्यवस्था का विशेष उद्देश्य होता है। उसी के अनुसार वह अपने सगठन की रचना एव व्यूह रचना करती है।

(ख) व्यवस्था के विभिन्न अग प्रत्यग अपना विशेष काय सम्पन्न करत है। किन्तु वे कुल मिलाकर व्यवस्था की गति देते है तथा उस उद्देश्य तक पहुँचाने म सहायता करते है।

(ग) व्यवस्था म कार्यात्मक विशेषीकरण रहते हुए भी विभिन्न अगो म अन्तर्निभरता रहती है। किसी भी एक अग में आवश्यकता म अधिक दबाव होने पर पूरी व्यवस्था टूट जाती है। यदि साइकिल की चेन जरूरत म अधिक तेजी स घूमने

लग तो साइकिल चलना बन्द हो जाएगा। स्पष्ट है कि व्यवस्था म आत्मनिर्भरता विनियोजन सत्यात्मकता चेतना केन्द्र एव कार्यक्षमता आदि विशेषताए होना है।

व्यवस्था विश्लेषण म विषय-वस्तु का केवल वर्णन मात्र ही नहीं किया जाता वरन् व्यवहार तथा आचरण का परीक्षण भी किया जाता है इसम लोक प्रशासन के ढाचे तथा अधिकारियो को उस क्रिया और अन्तर्निभरता के सदर्भ म देखा जाता है जो नियोजित कार्य की भूमिका निभा रहे हैं। व्यवस्था की तीन विशेषताए मानी जाती है—प्रभावशीलता (Effectivity) कार्यकुशलता (Efficiency) तथा उपादेयता (Efficacy)। लोक प्रशासन म निम्न स्तर पर प्रभावशीलता होनी चाहिए मध्य स्तर पर कार्यकुशलता और उच्च स्तर पर उपादेयता रहनी चाहिए। एक अच्छी व्यवस्था म इन तीनो का उपयुक्त सतुलन रखा जाता है। लोक प्रशासन की विभिन्न समस्याओ पर आजकल व्यवस्था दृष्टिकोण के अनुसार विचार किया जाता है। फलत इन दिनो प्रशासन के विभिन्न पहलुओ पर अनेक व्यवस्था अध्ययन एव विश्लेषण किए गए हैं।

सगठनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण मूल्य तटस्थ अथवा मूल्य स्वतत्र (Value neutral or Value free) दृष्टिकोण है। बाद म लोक प्रशासन के विभिन्न विचारको का ध्यान इस ओर गया। जब तुलनात्मक लोक प्रशासन म यह दृष्टिकोण अपनाया गया तो यह स्पष्ट हो गया कि पाश्चात्य प्रशासनिक व्यवस्थाओ के व्यवहार एव सस्थाए सवश्रेष्ठ नही हैं। प्रत्येक देश की अपनी सामाजिक रूप रचना के सन्दर्भ म ही वहा की प्रशासनिक सस्थाओ का मूल्याकन किया जाना चाहिए।

लोक प्रशासन मे मानव तत्त्व

(Human Factor in Public Administration)

लोक प्रशासन मनुष्यो द्वारा मनुष्यो के लिए है अत इसम मानवीय तत्त्व के अध्ययन का केन्द्रीय महत्त्व होता है। यह लोक हित, लोक कल्याण लोक उद्देश्य जसे बिन्दुओ को अपने आवरण म समेटे हुए है और मानव सम्बन्धो से किसी भी रूप म पीछे हटने पर यह प्रशासन का एक अत्यन्त निर्जीव और शुष्क सा मृत चिह्न रह जाएगा। प्रशासन एक मानवीय कला है, एक सामाजिक विज्ञान है। व्यक्ति ही सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था का सचालक स्रोत आधार और मार्ग निर्माता है। लोक प्रशासन की असख्य एसी समस्याएँ है जिन्ह मानव मनोविज्ञान के समुचित अध्ययन के अभाव म अच्छी तरह नही समझा जा सकता। यदि लोक प्रशासन को सफल और सजीव बनाना है तथा उसकी समस्याओ का निदान करना है तो उसे मनुष्य के व्यवहार की विभिन्न परिधियो के प्रसग म देखना होगा।

लोक प्रशासन के सन्दर्भ म मानवीय तत्त्व के दो मुख्य रूप हैं—

(1) प्रशासन और उसके कार्यकर्ताओ (उसम काम करने वाले कर्मचारी वर्ग) के बीच सम्बन्ध एव

(2) प्रशासन अर्थात् प्रशासक और प्रशासितो के बीच सम्बन्ध।

लोक प्रशासन एवं विशाल संगठन है जो परिमाणात्मक अथवा प्रमापीकृत प्रणालियों और रीतियों से काम करता है पर आवश्यक है कि इन औपचारिक प्रक्रियाओं और प्रबन्ध प्रवतन आदि की समस्याओं के प्रति मानव प्रयासों के बीच एक सन्तुलन बना रहे। सन्तुलन की यह समस्या अपने आप में विकट है क्योंकि मानव तत्व यन्त्रीकृत नहीं हो सकता। वह एक ऐसी वस्तु है जिसकी उपेक्षित किये जाने अथवा भुलाये जाने का भय बना रहता है। यह सम्भव है कि प्रशासकीय अथवा अन्य कोई भी विशालकाय संगठन अन्त में अपने सदस्यों के लिए व्यक्तित्व हीनता का रूप धारण कर ले और संगठन के प्रत्येक सदस्य की स्थिति यन्त्र के पहिए के दाँतों जैसी हो जाए। इस प्रकार की सम्भावना अथवा ऐसे संकट का तभी उन्मूलन किया जा सकता है जब संगठन में व्यक्तियों को मान्यता देते हुए व्यक्तिगत कार्यों को सार्थकता सहयोग और सृजन के मार्ग पर लाया जाए। इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रबन्ध निरीक्षण आदि के सन्दर्भ में ऐसे कदम न उठाए जाएँ जिनसे संगठन के कार्यकर्त्ता संगठन तथा उसके उद्देश्यों से अपनी एकात्मकता खो बैठें। प्रयास सदैव यही होना चाहिए कि समादेश और ... की आवश्यकताओं के सामान्य ढाँचे के अन्तर्गत कार्यकर्त्ताओं अथवा ... के साथ प्रभावशाली संचार और सम्बन्ध को सम्बन्ध कायम रखा जाए।

लोक प्रशासन स्वयं ही एक सामूहिक मानवीय क्रिया है अतः सामूहिक सम्बन्धों का शासकों और शासितों के सम्बन्धों का आधार क्या हो व्यक्ति उन आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करे आदि विषय लोक प्रशासन के लिए विचारणीय है। लोक प्रशासन चाहे कितना ही भौतिक एवं समाज के जड़ पदार्थों से सम्बन्धित हो उसका मुख्य उद्देश्य एक नए समाज की रचना करना या उसके निर्माण में अपना योग देना है। प्रशासक का सुख एक कलाकार का सुख है जिसे अपने कार्य से ही सन्ताप मिल सकता है। दूसरे शब्दों में प्रशासन की सफलता और कार्यकुशलता की कसौटी यह है कि वह शासितों के साथ कैसे रचनात्मक और सजीव सम्बन्ध बनाए रखता है। लोक प्रशासन में लोगों के प्रति सेवा का भाव निहित है और यदि शासक और शासितों के सम्बन्ध एकाकार नहीं होंगे तो वांछित उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती। प्रशासकों से अपेक्षित है कि वे अपने को सेवक मानकर चलें स्वामी नहीं। साधारण जनता ही इन्हें प्रशासक बनाती है और उनको यह कर्त्तव्य सौंपती है कि वे जनता के हित में प्रशासकीय कर्त्तव्यों का निर्वाह करें एवं लोक-कल्याणकारी शासन की स्थापना करें। साधारण जनता ही सभी बिन्दुओं अथवा बातों का केन्द्रस्थल है प्रशासन नहीं। अतः यह आवश्यक है कि प्रशासकों का जनसाधारण के प्रति मैत्रीपूर्ण तथा समानता का व्यवहार रहे। लोक प्रशासन सभ्यता और सभ्य जीवन का रक्षक है सामाजिक परिवर्तन और

भी होती है और उनका नेतृत्व भी करती है। स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू के इन शब्दों में वस्तुस्थिति का एक सच्चा चित्र प्रस्तुत होता है कि—

अन्तिम विश्लेषण में प्रशासन अन्य बहुत सी चीजों की भांति एक मानवीय समस्या है। इसमें मनुष्यों के साथ व्यवहार करना होता है न कि आंकड़ों की किसी तालिका के साथ। प्रशासक उसके सम्पर्क में आने वाले लोगों के बारे में विचार कर सकता है, उनके सम्बन्ध में ऐसे निष्कर्ष निकाल सकता है जो मुख्यतः न्यायालय तो हों किन्तु जिनमें मानव-तत्व को भुला दिया गया हो, अन्ततः आप चाहे किसी भी विभाग में कार्य कर रहे हों आखिर वह मनुष्यों की ही समस्या है और न्या ही हम उन्हें भुला देते हैं हम वास्तविकता से दूर जा गिरते हैं। प्रशासन का उद्देश्य तो कुछ प्राप्त करना ही है न कि प्रक्रिया के कुछ विशेष नियमों का अनुसरण करते हुए नरगिस के पौधे के समान पूर्ण सन्तोष करके शीशमहल में बैठे हुए आनन्द का जीवन बिताना। मनुष्य मात्र और उसका कल्याण ही वास्तव में प्रशासन की कसौटी है।

लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

(Relation of Public Administration with other Social Sciences)

प्रशासन, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, कानून, समाजशास्त्र आदि विषय किसी प्रकार भी एक दूसरे से सर्वथा असम्बद्ध नहीं हैं। दूसरे शब्दों में इन विषयों में परस्पर अनेक अन्तर होते हुए भी सम्बन्ध के सूत्र प्रबल हैं। लोक प्रशासन सामाजिक जीवन को व्यवस्थित और गतिशील रखने वाली शक्ति है तो इतिहास सामाजिक जीवन के अतीत की विवेचना को प्रस्तुत करता है और लोक प्रशासन की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के निर्माण में सहायक होता है। जो लोक प्रशासन इतिहास की चेतावनी की उपेक्षा करता है उसकी सफलता संदिग्ध रहती है। राजनीति शास्त्र सामाजिक जीवन के वर्तमान और अतीत के राजनीतिक स्वरूप और सिद्धान्तों की व्याख्या करता है तथा लोक प्रशासन का आधार राजनीति विज्ञान पर स्थिर है। अर्थशास्त्र सामाजिक जीवन के आर्थिक तथ्यों व्यवस्थाओं और सिद्धान्तों का प्रस्तुत करता है तो कानून सामाजिक जीवन के वैज्ञानिक स्वरूप से सम्बद्ध है तथापि हम यह न भूलना चाहिए कि ये सामाजिक विज्ञान परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी इनकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता (Independent Status) है।

(क) लोक प्रशासन और राजनीति

(Public Administration and Politics)

(सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में राजनीति और लोक प्रशासन का सबसे अधिक सम्बन्ध है तथा दोनों एक दूसरे को अत्यधिक प्रभावित करते हैं।)

प्रारम्भिक विचारकों ने राजनीति और लोक प्रशासन को एक दूसरे से पृथक करने की चेष्टा की थी लेकिन आज यह दृष्टिकोण अव्यावहारिक माना जाता है। आज लगभग सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि राजनीति और प्रशासन में चोली दामन का साथ है। दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं रह सकते। एक दूसरे से अलग रहने पर दोनों ही अपूर्ण रहेंगे एक के सहयोग के बिना दूसरा निष्क्रिय बन जायेगा।)

परम्परागत दृष्टिकोण—(प्राचीन विचारकों में वुडरो विलसन ने सकीर्णतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए राजनीति और प्रशासन के बीच मौलिक भेद बतलाया और कहा प्रशासन राजनीति से बाहर है। प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं है। यद्यपि राजनीति प्रशासन के लिए कार्य निर्धारित करती है तथापि इसको यह अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए कि वह प्रशासकीय तन्त्र में हेर फेर या हस्तक्षेप कर सके।) लशली ने भी यह माना है कि प्रशासन एक तकनीकी अधिकारी का क्षेत्र है एक राजनीतिज्ञ का नहीं। प्रो गुडनाउ के अनुसार प्रशासक का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो राजनीति से सम्बन्धित नहीं है। (वास्तव में यह विचार-वर्ग राजनीति को सत्ता का विज्ञान मानते हुए मूल रूप से नीति निर्धारक कला मानता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन केवल सरकारी कर्मचारियों का क्षेत्र है जिनकी अपनी भूमिका इतनी सीमित होती है कि वे नीति निर्माण में कोई महत्वपूर्ण भाग नहीं लेते। उनकी भूमिका का निर्धारण राजनीति द्वारा होता है वे राजनीतिज्ञों के प्रति निष्ठावान् रहते है।)

आधुनिक दृष्टिकोण—आज इस प्राचीन अथवा परम्परागत दृष्टिकोण को अव्यावहारिक माना जाता है। यह मान लिया गया है कि राजनीति और प्रशासन प्रकाश तथा छाया की भांति एक दूसरे में अदृश्य रूप से समाविष्ट रहते हैं। व्यावहारिक धारणा के रूप में दोनों के मध्य भेद है, लेकिन दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं किए जा सकते। प्रशासन के सहयोग के बिना राजनीति द्वारा निर्मित नीतियों को क्रियान्वित करना दुष्कर है और इसी प्रकार यदि राजनीति द्वारा नीतियों का निर्धारण न हो तो प्रशासन के पथभ्रष्ट हो जाने का भय है। इसलिए लथर गुलिक की मान्यता है कि राजनीति को प्रशासन से और प्रशासन को राजनीति से पृथक नहीं किया जा सकता। यदि प्रशासकों पर से नियन्त्रण हटाकर उन्हे अपनी मनमानी करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया गया तो इसका अर्थ होगा घड़ी को पीछे की ओर घुमा देना और उस बहुमूल्य देन को फेंक देना जो मानव-जाति ने दीर्घकालीन संघर्ष के बाद प्राप्त की है। राजनीतिज्ञ और प्रशासक में अनेक अंतर बतलाए जा सकते हैं—एक अस्थायी है तो दूसरा स्थायी, एक दलीय राजनीति से सम्बन्धित है तो दूसरा तटस्थ, एक सामान्य व्यवसायी व्यक्ति है तो दूसरा विशेषज्ञ, एक संयोजक है तो दूसरा निष्पादक, एक निर्णयकर्त्ता है तो दूसरा

परामर्शदाता, आदि किन्तु ये सभी अन्तर मात्रात्मक हैं, प्रकारात्मक नहीं। ये अन्तर प्रशासन और राजनीति को एक दूसरे से अलग नहीं करते। दोनों के बीच इतना सम्बन्ध है कि उन्हें अलग अलग खीचों में बाँधना गलत होगा। यदि दोनों को अलग किया भी जाए तो भी दोनों की सीमा रेखाएं अनेक स्थानों पर इतना मिली हुई होंगी कि एक स्पष्ट विभाजक रेखा खींचने का प्रयत्न अव्यावहारिक होगा। बाल की खाल निकालना होगा।

राजनीति और प्रशासन का परस्पर सम्बन्ध और प्रभाव—राजनीति और प्रशासन के सम्बन्धों पर विचार करते समय वास्तव में किसी भी अतिवादी दृष्टिकोण से बचते हुए दोनों के बीच सन्तुलन की स्थापना की जानी चाहिए। डा. एम. पी. शर्मा का अभिमत है कि राजनीति और राजनीतिज्ञों का प्रशासन में व्यापक उद्देश्यों की परिभाषा और राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति की चेष्टा तक ही सीमित रहना चाहिए। यह राजनीतिक सत्ता ही प्रशासन की चालक शक्ति है और प्रशासकों का कार्यक्षेत्र नीतियों के निर्माण के लिए तथ्य व सूचनाएं जुटाना, सुझाव देना, आलोचनाएं करना तथा उनके निर्माण के पश्चात् उनको क्रियान्वित करना तक ही होना चाहिए। जब तक यह सिद्धान्त बुनियादी रूप में मान्य है कि नीतियों के विषय में अन्तिम निर्णय सत्ताधारी राजनीतिज्ञों के हाथों में रहेगा तब तक जनतन्त्र को किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं है और जब तक राजनीतिज्ञ यह स्वीकार करने के लिए तैयार रहता है कि वह नीतियों के क्रियान्वयन के विषय में विशेषज्ञ नहीं है तब तक प्रशासन को भी किसी प्रकार के अतिक्रमण का भय नहीं है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि दोनों के बीच कुछ उभयनिष्ठ क्षेत्र भी है और राजनीतिज्ञ एवं प्रशासक के कार्यक्षेत्रों के मध्य एक निश्चित विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है। इतना ही नहीं कुछ देशों में विशेष प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों और परम्पराओं के कारण ये उभयनिष्ठ क्षेत्र अधिक विस्तृत हो सकते हैं परन्तु इस आधार पर राजनीति और प्रशासन के भेद को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता। स्वस्थ परम्पराओं का निर्माण करने के लिए दोनों के मध्य भेद की उपेक्षा करने के स्थान पर उसे ध्यान में रखना अधिक लाभदायक होगा।

राजनीति और प्रशासन के बीच व्यावहारिक व्यवस्था के विकास में स्वस्थ परम्पराएं प्रभावशाली सिद्ध होती हैं। दोनों परस्पर सहयोग करते हुए संघर्ष की सम्भावना को टाल सकते हैं। ब्रिटेन की व्यवस्था इसका बड़ा अच्छा उदाहरण है। वहाँ मन्त्रिगण अपने अधीनस्थ प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा अपने विचारों की मुक्त अभिव्यक्ति को न केवल सहन करते हैं बल्कि उसे आवश्यक भी मानते हैं। दूसरी ओर प्रशासकीय अधिकारी भी अपने राजनीतिक अध्यक्षों द्वारा निर्धारित नीतियों को पूरी लगन के साथ क्रियान्वित करते हैं चाहे प्रारम्भिक अवस्थाओं में

उन नीतियों से वे असहमत रहे हों। भारत में भी राजनीतिज्ञों और प्रशासकीय अधिकारियों के बीच सहयोग के सूत्र प्रशंसनीय रहे हैं।

फिफनर ने राजनीतिक और प्रशासकीय अधिकारियों के बीच दस भेद गिनाए हैं जिन्हें अपने हिन्दी अनुवाद में डा एम पी शर्मा ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

राजनीतिक अधिकारी	प्रशासकीय अधिकारी
1 अव्यवसायी (Amateure)	1 व्यवसायी (Professional)
2 अप्राविधिक (Non technical)	2 प्राविधिक (Technical)
3 दलीय (Partisan)	3 निर्दलीय (Non Partisan)
4 अस्थायी (Temporary)	4 स्थायी (Permanent)
5 घनिष्ठ सार्वजनिक सम्पर्क	5 विरल सार्वजनिक सम्पर्क
6 घनिष्ठ विधायी सम्पर्क	6 विरल विधायी सम्पर्क
7 मुख्य नीति निर्माता	7 गौण नीति निर्माता
8 निर्णय बहुल (More Decisions)	8 परामर्श-बहुल (More Advisory)
9 अधिक समन्वयकारी	9 अधिक क्रियान्वयन
10 लोकमत से प्रभावित	10 अध्ययन और अनुसंधान के आधार पर एकत्रित प्राविधिक तथ्यों से प्रभावित

फिफनर के विवरण के आधार पर प्रशासकीय और राजनीतिक अधिकारियों के कार्यों की सूचियाँ बनाई जा सकती हैं। पर ये कार्य राजनीति और प्रशासन को एक-दूसरे से अलग नहीं करते, क्योंकि दोनों के सहयोग से ही इन कार्यों का सम्पादन सम्भव है। राजनीतिक अधिकारी अथवा मन्त्री चुनावों के दौरान जनता को दिए गए वचनों को पूरा करने के लिए नीतियाँ बनाते हैं और देखते हैं कि उन्हें सही रूप में तेजी से लागू किया जा रहा है। अतः नीतियों के क्रियान्वयन के सिलसिले में वे प्रशासकीय कार्यों में मोटे तौर पर अधीक्षण कर सकते हैं, समस्याजनक प्रशासकीय प्रश्नों पर वे निर्णय ले सकते हैं और इसी प्रकार प्रशासकीय अधिकारियों की नियुक्ति के बारे में भी उनका मत महत्वपूर्ण हो सकता है। उनका यह अधिकार अपेक्षित है कि वे प्रशासकीय विभाग से सम्बन्धित प्रत्येक जानकारी प्राप्त करें और आवश्यक होने पर जाँच भी करा सकें। राजनीतिज्ञों को यह अधिकार भी होना चाहिए कि सार्वजनिक और व्यक्तिगत शिकायतों को दूर कराने के लिए प्रशासन में हस्तक्षेप कर सकें। पर इस सब के बावजूद उनसे यही आशा की जाती है कि वे प्रशासनिक क्षेत्र में यथासम्भव कम से कम हस्तक्षेप करेंगे, अपने अधीनस्थ प्रशासकीय अधिकारियों पर भरोसा रखेंगे, आवश्यक होने पर उनसे परामर्श लेंगे और उनके परामर्श को सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद स्वीकार करने में संकोच नहीं करेंगे। प्रशासन के प्रति व्यवहार में वे छिद्रान्वेषण और अधैर्य का प्रदर्शन नहीं करेंगे। अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करके वे प्रशासन में गलत काम नहीं कराएँगे। प्रशासकीय

अधिकारियों का भी कर्तव्य है कि वे आवश्यक आंकड़े, सूचनाएं आदि जुटाकर प्रस्तावित नीतियों के व्यापक अर्थों प्रभावों और परिणामों के बारे में विस्तृत विवरण तैयार कर अपने राजनीतिक अध्यक्षों का सहयोग देंगे। वे राजनीतिक अध्यक्षों की नीतियों पर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचार व्यक्त करें लेकिन एक बार स्वीकृत हो जाने के बाद उन नीतियों को ईमानदारी से लागू करेंगे।

राजनीति और प्रशासन के बीच सम्बन्धों की दृष्टि से हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कुछ प्रशासकीय क्षेत्रों में प्रशासकीय अधिकारियों को स्वविवेक से नीतियों के निर्माण का भी अधिकार होगा। लेकिन यह अपेक्षित है कि ऐसी नीतियों का निर्माण नहीं किया जाएगा जो राजनीतिक अध्यक्षों की नीतियों से टकराती हों अन्यथा सरकार का सुचारु रूप से संचालन कठिन हो जाएगा। पुनश्च यह भी आवश्यक है कि पदसोपान के स्वर्ण नियम का पालन किया जाय अर्थात् राजनीतिक अध्यक्ष और अन्य उच्च अधिकारी अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ सीधे सम्बन्ध स्थापित न करें अपितु समुचित माध्यम द्वारा (Through Proper Channel) ही सम्पर्क स्थापित करें। दूसरे शब्दों में बाद भी उच्चतर अधिकारी अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ प्रथम उच्च अधिकारी (Immediat Of cial Superior) के द्वारा ही सम्पर्क स्थापित करें। यदि इस नियम की अवहेलना की जाती है तो परम्पराएं विकसित होंगी और इससे प्रशासकीय अधिकारियों की सत्ता तथा प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचने की सम्भावनाएं भी प्रबल होंगी।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि चाहे राजनीति और प्रशासन एक दूसरे से भिन्न लगें तथा इनमें कार्यों का अलग-अलग विभाजन हो लेकिन उनकी निकटता अन्तर्निर्भरता और अन्योन्याश्रितता से इन्कार नहीं किया जा सकता। डा. प्रभुदत्त शर्मा के अनुसार दोनों की घनिष्ठता तीन तथ्यों से स्पष्ट है—

1. राजनीतिक व्यवस्था प्रशासन के लिए कोई बाह्य अथवा असंगत चीज नहीं है। राजनीति समाज का मूल ढांचा प्रस्तुत करता है और प्रशासन इसी घर में उसके द्वारा निर्धारित संगत भूमिका निभाने के लिए उसका एक एजेंट मात्र है।

2. जो प्रशासन अपने आप को अराजनीतिक होने का दावा करता है वह कुल मिलाकर एक राजनीति विरोधी प्रशासन है जो या तो राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति का अवरोध करता है या उसे नौकरशाही के पिंजरे में जकड़ कर प्रभावहीन बनाने की चेष्टा करता है।

3. सभी प्रशासनिक व्यवस्थाएं राजनीतिक व्यवस्थाओं के अनुरूप होती हैं। उदाहरणार्थ अमेरिका जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में जिस प्रशासक को केन्द्रीय भूमिका मिली है उसे रूस की व्यवस्था अपने प्रशासन में प्रविष्ट नहीं होने देगा।

वास्तव में राजनीति नाव प्रशासन का नियन्त्रित करता है किन्तु बदले में

यह भी सही है कि लोक प्रशासन राजनीति को दिशा निर्देश देता है। दोनों के सम्बन्ध के विवेचन में हम अतिवादी दृष्टिकोण के स्थान पर सन्तुलित दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। प्रशासन द्वारा राजनीति को सम्मान देना चाहिए और राजनीति द्वारा प्रशासन को। राजनीति को प्रशासन को अपने हाथों का खिलौना मानकर चलने की मनोवृत्ति से बचना चाहिए। डा एम पी शर्मा के शब्दों में "जब राजनीति यह चिन्तन करने की भूल करती है कि प्रशासकीय दृष्टि से क्या व्यावहारिक और सम्भव है तब वह केवल काल्पनिक स्वरूप ग्रहण कर लेती है और लोक प्रशासन अपने राजनीतिक सन्दर्भ से अलग हटकर शून्य बन जाता है।

(ख) लोक प्रशासन और कानून
(Public Administration and Law)

लोक प्रशासन और कानून के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। विल्सन के शब्दों में "लोक प्रशासन सार्वजनिक कानून का व्यापक अधिशासी स्वरूप बन जाता है। लोक प्रशासन और कानून के घनिष्ठ सम्बन्ध को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट कर सकते हैं—

1 लोक प्रशासन देश के कानूनों के अन्तर्गत ही कार्य करता है। प्रशासक ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकता जो कानून के विपरीत हो। डा एम पी शर्मा के अनुसार "लोक प्रशासक को विधि (कानून) के दायरे में ही रहना होता है अर्थात् केवल इतना ही नहीं कि वह किसी विधि का उल्लंघन न करे वरन् उसे कोई कार्य भी केवल तभी करना चाहिए जबकि विधि उसे ऐसा करने की अनुमति दे।

2 यूरोप के अनेक राष्ट्रों में लोक प्रशासन कानून के अधीन माना गया है। कानून को लोक प्रशासन का लक्ष्य और लोक प्रशासन को उसका माध्यम माना जाता है। लोक प्रशासन देखता है कि राष्ट्रीय कानून का पालन अधिकाधिक सीमा तक हो इसीलिए इसे कानून की एक शाखा के रूप में मान्य है।

3 कानून निर्माण के साथ भी लोक प्रशासन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिकांश विधेयक विभिन्न प्रशासकीय विभागों के प्रयास पर आरम्भ किए जाते हैं और उनका प्रारम्भिक प्रारूप प्राय विभागों की इच्छानुसार तैयार किया जाता है। आधुनिक युग में प्रदत्त व्यवस्थापन का प्रचलन अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है जिसके अनुसार प्रशासकीय अधिकारी और विभाग नियमों आदि के रूप में एक बड़ी संख्या में कानूनों का निर्माण करते हैं। समयाभाव के कारण संसद कतिपय सीमाओं के अन्तर्गत कानून निर्मात्री शक्तियाँ कार्यपालिका को सौंप देती है।

4 प्रशासन के उत्तरदायित्व को वहन करने के क्षेत्र में कानून एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यदि प्रशासन कोई अनधिकृत कार्य करता है और वैधानिक सत्ता का उल्लंघन करता है तो न्यायालय प्रदत्त कानून के अनुसार उसे ठीक कर देते हैं। कानून प्रशासन को नागरिकों की स्वतन्त्रता का हनन करने से रोकता है।

5 प्रशासन केवल एक कानून अथवा वधानिक विषय ही नहीं है। जसा कि डा एम पी शमा ने लिखा है विधि के व्यापक क्षेत्र के अन्तगत प्रशासक को स्वविवेक की शक्ति दी जानी चाहिए ताकि वह ताकिक परिस्थितियों के अनुसार काय कर सके और प्रसग एव परिस्थिति के अनुसार साधनों का चयन कर सके।

6 सामाजिक और आर्थिक कानूनों के निर्माण म प्रशासन का काफी प्रभाव पड़ता है। कानून के मौलिक विचारों म परिवतन लाने म भी प्रशासन की प्रमुख भूमिका होती है।

7 लोक प्रशासन और सावैधानिक कानून म घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जसा कि विमन ने लिखा है प्रशासन का अध्ययन सांविधानिक सत्ता के समुचित वितरण के अध्ययन के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

(ग) लोक प्रशासन और अथशास्त्र

Public Administration and Economic)

राज्य के कल्याणकारी स्वरूप के विस्तार के साथ साथ लोक प्रशासन और अथशास्त्र के सम्बन्धों की घनिष्ठता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। आज हमारे युग म लोक प्रशासन पर आर्थिक समस्याएं छाई हुई ह। दोनों अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हुए एक दूसरे के लिए उपयोगी हैं। यदि लोक प्रशासन अथशास्त्र को सगठन प्रदान करता है तो अथशास्त्र प्रशासन को सगठन के लिए वित्तीय स्रोत प्रदान करता है। लोक प्रशासन और अर्थशास्त्र के सम्बन्ध को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते ह—

1 प्रत्येक आर्थिक क्रिया का स्वरूप प्रशासकीय आ जाता है। आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि समाज म व्यवस्था कायम रहे और यह व्यवस्था प्रशासन का मूल मन्त्र है। यदि प्रशासन शिथिल और गतिहीन होगा तो समाज म शान्ति और व्यवस्था की स्थापना नहीं हो सकेगी जिसके फलस्वरूप आर्थिक क्रियाएं समुचित रूप म सम्पन्न न हो सकेंगी। अव्यवस्था की स्थिति म आर्थिक योजनाएं पूरी नहीं हो सकतीं।

2 अनेक आर्थिक प्रश्न लोक प्रशासन की परिधि म आते ह। उदाहरणाथ कर एक आर्थिक प्रश्न भी है और लोक प्रशासन का विषय भी है। इसी प्रकार बजट का सम्बन्ध लोक प्रशासन और अथशास्त्र दोनों से होता है। राष्ट्रीयकरण को हम केवल एक आर्थिक प्रश्न ही नहीं कहेंगे बल्कि यह लोक प्रशासन का भी एक गम्भीर विषय है।

3 आज का युग आर्थिक राष्ट्रवाद और अन्तराष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता का है अत राज्य के लिए आवश्यक है कि वह राष्ट्रीय उद्योगों को सरक्षण प्रदान कर तथा आर्थिक सगठनों द्वारा और विदेशी व्यापार को सम्बद्ध न करे। सामाजिक न्याय की दृष्टि म आवश्यक हो गया है कि राज्य अथवा दूसरे शब्दों म लोक प्रशासन ...पार्जन और

औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश करें। भारत में सार्वजनिक उद्योगों का विस्तार आर्थिक क्षेत्र में लोक प्रशासन के बढ़ते हुए प्रवेश का सूचक है। आज के युग की प्रवृत्ति है कि राज्य को आर्थिक विषयों में अधिकाधिक घसीटा जाए। इन्हीं बातों ने यह आवश्यक बना दिया है कि लोक प्रशासक आर्थिक समस्याओं के बारे में पर्याप्त ज्ञान रखें। आज के युग में प्रत्येक प्रशासनीय नीति को उसके आर्थिक परिणामों के सन्दर्भ में देखा जाता है। जो विभिन्न दबाव समूह प्रशासन को प्रभावित करते हैं वे अधिकांशतः अपने अपने आर्थिक हितों के संरक्षण के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। आज के लोक प्रशासन का यह प्रथम दायित्व है कि यह राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि और शक्ति के लिए कार्य करे। डा. एम. पी. शर्मा के शब्दों में उसे (लोक प्रशासन को) प्रतिकूल वाणिज्यिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए, बेरोजगारों के लिए रोजगार की व्यवस्था करनी चाहिए, यथासम्भव अनुकूल व्यापारिक सन्तुलन बनाए रखना चाहिए और राष्ट्र की वित्तीय साख तथा स्थिरता को कायम रखने के लिए शक्तिभर चेष्टा करनी चाहिए। यदि लोक प्रशासन देश की वित्तीय समस्याओं को सन्तोषजनक रूप से हल नहीं कर पाता तो साख समाप्त हो जाती है, उसमें जनता का विश्वास नहीं रहता।

4 आज के समाजवाद का आधार आर्थिक है। शासन व्यवस्था को समाजवादी विचारों ने प्रभावित कर रखा है और प्रशासन का लक्ष्य समाजवादी आदर्शों का व्यापक और सफल क्रियान्वयन हो गया है।

5 आज के आर्थिक युग में एक व्यक्ति की आर्थिक क्रियाएँ पूरे समाज को प्रभावित करती हैं और आज का आर्थिक ढाँचा व्यक्ति तथा उसके जीवन-स्तर को प्रभावित करता है। समाज में कृत्रिम आर्थिक प्रतियोगिताएं हावी न हों, आर्थिक शोषण की प्रवृत्तियाँ न पनपें, एकाधिकारपूर्ण स्थितियाँ पैदा न हों, आर्थिक विषमताओं का विस्तार न हो, इन सब बातों के लिए यह आवश्यक है कि लोक प्रशासन अवांछनीय आर्थिक क्रियाओं को प्रतिबन्धित करे, आर्थिक क्षेत्र में प्रशासकीय नियन्त्रण स्थापित करे।

6 वर्तमान युग नवीन विचारों और अधिकाधिक नवीन प्रयोगों का युग है। नवीन आर्थिक विचार प्रशासन के संगठन और प्रशासनिक रीतियों को महत्त्वपूर्ण रूप में प्रभावित कर रहे हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में राज्य के प्रवेश के फलस्वरूप नए प्रकार के प्रशासकीय संगठनों अर्थात् सार्वजनिक निगमों का उदय हुआ है और व्यक्तिगत सम्पत्ति का नियमन आदि करने की दृष्टि से प्रशासकीय विधि तथा प्रशासकीय न्यायाधिकरण पद्धति विकसित हुई है। लोक प्रशासन की प्रक्रियाओं में व्यापारिक रीतियों को अधिकाधिक मात्रा में लागू करने की प्रवृत्ति पनप रही है और इस दिशा में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं।

स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र और लोक प्रशासन घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं एक दूसरे को अनेक रूपों में प्रभावित करते हैं।

(घ) लोक प्रशासन और मनोविज्ञान

(Public Administration and Psychology)

मनुष्य का प्रत्येक आचरण किसी न किसी मनोवैज्ञानिक कारण से प्रभावित होता है। मनोविज्ञान समाज में मानवीय आचरण का, मानवीय व्यवहार का अध्ययन है और लोक प्रशासन समाज में मानव प्रक्रियाओं का अध्ययन है। अतः दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्वाभाविक है। मानव क्रियाओं के साथ सम्बन्धित कोई भी सामाजिक विज्ञान अपने अध्ययन में निश्चित मनोवैज्ञानिक तत्वों से अप्रभावित नहीं रह सकता। लोक प्रशासन में मनोवैज्ञानिक तत्वों का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आज इस दृष्टिकोण को ठुकराया जा चुका है कि लोक प्रशासन के अधिकारियों के *बीच केवल वैधानिक और औपचारिक सम्बन्ध ही होने चाहिए।* आज इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि लोक सेवकों तथा जनता के दृष्टिकोण और व्यवहार को मनोवैज्ञानिक कारण प्रभावित करते हैं। मानव का व्यवहार केवल औपचारिक प्रयत्नों से नियन्त्रित नहीं किया जा सकता इसके लिए मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को अपनाया जाना नितान्त आवश्यक है। कार्मिक और जनता की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं और प्रवृत्तियां किसी भी संगठन के व्यावहारिक संचालन पर गहरा प्रभाव डालती है। यदि अधिकारियों और अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच मधुर सम्बन्ध है तो संगठन का स्वरूप सर्वथा भिन्न हो जाता है। मनोवैज्ञानिक तत्वों को महत्त्व देने के कारण ही आज के लोक प्रशासन में सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने और सहकारी बनाने की इच्छा अधिकाधिक बलवती हो रही है। मनोविज्ञान ने लोक प्रशासन को केवल प्रभावित ही नहीं किया है बल्कि उसे एक विशेष दिशा में चलने की प्रेरणा भी दी है।

लोक प्रशासन किसी एक वर्ग अथवा समुदाय तक सीमित न रहकर सार्वजनिक बन चुका है। इसका लक्ष्य प्रायः कर्तव्यनिष्ठ सद्भावी नागरिकों और विध्वंसक या अराजक नागरिकों के बीच उचित समन्वय स्थापित करने के लिए विशेष योजनाएं बनाता है अराजक प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करता है और मनोविज्ञान के आधार पर उन्हें सुधारने की चेष्टा करता है। अपराधियों के प्रति सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाए जाने का मूल कारण मनोवैज्ञानिक तत्वों को समझना रहा है। मनोविज्ञान द्वारा लोकमत को समझने में बहुत कुछ सहायता मिलती है। समूह मनोविज्ञान (Group Psychology) ने आज कितना महत्त्व प्राप्त कर लिया है यह कहने की आवश्यकता नहीं।

प्रशासन की समस्याओं में मनोविज्ञान ने अनेक समस्याएं जोड़ दी है और

प्रशासन के छात्र के लिए इसका अध्ययन आवश्यक हो गया है। जैसा कि डा एम पी शर्मा ने लिखा है प्रशासन में प्रोत्साहन प्रतिष्ठा तथा मनोबल की समस्याएं मन्त्र मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान तो पूर्णतया नया विज्ञान ही बन गया है। कार्मिक के चयन के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है तथा कार्मिक प्रशासन पर मनोवैज्ञानिक धारणाओं का अधिकाधिक प्रभाव पड़ता जा रहा है। समितियों और सम्मेलनों द्वारा स्टाफ के साथ परामर्श की व्यवस्था निम्नाजकों तथा कर्मियों के मध्य पारस्परिक मनभेदों को दूर करने के लिए दोनों को समान रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले ह्विटले परिषदें इस संगठन संगठन के केन्द्रीय उद्देश्य से परिचित कराने के लिए कार्मिकों का सामूहिक प्रशिक्षण और लोक सम्पर्क की ओर अधिकाधिक ध्यान अर्थात् जनता को प्रशासन की नीतियों और उसके कार्यों से परिचित कराने तथा उसकी सद्भावना प्राप्त करने के लिए प्रशासन प्रचार ये सब काम इस मान्यता पर आधारित हैं कि प्रशासन से सम्बन्धित विविध पक्षों के मध्य समुचित मनोवैज्ञानिक सम्बन्धों की स्थापना बहुत महत्वपूर्ण है।

(ड) लोक प्रशासन और इतिहास

(Public Administration and History)

लोक प्रशासन और इतिहास में भी निकट सम्बन्ध है। किसी भी देश के प्रशासन का अध्ययन तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक हम उसके विकास का समुचित ज्ञान न हो। विकास का अध्ययन करने के लिए हमें स्वाभाविक रूप से इतिहास का सहारा लेना पड़ेगा। यह विचार आम है कि इतिहास केवल अतीत तक सीमित है और उसका अन्य विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में प्रत्येक देश का इतिहास प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वर्तमान परिस्थितियों का परिणाम है। इस प्रकार इतिहास का सम्बन्ध अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र सभी से है। लोक प्रशासन भी इतिहास के निकट है क्योंकि इस पर प्रजा का कल्याण करने का दायित्व होता है और इतिहास के प्रयोग में प्रशासकीय व्यवस्था का विशेष उल्लेख होता है। इतिहास लोक प्रशासन को विगत असफलताओं से बचने सफलता की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है। इतिहास से लोक प्रशासन को मत और सुधार की प्रवृत्ति मिलती है। इतिहास लोक प्रशासन के लिए प्रेरणा स्रोत है। यह लोक प्रशासन को दिशा निर्देश देता है। इतिहास का अध्ययन लोक प्रशासन की भावी योजना और निर्माण और उनके सफल क्रियान्वयन की दिशा में एक लिखित निर्देश पत्र का काम देता है। इतिहास मानव अनुभवों की खान है जिससे लोक प्रशासन बहुत कुछ सीखता है। वास्तव में लोक प्रशासन के विकास उसकी सफलता और प्रगति के लिए इतिहास का समर्थन और सहयोग आवश्यक है। वर्तमान काल में प्रशासकीय

प्रभाव पडता है अत स्पष्ट है कि भूगोल से शासन प्रणाली भी प्रभावित होती है। भौगोलिक तत्व प्रशासकीय काय क्षेत्र की सीमाओं को बहुत कुछ प्रभावित करते हैं। उदाहरणाथ भौगोलिक तत्व (जसे पवत पठार नदी घाटियां) सचार एव सवहन को सुगम या दुगम बनाकर प्रशासन के केन्द्रीयकरण की नीति को प्रभावित कर सकते हैं।

स्पष्ट है कि लोक प्रशासन का विभिन्न सामाजिक विज्ञानो स सम्बध है। इनस लोक प्रशासन लाभान्वित होकर अपने मगलकारी स्वरूप को अधिकाधिक सफल बना सकता है और अपनी कायक्षमता म चार चाद लगा सकता है।

3

औपचारिक सगठन की अवधारणाएँ आदेश की एकता, मुख्य कार्यपालिका, कार्य का विभाजन, पद सोपान, नियन्त्रण का क्षेत्र

(Concepts of Formal Organisation Unity of Command, Chief Executive, Division of Work Hierarchy Span of Control)

वस्तुत सगठन उतना ही पुराना है जितना मानव समाज। सगठन का अस्तित्व किसी न किसी रूप म आदिम मानव के समय स ही रहा है चाहे आदिम मानव सगठन के विचार स अपरिचित रहा हो। सगठन का सावकालिक और सावभौमिक होना उसकी उपादेयता का स्पष्ट प्रमाण है। आज तो हम सगठन मानव के युग म रह रहे हैं। आज हमने सगठन के लक्ष्यो को अपने निर्णय मूल्य के रूप म स्वीकार कर लिया है। व्यक्तियो को पहचानने क लिए हम सबसे पहल प्राय यही देखने हैं कि वे किस प्रधान सगठन क सदस्य हैं। सगठन उद्देश्य और प्रणाली की दृष्टि स आर्थिक, राजनीतिक, शक्षणिक आदि विभिन्न प्रकार क होने हैं। लोक प्रशासन के क्षेत्र म हमारा सम्बन्ध प्रशासनिक सगठनो स है।

सगठन का महत्त्व
(Importance of Organisation)

प्रशासन नीति का अनुगामी होता है अतएव नीति को कार्यान्वित करने के लिए प्रशासनिक सगठन की आवश्यकता होती है। प्रशासन एक सहकारी प्रक्रिया है जिसके कार्यों और दायित्वो का पालन कोई एक व्यक्ति नही कर सकता उसम अनेक व्यक्ति पूव निर्धारित योजना क अनुसार मिलकर काय करत है। योजनाबद्ध व्यवहार सगठन की एक प्रमुख मौलिक विशषता है। प्रशासनिक सगठन एक सामाजिक सगठन है जिसम विभिन्न मनुष्यो के व्यवहार म एक निश्चित प्रत्याशा रहती है। सरकार जब भी कोई नया काय हाथ म लेती है तो सरकारी प्रशासनिक सगठनो की स्थापना की जाती है।

समाज का शान्तिपूर्ण और व्यवस्थित जीवन सगठन की अनुपस्थिति म सम्भव न ी है। कोई भी समुदाय सगठन बिना प्रभावी और सक्रिय रूप म काम न ी कर सकता। प्रशासकीय सगठन की आवश्यकता और जटिलता पिछली कुछ दशाब्दियों म बहुत अधिक बढी है। राज्य के कार्यक्षेत्र के विस्तार के साथ प्रशासकीय सगठन के कार्यक्षेत्र का विस्तार होना स्वाभाविक है। प्रशासन की कार्य कुशलता बहुत अधिक इस बात पर निर्भर करती है कि सगठन स्वस्थ है अथवा नहीं और सगठन की सफलता का मूल्याकन इस बात म किया जाता है कि वह अपने उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करने म किस सीमा तक समर्थ है। प्रशासनिक सगठन राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक शक्तिशाली साधन है। किसी भी प्रशासनिक सगठन के दो मुख्य लक्ष्य होते हैं—सरकारी कार्यों का इस तरह से आवण्टन कि उनका निष्पादन कुशलता और मितव्ययता के साथ हो सके तथा एक ही कार्य सम्पादन का दायित्व एक से अधिक अभिकरणों म निहित न हो जाए एव प्रशासनिक इकाइयों की सत्ता और उत्तरदायित्व को इस तरह परिभाषित करना कि उन पर सार्वधानिक एव राजनीतिक नियन्त्रणों को लागू किया जा सके।

आज के युग म सगठन का महत्त्व अन्य किसी भी काल की अपेक्षा अधिक है। औद्योगीकरण की दृष्टि से उन्नत देशों म तो बडी सख्या म लोग अपने समय का एक बडा भाग सगठन म ही व्यतीत करते थे। बहुत से लोगों के लिए सगठन उनके पर्यावरण के एक बडे भाग का प्रतिनिधित्व करता है और यदि यह कह दिया जाए कि उनका व्यवहार ही सगठनात्मक हो गया है तो इसमे अधिक आश्चर्य की बात नहीं। यही कारण है कि कुछ वर्षों से सगठनों के अध्ययन के सन्दर्भ म उनमे काम करने वाले व्यक्तियों की मनोदशा तथा उनके आचार विचार के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। सगठनों के अध्ययन क्षेत्र का भी काफी विस्तार हुआ है क्योंकि उनके विकास और विज्ञान एव प्रौद्योगिकी के प्रभाव ने सगठनों तथा उनसे सम्बन्धित समस्याओं को अधिक जटिल बना दिया है। सगठन सम्बन्धी व्यवहार को राजनीति विज्ञान समाजशास्त्र अर्थशास्त्र मानवशास्त्र मनोविज्ञान इतिहास गणित तथा जीव विज्ञान के अर्थों म स्पष्ट करने के प्रयत्न किए गए हैं। वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक के अन्तिम एव चौथे दशक के प्रारम्भिक चरण म जो शोध प्रयोग किए गए उनके फलस्वरूप सगठन के यान्त्रिक अथवा सरचनात्मक सिद्धान्त (Physiological or Structural Theory) म विश्वास शिथिल हुआ है और सगठन की धारणा के सम्बन्ध म अनेक नए सिद्धान्तों का जन्म हुआ है यथा— व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behavioural Theory) क्रीडा सिद्धान्त (Game Theory) विनिश्चय सिद्धान्त (Decision Theory) सूचना सिद्धान्त (Information Theory) सचार सिद्धान्त (Communication Theory) समूह सिद्धान्त (Group Theory) अभिप्रेरण दृष्टिकोण या उपागम (Motivational

Approach) अनौपचारिक संगठन की अवधारणा (Conc pt of Informal O ganisation) अर्द्ध गणितीय उपागम (Quasi mathematical Approach) मानव सम्बन्ध उपागम (Human Relations Approach) आदि।

संगठन के महत्त्व का वर्णन करते हुए लाउंसबरी फिश (Lounsbury Fish) ने लिखा है कि संगठन की उपयोगिता चार्ट से कहीं अधिक होता है। यह वह तन्त्र है जिसकी सहायता से प्रबन्ध व्यवसाय का संचालन समन्वय तथा नियन्त्रण करता है। यह वास्तव में प्रबन्ध की आधारशिला है। यदि संगठन की योजना में कोई दोष रह जाता है तो प्रबन्ध व्यवस्था का कार्य कठिन एवं प्रभावहीन हो जाता है। इसके विपरीत यदि वह विद्यमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए स्पष्ट तर्क संगत एवं पूर्व नियोजित है तो यह समझना चाहिए कि स्वस्थ प्रबन्ध की प्राथमिक आवश्यकता की प्राप्ति की जा चुकी है। लुईस ए एलन (Allen Louis A) के शब्दों में स्वस्थ संगठन प्रतिष्ठान की सफलता एवं निरन्तरता में महान् योगदान दे सकता है। स्वस्थ संगठन प्रशासन और प्रबन्ध का सुविधा जनक बनाता है उसके विकास एवं विविधीकरण को प्रोत्साहित करता है तकनीकी सुधारों के अधिकतम उपयोग के अवसर प्रदान करता है मानवीय शक्ति के मानवीय उपयोग को प्रोत्साहित करता है एवं रचनात्मक विचारों एवं सक्रियता को उत्पन्न करता है।

प्रशासन एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में संगठन के महत्त्व को विस्तार से निम्न रूपों में देखा जा सकता है—

(1) प्रबन्धकीय कार्यकुशलता में वृद्धि करना (Increases Managerial Efficiency)—प्रभावपूर्ण संगठन के अन्तर्गत कार्य निष्पादन में किसी प्रकार का दरी तथा दोहराव नहीं होता है। सबको विभिन्न कार्यों के निष्पादन हेतु उत्तरदायित्व एवं अधिकार सौंप जाते हैं। इससे संगठन को कर्मचारियों की योजनाओं गुणों आदि का पूरा पूरा लाभ प्राप्त होता है। इससे आपसी मनमुटाव तनाव तथा असहयोग का अभाव पाया जाता है और इसके परिणामस्वरूप संगठन की कार्य क्षमता का विकास एवं उसमें वृद्धि होती है।

(2) मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग (Maximum Utilization of Human Factors)—संगठन में श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण अपनाया जाता है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को वही कार्य दिया जाता है जिसको वह आसानी से कर सकता है तथा जिसके वह योग्य होता है। संगठन के माध्यम से ही विशिष्टीकरण अपनाया जाता है और विशिष्टीकरण के माध्यम से ही समस्त मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग सम्भव होता है। कार्य के अनुसार व्यक्ति तथा व्यक्ति के विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं। इससे योग्य व्यक्तियों की शक्ति एवं योग्यता का दुरुपयोग नहीं होता है।

— —

(3) विभिन्न क्रियाओं का आनुपातिक एवं सन्तुलित महत्त्व (Proportionate and Balanced Emphasis on Various Activities)—सगठन के विभिन्न विभागों कार्यों साधनों उद्देश्यों तथा समस्याओं का अपना अपना महत्त्व होता है सगठन का काय इन विभिन्न क्रियाओं के आनुपातिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए उनमें सन्तुलन स्थापित करना होता है। सबसे पहले महत्त्वपूर्ण कार्यों एवं समस्याओं पर विचार किया जाना चाहिए और उसके पश्चात् अन्य कार्यों एवं समस्याओं को साधनों की सीमा में रखकर देखना चाहिए। इस प्रकार सगठन द्वारा कार्यभार कर्मचारियों के अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों तथा विभागीय प्रयासों में इस प्रकार आनुपातिक सन्तुलन स्थापित करना चाहिए कि संस्था अन्य उद्योगों में प्रतिस्पर्द्धा में सुदृढ़ हो।

(4) समन्वय को सुविधाजनक बनाना (Facilitates Co ordination)—किसी भी संस्था में विभिन्न विभागों श्रेणियों कार्यों और क्रियाओं स्थितियों एवं नौकरियों को सगठन के सरचनात्मक सम्बन्धों से जोड़ा जाता है। इन विभिन्न विभागों उपविभागों में कार्यों एवं क्रियाओं का समन्वय सगठन के माध्यम से ही सम्भव होता है अन्यथा सगठन अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल हो सकता है। इस समन्वय के परिणामस्वरूप सगठन की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और लक्ष्यों को प्राप्त करने में सुगमता रहती है।

(5) प्रबन्धकों के विकास एवं प्रशिक्षण में सहायक (It helps the Development of Managers and Training Facilities)—एक प्रभावपूर्ण सगठन के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रबन्धकों के विकास एवं उनके प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कराता है। सगठन के अन्तगत विभिन्न प्रबन्धकीय स्तरों पर काय करने वाले कर्मचारियों का वैज्ञानिक चयन किया जाता है। उनको उचित प्रशिक्षण देकर उनकी कुशलता एवं योग्यतानुसार उनका काय दिया जाता है पदोन्नति दी जाती है और समय समय पर उनको अलग अलग विभागों में काय दिया जाता है। इससे प्रत्येक कर्मचारी व अधिकारी को अलग अलग प्रकार के काय करने और उसकी जिम्मेदारी निभाने का अवसर प्राप्त होता है। वह एक विशिष्ट काय के योग्य ही नहीं रहता बल्कि वह अन्य सामान्य काय (प्रशासन आदि) करने के सक्षम हो जाता है। यह सहायता काय परिवर्तन सामयिक प्रशिक्षण पदोन्नति प्रयोगों आदि के माध्यम से किया जा सकता है।

(6) उपक्रम का विकास एवं विस्तार (Growth and Expansion of Enterprise)—एक अच्छा सगठन संस्थान के विकास हेतु एक ढांचा प्रदान करता है। बिना प्रभावपूर्ण सगठन के कोई भी उपक्रम दीर्घकाल तक नहीं चलाया जा सकता है। बड़े उपक्रम जिनमें सैकड़ों व्यक्ति कार्यरत होते हैं तथा विभिन्न प्रकार की कार्यात्मक क्रियाएं होती रहती हैं वे सब प्रबन्ध के सगठनात्मक काय का

परिणाम हैं। आधुनिक व्यवसाय जगत् म सफलता हतु प्रत्येक उपक्रम को नवप्रवतन और विभिन्न क्रियाओ म विस्तार करना आवश्यक है। यह कवल सगठन क माध्यम से ही हो सकत हैं अत प्रभावपूण सगठन उपयुक्त के विकास एव विस्तार का उपक्रम वातावरण प्रदान करता है।

(7) भ्रष्टाचार को रोकना (Prevention of Corruption)—एक दुबल सगठन म भ्रष्टाचार का बढावा मिलता है। इस प्रकार क सगठन म चाहे प्रयास हो अथवा मुद्रा सभी म बेईमानी पाई जाती है। समय क अनुसार यदि प्रभावपूण सगठन म समायोजन नहो किया जाता है तो एक दुबल सगठन क सभी दोष इसम भी उत्पन्न हो जाते हैं। एक प्रभावपूर्ण सगठन निष्ठावान ईमानदार चरित्रवान योग्य महनती एव सहयोगी कमचारियो का विकास करता है। सगठन से ही कमचारियों का मनोबल ऊचा उठता है और काय करन हतु प्ररणा तथा लगन प्राप्त होती है। एक गतिशील ढाचे वाली सगठन सरचना म नव यत्रों म समयानुसार बदलन की प्रवृत्ति पाई जाती है और इससे विभिन्न भ्रष्टाचार क तरीको का सफाया हो जाता है।

(8) अन्य लाभ (Other Benefits)—एक प्रभावपूण सगठन से प्राप्त होन वाले लाभो के रूप म भी इसक महत्त्व का अध्ययन किया जा सकता है। य निम्न प्रकार से हैं—

(1) प्रभावपपूर्ण सगठन स श्रम व पू जी म आपसी सहयोग एव सद्विश्वास उत्पन्न होता है और इसक परिणामस्वरूप देश म औद्योगिक शान्ति की स्थापना सम्भव होती है जो किसी भी देश के द्रुत आर्थिक विकास हेतु एक परमावश्यक शत है।

(2) प्रभावपूण सगठन क अन्तगत सस्थान को इस ढग स चलाया जाता है कि न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करके लाभ प्राप्त किए जा सकत हैं।

(3) प्रभावपर्ण सगठन के माध्यम से उत्पादन क क्षेत्र म समय समय पर अपनाए जान वाले तकनीकी सुधारो से लाभ प्राप्त किया जा सकता। इससे प्रभावपूण तकनीकी सुधार होत हैं।

(4) प्रभावपूण सगठन क माध्यम स सभी साधनो (मानवीय मशीन माल आदि) क सामूहिक रूप स किए गए प्रयासो को एकीकृत एव प्रभावशाली बनाने म सफलता मिलती है। इसक प्रयासो का अपव्यय नहीं होगा और कम समय म कम लागत पर अधिकतम उत्पादन सम्भव हो सकेगा।

सगठन का अथ एव प्रकृति
(The Meaning and Nature of O ganisation)

सगठन का अथ—सगठन म सरचना और मानव सम्ब ध दोनो निहित ह। यह प्रशासन का मूल भाग है। उद्देश्य की सफल प्राप्ति अथवा प्रयोजन की पूर्ति क लिए जिन साधनो को हम निश्चित सिद्धान्तो के अनुसार जुटाना चाहत हैं वहा

सगठन है। सगठन उद्देश्य प्राप्ति के लिए किए जाने वाले कार्य की एक ऐसी योजना की ओर निर्देश करता है जिसे सफल बनाने का व्यक्तियों के एक समूह ने निश्चय कर लिया हो और जिसकी प्राप्ति के लिए वह सामूहिक रूप से प्रयत्नशील है।

सगठन के परम्परावादी विचार मे मानव सम्बन्धो को स्थान नही दिया गया है। परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार सगठन एक ऐसी सरचना व्यवस्था (Structural Arrangement) है जिसके द्वारा एक निर्धारित उद्देश्य के लिए कार्य को विभाजित, व्यवस्थित, परिभाषित और समन्वित किया जाता है। सगठन का निर्माण विशेष लक्ष्यो की पूर्ति के लिए किया जाता है। सगठन कार्य करने का ढाँचा मात्र है जिसके द्वारा कोई विशिष्ट कार्य सम्पन्न होता है। कार्य के सम्पूर्ण विस्तार को विभाजित करके परस्पर सम्बन्धो का एक ढाचा तैयार कर लिया जाता है जिसके फलस्वरूप एक सगठन की स्थापना हो जाती है। इस प्रकार के विचारो अथवा दृष्टिकोणो मे मानव की भूमिका उपेक्षित है। इस बात पर विचार नही किया गया है कि सगठन मे व्यक्ति क्या योगदान करता है। समकालीन दृष्टिकोण के अनुसार सगठन का वह कोई भी अर्थ अपूर्ण है जिसमे मानव सम्बन्धो को स्थान नही दिया गया है। सगठन के अर्थ का समकालीन दृष्टिकोण व्यवहारवादियो और समाज मनोवैज्ञानिको द्वारा प्रभावित है जिसके अनुसार सगठन का कोई भी सिद्धान्त व्यक्ति की उपेक्षा नही कर सकता और यदि करता है तो स्वय अपने ऊपर खतरा मोल लेता ही करता है। व्यक्ति अथवा मानव प्रत्येक सगठन मे समस्त क्रियाओ का केन्द्र होता है सगठन के कार्य सचालन मे महत्त्वपूर्ण योग देता है। सगठन चार्टो, रेखा चित्रो या अनुदेशो का ढाचा मात्र न होकर एक सहकारी मानवीय क्रिया है और सगठन के सम्बन्ध मे ऐसा कोई भी विचार या सिद्धान्त मानव सम्बन्धो को त्यागे हुए है यह उन पर विचार नही करता अनुचित अव्यावहारिक तथा अवास्तविक है। कोई भी प्रशासन मोटर के इजन की भाति किन्ही यान्त्रिक पुर्जो से मिलकर नही बनता वरन् मनुष्यो से मिलकर बनता है और यदि हम एक प्रशासकीय सगठन के मानवीय पक्ष की उपेक्षा करते हैं तो इसका अर्थ प्रशासन के हृदय (Heart of the Administration) की उपेक्षा करना होगा। मिलवर्ड (Milward) ने लिखा भी है कि "सगठन अपने आप मे कुछ भी नही करता, जो कुछ भी करते हैं सगठन के अनिवार्य अग अर्थात् कर्मचारी वृन्द ही करते हैं।"[1]

सगठन की अनेक परिभाषाए दी गई है जिनमे से कुछ इस प्रकार हैं—

"सगठन का अर्थ है किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक क्रियाओ का निर्धारण करना और उन्हे ऐसे वर्ग मे क्रमबद्ध करना जो विभिन्न व्यक्तियो को सौंप जा सके।" —उर्विक

1 Milward [illegible]

संगठन का आशय व्यक्ति व्यक्ति के बीच तथा वर्ग वर्ग के बीच उन सम्बन्धों की स्थापना से है जो इस प्रकार आयोजित किए जाएं कि वर्गीयत श्रम विभाजन किया जा सके। —फिफ्नर

सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मानव सहयोग का नाम ही संगठन है। —मूने

संगठन उस ढांचे की ओर संकेत करना है जो मुख्य कार्यपालिका तथा सरकार के उसके अधीनस्थों का सौंप गए कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विकसित किया जाता है। —एम मार्क्स

संगठन सत्ता का औपचारिक ढांचा है जिसके द्वारा किसी निर्धारित ध्येय की प्राप्ति के लिए कार्यों का विभाजन और निर्धारित किया जाता है तथा उनमें समन्वय स्थापित किया जाता है। —लूथर गुलिक

किसी वांछित ध्येय की पूर्ति के लिए आवश्यक मनुष्यों पदार्थों उपकरणों सामग्री कार्य स्थान तथा अन्य वस्तुओं का ऐसा सम्मिश्रण संगठन कहलाता है जिसमें इन तत्त्वों को व्यवस्थित तथा प्रभावशाली ढंग से समन्वित किया जाता है। —जे विलियम शुल्ज

संगठन कर्मचारियों की वह व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक विभिन्न प्रकार के कार्य एवं उत्तरदायित्व समर्पित करते हुए निश्चित योजना का सुचारु रूप से ... किया जाता है। —जे एम गौस

संगठन परस्पर व्यवहार करने वाले लोगों के वर्ग का ही नाम है। —साइमन

साइमन (Herbert A Simon) संगठन के समकालीन दृष्टिकोण के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधियों में अग्रणी है। उनका स्पष्ट अभिमत है कि संगठन कार्यकारी सम्बन्धों (Working Relationship) का एक ढांचा मात्र ही नहीं है वरन् इससे कुछ अधिक है—यह उन मनुष्यों के बीच पाए जाने वाले सभी सम्बन्धों का योग है जो एक सामूहिक क्रिया सम्पन्न करने के लिए एक साथ कार्य कर रहे हैं। संगठन केवल एक ढांचा नहीं है अपितु उन व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करता है जो उसमें काम करते हैं। संगठन अपने सदस्यों के मध्य कार्य विभाजन करके प्रमापित कार्यवाहियों की स्थापना करके सरकार के निर्णयों को उन तक पहुंचा कर सत्ता एवं प्रभाव की व्यवस्था कायम करके पत्र-व्यवहार के स्रोतों की व्यवस्था करके अपने सदस्यों को प्रशिक्षित करके और उन्हें सिद्धान्तों का ज्ञान कराकर उनको (सदस्यों को) प्रभावित करता है। सारभूत रूप में संगठन एक मानव समूह का नाम है जिसके सदस्यों के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व स्पष्ट तथा सुनिश्चित होते हैं कुछ वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वे एक साथ मिलते हैं और इस सहकारी क्रिया के दौरान उनके बीच सम्बन्ध का एक जटिल प्रारूप तैयार ...

जाता है। प्रति, सहकारी प्रयत्न और सामूहिक उद्देश्य संगठन के तीन मुख्य तत्व हैं। डिमाक एवं का निग ने जो लिखा है कि परस्पर आश्रित भागों को उचित श्रम देकर एक ऐसी एकीकृत सम्पूर्ण इकाई (A unified whole) बनाना ही संगठन है जिसके द्वारा एक निश्चित प्रयोजन की प्राप्ति के लिए अधिकार समन्वय एवं नियन्त्रण का प्रयोग किया जा सके। चूंकि अन्योन्याश्रित भाग भी मनुष्यों के ही बने रहते हैं जिन्हें सचालित और अभिप्रेरित करना आवश्यक है तथा जिनका काय इस तरह समन्वित होना आवश्यक है कि उससे उद्यम का उद्देश्य प्राप्त हो जाए अत संगठन संरचना तथा मानव जीवन (Structure and Human beings) दोनों ही है। केवल ढाँचे या संरचना के रूप में संगठन को मानने का प्रयत्न करना तथा उसे बनाने वाले मनुष्यों से और जिनके द्वारा उसको चलाए अर्पित हैं उनका ध्यान में न रखना पूर्णत अयथार्थवादी बात होगी।[1]

अन्तिम विश्लेषण में विभिन्न परिभाषाओं से संगठन शब्द का प्रयोग मुख्यत इन् तथ्यों को स्पष्ट करता है—उस क्रिया का रूप जो प्रशासकीय ढाँचे का रूप निर्धारित करती है ढाँचे के निर्माण और डिजाइन के लिए अर्थात् ढाँचे के कार्यक्रम की योजना बनाना तथा उपयुक्त कर्मचारी नियुक्त करना स्वयं प्रशासकीय ढाँचा तथा संगठन सिद्धान्त का बुनियादी तौर पर मानवीय होना। कुछ परिभाषाएं संगठन के अर्थ में मानव सम्बन्ध के विचार को सम्मिलित नहीं करतीं जबकि संगठन शब्द में दो बुनियादी शर्तें अन्तर्निहित हैं। प्रथम किसी काय का किया जाना तथा द्वितीय काय को पूरा करने में एक मानव समूह लगा हो तो उसका काय विभाजन होना। संगठन का काय है कि वह उन लोगों के साधनों तथा अवसरों की संख्या में अभिवृद्धि करे जिनके लिए उसकी (संगठन की) स्थापना हुई है। किसी भी संगठन को परिवर्तनशील और संशोधनशील होना चाहिए अन्यथा वह विकासशील नहीं रह सकेगा। इसलिए ग्लडन ने लिखा है कि कोई भी संगठन, जिसका परिवर्तन रुक गया है मृतप्राय है। संगठन मानव आवश्यकताओं के साथ उत्पन्न होते हैं अत उनमें आवश्यकतानुसार बदलते हुए मूल्यों के अनुरूप ढलने की लचक होनी ही चाहिए।

संगठन की प्रकृति

संगठन की प्रकृति को अधिक स्पष्ट करने के लिए उसकी निम्नलिखित विशेषताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है—

1. उद्देश्यपूर्ण प्रकृति—प्रत्येक संगठन की स्थापना कुछ विशेष लक्षण अथवा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है। एक समय विशेष में स्थित समस्याएं अनेक चुनौतियों को जन्म देती हैं जिनका सामना करने के लिए नए नए संगठनों का निर्माण किया जाता है। नए संगठनों का निर्माण प्राय तभी किया जाता है जबकि उन्नत

1 *Dimock & Dimock* Public Administration p 129

चुनौती की गम्भीरता अधिक हो। अन्यथा साधारणतया यही प्रयास किया जाता है कि पहले से विद्यमान संगठनों द्वारा ही चुनौती का मुकाबला किया जाए।

(2) परिवर्तनशील प्रकृति—संगठनों का रूप परिस्थितियों और आवश्यकताओं के साथ बदलता रहता है। जिस समस्या के समाधान के लिए एक संगठन स्थापित किया जाता है उस समस्या के समाप्त हो जाने पर संगठन भी समाप्त कर दिया जाता है। जिन समस्याओं की प्रकृति स्थायी महत्त्व की होती है उनसे सम्बन्धित संगठन भी स्थायी होते हैं जैसे शिक्षा विभाग अथवा चिकित्सा विभाग।

(3) विकासशील प्रकृति—परिस्थितियों में परिवर्तन के अनुसार संगठन में भी परिवर्तन परिवर्द्धन होते रहते हैं। यदि ऐसा न किया जाए तो इससे उनमें संगठन के निष्क्रिय और निरर्थक बन जाने का भय रहता है। इसीलिए गुलिक ने लिखा है कि "जिस संगठन में परिवर्तन रुक जाता है वह मरणासन्न है।" वस्तुतः संगठन एक सक्रिय और विकासशील कार्य है जिसमें परिस्थितियों के बदलने के साथ आवश्यक हेर-फेर किए जाते हैं। कर्मचारियों के दायित्वों में हेर-फेर किया जा सकता है संगठन में नए-नए प्रयोग किए जा सकते हैं संगठन की सवारी व्यवस्था को आवश्यकतानुसार बदला जाता है। नवीन परिस्थितियों के अनुकूल संगठन के कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे नए दायित्वों का वहन करने में समर्थ हो सकें।

(4) मानवीय एवं यान्त्रिक धारणा—संगठन की प्रकृति के सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो धारणाएं पाई जाती हैं—(क) मानवीय धारणा (Human Approach) एवं (ख) यान्त्रिक धारणा (Mechanical Approach)। मानवीय धारणा अथवा मानवीय दृष्टिकोण की माँग है कि संगठन बनाते समय व्यक्तियों, मानवीय अभिप्रेरणाओं और अनौपचारिक सामूहिक कार्य संचालन पर सर्वाधिक बल दिया जाए। यान्त्रिक दृष्टिकोण के अनुसार संगठन का यह औपचारिक डिजाइन है जिसे विशेषज्ञ द्वारा ही बनाया जाता है। संगठन का यह दृष्टिकोण संगठन को एक मशीन की भाँति मानता है। जिस प्रकार मशीन की अपनी कोई इच्छा नहीं होती और चालक की इच्छानुसार उसे चलना होता है उसी प्रकार संगठन की भी अपनी कोई इच्छा नहीं होती, वह संगठनकर्त्ता की इच्छानुसार चलता है। संगठन की मानवीय धारणा को औपचारिक संगठन दृष्टिकोण और यान्त्रिक धारणा को अनौपचारिक संगठन दृष्टिकोण भी कहा जाता है। इन दोनों दृष्टिकोणों पर कुछ विस्तार से वर्णन अपेक्षित है अतः इन पर पृथक् से विवेचन आगे किया गया है।

संगठन : सिद्धान्त और दृष्टिकोण
(Organisation : Theories and Approaches)

संगठन की अवधारणा के प्रति विद्वानों द्वारा जो विभिन्न सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण अपनाए गए हैं उनमें अग्रलिखित उल्लेखनीय हैं—

✓(1) सरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण (Structural Functional Approach)

प्रथवा

सगठन का शास्त्रीय सिद्धान्त (The Classical Theory of Organisation)

( ) सामाजिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण (Socio Psychological Approach)

(3) नौकरशाही विचारधारा या सिद्धा त (Bureaucratic Theory of Organisation)

(4) व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behavioural Theory)

(5) क्रीडा सिद्धान्त (Game Theory)

(6) विनिश्चय सिद्धान्त (Dec sion Theory)

(7) सूचना सिद्धान्त (Information Theory)

(8) सचार सिद्धान्त (Communication Theory)

(9) समूह सिद्धान्त (Group Theory)

(10) अभिप्रेरणा-दृष्टिकोण (Motivational Approach)

सरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण

(Structural Functional Approach)

प्रथवा

शास्त्रीय सिद्धान्त

(The Classical Theory of Approach)

सरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण अथवा उपागम को यान्त्रिक दृष्टिकोण (Mechanistic Approach) और सगठन की शास्त्रीय विचारधारा (The Classical Theory of Approach) भी कहा जाता है। यह सगठन का परम्परागत (Traditional) दृष्टिकोण है। हैनरी फयोल लूथर गुलिक एल उर्विक जे डी मूने ए सी रले मेरी पाकर फॉलेट तथा आर शल्टन आदि इसके प्रमुख समर्थक हैं। सगठन के सरचनात्मक-कार्यात्मक अथवा परम्परागत या शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार सगठन का अर्थ है—एक औपचारिक ढाँचा जिसकी रचना विशेषज्ञो द्वारा स्पष्ट सिद्धान्तो नियमो और उपनियमो के आधार पर की जाती है।

यान्त्रिक अथवा शास्त्रीय दृष्टिकोण के समर्थको के अनुसार सगठन का अर्थ होता है ढाँचे का रूपरेखा तैयार करना। जिस प्रकार एक भवन निर्माणकर्त्ता भवन बनाना आरम्भ करने से पूर्व तत्सम्बन्धी योजना बनाता है उसकी रूपरेखा तैयार करता है तथा इस दिशा में अपने वैज्ञानिक सिद्धान्तो का उपयोग करता है उसी प्रकार एक बाँध बनाने से पूर्व इन्जीनियरो द्वारा उसका एक खाका तैयार कर लिया

जाता है। संयुक्त राज्य अमरिका तथा अन्य विकसित देशों के विशेषज्ञों का एक ऐसा वर्ग तैयार होता जा रहा है जो संगठन तैयार करने अथवा उसके पुनर्गठन में विशेष सहायता पहुँचा सकता है। ये संगठन मन्त्री बड़ी सुन्दरता से संगठन योजनाओं की रूपरेखा बनाते हैं। वास्तव में इन व्यक्तियों ने इसे अपना व्यवसाय बना लिया है। जब भी किसी व्यक्ति और समुदाय को संगठन बनाने की आवश्यकता होती है तो वह संगठन के इन इन्जीनियरों से परामर्श प्राप्त करता है। संगठन की योजना बना लेने के पश्चात् उसे क्रियान्वित किया जाता है। संगठन के जितने भी पद हैं उन सब पर उचित व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। संगठन की योजना बनाने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि किन व्यक्तियों को कहाँ कहाँ नियुक्त किया जाना है।

यह यांत्रिक अथवा शास्त्रीय दृष्टिकोण कुछ बातें मानकर चलता है। उदाहरण के लिए सबसे विश्वास है कि संगठन के सिद्धान्त अत्यन्त स्पष्ट और सर्वविदित हैं। इन सिद्धान्तों के आधार पर विशेषज्ञ लोग संगठन का ऐसा रूप निर्धारित कर सकते हैं जिनके अनुसार वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। इस दृष्टिकोण के समर्थकों की दूसरी मान्यता यह है कि व्यक्तियों अथवा कर्मचारियों को नियुक्त करने से पहले यह आवश्यक है कि संगठन की योजना बना ली जाए। योजना बनाते समय यह ध्यान रखना जाता है कि मुख्य बात संगठन का रूप एवं उसका ढाँचा है तथा संगठन में कार्य करने वाले व्यक्ति गौण हैं। जब संगठन का रूप निर्धारित हो जाएगा तो उसमें काम करने वाले व्यक्ति भी आसानी से मिल सकते हैं। अतः कर्मचारियों का चुनाव करते समय सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि क्या वे संगठन की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। यदि ऐसा नहीं किया गया तो वह संगठन अधिक सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाएगा।

कर्मचारी प्राप्त करना बड़ा कठिन कार्य नहीं है। जैसे भी कर्मचारी हम चाहें उनको मिल सकते हैं किन्तु संगठन का रूप निर्धारण करने में निपुणता की पूर्ति भी एक बड़ा प्रश्न है। संगठन के सिद्धान्त भी अत्यन्त जटिल तथा उलझे हुए होते हैं। यदि हमने कर्मचारियों का ध्यान में रखकर संगठन बनाया तो यह स्वाभाविक है कि उन सिद्धान्तों के प्रति पूरा न्याय नहीं हो पाएगा जो सफल संगठन की विशेषताएं मानी जाती हैं। संक्षेप में संगठन का यान्त्रिक दृष्टिकोण संगठन को एक मशीन मानता है। जिस प्रकार एक मशीन का संचालन एक इच्छा द्वारा किया जाता है तथा उसका निर्माण भी एक विशेष इच्छा पर अवलम्बित रहता है ठीक उसी प्रकार संगठन की रचना भी इच्छा पर आधारित रहती है। जिस प्रकार एक मशीन में दाने रहते हैं उसी प्रकार से संगठन में कर्मचारी वर्ग रहता है। एल० डी० ह्वाइट के अनुसार यह सरकार में स्थापित सम्बन्धों का औपचारिक रूप है जो कानून और उच्च प्रबन्ध पर आधारित रहता है। जो कार्य

किया जाता है य उसकी प्रकृति एवं मात्रा पर आधारित रहता है तथा काय कुशलता की स्थापना के लिए मनुष्य एवं वस्तुओं का अधिक प्रभावशाली उपयोग करता है। नेतृत्वदायित्व की आवश्यकता द्वारा भी यह निर्धारित रहता है। शक्ति द्वारा इस सगठन की स्थापना एवं इसका समर्थन किया जाता है। इसे रचाचित्र द्वारा अंकित किया जाता है यद्यपि यह प्रश्न शायद सीमित भी हो सकता है। गामा एवं स्प स य काय सम्बन्धी की मुख्य समष्टि है।[1] एक प्र य विचारक के अनुसार सगठन का यह दृष्टिकोण सगठन को उस इन्जीनियर से पूर्णत प्रभावित मानता है जो वनानिक शुद्धता पर अधिक ध्यान देता है रचना को तार्किक आधार पर करना चाहता है तथा उसकी यह इच्छा होती है कि सगठन द्वारा उठाया जाने वाला प्रत्येक कदम सर्वोत्तम होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह सगठन के विभिन्न भागों को सम्पूर्ण इकाई से मिलाना चाहता है। इस प्रकार के सगठन की सबसे मुख्य विशेषता य मानी जाती है कि इसमें उन कार्यों पर अधिक बल दिया जाता है जिनसे आशा की जाती है कि सगठन कुशल एवं प्रभावशाली बन सकेगा। सगठन के स ब ध म म हत्वपूर्ण विषय यह है कि सही व्यक्तियों को सही स्थान पर लगाया जाए।

सगठन व यक्ति दोनों के म हत्व का मूल्यांकन करते समय यह विचारधारा जिस विषय पर जोर डालती है वह है सगठन क्योंकि यदि हम सगठन को अनावश्यक अथवा कम महत्वपूर्ण मानकर केवल मनुष्य को ही सब कुछ मान बैठेंगे तो हम व्यक्तियों की स्थिति बनाने पर क्या जोर देते हैं? सगठन को अधिक मूल तत्व न मानने पर हम चाहिए कि व्यक्तियों को उनकी योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुसार स्वयं की स्थिति बनाने के लिए छोड़ दें। ऐसा होने पर हम किसी व्यक्ति को उच्च अधिकारी केवल तभी मानेंगे जब वह अपनी रचनात्मक शक्तियों द्वारा योग्यता प्रदर्शित कर दे अर्थात कोई भी व्यक्ति बास के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त यदि हम किसी व्यक्ति को सत्ता सौंप रहे हैं तथा उसकी व्यक्तिगत योग्यताओं के प्रदर्शित होने से पूर्व ही उस कुर्सी पर सकने की सामर्थ्य दे रहे हैं तो यह भी देखना होगा कि दूसरे लोगों के साथ उसका सम्बन्ध किस प्रकार रहेगा। इन सभी समस्याओं एवं प्रश्नों के सम्बन्ध में मुख्य बात यह है कि व्यक्ति की तुलना में सगठन अधिक महत्वपूर्ण है। इसके महत्व के दो कारण हैं—प्रथम हमारे समाज के अधिकांश व्यक्ति अपने जीवन की युवावस्था को सगठनों में व्यतीत करते हैं। एसी स्थिति में सगठन का महत्व देने वाला वह यान्त्रिक दृष्टिकोण एसा वातावरण प्रदान करता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने गुणों एवं आदतों को ढाल सकता है उनका विकास कर सकता है। सगठन के महत्व का

1 L D Wh Introduct to th St dy f P bl Adm t at pp 26 27

इसका कारण यह है कि इसके द्वारा जो लोग उत्तरदायित्वपूर्ण स्थिति में है उनको एक ऐसा साधन प्राप्त हो जाता है जिसके द्वारा दूसरों पर अपनी शक्ति एवं प्रभाव का प्रयोग कर सकते हैं। हम किसी भी कार्यकारिणी के स्वरूप एवं सामर्थ्य के बारे में तब तक नहीं जान सकते जब तक उस संगठन की जानकारी न कर लें जिसमें उसे कार्य करना है। दूसरे व्यक्तियों के साथ वह कैसा व्यवहार करेगा तथा उनका उन पर क्या प्रभाव रहेगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस संगठन में उनकी स्थिति क्या है।

सार यह है कि यांत्रिक अथवा संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण में मनुष्यों की अपेक्षा कार्यों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। यह दृष्टिकोण में अवयक्तिक है जिसमें दक्षता पर अत्यधिक बल दिया जाता है। इस अवधारणा के मुख्य लक्षण हैं—अवयक्तिकता, लचीलापन, कार्य विभाजन, पद सोपान एवं दक्षता।

हाल ही में यन्त्रवादी दृष्टिकोण की कड़ी आलोचना होने लगी है प्रथम आरोप यह लगाया जाता है कि इसमें मानवीय तत्व की उपेक्षा की गई है जबकि किसी भी संगठन की वास्तविक प्रकृति को हम केवल यांत्रिक ढांचे के अध्ययन मात्र से नहीं समझ सकते वरन् उसके लिए हमें संगठन में कार्यरत लोगों की मनोवृत्ति उनके व्यवहार के स्वरूप उनके चरित्र उनकी अभिरुचियों और सामाजिक योग्यताओं आदि की जानकारी प्राप्त करनी होती है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो एफ० एम० मार्क्स एवं उर्विक के अनुसार संगठन का ढांचा (Structure) केवल चित्र रेखाचित्र दैनिक कार्य की परिपाटी नियमावली अनुदेशों (Instru tions) अथवा शब्दों का समूह मात्र ही बनकर रह जाएगा। दूसरी आलोचना यह की जाती है कि यन्त्रवादी दृष्टिकोण इस तथ्य की उपेक्षा कर देता है कि मनुष्य संगठन के लिए नहीं है वरन् संगठन मनुष्य के लिए है तथा मनुष्य और मशीन के पुर्जों की स्थिति एकसी नहीं है।

हैनरी फ्योल लूथर गुलिक तथा एल उर्विक के विचार

संगठन के शास्त्रीय दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थकों में हैनरी फ्योल लूथर गुलिक तथा एल उर्विक अग्रगण्य हैं। यह उपयुक्त होगा कि हम इनके विचारों का सार सक्षेप प्रस्तुत करें।

हैनरी फ्योल (1841—1925) की पुस्तक सामान्य और औद्योगिक प्रशासन (General and Industrial Administrat on) अपने क्षेत्र में प्राचीन और शास्त्रीय रचना है जिसका यूरोप और विशेषकर लेटिन अमरिका देशों में वाणिज्य प्रबन्ध के विचारों पर किसी अन्य ग्रन्थ की तुलना में कहीं अधिक प्रभाव है। हैनरी फ्योल एक व्यवहारिक एवं अनुभवी व्यवसायी था जिसने संगठन की सभी क्रियाओं को 6 समूहों में विभाजित किया है—तकनीकी (Technical) व्यापारिक (Commercial) वित्तीय (Financial) सुरक्षात्मक (Secur ty)

नवीकन (Accounting) एवं प्रबन्धकीय (Managerial)। हैनरी फयाल के अनुसार प्रशासन अथवा प्रबन्ध के पाँच तत्त्व होते हैं—नियोजन (Planning) सगठन (Organisation) आदेश (Command) समन्वय (Co ordination) एवं नियन्त्रण (Control)। हैनरी फयोल ने सगठन के निम्नलिखित 14 सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जो प्रबन्ध जगत् को उनकी महान् देन है—

(1) कार्य का विभाजन (Division of Work)
(2) अधिकार एवं उत्तरदायित्व (Authority and Responsibility)
(3) अनुशासन (Discipline)
(4) आदेश की एकता (Unity of Command)
(5) निर्देश की एकरूपता (Unity of Direction)
(6) व्यक्तिगत हित की तुलना में सामान्य हित को महत्त्व (Subordination of Individual Interest to General Interest)
(7) पारिश्रमिक (Remunerating)
(8) केन्द्रीयकरण (Centralisation)
(9) स्कन्ध शृंखला (Scaler Chain)
(10) व्यवस्था (Order
(11) समता (Equity)
(12) कर्मचारियों के पदों की स्थिरता (Stability of Tenure of Personnel)
(13) प्रेरणा (Initiative)
(14) सहयोग की भावना (Esprit de Corps)

हैनरी फयोल ने सगठन अथवा प्रशासन या प्रबन्ध के इन सिद्धान्तों को सार्वभौमिक माना है। प्रत्येक क्षेत्र में सिद्धान्तों को लागू किया जा सकता है।

सगठन के शास्त्रीय सिद्धान्त अथवा दृष्टिकोण या विचारधारा का अत्यन्त व्यापक विश्लेषण लूथर गुलिक तथा एल उर्विक द्वारा 1937 में सम्पादित प्रशासन विज्ञान पर लेख (Papers on the Science of Administration) में किया गया है। एल उर्विक की प्रख्यात पुस्तक प्रशासन के तत्त्व (The Elements of Administration) में भी सगठन के इस परम्परागत दृष्टिकोण पर विस्तार से विचार व्यक्त किए गए हैं। लूथर गुलिक ने सगठन के सिद्धान्तों को पोस्डकोर्ब (POSDCORB) शब्द में सग्रहीत किया है। गुलिक के अनुसार पोस्डकोर्ब शब्द उन अक्षरों से बना है जो इन कार्यों का उल्लेख करते हैं—नियोजन (Planning) सगठन बनाना (Organising) कर्मचारियों की नियुक्ति करना (Staffing) निर्देशन (Directing) समन्वय (Co ordinating) प्रतिवेदन या रिपोर्ट तैयार करना (Reporting) और बजट तैयार करना या वित्तीय प्रशासन (Budgeting)।

जसा कि हम लोक प्रशासन की परिभाषा के सदभ म बता चुके हैं कि पास्डकोब विचार वग की मान्यता है कि योजना सगठन कमचारियों का निर्देशन कार्यों का समायोजन तथा नियत्रण रिपाट बजट की तयारी आदि वे मौलिक बातें हैं जिनका ज्ञान किसी भी प्रशासक के लिए अनिवाय है और यदि पोस्डकोब की इन प्रक्रियाओं का मौलिक ज्ञान किसी व्यक्ति को है तो वह सभी प्रकार के सगठनों म किसी भी प्रकार के क्षेत्र का प्रशासन चला सकता है। ये प्रक्रियाए अथवा प्रविधियां प्रशासन अर्थात् प्रबन्ध के समस्त क्षेत्रों पर समान रूप स लागू होता हैं। यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन को एक विशिष्ट तकनीकी ज्ञान मानता है और इस दृष्टि स प्राइवेट तथा पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के अन्तर को क्षेत्रीय न मानकर पद्धतीय मानता है। पोस्डकाब का ही लोक प्रशासन का क्षेत्र मानन वाले लथर गुलिक का इस बात पर आग्रह है कि लोक प्रशासन एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जिस एक विज्ञान की तरह पढा जाना चाहिए। आज इसी विशिष्टीकृत ज्ञान के विचार को लेकर प्रबन्ध विज्ञान (Managerial Science) आगे बढ रहा है। पोस्डकाब क्रियाओं को प्रशासन का अनिवाय मूल बिन्दु मानता है तथा अमेरिका म प्रशासन सम्बन्धी अध्ययन म एक पीढी स भी अधिक समय से यह विचार विशष प्रभावशाली रहा है।

आलोचकों के अनुसार सगठन की शास्त्रीय अथवा यान्त्रिक विचारधारा बहुत ही सकीण है और जिन सिद्धान्तों की इसके द्वारा चर्चा की गई है व कहावतें मात्र हैं उनस न तो लोक प्रशासन के अथ और क्षेत्र का पूरा बोध होता है और न ही लोक प्रशासकों के माग दशन की दृष्टि स उनका महत्त्व है। इन कमियों के बावजूद प्रशासन के क्षेत्र म शास्त्रीय विचारधारा के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। शास्त्रीय दृष्टिकोण ने उत्पादन-वृद्धि म विवकपूण भूमिका निभाई है। इस दृष्टिकोण ने ही सवप्रथम इस बात पर बल दिया कि प्रशासन को एक स्वतन्त्र क्रिया मानकर उसका बौद्धिक अन्वेषण किया जाना चाहिए। सवप्रथम इस दृष्टिकोण ने ही प्रशासन के क्षेत्र म अवधारणाओं और शब्दावली पर बल दिया जो इस क्षेत्र म परिवर्ती शोध का आधार बनी। शास्त्रीय दृष्टिकोण की कमियों न सगठन तथा उनके व्यवहार के भावी शोध को प्ररणा प्रदान की। इस प्रकार यह दृष्टिकोण सगठन की विचारधाराओं के विकास म मील का महत्त्वपूण पत्थर सिद्ध हुआ।

(2) सामाजिक मनोवज्ञानिक दृष्टिकोण

(Social Psychological Approach)

सामाजिक मनोवज्ञानिक दृष्टिकोण को मानवतावादी दृष्टिकोण (Humanistic Approach) भी कहा जाता है। सरचनात्मक प्रकायात्मक दृष्टिकोण की तुलना मे यह मानवतावादी दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक नवीन

अवधारणा है जिसे अमेरिका में इसी शताब्दी के तीसरे दशक में प्रतिपादित किया गया है। इसके प्रमुख प्रवर्तक हैं—एल्टन मेयो (Elton Mayo) और उनके सहयोगीगण। इन लोगों ने वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के हॉथार्न संयंत्र (Hawthorne Plant) के सम्बन्ध में अग्रगामी (Pioneering) प्रयोग किए थे जिनके फलस्वरूप इस विचारधारा अथवा दृष्टिकोण को प्रोत्साहन मिला। सामाजिक मनोवैज्ञानिक अथवा मानवतावादी दृष्टिकोण के अनुसार संगठन व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसमें व्यक्ति परस्पर इस प्रकार सम्बन्धित रहते हैं कि प्रत्येक का व्यवहार सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति में सहयोग प्रदान करता है। जब कुछ व्यक्ति दीर्घकाल तक मिलकर काम करते हैं तो उनमें भावना मय और वैयक्तिक Subjective and Personal) सम्बन्ध विकसित हो जाते हैं जो औपचारिक सम्बन्धों से भिन्न होते हैं अथवा उनके विपरीत भी हो सकते हैं। वास्तविक व्यवहार में संगठन कदाचित् ही इस प्रकार से व्यवहार करता है क्योंकि किसी भी संगठनकर्त्ता को मानवीय तत्त्व इच्छानुकूल प्राप्त नहीं हो पाता। वह व्यक्तियों के व्यवहार उनकी आदतों और योग्यताओं को ... की आवश्यकता के अनुसार नहीं बदल सकता। वह तो केवल उपलब्ध मानव-तत्त्व का अधिकाधिक ही प्रयोग कर सकता है।

मानवतावादी अवधारणा मनुष्यों मानवीय अभिप्रेरणाओं और अनौपचारिक सामूहिक कार्यसंचालन पर बहुत अधिक बल देती है। इस दृष्टिकोण का आग्रह है कि संगठन के रूप पर विचार करते समय सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि यह कोई जड़ वस्तु नहीं है बल्कि क्रियाशील एवं सजग व्यक्तियों का समूह है। इस सम्बन्ध में रोथलिसबर्जर के शब्द उल्लेखनीय हैं कि "हम प्रायः मानवीय समस्याओं को अमानवीय उपकरणों में अमानवीय आधार सामग्री के रूप में सुलझाने का प्रयास करते हैं। यह मेरी एक साधारण सी धारणा है कि मानवीय समस्या को मानवीय समाधान की ही आवश्यकता होती है। जब हम किसी समस्या को देखें तो सर्वप्रथम हमें यह जानना चाहिए कि क्या वह मानवीय समस्या है और यह जानने के बाद हम उसके साथ मानवीय व्यवहार करना सीखना चाहिए। मानवीय समस्या का मानवीय समाधान पाने के लिए मानवीय आधार सामग्री तथा मानवीय उपकरणों की ही जरूरत होती है।[1] इस विचार प्रणाली के एक अन्य समर्थक हैनरी फेयोल (Henri Fayol) के शब्दों में "यदि हम मानव तत्त्व को मिटा दें तो एक संगठन की स्थापना बहुत आसान काम बन जाएगी। यदि किसी व्यक्ति के पास आवश्यक पूंजी है तथा वह प्रचलित व्यवहार का थोड़ा विचार रखता है तो वह संगठन बना तो लेगा किन्तु हम व्यक्तियों को समूहों में विभाजित करने तथा उनको काम देने मात्र से ही एक प्रभावशाली संगठन नहीं बना सकते। हम यह भी

1 F J Roethlis Berger Management and Morale pp 8 9

जानना चाहिए कि सगठन को विषय की आवश्यकताओ के अनुरूप किस प्रकार ढाला जा सकता है तथा आवश्यक व्यक्तियो को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है और प्रत्येक का उस स्थान पर कम रखा जा सकता है जहा वह अधिक से अधिक सेवा कर सके।

सगठन के प्रति मानवीय दृष्टिकोण रखने वालो का मत है कि सगठन का औपचारिक रूप उसकी वास्तविक प्रकृति को स्पष्ट नही कर सकता। सगठन म अनौपचारिक रूप से जो सम्बन्ध स्थापित होते हैं तथा जो व्यवहार होते हैं उनके द्वारा सगठन के रूप पर क्रान्तिकारी प्रभाव पडता है। यह प्रभाव उस प्रभाव की तुलना म अधिक गम्भीर अधिक स्थायी तथा अधिक वास्तविक होता है जो अनौपचारिकताओ के निवाहन पर पड सकता था। सगठन म काय करने वाले व्यक्ति मानव होने के नाते अनेक बाहरी तत्वो से प्रभावित रहते हैं और इसलिए सगठन के नियमो का पालन इन विभिन्न प्रभावो के सन्दभ म ही किया जाता है। अत इन विचारको का कहना है कि सगठन की विभिन्न समस्याओ का अध्ययन करने तथा उनका समाधान करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति की बहुमुखी प्रकृति को अच्छी तरह समझ लिया जाए। एल डी व्हाइट का विचार है कि सगठन का मानवतावादी दृष्टिकोण उन कायसम्बन्धो की एक समष्टि है जो दीघकाल तक साथ साथ काम करने वाले मनुष्यो की आपसी अन्त क्रियाओ द्वारा उत्पन्न हो जाते हैं।[1]

वास्तव म सगठन के प्रति ये दोनो ही दृष्टिकोण (यान्त्रिक एव मानवतावादी) एकागी तथा अधूरे हैं। दोनो के द्वारा उनके पक्ष के समथन म तथा विरोधी की अनुपयोगिता के विषय म जो तक दिए जाते हैं व अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। सगठन के प्रति एक सही दृष्टिकोण इन दोनो के सन्तुलन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् सगठन बनाते समय हम न तो उसके रूप एव ढाचे की ही अवहेलना कर सकते हैं और न ही हम मानवीय तत्त्व को गौण मान सकते है। उर्विक ने इस समस्या पर विचार करते हुए एक सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाया है। उनका कहना है कि मानव तत्व के द्वारा जो सीमाए लगाई गई हैं उनको बढा चढा कर नही कहना चाहिए। सगठनकर्त्ता को चाहिए कि एक सफेद पृष्ठ पर अपने वाछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आदश योजना के वह आगे बढ़ा हो न सकता। यदि बढेगा तो गिर जाएगा अथवा रुक जाएगा। योजना म जहा कही भी आवश्यकता हो वहा व्यक्तियो के अनुसार समायोजन कर लिया जाए। यदि योजना न बनाई गई तो समायोजन की समस्या अधिक दुरूह बन जाएगी। यदि पुराने व्यक्ति सेवा निवृत्त हो जाते हैं तथा उनका पद खाली होता है तो वह योजना के अनुसार भरा जाना

1 L D White op cit p 27

चाहिए। उर्विक (Urwick) का मत है कि बिना डिजाइन अथवा योजना के सगठन बनाते समय ही नही वरन् उसके प्रतिदिन के कार्यों म भी रहता है। सगठन निर्दयी अपव्ययी एव अकार्यकुशल (Cruel Wasteful and Inefficient) बन जाता है।

इस स तुलित दृष्टिकोण द्वारा दोना एकांगी मतो के दोषा का निवारण हो जाता है। यदि हम समय एव आवश्यकता के अनुसार योजना म परिवतन करने क लिए तयार है तो सगठन बनाने मे पूव योजना बनाने म कोई बुराई नहा है क्योकि आवश्यक समझौता तो करना ही होगा। कोई भी प्रशासकीय सगठन एक मशीन की भाति पूव निश्चित माग पर नही चल सकता। मानव त व का प्रभाव केवल सगठन बनात समय ही नही वरन् उसक प्रतिदिन क कार्यों म भी रहता है। सगठन बन जाने के बाद उसके यवहार पर म नवीय त व बहुत प्रभाव डालता है।

(8) नौकरशाही विचारधारा या सिद्धा त
(Bureaucratic Theory of Organisation)

नौकरशाही श द अस्पष्ट और अनेकाथक है तथापि प्रशासन क क्षत्र म इसका प्रयोग सामा यत दो अर्थों म किया जाता है—प्रथम प्रशासन के काय और पद्धतियो की सरचना के लिए एव द्वितीय प्रशासकीय अधिकारियो के समूह के लिए। लोक प्रशासन क साहित्य म नौकरशाही जितना सुपरिचित और सामा य प्रयाग म आने वाला शब्द है उतना ही य द अनेक आलोचनापूर्ण और अप्रिय भी है। सामा यत इस श द का प्रयाग प्रशासकीय अक्षमता तथा अधिकारियो द्वारा शक्ति के अनुचित प्रयोग क लिए किया जाता है। नौकरशाही का अग्रजी पर्यायवाची श द ब्यूरोक्रसी फ्रेंच भाषा क ब्यूरो श द स लिया गया है जिसका अथ एक विभागीय उपसम्भाग अथवा विभाग म है। सवप्रथम ब्यूरोक्रसी अथात् नौकरशाही श द का प्रयोग फ्रेंच अथशास्त्री वि स ट डी गोर्ने (Vincent de Gournay 1712–1759) द्वारा किया गया था और फ्रेंच अकादमी द्वारा 1798 म प्रकाशित श दकोष म इसका अथ बताते हुए कहा गया— शासकीय कार्यालयो क अध्यक्षा एव कमचारियो की शक्ति और प्रभाव। कालान्तर म रा य क बढते हुए हस्तक्षेप की परिस्थितियो म यूरोपीय विद्वानो द्वारा इस श द का यापक प्रयोग किया गया। ब्यूरोक्रेसी श द की यवस्थित याख्या 1895 म गिटानो मास्का (Gaetano Mosca) न अपनी रचना एलामेन्टी डी सान्जा पोलिटिका (Elementi di Scienza Politica) मे की जिसका अनुवाद दि रूलिंग क्लास (The Ruling Class) के नाम से 1939 म प्रकाशित हुआ। इसम लेखक ने नौकरशाही को उन सभी राजनीतिक प्रणालियो के प्रशासन के लिए आवश्यक बताया जिन्हें या तो साम तवादी या नौकरशाही वग म वर्गीकृत किया जाए।

नौकरशाही की अवधारणा क आधुनिक सस्करण का विकास होना गया और मेक्स वबर (Max Weber 1864–1920) ने नौकरशाही समाजशास्त्रीय

अध्ययन करते हुए इस शब्द को विभिन्न अर्थों से मुक्त किया और इस बात पर बल दिया कि किसी सगठन के उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों की उचित प्राप्ति के लिए नौकरशाही अनिवार्य है। मैक्स वेबर ने नौकरशाही को प्रशासन की एक तर्कसंगत और विवेकशील (Rational) व्यवस्था मानते हुए इस आदर्श प्रकार या रूप (Ideal Type) बताया। आदर्श प्रकार वही है जिसके लिए सगठन प्रयत्नशील है। नौकरशाही के आदर्श प्रकार या रूप की कतिपय विशेषताओं का वर्णन मैक्स वेबर ने किया और साथ ही यह मत भी प्रकट किया कि यदि किसी सगठन में ये विशेषताएँ उपलब्ध न हों तो यह आदर्श रूप का दोष नहीं है वरन् इस बात का प्रतीक है कि सगठन का उतने ही अंशों तक नौकरशाहीकरण (Bureaucratization) नहीं हो सका है। मैक्स वेबर के अनुसार नौकरशाही के आदर्श प्रकार या रूप की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैं—

(1) कर्मचारियों के बीच कार्य का स्पष्ट वितरण किया जाता है और प्रत्येक कर्मचारी को अपना कार्य उचित रूप से सम्पन्न करने के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।

(2) पदों में स्पष्ट पद-सोपान होता है और तदनुसार प्रत्येक अधीनस्थ कार्यालय एवं कर्मचारी उच्चतर कार्यालय एवं कर्मचारी के नियन्त्रण में रहता है।

(3) कर्मचारी व्यक्तिगत रूप में स्वतन्त्र होते हैं। वे केवल अपने पद से सम्बन्धित अवैयक्तिक कर्त्तव्यों का सम्पादित करते हैं।

(4) नौकरशाही सगठन में तकनीकी नियमों अथवा नाम्स के आधार पर कार्यालय की समूची कार्यवाही का नियमन किया जाता है।

(5) प्रत्येक कार्यालय के कार्य स्पष्ट रूप से परिभाषित होते हैं ताकि कोई किसी के कार्यों में हस्तक्षेप न करे।

(6) अधिकारीगण अनुबन्धीय आधार पर नियुक्त किए जाते हैं।

(7) सगठन के कर्मचारी निर्वाचित नहीं होते वरन् पद-सम्बन्धी योग्यता के आधार पर उनका चयन किया जाता है। योग्यता परीक्षाओं द्वारा उनकी तकनीकी योग्यता जाँचने और आवश्यक प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रमाण-पत्र देखने के बाद उनकी नियुक्ति की जाती है।

(8) कर्मचारियों को नकद वेतन दिया जाता है और सामान्यतः पेंशन का अधिकार होता है। पदसोपान क्रम में पद की स्थिति के अनुरूप उनका वेतनमान निर्धारित किया जाता है। पदाधिकारी अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है और कुछ विशेष परिस्थितियों में उसकी सेवाएँ समाप्त भी की जा सकती हैं।

(9) पदाधिकारी का पद ही उसका मुख्य तथा एकमात्र व्यवसाय होता है।

(10) प्रत्येक कर्मचारी अपने पद को आजीवन बना लेता है और वरिष्ठता या योग्यता के आधार पर उसकी पदोन्नति होती रहती है।

(11) पदाधिकारी न तो अपने पद और उनके स्रोतों का दुरुपयोग कर सकता है।

(12) कर्मचारियों पर एकीकृत नियन्त्रण होता है और वह प्रशासन प्रणाली के अधीन होता है।

उपर्युक्त विशेषताएं मैक्स वेबर की आदर्श विशुद्ध और विवेकपूर्ण नौकरशाही के तत्त्व हैं। मैक्स वेबर के अनुसार इन विशेषताओं के कारण ही नौकरशाही को संगठन का सर्वाधिक सन्तापजनक रूप या प्रकार स्वीकार किया जाना चाहिए तथापि अपनी आदर्श विशुद्धता में नौकरशाही का यह आदर्श रूप यथार्थ जगत् में कभी उपलब्ध नहीं होता।

नौकरशाही की आधुनिक अवधारणा का प्रस्तुतीकरण मुख्यतः संरचनात्मक (Structural) तथा कार्यात्मक (Functional) दो दृष्टियों से किया गया है। संरचनात्मक रूप में नौकरशाही को एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था माना गया है जिसमें पदसोपान, विशेषीकरण, कार्यकर्त्ता आदि विशेषताएं पाई जाती हैं। कतिपय विद्वानों के कथन इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कार्ल फ्रेडरिक (Carl Friedrich) ने लिखा है कि "नौकरशाही उन लोगों के पदसोपान, कार्यों के विशेषीकरण तथा उच्चस्तरीय क्षमता से युक्त संगठन है जिन्हें इन पदों पर कार्य करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है।"[1] एक अन्य विचारक विक्टर थामसन (Victor Thompson) के मतानुसार "नौकरशाही संगठन में अत्यधिक स्पष्ट श्रम विभाजन द्वारा पर्याप्त स्पष्ट सत्ता का पदसोपान होता है।" फ्रेडरिग्स के शब्दों में "नौकरशाही एक राजनीतिक अध्यक्ष की सत्ता के अधीन कार्यरत्नता का पदसोपान है।"[3] फरेल हेडी का विचार है कि नौकरशाही को देखने का सर्वाधिक उपयोगी तरीका यह है कि उसे कुछ संरचनात्मक विशेषताओं के रूप में देखा जाए। आज विश्व के प्राय सभी देशों की लोक सेवा में नौकरशाही के सभी मापदण्ड प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है।

कार्यात्मक दृष्टि से नौकरशाही का अध्ययन सामान्य सामाजिक व्यवस्था की अन्य उप-व्यवस्थाओं पर पड़ने वाले नौकरशाही व्यवहार के प्रभाव का अध्ययन है। स्वयं नौकरशाही भी इस सामान्य सामाजिक व्यवस्था का एक भाग होती

1 C lFr d k Man nd H Gove m t pp 469 70
2 V ct r Th mps n Moder Orga s t n pp 3–4
3 F d ggs B e u t c P l t C mpa at v P spect e Jour l of C mp rat ve Ad n nistration I 1969 p 10

ह। माइक्रेल क्रोजियर (Michel Crozier) के मतानुसार नौकरशाही व्यवहार म धीमापन प्रक्रिया की जटिलता रटीन प्रकृति और प्रशासनिक सगठन क सदस्या अथवा सेवित व्यक्तियो क लिए कुण्ठाजनक वातावरण आदि बातें शामिल की जाती हैं। प्रो हैरल्ड लास्की न नौकरशाही एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था को माना है जिसम यन्त्रवत् काय के लिए उत्कण्ठा नियमो क लिए लोचशीलता का बलिदान निणय लेने म देरी और नवीन प्रयोगो का अवरोध रूढिवादी दृष्टिकोण आदि बातें प्रभावशाली रहती हैं।[1] लाउ तथा मेयर की मान्यता है कि नौकरशाही सगठन म विशेषीकरण सत्ता का पदसोपान नियमो की व्यवस्था और निर्वैयक्तिकता की विशेषताए पायी जाती हैं। एफ एम मार्क्स न पदसोपान क्षेत्राधिकार विशेषीकरण व्यावसायिक प्रशिक्षण निश्चित वतन एव स्थायित्व को नौकरशाही सगठन की विशेषताए स्वीकार किया है।[2]

(4) व्यवहार सिद्धान्त

(Behavioural Theory)

इस सिद्धान्त क अनुसार किसी भी सगठन का केवल औपचारिक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है वरन् सगठन क वास्तविक व्यवहार का ज्ञान भी अपेक्षित है। यह आवश्यक नही है कि सगठन का औपचारिक ढाचा व्यावहारिक पक्ष स भिन्न अथवा विपरीत हो क्योकि ऐसा कहा जाता है कि दोनो के बीच एकरूपता रहेगी। फिर भी ऐस अवसर प्राय आ जाते हैं जब सगठन का व्यावहारिक रूप उसक औपचारिक ढाचे से अधिक आगे बढ जाता है।

(5) क्रीडा सिद्धान्त

(Game Theory)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादको म वान न्यूमन (Von Neumann) तथा मोर्गेन्स्टीन (Morgenstein) मुख्य हैं। क्रीडा सिद्धान्त के अनुसार खेल की ही भाति सगठन के भी नियम उपनियम अथवा सिद्धान्त हुआ करते हैं। क्रीडा सिद्धान्त की प्रथम मान्यता यह है कि भविष्य के सम्भावित व्यवहार का प्रतिनिधित्व करने वाला विचार एक वृक्ष की भाति होता है जिसम असख्य शाखाए होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता रहती है कि वह उचित शाखा को ग्रहण कर ल। यह मान्यता वैसे आज क खेल सिद्धान्त स भी पुरातन है। सन् 1893 क प्रकाशनो म भी इसका उल्लेख है। अधिकाश शतरज क खिलाडी तथा चूहा के भूल भुलया म दौडने वाले मनोवैज्ञानिक इस मान्यता स परिचित हैं। दूसरे इस सिद्धान्त

1 *H J Laski* Bureaucracy Encyclopaedia of Social Sciences III p 70

2 *F Marx* op cit p 22

की मान्यता है कि जब व्यक्ति के सामने कुछ विकल्पों में से एक चुनने का प्रश्न आता है तो वह उसे चुनता है जिससे अधिक से अधिक प्रतिफल प्राप्त कर सके। इस चुनाव को बौद्धिक चुनाव कहते हैं। इस मान्यता का भी एक लम्बा इतिहास है। प्रसिद्ध तर्कशास्त्री अर्नस्ट जर्मेलो (Ernst Zermelo) ने सन् 1912 में इससे सम्बन्धित विचार प्रस्तुत किए थे। तीसरे इस सिद्धान्त में यह विचार निहित है कि प्रतिस्पर्द्धापूर्ण स्थिति में एक मिली जुली युद्ध नीति अपनाई जाए ताकि विरोधियों द्वारा उसे बाहर न निकाला जा सके। यह नीति सबसे सफल नीति मानी जाती है। चौथे बौद्धिक चुनाव के अनुसार प्रतिस्पर्द्धापूर्ण स्थिति में दो से अधिक खिलाड़ी मेलजोल बनाने की दिशा में विचार करने लगते हैं। यह विचार महत्त्वपूर्ण एवं नवीन है जिसे सन् 1945 में <u>The Theory of Games and Economic Behaviour</u> पुस्तक के प्रकाशन के साथ प्रस्तावित किया गया था। अभी तक इस विचार को पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया गया है और यह बहुत कम व्यवहृत हुआ है।

खेल सिद्धान्त ने पिछली दशाब्दी में लोक प्रशासन एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया पर जो प्रभाव डाला है उसे भुलाया नहीं जा सकता। इस सिद्धान्त ने अनेक ऐसे नियम दिए हैं जिन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया पर लागू करके बौद्धिक चुनाव से लाभदायक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि मनुष्य के चुनाव की विचारधाराएं बौद्धिक मनुष्य की एक भिन्न व्याख्या पर आधारित हैं। खेल सिद्धान्त तथा सांख्यिकी निर्णय सिद्धान्त का बौद्धिक मनुष्य के बारे में अपना अलग विचार है। सांख्यिकी निर्णय सिद्धान्त के प्रतिपादकों में नीमैन (Neyman) पीयरसन (Pearson) तथा वाल्ड (Wald) प्रमुख हैं।

(6) <u>विनिश्चय सिद्धान्त</u>

(Decision Theory)

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक क्रिया के दो पहलू होते हैं—निर्णय लेना तथा उसे कार्यान्वित करना। प्रारम्भ में यह नहीं माना जाता था कि प्रशासन का सिद्धान्त निर्णय लेने की प्रक्रिया से उसी प्रकार सम्बन्धित रहना चाहिए जिस प्रकार यह कार्य की प्रक्रिया से सम्बन्धित रहता है। इसका कारण सम्भवतया यह था कि निर्णय लेने की प्रक्रिया को सम्पूर्ण नीति का ही एक भाग माना जाता था। किन्तु वास्तविकता यह है कि जब किसी संगठन का सामान्य लक्ष्य निश्चित कर लिया जाता है तो निर्णय लेने की प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती। निर्णय लेने की प्रक्रिया का व्यवहार करने की प्रक्रिया से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। सम्भवतः यह कहना ठीक है कि प्रशासन के सामान्य सिद्धान्त में संगठन के वे सभी सिद्धान्त सम्मिलित किए जाने चाहिए जिनसे सही निर्णय लेना सम्भव होता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि इसमें प्रभावशाली व्यवहार के को

सम्मिलित किया जाता है। संगठन की निर्णय लेने की प्रक्रिया पर जिन चीजों का प्रभाव पड़ता है उनका भी अध्ययन किया जाना चाहिए। प्रशासकीय क्रिया को एक समूह की क्रिया समझा जाता है। साधारण अवस्थाओं में (जहां जो व्यक्ति योजना बनाता है वही उसे क्रियान्वित भी करता है) अधिक समस्याएं उत्पन्न नहीं होती किन्तु प्रशासकीय व्यवहार में अनेक व्यक्ति संलग्न रहते हैं और उनके व्यवहार के लिए एक विशेष प्रकार की तकनीक अपनाने की आवश्यकता होती है। इसी कारण साइमन का यह मत है कि संगठन का विश्लेषण करने का सबसे अच्छा तरीका यह देखना है कि निर्णय कहां तथा किसके द्वारा लिए जाते हैं। औपचारिक संगठन के पदसोपान के माध्यम से संगठन के वास्तविक व्यवहार का पता नहीं लगाया जा सकता। औपचारिक रूप से निर्णय लेने की शक्ति जिनके हाथ में सौंपी जाती है उस पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अधिक प्रभाव पड़ते हैं कि उसे ऐसे निर्णय लेने को भी कभी कभी तैयार रहना पड़ता है जिन्हें वह दिल से नहीं चाहता। निर्णय लेना किसी एक व्यक्ति का कार्य नहीं है वरन् यह तो एक प्रक्रिया है। आज्ञा देने की मान्यता के बारे में मेरी पार्कर फालेट (Mary Parker Folet) का कहना है कि आज्ञा एक प्रक्रिया की मील है तथा परस्पर सम्बन्धित अनुभव के कार्य का एक क्षण है। हमें हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि इस कदम को पूर्ण प्रक्रिया का एक बड़ा भाग न मानकर उतना ही माना जाए जितना कि यह वस्तुतः है।

निर्णय अथवा विनिश्चय सिद्धान्त (Decision Theory) को परम्परावादी विचारधाराओं पर एक करारा प्रहार बताया जाता है। परम्परागत विचारधाराएं व्यवहार प्रक्रिया (Action Process) पर अधिक जोर देती हैं। इनका केन्द्र बिन्दु यह ध्यान रखना होता है कि कार्य पूरा हो जाए। इनके द्वारा जो भी सिद्धान्त प्रतिपादित हुए उनका लक्ष्य कार्य को सम्पन्न करने में सहायता पहुंचाना है। इस प्रकार के सभी विचार विमर्शों में मुख्य ध्यान इस बात की ओर रहता है कि क्या कार्य पूरा किया जाना है इस विषय पर ध्यान नहीं दिया जाता कि यह कार्य किस प्रकार पूरा किया जाना है। इस प्रकार निर्णय सिद्धान्त को एक क्रान्तिकारी कदम कहा जा सकता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में व्यक्ति के कार्यों का महत्त्व कम नहीं माना जा सकता। कई पूर्व संकल्पनाओं एवं कार्यों के संयोग का एक विशेष निर्णय पर प्रभाव रहता है। साइमन के अनुसार केन्द्रीय विचार यह है कि निर्णय अनेक पूर्ववर्ती विचारों के निष्कर्षों से निकाला जाता है। इन निष्कर्षों का उस मूल निर्णय का पूर्व विचार कहते हैं। यह निर्णय अनेक रास्तों के लिए से प्रभावित रहता है।

(7) सूचना सिद्धान्त
(Information Theory)

संगठन के सूचना सिद्धान्त की मान्यता यह है कि किसी भी संगठन द्वारा

लिए जान वाल निर्णयो का प्रकार एव प्रकृति उसक कमचारियो एव अधिकारियो का प्राप्त हान वाली सूचना पर निभर करती है। प्रशासकीय व्यवहार म निर्णय- यक्ति सगठन की समस्याओ से सही रूप मे सूचित रहने चाहिए। ऐसा होन प ही व उपयुक्त निर्णय लेन मे समथ हो सकेंगे। प्रशासकीय सगठन म यक्ति का व्यवहार बुद्धिपूण (Rational) कम हाता है तथा भावना प्रवृति आदत आदि स अधिक प्रभावित रहता है। मनुष्य को एक बुद्धिशील प्राणी मानना अतिशयाक्ति एव तथ्य के विपरीत है। निणय लेने की प्रक्रिया म दो बातो का प्रभाव अधिक रहता है—प्रथम मिलती रहने वाली सूचना और दूसर उस सूचना को समझने एव काम म लाने की अधिकारियो की सामथ्य। प्रशासिक मनुष्य एव प्रशासकीय मनुष्य की भाँति प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिपूण नहीं हाता। सीमित ज्ञान एव योग्यता क स दभ म एक यक्ति जो काय करता है उसका बौद्धिक आधार पर विश्लेषण नहो किया जा सकता। सगठन के व्यवहार का विश्लेषण करत समय सावयवी मनुष्य का ध्यान रखना जरूरी है जिसमें चुनने की समस्या सुनिश्चान की तथा निर्णय लेन की सामथ्य हाती है किन्तु यक्ति क पास असीमित शक्ति नही होती। वह एक समय म केवल कुछ काय करने तक ही सीमित रहता है और जिन विषयो स वह परिचित है उनम स भी वह केवन उन्ही पर विचार कर पाता है जो उसकी स्मृति म सुरक्षित हैं अथवा वातावरण म उपलब्ध हैं।

(8) सचार सिद्धान्त
(Communication Theory)

यह सिद्धान्त सूचना सिद्धान्त क तर्कों के सहार आगे बढने का प्रयास करता है। इसकी मान्यता है कि एक सगठन की सफलता सायकता एव काय कुशलता आदि बातें बहुत कुछ उसकी सचार व्यवस्था के रूप एव प्रकार पर निभर करती हैं। जिस सगठन म सचार के सशक्त साधनो का प्रयोग किया जाता है उसके कमचारी एव अधिकारी तत्कालीन समस्याओ एव कायवाहियो से भली प्रकार परिचित रहते हैं। इसक परिणामस्वरूप निर्णय लेन का काय सुगम हो जाता है। सचार द्वारा सगठन मे दोहरा काय किया जाता है अर्थात् पदसापान के उच्च अधिकारी सचार साधनो द्वारा नीचे के अधिकारियो को विभिन्न सूचनाए एव आज्ञाए भेजते हैं तथा नीचे क अधिकारी उच्च अधिकारियो को सूचनाए एव अपनी राय भेजत हैं। निर्णयो पर प्रभाव डालने वाले सूचना और ज्ञान सगठन म विभिन्न सकेतो पर प्रकट होते हैं। एक सगठन म पाए जाने वाल सचार साधनो को दो मुख्य भागों मे विभाजित किया जा सकता है—औपचारिक सचार तथा अनौपचारिक सचार। औपचारिक सचार उन माध्यमो को कहा जाता है जो जानबूझ कर तथा सचेतन रूप से स्थापित किए जाते है। अनौपचारिक सचार सगठन मे पाए जाने वाल सामाजिक सम्बन्धो पर निभर रहता है। सचार के इन दोनो रूपो का अन्तर इनके साधनो की विभिन्नता पर आधारित है।

औपचारिक सचार साधनो मे से कुछ तो बोले जाने वाले शब्दो के रूप मे होते हैं तथा दूसरे ज्ञापनो (Memoranda) तथा पत्रो के रूप मे। अनेक लिखित साधन विशेष प्रकार के होते हैं जिन्हे साधारण पत्रो एव ज्ञापनो से पृथक करना जरूरी है। सगठन मे सूचना प्रसारित करने के लिए अनेक मौखिक साधन काम मे लाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त ज्ञापन एव पत्र भेजे जाते हैं कागज इधर से उधर दौड़ते रहते हैं रिकार्ड एव प्रतिवेदन रखे जाते हैं तथा सगठन के सयुक्त सम्मेलन होते हैं। औपचारिक सचार साधन चाहे कितना भी सशक्त क्यो न बना दिया जाए किन्तु उसे अनौपचारिक साधनो के माध्यम से सूचना परामर्श यहाँ तक कि आज्ञाएं भी सचालित होती रहती हैं। अनौपचारिक सचार व्यवस्था सगठन के सदस्यो के सामाजिक सिद्धान्तो पर निर्मित होती हैं। दो व्यक्तियो के बीच की मित्रता उनके बीच सम्पर्क के अनेक अवसर उपस्थित कर देती है। अनौपचारिक सचार साधनो का प्रयोग कभी कभी व्यक्तिगत लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए भी किया जाता है तथा व्यक्तिगत हितो की साधना न होने पर सचार साधन कमजोर भी पड सकता है।

(9) समूह सिद्धान्त
(Group Theory)

इस सिद्धान्त के अनुसार सगठन मे हितो तथा सामाजिक सम्बन्धो के आधार पर गुट बन जाते हैं। ये गुट सगठन की निर्णय लेने की प्रक्रिया मे बडा महत्त्वपूर्ण एव प्रभावपूर्ण कार्य करते हैं। सचार व्यवस्था पर भी इनका प्रभाव रहता है। सगठन की अनौपचारिक मान्यता के पीछे सगठन के सदस्यों के सामाजिक सम्बन्ध कार्य करते हैं। सगठन के पदसोपान का औपचारिक रूप से जो क्रम निर्धारित किया है वह अनौपचारिक रूप मे भी प्राप्त हो यह आवश्यक नही। कई बार यह देखा जाता है कि निम्न अधिकारी द्वारा वास्तविक शक्ति का प्रयोग किया जाता है और उच्च अधिकारी द्वारा केवल हस्ताक्षर मात्र कर दिए जाते हैं। इस प्रकार औपचारिक दृष्टि से वह निम्न अधिकारी निम्न स्तरीय होते हुए भी अनौपचारिक दृष्टि से उच्च स्थान प्राप्त कर लेता है।

(10) अभिप्रेरण दृष्टिकोण
(Motivational Approach)

यह विचारधारा सगठन और उसके कर्मचारियो की अभिप्रेरणाओ (Motivations) पर अधिक बल देता है। इसके अनुसार सगठन के रूप और कार्य प्रणाली मे इसके उद्देश्यो के अभिप्रायो के साथ परिवर्तन होता रहता है। सगठन की बनावट तथा कार्य प्रणाली पर मानव सम्बन्धो का गहरा प्रभाव पडता है।

प्रा कुण्टज एव ओ डानेल के अनुसार एक सुदृढ़ एव प्रभावपूर्ण निर्देशन हेतु निम्नलिखित सिद्धान्त आवश्यक हैं—

1 उद्देश्यों हेतु व्यक्तिगत योगदान का सिद्धान्त—इसके अन्तर्गत प्रबन्धक कर्मचारियों को अधिकतम काय करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

2 उद्देश्यो की एकता का सिद्धान्त—व्यक्तिगत समूहों के उद्देश्यों को सभा समूहो के उद्देश्यो के अनुरूप ढाला जाता है।

3 निर्देशन की कुशलता का सिद्धान्त—एक कुशल निर्देशन से वांछित उद्देश्यो की पूर्ति न्यूनतम लागत पर की जा सकती है।

4 आदेश की समानता का सिद्धान्त—इसके अनुसार अधीन काय करने वाले कर्मचारियो को आदेश एक ही अधिकारी से प्राप्त होने चाहिए।

5 प्रत्यक्ष निरीक्षण का सिद्धान्त—इसके अन्तर्गत काय का निरीक्षण प्रत्यक्ष रूप म किया जाना चाहिए।

6 निर्देशन तकनीक की उचितता का सिद्धान्त—दिए हुए काय को करने वाले कर्मचारियो के निरीक्षण हेतु एक उचित तरीका होना चाहिए।

7 प्रबन्धकीय सन्देशवाहन का सिद्धान्त—किसी भी सस्था म प्रबन्ध सन्देशवाहन का प्रमुख माध्यम होता है।

8 समझ का सिद्धान्त—सन्देश को प्राप्त करने वाला सन्देश को अच्छी तरह समझने वाला होना चाहिए।

9 सूचना का सिद्धान्त—एक प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन हेतु प्रत्यक्ष रूप से सन्देश भेजना आवश्यक है।

10 औपचारिक सगठन के मूलभूत उपयोग का सिद्धान्त—किसी भी उपक्रम म औपचारिक सगठन को मान्यता दी जानी चाहिए जिसके सृजनात्मक उपयोग हेतु प्रबन्धको को तयार रहना चाहिए।

11 नेतृत्व का सिद्धान्त—सुदृढ़ एव प्रभावपूर्ण निर्देशन हेतु प्रबन्धको द्वारा प्रभावपूर्ण एव सफल नेतृत्व किया जाना चाहिए।

सगठना के इन विभिन्न सिद्धान्तो और दृष्टिकोणो म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रथम दो ही हैं अर्थात् यन्त्रवादी या शास्त्रीय दृष्टिकोण तथा मानववादी दृष्टिकोण। इन दोनो दृष्टिकोणो का अन्तर मुख्यत दो प्रकार के सगठनो की स्थापना करता है—औपचारिक सगठन एव अनौपचारिक सगठन। सगठन के इन दोनो स्वरूपो का पृथक से विवेचन करने पर सगठन की यन्त्रवादी और मानवतावादी अवधारणाओ का और अधिक अच्छी तरह स्पष्टीकरण हो सकेगा।

औपचारिक एव अनौपचारिक सगठन की अवधारणाएँ
(Concepts of Formal and Informal Organisation)

औपचारिक सगठन यन्त्रवादी अथवा परम्परागत दृष्टिकोण का प्रतीक

ग ल सम्मिलित होते ह जो अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं और जिनमे परिवतन धीरे धीरे होता है। फिफनर तथा शेरवुड के अनुसार औपचारिक ढाँचा जैसा कि अन्तिम सत्ता रखने वाले व्यक्ति देखते हैं एक सरकारी सगठन है। यह सरकारी ढाँचा है और इस प्रकार यह वध है। औपचारिक सगठन की मुख्य विशेषताए होती हैं—उसका वधानिक होना स्थायी होना आदि। कुछ विचारको का कहना है कि ये दोनो ही विशेषताए इस अनौपचारिक सगठन मे भी प्राप्त हो जाती हैं। वह वधानिक इसलिए होता है कि उसके पीछे सामाजिक दबाव होता है और वह स्थायी भी होता है। इन विचारको के मतानुसार सगठन एक जटिल चीज है जिसे साधारण रूप से दो भागों म विभाजित नही किया जा सकता।

औपचारिक सगठन के आवश्यक अग

औपचारिक सगठन का अथ एव प्रकृति अधिक स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि हम उसके निमाणकारी तत्त्वो की जानकारी प्राप्त करलें। लोक प्रशासन के विद्वानो का कहना है कि सगठन का परम्परावादी सिद्धान्त दाशनिक रूप से पूणतावाद व्यक्तिवाद अथवा बुद्धिवाद स्वचालन पर आधारित मानव व्यवहार की व्याख्या आदि के मूल से बना है। जिस वातावरण म इस विचारधारा का जन्म एव विकास हुआ वह प्रभात अ स पूव स्थित था। उस समय की रुचियाँ सत्तावादी थी तथा मून मा यताए उन सस्थाओ म ला गई थी जो निरकुश प्रकृति की थीं जसे सेना रोमन कथोलिक चच औद्योगिक निगम आदि। औपचारिक सगठन के अनुसार मनुष्य यन्त्रवत् (मशीन) होते हैं। यह विचारधारा स्वभाव एव प्रक्रिया दोनो ही दृष्टियों स बौद्धिक (Rational) है। प्रशासकीय शक्ति बुद्धि के बल पर उत्पादकता को बढ़ा देता है। प्रशासकीय निणय पूण सक्षेनता के साथ लिए जाते ह तथा उस समय सभी विकल्प ध्यान म रखते है।

सगठन के सभी कायकर्त्ता बौद्धिक दृष्टि से ही काय करते हैं। जब मजदूरो को अधिक वेतन देने का पहल की जाएगी तो वह अपना वेतन बढ़ाने के लिए उत्पादन अधिक से अधिक मात्रा एव गति से करना चाहेगा। काम छूट जाने अथवा अभाव की अव्यवस्था मे भूखो मरने के डर से मजदूर लोग प्रतियोगिता म अपना सवस्व लगा देते हैं। सगठन की इस परम्परावादी विचारधारा को कुछ विचारको ने परमाणुवादी यन्त्रवादी स्थिर स्वच्छिक तथा विवेकपूण माना है जो आर्थिक प्रेरणाओ एव उत्तेजनाओ पर ध्यान देती है तथा अनार्थिक प्रेरणाओ को कोई महत्त्व नही देता। सगठन की इस परम्परागत व्यवस्था के आधार पर विभिन्न विचारको ने सगठन के अलग अलग रूप (Model) प्रस्तुत किए हैं जो मुख्यत इस प्रकार है—

वेबर द्वारा वर्णित रूप (Weber s Model)—समाज विज्ञान के क्षेत्र म औपचारिक सगठन को सर्वाधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय प्रसिद्ध जमन विचारक

मक्स वेबर को दिया जा सकता है। वेबर ने सामाजिक व्यवहार के नियमो को खोजन म ग्रत्यन्त रुचि ली है। उसका ग्रध्ययन बहुत कुछ ऐतिहासिक है ग्रौर इसलिए उस प्राय इतिहासकार माना जाता है। वेबर ने यह खोजने का प्रयास किया है कि समाज म शक्ति का काय एव व्यवहार क्या है ? वेबर के ग्रनुसार तीन बातो का ग्रधिक प्रभाव पडता है —

(ग्र) समाज के परम्परागत बहिष्कार एवं कानून

(ब) व्यक्तिगत नेतृत्व जिसे चमत्कार भी कहा जा सकता है एव

(स) सरकार की नीतियो एव कानूनो को सचालित करने वाले प्रशासको का समूह ग्रर्थात् नौकरशाही।

सगठन की निणय लेने की शक्ति पर प्रमुखत इन तीनो ही तत्त्वो का प्रभाव रहता है। एक कुशल नेता ऊचे पद पर न होते हुए भी मुख्य निणयो म भारी प्रभाव रख सकता है। एडोल्फ हिटलर इसी प्रकार का नेता था जिसके चुम्बकीय व्यक्तित्व के पीछे करोडो देशवासी सब कुछ न्योछावर करने को तयार रहते थे। नौकरशाही ग्राज के विशालकाय सगठनो की विशेषता है। मक्स वेबर के ग्रनुसार नौकरशाही म सामान्यतया ये विशेषताए पाई जाती हैं—रूप पर जोर देना पदसोपान की मान्यता काय का विशेषीकरण उत्तरदायित्व का विशेष क्षेत्र व्यवहार के निर्धारित नियम तथा रिकार्ड रखना। इन विशेषताग्रो से पूर्ण नौकरशाही ग्रपने ग्राप म एक ग्रादर्श है। वेबर नौकरशाही को सवव्यापी मानते हैं। मानवीय व्यवहार बौद्धिक होना चाहिए तथा सस्थागत स्तर पर इसे प्राप्त करने का सबसे ग्रच्छा उपाय नौकरशाही है। वेबर का सुझाव है कि प्रशासन एव नीतियो के बीच विभाजन होना चाहिए। नौकरशाही से युक्त पदसोपानो म ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो व्यावसायिक हो।

वेबर के सिद्धान्त की कई प्रकार से ग्रालोचनाए की गई हैं। कुछ लोग इसके तरीको की ग्रालोचना करते हैं—कुछ इसके लक्ष्यो की तो ग्रन्य इसके माडल की। प्राय कहा जाता है कि उसने ग्रपने ग्रध्ययन के लिए स्वेच्छाचारी नौकरशाही को चुना था। इसके ग्राधार पर विश्व के सगठनो को कैसे मापा जा सकता है ? पर यह भी सत्य है कि ग्राधुनिक वृहद् सगठनो म ग्रनुभववादी शोध किए जा रहे हैं ग्रौर शोधो ने वेबर के माडल को ग्राधार बनाकर ग्रागे बढा जाता है।

मूनी तथा रले द्वारा वर्णित रूप (Mooney & Ralley s Model)—मूनी तथा रले ने सन् 1930 के प्रारम्भ म एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम था Onward Industry। यह पुस्तक तुरन्त ही बिक गई ग्रौर सन् 19 9 म से दूसरे शीर्षक के साथ छापा गया। ग्रब इसका नाम था The Principles of Organisation। यहाँ सिद्धान्त शब्द का प्रयोग विचारधारा (Theory) के लिए ही किया गया है। ग्राधुनिक विचारको द्वारा इसकी ग्रालोचना की जाती है क्योंकि

उनके मतानुसार Principle तथा Theory दो भिन्न अर्थ वाले शब्द है ये एक दूसरे के पर्याय न ी माने जा सकते। Principle तो कानून का समानार्थक है। दानो म उच्च मात्रा म नियमितता पाई जाती है। Theory का अर्थ पूरे ढाचे से है जिसमे सगठन के सभी पहलू—आन्तरिक एव बाह्य सापेक्ष सम्ब धो क अन्तगत रख जाते हैं।

मूनी तथा रेल द्वारा वर्णित रूप (Model) म सिद्धान्त को चार श्रेणियो म विभाजित किया जाता है—

1/ समन्वय का सिद्धान्त Th Co-ordinative Principle)—यह सिद्धान्त समान तथ्यो की प्राप्ति के लिए कार्यों म एकता की स्थापना करता है तथा सत्ता एव नेतृत्व की आवश्यकता पर जोर देता है।

2/ पदसोपान का सिद्धान्त (The Scaler Principle)—इस सिद्धान्त के अनुसार सत्ता का लम्ब रूप म (Vertically) अर्थात् प्रशासन की इकाइयो मे काय का विभाजन कर दिया जाता है।

3/ कार्यात्मक सिद्धान्त (The Functional Principle)—यह विशेषीकरण का सिद्धान्त है। उदाहरण के लिए पैदल सेना के एक अधिकारी तथा शस्त्रास्त्र के एक अधिकारी के बीच जो अन्तर है वह कार्यात्मक है क्योकि इन दोनो क कार्यों म असमानता है।

4/ स्टाफ तथा लाइन (Staff and Line)—लाइन सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है जबकि स्टाफ का तात्पय परामर्श एव विचार से है। दोनो के बीच विरोध अथवा भिन्नता इतनी नही है कि इनको सगठन के विभाजन का आधार मान लिया जाए। असल म ये सगठन के एकीकरण मे सहयोग देते हैं।

सगठन के इन सिद्धान्तो का वणन करने के बाद मूनी तथा रेल ने एतिहासिक सगठनो के सिद्धान्तो पर विचार किया है। व राज्य चच सेना उद्योग आदि सस्थाओ म प्राप्त सगठन के सिद्धान्तो का अध्ययन करते हैं। मूनी तथा रेल के अनुसार इन सस्थाओ म नौकरशाही पर्याप्त मात्रा म देखने को मिल सकती है।

लोक प्रशासन द्वारा वर्णित रूप (Public Administration s Model)—सरकारी पुनगठन क सम्बन्ध म प्रब धको बौद्धिक विशषज्ञो एव नागरिको के सुधार समूहो द्वारा जो विभिन्न सिफारिशें प्रस्तुत की जाती हैं उनके बीच पर्याप्त समानता है। सरकारी पुनगठन के मानक की अनेक विशषताए है जैसे—प्रशासन का नेतृत्व कायकारिणी को सौंप देना आदेश की एकता पदसोपान की मान्यता नियन्त्रण का क्षेत्र मुख्य प्रशासकीय अधिकारी द्वारा बजट के माध्यम से समन्वय स्थापित करना परामर्शदात्री बोड स्टाफ सामान्य लक्ष्य के आधार पर विभागीकरण राजनीति एव प्रशासन का पृथक्करण आदि। इन सब सुझावों का लक्ष्य प्रशासन म व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना है। इस नीति की विभिन्न आधारो पर आलोचना की जाती है। यह कहा जाता है कि इस प्रकार का भेद कृत्रिम रहेगा और व्यवहार मे इस प्राप्त नही किया जा सकता।

औपचारिक सगठन म पाया जान वाला पदसोपान कई प्रकार का होता है जसे काय स सम्बधित पद या स्तर का पदसोपान योग्यता का पदसोपान वेतन का पदसोपान आदि । इस प्रकार ढांचे सम्बन्धी मान्यता वह है जिसम काय स्थिति प्रक्रिया एव व्यवहार आदि का महत्व अधिक होता है। किन्तु यदि हम यह कहे कि कवल एक ही प्रकार का औपचारिक सगठन होता है तो यह अत्यधिक सरलीकरण माना जाएगा। अभी जिन चार प्रकार के पदसोपानो का वणन किया गया है उनम से काय का पदसोपान मुख्य रूप स काय स सम्बन्धित है स्थिति पदसोपान म व्यक्ति मुख्य होता है कुशलता पदसोपान म ज्ञान तथा योग्यता केन्द्रित होती है। इसी प्रकार वतन क पदसोपान म धन केन्द्रीय वस्तु होती है। सगठन का औपचारिक रूप चाहे कितनी भी कुशलता से स्थापित किया गया हो अथवा उसम चाहे व्यवहारिकता का अश कितना ही हो वह वास्तविक व्यवहार म आन पर बहुत कुछ बदल जाता है।

(ख) अनौपचारिक सगठन (Informal Organisation)

अनौपचारिक सगठन यह मानकर चलता है कि काय करने वाले मनुष्यो क व्यक्तित्व का सगठन के स्वरूप एव व्यवहार पर प्रभाव अवश्य पडता है। एक प्रभावी अध्यक्ष इस प्रकार व्यवहार कर सकता है कि उसक अधीन काय करने वाल लोग केवल आज्ञाकारी बालक बनकर रह जाए। इसके विपरीत कभी कभी अधीनस्थ कमचारी भी इतना प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला बन जाता है कि अध्यक्ष की शक्तियो का प्रयोग उस कमचारी द्वारा ही किया जाता है। प्राय देखा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति की सेवाए अत्य धक मूल्यवान हैं तो उस स्थान देने के सगठन क औपचारिक रूप म तदनुकूल परिवतन भी किया जाता है। कोई भी औपचारिक योजना चाहे वह कितनी भी योग्यता एव कुशलता के साथ बनाई जाए उस समय तक महत्व न । रखती जब तक परिवर्तित वातावरण एव परिस्थितियो के अनुसार वह अपने आपको समायोजित न कर ले। दूसरे शब्दो म औपचारिक सगठन को उपयोगी एव प्रभावशाली बनाने के लिए थोडा बहुत अनौपचारिक बनना पडता है। अनौपचारिक व्यवहार प्राय औपचारिक सगठन के रिक्त स्थानों की पूर्ति करता है। औपचारिक सगठन म होने वाले परिवतन उस बहुत कुछ परिवर्तित कर देत हैं। चेस्टर बर्नार्ड (Che ter Bernard) का कहना है कि अनौपचारिक सगठन कोई बुराई नहा है वरन् एक आवश्यकता है। यदि इस प्रकार का सगठन बनाया नहा गया तो इस बनाना पडता है। साइमन का मत है कि सगठन की औपचारिक योजना सदव सगठन के वास्तविक व्यवहार म भिन्न होती है। दोनो के बीच कई अन्तर रहत हैं जस—इसम अनेक छूटें होती हैं। वास्तविक सगठन म अनेक आपसी सम्बन्ध होते हैं जिनका उल्लेख औपचारिक ढाचे म कहीं भी नहीं होता। उदाहरण के लिए सगठन का उपाध्यक्ष अपने अधीनस्थ के साथ शतरज खेलता है और इस

समय ही वह सगठन की महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार भी कर लेता है। दूसरे एक सगठन के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध जिस प्रकार व्यवहृत होते हैं उस रूप में वे विशेषीकरण के विरोधी हो सकते हैं जैसे कि लेथ मशीन के आपरेटर का फोरमैन द्वारा मशीन की गति से सम्बन्धित कुछ सुझाव दिए जाएं तो यह हो सकता है कि वह उन्हें अस्वीकार कर दें। सगठन की योजना में यह बताया जा सकता है कि विभाग के लिए गए कुछ निर्णयों से उसे सूचित कर दिया जाना चाहिए किन्तु अनेक बार वास्तविक व्यवहार में ऐसा नहीं किया जाता।

औपचारिक तथा अनौपचारिक सगठनों में अन्तर

अन्तरों का उल्लेख करते हुए एच डी ड्वाइट ने कहा है कि अनौपचारिक सगठन अधिक उग्र होता है तथा सामाजिक एवं आर्थिक अन्तर जाति या भाषा का अन्तर शिक्षा का स्तर वैयक्तिक रुचियाँ एवं अरुचियाँ उस सगठन पर प्रभाव डालती हैं और एक प्रकार से वह इन सबका प्रतिबिम्ब होता है। यह रिवाजों पर आधारित होता है यह न तो लिखित होना है न निर्मित और न ही इसमें स्पष्ट रेखाचित्रों की आवश्यकता होती है। औपचारिक सगठन विवेकशील तथा अवैयक्तिक बनना चाहता है जबकि अनौपचारिक सगठन भावना प्रधान एवम् व्यक्तिगत बनना चाहता है। दोनों एक दूसरे को प्राय समेट लेते हैं वे एक दूसरे से संयुक्त भी हो सकते हैं और परे दूर भी। मसफील्ड तथा मार्क्स का विचार है कि औपचारिक सगठन एक नियोजित सगठन होता है जबकि अनौपचारिक सगठन एक प्राकृतिक विकास है। औपचारिक सगठनों के बीच मुख्य अन्तर सत्ता एवं प्रभाव का होता है। सत्ता का अर्थ दूसरों के व्यवहार का सचालित करने के लिए आज्ञा देने की वैधानिक शक्ति से है और प्रभाव का अर्थ मनुष्य की उस सामर्थ्य से है जिसके अनुसार सगठन के दूसरे व्यक्ति भी आज्ञा को उसी रूप में ग्रहण करते हैं तथा उसी के अनुसार वे कार्य करते और करना चाहते हैं।

साइमन का विचार है कि अनौपचारिक सगठन से तात्पर्य उस सगठन से है जिसमें अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध पाए जाते हैं तथा वे इसके निर्णयों को प्रभावित करते हैं। ये सम्बन्ध सगठन की औपचारिक योजना के बाहर है और उस योजना से मेल नहीं खाते। प्रत्येक सगठन के नए सदस्यों का अपने साथियों के साथ उनके औपचारिक सगठन के सदस्य बनने के पूर्व जो साइमन ने तो यहां तक कह दिया है कि कोई भी औपचारिक सगठन उस समय तक प्रभावशाली रूप से कार्य नहीं कर सकता जब तक कि उसे एक अनौपचारिक सगठन का सहयोग प्राप्त न हो। कारण यह है कि औपचारिक सगठन उन सभी काम को नियन्त्रित करता है जो अनौपचारिक रूप से करनी होती हैं। फिर भी यदि अनौपचारिक सगठन प्रभावपूर्ण रूप से काम करना चाहता है तो उसे अनौपचारिक सम्बन्धों को सीमित करना होगा। उसे सगठन में राजनीति के विकास को रोकना होगा। प्रभाव एवं

सत्ता के लिए हानिकारक समझ पर रोक लगानी होगी यदि वह संघर्ष संगठन के सुचारु रूप से संचालन में बाधक हो। औपचारिक संगठन को यह चाहिए कि वह अनौपचारिक सम्बन्धों के विकास की दिशा रचनात्मकता की ओर मोड़ दे। इसके द्वारा संगठन के कार्य के दोहराव को रोका जा सकता है।

अनौपचारिक सम्बन्ध संचार-साधन के रूप में बहुत लाभदायक कार्य करते हैं। यह तो एक मानी हुई बात है कि अनौपचारिक सम्बन्ध कैसे संगठन में इनके विकास पर रोक नहीं लगाई जा सकती। इस स्थिति में विकल्प यही रह जाता है कि इस विकास का संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए प्रयोग किया जाए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है एक अनौपचारिक संगठन के औपचारिक संगठन अनुरूप भी हो सकता है तथा प्रतिकूल भी। हम एक आदर्श संगठन उसे कहेंगे जिसमें औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से रेखाएं परस्पर मेल खाती हैं। हमारे सामने मुख्य समस्या यही है कि इस आधार पर संगठन में जो दुहराव पाया जाता है वह न रहे और उसमें एकता आ जाए। डिमाक का कहना है कि वर्तमान सन्तति के सामने यह एक चुनौती है कि वह संगठन का एक ऐसा सिद्धान्त निरूपित करे जिसमें एकता स्थापित हो जबकि इस समय दो संगठन स्थित हैं।

इस प्रकार संगठन के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त एवं विचारधाराएं हैं। इन सिद्धान्तों एवं विचारधाराओं के सन्दर्भ में हम संगठन के स्वरूप एवं उत्तरदायित्व को पहचानना होगा। किसी भी संगठन को किस आधार पर संगठित किया जाए उसे कैसा बनाया जाए तथा कौनसा मान्य उसके लिए ठीक रहेगा आदि बातों का निर्णय हम तभी कर पाते हैं जब संगठन के विभिन्न विचारों से हम स्वयं को परिचित करें।

आदेश या निदेशन की एकता
(Unity of Command)

किसी भी प्रशासकीय संगठन में पद सोपान अर्थात् उच्च-अधीनस्थ का सम्बन्ध रहता है। थोड़े से उच्च अधिकारी होते हैं जो आदेश देते हैं। इन अधिकारियों के नीचे काफी बड़ी संख्या में निम्न कर्मचारी रहते हैं। कर्मचारी अपने अधिकारियों के आदेशों का ग्रहण कर उनका पालन करते हैं।

आदेश अथवा निदेशन की एकता का स्पष्ट अर्थ है कि प्रशासकीय संगठन के अन्तर्गत कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मचारी को केवल एक उच्च अधिकारी से आदेश मिले। इसर शब्दों में कोई भी कर्मचारी अपने से ऊँचे एक से अधिक अधिकारी से आदेश ग्रहण न करे। यदि उसे अनेक अधिकारियों से आदेश मिलेगा तो बहुत सी कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं। प्रथम यह सम्भावना हो सकती है कि कर्मचारी को परस्पर विरोधी आदेश प्राप्त हों। दूसरे यह भी हो सकता है कि कर्मचारी किसी भी आदेश को पूरी तरह न समझ सके और गलत कार्य कर बैठे या असमंजस में पड़

जाए। तीसरे यह भी हो सकता है कि अधीनस्थ कर्मचारी अपने उच्च अधिकारियों को आपस में भिड़ाने का प्रयत्न करें। इन दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए ही यह नितान्त आवश्यक माना जाता है कि प्रत्येक कर्मचारी अपने से ऊँचे एक अधिकारी से ही आदेश ग्रहण करे और उसका अनुपालन करे।

आदेश की एकता को परिभाषित करते हुए हेनरी फयाल ने लिखा है कि किसी कर्मचारी को केवल एक उच्च अधिकारी द्वारा ही आदेश दिए जाने चाहिये। फिफनर तथा प्रिस्थस के अनुसार आदेश अथवा निर्देशन की एकता का अभिप्राय यह है कि किसी संगठन का प्रत्येक सदस्य एक और केवल एक वरिष्ठ अधिकारी के प्रति ही जवाबदेह होगा। आदेश की एकता का सिद्धान्त न केवल असैनिक प्रशासकीय संगठनों में वरन् सैनिक संगठन में भी अपनाया जाता है। उदाहरण उसमें सेकण्ड लेफ्टिनेन्ट को लेफ्टिनेन्ट आदेश देता है लेफ्टिनेन्ट को कप्तान, कप्तान को मेजर और क्रमशः इसी प्रकार।

आदेश की एकता के गुण या लाभ

आदेश की एकता के लाभ स्पष्ट हैं—

(1) सत्ता के सूत्रों (Lines of Authority) का स्पष्टीकरण रहता है। कर्मचारी के सामने आदेश की स्पष्टता रहती है अतः वह क्षमतापूर्ण ढंग से काम कर सकता है।

(2) एक व्यक्ति एक स्वामी (One Person One Boss) के सिद्धान्त से संगठन के सुसंचालन में बड़ी सहायता मिलती है। अनावश्यक भ्रम पैदा होने की सम्भावना नहीं रहती। कार्य का उत्तरदायित्व भली प्रकार निश्चित किया जा सकता है।

(3) इस बात की सम्भावनाएँ नहीं रहती कि अनेक विरोधी आदेश का लाभ उठाकर कर्मचारी अधिकारियों के बीच मनमुटाव पैदा करने का प्रयत्न करे।

आदेश की एकता के महत्त्व को इंगित करते हुए नयर गुलिक ने ठीक ही लिखा है कि हम इसकी महत्ता को भुला नहीं सकते। हेनरी फयाल के अनुसार यदि आदेश की एकता के सिद्धान्त का उल्लंघन किया जाता है तो सत्ता कमजोर हो जाएगी अनुशासन खतरे में पड़ जाएगा, व्यवस्था गड़बड़ा जाएगी और स्थायित्व संकट में पड़ जाएगा।

आदेश की एकता के सिद्धान्त की आलोचना

लोक प्रशासन की दुनिया में आदेश की एकता के सिद्धान्त का भारी महत्त्व है, इसे पूर्ण रूप से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस सिद्धान्त की कतिपय मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) आदेश की एकता के सिद्धान्त को सार्वभौमिक रूप में लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ हम तकनीकी कर्मचारियों को ही लें जैसे कि एक सहायक

करता है

अभियन्ता (असिस्टेंट इन्जीनियर)। आदेश की एकता की माँग है कि उस अपने क्षेत्र (जिले) के सामान्य उच्च अधिकारी (जिलाधीश) का आज्ञा माननी चाहिए। पर चूँकि वह एक तकनीकी कर्मचारी है अतः आवश्यक है कि उसे अपने तकनीकी उच्च अधिकारी अधिशासी अभियन्ता (एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर) से ही निर्देश मिले। ऐसी समस्या का समाधान प्रायः यह निकाला जाता है कि अधीनस्थ तकनीकी कर्मचारी तकनीकी मामलों में तो उच्च तकनीकी पदाधिकारियों से आदेश लें लेकिन अन्य सामान्य बातों में वह सामान्य उच्च अधिकारी के अधीन रहे। दूसरे शब्दों में वह कर्मचारी दोहरे आदेश अथवा दोहरे नियन्त्रण के अधीन रहे—एक प्रशासकीय और दूसरा प्राविधिक अथवा व्यावसायिक नियन्त्रण।

(2) एफ. डब्ल्यू. टेलर ने आदेश की एकता के सिद्धान्त को सैनिक पद्धति कहकर अस्वीकार किया है। उन्होंने इसके स्थान पर कृत्यमूलक निरीक्षण तथा अधीक्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। टेलर के मत को सारांश में प्रस्तुत करते हुए डा. एम. पी. शर्मा ने लिखा है कि प्रत्येक कर्मचारी को आठ अधीक्षकों के नियन्त्रण में रहना चाहिए—(1) दल अधिकारी (Gang Boss) (2) गति अधिकारी (Speed Boss) (3) निरीक्षक (Inspectors) (4) मरम्मत अधिकारी (Repair Boss) (5) कार्य व्यवस्था तथा पद्धति क्लर्क (Order of Work and Route Clerk) (6) अनुदेश-कार्ड क्लर्क (Instruction Card Clerk) (7) समय तथा लागत क्लर्क (Time and Cost Clerk) एवं (8) कार्य अनुशासक (Work Disciplinarian)। इनमें से प्रथम चार तो स्वयं कार्यालय में ही संचालित होंगे। वे कर्मचारियों और अधिकारियों को उनके विशेष कार्य में सहायता देंगे। अन्य चार का संचालन नियोजन कक्ष (Planning room) में होगा। वहाँ से आदेश तथा अनुदेश लिखित रूप में भेजे जाएँगे। टेलर का विचार है कि इस योजना का मुख्य लाभ यह होगा कि प्रत्येक कार्य में विशेष और प्रशासकीय अधीक्षण उपलब्ध हो जाएँगे। अधीक्षकों के बीच काम का बटवारा हो जाने से इसमें सुगमता होगी। एक ही अधिकारी से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इन सभी कार्यों का विशेषज्ञ होगा।

(3) आदेश की एकता के सिद्धान्त की दूसरी मुख्य आलोचना यह की जाती है कि अब यह सिद्धान्त पुराना पड़ चुका है क्योंकि सहायक अभिकरणों का प्रभाव बढ़ चुका है, विशेषज्ञों की संख्या बढ़ रही है, शासन अधिकाधिक जटिल होता जा रहा है आदि। इन विभिन्न तत्वों के फलस्वरूप वर्तमान समय में नियन्त्रण की एकता लगभग समाप्त ही हो गई है। नियन्त्रण के इकहरेपन की बात भी नहीं रही है बल्कि अब तो नियन्त्रण की अनेकता का प्रचलन हो गया है। उदाहरणार्थ एक जिलाधीश को लगभग दो दर्जन विभागों से आदेश प्राप्त होते हैं और लगभग इतने ही

विभागाध्य र उसे सम्बोधित करते हैं। आज का जिलाधीश कई बार इस समस्या का सामना करता है कि वह किस स्वामी का आदेश माने और किसका नहीं।

(4) आदेश की एकता का सिद्धान्त सरकारी प्रशासन में कठिनाई से ही देखने को मिलता है। सरकारी शासन में एक प्रशासक के कई स्वामी रहते हैं और वह बेचारा किसी की भी उपेक्षा नहीं कर सकता। एक से उसे नीति सम्बन्धी आदेश मिलते हैं, दूसरे से कर्मचारी सम्बन्धी, तीसरे से बजट सम्बन्धी तो चौथे से प्रदाय एवं उपकरण सम्बन्धी।

आदेश की एकता के सिद्धान्त का वास्तविक महत्त्व

आदेश की एकता के सिद्धान्त के गुणों और इसकी आलोचनाओं को हम देख चुके हैं। कमियों और आलोचनाओं के बावजूद यह स्वीकार करना होगा कि आदेश की एकता का सिद्धान्त एक सरल और उपयोगी सिद्धान्त है। यदि एक अधीनस्थ कर्मचारी को अनेक स्वामियों से जूझना पड़ता तो इसके कुपरिणाम निकलेंगे ही। इससे संगठन में अव्यवस्था अवश्य पैदा होगी। यह एक ऐसी स्थिति होगी कि एक गाड़ी को दस घोड़े अपनी अपनी तरफ खींच रहे हों। आदेश की एकता सिद्धान्त के अनुपालन से संगठन में कार्य-संचालन सुगम बनता है और संभ्रमकारी (Confused) स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। फिर यह भी उल्लेखनीय है कि जिस दोहरे या द्विमुखी पर्यवेक्षण अथवा नियन्त्रण का सुझाव कुछ विद्वानों ने दिया है वह भी कम दोषपूर्ण नहीं है। तकनीकी कर्मचारियों के सामने में भले ही द्विमुखी पर्यवेक्षण पद्धति उचित हो, लेकिन इसे सार्वभौमिक रूप में लागू करने से परेशानियाँ ही अधिक हैं। यह पद्धति अपनाते समय एक विशेष सतर्कता सदैव बरतनी होगी कि किसी भी परिस्थिति में कोई कर्मचारी परस्पर विरोधी आदेशों के अधीन न रहे अन्यथा संगठन का काम सुचारु रूप से नहीं चल सकेगा। हरबर्ट ए. साइमन ने आदेश की एकता के सिद्धान्त को प्रमुखता दी है। पर उन्होंने यह संशोधन भी प्रस्तुत किया है कि— दो प्राधिकारी आदेशों (Authoritative Commands) के परस्पर टकराव की सूरत में केवल एक ही निश्चित व्यक्ति (Determinate Person) होना चाहिए जिसकी कि अधीनस्थ कर्मचारी आज्ञा मानें।

मुख्य कार्यपालिका

(Chief Executive)

प्रशासन एक पिरामिड की भाँति है जो आधार पर सबसे अधिक विस्तृत होता है किन्तु ऊपर की ओर छोटा हो जाता है और जिसके शीर्ष पर कार्यपालिका होती है। देश के प्रशासन का वास्तविक भार और दायित्व कार्यपालिका पर ही है। लोक प्रशासन में मुख्य कार्यपालिका अथवा मुख्य निष्पादक की स्थिति केन्द्रीय होती है। वह देश के प्रशासन का प्रधान होता है। देश के प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करता है। उसका सम्बन्ध सामान्य नीति के निर्माण से होता है।

वह सरकार की विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों के बीच समन्वय बनाए रखता है। प्रशासन के प्रधान रूप में वह राज्य की सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी का निर्देशन पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करता होता है। अपना कार्य चलाने हेतु तथा राजकीय अधिनियमों और नीतियों को लागू करने हेतु उसके पास सर्वोच्च प्रशासकीय शक्ति होती है। वही प्रशासकीय प्रबन्ध व्यवस्था में नेतृत्व करता है। इन्हीं सब कारणों से कार्यपालिका अथवा मुख्य निष्पादक की तुलना निगम प्रवृत्ति के एक सुसंगठित निजी उद्यम के महाप्रबन्धक (General Manager) से की गई है। भारत में प्रधान मन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल मुख्य कार्यपालिका है जिसके पास सर्वोच्च शक्ति है तथापि इसकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश रखने के लिए इस पर संसदीय नियन्त्रण रहता है।

मुख्य कार्यपालिका (The Chief Executive) वह व्यक्ति कहलाता है जो कि मुख्य कार्यपालिका का नेता व मुखिया होता है। संसदीय शासन प्रणाली में यह प्रधानमन्त्री होता है जैसे कि भारत में श्री मोरारजी देसाई। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में अध्यक्ष या राष्ट्रपति मुख्य कार्यपालक होता है। जैसा कि अमरिका में प्रेसीडेन्ट कार्टर। नाम के लिए संसदीय शासन-व्यवस्था में भी राष्ट्रपति को मुख्य कार्यपालक माना जाता है, परन्तु मुख्य कार्यपालक की वास्तविक शक्ति मन्त्रिमण्डल का मुखिया होता है परन्तु वैसे काम चलाने के लिए प्रत्येक विभाग तथा कार्यालय का भी एक-एक कार्यपालक (जिसे विभागीय अध्यक्ष भी कहते हैं) होता है। राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार के भी अलग अलग मुख्य कार्यपालक होते हैं। इसी प्रकार स्थानीय सरकारों में भी मुख्य कार्यपालक होते हैं।

मुख्य कार्यपालिका या मुख्य निष्पादक के प्रकार

मुख्य कार्यपालिका अथवा मुख्य निष्पादक के कार्यों पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि इसके कुछ मुख्य प्रकारों को समझ लिया जाए।

1 औपचारिक एवं वास्तविक मुख्य कार्यपालिका—संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में औपचारिक एवं वास्तविक मुख्य कार्यपालिकाओं के बीच भेद किया जाता है। उदाहरणार्थ भारत में राष्ट्रपति औपचारिक या नाम मात्र की कार्यपालिका है तो प्रधान मन्त्री (अथवा मन्त्रिमण्डल) वास्तविक कार्यपालिका है। इंगलैण्ड में राजा या रानी औपचारिक कार्यपालिका के उदाहरण हैं क्योंकि वास्तविक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमन्त्री द्वारा ही किया जाता है जो कि वास्तविक कार्यपालिका है। औपचारिक अथवा नाममात्र की मुख्य कार्यपालिका को वास्तविक प्रशासकीय शक्तियाँ प्राप्त नहीं होतीं यद्यपि शासन उसके नाम से चलाया जाता है।

अध्यक्षात्मक पद्धति में औपचारिक कार्यपालिका के लिए कोई स्थान नहीं होता। वहाँ कार्यपालिका का अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है जो संविधान द्वारा प्रदत्त

समस्त शक्तियों का प्रयोग करता है जैसे कि अमरिका का राष्ट्रपति। अपने मन्त्रि मण्डल में वह जिन मन्त्रियों को लेता है वे केवल राष्ट्रपति के व्यक्तिगत सलाहकार होते हैं उनका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राष्ट्रपति के प्रति ही माना जाता है।

2 **संसदीय एवं अध्यक्षात्मक कार्यपालिका**—जो कार्यपालिका अपने कार्यों के लिए संसद् के प्रति उत्तरदायी होती है और जिसका जीवन मरण संसद् के हाथ में होता है उसे संसदीय कार्यपालिका कहते हैं। इस कार्यपालिका के सदस्य अर्थात् मन्त्रिगण व्यवस्थापिका के भी सदस्य होते हैं। भारत और ब्रिटेन में इसी प्रकार की कार्यपालिका है। अध्यक्षात्मक कार्यपालिका वह है जो व्यवस्थापिका से बिल्कुल अलग रहती है। कार्यपालिका में शासन की सम्पूर्ण शक्तियाँ निहित रहती हैं जो अपने मन्त्रियों की सहायता से प्रशासन-कार्य चलाता है। राष्ट्रपति और उसके मन्त्री व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं होते और न ही उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं। अतः जहाँ संसदीय कार्यपालिका की अवधि की निश्चितता नहीं होती वहाँ अध्यक्षात्मक कार्यपालिका अपने कार्यकाल तक के लिए वास्तव में स्थायी कार्यपालिका होती है। उसे केवल महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है जो बड़ा दुष्कर कार्य है।

3 **बहुल कार्यपालिका**—स्विटजरलैण्ड तथा सोवियत रूस में भिन्न प्रकार की कार्यपालिकाएं पाई जाती हैं। स्विटजरलैण्ड की बहुल कार्यपालिका में 7 सदस्य होते हैं जो स्थिति अथवा पद में पूर्णतः बराबर होते हैं। दूसरे शब्दों में बहुल कार्यपालिका वह है जिसमें प्रशासन का उत्तरदायित्व एक से अधिक व्यक्तियों पर होता है। इन व्यक्तियों में कोई भी एक दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होता। सोवियत रूस में सिद्धान्त रूप में तो ब्रिटेन और भारत के नमूने की एक संसदीय व्यवस्था और केबिनेट पाई जाती है लेकिन व्यवहार में वहाँ न तो केबिनेट का महत्त्व है न संसद का क्योंकि साम्यवादी दल की तानाशाही के अन्तर्गत वहाँ पूर्णतः एकदलीय शासन विद्यमान है।

मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्त्तव्य

प्रशासन के प्रमुख रूप में मुख्य कार्यपालिका के उत्तरदायित्वों की प्रकृति लाइन अभिकरणों से मिलती हुई है। उसका सबसे प्रमुख लक्ष्य प्रशासन में यथासम्भव एकता स्थापित करना है। मुख्य कार्यपालिका के सभी कृत्य इस लक्ष्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। मुख्य कार्यपालिका के प्रमुख कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

1 **प्रशासकीय नीति का निर्धारण**—मुख्य कार्यपालिका का पहला कार्य प्रशासकीय नीति की मुख्य रूपरेखाएं निर्धारित करना है। पदाधिकारी अनेक महत्त्वपूर्ण मामलों में मुख्य कार्यपालिका से विचार विमर्श करते हैं तथा उसका परामर्श लेते हैं। मुख्य कार्यपालक किसी भी सम्बन्धित पदाधिकारी के किसी विशिष्ट कार्य को अनुमोदित अथवा अस्वीकृत कर सकता है। वह महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय

मामला पर विभागाय अधिकारियों का परामर्श देकर प्रशासन का नीति का मार्गदर्शन तथा नियन्त्रण करना है।

2 संगठन के विस्तृत रूप का निश्चय करना—विभिन्न कानूनों को लागू करने के लिए व्यवस्थापिका को प्रय विभागों आयोगों निगमों ब्यूरो कार्यालयों आदि की स्थापना करनी पड़ती है। इन इकाइयों के अतिरिक्त संगठन से सम्बन्धित विस्तृत बातों की पूर्ति का भार मुख्य कार्यपालिका पर ही आता है। वह संगठनों की विशद् रूपरेखाएं बनाती है जिनके द्वारा नीति के लक्ष्य पूरे किए जाते हैं। कई बार मुख्य कार्यपालिका को विभागों, शाखाओं, उपशाखाओं आदि के आन्तरिक संगठन में सुधार, परिवर्तन एवं हेर फेर करने पड़ते हैं और नए अभिकरणों की स्थापना अथवा पहले से ही स्थापित अभिकरणों का पुनर्गठन करना पड़ता है।

3 आवश्यक आदेश निर्देश तथा आज्ञाएं निकालना—कार्यपालिका का यह स्पष्ट जिम्मेदारी है कि संविधान तथा उसके अन्तर्गत बनाए गए कानूनों का पालन कराए। एतदर्थ उसे प्रशासकीय पदाधिकारियों को आवश्यक आदेश निर्देश देने रहते हैं। ये आदेश कार्यपालिका की सामर्थ्य और क्षमता के द्योतक हैं।

4 प्रशासकीय कार्यों का एक-दूसरे से सम्बन्ध करना—मुख्य कार्यपालिका का एक मुख्य प्रबन्धक होने के नाते यह भी उत्तरदायित्व है कि वह लोक प्रशासन के अनेक विभागों द्वारा किए जाने वाले कार्यों को एक-दूसरे से सम्बद्ध करता चले और विभागों के विभिन्न और यदा-कदा परस्पर टकराने वाले कार्यों में संतुलन स्थापित करता रहे।

5 आर्थिक प्रशासन की व्यवस्था करना—धन की समुचित और आवश्यक व्यवस्था किए बिना कोई भी प्रशासन नहीं चल सकता। लोक प्रशासन को चलाने के लिए जो आर्थिक व्यवस्था की जाती है उस पर लोकतन्त्रों में सर्वत्र व्यवस्थापिका का ही नियन्त्रण होता है परन्तु सभी समकालीन जनतन्त्रों में आय व्यय के लेखे या बजट तैयार करना नए कर लगाना या पुराने करों को घटाना बढ़ाना खत्म करना खर्च की मदें तय करना व्यय इत्यादि के सम्बन्ध में निर्णय लेना कार्यपालिका का ही मुख्य कार्य समझा जाता है।

6 प्रशासकीय संगठन का विवरण प्रस्तुत करना—मुख्य कार्यपालिका का यह कर्त्तव्य भी है कि वह प्रशासकीय संगठन और उसके कार्यों का विवरण जनता और व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुत करे। व्यवस्थापिका तो संगठन की रूपरेखा ही निश्चित करती है किन्तु संगठन का आन्तरिक स्वरूप क्या होगा इसको निश्चित करने का काम कार्यपालिका का है। इसी प्रकार व्यवस्थापिका सभी प्रशासकीय कार्यों का एक ढांचा मात्र ही निश्चित करता है किन्तु कार्यों का विस्तार में निश्चित करने का काम कार्यपालिका के ही द्वारा सम्पन्न होता है। इस प्रकार प्रशासकीय कार्यों को पूरा करने के लिए परिस्थिति के अनुसार कार्यपालिका को संगठन के आन्तरिक

स्वरूप का निश्चित करने का अथवा विद्यमान स्वरूप का समय की आवश्यकतानुसार बदल डालने का अधिकार है।

7 सेवी वर्ग का चयन और पद विमुक्ति—उच्च वर्ग के सेवी वर्ग का चुनाव मुख्य कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। यह एक कठिन किन्तु व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है पर साथ ही इस शक्ति का उपयोग करने में मुख्य कार्यपालिका पूर्ण रूप से स्वतन्त्र भी नहीं रहती। उसे राजनीतिक वर्ग-गत सगठित हित आदि विभिन्न पहलुओं की ओर ध्यान देना पडता है। मुख्य कार्यपालिका को यह अधिकार भी होता है कि जिन अधिकारियों को वह नियुक्ति कर उन्हें हटा भी सके किन्तु इस अधिकार का प्रयोग अकारण नहीं किया जाता। वास्तव में इस बारे में अधिनियमों आदि में स्पष्ट व्यवस्था दी गई होती है। कार्यपालिका पद विमुक्ति के अपने अधिकार द्वारा प्रशासकीय सगठन पर प्रभुत्व और नियन्त्रण स्थापित करती है।

8 निरीक्षण और नियन्त्रण—मुख्य कार्यपालिका व्यवहार में स्वय तो प्रशासकीय काम तो नहीं के बराबर करती है वह तो सरकारी अभिकरणों का निरीक्षण और नियन्त्रण रखती है। वह देखती है कि उसके द्वारा प्रसारित आदेशों का पालन हो रहा है अथवा नहीं। निरीक्षण और नियन्त्रण के अधिकार का जानने के साथ साथ वह प्रशासकीय विभागों को आवश्यक सुविधाए भी प्रदान करती है। कार्यपालिका को कहीं-कहीं सावैधानिक रूप में नियमित जाच पडताल का अधिकार भी होता है जिसका प्रयोग करते हुए वह जांच आयोग आदि स्थापित करती है।

9 जन-सम्पर्क—मुख्य कार्यपालिका जन-सम्पर्क को बढाने तथा उसे नियन्त्रित करने में भाग लेती है। इस प्रकार वह शासन व्यवस्था के बाहर से प्रभावित करने की शक्ति भी रखती है। जन-सम्पर्क स्थापना के कार्यों द्वारा वह प्रशासन का जनता में प्रतिनिधित्व करती है तथा उसके समर्थन में लोकमत का निर्माण करती है।

लोक प्रशासन के प्रसिद्ध विद्वान् लूथर गुलिक ने मुख्य कार्यपालिका के कार्यों का एक ही शब्द पोस्डकार्ब (POSDCORB) में सग्रहीत कर दिया है तदनुसार उसके कार्य ये हैं—(1) योजना बनाना (P—Planning) (2) सगठन करना (O—Organising) (3) कर्मचारियों की व्यवस्था करना (S—Staffing) (4) निर्देशन (D—Directing) (5) समन्वय करना (Co—Co ordinating) (6) प्रतिवेदन देना (R—Reporting) एव (7) बजट बनाना (B—Budgeting)।

मुख्य कार्यपालिका के इन विस्तृत कार्यों और दायित्वों से स्पष्ट है कि वह सम्पूर्ण कार्य भार अकेला नहीं वहन कर सकता। व्यवहार में उसे अपने साथ सलग्न दूसरे लोगों की सहायता लेनी होती है मुख्य कार्यपालिका अपने कृत्य से कुछ इतर अगों को सौंप देती है तथापि यह सत्ता कोई हस्तान्तरण नहीं होता और इससे उसके पर्यवेक्षण निर्देशन एव नियन्त्रण के सर्वोपरि दायित्व में कोई हस्तक्षेप अथवा बाधा उत्पन्न नहीं होती। उन अगों को जिन्हें कार्य सौंपे जाते हैं सामान्य कर्मचारी

वग कहा जाता है जो काट छाट विश्लेषण और गाण मन्त्र के कार्यों म निणय देकर मरय कायपालिका का भार हल्का कर देन हैं और उसकी नीति तथा ममय की बचात है। जो मामले विशेष महत्त्व के हात है वे ही निणय के लिए मुख्य कायपालिका तक पहुचते हैं और उसके निणय तत्सम्बन्धी विभागो तक सामान्य कमचारी वग से पहुच जाते है।

मुख्य कार्यपालिका राजनीतिक नेता के रूप म

मुख्य कायपालिका के कार्यो दायित्वो और शक्तियों की प्रकृति प्रशासनिक एव राजनीतिक होता है। प्रशासनिक कत्तव्य और अधिकारो की विवेचना हम कर चुके हैं। एक राजनीतिक नेता के रूप म मख्य कायपालिका का भारी महत्त्व है। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए उस अपन दल का ध्यान रखना पडता है। दल की उपेक्षा करन का अर्थ है अपनी राजनीतिक मृत्यु को आमन्त्रित करना। अत एक समझदार मुख्य कायपालक अथवा मुख्य निष्पादक अपन राजनीतिक कर्तव्यो को भी सदव उतना ही महत्त्व देता है जितना कि प्रशासनिक कर्तव्यो को। वह प्रशासन के प्रधान (Head of the Administration) और राजनीतिक नेता (Political Leader) की दोहरी भूमिका (Double Role) अदा करता है।

एक राजनीतिक नेता के रूप म मुख्य कायपालिका का सदव यह प्रयत्न रहता है कि व्यवस्थापिका के सदस्या के बहुमत को अपन पक्ष म बनाए रख। वह अपनी नीतियों के समथन के लिए व्यवस्थापिका म अपन दल के सदस्या से अपील करता है और समय-समय पर महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर विरोधी दलो के नेताओ से परामश लेता है। विभिन्न सम्मलनो और बठको म वह भाग लेता है तथा लोकतन्त्र म अपनी निष्ठा प्रकट करता है। अपन मन्त्रियो के चुनाव म वह न केवल व्यक्तियों की क्षमताओ से वरन् दल म उन लोगो की स्थिति से प्रभावित होता है। ससद् म अपन दल के मुख्य व्यक्तियों को ही वह प्राय अपने मन्त्रिमण्डल म स्थान देता है। व्यवस्थापिका म मन्त्रिमण्डल की नीतियों का अन्तिम व्याख्याता वही होता है। ससदीय व्यवस्था म वही लोकसभा अथवा लोकप्रिय सदन का नता माना जाता है। दल और प्रशासन के नेता के रूप म उसका व्यक्तित्व सावजनिक रूप ले लेता है। वह रडियो कारटूनो प्रेस आदि के माध्यम से देश भर की जनता के समक्ष प्रस्तुत होना है। उसके व्यक्तित्व को ही केन्द्र बनाकर सामान्य निवाचन लडा जाता है। वस्तुत वह सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतीक बन जाता है। अध्यक्षीय व्यवस्था म यद्यपि राष्ट्रपति ससद् की कायवाही में भाग नहीं लता अपनी विपुल शक्तियों से वह ससद् को प्रभावित करता है। राष्ट्र के सर्वोच्च नेता के रूप म वह अपनी नीतियों के पक्ष म समथन के लिए जनता से सीधी अपील करता है। विभिन्न प्रकार से अपन प्रभाव का उपयोग म लाकर वह अपनी नतृत्व क्षमता का परिचय देता है।

मुख्य कार्यपालिका की शक्तियों के स्रोत और उसके गुण

मुख्य कार्यपालिका अथवा मुख्य निष्पादक अपने विस्तृत कार्यों को तब तक सम्पन्न नहीं कर सकता जब तक कि उसे पर्याप्त शक्ति प्रदान न की जाए और उसमें विभिन्न आवश्यक गुण न हों। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में मुख्य कार्यपालिका की शक्तियों के स्रोतों और उसके गुणों का हम निम्नानुसार उल्लेख कर सकते हैं—

1 **जनमत का समर्थन**—लोकतन्त्र में प्रशासन जनता के सक्रिय सहयोग की आकांक्षा करता है। अतः आवश्यक है कि मुख्य कार्यपालिका द्वारा शक्तियों और उत्तरदायित्वों का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण किया जाए। ऐसी स्थिति में जनता का अधिकाधिक समर्थन मिल सकता है और जनता की अधिक से अधिक सेवा भी हो पाती है। वैधानिक शक्तियाँ बिना जन समर्थन और सहयोग के प्रभावहीन बन कर केवल कागजी रह जाती हैं।

2 **सांविधानिक शक्तियाँ**—यह आवश्यक है कि मुख्य कार्यपालिका के हाथ संवैधानिक अथवा कानूनी रूप से मजबूत रहें। इसके अभाव में वह समन्वय नियन्त्रण निर्देशन आदि दायित्वों का निर्वाह नहीं कर सकता। प्रत्येक सरकारी कार्यालय का एक कानूनी परिभाषा का किया जाना बड़ा लाभदायक है। इससे न केवल क्षेत्रीय कार्यालय का कार्य क्षेत्र स्पष्ट हो जाता है अधिकारियों के कर्त्तव्यों और जनता के अधिकारों के सम्बन्ध में भ्रम की गुंजाइश नहीं रहती और साथ ही मुख्य कार्यपालिका के तानाशाह होने का डर भी नहीं रहता। मुख्य कार्यपालिका को यह सांविधानिक अधिकार होना चाहिए कि वह व्यवस्थापन की सिफारिश कर सके आवश्यक समझने पर उस पर वीटो कर सके अधीनस्थ अधिकारियों को नियमानुसार नियुक्त और पदमुक्त कर सके अधिकृत कार्यों में सरकार का प्रतिनिधित्व कर सके सभी सरकारी संस्थाओं को निर्देश दे सके आदि। इस प्रकार की वैधानिक शक्तियों के अभाव में मुख्य कार्यपालिका की स्थिति एक परकटे पक्षी जैसी होगी।

3 **व्यक्तिगत गुण**—मुख्य कार्यपालिका बिना व्यक्तिगत गुणों के अपनी शक्तियों का कुशल प्रयोग नहीं कर सकती। जान वीज ने लिखा है कि कानूनी शक्तियाँ कार्यपालिका की हड्डियाँ हैं मांस तथा रक्त मस्तिष्क और आत्मा उसे स्वयं ही प्रदान करनी चाहिए। यह आवश्यक है कि कार्यपालिका अपनी शक्ति और व्यक्तित्व का संतुलन बनाए रखे उसकी आज्ञाएं प्रभावशाली और विवेकपूर्ण हों। मुख्य कार्यपालिका में शारीरिक सामर्थ्य और क्षमता का होना भी आवश्यक है इसके अभाव में अपने कार्यों में चाहे वह कितनी ही रुचि दिखाए उसका वाञ्छित प्रभाव नहीं रह सकेगा। रुचि बुद्धि और शक्ति व्यक्तित्व के मौलिक गुण हैं। ये गुण संतुलित रूप में होने चाहिए।

4 **कुशल नेतृत्व**—मुख्य कार्यपालिका में कुशल नेतृत्व के गुणों का होना आवश्यक है। उसमें इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह अपने लक्ष्य को कोई हानि

पश्चात् बिना अच्छे मानव-सम्बन्धों का विकास कर सके। डा प्रभुदत्त शर्मा ने अपने ग्रन्थ लोक प्रशासन के नए क्षितिज में ठीक ही लिखा है कि नेतृत्व के आधार पर विभिन्न अधिकारियों का एक मत बनाकर उनसे काम लिया जाता है। एक श्रेष्ठ नेतृत्व कर्मचारियों के बीच प्रेम का ऐसा सूत्र स्थापित कर देता है जिसमें बंधकर वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तुच्छ मतभेदों और विवादों को भुला देते हैं। कर्मचारी यद्यपि सोचता है कि कार्यक्रम उसकी मर्जी के अनुकूल नहीं है फिर भी नेतृत्व के प्रभाव से वह उस कार्यक्रम को लागू करने में अपनी सारी शक्तियां लगा देता है। मुख्य कार्यपालिका अपने अधीनस्थों का कुशलतापूर्वक नेतृत्व तभी कर सकती है जब उसमें स्वयं में आत्म विश्वास और कर्तव्य भावना प्रबल हो। तभी वह अधीनस्थ कर्मचारियों के मन में यह बात बैठा सकता है कि एक साथ मिलकर प्रयास करने पर वे लक्ष्यों को शीघ्र ही प्राप्त कर सकेंगे।

5 तीक्ष्ण बुद्धि—मुख्य कार्यपालिका की तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्नता होनी चाहिए ताकि वह तात्कालिक आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक तथा अन्य उलझन समस्याओं का समाधान सोच सकेगी और जनता का समर्थन प्राप्त कर सकेगी। लोकमत को अपने पक्ष में बनाए रखने के लिए उसे प्रेस रेडियो टेलीविजन सिनेमा और प्रचार तथा प्रसार के अन्य साधनों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि जनता का उसमें विश्वास बना रहे।

6 हित समूहों से मिल-जुलकर काम करना—हित-समूह सामान्य कल्याण के उद्देश्य राजनीतिज्ञ के सामने अनेक समस्याएं पैदा कर देते हैं। कई बार ऐसा होता है कि हित समूहों द्वारा ऐसी माँगें प्रस्तुत की जाती हैं जो न केवल उनके स्वार्थ साधन की दृष्टि में बल्कि सभी के हित की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। अतः मुख्य कार्यपालिका को ऐसी माँगों का ध्यान रखना चाहिए और प्रभावशाली हित-समूहों से मिल-जुलकर कार्य करना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में यद्यपि मुख्य कार्यपालिका के गुणों की कोई निश्चित सूची नहीं बनाई जा सकती तथापि जैसा कि डा प्रभुदत्त शर्मा ने लिखा है—इसमें ये गुण अवश्य होने चाहिए—(1) कर्मचारी का व्यक्तित्व सबल और सन्तुलित हो अर्थात् उसमें बुद्धि कौशल दृढ़ता कर्म में रुचि तथा कार्य-क्षमता का समावेश हो। वह चिड़चिड़ापन अनावश्यक उत्साह के प्रदर्शन दुराग्रह एकपक्षीय चिन्तन आदि दोषों से मुक्त हो (2) उसमें नेतृत्व की क्षमता हो अर्थात् वह जन-कल्याण को पूरा करने और दूसरों को उत्साह दिलाने अनुयायियों के प्रति उदारता रखने तथा अपने विचारों और चिन्तन को भाषण या लेखन में अभिव्यक्त करने में सक्षम हो (3) उसमें प्रशासकीय योग्यता हो जिसका आशय है दूसरों से कुशलता तथा सम्पन्नतापूर्वक काम करने की क्षमता। अपने राजनीतिक प्रमुखों के साथ काम करने और उनके

रिचा । मे समन्वय रखने का गुण भी मुख्य कार्यपालिका की सफलता की कसौटी है। भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल और सुयोग्य प्रशासन चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने एक सफल प्रशासक के छः मौलिक गुणों का उल्लेख किया है जो संक्षेप में ये हैं—(1) वह चरित्रवान हो (2) उपयुक्त परामर्श को जानने और क्रियान्वयन के मामले में शीघ्र तथा म ी निर्णय लेने की क्षमता उसमें हो (3) वह अपने निर्णयों को लागू करने वाले अधीनस्थ कर्मचारियों के भीतर अधिकाधिक विश्वास जगा सके (4) लोगों में यह विश्वास जगा सके कि एक बार निर्णय लेने के उपरान्त वह उस निर्णय से विचलित नहीं होगा (5) वह सन्तुलित मस्तिष्क का हो एवं (6) वह ऐसा सुयोग्य हो कि विभिन्न स्तरों पर अधीनस्थ कर्मचारियों के भीतर सामाजिक उद्देश्य की महान् भावना भर सके।

कार्य का विभाजन

(Division of Work)

वर्तमान युग कार्य की दृष्टि से विशेषीकरण का युग है अर्थात् विशिष्ट कार्य के लिए विशेष प्रकार के ज्ञान अथवा तकनीकी व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यदि कार्य छोटे स्तर पर किया जाता है तब तो एक अथवा कुछ व्यक्ति ही सारे कार्य को एक साथ पूरा कर लेते हैं पर यदि कार्य बड़ी मात्रा में हो रहा है तो उसे करने के लिए एक विशेष प्रणाली विकसित की जाती है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण कार्य का केवल वही भाग पूरा करता है जिसमें वह दक्ष हो।

कार्य विभाजन अथवा विशेषीकरण को परिभाषित करते हुए डा. ह्वाइट ने लिखा है कि— *विशेषीकरण काम को विभाजित और उपविभाजित करने के लिए* उन कर्मचारियों को एक दूसरे से पृथक करने हेतु निरन्तर कार्य करता है जिनका सहयोग उन्हीं इकाइयों में उस लक्ष्य-प्राप्ति के लिए निरन्तर कार्य करने के लिए होता है जिनके लिए कि उनका अस्तित्व कायम है। लूथर गुलिक के अनुसार मनुष्य स्वभाव क्षमता और कौशल की दृष्टि से भिन्न होते हैं तथा विशेषीकरण द्वारा बहुत अधिक मात्रा में उत्पादन प्राप्त करते हैं। एक ही व्यक्ति एक समय में दो स्थानों पर कार्य नहीं कर सकता क्योंकि ज्ञान और कौशल का क्षेत्र इतना विशाल है कि व्यक्ति अपने जीवनकाल में इसके एक तुच्छ हिस्से से ज्यादा नहीं सीख सकता। दूसरे शब्दों में यह मानव प्रकृति समय और स्थान का प्रश्न है कि विशेषीकरण अथवा कार्य विभाजन क्या किया जाए ?[1]

1 *Ch t E E n* S p rv y R p b l ty d Auth ty Am r can M g m t A ci t Rese r h R p t N 30 *1957*

पद-सोपान या क्रमिक प्रक्रिया
(Hierarchy or Scalar Process)

सुचारु रूप से शासन सचालित करने के लिए व्यवस्थित ढग के सगठन की आवश्यकता होती है। समस्त प्रशासकीय कर्मचारियों को एक सगठन के अन्तर्गत काय करना होता है। एक कर्मचारी दूसरे कर्मचारी से सम्बन्धित रहता है। ऊपर से नीचे तक की एक शृंखला चलती रहती है। इसी शृंखला के सम्बन्ध में सामान्य प्रशासन शास्त्र के अन्तर्गत एक सिद्धान्त का निरूपण किया गया है जिसका नाम है पद-सोपान या क्रमिक प्रक्रिया का सिद्धान्त।

पद सोपान का सिद्धान्त

प्रोफेसर ह्वाइट के अनुसार पद-सोपान का अभिप्राय है सगठन के ढाचे में शिखर से तल तक उत्तरदायित्व के स्तरों द्वारा अधिकारी मतहत सम्बन्ध का विस्तृत प्रयोग किया जाता।[1] अन्य लथम में लिखा है, पद सोपान निम्न तथा उच्च व्यक्तियों का श्रेणीबद्ध रूप में एक व्यवस्थित ढाचा है। पद-सोपान अंग्रेजी शब्द हायरार्की (Hierarchy) का हिन्दी रूपान्तर है जिसका अर्थ होता है। निम्नतर पर उच्चतर का शासन अथवा नियन्त्रण परन्तु सगठन दृष्टि में इस शब्द का अभिप्राय एक ऐसे सगठन से होता है जो पदों के उत्तरोत्तर क्रम के अनुसार सोपान अथवा सीढ़ी की भांति सगठित किया जाए। जिस प्रकार सोपान अथवा सीढ़ी में एक के बाद दूसरा डण्डा होता है उसी प्रकार पद-सोपान में एक के बाद दूसरा पद होता है। इस उत्तरोत्तर पदक्रम में प्रत्येक निचला पद अथवा स्तर अपने से ऊपर के पद के तथा उस पद के माध्यम से उससे ऊपर के तथा इसी प्रकार सबसे ऊपर के पद अथवा पदों के अधीन होता है। विपरीत क्रम में सगठन के भीतर सत्ता का प्रवाहण, निर्देशन तथा नियन्त्रण सर्वोच्च पद से निम्नतम पद की ओर इसी प्रकार होता है अर्थात् उच्च पद से निम्न पद और निम्न से निम्नतर तथा निम्नतम पद तक। उत्तरोत्तर पदक्रम का सबसे अधिक मौलिक सिद्धान्त यह है कि ऊपर के पदाधिकारी कभी भी नीचे के अधिकारी के साथ सम्पर्क स्थापित करते समय मध्यस्थ पदाधिकारी की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसी प्रकार निम्न पदाधिकारी उच्चतर पदाधिकारियों के साथ सम्पर्क स्थापित करते समय मध्यस्थ पदाधिकारी की अवहेलना नहीं कर सकता। उच्चतर और निम्नतर पदाधिकारियों के मध्य सचार का माध्यम मध्यस्थ पदाधिकारी होता है। जिस प्रकार सीढ़ी पर चढ़ते अथवा सीढ़ी से उतरते समय बीच के डण्डे को लांघना खतरे से खाली नहीं होता उसी प्रकार प्रशासकीय पदसोपान में समुचित माध्यम के द्वारा (Through Proper Channel) का नियम सर्वोपरि माना जाता है तथा प्रत्येक अधिकारी अथवा कर्मचारी को समस्त आदेश उसके प्रथम उच्चाधिकारी के

1 Cm F & D mock p ct p 110

द्वारा तथा नीचे से ग्राने वाले समस्त प्रतिवेदन प्रार्थनापत्र सूचना व ग्राफ्ड इत्यादि प्रथम निम्न अधिकारी के द्वारा ही भेज जाने चाहिए।[1]

सगठन म पद सोपान का सिद्धान्त एक दूसरे नाम ग्रथात् क्रमिक प्रक्रिया (Scalar P ocess) के नाम से भी जाना जाता है। क्रमिक प्रक्रिया का ठीक-ठीक ग्रर्थ जेम्स मूनी (James Mooney) के शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

सगठन म क्रमिक सिद्धान्त का रूप वही होता है जिसे कभी-कभी पद सोपान का सिद्धान्त कहा जाता है परन्तु परिभाषा सम्बन्धी विभिन्नताग्रों से बचने के लिए यहाँ क्रमिक शब्द ही अधिमान्य है। क्रम का मतलब है चरणों की पंक्ति ग्रर्थात् श्रेणी बद्धता। सगठन म इसका ग्रर्थ है कत्तव्यों को श्रेणीबद्ध करना किन्तु विभिन्न कार्यों के ग्रनुसार नहीं बल्कि सत्ता तथा उसके तुल्य उत्तरदायित्व की मात्राग्रों के ग्रनुसार। सुविधा की दृष्टि से सगठन के रूप को हम क्रमिक शृंखला (Scalar Chain) कहेंगे। जब कभी हम कोई ऐसा सगठन पाते हैं चाहे वह दो व्यक्तियों का ही क्यों न हो जिसमें व्यक्ति उच्च तथा अधीनस्थ अथवा प्रवर तथा अवर (Superior and Subordinate) के रूप में सम्बन्धित होते हैं उसम क्रमिक सिद्धान्त वतमान होता है। यह क्रमिक शृंखला समन्वय की ऐसी व्यापक प्रक्रिया का निर्माण करती है जिसके द्वारा समन्वय करने वाली सर्वोच्च सत्ता सगठन के सम्पूर्ण ढाँचे म सक्रिय एवं प्रभावशाली हो जाती है।

सगठन के क्रमिक सिद्धान्त (Scalar Principle) की उत्पत्ति क्रम (Scale) शब्द से हुई है जिसका तात्पर्य चरणों अथवा सीढ़ियों की पंक्ति (A Series of Steps) ग्रर्थात् श्रेणीबद्ध (Graded) होने से है। पद-सोपान का सिद्धान्त एक सीढ़ी के समान है जिसका एक भाग सबसे ऊपर है और एक भाग सबसे नीचे होता है। ऊपर से उतरने वाले को प्रत्येक सीढ़ी पर से उतरना होगा तब कहीं वह नीचे तक पहुँच सकेगा। इसी प्रकार सर्वोच्च अधिकारी का ग्रादेश ऊपर से नीचे तक बीच में आने वाली अधिकारी रूपी सीढ़ियों से होकर गुजरेगा। इसी प्रकार जो कार्य नीचे से आरम्भ होगा वह एकदम किसी मध्यस्थ सीढ़ी को नहीं लाँघेगा बल्कि उसको भी इसी क्रम का ग्रनुगमन करना होगा। तात्पर्य यह है कि इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त काय उपयुक्त माध्यम द्वारा (Throu h Proper Channel) सचालित होने चाहिये। उदाहरण के लिए प्रशासकीय सगठन म सबसे ऊपर कार्यपालिका होती है। उसके अधीन विभिन्न प्रशासकीय विभागों के अध्यक्ष काय करते हैं। प्रशासकीय विभाग के अध्यक्ष के नीचे निदेशक और उप निदेशक आदि होते हैं। इनके अधीन अन्य कर्मचारी काय करते हैं। सबसे निचले कर्मचारी उचित माध्यम द्वारा ऊपर वाले अधिकारियों के ग्रादेश को क्रियान्वित करते हैं।

1 M P Sh m p t p 105

पद-सोपान सिद्धान्त का ढांचा और कार्य करने की पद्धति को हम निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं—
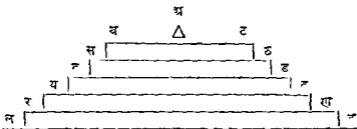
अ के अधीन ब कार्य करता है और ब के अधीन स । जब स अधिकारी द्वारा कोई आज्ञा जारी की जाती है तो वह ब के पास जाता है और फिर क्रमिक रूप से ल तक पहुंचती है । यदि अ को कोई आज्ञा द को देनी है तो वह ब स के माध्यम से प्रेषित होगी । अ इसको लांघकर द तक सीधा नहीं पहुंच सकता । इस प्रकार इस पद्धति में शृंखला के समान सत्ता ऊपर से नीचे तक संचालित होती है । इसी प्रकार त सीधा अ के पास किसी कार्य के लिए नहीं पहुंच सकता । उसे र य द स ब के माध्यम से होकर गुजरना होगा । इसी प्रकार अ के द्वारा दी गयी आज्ञा ट ठ ड ढ ण द्वारा होती हुई त तक पहुंचती है ।

पद सोपान पद्धति में पदों व अधिकारियों को उनकी सेवाओं के अनुरूप वर्गीकरण किया जाता है । यह वर्गीकरण पदों के कार्यों के आधार पर होता है । उन पदों व अधिकारियों को उसी वर्ग (Class) के अन्तर्गत रखा जाता है जिनके कार्य एक प्रकार के होते हैं । इस प्रकार के वर्गीकरण करने से सामान्य पद्धति वाले कर्मचारियों की नियुक्ति सरल हो जाती है । आज के युग में लोक-प्रशासन के अन्तर्गत सेवाओं का वर्गीकरण करना आवश्यक सा हो गया ।

आधुनिक समय में प्रशासनिक संगठन अत्यन्त ही जटिल होता जा रहा है और इसी कारण समस्त वर्गों एवं श्रेणियों की उचित व्यवस्था करनी पड़ती है । पदों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है कि कौन से पदाधिकारी किस विभाग वर्ग में रखे जाएं और कौन से दूसरे वर्ग में । इस कार्य का क्षेत्र प्रायः अव्यावहारिक व अत्यन्त ही जटिल है ।

पद-सोपान शासन के प्रत्येक विभाग में पाया जाता है । उदाहरणार्थ हमारे देश के किसी भी राज्य में पुलिस प्रशासन के अन्तर्गत पद-सोपान निम्न प्रकार से काम करता है ।

पुलिस प्रशासन के लिए प्रत्येक राज्य एक निकाय है जिसका प्रधान इन्सपेक्टर जनरल आफ पुलिस (I G P) होता है ।

प्रदेश	पुलिस महाधिपति (I G P)
क्षत्र	पुलिस उपमहाधिपति (D I G P)
जिले	जिला पुलिस अधीक्षक (D S P) (S S P)
उप मण्डल	सहायक पुलिस अधीक्षक/उप पुलिस अधीक्षक/ मण्डल अधिकारी (A S P/Dy S P/C O)
पुलिस स्टशन	इसपेक्टर/सहायक इसपेक्टर
बाहरी चौकिया	हैड कांस्टेबल
	कास्टेबल

पुलिस प्रशासन म पद-सोपान ऊपर से नीचे तक इस प्रकार होता है इसपेक्टर जनरल आफ पुलिस डिप्टी इस्पेक्टर जनरल पुलिस पुलिस अधीक्षक सहायक पुलिस अधीक्षक इसपेक्टर सहायक इस्पक्टर हैड कान्स्टेबल कांस्टेबल।

पद-सोपान की विशेषताए

पद-सोपान म मुख्यत निम्नलिखित तीन विशेषताए पायी जाती हैं—

1 नतृत्व (Leadership)
2 सत्ता का प्रत्यायोजन (Delegation of Authority)
3 कार्यात्मक परिभाषा (Functional Definition)

नेतृत्व (Leadership) स आशय यह है कि शीर्षस्थ पदाधिकारी पूरे प्रशासकीय सगठन का नतृत्व करता है अधीनस्थो को आवश्यक आदेश और निर्देश देता है उनका निर्देशन और नियन्त्रण करता है। सत्ता के प्रत्यायोजन (Delegation of Authority) की प्रक्रिया द्वारा उच्च प्रधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियो को अपनी कुछ शक्तियाँ हस्तान्तरित या प्रत्यायोजित कर देता है। इस अधिकार अपण भी कहा जाता है। कार्यात्मक परिभाषा (Functional Definition) का अर्थ है—कार्यों की स्पष्ट व्याख्या। कार्यों के सफल सचालन के लिए यह आवश्यक होता है कि उच्चाधिकारी प्रत्यायोजित शक्तियो का सीमाकन भी निश्चित कर दे ताकि किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न हो।

पद सोपान का वर्गीकरण

एक औपचारिक सगठन म पद-सोपान मूल रूप स एक रचना स बधी मान्यता है जिसम रोजगार स्थितिया प्रक्रियाए व्यवहार आदि प्रभावशाली होते हैं। यह व्यक्तियो से नहीं वरन् वस्तुओ स और कार्यों स सम्बन्ध रखती है। वह वक्तव्या स्थितियो एव कार्यों के आधार पर स्थापित की जाती है। ढाचे सम्बन्धी पद सोपान म व्यक्ति गौण होते है व इसम अपनी इच्छा एव आवश्यकता के आधार पर फिट नहीं होते वरन् स्वय पद सोपान की आवश्यकता एव माँग के अनुसार होते हैं। ढाचे कई प्रकार के होते हैं और इसी प्रकार उनम स्थित औपचारिक पद सोपान भी कई

प्रकार का होता है। फिफनर तथा शेरवुड (Pfiffner and Sherwood) ने औपचारिक पद सोपान को चार भागों में विभाजित किया है—

1 कार्यात्मक पद सोपान (Job task Hierarchy)—प्रबन्ध से सम्बन्धित अधिकांश साहित्य में इस प्रकार के पद सोपान को स्वीकार किया जाता है। इस दृष्टि से हम व्यक्तियों के सम्बन्ध में स रूप में सोचते हैं कि वे विभिन्न प्रकार के काय कर रहे हैं। यहां श्रम का विभाजन होता है। छोटे व्यापारों में तथा प्रारम्भिक पद सोपानों में ये काय स्वाभाविक रूप से विकसित होते थे और उन्हें लिखित अथवा प्रकाशित कर औपचारिक नहीं बनाया जाता था। ज्यों ज्यों प्रबन्ध सम्थाएं बनी तथा अधिक जटिल होती गई उनमें दो नवीन विकास हुए—(i) कत्तव्यों का वर्गीकरण तथा (ii) नए काय तथा स्थितियों की स्थापना के लिए शक्ति का केन्द्रीकरण।

लोक प्रशासन में जब प्रशासन पर राजनैतिक प्रभाव पड़े तथा वेतन के सम्बन्ध में पक्षपात किया गया तो औपचारिक काय के पद-सोपान की स्थापना आवश्यक हो गई। यदि एक ही भवन में एक सा काय करने वाले दो व्यक्तियों में से एक दो सौ रुपये पाता है और दूसरा तीन सौ रुपये तो यह स्वाभाविक है कि असन्तोष एवं विरोध जन्म लेगा। फलत समान काय के लिए समान वेतन का नारा जोर पकड़ने लगा। इसलिए स्थिति का वर्गीकरण कर दिया गया। आज की सुप्रशासित सरकारी एजेन्सियों में स्थिति वर्गीकरण की प्रभावशाली व्यवस्था है जिसके अनुसार जिन कर्मचारियों के समान काय एवं उत्तरदायित्व होते हैं उनको काय की श्रेणियों में संगठित कर दिया जाता है। प्रत्येक कायकर्ता चाहे वह मण्डल का प्रधान हो अथवा कनिष्ठ लिपिक ऐसे काय करेगा जो उसके वर्गीकृत कार्यों के अनुरूप होंगे।

नागरिक सेवा के विशेष नियमों के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने वर्ग के बाहर के कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता। काय का पद सोपान एक प्रकार से ढांचे के पद सोपान का ही एक संस्करण है। कार्य का वर्णन उत्तरदायित्वों का स्पष्ट करता है तथा पद सोपान के ढांचे को कार्यालय से अभिकृत बनाता है। जब इस प्रकार के पद सोपान का अध्ययन किया जाता है तो वह उस व्यक्ति का अध्ययन नहीं होता वरन् पद का अध्ययन होता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि प्रबन्ध प्रक्रिया में व्यक्तिगत कुशलता एवं ज्ञान की अवहेलना की जाती है। जब व्यक्तियों का चयन किया जाता है तथा उनको एक पद विशेष पर नियुक्त किया जाता है उस समय उसकी विशेषताओं को ध्यान में रखा जाता है। कभी कभी स्वयं व्यक्ति भी अपने कार्यों एवं कत्तव्यों को बदल लेता है।

2 प्रतिष्ठा का पद सोपान (The Hierarchy of Rank)—प्रतिष्ठा का पद-सोपान एक योग्य अधिकारी वर्ग की ओर संकेत करता है। इसका सर्वाधिक

स्पष्ट उदाहरण सेना में प्राप्त होता है। नागरिक नौकरशाही में भी इसके उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं जैसे संयुक्तराज्य अमेरिका में विदेश सेवा, नगरपालिका पुलिस विभाग और ब्रिटिश प्रशासकीय वर्ग। प्रतिष्ठा का पद-सोपान कार्य के पद सोपान से भिन्न होता है क्योंकि स्तर किसी विशेष कार्य से बंधा हुआ नहीं रहता। उदाहरण के लिए एक कर्नल कर्नल ही रहता है चाहे वह दस्ते सेना को आदेश दे रहा हो अथवा वाशिंगटन बैठा हुआ कागजों में सर खपा रहा था। वह तब तक कर्नल बना रहेगा जब तक कि वह या तो ब्रिगेडियर न बन जाए अथवा सेवा निवृत्त न हो जाए। कार्य का पद-सोपान व्यक्ति के कार्यों पर अधिक ध्यान देता है जबकि प्रतिष्ठा के पद सोपान में व्यक्ति के स्तर वेतन एवं विशेष अधिकारों की दृष्टि में रखा जाता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि प्रतिष्ठा के पद सोपान में कार्य अथवा उत्तरदायित्व के स्तर से किसी प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं होता। प्रतिष्ठा की मान्यता अधिकांश योरोपीय नागरिक सेवा व्यवस्थाओं की विशेषता है।

3 कुशलता का पद सोपान (The Hierarchy of Skills)—एक संगठन कुशलताओं के पद सोपान पर भी आधारित रहता है। कर्मचारी वर्ग के प्रशासन के लिए कार्य की व्याख्या की जाती है उसमें प्रत्येक स्थिति के लिए आवश्यक प्रशिक्षण एवं अनुभव का भी उल्लेख रहता है। प्रत्येक पद सोपान के शीर्ष स्तर पर ऐसे कार्य होते हैं जिनमें प्रशासकीय कुशलता की आवश्यकता होती है जैसे—नियोजन, जन सम्पर्क तथा समन्वय आदि। ये सभी सामान्यता (Generalist) की विशेषताएँ होती हैं जो जंगल को उसके पूर्णरूप में देख सकता है। वह विशेष वृक्षों को भी देखता है किन्तु केवल एक इकाई के रूप में। वह दूसरे के कार्यों को उच्च स्तर पर संगठित करने की योग्यता रखता है। वह एक वकील, इंजीनियर, रसायनशास्त्री आदि का व्यावसायिक ज्ञान भी रख सकता है किन्तु एक प्रशासक के रूप में उसका कर्त्तव्य इस पर निर्भर नहीं करता।

प्रशासक के नीचे कार्यवाहक प्रबन्धकों का पद होता है जिन्हें कार्यपालिका कहा जा सकता है। वे लौट के सुपरिन्टेन्डेन्ट, सम्भाग के अध्यक्ष तथा जनरल फोरमैन होते हैं। ये लोग भी समन्वयकर्त्ता होते हैं किन्तु इनका लक्ष्य प्रतिदिन के उत्पादन का निरीक्षण करना होता है न कि उच्च नीतियों का निर्धारण। उनके बाद प्रतिदिन के कार्य के तात्कालिक निरीक्षक होते हैं।

इस प्रबन्धक योग्यता के पद सोपान के अतिरिक्त व्यावसायिक एवं तकनीकी कुशलता का पद सोपान भी होता है। एक औद्योगिक संगठन में शीर्ष स्तर पर अनुसन्धानकर्त्ता वैज्ञानिक होते हैं। उनके बाद उत्पादन इंजीनियर, प्रबन्ध इंजीनियर तथा अनेक कार्यवाहक विशेषज्ञ जैसे—लेखापाल, सांख्यिकीकर्त्ता आदि होते हैं। ये

योग्यताएं कॉलेज के प्रशिक्षण पर आधारित रहती हैं। तकनीकी कुशलता में भी अनेक परिश्रम होते हैं तथा यह मजदूर तक विस्तृत होती है।

यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि औपचारिक संगठन में कुशलताओं के परिमापन पर इस कारण जोर दिया जाता है क्योंकि यह कार्य की सम्पन्नता के लिए आवश्यक होता है। व्यक्ति एक कार्य के लिए इस कारण नियुक्त किया जाता है क्योंकि उसमें तत्सम्बन्धी योग्यताएं हैं अथवा वह उन्हें एक उचित समय में प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है। आज बड़े स्तर के उत्पादन के युग में हाथ के काम की अपेक्षा शोध कार्यों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

4 वेतन का पद सोपान (Pay Hierarchy)—बड़े स्तर के संगठनों में वेतन का पद-सोपान होना आवश्यक है। वेतन तथा पारिश्रमिक प्रशासन अपने आप में एक विशेषता बन गया है जिसके लिए प्रशिक्षित एवं अनुभवी विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता होती है। इस प्रशासन ने वैज्ञानिक तरीके के कुछ तत्वों को अपना लिया है। सांख्यिकी दृष्टिकोण भी अपनाया जाता है। वेतन के पद सोपान में धन केन्द्रीय वस्तु होता है।

पद सोपान पद्धति का मूल्यांकन (गुण दोष)

पद-सोपान सिद्धान्त जैसा कि ऊपर ने लिखा है संगठन का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है। यद्यपि बाह्य दृष्टि से नियामकीय आयोग स्थानीय निकाय और अन्य स्वतन्त्र प्रशासकीय निकाय किसी पद-सोपान का अंग नहीं होते और इसलिए उन्हें इस नियम का अपवाद माना जा सकता है तथापि उनकी आन्तरिक संरचना पद सोपान सिद्धान्त के आधार पर ही संयोजित होती है। पद सोपान सिद्धान्त की सार्वभौमिकता के मूल में इसके निम्नलिखित लाभ या गुण होते हैं—

1 जैसा कि डा एम पी शर्मा ने लिखा है—इस सिद्धान्त के द्वारा ही कार्य विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले संगठन की विविध इकाइयों का समाकलन अथवा एकीकरण किया जाता है। यही वह धागा है जिसके द्वारा विभिन्न अंगों को एक साथ पिरोया जाता है। कोई भी संगठन उस समय तक प्रभावशाली नहीं हो सकता अथवा सामूहिक कृत्य का संयोजन नहीं कर सकता जब तक कि उसकी विविध इकाइयों को एक सुसम्बद्ध समूह में समाकलित अथवा एकीकृत न किया जाए। यही कारण है कि पद-सोपान सिद्धान्त समस्त प्रकार के संगठनों के लिए सार्वभौमिक रूप से अनिवार्य है। इसका सबसे पहला और सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह सिद्धान्त संगठनात्मक समाकलन तथा सामंजस्य का उपकरण है। मुख्य कार्यपालिका एक के बाद एक जंजीर की कड़ियों के समान प्रत्येक कार्य से सम्बद्ध रहती है।

2 पद-सोपान सत्ता तथा उत्तरदायित्व के प्रत्यायोजन (Delegation) के सिद्धान्त पर आधारित होता है अतः उसी के अनुसार अनेक निर्णायक केन्द्रों का

स्थापना कर ली जाती है। किसी एक व्यक्ति अथवा केन्द्र पर काम का अधिक भार अथवा केन्द्रीकरण नहीं होता। विभाग का अध्यक्ष स्वयं ही प्रत्येक निर्णय करने की अनिवार्यता से मुक्त हो जाता है।

3 किसी संगठन के बड़े होने और उसके कार्य के दूर दूर तक फैले होने पर पद सोपान के क्रम के द्वारा ही केन्द्र तथा संगठन के दूरस्थ भागों में सम्बन्ध कायम रखा जा सकता है। इस प्रकार सम्पूर्ण विभाग प्रभावपूर्ण रीति से कार्य करने के लिए एक सूत्र में बंध जाता है।

4 क्रमिक व्यवस्था (Scalar System) उचित मार्ग द्वारा (Through Proper Channel) के सिद्धान्त की स्थापना करती है। यह सर्वोच्च अधिकारी का समय बचाती है। अनेक बातों का निर्णय उसके पास तक पहुंचने से पूर्व ही कर लिया जाता है। उचित मार्ग द्वारा अथवा समुचित माध्यम का सिद्धान्त इस बात का आश्वासन है कि प्रशासकीय प्रक्रिया में छोटे रास्ते (Short cuts) नहीं खोजे जाएँगे अर्थात् मध्यवर्ती कड़ियों की उपेक्षा नहीं की जाएगी।

5 क्रमिक व्यवस्था में आदेश की एकता (Unity of Command) का सिद्धान्त पूर्णत लागू होता है। एक व्यक्ति का केवल एक ही तत्काल उच्च अधिकारी (Immediate Superior) होगा जिससे वह आज्ञाएं प्राप्त करेगा।

6 क्रमिक सिद्धान्त संगठन के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के सापेक्ष उत्तरदायित्वों का स्पष्टीकरण करता है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट होती है कि कौन किसके अधीन है और इस प्रकार किसी प्रकार के भ्रम की सम्भावना नहीं रहती। पाल एच एपलबी के अनुसार के पद सोपान वह साधन है जिससे स्रोतों का आनुपातिक प्रयोग किया जाता है कार्यकर्त्ताओं का चुनाव किया जाता है उनको कार्य दिया जाता है और इन सब बातों के फलस्वरूप प्रवतन को गति प्राप्त होती उसकी समीक्षा की जाती है तथा उसमें संशोधन किए जाते हैं।

पद-सोपान सिद्धान्त निर्दोष नहीं है। लोक प्रशासन के विद्वानों ने इस सिद्धान्त के कुछ मुख्य दोषों की गणना निम्न प्रकार की है—

1 पद सोपान पद्धति के कारण कार्य के निपटाने में अनिवार्यत देरी होती है। इस व्यवस्था की मूल अवधारणा यह है कि प्रत्येक प्रस्ताव को क्रमिक सोपान के प्रत्येक पद से होकर ऊपर जाना चाहिए तथा वहाँ से स्वीकृति मिलने पर क्रियान्वयन के लिए पुन उस उत्तरोत्तर क्रम से नीचे की ओर अवतरित होना चाहिए। समुचित माध्यम के कठोर नियम के अनुसार प्रत्येक प्रस्ताव और आदेश को अनेक स्थान में अनेक सीढ़ियों से होकर गुजरना पड़ता है। इसमें कई दिन सप्ताह अथवा महीना लग सकते हैं।

2 पद-सोपान पद्धति के अंतर्गत लाल फीताशाही (Red Tapism) और नौकरशाही पनपती है।

3 पद सोपान के अगोबद्ध सिद्धात का उल्लघन होता है। किसी मध्यस्थ अधिकारी को उपेक्षा कर काम करवा लिया जाता है तो इसमे अनियमितता और असन्तोष उत्पन्न होता है। जिस अधिकारी से पास आर्डर नहीं आता वह इस बारे मे कुछ क्रुद्ध-सा होता है और साथ ही यह भी सोचता है कि मेरे अधिकार का उल्लघन क्यो किया गया।

4 एक बडा दोष यह है—जब अ एक-स्म स म सीधा सम्पर्क स्थापित करे व का उस विषय काय के सम्बन्ध मे अवगत कराया जाना आवश्यक है। कई बार अवगत कराने म अनियमितता आ जाती है तो फिर अन्य काय के बिगडने की सम्भावना रहती है क्योकि व असन्तुष्ट हो जाता है। आगे वह अपने अधिकारों के लिए जागरूक रहेगा और कोई काम इस तरह नहीं होने देगा।

5 पद सोपान पद्धति के अन्तगत सगठन औपचारिक (Formal) सम्बन्धो पर ही आधारित होता है जिसस उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। अनौपचारिक सम्बन्धो के विकसित न होने स अनेक जटिल समस्याए सामने आती है।

पद-सोपान के गुण दोषो का मूल्याकन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि इस पद्धति म गुण अधिक हैं दोष कम। पद-सोपान के दोषो से बचने के दो मुख्य उपाय हैं—प्रथम जैसा कि फयोल (Fayol) ने लिखा है कि पद-सोपान की औपचारिक रेखाओ के आर पार पुलो का निर्माण कर दिया जाना चाहिए ताकि एक विभाग अथवा सम्भाग के अधीनस्थ अधिकारी दूसरे विभाग अथवा सम्भाग के अपने सम स्तरीय अधिकारियो से सीधा सम्पर्क रख सकें। द्वितीय एक ही विभाग के दो अधिकारी अपने मध्यस्थ द्वारा सम्पर्क स्थापित न कर सीधी बाता भी कर सकते हैं किन्तु ऐसा करने स पहले दो बातो का ध्यान रखना होगा—प्रथम दोनो के बीच विचारो के आदान प्रदान तथा निर्णयो मे मध्यस्थ अधिकारी को सूचित रखना होगा। दूसरे ऐसा करते समय उस बीच के अधिकारी का पूरा विश्वास प्राप्त होना चाहिए। इन दोनो शर्तों के पूरी हो जाने पर पद-सोपान की व्यवस्था से उत्पन्न होने वाली परेशानियाँ बहुत कुछ सीमा तक कम अथवा समाप्त की जा सकती हैं और पद-सोपान की व्यवस्था को भी कायम रखा जा सकता है। वस्तुत हम यह मानकर चलना चाहिए कि पद-सोपान या क्रमिक व्यवस्था स्वय कोई अन्तिम उद्देश्य नहीं है। यह तो सगठन अन्तगत कार्यात्मक सह-सम्बन्ध (Functional Co relation) स्थापित करने का एक माध्यम है। अत सगठन के शीघ्र एव कुशल काय-सचालन के लिए अनेक बार अन्य मार्गों की स्थापना की जाती है जिसस काय सुचारू रूप से शीघ्र सम्पन्न होता है।

नियन्त्रण क्षेत्र
(Span of Control)

सगठन अथवा प्रशासन म नियन्त्रण की आवश्यकता स्वयसिद्ध है। बिना

नियन्त्रण के कोई संगठन अथवा कोई भी प्रशासन समुचित रूप से सचालित नहीं किया जा सकता। नियन्त्रण की व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन अथवा प्रशासन की इकाई के कर्मचारी दिए गए आदेशों निर्देशों और नियमों के अनुरूप काम कर रहे हैं अथवा नहीं। यदि इस प्रकार की देखभाल न की जाए तो स्वाभाविक है कि संगठन अथवा कार्यालय का काम अव्यवस्थित तथा शिथिल हो जाएगा।

नियन्त्रण का क्षेत्र (Span of Control) का अर्थ

नियन्त्रण के सन्दर्भ में स्वाभाविक रूप से नियन्त्रण के विस्तार या क्षेत्र का प्रश्न उठता है। एक उच्च अधिकारी कितने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य का क्षमता पूर्वक अधीक्षण कर सकता है यह नियन्त्रण क्षेत्र की समस्या है दूसरे शब्दों में नियन्त्रण क्षेत्र से हमारा अभिप्राय अधीनस्थ कर्मचारियों की उस संख्या से है जिसके कार्यों का अधीक्षण नियन्त्रण एक अधिकारी क्षमतापूर्वक कर सकता है। पारिभाषिक रूप में जैसा कि डिमाक (Dimock) का कथन है नियन्त्रण का विस्तार किसी उद्यम के मुख्य निष्पादक तथा उसके मुख्य साथी कार्यकर्ता (Principal fellow offices) के बीच सीधे एवं स्वाभाविक संचार की संख्या एवं क्षेत्र है।

नियन्त्रण विस्तार के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी अधिकारी के नियन्त्रण का क्षेत्र केवल उतना ही रखना चाहिए जितना वह कुशलतापूर्वक सम्भाल सके। अधिकारी की सामर्थ्य से अधिक या कम क्षेत्र का होना उचित नहीं है। मानवीय ध्यान क्षेत्र (*Span of attention*) सीमित होता है अतः कोई भी एक पदाधिकारी कर्मचारियों की असीमित संख्या का भली भांति निरीक्षण नहीं कर सकता। जान डी मिलेट ने ठीक ही लिखा है कि अनुभव और मनोवैज्ञानिक अनुसंधान दोनों इस बात की पुष्टि करते हैं कि किसी भी प्रशासकीय अधिकारी की पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा रहती है। यदि अधिकारी की सामर्थ्य से कम नियन्त्रण क्षेत्र रखा जाए तो वह भी अनुचित है क्योंकि इसका अर्थ है कि अधिकारी की क्षमताओं और सामर्थ्य का पूरा लाभ नहीं उठाया जा रहा है।

नियन्त्रण क्षेत्र की सीमा क्या है ?

अब यह प्रश्न उठता है कि नियन्त्रण क्षेत्र की सीमा कितनी होनी चाहिए। इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। जहाँ नियन्त्रण क्षेत्र का असन्तुलित विस्तार हानिकारक है वहाँ क्षेत्र का बहुत सीमित होना भी बुरा है। हेनरी फयाल (Henry Fayol) का मत है कि एक बड़े उद्यम के शिखर स्थित प्रबन्धक के नीचे पाँच या छः से अधिक अधीनस्थ कर्मचारी नहीं होने चाहिए। एल उर्विक (L Urwick) का विचार है कि उच्च पदाधिकारियों के लिए आदर्श संख्या चार होगी और निम्न स्तर के कर्मचारियों के लिए आठ या बारह। ग्रेक्यूनस (Graicunas) ने लिखा है कि कोई उच्च अधिकारी पाँच अथवा छः अधीनस्थ कर्मचारियों से अधिक काय

का उचित निरीक्षण नहीं कर सकता। मनिक सगठन के सम्बन्ध म सर हमिल्टन न एक बार कहा था एक औसत मानव मस्तिष्क तीन स छ अन्य मस्तिष्कों का ही प्रभावशाली निरीक्षण कर सकता है।

स्पष्ट है कि नियन्त्रण विस्तार की मात्रा के सम्बन्ध म कोई एक सुनिश्चित मत नहीं हो सकता। कमचारियों की आदश सख्या की खोज करना जिस पर कि एक उच्च अधिकारी नियन्त्रण रखने म सक्षम हो निरथक है। प्रशासन की गतिशीलता ही प्रशासन की सफलता की परिचायक है यह बहुत कुछ शीषस्थ अधिकारी की योग्यता नतृत्व कुशलता और प्रशासनिक क्षमता पर निभर करता है कि वह कितने अधीनस्थ कमचारियों को अपने नियन्त्रण म रख सकता है। फिर भी विद्वान् यह निश्चित करने के लिए अवश्य प्रयत्नशील हैं कि नियन्त्रण के विस्तार क्षेत्र की सम्भावना क्या होनी चाहिए। सामान्य सहमति इस बात पर पाई जाती है कि—

(क) प्रत्यक स्तर पर एक निश्चित नियन्त्रण क्षेत्र होता है और यदि इस सीमा का उल्लघन किया जाए तो काय के अवरुद्ध होने की सम्भावना उत्पन्न हो सकती है।

(ख) नियन्त्रण क्षत्र म चार तत्त्वों के कारण विविधता उत्पन्न होती है— काय (Function) व्यक्तित्व (Personality) काल या समय (Time) और स्थान (Space or Place)।

नियन्त्रण क्षत्र निर्धारित करने वाले तत्त्व

नियन्त्रण को हम किसी कठोर विस्तार क्षत्र की सीमा म नहीं बाध सकते। नियन्त्रण का क्षेत्र कितना होगा अर्थात् एक अधिकारी कितने कमचारियों पर प्रभावशाली नियन्त्रण रख सकेगा यह बहुत कुछ उपयुक्त चार तत्त्वों पर निभर करता है अत इन तत्त्वों का विवेचन आवश्यक है—

1/ काय (Function)—इसका अथ है काय की प्रकृति अर्थात् किस प्रकार के काय का नियन्त्रण किया जाना है और अधिकारी जिन व्यक्तियों का नियन्त्रण कर रहा है उनके कार्यों की प्रवत्ति उसके अपने कार्यों की प्रकृति के समान ही है अथवा नहीं। यदि कार्यों की प्रकृति समान है तो नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है क्योंकि अधिकारी की नियन्त्रण क्षमता बढ जाती है।

2/ व्यक्तित्व (Personality)—इसका अभिप्राय अधिकारी या अधीक्षक और सम्बन्धित सहायकों की क्षमता से है। किसी भी सगठन म व्यक्तित्व एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है। यदि अधीक्षक या नियन्त्रक का व्यक्तित्व बहुत ऊचा है उसम नतृत्व की असाधारण क्षमता है उसके काय करने की गति तीव्र है उसका प्रशासनिक ज्ञान बहुत बढा चढा है तो वह कमचारियों की काफी बडी सख्या पर नियन्त्रण रख सकता है। निजी प्रशासन म एस उदाहरणों की कमी नहीं है।

3 काल या समय (Time)—इसका अभिप्राय सगठन की आयु से है। यदि सगठन पुराना और जमा हुआ है तो नियन्त्रण का क्षेत्र सरलता से विस्तृत किया जा सकता है। पुराने और सुव्यवस्थित सगठन की तुलना में नए सगठनो में परम्पराओं का अभाव होता है और उच्च अधिकारियों के सामने नई-नई समस्याए उत्पन्न होती रहती है। अत स्वभावत नए सगठन मे नियन्त्रण का कार्य पुराने सुव्यवस्थित सगठन की अपेक्षा कम तीव्र होता है।

4 स्थान (Place or Space)—इसका आशय यह है कि अधीनस्थ कर्मचारियो के कार्यालय भौगोलिक दृष्टि से एक ही स्थान या भवन में केन्द्रित है अथवा दूर दूर तक फैले हुए हैं। यदि एक ही स्थान में केन्द्रित हैं तो नियन्त्रण क्षेत्र का विस्तार करना उचित होगा पर यदि दूर दूर स्थित हैं तो नियन्त्रण का क्षेत्र छोटा रखना ही उपयोगी होगा। जहाँ सहायक अधिकारी मुख्य अधिकारी या अधीक्षक के स्थान पर ही कार्य करते है वहाँ परीक्षण एव नियन्त्रण सरल और तीव्र होता है दूर होने पर ऐसा नही होता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नियन्त्रण का कार्यक्षेत्र परिवर्तित होता रहता है और इस विभिन्नता के मूल में उपर्युक्त चारो तत्व महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामान्यतया नियन्त्रण क्षेत्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्तो पर सहमति पाई गई है—

(i) योग्यतम व्यक्तियो में भी नियन्त्रण और निरीक्षण करने की शक्ति सीमित होती है असीमित क्षमता कहीं नहीं पायी जाती।

(ii) उत्तरदायित्व जितना बड़ा होता है सक्रिय नियन्त्रण का क्षेत्र उतना ही सकुचित होता है।

(iii) समान कार्य करने वाले कर्मचारियो के मामले में नियन्त्रण क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो जाता है।

नियन्त्रण का विस्तार क्षेत्र निश्चित करने मे बड़े विवेक से काम लेना चाहिए। सकलर हडसन (Seckler Hudson) के अनुसार यदि नियन्त्रण का क्षेत्र अत्यन्त सीमित कर दिया गया तो उससे भी कई खतरे उत्पन्न हो सकते हैं। जितने भी प्रतिवेदन आएगे उनका विस्तार से निरीक्षण किया जाएगा तथा अधीनस्थो को उनकी क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग करने के लिए प्रोत्साहन दिया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त छोटे नियन्त्रण क्षेत्र का अर्थ होता है आज्ञा देने वाला की मात्रा बढ़ जायगी। वास्तव में यह बहुत कठिन है कि नियन्त्रण के क्षेत्र की एक आदर्श सख्या तय की जाए। पिछले लगभग 25 वर्षों से लोकप्रशासन के लेखको ने यह सन्देह प्रकट करना प्रारम्भ किया है कि क्या नियन्त्रण के क्षेत्र का सिद्धान्त सगठन की प्रक्रिया के वास्तविक रूप को समझने में सहायता कर सकता है। सन् 1946 में हर्बर्ट साइमन का प्रसिद्ध निबन्ध (The Proverbs of Administration) इन प्रश्नो को उभारने का एक सफल एव प्रभावशाली प्रयास माना जाता है।

नियन्त्रण का क्षेत्र और पद सोपान
(Span of Control and Hierarchy)

नियन्त्रण के क्षेत्र का पद-सोपान की व्यवस्था में गहरा सम्बन्ध है। यह उसकी मान्यता पर पर्याप्त प्रभाव डालता है। एक संगठन के पिरामिड में कितने स्तर होने चाहिए यह बात भी इसी सिद्धान्त के आधार पर तय की जा सकती है। कहा जाता है कि एक माचिस रखने की एक गैंद के समान है। यदि आप इस एक जगह डालें तो यह उछलकर दूसरी जगह जा पहुँचेगी। इस प्रकार यदि बीस विभागों के अध्यक्ष मिलकर एक ही अध्यक्ष को अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करेंगे तो संगठन अवश्य ही चौरस बन जाएगा। यदि दूसरी ओर अध्यक्ष को केवल तीन व्यक्ति प्रतिवेदन दें और अन्य लोग इन तीनों को रिपोर्ट प्रस्तुत करें तो नीचे में अधिक स्तर उत्पन्न होते हैं। यह कहा जाता है कि ऐसा होने पर सम्पर्क की समस्या कठिन हो जाती है क्योंकि पहले उदाहरण में तो अपने बॉस से बात कर सकते थे और दूसरे उदाहरण में सत्रह व्यक्ति किसी के माध्यम से बातें करते हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि परेशानियाँ बढ़ जाएँगी। इस सिद्धान्त की सभी हालतों का वर्णन करते हुए सिम्नर तथा गारबुड ने लिखा है कि इस प्रकार इसके लाभों के बावजूद नियन्त्रण का क्षेत्र प्रशासकीय संस्कृति में इतना घिरा हुआ है कि संगठन की प्रत्येक पुस्तक में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

नियन्त्रण के क्षेत्र पर साइमन के विचार
(Simon on Span of Control)

हर्बर्ट साइमन के मतानुसार नियन्त्रण के क्षेत्र से यह समझा जाता है कि एक प्रशासक को सीधी रिपोर्ट देने वाले अधीनस्थों की संख्या कम कर दी जाए तो प्रशासकीय कार्यकुशलता बढ़ जाएगी। इस विचार के समर्थन में अनेक तर्क दिए जाते हैं। साइमन इन सर्वविदित तर्कों को गिनाना आवश्यक समझ कर लोक प्रशासन की एक अन्य कहावत प्रस्तुत करते हैं जो इतनी प्रसिद्ध न होते हुए भी नियन्त्रण के क्षेत्र से विपरीत है और उतनी ही स्वीकार करने योग्य है। यह कहावत इस प्रकार है—

> एक विषय कार्यरूप में परिणत होने से पूर्व जिन संगठनात्मक स्तरों में होकर गुजरता है उनकी संख्या कम से कम रखने पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ती है।

अनेक प्रशासकीय विश्लेषणकर्ता जब सरल प्रक्रियाओं की खोज करते हैं तो उन्हें इस दूसरी कहावत में उनका पर्याप्त निर्देशन प्राप्त होता है। फिर भी इस सिद्धान्त के जो परिणाम होते हैं वे नियन्त्रण के क्षेत्र से ठीक विपरीत जाते हैं। ये परिणाम हैं—आदेश की एकता और विशेषीकरण का सिद्धान्त। नियन्त्रण के क्षेत्र को सीमित करना तथा संगठन के स्तरों को कम करना दो विरोधी चीजें हैं। एक होने से दूसरे पर विरोधात्मक प्रभाव पड़ता है।

अन्तर्विरोध यह है कि एक बड़े संगठन में जहाँ सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्ध रहते हैं यदि नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित कर दिया जाए तो इससे लालफीताशाही बढ़ जायेगी क्योंकि संगठन के सदस्यों को प्रत्येक सम्पर्क तब तक आगे बढ़ता चला जाएगा जब तक उन्हें समान उच्चता प्राप्त न हो जाए। यदि संगठन काफी बड़ा है तो किसी भी कार्य पर निर्णय होने के लिए उसे ऊपर के कुछ स्तरों में होकर गुजरना पड़ेगा और इसी प्रकार आज्ञाओं एवं अनुदेशों को भी नीचे कई स्तरों में से निकलना होगा। यह एक जटिल तथा समय लगाने वाली प्रक्रिया है।

इस व्यवस्था का विकल्प यह कि प्रत्येक अधिकारी की आज्ञा के अधीन जितने व्यक्ति हैं उनकी संख्या बढ़ा दी जाए ताकि पिरामिड के ऊपर तक पहुँचने का मार्ग छोटा हो जाए क्योंकि बीच के स्तर कम हो जाएँगे किन्तु इसमें भी कठिनाई है। यदि एक अधिकारी को बहुत अधिक कर्मचारियों का निरीक्षण करना पड़ता है तो उन पर उसका नियन्त्रण कमजोर हो जायेगा। अभी तक लोक प्रशासन के विद्वानों ने नियन्त्रण के क्षेत्र की कोई ऐसी संख्या निर्धारित नहीं की है जिसको अपनाकर उक्त दोनों ही अतियों से बचा जा सके।

नियन्त्रण का क्षेत्र निश्चित करने वाली ग्रेकुनास की विचारधारा
(The theory of Graicunas to decide the Span of Control)

वी० ए० ग्रेकुनास (V A Graicunas) ने सन् 1933 में एक लेख प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था संगठन में सम्बन्ध (Relationship in Organization)। इस लेख में उन्होंने अधीनस्थ एवं उच्च अधिकारियों के सम्बन्धों की समस्या पर विचार किया है। उन्होंने एक गणितीय सूत्र (Mathematical Formula) विकसित करके यह प्रतिपादित किया है कि जब अधीनस्थों की संख्या बढ़ जाती है तो गणितीय रूप में सम्बन्धों (Relationship) की संख्या भी बढ़ जाती है। प्रोफेसर हेमेन के अनुसार उनका अध्ययन अनुभवयुक्त निरीक्षण पर आधारित नहीं है किन्तु शीर्ष पर प्रबन्ध के क्षेत्र में परिवर्तन करने से एक संगठन की क्या स्थिति होगी इस बात का एक गणितीय प्रस्तुतीकरण है। ग्रेकुनास ने यह बताया है कि उच्च अधिकारियों को अपने अधीनस्थों के साथ सम्बन्ध कायम रखने में हमेशा यह बात मस्तिष्क में रखनी चाहिए कि उसका न केवल प्रत्येक अधीनस्थ से प्रत्यक्ष रूप में व्यक्तिगत सम्बन्ध है बल्कि उसके सम्बन्ध अधीनस्थों के विभिन्न समूहों से और अधीनस्थों के पारस्परिक सम्बन्धों से भी है।

इन सम्बन्धों की संख्या प्रबन्धाधीन समूह की संख्या के साथ-साथ बदलती रहती है। ग्रेकुनास ने मुख्यतः ऐसे तीन प्रकार के सम्बन्धों का वर्णन किया है ये हैं—1 प्रत्यक्ष इकहरे सम्बन्ध (Direct Single Relationships) 2 प्रत्यक्ष समूह सम्बन्ध (Direct Group Relationships) और 3 आड़-तिरछे सम्बन्ध

(Cross Relationships)। प्रत्यक्ष इकहरे सम्बन्ध किसी सर्वोच्च अधिकारी और उसके तत्कालिक अधीनस्था के साथ व्यक्तिगत एवं परोक्ष रूप होते हैं। उदाहरण के लिए यदि क के तीन अधीनस्थ हैं—ख ग घ तो यहाँ तीन प्रत्यक्ष इकहरे सम्बन्ध बन जाएंगे। प्रत्यक्ष समूह सम्बन्धों का अर्थ है—सर्वोच्च अधिकारी और अधीनस्थों के प्रत्येक सम्भावित समूह के मध्य सम्बन्ध। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो उक्त उदाहरण में प्रत्यक्ष समूह सम्बन्धों की संख्या नौ हो जाएगी। सम्भावित सम्बन्धों के तीसरे समूह को ग्रेकुनाज ने क्राॅस-खड सम्बन्धों का नाम दिया है। जब एक उच्च अधिकारी के विभिन्न अधीनस्थों को पारस्परिक सम्पर्क करने की आवश्यकता होती है तो इस प्रकार के सम्बन्धों का जन्म हो जाता है। जब अधीनस्थों की संख्या बढ़ने के कारण सर्वोच्च अधिकारी के प्रत्यक्ष सम्बन्ध अनुपात के अनुसार बढ़ जाते हैं तो समूह और क्राॅस खड सम्बन्ध अनुपात से भी अधिक बढ़ जाते हैं। ग्रेकुनाज का सूत्र इस प्रकार है—

$$n\left(\frac{2n}{2}+n-1\right)$$

यह सूत्र सभी सम्भव सम्बन्धों की संख्या बता देता है जिसमें प्रबन्धक की रुचि हो सकती है और जो उसे ध्यान में रखने चाहिए। यहाँ *n* का अर्थ है अधीनस्थों की संख्या और *n* को इस सूत्र में लगाने से सब प्रकार के सम्बन्धों की संख्या हो जायगी। इस सूत्र के परिणामों को निम्नांकित सारणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

अधीनस्थों की विभिन्न संख्या से उत्पन्न सम्भावित सम्बन्धों का योग

अधीनस्थों की संख्या	सम्भावित सम्बन्धों की कुल संख्या
1	1
2	6
3	18
4	44
5	100
6	222
7	490
8	1 080
9	2 376
10	5 210

इस सूत्र के आधार पर हम यह देखते हैं कि अधीनस्थों की संख्या चार होने पर सम्बन्धों की कुल संख्या 44 हो जाती है। यदि एक और अधीनस्थ जोड़ दिया जाए तो नियन्त्रण कार्यक्षेत्र पाँच अधीनस्थों का हो जायगा। सूत्र के अनुसार

सम्भाि त ग्राड वन सम्ब ा ा याग 100 ा जायेगा । स प्रकार एक अधीनस्थ जुड़ जाने मात्र से सम्भावित सम्बन्ध रगागणितीय रूप म बन जाते हैं । अधीनस्थों की सख्या म 25 प्रतिशत वृद्धि करने पर सम्ब धा का कुल याग 127 प्रतिशत बन जाता है । यह वृद्धि त चेतावनीपूर्ण है और प्रत्यक प्रबन्धक का ना अ ास्था की सख्या मे वृद्धि कर रहा है सका ध्यान रखना हाता है ।

यह सूत्र हमको केवल सम्भावनाओं का निदर्शन करता है । इसके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि जब एक उच्च अधिकारी का न्त से अधीनस्थ प्रतिवेदन देंगे तो स्थिति कितनी जटिल बन जाएगी । वास्तविक व्यवहार म य तालिका जिन सम्बन्धों का वर्णन करती है वे साकार नहीं बन पाते । विलियम न्यूमन (William Newman) का कथन है कि जब एक उद्यम आकार म बढ़ता है तो कर्मचारी एक दूसरे के साथ वे सभी सम्बन्ध नहीं र त पाते जो सैद्धान्तिक रूप से सम्भव है । यह सूत्र केवल सम्भावित सम्बन्धों का ही उल्लेख करता है । यह सब जानते हुए भी एक उच्च अधिकारी अधीनस्थों की सख्या म वृद्धि करते समय पर्याप्त सोच विचार से काम लेता है ।

प्रकुराज न बताया है कि ग्राड ग्रुप सम्बन्धों द्वारा अधिक जटिलताएं उत्पन्न हो जाती हैं । इन जटिलताओं की मात्रा सगठन के कार्यों की प्रकृति के आधार पर बदलती रहती है । यदि किसी कार्य म अधीनस्थों को परस्पर कम सम्बन्ध रखने की आवश्यकता होगी तो कम जटिलता नहीं बनेगी । इस दृष्टि से हेमिल्टन का कथन पूर्णत सत्य है कि समूह के सदस्य का उत्तरदायित्व जितना कम होगा समूह उतना ही बड़ा हो सकता है । एल उर्विक न भी बताया है कि कोई भी सर्वोच्च अधिकारी परस्पर म अधिक कार्यों वाले पाँच अथवा छ अधीनस्थों से अधिक काय को प्रत्यक्ष रूप से पर्यवेक्षित नहीं कर सकता ।

नियन्त्रण क्षेत्र की धारणा में परिवर्तन

नियन्त्रण क्षेत्र की पुरानी धारणा आज तेजी से बदलती जा रही है । प्रशासन म स्वचालन का प्रयोग बढ़ रहा है और सचार के द्रुत माध्यम विस्तृत हो रहे हैं । कार्मिकों म विशेषज्ञों की सख्या म अधिकाधिक वृद्धि होती जा रही है । हाल ही के वर्षों म तकनीकी ज्ञान म भारी प्रगति हुई है । स्वभावत इन विभिन्न कारणों के फलस्वरूप नियन्त्रण क्षेत्र को पूर्वापेक्षा काफी अधिक विस्तृत कर देना सम्भव हो गया है । स्वचालन से तो नित प्रतिदिन लिपिकीय काम कम हुआ ही है और सूचना तथा सचार के द्रुत साधनों से नियन्त्रण क्षेत्र की सीमा बढ़ी ही है लेकिन इस दिशा म विशेषज्ञों की भूमिका पर्याप्त महत्वपूर्ण सिद्ध हो रही है । विशेषज्ञ अपने काम में अधिकारियों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते अत सगठन के परम्परागत संस्थापन में ही परिवर्तन हो रहा है । विशेषज्ञों के बढ़ते हुए महत्व और स्वतन्त्रता के कारण मुख्य निष्पादक का काय नियन्त्रण की अपेक्षा समन्वय का अधिक होता जा रहा है । वह दिन दूर नहीं है जबकि आगामी दशकों म नियन्त्रण क्षेत्र की समूची धारणा ही बदल जाएगी और उसके स्थान पर एक सर्वथा नई धारणा अस्तित्व म आ जाएगी ।

4

सूत्र और स्टाफ–गुलिक, उर्विक और मूने के योगदान के विशेष सन्दर्भ सहित

(Line and Staff with Special Reference to the Contributions of Gullic Urwick and Mooney)

प्रारम्भिक सामान्य परिचय के रूप में यह कहना होगा कि प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जिस यन्त्र की रचना की जाती है उसके शीर्ष पर मुख्य कार्यपालिका होती है जिसे अपने गुरुत्तर कार्यों और दायित्वों के निर्वहन के लिए व्यापक शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं तथा जिसकी सहायता एक सेवीवर्ग द्वारा की जाती है। उसके अधीन अधिकारियों में से कुछ का सम्बन्ध नीति सम्बन्धी प्रश्नों के निर्धारण से और अन्य का उन नीतियों के क्रियान्वयन में सहायता पहुँचाने से होता है। नीति निर्धारक अभिकरणों की सहायता के लिए एक मन्त्रणा देने वाला वर्ग होता है जिसके कार्य केवल परामर्शात्मक होते हैं आदेशात्मक नहीं। जिस वर्ग का सम्बन्ध नीति सम्बन्धी कार्यों से होता है उसे हम सूत्र अथवा लाइन (Line) अभिकरण कहते हैं और इस कार्य में जो केवल मन्त्रणा आदि देकर सहायता करता है उसे स्टाफ (Staff) अभिकरण कहा जाता है। प्रशासन कार्य में सहायता पहुँचाने वाला एक अन्य अभिकरण भी होता है जिसे सहायक (Auxiliar) अभिकरण कहते हैं। यह अभिकरण सभी विभागों में एक जैसा कार्य सम्पन्न करता है। कुछ लेखकों ने इस स्टाफ अभिकरण का ही एक अंग माना है तथापि मार्क्सन और कुछ अन्य विद्वान् इसे एक पृथक् अभिकरण मानते हैं।

स्टाफ और लाइन शब्दों को सैनिक प्रशासन की शब्दावली में ग्रहण किया गया है। सेना में दो प्रकार की इकाइयाँ होती हैं—सूत्र या लाइन इकाइयाँ (Line Units) तथा स्टाफ इकाइयाँ (Staff Units)। मुख्य सेनापति के प्रधान जनरल कर्नल मेजर कैप्टन आदि अधिकारी लाइन अधिकारी कहे जाते हैं जिनका कार्य संगठन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए युद्ध के मैदान में सेना को आदेश देना और उसका संचालन तथा नेतृत्व करना है। संगठन की सफलता इन अधिकारियों के कार्यों पर निर्भर करती है। ये अधिकारी पदसोपान की शृंखला से सम्बद्ध रहते हैं। नागरिक प्रशासन में भी उन अभिकरणों को लाइन की संज्ञा प्रदान की गई है जिनके हाथ में वास्तविक शक्ति रहती है जिनका कार्य आज्ञा देना होता है अथवा जो

निर्णय ले सकते है। सनिक प्रशासन म नाइन अधिकारियों के अतिरिक्त अन्य अधिकारी और कमचारी भी होते हैं जिन्हे युद्धरत सेना के लिए यातायात रसद चिकित्सा डाक आदि का प्रबन्ध करना होता है। इन सब कार्यों की देख रेख स्टाफ इकाइयाँ करती हैं। स्टाफ की सहायता के बिना सनिक युद्ध नही लड़ा जा सकता हैं। नागरिक प्रशासन मे भी केवल लाइन अभिकरण समय और शक्ति की सीमा के कारण सम्पूर्ण काय स्वय नही कर सकता। उन्हें अनेक तत्वों पर विचार करना पड़ता है और समस्याओं को सुलझाने के लिए विभिन्न प्रकार के ज्ञान तथा योग्यताओं की आवश्यकता होती है अत उनकी सहायता के लिए अन्य व्यक्ति नियुक्त किए जाते है जिनका काय सनिक प्रशासन के स्टाफ वग के लोगों से बहुत कुछ मिलता जुलता है और इसीलिए उन्हें भी स्टाफ अभिकरण कहा जाता है।

स्टाफ अभिकरण अर्थ

(Staff Agencies Its Meaning)

स्टाफ अभिकरण का मुख्य काय परामश और सहायता देना है। जिस प्रकार एक वृद्ध व्यक्ति छड़ी का सहारा लेकर चलता है उसी त ह लाइन अथवा सूत्र अभिकरण स्टाफ अभिकरण का सहारा लेकर काय सचालन करता है। स्टाफ द्वारा गृह प्रबन्ध सम्बन्धी (House keeping) या प्रबन्ध सम्बन्धी (Managerial) सेवाएं सम्पन्न की जाती हैं ताकि मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हो सके। मुख्य कायपालिका के सामने जो विषय और व्यापक समस्याएं आती हैं उनके बारे में आवश्यक सूचना एकत्रित करना तथ्यों का अन्वेषण करना समुदाय के लिए माग खोजना तथा किस माग को अपनाया जाए इस सम्बन्ध म सलाह देना आदि काय स्टाफ अभिकरण का करने होते हैं इस दृष्टि से इन्हे प्रशासनिक व्यक्तित्व का ही विस्तार माना जाता है।

विभिन्न लेखकों ने अलग अलग प्रकार से स्टाफ अभिकरण को परिभाषित किया है। हेनरी फयोल ने लिखा है कि यह एक सत्ता है जो प्रबन्धक के विचार का एक प्रकार म विस्तार है ताकि अपने कत्त व्यो की पूर्ति म उसे सहायता मिल सके। व्हाइट के शब्दों म स्टाफ उच्च स्तरीय पदाधिकारियों को परामश देने वाला अभिकरण है जिसके कोई क्रियात्मक उत्तरदायित्व (Operative Responsibilities) नहीं होते। मूने के अनुसार स्टाफ अभिकरण कायपालिका के व्यक्तित्व का ही विस्तार है जिसका अर्थ है अधिक आखें, अधिक कान अधिक हाथ जो उसकी योजना के निर्माण और उसके क्रियान्वयन मे उसे सहायता दे सकें। एक पुरानी ब्रिटिश सैनिक कहावत के अनुसार स्टाफ सेवाएं व खच्चर हैं जो युद्ध लड़ने वाले खच्चरों के लिए सामग्री ढोते हैं।

एपिलबी का मत

आधुनिक विचारधारा म स्टाफ और सूत्र के भेद को अधिक बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत नहीं किया जाता क्योंकि दोनो गाडी के दो पहियों के समान इस तरह घनिष्ठ

रूप से सम्बद्ध है कि उन्हें पूर्णतः पृथक इकाइयों में विभाजित करना लगभग असम्भव है। भारत में मन्त्रणा अथवा स्टाफ अभिकरण में मन्त्रि मण्डलीय सचिवालय, मन्त्रि-मण्डलीय समितियाँ, योजना आयोग, वित्त मन्त्रालय, बाह्य और आर्थिक मामलों का मन्त्रालय, गृह मन्त्रालय में प्रशासकीय सतर्कता सम्भाग और वित्त मन्त्रालय में विशेष पुनर्गठन इकाई गणना की जाती है। पाल एच. एपिलबी को भारतीय प्रशासन में स्टाफ और सूत्र के भेद का स्पष्ट रूप से समझने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। उन्होंने इस सन्दर्भ में कहा था— यहाँ ऐसी कोई शब्दावली और ऐसा कोई ढाँचा नहीं है जो सूत्र तथा स्टाफ के बीच विभेद कर सके। भारत में ये शब्द संगठन के ढाँचे में प्रयुक्त नहीं किए जा सकते। आगे उन्होंने पुनः कहा— प्रतिरक्षा, विदेशी मामला और केन्द्रीय करों के प्रबन्ध के अतिरिक्त लगभग सम्पूर्ण केन्द्र एक बड़ा स्टाफ संगठन है। इन सब कुछ अन्य अपवादों को छोड़कर नई दिल्ली में कोई भी सूत्र कार्य (Line Functions) नहीं हैं। दूसरे शब्दों में इन अपवादों को छोड़कर केन्द्रीय सरकार में कोई वास्तविक एवं पूर्ण प्रशासन नहीं है।

स्टाफ का वर्गीकरण

(Various Classifications or Kinds of Staff)

फिफ्नर तथा प्रिस्थस के अनुसार स्टाफ अभिकरणों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) सामान्य स्टाफ (The General Staff)

(ख) प्राविधिक या तकनीकी स्टाफ (The Technical Staff)

(ग) सहायक स्टाफ (The Auxiliary Staff)

(क) सामान्य स्टाफ (Gen ral Staff)—यह वह स्टाफ है जो सामान्यतया मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कठिनाइयों के निराकरण में उसकी सहायता करता है। यह प्रमुख अथवा अन्य उच्च स्तरीय कार्यकारी अधिकारियों को परामर्श, सूचना संग्रह, शोध तथा ऊपर की ओर भेजी जाने वाली सामग्री में से आवश्यक सामग्री की छटनी द्वारा प्रशासकीय कार्य में सहायक सिद्ध होता है। इस स्टाफ का प्रबन्ध करने वाला व्यक्ति प्रायः ऐसा होता है जिसे पर्याप्त प्रशासकीय प्रशिक्षण और अनुभव प्राप्त हो। सामान्य स्टाफ का काम प्राविधिक स्टाफ से भिन्न प्रकृति का होता है। प्राविधिक स्टाफ का काम केवल प्राविधिक मामलों में परामर्श देना है जबकि सामान्य स्टाफ के सदस्य किसी प्राविधिक क्षेत्र में विशेषज्ञ होने के बजाय प्रशासन की कला में दक्ष व्यक्ति होते हैं। सामान्य स्टाफ अपना अधिकांश समय उच्च नीति सम्बन्धी मामलों के नियोजन और पर्यवलोकन में लगाता है।

अधिक विकसित स्वरूप में सामान्य स्टाफ विभागीकृत एवं समन्वित स्टाफ सेवा का रूप ले लेता है और अलग अलग स्टाफ अधिकारियों के रूप में असमन्वित

परामर्श अथवा सहायता मात्र नहीं रह जाता। यह स्पष्ट है कि यदि विभिन्न मामलों मे प्रमुख कार्यकारी को परामर्श देने वाले अनेक पृथक पृथक परामर्शदाता हो तो अध्यक्ष के जिम्मे एक यह काम और आ जाता है कि वह उनके पृथक-पृथक परामर्शों को सुबद्ध नीति अथवा निर्णय के रूप से समन्वित करे। बड़े सगठनो मे यह कार्य बहुत बोझिल बन जाता है। अत अध्यक्ष को कठिनाई और समय के अपव्यय से बचाने के लिए विविध स्टाफ सेवाओ को एक ऐसे विभाग के रूप मे सगठित किया जा सकता है जो भिन्न भिन्न स्टाफ इकाइयो से प्राप्त परामर्शों को सुबद्ध और समन्वित करे तथा प्रमुख कार्यकारी के सामने इस बारे मे साफ सिफारिश प्रस्तुत करे कि क्या निर्णय किया जाना चाहिए। किसी सगठन मे सामान्य स्टाफ का यह विभागीकरण आरम्भ मे नही हो सकता। इसके लिए आवश्यक है कि स्टाफ कार्य एक निश्चित विकसित अवस्था मे पहुच जाए। इसका सबसे अधिक विकसित स्वरूप हमे सेना मे दिखायी पडता है। परन्तु यह धीरे धीरे लोक प्रशासन मे भी प्रकट हो रहा है।

भारत मे मुख्य कार्यपालिका का सामान्य स्टाफ इस प्रकार है (1) मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय (Cabinet Secretariat) (2) प्रधान मन्त्री का सचिवालय (3) मन्त्रिमण्डलीय समितिया (4) योजना आयोग (5) वित्त मन्त्रालय मे बजट तथा आर्थिक मामलो का विभाग जो कि बजट सम्बन्धी कर्त्तव्यो के पालन मे मुख्य कार्यपालिका को सहायता देता है एव (6) गृह मन्त्रालय मे प्रशासकीय सतर्कता सम्भाग (Administrative Vigilence Commission)।

सामान्य स्टाफ अपना कार्य सन्तोषजनक रूप मे और कुशलता के साथ सम्पन्न कर सके इसके लिए यह आवश्यक है कि उनमे निम्नलिखित गुण हो—

1. सामान्य स्टाफ कर्मचारियो को प्रत्येक प्रशासनिक पहलू के बारे मे यथेष्ट जानकारी होनी चाहिए। दूसरे शब्दो मे उन्हे सामान्य जानकार होना चाहिए।

2. जटिल प्रशासनिक विषयो मे उन्हे विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। इसका अर्थ यह नही है कि वे उन मामलो के विशेषज्ञ हो इसका अर्थ केवल यही है कि उन्हे जटिल मामलो का सामान्य से अधिक ज्ञान हो।

3. सामान्य स्टाफ मे सहयोगी भावना और विचार विनिमय की क्षमता होनी चाहिए क्योंकि उसे लाइन अधिकारियो के साथ सहयोग से काम करना होता है।

4. सामान्य स्टाफ मे धैर्य और अध्यवसाय जैसे गुण होने चाहिए क्योकि उसका मूलभूत कार्य मुख्य कार्यपालिका तथा उच्चस्तरीय अधिकारियो के लिए छलनी व कीप (Filter and Funnel) बनना है।

5. सामान्य स्टाफ के सदस्यो को प्रसिद्धि पाने अथवा प्रकाश मे आने की आकांक्षा से बचना चाहिए। उन्हें इस बात से सन्तोष करना चाहिए कि वे अपने प्रधान के अधीन रहकर अपने कर्त्तव्यो का निर्वहन कर रहे है। उन्हे विनम्र गम्भीर

और समन्वयकारी होना चाहिए। झगड़ालू और सत्ता लोलुप व्यक्ति सामान्य स्टाफ के पद के लिए अनुपयुक्त होते हैं।

(ख) प्राविधिक स्टाफ (Technical Staff)—मुख्य कार्यपालिका को प्रशासन में अनेक विशिष्ट और प्राविधिक मसलों से निपटना पड़ता है अत इस कार्य में सहायता के लिए उसे कुछ प्राविधिक या तकनीकी स्टाफ अधिकारियों की भी व्यवस्था करनी होती है यथा इन्जीनियर, वित्तीय विशेषज्ञ आदि। तकनीकी क्षेत्र में इन विशेषज्ञों का परामर्श बड़ा मूल्यवान होता है। विशेषज्ञता प्राप्त स्टाफ में दो प्रमुख विशेषताएं पाई जाती हैं—(क) सगठन के अन्य भागों पर इस कोई सत्ता प्राप्त नहीं होती अर्थात् यह स्टाफ को परामर्श देना और सेवा करना है किन्तु निर्देश नहीं देना। (ख) इसका उपयोग सगठन की सभी मूल और स्टाफ इकाइयों द्वारा किया जा सकता है।

प्राविधिक अधिकारियों की व्यवस्था के फलस्वरूप क्षेत्रीय प्राविधिक कर्मचारियों पर दोहरे निरीक्षण की समस्या उत्पन्न हो जाती है यथा अपने अपने विषय के विशेषज्ञों द्वारा कार्यात्मक निरीक्षण (Functional Supervision) तथा उच्च प्रशासकीय अधिकारियों का प्रशासकीय निरीक्षण (Administrative Supervision)। इस दोहरे निरीक्षण के कारण ही आदेश की एकता अथवा एकीकृत निदेशन (Unity of Command) का सिद्धान्त भंग होने की समस्या उत्पन्न होती है।

(ग) सहायक स्टाफ (Auxiliary Staff)—इस स्टाफ में वे अधिकारी अथवा इकाइयाँ निहित होती हैं जिनके सदस्य विभिन्न प्रशासकीय सेवाओं की सामूहिक सेवा करते हैं। सहायक स्टाफ की सेवा प्रधान सेवा न होकर गौण सेवा होती है अर्थात् इस विभाग के प्रमुख कार्य का प्रत्यक्ष अंग नहीं माना जाता। जब रेलवे विभाग यात्रियों के आवागमन आदि के लिए रेलगाड़ियां चलाता है तो यह उसकी प्रधान क्रिया है लेकिन रेलगाड़ियाँ चलाने के लिए कर्मचारियों की भर्ती करना, रेल की पटरियाँ बिछाना और रेलवे स्टेशनों का निर्माण करने के लिए आवश्यक सामग्री खरीदना आदि गौण क्रियाएं हैं। इन क्रियाओं को सहायक सेवाओं अथवा गृह प्रबन्ध सेवाओं (Auxiliary or House keeping Staff) की संज्ञा दी जाती है। गौण सेवाएं स्वयं उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सम्पन्न की जाती हैं जिनके लिए विभाग स्थापित किए जाते हैं। इन क्रियाओं को उद्देश्य की प्राप्ति का साधन कहा जा सकता है। किसी भी विभाग का प्रमुख कार्य चाहे कुछ भी हो किन्तु वह कुछ न कुछ खरीददारी करता है पत्रों एवं प्रतिवेदनों को छपाता है कर्मचारियों की भर्ती करता है उनके सामने वित्त एवं नाम आदि की समस्याएं होती हैं। इस प्रकार की सेवाएं सहायक सेवाएं कहलाती हैं और इनमें सहायता करने वालों को सहायक स्टाफ कहते हैं। सहायक सेवाएं सभी विभागों के लिए प्रायः समान होती हैं। इसीलिए बचत कार्यकुशलता और सुविधा की दृष्टि से विभागों के लगभग

समान कार्यों को सम्पन्न करने के लिए एक केन्द्रीय अभिकरण (Central Agency) की स्थापना कर दी जाती है। भारत सरकार का प्रेस (Govt of India Press) सरकार के सभी विभागो के लिए समस्त मुद्रण काय कर सकता है। इसी प्रकार एक केन्द्रीय क्रय अभिकरण (Central Purchasing Agency) सभी विभागो के लिए क्रय-काय कर सकता है और एक केन्द्रीय सिविल सेवा आयोग (Central Civil Service Commission) सभी सरकारी विभागो के लिए कमचारियो की भर्ती कर सकता है।

कुछ विचारक सहायक सेवाओ को स्टाफ कहना पसन्द नही करते क्योकि ये स्टाफ इकाइयो की भाँति परामश एव सहायता नही देते। इसके अतिरिक्त कभी कभी इनको उन विभागो की माँगो पर नियन्त्रण एव छानबीन की शक्ति दे दी जाती है जिसको ये सहायता करने जा रही हैं किन्तु सिद्धान्त रूप मे स्टाफ इकाई को आज्ञा एव नियन्त्रण काय नही करना चाहिए क्योकि यह तो लाइन अभिकरणो का काम है। सहायक इकाइयो के पास सहायता एव परामश देने के साथ नियन्त्रण की शक्ति भी होती है अत इनको लाइन तथा स्टाफ दोना अभिकरणो म उभयवर्ती माना जाना चाहिए। जो विचारक सहायक इकाइयो (Auxiliary Units) को एक अलग तीसरी इकाई मानते हैं उनम साइमन तथा अन्य लेखको का नाम उल्लेखनीय है। वे स्टाफ तथा सहायक इकाइयो के बीच स्पष्ट रूप स अन्तर करत हैं। उनके मतानुसार सहायक इकाइया वे होती हैं जो सामान्य कार्यों को पूरा कर लाइन सगठनो की सहायता करती हैं जबकि स्टाफ इकाइया ऐसे काय सम्पन्न करके मुख्य कायपालिका की सहायता करती हैं जिन्हे वह लाइन सगठनो को हस्तान्तरित नहीं कर सकती।[1]

स्टाफ की प्रकृति और काय
(Nature and Functions of Staff)

स्टाफ अधिकारी अथवा स्टाफ अभिकरण सूत्र अधिकारियो अथवा अभिकरणो की भाँति हस्तान्तरित कत्तव्यो का पालन नही करते। उनका काय यह होता है कि प्रमुख अथवा अन्य कायकारी अधिकारियो के सामने प्रस्तुत होने से पहले वे समस्याओ के बारे म समस्त आवश्यक जानकारी का सग्रह विश्लेषण तथा सक्षेप कर सम्भावित समाधानों की ओर सकेत करें तथा यह परामश दें कि उनमे से किस स्वीकार किया जाए। इस प्रकार कम से कम सैद्धान्तिक दृष्टि स तो स्टाफ को नायक द्वारा के व्यक्तित्व का विस्तार ही माना जाएगा। उसका अथ है अधिक आँख अधिक कान तथा योजनाओ के निर्माण तथा उनके सचालन म उसका सहायता करने वाले अधिक हाथ। स्टाफ द्वारा दी जाने वाली सहायता अनाम होती है।

1 Simon, Smithburg and Thompson op cit p 281

स्टाफ सदा पृष्ठभूमि म रहता है। वह कायकारी के निर्णयो के लिए भूमिका तयार करता है परन्तु स्वय निर्णय नही करता। निर्णय करने की समूची शक्ति कायकारी क हाथो म ही रहती है।[1]

स्टाफ की प्रकृति और उसके कार्यों को लोक प्रशासन क विद्वानो ने विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। मूने (Mooney) क मतानुसार स्टाफ मुख्य रूप से तीन प्रकार के काय करता है —

(1) सूचना सम्बधी (Informato y)
(2) परामशकारी (Advisory) एव
(3) निरीक्षणात्मक (Supervisory)।

स्टाफ का सूचना सम्बन्धी काय यह है कि वह प्रमुख कायपालिका अथवा कायकारी के लिए उन समस्त सूचनाओ का सग्रह करता है जिनके आधार पर वह निर्णय करेगा। सग्रहीत सूचना को व्यवस्थित और सक्षिप्त रूप देकर उसे एक सुविधाजनक स्वरूप म प्रमुख कायपालिका के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। स्टाफ का परामशकारी काय यह है कि वह प्रमुख कायकारी को सलाह देता है कि उसको राय म क्या निर्णय किए जाने चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि प्रमुख कायकारी स्टाफ की सिफारिशो को सदा स्वीकार ही करे तथापि स्टाफ का यह काय अवश्य है कि वह अपनी सिफारिशें सदव उसके सामने रखे। स्टाफ का निरीक्षणात्मक काय यह है कि वह इस बात की ओर ध्यान दे कि प्रमुख कायकारी ने जो निर्णय लिए हैं वे उपयुक्त सूत्र अभिकरणो तक पहुचा दिए गए हैं और उन्हे ठीक ढग से क्रियान्वित किया जा रहा है। यह भी हो सकता है कि सूत्र अभिकरणो और विभागो क सामने समय समय पर नीतियो को स्पष्ट करना पड तथा क्रियान्वयन क माग मे आने वाली कठिनाइयो का दूर करना पड।

फिफनर तथा प्रिस्थस (Pfiffner and Presthus) ने स्टाफ काय की सूची इस प्रकार प्रस्तुत की है[3]—

(1) परामर्श देना (अध्यक्ष एव सूत्र विभाग दोनो को) सिखाना चर्चा करना

(2) समन्वय करना केवल योजनाओ के द्वारा नही वरन् व्यक्ति सम्पक के द्वारा भी। साथ ही कठिनाई निवारण तथा प्रत्यक स्तर पर निर्णयो के पक्ष म विरोधियो की सहमति का प्रयत्न करना

(3) तथ्य सग्रह तथा शोध काय

(4) नियोजन करना

1 एम पी शर्मा वही पृष्ठ 155
2 *Moon y Pr nciple of Organ sation p 33*
3 *Pfffner nd P s hus P bl c Adm n tr tio p 86*

(5) दूसरे सगठनो तथा शक्तियो के बारे म जानकारी रखने के लिए उनक साथ सम्पक स्थापित करना तथा

(6) बिना उसकी सत्ता को छीने हुए सूत्र के साथ काम करके उसकी सहायता करना

(7) कभी-कभी सूत्र अधिकारा की ओर से-कुछ स्पष्ट और निश्चित सीमाओ के भीतर विशष रूप स दी गई सत्ता का प्रयोग करना ।

एन डी ह्वाइट ने सामान्य स्टाफ के उद्‌श्या के रूप म निम्नलिखित काय निर्धारित किए हैं—

(1) यह निश्चित करना कि मुख्य कायपालिका को समुचित तथा तात्कालिक सूचनाए प्राप्त होती रह ।

(2) समस्याओ का पूर्वानुमान करने तथा भावी कायक्रमो की योजना बनाने म उसकी सहायता करना ।

(3) यह व्यवस्था करना कि मुख्य कायपालिका के समक्ष मामले तुरन्त अर्थात् अविलम्ब पहुचत रह जिससे कि वह उन पर विवेकपूर्ण निणय ले सक तथा शीघ्रतापूर्ण एव बिना सोचे समझ निणय लेने स उसे बचाना ।

(4) एसे प्रत्येक मामले को छाटना जिसका निपटारा शासन क अ य अधिकारिया द्वारा किया जा सकता है ।

(5) उसके समय की बचत करना ।

(6) निर्धारित नीति तथा कायपालक निर्देशा के अनुरूप अधीनस्थो द्वारा काय सम्पादन के लिए साधन जुटाना ।[1]

स्टाफ अभिकरण की सामान्य प्रकृति का प्रशासकीय प्रब ध विषयक राष्ट्रपति की समिति ने अपन प्रतिवेदन (1937) मे भली भांति विश्लेषण किया था जो आज भी सही है । प्रतिवेदन मे कहा गया है कि—

"इन सहायक अधिकारिया को स्वय निर्णय करने या आदेश देने का कोई अधिकार नही रहेगा । व राष्ट्रपति तथा उनके विभागाध्यक्षो के बीच का स्थान प्राप्त नही कर सकते । व किसी भी अथ म सहायक राष्ट्रपति (Assistant Presidents) नहो हो सकते । जब शासन के किसी भाग स सम्बन्धित कोई मामला निर्णय के लिए राष्ट्रपति क समक्ष प्रस्तुत किया जाए तो उस समय उनका यह काय होगा कि वे किसी भी कायपालिका विभाग मे उपल ध सम्बन्धित सूचना अविलम्ब प्राप्त करने म उसकी सहायता करे जिससे उत्तरदायित्वपूण नि यि लेने म राष्ट्रपति का माग दशन हो सके और जब निर्णय ल लिया जाए तो प्रभावित होने वाल प्रशासकीय

1 L D Wh t p t 48

विभागो तथा अभिकरणा का तुरन्त सूचित करना भी उनका ही काय है। हमारा यह विचार है कि राष्ट्रपति की सहायता करने म उनका प्रभाव अपने कार्यों का पूरा करने की उनकी योग्यता के अनुपात म ही होगा। वे सदव पृष्ठभूमि म रहते हैं। वे न तो आदेश देते हैं, न निणय और न सावजनिक वक्तव्य ही देते हैं। वे ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिनमे राष्ट्रपति का व्यक्तिगत विश्वास हो और जिनका चरित्र व दृष्टिकोण ऐसा हो कि वे स्वय अधिकार का प्रयोग करने के लिए प्रयत्नशील न हो। उनमे उच्च क्षमता अधिक शारीरिक शक्ति तथा स्वय के नाम को गुप्त रखने का उत्साह होना चाहिए।[1]

स्टाफ का उद्देश्य कायपालिका को पूणता प्रदान करना है। वास्तव म सगठन की समस्त व्यावहारिक प्रक्रिया स्टाफ का ही काय है। फिफ्नर तथा शेरवुड ने इसी दृष्टि से विश्लेषण करते हुए स्टाफ के तीन प्रमुख तत्त्व बतलाए हैं ये हैं—(1) तथ्य निरूपण (Fact finding) (2) नियोजन (Planning) एव (3) सगठित करना (Organising)। तथ्य निरूपण से तात्पय है वस्तुस्थिति का समुचित ज्ञान सचित करना सांख्यकीय दृष्टि से तथा सक्षिप्त टिप्पणी द्वारा समस्त तथ्यो का इस प्रकार एकत्रित करना कि इसका अधिकतम उपयोग किया जा सके दूसरे शब्दो म प्रशासन से सम्बन्धित महत्त्वपूण आकडो को सुनियोजित करना क्योंकि इन आकडो के द्वारा ही भावी कार्यों के लिए प्रशासन का नियोजित किया जा सकता है। स्टाफ के कार्यों म नियोजन का तत्त्व महत्वपूर्ण है क्योंकि नियोजन द्वारा ही उद्देश्य पूर्ति के लिए किसी भी सगठन के कार्यों की काय शृखला बनाई जा सकती है। नियोजन एक तरफ काय विशिष्टीकरण का द्योतक है और दूसरी तरफ समस्त सगठन की कायवाही को सूत्रबद्ध कर सगठन के प्रयास म एकता लाने का काय करता है। एक बौद्धिक प्रक्रिया के रूप म स्टाफ लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रशासकीय सगठन के लिए भावी कार्यों का खाका प्रस्तुत करता है। नियोजन अनायास ही कार्यों को सगठित करने का भी अधिकार प्रदान कर देता है। वस्तुत प्रशासन की समस्त कायवाही जब नियोजन के प्रति उन्मुख रहेगी तब यह स्वाभाविक है कि नियोजन की दृष्टि स सगठन म आवश्यक परिवतन किए जाए। प्रशासकीय सगठन म किस प्रकार के आवश्यक परिवतन लाए जा सकें जिसके द्वारा प्रशासकीय नियोजन और प्रशासकीय सगठन एक दूसरे के अनुरूप हो सकें प्रश्न भी नियोजन के साथ ही सम्मिलित है अत प्रत्यक्ष रूप स प्रशासकीय सगठन को परिवतन या *सशोधन करने का अधिकार न होते हुए भी यह अधिकार स्वत आ जाता है।* तथ्य निरूपण नियोजन तथा सगठित करने के तीनो तत्त्वो को भारतीय योजना आयोग के सन्दभ म रखकर कहा जा सकता है कि देश की आर्थिक स्थिति का जहा एक तरफ

1 *White* op cit p 51

योजना आयोग के पास आँकड़ा म इतिहास मौजूद है वहा दूसरी तरफ विभिन्न पचवर्षीय योजनाओ म उन्ही आकडो को दृष्टि म रखकर प्रशासकीय सगठन के लिए आर्थिक लक्ष्य प्राप्ति के विभिन्न चरण स्थापित किए ह और इनके अनुरूप प्रशासकीय सगठन मे भी यत्र तत्र आवश्यक परिवतन किए गए हैं—नई सेवाओ को सगठित किया गया है पुरानी सेवाओ म महत्त्वपर्ण आवश्यक परिवतन किए गए हैं। ये सभी काय एक दूसरे से असबद्ध रहकर न ही किए जा सकते हैं।

स्टाफ का सगठन में स्थान इसका प्रभाव

(The Place of Staff in Organisation Its Influence)

स्टाफ अभिकरण सूत्र अभिकरण के साथ अथवा स्वतन्त्र रहकर काय नही करत वरन् उनके अनुगामी क रूप म काय करत हैं। स्टाफ इकाइया लाइन इकाइयो के पदसोपान के विभिन्न स्तरो पर सम्बद्ध रहती हैं इस प्रकार स्टाफ अधिकारी लाइन अधिकारियो के अधीन रहकर काय करत हैं। स्टाफ अभिकरण या अधिकारियो से परामश किया जाए या नही और प्राप्त परामश को माना जाए या नही यह बात लाइन अभिकरण की इच्छा पर निभर है। लाइन और स्टाफ के सम्बन्धो का रूप व्यवहार म तीन प्रकार का हो सकता है—

(क) यह सम्भव है कि लाइन अभिकरण स्टाफ पर इतना अधिक निभर हो जाए कि वह केवल एक कठपुतली बनकर ही रह जाए और शक्ति वास्तव म स्टाफ के ही हाथो म आ जाए।

(ख) लाइन अधिकारी यदि स्वाभिमानी है तथा उसे अपनी योग्यता एव कुशलता पर विश्वास है तो शायद वह स्टाफ से परामश ही न ले और ले भी तो उस न माने।

(ग) तीसरी स्थिति इन दोनो के बीच की हो सकती है। इन स्थिति म ही स्टाफ का पूरा उपयोग हो पाता है।

व्यवहार म स्टाफ अभिकरण की उपेक्षा करना कठिन है। स्टाफ के प्रभावो का उल्लेख करते हुए अर्नेस्ट डेल ने पाँच तरीके सुझाए हैं जिनके द्वारा स्टाफ प्रभावित करता है—

1 अपनी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति द्वारा स्टाफ के सदस्य अपने विचारो को दूसरो से मनवाने म लाइन की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं। लाइन मे अभिव्यक्ति की इस श्रेष्ठता का अभाव रहता है।

2 तकनीकी क्षमता के कारण लाइन की अपेक्षा उनके विचारो को अधिक मान्यता प्राप्त होगी। अपनी तकनीकी क्षमता के ही कारण वे विशिष्ट स्थिति मे रहते हैं और चूंकी यह विशिष्टता ही उनका गुण है इसलिए यही उनके विचारो में अधिक गम्भीरता भी लाती है। उनकी अपेक्षा लाइन म इस प्रकार की विशिष्टता अथवा तकनीकी क्षमता नही रहती है।

1 L D Wht op t p 4

3 पद की गरिमा के द्वारा भी वे आदेश देने की स्थिति प्राप्त करते हैं। प्राय स्टाफ के लोगों का वेतन पद-सम्मान आदि म बहुत विशिष्ट स्थान होता है इसलिए भी उनके विचार मात्र विचार की कोटि म नहीं रखे जा सकते व अपने आप ही आज्ञा का प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं। पद की गरिमा तथा तकनीकी क्षमता के कारण ही व प्रबन्धकीय शृंखला म तथा उसके बाहर भी महत्वपूर्ण वर्ग म स्वभावत ही अपना स्थान बना लेते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके विचार अधिक परिपक्व रहते हैं तथा लाइन उन्हें मानने म अधिक सम्मानित अनुभव करती है।

4 यदि लाइन अभिकरण उनके प्रस्ताव से असहमत होता है तो स्टाफ उसकी कार्यकारिणी के श्रेष्ठ अधिकारी से अपील कर सकता है और इस प्रकार उस शृंखला के सबसे ऊपरी अधिकारी द्वारा वह लाइन की कार्यकारिणी को स्टाफ की राय मानने के लिए बाध्य कर सकता है।

5 ऐसे महत्वपूर्ण मामलों म जिनमें लाइन द्वारा कोई भी कार्यवाही न की गई हो लाइन की निष्क्रियता के कारण ही स्टाफ आदेश देने की स्थिति म स्वत आ जाता है।

लाइन अभिकरण
(Line Agency)

लोक प्रशासन के प्रारम्भिक लेखकों म अग्रणी विलोबी (Willoughby) का मत था कि प्रशासकीय कार्यों को दो भागों म विभाजित किया जा सकता है। ये हैं—(1) प्राथमिक या कार्यात्मक (2) सस्थागत या गृहपालक क्रियाए। प्राथमिक क्रियाए वे हैं जो उस प्रमुख लक्ष्य की प्राप्ति के लिए की जाती हैं जिसे प्राप्त करना उस सगठन का लक्ष्य है। गृहपालक या सस्थागत क्रियाए इसीलिए की जाती हैं ताकि व एक सेवा के रूप म बनी रह कर काय करती रह।[1] विलोबी ने इन क्रियाओं को प्राथमिक या कार्यात्मक बताया है वे क्रियाए लाइन अभिकरणों द्वारा सम्पन्न की जाती हैं। लाइन अभिकरणों का सम्बन्ध नीति निर्माण से होता है। इनके हाथ म शक्ति होती है जिसके आधार पर य निर्णय ले सकते हैं और आज्ञाए दे सकते हैं। लाइन अभिकरण सरकार के प्राथमिक उद्देश्यों को पूरा करते हुए जनता से सीधा व्यवहार करते हैं—यथा जनता को सेवाए उपलब्ध कराते हैं उसके आचरण का नियमन करते हैं व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित कानून को पूरा करते हैं कर वसूल करते हैं तथा इसी प्रकार के अन्य काय करते हैं। साधारण नागरिकों का लाइन या सूत्र अभिकरणों स ही सम्पर्क होता है। ये अभिकरण ही वस्तुत प्रशासन का केन्द्रीय तत्व होते हैं। किसी भी देश का सरकारी प्रशासन अनेक बड़ी इकाइयों म विभक्त होता है जिन्हें विभाग (Departments) कहते हैं और ये विभाग लाइन

1 Willoughby Principles of Public Administration P 95

या सूत्र विभाग के नाम स जाने जाते हैं क्योंकि इनका सम्ब ध उस मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति स हाता है जिसके लिए सरकार अस्तित्व मे है। स्वास्थ्य प्रतिरक्षा शिक्षा श्रम रेल पथ परिवहन सचार सामुदायिक विकास वाणिज्य उद्योग आदि भारत सरकार के प्रधान सूत्र विभाग हैं। विभागो (Departments) के अतिरिक्त नियामक आयोग (Regulatory Commissions) और लोक निगम (Public Corporations) भी प्रधान सूत्र अभिकरण हैं। इनमे से प्रत्येक पर आगे यथास्थान पृथक पृथक अध्याय म विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यहाँ हमारा उद्देश्य सूत्र अभिकरणो का सामा य सद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत करना है।

लाइन या सूत्र क्रियाए जसा कि साइमन आदि ने लिखा है स्टाफ क्रियाए (जिन्हे वे Overhead क्रियाए कहते हैं) से अधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। एक सगठन क सदस्य तथा ग्राहक दोनो ही अनुभव करते है कि किसी कायक्रम की सफलता अथवा असफलता के लिए लाइन सगठन ही उत्तरदायी है भले ही कायक्रम को परा करने के लिए आवश्यक निर्णय लने के बहुत से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र स्टाफ इकाइया द्वारा केन्द्रीकृत हो।[1] कुछ विचारको का कहना है कि लाइन तथा स्टाफ इकाइयो को अलग अलग नही किया जा सकता तथा छोटे सगठनो मे इनके काय अलग अलग नही किए जा सकते। वहाँ इन दो कार्यों को करने के लिए अलग अलग इकाइयाँ नहीं होती। प्राय एक ही अधिकारी दोनो ही प्रकार के काय करता है। इस प्रकार लाइन तथा स्टाफ के अन्तर पूर्ण नही होते वरन् सापेक्ष होते हैं। एक अभिकरण अपन अधीनस्थ कायालया के सम्बन्ध म वह स्टाफ इकाइया के रूप मे काय करता है।

स्टाफ तथा लाइन के सम्बन्धो में विरोध एव गतिरोध
(Conflicts and Deadlock)

स्टाफ तथा लाइन इकाइया किसी भी सगठन के दो महत्त्वपूर्ण बाजू हैं जो एक ही साथ उसकी समस्त ज्ञानेन्द्रियो एव कर्मेन्द्रियो का काय करते हैं। उस सगठन की सफलता सार्थकता एव कुशलता बहुत कुछ इन दोनो इकाइयो के सुचारू सचालन पर निभर करती है। दोनो क काय परस्पर इतने सम्बन्धित तथा आश्रित हैं कि एक की निष्क्रियता का दूसरे पर निश्चित प्रभाव पडता है। इतना होने पर भी प्राय यह देखा जाता है कि इन दोना अभिकरणो के कमचारिया के बीच उतना सहयोग तथा सद्भाव नहीं पाया जाता जितना पाया जाना चाहिए। मलविले डाल्टन (Melvile Dalton) ने औद्योगिक सस्थाओ के स्टाफ एव लाइन इकाइयो के सम्बन्धो का अध्ययन कर कुछ निष्कष निकाले हैं जो बहुत कुछ सभी सगठनो के स्टाफ एव लाइन इकाइयो के सम्बन्धो पर लागू होते हैं।

1 Sm n nd Oth rs op c t P 282
2 M l l D lt n Co flicts betwe n St ff nd L ne Manage ial Off cers Amer c S iological Re iew 15 342 351 (Ju 1950)

1 L D Wh t op c p

उद्योग म स्टाफ सगठन का काय शोध करना तथा परामश देना होता है और लाइन सगठन का उत्पादन की प्रक्रिया पर पूरा अधिकार होता है। औद्योगिक स्टाफ सगठन अपेक्षाकृत नए हैं। उनके अस्तित्व के लिए अनक कारण उत्तरदायी हैं जसे आर्थिक प्रतियोगिता वज्ञानिक विकास औद्योगिक विस्तार मजदूर आन्दोलन का विकास आदि। इन सभी तत्त्वो क कारण उद्योगो म विशपज्ञा का महत्व बढ़ता जा रहा है जिसस अधिक उत्पादन एव कायकुशलता की लक्ष्य प्राप्ति क लिए परामश प्राप्त हो सके। विशेषज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं जस—रसायन शास्त्री जन एव औद्योगिक सम्पक अधिकारी इजीनियर लेखापाल आदि। उद्योग म इन लोगा का स्टाफ का व्यक्ति माना जाता है। उनका काय अपन विशेष क्षत्र म ज्ञान का उपयोग और विकास करना है तथा उन अधिकारियो को सलाह देना है जो लाइन सगठन के सदस्य हैं और उत्पादन पर नियन्त्रण रखते हैं।

एक विशेष स्टाफ सगठन म अपन अधीनस्थ अधिकारियो पर एक स्टाफ अधिकारी की सत्ता हो सकती है किन्तु उसकी यह सत्ता उत्पादन कमचारी वग पर नहीं होती। स्टाफ क अधिकारियो से यह आशा की जाती है कि वे बिना औपचारिक सत्ता क भी अपना काय करेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी मानकर चला जाता है कि विशषज्ञा द्वारा उत्पादन तथा कमचारियो पर नियन्त्रण की तकनीकी एव प्रक्रियाओ म सुधार क लिए जो सुझाव दिए जाएँगे उनको लागू किया जाएगा व आशाए एव मान्यताए व्यवहार म परी नहा होती। व्यवहार म औद्योगिक स्टाफ तथा लाइन सगठनो के बीच प्राय सघष पाया जाता है और इन सगठनो क सदस्य अलग अलग मात्राओ म एक दूसर का विरोध करत हैं।

यदि प्रबन्ध के सदस्यो के आपसी सम्बन्धा पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार किया जाए तो इनके बीच सघष निम्न कारणा से हो सकता है—

(1) यदि सगठन म शक्ति क लिए सघष छिड जाए

(2) यदि अनेक सदस्य पदसोपान म अपन स्तर को बढ़ाने का प्रयत्न करे

(3) यदि यूनियन तथा प्रबन्ध के बीच सघष छिड जाए, एव

(4) यदि स्टाफ तथा लाइन क बीच मनमुटाव पदा हो जाए।

प्रबन्ध के प्राय सभी सदस्य सघषपूण व्यवस्था म उलझ रहत हैं विशेषकर मध्य एव निम्न स्तरों पर काम करन वाल व्यक्ति। स्टाफ तथा लाइन क बीच सघष क लिए तीन मूल कारण हैं—प्रथम स्टाफ अधिकारियो क बीच स्पष्ट महत्त्वाकाक्षापूण तथा व्यक्तिवादी व्यवहार। दूसर स्टाफ अपन अस्तित्व को न्यायोचित ठहराने क लिए तथा अपन योगदान क लिए स्वीकृति प्राप्त करन क लिए जो काय करता रहता है उससे अनक उलझनें पदा होती हैं। तीसर उच्चतर स्टाफ अधिकारियो का कायकाल लाइन अधिकारियो की स्वीकृति पर निभर करता है। य तीनो ही शर्तें अपन अपने प्रकार स प्रभाव डालती रहती हैं।

डाल्टन न जिन उद्योगो का अध्ययन किया था उसके कमचारी महत्त्वाकाक्षी अशान्त और व्यक्तिवादी थे। अधिकतर व लोग शीघ्र ही पदोन्नति प्राप्त करने के इच्छुक थ तथा चाहत थ कि उन्हे व्यक्तिगत रूप स मान्यता मिल। इनम समूह की चेतना के भाव इतने प्रयत्नशील थ कि कई बार अन्तस्टाफ भी पदा हो जात थ।

दोनो मे मनमटाव के कारण (Reasons of Antagonism)

स्टाफ तथा लाइन सगठनो क बीच अनेक कारणो स असन्तोष अशान्ति सघष एव मतमुटाव पदा हो जात हैं। स्टाफ के कमचारियो की प्रगति का पथ लम्बा होने के कारण उनम निराशा तथा असन्तोष की भावन ए पन्प हो जाती हैं। वे समझते हैं कि वे उस स्तर तक नही पहु च सकत जिस पर वे पहु चना चाहते हैं। अन्य तत्त्व भी सघष की वृद्धि म सहायक होते हैं। इनमे से मुख्य निम्नलिखित हैं—

1. उम्र मे अन्तर (Difference of Age)—स्टाफ अधिकारी लाइन अधिकारियो की तुलना म प्राय कम उम्र के होत हैं अत उनम अशान्ति की मात्रा अधिक होने के कारण स्थिरता नही रह पाती। यदि उनकी महत्त्वाकाक्षाए बहुत बढी चढी होती हैं तो वे भौतिक सम्पन्नता व्यावसायिक स्तर तथा सुरक्षा की दृष्टि से सुस्थापित नही हो पाते। यदि वे चाहें तो अन्य कही भी अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर सकत हैं। इसके लिए उनके पास शक्ति और पर्याप्त शेष आयु होती है। इसी कारण स्टाफ के सदस्य अधिक अस्थायी एव चलने फिरने होने हैं।

उम्र के अन्तरो के कारण स्टाफ तथा लाइन के बीच सघष म अधिक वृद्धि हो जाती है।[1] स्टाफ का अधिकारी लाइन अधिकारी से अपने काय को स्वीकृत कराना चाहता है किन्तु उस इस काय म सफलता प्राप्त न हो होती क्योकि यहाँ उम्र का विरोध पदा हो जाता है। अधिक उम्र वाले लाइन अधिकारी यह पसन्द नही करते कि उनसे कम उम्र वाले स्टाफ अधिकारी उनको निर्देश दें और उसे वे स्वीकार करें। दूसरी ओर स्टाफ के कमचारी लाइन अधिकारियो के इस दृष्टिकोण से परिचित रहते हैं। स्टाफ तथा लाइन अधिकारियो की मीटिंग मे जब कम अनुभवी स्टाफ अधिकारियो द्वारा कोई विचार किया जाता है तो लाइन अधिकारियो द्वारा उसकी स्पष्ट रूप से उपेक्षा की जाती है। इस प्रकार के व्यवहार की चाहे चिन्ता की जाए अथवा नही किन्तु इससे युवक एव कम अनुभव वाले स्टाफ अधिकारियो के दिल को अवश्य ठेस पहु चती है। उद्योग मे आते समय इन अधिकारियो को यह आशा रहती है कि व अपने ज्ञान एव अनुभव के आधार पर सगठन को अपनी बहुत कुछ देन दे सकेंगे। वे इस बात को सोचते भी नही कि उनके विचारो को यहाँ सुना तक नही जाएगा। इस सबका कारण यह है कि ये अधिकारी केवल पले हुए होते हैं गुने हुए नही।

1 E A R s Pr c ples of Soc logy pp 238 48

L D Wh ... op ...

प्राय वे व्यावहारिक जीवन की वास्तविकताओं की ओर से आंख मूंद कर निश्चय करते हैं कि संगठन के प्रबन्धात्मक सोपान के सदस्यों के साथ युक्तियुक्त एवं सुव्यवस्थित सम्बन्ध स्थापित करेंगे तथा अपने प्रशिक्षण के अनुसार नियमानुकूल व्यवहार करेंगे। किन्तु उद्योग में प्रवेश पाने के बाद उन्हें ज्ञात हो जाता है कि उनके कार्य की स्वतन्त्रता अनेक अनौपचारिक दावों में दबकर रह जाती है। लाइन जो कुछ विशेषता प्राप्त की है वह अधिक महत्व नहीं रखती और वे उसके बिना भी अपने कार्यों को पूर्ण कर सकते थे। संगठन में यदि वे उन्नति करना चाहते हैं तो वे यह खोज करें कि अनौपचारिक रूप में कौनसा लाइन अधिकारी अधिक शक्तिशाली है वह किन विचारों का स्वागत करता है साथ ही उसके उच्च अधिकारी का वे विचार कैसे लगते हैं।

इस सबकी प्रतिक्रियास्वरूप स्टाफ अधिकारी या तो दूसरा कार्य ढूंढने लगते हैं अथवा स्वयं को समायोजित कर या उद्योग में कोई सुरक्षित स्थान ढूंढ कर अपने रहने की सम्भावनाएं बनाते हैं। यदि वे उद्योग में रहने का निश्चय करें तो ऐसी स्थिति में वे किसी रचनात्मक कार्य में अपने आपको लगाने की अपेक्षा विश्वस्त सामाजिक सम्बन्धों का विकास करेंगे जो उन्हें व्यक्तिगत प्रगति में सहायक हो सकें।

2 **स्तरों का पदसोपान** (Hierarchy of Statuses)—संगठन में स्तरों का पदसोपान अथवा उसके औपचारिक ढांचे के कारण स्टाफ के महत्वाकांक्षी अधिकारियों को निराशा हाथ लगती है। स्टाफ संगठनों में शक्ति के स्तर तीन या चार ही होते हैं जबकि लाइन संगठनों में इनकी संख्या पांच से दस तक होती है। इसका परिणाम यह होता है कि स्टाफ कर्मचारियों के उन्नति के अवसर बहुत कम हो जाते हैं। वे ऊपर नहीं चढ़ सकते। एवं महत्वाकांक्षी स्टाफ अधिकारी ऐसी स्थिति में अपनी सत्ता के क्षेत्र को तभी बढ़ा सकता है जब वह अपने अधीनस्थ सहायकों की संख्या में वृद्धि कर ले। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि स्टाफ के कर्मचारियों की संख्या बढ़ जाती है। लाइन की अपेक्षा उनकी संख्या बहुत अधिक हो जाती है। स्टाफ के कर्मचारियों में एक प्रवृत्ति विकसित होती है कि वे लाइन संगठन में आना चाहते हैं क्योंकि वहां सत्ता के स्थान अधिक हैं या सत्ता की मात्रा अधिक है वहां सम्मान अधिक मिलता है और साथ ही आमदनी भी अधिक होती है।

3 **विभिन्न सामाजिक स्तर समूह** (Different Social Status Groups)—लाइन तथा स्टाफ कर्मचारी प्राय विभिन्न सामाजिक स्तर समूहों के होते हैं तथा दोनों के बीच विरोध की भावनाओं का उत्थान में ये भिन्नताएं पर्याप्त महत्वपूर्ण होती हैं। उदाहरण के लिए स्टाफ के सदस्यों का शिक्षा का स्तर लाइन के सदस्यों की तुलना में ऊंचा होता है। इस अन्तर के प्रति स्टाफ के सदस्यों के दिल में रहने

वाली जागरूकता उनमें उच्चता की भावना उत्पन्न कर देती है किन्तु लाइन अधिकारी अपने अनुभव के आधार पर उच्चता की भावना से पीडित रहते हैं। स्टाफ के सदस्य अपनी वस्तु तथा अन्य साज शृंगार का अधिक ध्यान रखते हैं जबकि लाइन अधिकारी प्राय इन विषयों की ओर ध्यान नहीं देते। उत्पादन के कार्यों में रत इन कर्मचारियों के कपडे गन्दे रहते हैं धूल तथा तेल में बिगडे कपडों के साथ नंगे रहते हैं। स्टाफ अधिकारी लिखने तथा बातचीत में अच्छी अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं व लाइट क्लब एवं पार्टीज आदि में जो भाग लेते हैं उसके कारण भी इन दोनों वर्गों की असमानताएं बढ जाती हैं। स्टाफ के कर्मचारियों के रहन सहन का स्तर ऊंचा होता है तथा वे लाइन संगठनों के अधिकारियों को कभी भी अपने बराबर का मान लेना पसन्द नहीं करते।

4/ स्टाफ कर्मचारियों का विशेष व्यवहार (Particular Behaviour of Staff Employees)—अनेक लाइन अधिकारियों के मतानुसार स्टाफ के अधिकारी प्रबन्ध का एक भाग बनकर काय न करते तथा संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में लाइन अधिकारियों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर नहीं चलना चाहते। प्राय इस रूप में व्यवहार करते हैं जिससे वे अपने आप को उच्च प्रबन्ध का एजेंट सिद्ध कर सकें। लाइन अधिकारी उत्पादन की अपनी शक्ति को अत्यन्त पवित्र मानता है और यह पसन्द नहीं करता कि इतने दिनों तक लाइन संगठन में काय करने के बाद उस किसी एम व्यक्ति के निर्देशन की आवश्यकता है जो नवागन्तुक तथा अनुभवहीन है। दूसरी ओर स्टाफ अधिकारी अपने काय को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता है। इन कारणों से दोनों वर्गों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

स्टाफ अधिकारी अपने आपको उच्च प्रबन्ध का एजेण्ट मानने लगता है। वह इसे अपना एक कर्तव्य मानता है कि अपने विचारों एवं शोध द्वारा प्रबन्ध काय में कुछ योग दे। अपनी उच्च शिक्षा तथा उत्पादन के नवीन तरीकों से निकट सम्पर्क रहने के कारण वह स्वयं को प्रबन्ध का परामर्शदाता एवं विशेषज्ञ मानता है। इस दृष्टिकोण के कारण लाइन अफसरों के साथ उनका विवाद छिड जाता है। कभी कभी लाइन संगठन के निम्न स्तर के अधिकारी स्टाफ संगठन के उन निम्न अधिकारियों के साथ मिल जाते हैं जो अपने संगठन के उच्च अधिकारियों की नीतियों से सन्तुष्ट नहीं होते।

5/ पदोन्नति की समस्या (Problem of Promotion)—स्टाफ के कर्मचारी संगठन में प्रवेश तभी पाते हैं जब लाइन संगठन के उच्च अधिकारी उन्हें स्वीकार कर लें—इस तथ्य का स्टाफ कर्मचारियों पर बड़ा प्रभाव पडता है। स्टाफ का प्रत्येक सदस्य यह जानता है कि यदि वह उच्च पद प्राप्त करना चाहता

है तो उसे अपना रिकाड बनाना होगा तथा लाइन सगठन क उच्च अधिकारी के दिन पर योग्यता का प्रभाव डालना होगा। उनकी अनौपचारिक स"स्थाओ को बिना उनक कहे समझने की योग्यता प्रदर्शित करनी होगी। एक प्रभावशाली रिकाड बनान के लिए उसे लाइन की माँगो क साथ समझौता करना पडगा साथ ही अपने स्टाफ के सदस्या की शिकायतें तथा उपालभ सुनन होग कि उसने अपना स्वाभिमान खो दिया है। यदि वह लाइन सगठन मे चला गया तो स्टाफ क ये साथी उससे शत्रुवत् व्यवहार करेंगे। लाइन अधिकारियो को खुश करन के लिए स्टाफ अधिकारी मुख्य रूप स तीन प्रकार क कदम उठा सकते हैं। प्रथम स्टाफ के नियमो का पालन करक द्वितीय नई तकनीकें प्रारम्भ करके तथा तृतीय स्टाफ के शोध एव प्रयोगा पर धन व्यय करके।

सघर्ष कम करन के उपाय
(Efforts to Minimise the Conflict)

लाइन तथा स्टाफ सगठनो के बीच की इस सघर्षपूर्ण स्थिति को कम करने के लिए कोई भी कदम उठान स पूव इसका अस्तित्व स्वीकार करना जरूरी है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि प्रब ध यह अनुभव करे कि इस प्रकार का व्यवहार उत्पादन की कीमत एव परशानी को बढा देता है अत सुधार क उपाय किए जान चाहिए। दोनो सगठनो के सम्बन्धो को अच्छा तथा सहयोगपूर्ण बनान क लिए कई सुझाव दिए जाते हैं। इनम स मुख्य निम्न हैं—

(i) एक पृथक निकाय बना लिया जाए जो स्टाफ तथा लाइन की क्रियाओ क बाच समन्वय स्थापित करे।

(ii) स्टाफ सगठन म पदोन्नति एव पुरस्कार क स्तरो को बढा दिया जाए साथ ही सवीवग की सख्या म भी वृद्धि की जाए।

(iii) स्टाफ सवीवग को जहाँ तक हो सक सामान वेतन दिया जाए। उन्ह अधिक उत्तरदायित्व सौंप जाए तथा लाइन प्रक्रियाओ अथवा कमचारियो पर उनका अधिकार हो।

(iv) स्टाफ सगठन क कमचारियो को लाइन सगठनो म नियुक्त करने स पूव उन्ह थोडा बहुत निरीक्षण का अनुभव करा दिया जाना चाहिए।

(v) सगठन क दोनो ही प्रकारो के दिमाग म स्थित एक दूसरे क प्रति शका एव विरोध क भावो को उच्च प्रबन्धक द्वारा मिटाया जाना चाहिए।

(vi) कालजो तथा विश्वविद्यालयो म शिक्षा देने समय विद्यार्थी को व्यावहारिक जीवन की वास्तविकताओ का ज्ञान कराना चाहिए ताकि व्यवसाय म आन पर व केवल कल्पनाओ क सहारे ही अपना व्यवहार निर्धारित न करें।

लाइन तथा स्टाफ अभिकरणों की वास्तविकता
(Reality of the Two Agencies)

लोक प्रशासन के अनेक विचारकों ने विभिन्न अवसरों पर इस बात में सन्देह प्रकट किया है कि सामान्य में वास्तव में लाइन तथा स्टाफ जैसे दो संगठन होते हैं जिनके कार्यों के बीच भिन्नता रहती है तथा एक सीमा रेखा भी होती है। इन विचारकों के अनुसार नीति से सम्बन्धित प्रत्येक संगठन मन्त्रणा सम्बन्धी कार्य अवश्य करता है इसी प्रकार मन्त्रणा देने वाले संगठनों का नीति के निर्माण में जो महत्त्वपूर्ण स्थान है उसे भुलाया नहीं जा सकता। साथ ही ऐसा संगठन सत्ता विहीन माना जा सकता है यद्यपि उसकी सत्ता का रूप अनौपचारिक होता है। इन तथ्यों के प्रकाश में यह तय करना बड़ा कठिन है कि दोनों प्रकार की इकाइयों के बीच क्या सम्बन्ध है। डिमाक तथा अन्य विद्वानों का कहना है कि लाइन तथा स्टाफ के बीच उचित समायोजन प्रबन्ध के कठिनतम क्षेत्रों में से एक है।[1] लोक प्रशासन के परम्परावादी विचारक इन दोनों अभिकरणों का कार्यक्रम अलग अलग मानते हैं। ओलीवर शेल्डन का कहना है कि स्टाफ संगठन को विचार के लिए साथ विचार कर बनाया जाता है ठीक उसी प्रकार जैसे कि लाइन संगठन क्रियान्वयन के लिए होता है [2]

दोनों अभेद हैं—बाद के लेखकों का यह मत है कि लाइन तथा स्टाफ दोनों अभिकरणों के कार्यों तथा अधिकारों के बीच कोई विभाजन रेखा न खींची जा सकती है और न खींची जानी चाहिए। इन दोनों में कोई ऊँचा नीचा नहीं होता वरन् दोनों ही समान स्तर पर कार्य करते हैं। दोनों संगठनों को एक दूसरे के कार्यों में दखल रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में लेपावस्की का कथन है कि एक स्टाफ का व्यक्ति यदि लाइन को आदेश नहीं देता तो वह प्रभावहीन है इसी प्रकार लाइन का जो व्यक्ति स्टाफ के कार्यों को समझ तथा कर नहीं सकता वह असफल माना जाएगा।

नवीन विकास—आज प्रशासनिक एवं अन्य प्रकार के संगठनों में विशेषज्ञों का सम्मान बढ़ता जा रहा है। उनकी महत्ता एवं आवश्यकता भी बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि स्टाफ के कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करनी पड़ेगी और उन्हें कुछ ऐसे कार्य भी देने होंगे जिनको अभी तक लाइन संगठन के कर्मचारी करते थे। लोक प्रशासन में जब से मानव सम्बन्धों के महत्त्व पर जोर दिया जाने लगा है तथा उसके प्रभाव को सही रूप में समझा जाने लगा है तब से

1 Dimock Dimock and Koenig Public Administration P 150
2 Oliver Sheldon The Philosophy of Management 1923 p 120

इन दोना इकाइयो के भेद से सम्बन्धित परम्परावादी विचार ह के नजर आने लगे हैं। साइमन तथा अन्य लेखकों ने सगठन मे अनौपचारिक सम्बन्धो की सामान्य एव प्रभावशील स्थिति बताने के साथ ही निर्णय लेने की प्रक्रिया जब अधिक स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखी तो लोक प्रशासन का एक नया अध्ययन खुल गया। अब यह समझ मे आ गया कि औपचारिक रूप से चाहे सत्ता किसी भी अभिकरण के किसी अधिकारी को सौंप दी जाए किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वास्तविक व्यवहार मे भी उस सत्ता का प्रयोग वही व्यक्ति करेगा। अनौपचारिक सम्बन्धो के बल पर तथा नेतृत्व के व्यक्तिगत गुणो सचार के सशक्त साधनो एव अर्न्तर प्रेरणाओं के माध्यम से शक्ति का वास्तविक उपभोक्ता कोई अन्य व्यक्ति ही बन सकता है।

स्टाफ की शक्ति—यदि तथ्यों का व्यावहारिक रूप से अध्ययन किया जाए तो हमे ज्ञात होगा कि यह कहना सवथा भ्रामक है कि स्टाफ सगठनो के पास कोई शक्ति नही होती अथवा वे आज्ञा देने का अधिकार नही रखते। स्टाफ के कायकर्त्ताओ को चाहे आज्ञा देने का अधिकार अनौपचारिक रूप से न दिया गया हो किन्तु वे सम्बन्धित उच्च सत्ता के नाम पर बोलते हैं तथा निम्न स्तर के अधिकारियो के लिए उनके सुझावो मे आज्ञा तथा निर्देश की झलक रहती है। इसलिए यह कहा जाता है कि यह मान्यता कि स्टाफ इकाइया आज्ञा नही देती तथा नियन्त्रण नही करती या उनके पास किसी प्रकार की सत्ता नही होती कल्पना मात्र है। स्टाफ सगठन के बारे मे मुख्य रूप से दो सामान्य धारणाएं हैं—प्रथम यह कि यह केवल परामर्श देती है और आज्ञा तथा नियन्त्रण की शक्ति उनके पास नही होती एव दूसरे यह कि मुख्य कायपालिका से इसकी निकटता इतनी होती है कि इसे उसके व्यक्तित्व का ही विस्तार मात्र कहा जाना चाहिए। कुछ विचारकों का मत है कि ये दोनो ही मान्यताएं लोक प्रशासन की गाथा कपोल-कल्पनाएं अथवा भ्रम (Myths or Fictions) हैं। इनका महत्त्व केवल इतना है कि इनके द्वारा सिद्धान्त एव व्यवहार की चौड़ी खाई के बीच पुल बाधने का काय किया जाता है।

निष्कर्ष—एक बार जब लाइन तथा स्टाफ इकाइयो की स्थापना हो जाती है तो हम उनके कार्यों के बीच किसी प्रकार का स्पष्ट अन्तर न ा कर सकते। सहायक इकाई तथा स्टाफ इकाई के मध्य स्थित अन्तरों का वर्णन करते हुए साइमन तथा अन्य ने कहा है कि अधिकांश मामलो मे सहायक तथा स्टाफ इकाइयो के कार्यों के बीच कोई लाइन खीचना असम्भव होता है। दोनो के बीच अन्तर यथार्थ मे यह है कि जब एक विशेष इकाई को स्थापित किया जाता है तो उसके पक्ष मे भिन्न तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं। किन्तु जब ये इकाइयाँ एक बार स्थापित हो जाती हैं तो इनकी

क्रियाम्रो की प्रकृति म कोई अन्तर नही दिखाया जा सकता ।[1] लाइन तथा स्टाफ इकाइयो के बीच प्रारम्भिक सगठनो म अन्तर हो सकता था कि तु आज यह अ तर स्पष्ट नही है । साथ ही दोनो के बीच सम्ब धो की स्थिति भी जटिल बन गई है । आजकल ऐसे सगठन दिखाई नही देते जो अपने आप म पूरा हो । ऐसी हालत म किसी लाइन इकाई को एक काय के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता क्योकि यह उसे करने की पूरी शक्ति नही रखती । सगठन का रूप बदल जाने के बाद भी उसके पुराने कमचारियो एव ग्राहको की स्वामिभक्ति पहले की भाँति उसके साथ जुडी रहती है । वे उसे पुराने स्तर एव प्रकार का ही मानते रहते हैं । उदाहरणाथ अमेरिकी सामाजिक सुरक्षा अभिकरण Social Security Agency को सन् 1936 म जब F S A का स्थानान्तरित कर दिया गया तो उसके निणय के अनेक क्षेत्र स्टाफ सगठन को हस्ता तरित कर दिए गए फिर भी इसे आज तक सामाजिक सुरक्षा के कई कायक्रमो के लिए उत्तरदायी समझा जाता है ।

लाइन इकाइयो को महत्वपूण मानने के सामा य विचार के अतिरिक्त सहायक एव स्टाफ इकाइयो के बारे मे अनेक मनोरजक विश्वास है । इन विश्वासो को मनोरजक इसलिए कहा जाता है क्योकि यद्यपि इन्हे सामान्य रूप स स्वीकार किया जाता है कि तु यदि इनका विश्लेषण किया जाए तो य पूण रूप से असत्य सिद्ध होते हैं । साइमन तथा अन्य विद्वानो न सहायक तथा स्टाफ इकाइयो के इस कल्पनात्मक एव भ्रमात्मक पहलू के सम्ब ध म पर्याप्त विचार किया है । यहाँ उनके वर्णन के अनुसार इन Myths का अध्ययन किया जा रहा है ।

सगठनात्मक इकाइयो की महत्त्वपूण कल्पित कथाएँ
(Important Myths of the Organ sational Units)

सगठन की सहायक तथा स्टाफ इकाइयो के सम्ब ध म अनेक कल्पित कथाए प्रचलित हो गई हैं जिन्हे मुख्यत दो भागो म विभाजित किया जा सकता है—

(i) प्रथम कल्पित कथा का सम्ब ध सहायक (Auxiliary) तथा स्टाफ दोनो ही इकाइयो स है । इसके अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि इन इकाइयो की लाइन इकाई पर किसी प्रकार की सत्ता नही होती । सहायक इकाइयाँ लाइन इकाइयो की सेवा करती हैं उन पर नियन्त्रण नही रखती । इसी प्रकार स्टाफ इकाइयाँ लाइन इकाइयो को परामश मात्र देती हैं आदेश नही ।

(ii) दूसरी कपोल कल्पना का सम्ब ध स्टाफ इकाई स है जिसके अनुसार यह माना जाता है कि स्टाफ इकाइया लाइन इकाइयो की अपेक्षा कायपालिका के अधिक नजदीक होती हैं वे उसी कार्यालय से सम्बद्ध होते हैं अथवा वे उसी के व्यक्तित्व का प्रसार मात्र हैं ।

1 Sim n nd Oth s op cit p 282

इन कल्पित कथाओ को जब सगठन की व्यावहारिक वास्तविकता के सन्दर्भ म देखा जाता है तो इनका चित्र धूमिल पड़ जाता है। साइमन तथा अन्य लेखकों के शब्दों म यदि हम सत्ता को आज्ञा पालन करवाने की योग्यता के रूप म परिभाषित करें तो यह स्पष्ट है कि ये शीर्षोच्च (Overhead) इकाइयाँ सत्ता का प्रयोग करती हैं वे नियन्त्रण भी करती हैं और आज्ञाए भी देती है। कई बार ऐसा होता है कि केन्द्रीय सेवीवर्ग इकाई एक सेवीवर्ग कार्य को स्वीकृति प्रदान करने से इकार कर देती है तो सम्बन्धित लाइन इकाई के पास इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता कि वह इस आदेश के सामने झुक जाए। यही दशा तब होती है जब बजट ब्यूरो का Statistical Standard Division एक फाम को स्वीकार करने से पूर्व उसमे कुछ परिवतन करने की माग रखता है। यदि लाइन इकाई यह परिवतन करने के लिए तयार नहीं है तो उसे बजट ब्यूरो के निर्देशक के यहाँ अपील करनी होगी। यदि वहाँ भी कुछ न हो तो राष्ट्रपति को लिखना होगा। किन्तु ये सब बातें केवल कुछ महत्त्वपूर्ण मामलो म ही की जाती हैं अन्यथा ऐसे कदम उठाने का विरोध ही किया जाता है। इस प्रकार के प्रश्नो पर लाइन इकाई म एक विरोधी भावना घर कर जाती है। इस स्थिति म यह भी हो सकता है कि दोनो इकाइयों का सामान्य सर्वोच्च अधिकारी इस प्रश्न को सुलझाए। किन्तु वह ऐसा नहीं भी करे क्योंकि वह पराजित पक्ष की श्रद्धा तथा विश्वास को खो देने का खतरा मोल लेना नहीं चाहेगा। इसलिए उच्च अधिकारियों के पास ऐसे प्रश्नो म लाइन इकाई की सहायता करने के लिए बहुत कम सद्भावना एव शक्ति रहती है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जब कभी शीर्षोच्च इकाइयाँ लाइन इकाइयो को परामर्श देती हैं तो उनका राय मान लिया जाता है। ये इकाइयाँ तब तक आदेश दे सकती हैं जब तक उच्च अधिकारी उस मामले को उच्च स्तर का प्रश्न न बना दें।

एक दूसरा कल्पित विश्वास जिसका सम्बन्ध स्टाफ इकाई से है यह है कि ये इकाइयाँ (Units) कार्यपालिका के साथ एकरूप रहती हैं। इसका अर्थ यह है कि वे कार्यपालिका के दृष्टिकोण को अपनाकर उसी के लिए उसी की भाषा म बोलती हैं। माना कि यह एक तथ्य है कि कार्यपालिका एसे अनेक लोगो से घिरी रहती है जो उसके विश्वस्त होते है तथा जिनसे वह हर प्रकार का परामर्श प्राप्त करती है। हम ऐसे विश्वस्त लोगो को स्टाफ का नाम देते हैं। किन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि क्या एक कार्यपालिका के पास सचमुच ऐसे लोगो का समूह होता है और यदि होता है तो वे लोग आखिर कौन हैं? हो सकता है कि कार्यपालिका के ये विश्वस्त लोग कुछ लाइन इकाइयों के अध्यक्ष हों। कुछ कार्यपालिकाए दूसरो की अपेक्षा स्वय के समर्थन एव विश्वास पर अधिक निर्भर रहती हैं। इस सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि हम सगठन के वास्तविक व्यवहार का अध्ययन करने के

वा‍ ही यह कह सकते हैं कि उसमें कार्यपालिका के विश्वस्त लोग हैं अथवा नहीं और यदि हैं तो उनकी प्रकृति क्या है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक संगठन में केवल स्टाफ के अधिकारियों को ही ऐसा विश्वस्त व्यक्ति माना जाए।

बड़े संगठनों में जो अनेक विशेषीकृत इकाइयों में उपविभाजित होते हैं इस बात का कोई कारण दिखाई नहीं देता कि स्टाफ के कर्मचारी लाइन की अपेक्षा उच्च प्रबन्ध के अधिक निकट रहते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि कार्यपालिका स्टाफ इकाइयों की ओर ही अधिक ध्यान क्या देगी। वास्तव में वह लाइन इकाइयों के कार्यों में अधिक रुचि लेगी जो सामाजिक रूप से अर्थपूर्ण होते हैं। कर्मचारी वर्ग संगठन प्रबन्ध लेखा आदि स्टाफ से सम्बन्धित कार्य उसके लिए अपेक्षाकृत कम आकर्षक हैं। एक तथ्य यह भी है कि ज्यों-ज्यों संगठन का रूप वृहद् होता जाता है उसकी शीर्षोच्च इकाइयाँ अधिक जटिल बनती जाती हैं। ऐसी स्थिति में इन विशेषीकृत इकाइयों के कर्मचारी अपनी विशेष इकाई के उसके सदस्यों से और उसके कार्यों से एकरूपता स्थापित करेंगे न कि उस कार्यपालिका से जिसके वे स्टाफ माने जाते हैं।

कल्पित कथाएं स्वीकृत क्यों हैं ?

(Why the Myths are accepted ?)

जब हम इन कल्पित कथाओं का जरा-सा भी विश्लेषण करने लगते हैं तो ये असत्य सिद्ध हो जाती हैं तथापि ये क्यों स्वीकृत हो गई हैं? लोग इनमें सामान्य रूप से क्यों विश्वास करते हैं? यह एक सामान्य ज्ञान की बात है कि कोई भी चीज केवल तभी स्वीकृत होती है जब उसका कुछ उपयोग हो। यदि हम इन कल्पित कथाओं की गहरी छानबीन करें तो विदित होगा कि इनके द्वारा भी महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किए जाते हैं। लोग संगठन में जिस प्रकार का व्यवहार चाहते हैं तथा जिस प्रकार का व्यवहार प्रमाण में उनके साथ किया जाता है इन दोनों बातों के बीच पर्याप्त अन्तर रहता है और इन कल्पित कथाओं द्वारा उस अन्तर को पाटने का प्रयास किया जाता है।

संगठन व्यक्ति से किस प्रकार का व्यवहार करे इस सम्बन्ध में समाज में अनेक धारणाएं बन जाती हैं। ये धारणाएं लोगों का एक एकीकृत भाग बन जाती हैं। कल्पनाओं द्वारा उन सामाजिक धारणाओं तथा वास्तविकताओं के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाता है। इन स्वीकृत विश्वासों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय तीन हैं—

1. यदि एक व्यक्ति को किसी कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा जाए तो उस उत्तरदायित्व को निबाहने की शक्ति भी उसे सौंपी जानी चाहिए। इसी आधार पर सामान्यतः यह अनुभव किया जाता है कि यदि एक संगठन की इकाई को कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जाए तो उसे उन लक्ष्यों तक पहुँचने सम्बन्धी

साधनो पर नियन्त्रण रखने की शक्ति भी सौंपी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि पुलिस विभाग को अपराधियों को पकड़ने का उत्तरदायित्व दिया जाता है जिसके निवारण के लिए पेट्रोल कार एक महत्त्वपूर्ण साधन है तो पुलिस विभाग को उसे रखने तथा खरीदने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

अब यदि हमने एक केन्द्रीय क्रय विभाग स्थापित कर दिया तो हम यह कहना होगा कि इस विभाग का पुलिस विभाग पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता और इसका कार्य केवल सेवाएं प्रदान करना है। यद्यपि तथ्य यह है कि किस प्रकार की पट्रोल कार खरीदी जाए इससे सम्बन्धित पुलिस विभाग के निर्णयों को क्रय विभाग उलटा कर सकता है तथापि सत्ता एवं उत्तरदायित्व से सम्बन्धित सामाजिक विश्वास के कारण हमको इसका बौद्धीकरण करना होगा। यहां कल्पित कथा का स्पष्ट कार्य यह है कि इसने इस तथ्य को छिपा लिया कि सहायक विभागों का केन्द्रीकरण लाइन विभागों की पूर्णता एवं सत्ता को कम कर देता है।

2 एक दूसरी मान्यता यह है कि एक व्यक्ति को केवल एक उच्च अधिकारी की आज्ञा का पालन करना चाहिए अर्थात् आदेश की एकता रहनी चाहिए किन्तु संगठन के वास्तविक व्यवहार में हम देखते हैं कि संगठन के सदस्य अनेक लोगों से अनुदेश प्राप्त करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो विशेषीकरण हो ही नहीं सकता था। वास्तविकता यह है कि एक कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के अतिरिक्त सेवीवर्ग अधिकारी एटार्नी इन्जीनियर डाक्टर तथा संगठन के अन्य विशेषज्ञों की आज्ञा का पालन करता है। यदि वह ऐसा न करे तो ये विशेषज्ञ सम्भाग बनाए ही न जाते अथवा समाप्त कर दिए जाते।

आदेश की एकता के सिद्धान्त तथा संगठन के वास्तविक व्यवहार के बीच एक गहरी खाई उत्पन्न हो जाती है जिसे भरने में स्टाफ से सम्बन्धित कल्पित कथा महत्त्वपूर्ण योग देती है। इसके अनुसार यह कहा जाता है कि विशेषीकृत स्टाफ इकाइयों की आज्ञाएं वास्तव में उनकी आज्ञाएं नहीं होती ये कार्यपालिका की आज्ञाएं होती हैं। स्टाफ इकाइयां उसी के नाम से बोलती हैं वे कार्यपालिका का भाग हैं उनकी शक्ति वास्तव में उसकी शक्ति है।

3 एक तीसरी मान्यता के अनुसार एक व्यक्ति को निम्न स्तर के व्यक्ति से आदेश ग्रहण नहीं करने चाहिए। जब विशेषज्ञ स्टाफ के सदस्य आदेश प्रसारित करते हैं तो इसका अर्थ यही होता है कि ये इन इकाइयों के निकटस्थ सदस्यों के आदेश हैं। विशेषीकरण का यही लाभ होता है कि उससे कार्य को इतना आसान बना दिया जाता है कि उसे कम खर्चीले व्यक्ति भी पूरा कर सकें। यद्यपि विशेषज्ञ-वर्ग आज्ञाएं प्रसारित करता है किन्तु उसके सम्बन्ध में स्टाफ की एक कल्पित कथा यह बन गई है कि कनिष्ठ सदस्य वरिष्ठ सदस्य को आज्ञाएं नहीं देता। असल में यह

उच्च शक्तिवान कायपालिका की आज्ञा होती है जो स्टाफ अधिकारी के माध्यम से दी जाती है। यह अधिकारी केवल कायपालिका की ओर से बोलता है।

य कल्पित कथाए चाह कितनी भी सामान्य तथा सवस्वीकृत क्या न हो इन पर वे लाइन अधिकारी विश्वास नही कर सकते जिनको वास्तविक अनुभव होता है। ये लोग इस तथ्य को कठिनाई से ही भुला सकते हैं कि वास्तविक शक्ति विशेषज्ञ तथा बजट परीक्षकों द्वारा प्रयुक्त की जा रही है तथा स्टाफ के सदस्य यह नहीं जान सकते कि कायपालिका के मन मे क्या है। सगठन के स्टाफ कमचारी इन कल्पित कथाओ का प्रचार करते हैं तथा इनमे विश्वास करते हैं क्योंकि इनसे उनकी शक्ति यायोचित बनती है। ये कल्पित कथाए चाहे कितनी भी असत्य क्यो न हो तब तक माने जाते रहेंगी जब तक सामान्यत यह विश्वास किया जाएगा कि उत्तरदायित्व के साथ शक्ति दी जानी चाहिए तथा आदेश की एकता रहनी चाहिए और यह सदव उच्च अधिकारी द्वारा निम्न अधिकारी को दिया जाना चाहिए। कभी कभी लाइन अधिकारी इन कल्पित कथाओ म अविश्वास प्रकट करते हैं किन्तु इसका अथ यह कदापि नही है कि मानव कल्पना पर से इनका प्रभाव हट गया है। सयुक्तराज्य अमेरिका के हूवर आयोग की रिपोट देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इतने जनप्रिय एव लोकप्रसिद्ध सदस्यो वाला एक आयोग भी कल्पित कथाओ से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

———

5

वज्ञानिक प्रब ध टेलर तथा फेयोल का योगदान
(Scientific Management Contribution of Taylor and Fayol)

20वी शता दी म स्वचालन (Automation) एव कम्प्यूटर तकनीकी (Computer Technology) के विकास तथा विज्ञान जगत म अनेक आविष्कारो क परिणामस्वरूप उत्पादन क पमाने तथा विधियो म महत्त्वपूर्ण परिवतन हुए हैं। 19वी शता दी म प्रब ध क क्षेत्र मे परम्परागत विचारधारा पाई जाती थी। इसके अन्तगत प्रब ध का दायित्व साधनो की सहायता स उत्पादन करक स्वामी क लाभ को अधिकतम करना था। उत्पादन की विधियाँ तकनीकी सभी पुरानी होती थी। लकिन आधुनिक समय म विशष रूप से 20वी शता दी के प्रारम्भ स ही इस विचारधारा म परिवतन हुआ तथा इसके अन्तगत नवीन उत्पादन की विधिया नए प्रब ध के सिद्धान्तो एव व्यवहारो का काम मे लाया जान लगा है तथा प्रब ध का दायित्व केवल स्वामी क लाभ को अधिकतम करन तक ही सीमित नही है बल्कि अब कमचारियो अशधारियो समाज सरकार व राष्ट्र क प्रति कई दायित्वो को निभाना पडता है। उदाहरणाथ कमचारियो को ऊ चा वेतन तथा अच्छी काय की दशाए अशधारियो को लाभाश का वितरण ऊ ची दर पर समाज को रोजगार प्रदान करना सरकार की नीतियो का समथन तथा लगाए गए कर का भुगतान एव राष्ट्रीय हित म अधिक उत्पादन करना तथा उपभोक्ताओ को कम कीमत पर अच्छी वस्तु की पूर्ति करना आदि उत्तरदायित्व आधुनिक प्रब धको का निभान पडते हैं। इन्हे प्रब ध क सामाजिक दायित्व (Social Responsibilities of Management) कहा जाता है।

वज्ञानिक प्रब ध का अथ
(Meaning of Scientific Management)

वज्ञानिक प्रब ध एक विचारधारा एव दशन है जो कि परम्परागत काय करान व करन के अगूठा के नियम (Rule of Thumb) का विरोधी है। इसके अन्तगत किसी भी औद्योगिक सस्थान म काय करन तथा श्रमिको से काय लेन क वज्ञानिक ढग को शामिल किया जाता है जिससे सम्बन्धित सस्थान मे प्रब ध की समस्त समस्याए दूर हो जाए। इसमे अनुस धान एव प्रयोग आकडो का सग्रहण आँकडो का विश्लेषण एव उनक आधार पर सिद्धान्तो का निमाण किया जाता है। इसक

10 अधिकार एवं उत्तरदायित्व—वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत संस्थान कार्य करने वाले कर्मचारियों के अधिकार तथा उत्तरदायित्वों की सीमा भी निर्धारित की जाती है। छोटे पैमाने पर उत्पादन करने पर अधिकार तथा उत्तरदायित्व का भार एक ही व्यक्ति पर होता है लेकिन आधुनिक समय में उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण आधुनिक उत्पादन प्रणाली का आधार है। इसके अन्तर्गत विभिन्न कर्मचारियों के अधिकार तथा उत्तरदायित्व निश्चित कर दिए जाते हैं।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के लक्ष्य एवं उद्देश्य
(Aims and Objectives of Scientific Management)

प्रबन्ध की विभिन्न समस्याओं के निवारण हेतु वैज्ञानिक प्रबन्ध अपनाया गया है। इसके प्रमुख लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नांकित है—

1 अधिकतम पारस्परिक समृद्धि लाना—वैज्ञानिक प्रबन्ध भौतिक एवं मानवीय साधनों के बीच समन्वय एवं सहयोग उत्पन्न करके उत्पादन में वृद्धि करता है। इससे विभिन्न साधनों को अधिकतम पारिश्रमिक (Remuneration) प्राप्त होगा। श्रम और पूंजी के बीच पारस्परिक विश्वास व सहयोग उत्पन्न करके उनकी समृद्धि में सहायक होता है।

2 कार्यकुशलता में वृद्धि—वैज्ञानिक प्रबन्ध के द्वारा कर्मचारियों के कार्य की दशाओं में सुधार किया जाता है उनकी शिक्षा व प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाती है तथा कर्मचारियों की भर्ती एवं चयन वैज्ञानिक आधार पर किया जाता है। इससे सभी कर्मचारियों की कार्य कुशलता में वृद्धि होगी।

3 मानसिक क्रान्ति उत्पन्न करना—टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध का उद्देश्य मानसिक क्रान्ति को उत्पन्न करना है। इससे श्रम व पूंजी के बीच अच्छे सहयोगी एवं विश्वासपूर्ण सम्बन्धों का विकास हो सकेगा।

4 प्रबन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण—इसका उद्देश्य प्रबन्ध के क्षेत्र में परम्परागत प्रबन्धकीय दृष्टिकोण को त्यागकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। इसमें अंगूठा नियम (Rule of Thumb) के स्थान पर वैज्ञानिक रीतियों एवं सिद्धान्तों को लागू किया जाता है जिससे अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को पूरा किया जा सके। उत्पादन वित्त कार्मिक (Personnel) बिक्री आदि विभागों में वैज्ञानिक रीतियों व सिद्धान्तों को लागू करना है।

5 न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन—जब वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत विभिन्न सिद्धान्तों विधियों एवं नियमों का उपयोग किया जाएगा तो इससे समय श्रम तथा अन्य उत्पादन के साधनों के अपव्यय पर प्रभावपूर्ण ढंग से रोक लग सकेगी और इससे न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा।

6 अन्य उद्देश्य—वैज्ञानिक प्रबन्ध के अपनाने में अन्य उद्देश्यों की पूर्ति भी

सम्भावना होती है उदाहरणार्थ–निश्चित योजना को लागू करना, प्रमापित वस्तुओं का उत्पादन करना, प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियों के अनुसार श्रमिकों को मजदूरी का भुगतान करना, श्रमिकों की कार्यकुशलता, रुचि, थकान, गति, समय आदि का समय-समय पर अध्ययन करना आदि।

वैज्ञानिक प्रबन्ध का क्षेत्र
(Scope of Scientific Management)

वैज्ञानिक प्रबन्ध एक गतिशील एवं सुव्यवस्थित मानवीय दृष्टिकोण है जिसका प्रयोग प्रत्येक मानवीय क्रिया में किया जा सकता है। स्वयं टेलर ने लिखा है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध के आधारभूत सिद्धान्त उन सभी मानवीय क्रियाओं पर लागू होते हैं–हमारे सरलतम व्यक्तिगत कार्यों से लेकर महान् निगमों के कार्यों तक जिन कार्यों में व्यापक सहयोग की आशा रहती है। लेकिन इस कथन के बावजूद भी प्रारम्भ में यही समझा जाता था कि वैज्ञानिक प्रबन्ध का क्षेत्र केवल इंजीनियरिंग उद्योग तक ही सीमित है लेकिन धीरे धीरे यह बात अब कमजोर पड़ गई है। अब वैज्ञानिक प्रबन्ध के दर्शन, सिद्धान्त एवं नियम तथा विधियाँ न केवल व्यावसायिक, औद्योगिक एवं आर्थिक क्रियाओं पर ही लागू होती हैं वरन् इनका उपयोग सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाओं में भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध एक मानवीय दृष्टिकोण है जो कि वैज्ञानिक रीतियों, सिद्धान्तों, नियमों व विधियों को अपनाकर सहयोग में किए जाने वाले प्रत्येक कार्य विवेकपूर्ण ढंग से किए जाते हैं। वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त समान रूप से सभी सामाजिक कार्यों गृह प्रबन्ध, छोटे बड़े व्यवसाय के प्रबन्ध, बैंक के प्रबन्ध, विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध एवं सरकारी विभागों के प्रबन्ध में लागू किए जा सकते हैं। जो उर्विक के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध प्रबन्ध के विभिन्न क्षेत्रों में लागू किया जाता है। ये विभिन्न क्षेत्र हैं–(i) वित्त (Finance) (ii) वितरण (Distribution) (iii) संगठन (Organisation) (iv) प्रमापीकरण (Standardisation) एवं (v) सरलीकरण (Simplification)।

प्रबन्ध के वित्तीय विभागों में बजट नियन्त्रण करने की विधियों का उपयोग किया जाता है। वितरण विभाग में बाजार सर्वेक्षण, समंकों का संग्रहण, वितरण प्रणालियों का चयन, विक्रय क्षेत्रों का विभाजन एवं विक्रेताओं का चुनाव आदि कार्यों में वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू किया जा सकता है। इसी प्रकार कर्मचारी प्रबन्ध (Personnel Management) में कर्मचारियों की भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, सेवामुक्ति आदि में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों एवं रीतियों का प्रत्येक मानवीय क्रिया में लागू किया जा सकता है चाहे मानवीय क्रियायें घर पर की जाती हैं अथवा उद्योगों में की जाती हैं।

वैज्ञानिक प्रबन्ध एवं परम्परागत प्रबन्ध में अन्तर
(Distinction between Scientific Management and Traditional Management)

वैज्ञानिक प्रबन्ध एवं परम्परागत प्रबन्ध दो भिन्न-भिन्न प्रबन्ध व्यवस्थाएँ हैं। इनका युग अलग-अलग रहा है। 19वीं शताब्दी में परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था विद्यमान थी लेकिन 20वीं शताब्दी में इसके स्थान पर एक प्रगतिशील एवं मानवीय दृष्टिकोण वाली प्रबन्ध व्यवस्था का उदय हुआ। इसे वैज्ञानिक प्रबन्ध के नाम से पुकारा जाता है। इस व्यवस्था में अन्तर्गत प्रबन्ध के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक आधार पर विभिन्न विधियों, सिद्धान्तों एवं पद्धतियों का उपयोग किया जाता है।

टेलर ने परम्परागत प्रबन्ध एवं वैज्ञानिक प्रबन्ध में निम्नांकित अन्तर बतलाए हैं—

1. वैज्ञानिक प्रबन्ध में कई तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों का वैज्ञानिक चयन, प्रशिक्षण, कार्य पूरा करने में उनका सहयोग प्राप्त करना, प्रबन्धकों व श्रमिकों के बीच कार्य एवं उत्तरदायित्व का बटवारा तथा प्राचीन अंगूठा नियम (Rule of Thumb) के स्थान पर वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करना आदि आते हैं। इसके विपरीत परम्परागत प्रबन्ध के अन्तर्गत कर्मचारियों का चयन, प्रशिक्षण, कार्य तथा उत्तरदायित्व के बंटवारे के सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक आधार नहीं अपनाया जाता है। इसमें श्रमिकों की भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, कार्य विभाजन, उत्तरदायित्व आदि मनमाने ढंग पर निश्चित किए जाते हैं। प्रबन्धक अंगूठे के नियम का सहारा लेता है।

2. वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रबन्धकों द्वारा संस्थान के कार्य का पूर्वानुमान लगाया जाता है और उसकी योजना तैयार की जाती है। योजनाबद्ध तरीके से संस्थान के कार्यों का निष्पादन करने हेतु कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त किया जाता है, उन्हें निर्देशित किया जाता है तथा विभिन्न क्रियाओं का समन्वय व नियन्त्रण किया जाता है। लेकिन परम्परागत प्रबन्ध के अन्तर्गत योजनाबद्ध तरीके से कार्य नहीं किया जाता है। कार्य को पूरा करने की पूर्ण जिम्मेदारी कर्मचारियों की होती है जबकि प्रबन्धक केवल आदेश मात्र देता है।

3. वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत पूँजी और श्रम के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध एवं विश्वास स्थापित करने हेतु मानसिक क्रान्ति (Mental Revolution) उत्पन्न करने का कार्य करता है जबकि परम्परागत प्रबन्ध के अन्तर्गत श्रम व पूँजी के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के कोई प्रयास नहीं किए जाते हैं, यह प्रबन्ध स्वामी-सेवक धारणा (Master servant Concept) पर पूर्ण रूप से आधारित होता है। इसमें मानसिक क्रान्ति का कोई स्थान नहीं है।

4 वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करने तथा अधिक रुचि लेकर कार्य करने हेतु उन्हें प्रेरणाएं दी जाती हैं। प्रेरणा योजना (Incentive Plan) के अन्तर्गत श्रमिकों को प्रेरणात्मक मजदूरियां (Incentive Wages) दी जाती हैं उन्हें कार्य की अच्छी दिशाएं, पदोन्नति, कार्य की अल्पावधि आदि रूपों मे प्रेरणा दी जाती है। लेकिन परम्परागत प्रबन्धक के अन्तर्गत इस प्रकार की योजनाओं को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। सभी श्रमिकों को समान मजदूरी दी जाती है।

5 वैज्ञानिक प्रबन्धक के अन्तर्गत प्रबन्ध जगत् की समस्याओं के हल हेतु वैज्ञानिक सिद्धान्तों, विधियों, रीतियों एवं नियमों का उपयोग किया जाता है। इससे प्रबन्ध क्षेत्र की समस्याओं का हल शीघ्र और समय पर हो जाता है। लेकिन परम्परागत प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रबन्ध समस्याओं का निवारण परम्परागत सिद्धान्तों, व्यवहारों, विधियों एवं नियमों द्वारा किया जाता है।

6 वैज्ञानिक प्रबन्ध का उद्देश्य व्यक्तिगत हितों की पूर्ति न करके सामूहिक प्रयासों द्वारा सामूहिक हितों की पूर्ति करना है। इससे सामूहिक एवं पारस्परिक समृद्धि को प्रोत्साहन मिलेगा और वर्ग संघर्ष के स्थान पर सस्थान में शान्ति स्थापित की जा सकेगी। इसके विपरीत परम्परागत प्रबन्ध के अन्तर्गत श्रमिकों को न्यून मजदूरी देकर उनका शोषण करना है। इससे स्वामी या प्रबन्ध का लाभ अधिकतम हो सकता। यहाँ व्यक्तिगत हितों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

इस प्रकार टेलर के शब्दों में हम कह सकते हैं कि साधारण प्रकार के प्रबन्धक से अंगूठा के नियम की प्रतिस्थापना हेतु वैज्ञानिक ज्ञान का विकास, व्यक्तियों का वैज्ञानिक चयन तथा व्यक्तियों का उन वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने को अभिप्रेरित करना एक बिल्कुल असगत प्रश्न होगा।

वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन को प्रभावित करने वाली विचारधाराएं

प्रो हेन्स एवं प्रो मैसी (Haynes & Massie) के अनुसार वर्तमान समय में छः विचारधाराएं हैं जिन्होंने वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन को प्रभावित किया है। वे हैं—

(1) परिमाणात्मक विचारधाराएं (Quantitative Approaches)
(2) प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र एवं लेखांकन (Managerial Economics & Accounting)
(3) प्रबन्ध की सर्वव्यापकताएं (Universals of Management)
(4) वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management)
(5) मानव सम्बन्ध (Human Relations)
(6) व्यवहारवादी विज्ञान (Behavioural Sciences)

प्रथम विचारधारा में शेवार्ट (Shewart), फेलर (Feller), कूपमन्स (Koopmans), द्वितीय में मार्शल ब्लाक, तृतीय में मनी एवं रीले, चतुर्थ में टेलर, गन्ट, गिलब्रेथ, पाँचवीं में मायो, रोथलिसबर्गर, मेग्रगर तथा अन्तिम विचारधारा में एंडरसन, नाइक, मार्शल आदि सम्मिलित हैं। फिर भी वैज्ञानिक प्रबन्ध जगत में टेलर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन विचारधाराओं के अतिरिक्त हेनरी फयोल द्वारा प्रतिपादित क्रियात्मक दृष्टिकोण (Functional Approach) का भी अपना स्थान है। हेनरी फयोल भी टेलर के समकालीन प्रबन्ध जगत के प्रमुख योगदानकर्ता थे। उन्होंने सर्वप्रथम प्रशासन का सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Administration) का प्रतिपादन किया था जिसका समस्त यूरोपीय उद्योग पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

प्रस्तुत अध्याय में हम सर्वप्रथम हेनरी फयोल (Henry Fayol 1841–1925) के प्रशासन के सिद्धान्त और तत्पश्चात् टेलर (F. W. Taylor 1856–1915) के दर्शन का विस्तार से विवेचन करेंगे। टेलर को वैज्ञानिक प्रबन्ध का जनक (Father of Scientific Management) कहा जाता है और बाद में वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का अन्य विद्वानों द्वारा विकास किया गया। अतः हम वैज्ञानिक प्रबन्ध का विस्तार से विवरण करेंगे।

हेनरी फेयोल का योगदान
(Contribution of Henry Fayol 1841–1925)

एफ. डब्ल्यू. टेलर के समकालीन हेनरी फयोल को ही यह श्रेय जाता है कि उन्होंने सर्वप्रथम प्रशासन के सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Administration) का प्रतिपादन किया जिसने समस्त यूरोपीय उद्योग को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। इनका का जन्म सन् 1841 में फ्रांस में हुआ था। उन्होंने सन् 1860 में खनिज अभियन्ता की उपाधि प्राप्त करके Commentafy Fourchambault Company में उसी वर्ष कनिष्ठ अभियन्ता (J. En.) के पद पर कार्य करना शुरू कर दिया। बाद में इसी कम्पनी के वे प्रबन्ध सचालक बना दिए गए। इन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अपने विचार प्रकट किए जो कि क्रियात्मक विश्लेषण (Function 1 Analy is) के महत्त्व पर जोर देते हैं। इन्होंने 1916 में General & Industrial Administration नामक पुस्तक लिखी।

प्रो. कुण्टज एवं प्रो. ओ डोनल के अनुसार "शायद आधुनिक प्रबन्ध सिद्धान्त का वास्तविक जनक फ्रांसीसी उद्योगपति फयोल ही है।"[1]

1 *Koontz Donnel* Principles of Management p 23

अमेरिका तथा इंग्लण्ड में सन् 1920 तथा उसके पश्चात् भी इनके विचारों को कोई न जान सका था क्योंकि इनकी पुस्तक General Theory of Administration सन् 1916 में फ्रांसिसी भाषा में छपी थी। लेकिन सन् 1929 में इसका अनुवाद अंग्रेजी में हुआ।

हेनरी फयोल एक व्यावहारिक एवं अनुभवी व्यवसायी था। उसने जो भी प्रबन्ध के क्षेत्र में योगदान दिया वह सब उसके प्रबन्धकीय जीवन पर आधारित था। हेनरी फयोल द्वारा दिए गए प्रबन्धकीय योगदान को निम्न आधारों पर जाना जा सकता है—

(1) औद्योगिक क्रियाएँ
(Industrial Activities)

फयोल के अनुसार सभी औद्योगिक संस्थाओं में निम्न 6 क्रियाएं देखने को मिलती हैं—

(i) तकनीकी क्रियाएं (Technical Activities)—इनमें उत्पादन निर्माणकारी तथा अनुकूलता सम्बन्धी क्रियाओं को शामिल किया जाता है।

(ii) व्यापारिक क्रियाएं (Commercial Activities)—इनमें क्रय विक्रय एवं विनिमय का समावेश किया जाता है।

(iii) वित्तीय क्रियाएं (Financial Activities)—इनमें पूंजी प्राप्ति तथा उसके श्रेष्ठतम उपयोग को सम्मिलित किया जाता है।

(iv) सुरक्षा क्रियाएं (Security Activities)—इनमें जान माल की सुरक्षा सम्बन्धी क्रियाएं आती हैं।

(v) लेखाकर्म क्रियाएं (Accounting Activities)—इनमें हिसाब-किताब रखने लागत निर्धारण तथा आंकड़े एकत्रित करने सम्बन्धी क्रियाएं आती हैं।

(vi) प्रबन्धकीय क्रियाएं (Managerial Activties)—इनमें नियोजन संगठन आदेश समन्वय एवं नियन्त्रण आदि का समावेश किया जाता है।

हेनरी फयोल के अनुसार ये क्रियाएं प्रत्येक आकार के व्यवसाय में पाई जाती है।

(2) प्रबन्ध के तत्त्व
(Elements of Management)

प्रबन्धकीय क्रिया को पांच तत्त्वों अथवा कार्यों के रूप में विभाजित किया गया है उदाहरणार्थ—नियोजन, संगठन आदेश समन्वय और नियन्त्रण। फयोल ने प्रशासन को प्रबन्ध से अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। यही कारण है कि इन तत्त्वों या कार्यों को प्रशासन के नाम भी कहा गया है। ये तत्त्व इस प्रकार हैं—

(i) नियोजन (Planning)—नियोजन में पूर्वानुमान एवं निर्णय को शामिल किया जाता है। इसके अन्तर्गत भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाया जाता

है और कार्य की योजना तैयार की जाती है। कार्य की योजना (Plan of action) उद्यम के साधनों कार्य की प्रकृति एवं महत्त्व तथा व्यवसाय की भावी प्रवृत्तियों पर निर्भर करती है। एक अच्छी योजना के अन्तर्गत एकता, निरंतरता नम्यता (Flexibility) और निश्चितता (Precision) आदि विशेषताएं होनी चाहिए। हेनरी फेयोल ने आगे देखना (Prevoyance) को नियोजन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है क्योंकि इससे भविष्य का अनुमान लगाकर उसके बारे में नियोजन तैयार किया जा सकता है। प्रबंध की योग्यता एवं कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि नियोजन किस ढंग से तैयार किया जाता है।

(ii) संगठन (Organisation)— इसके द्वारा किसी भी उपक्रम को सही ढंग से चलाने हेतु आवश्यक कच्चा माल औजार पूंजी कर्मचारी आदि की पूर्ति करना है। यह एक ऐसा ढांचा है जिसके माध्यम से मानवीय एवं भौतिक साधनों को आवश्यक दशाएं प्रदान करके उत्पादन का कार्य किया जाता है। इसमें कर्मचारियों के विवेकपूर्ण चयन एवं निरन्तर प्रशिक्षण को भी शामिल किया जाता है।

(iii) आदेश (Command)—इस तत्व के माध्यम से किसी भी उपक्रम में कार्यरत कर्मचारियों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। प्रबन्धकों को अपने संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों की एकता शक्ति एवं प्रेरणा को बनाए रखने और उनमें संस्थान के प्रति आस्था उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। हेनरी फयाल का कहना है कि आदेश की कला प्रबंध के व्यक्तिगत गुणों एवं प्रबन्ध के सामान्य सिद्धान्तों के ज्ञान पर निर्भर करती है। प्रशासकों को कर्मचारियों के बारे में पूर्ण जानकारी रखनी चाहिए तथा अयोग्य कर्मचारियों की छंटनी कर देनी चाहिए।

(iv) समन्वय (Co-ordination)—हेनरी फयाल के अनुसार यह प्रबंध का वह कार्य है जिसके माध्यम से संस्थान की विभिन्न क्रियाओं में इस प्रकार तालमेल बैठाना कि कार्य सुगमतापूर्वक चलता रहे और किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। विभिन्न प्रबंधकीय कार्यों उत्पादन, उपभोग वित्त विक्रय आदि में समन्वय करना आवश्यक है। समन्वय सही रूप में प्रबंध का हृदय (Heart of Management) कहा जाता है। समन्वय के कार्य को सुधारने एवं सफल बनाने हेतु विभिन्न विभागाध्यक्षों एवं सम्बंधित अधिकारियों की समय समय पर सभाएं बुलानी चाहिए।

(v) नियन्त्रण (Control)—हेनरी फयाल के अनुसार नियन्त्रण का कार्य संगठन में पाई जाने वाली दुर्बलताओं एवं गलतियों का सुधारना है। इन गलतियों एवं दुर्बलताओं की पुनरावृत्ति को रोकना भी इसी के अन्तर्गत आता है। नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक है। इसमें प्रत्येक वस्तु व्यक्ति एवं क्रिया को सम्मिलित किया जाता है। फयोल के अनुसार एक प्रभावी नियन्त्रण में दो महत्त्वपूर्ण बातों पर जोर

ि या गया है—प्रक्रम नियन्त्रण सम्बन्धी काय समय पर किया जाना चाहिए एव वित्तीय नियन्त्रण विभिन्न अनुज्ञाओं (Sanctions) द्वारा किया जाना चाहिए ।

(3) प्रबन्ध के सिद्धान्त

(Principles of Management)

हनरी फयोल न अपनी पुस्तक General and Industrial Administra tion 1916 म प्रबन्ध के सामान्य सिद्धान्तो की विस्तृत रूप म व्याख्या की है। उनक अनुसार किसी भी औद्योगिक सस्थान का प्रब ध करन हेतु प्रब धको को कुछ सामान्य आधारभूत सिद्धान्तो का ज्ञान होना आवश्यक है। य सिद्धान्त लोचपूर्ण हैं जिनको किसी भी स्थिति म लागू किया जा सकता है। य 14 सिद्धान्त हनरी फयोल का प्रबन्ध जगत् को एक महान् देन है। य सिद्धान्त इस प्रकार है—

(i) काय का विभाजन (Divi ion of Work) हनरी फयोल के अनुसार विशिष्टीकरण एव प्रमापीकरण स अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु प्रत्यक उपक्रम या सस्थान मे काय का निष्पादन श्रम विभाजन क सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए। इसस उत्पादन के मानवीय एव भौतिक साधनो की कायकुशलता म वृद्धि की जा सकती है और न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। फयोल न इस सिद्धान्त को प्रब धकीय एव तकनीकी सभी कार्यों म लागू करन का प्रस्ताव किया है। फिर भी कार्य विभाजन की अपनी सीमाए होती हैं। अत इन सीमाओ को ध्यान म रखत हुए काय विभाजन हो अथवा नियोजन सामान्य एव नियन्त्रण सम्बन्धी कठिनाइया उत्पन्न हो जाएगी।

(ii) अधिकार एव उत्तरदायित्व (Authority and Responsibil ty)—फयोल क अनुसार प्रब ध म इन दोनो का घनिष्ठ सम्ब ध है। ये एक दूसर के साथ काम म आता है। बिना अधिकार के उत्तरदायित्व और बिना दायित्व के अधिकार व्यर्थ है। इसलिए फयोल न इन दोनो म समानता लान पर जोर दिया है क्योंकि ये एक काय के दो पहलू है जिनका उपयोग प्रत्यक व्यावसायिक क्रिया म किया जाता है। किसी भी व्यक्ति को काय को करन क उत्तरदायित्व सौंपने के साथ साथ उसे अधिकार भी दिए जान चाहिए। ये दोनो साथ साथ चलने चाहिए। अधिकारो क अन्तगत कई सयोजन सम्मिलित किए जात है। इनम प्रब धक को प्रबन्धक मण्डल स प्राप्त अधिकार तथा उसक व्यक्तिगत गुणा अर्थात् उनका पद व्यक्ति व बुद्धिमत्ता अनुभव नतिक बल तथा पिछली सवाओ का समावेश हो उसक अधिकार क्षेत्र को इंगित करता है।

(iii) अनुशासन (Discipline)—इसके अन्तगत उन सभी समझौतो के हेतु आदर को सम्मिलित किया जाता है जिसस आज्ञाकारिता व्यावहारिकता शक्ति एव आदर आदि प्राप्त हेतु निर्देश दिए जाते हैं। हेनरी फयोल के अनुसार किसी भी सस्थान म अनुशासन उसके प्रबन्धक के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। एक अच्छे

अनुशासन हेतु एक सफल नेतृत्व की आवश्यकता है। इसमे तीन बातो का होना आवश्यक है—

1 सभी स्तरो पर अच्छे एव सुनियोजित पयवेक्षण (Supervision) का होना।
2 समझौते स्पष्ट एव उचित होने चाहिए।
3 दण्ड विधान को दृढतापूवक एव विवेक के साथ लागू करने का प्रावधान होना चाहिए।

(iv) आदेश की एकता (Unity of Command)—इसके अन्तगत एक सस्थान म कायरत कमचारियो को आदेश एक ही अधिकारी से प्राप्त होने चाहिए। एक कमचारी को एक से अधिक अधिकारियो से आदेश मिलने पर वह भ्रम म पड जाएगा। अपने दायित्व को सही रूप म नहीं निभा सकेगा। अत कमचारी का एक ही अधिकारी हो जिससे कि वह समय पर काय का आदेश प्राप्त होने ही कर ले तथा उत्तरदायित्व व अनुशासन आदि गुणो मे किसी प्रकार की कमी न आए।

(v) निर्देश की एकरूपता (Unity of Direction)—इसके अनुसार प्रत्येक एक समान उद्देश्य वाली क्रियाओ के समूह की एक ही योजना हो तथा उसका अधिकारी भी एक ही हो और इस अधिकारी द्वारा दिए जाने वाले निर्देशो म एक रूपता का होना आवश्यक है जिससे कि क्रियाओ एव प्रयासो म समन्वय आसानी से किया जा सके और किसी प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न न हो। फयाल ने आदेशो की एकता तथा निर्देशो की एकरूपता का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि आदेशो की एकता का सम्बन्ध कवल विभिन्न स्तरो पर कायरत कमचारियो से है जबकि निर्देशो की एकरूपता समूचे निगम शरीर (Corporate body) म सम्बन्धित है। अत जिस प्रकार शरीर पर एक सिर से अधिक होना राक्षस की निशानी है उसी प्रकार निगम रूपी शरीर पर भी एक ही सिर (अधिकारी) होना अधिक उचित होगा।

(vi) व्यक्तिगत हित की तुलना म सामान्य हित को महत्त्व (Subordination of Individual Interest to General Interest)—किसी भी सस्थान म व्यक्तिगत हितो एव सामान्य हितो म सघष नहीं होना चाहिए। यह सर्वोच्च प्रशासको एव प्रबन्धको का दायित्व है कि वे व्यक्तिगत हितो का त्याग कर सस्थान के सामान्य हितो की ओर सभी कमचारियो का ध्यान आकर्षित करें। व्यक्तिगत हितो एव सामान्य हितो म समन्वय करके सघष की स्थिति को उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि उच्च अधिकारी अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करें। जहाँ तक सम्भव हो उचित समझौते हो एव निरन्तर रूप म पयवेक्षण काय होता रहे। प्राय इस म स्वार्थ कमजोरी एव अन्य तत्त्व सामान्य हितो के महत्त्व को कम कर देते हैं।

(vii) पारिश्रमिक (Remuneration)—उत्पादन के विभिन्न साधनों को उनकी सेवाओं के बदले दिया जाने वाला भुगतान पारिश्रमिक अथवा प्रतिफल होता है। किसी भी संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों को दिया गया पारिश्रमिक एवं उसके भुगतान का तरीका उचित एवं न्यायसंगत होना चाहिए जिससे कि कर्मचारी एवं नियोक्ता दोनों पक्षों को ही सन्तोष प्राप्त हो। इससे उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(viii) केन्द्रीयकरण (Centralisation) हेनरी फयोल ने केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त पर जोर देते हुए कहा है कि किसी भी संस्थान में अधिकारों का किस सीमा तक केन्द्रीयकरण तथा किस सीमा तक विकेन्द्रीयकरण (Decentralisation) किया जाए यह अलग अलग संस्थानों की प्रकृति एवं आकार पर निर्भर करते हैं। एक बड़े उद्योग में अधिकारों का केन्द्रीयकरण अधिक नहीं होगा बल्कि वहाँ उच्चस्तरीय प्रबंध से मध्यम व निम्नस्तरीय प्रबंधकों तक अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण होगा। इसके विपरीत एक छोटे उपक्रम में अधिकार सत्ता का केन्द्रीयकरण बड़े पैमाने पर मिलेगा।

(ix) स्केलर श्रृंखला (Scaler Chain)—यह पदक्रम के सिद्धान्त (Principles of Hierarchy) पर आधारित है। यह एक प्रकार से उच्चतम अधिकारियों अथवा अधिकार सत्ता की रेखा है जो कि उच्चतम स्तर से निम्न स्तर तक सन्देशवाहन के रूप में काम में आती है। इस श्रृंखला के माध्यम से ही उच्च अधिकारी अपने अपने अधीनस्थों (Subordinates) को आदेश सुझाव देते हैं तथा निम्नस्तर से उसकी प्रतिक्रियाएं आदि जानी जाती हैं। सन्देशवाहन में ऐसी श्रृंखला का उपयोग किया जाना चाहिए लेकिन यदि किसी कारणवश देरी होने की सम्भावना होने पर इस श्रृंखला में प्रत्येक अधिकारी अपने से ऊपर वाले अधिकारी की अनुमति से अन्य अधिकारी से सम्पर्क करके कार्य को समय पर करवा सकता है।

(x) व्यवस्था (Order)—यह वस्तुओं और व्यक्तियों के संगठन के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि प्रत्येक वस्तु एवं व्यक्ति के लिए उचित स्थान होता है और प्रत्येक स्थान के लिए एक उचित वस्तु और एक उपयुक्त व्यक्ति होता है। अतः व्यक्तियों एवं वस्तुओं को उचित स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। प्रबंध में निम्न लागत पर अधिकतम उत्पादन करने हेतु उचित वस्तु व व्यक्ति का होना आवश्यक है। इसके लिए प्रबंधकीय क्रियाओं के दो पहलू अच्छा संगठन एवं अच्छा चयन का होना परमावश्यक है।

(xi) समता (Equity)—सबके लिए दया एवं न्याय का होना आवश्यक है। किसी भी संस्थान के प्रबंधकों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ दया एवं न्याय के साथ व्यवहार करना चाहिए। इससे कर्मचारी प्रसन्न रहेंगे तथा आज्ञाकारिता एवं स्वामिभक्ति की भावना उत्पन्न हो सकेगी। प्रबंध के सभी स्तरों पर समता के सिद्धान्त को लागू करना चाहिए। इसको लागू करने हेतु अच्छा विवेक अनुभव एवं अच्छा स्वभाव होना आवश्यक है।

(xii) कर्मचारियों के पदों का स्थिरता (Stability of Tenure of Personnel)—किसी भी संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों का अपने कार्य व पद की सुरक्षा होना चाहिए। यदि उन्हें यह पता है कि जो कार्य व पद उन्हें दिया गया है। वह भविष्य में भी बना रहेगा इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा। इससे कर्मचारी पूरी रुचि एवं लगन से कार्य करेंगे। इसके विपरीत कार्य व पदों के बार बार परिवर्तन करने पर उद्योग के कार्य में बाधा उत्पन्न होगी और ऐसा एक अकुशल प्रबन्ध की निशानी है। इससे संस्थान का नुकसान होता है।

(xiii) प्रेरणा (Initiative)—इसके अन्तर्गत किसी योजना पर विचार करने एवं उसका क्रियान्वयन का कार्य आता है। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति में सोचने विचारने की शक्ति होती है। किसी भी योजना को तैयार करने एवं उसको लागू करने में कर्मचारियों को छूट होनी चाहिए। इससे कर्मचारियों में उत्साह एवं शक्ति में वृद्धि होती है। अतः फयोल के अनुसार प्रबन्धकों को चाहिए कि वह कर्मचारियों में प्रेरणा की भावना उत्पन्न करने का कार्य करें।

(xiv) सहयोग की भावना (Esprit de Corps)—यह संगठन ही शक्ति है (Union is Strength) के सिद्धान्त पर आधारित है। यह एकता उत्पन्न करता है। प्रबन्धकों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए और सभी को एक साथ मिलकर एक टीम के रूप में कार्य करना चाहिए। सहयोग की भावना उत्पन्न करने हेतु संदेशवाहन के महत्त्व पर जोर दिया गया है। यदि श्रमिकों में एकता नहीं है तो यह संस्थान के हितों के लिए घातक सिद्ध होगा। पूर्ण सहयोग की प्राप्ति हेतु एक ओर आदेशों में एकरूपता रखनी होगी तथा दूसरी ओर फूट डालो और शासन करो (Divide & Rule) वाली नीतियों को समाप्त करना होगा और इसके लिए प्रभावपूर्ण ढंग से संदेशवाहन का उपयोग करना होगा जिससे कि तुरन्त किसी भी प्रकार संदेह को दूर किया जा सके।

(4) प्रबन्धकीय प्रशिक्षण एवं गुण

(Managerial Training & Qualities)

हेनरी फयोल ने प्रबन्धकों में विभिन्न आवश्यक गुणों पर जोर दिया है। प्रबन्धक में निम्न गुण होने चाहिए —

(1) शारीरिक गुण—स्वास्थ्य, मन्नत आदि।

(2) मानसिक गुण—समझने और सीखने की योग्यता, निर्णय लेना एवं अनुकूलता।

(3) नैतिक गुण—शक्ति, दृढ़ता, दायित्व स्वीकार करने की इच्छा, प्रेरणा, व्यवहार, वफादारी आदि।

(4) शक्षणिक गुण—काय सम्बन्धी ज्ञान के अतिरिक्त सामान्य ज्ञान की जानकारी।

(5) तकनीकी गुण—काय की जानकारी।

(6) अनुभव—उचित काय करने से प्राप्त।

इनके अतिरिक्त फयोल व्यावसायिक क्रियाओं जसे प्रबन्धकीय वित्तीय व्यापारिक तकनीकी सुरक्षा एव लेखाकन सम्बन्धी योग्यताओं को भी प्रबन्धकों के लिए आवश्यक समझते हैं। किसी भी सस्थान में कायरत श्रमिक की सबसे महत्त्वपूर्ण योग्यता उसकी तकनीकी जानकारी है तथा जसे जसे उच्चस्तरीय प्रबन्ध की ओर जाते हैं प्रबन्धकीय योग्यता का तुलनात्मक महत्त्व बढता जाता है। फयोल ने इस बात पर जोर दिया है कि किसी भी सस्थान मे प्रबन्धकीय योग्यता तकनीकी योग्यता की भाति ही प्राप्त करनी चाहिए। यह पहले पाठशालाओं में प्राप्त की जानी चाहिए और फिर कारखाने में। अत प्रबन्ध की शिक्षा प्रारम्भिक काल में ही दे दी जानी चाहिए। उच्चस्तरीय प्रबन्ध की शिक्षा महाविद्यालयों एव विश्वविद्यालयों में प्रदान की जानी चाहिए।

(5) प्रबन्ध सिद्धान्तों की सावभौमिकता

(Universality of Management Principles)

हेनरी फयोल ने अपनी पुस्तक General & Industrial Administration तथा भाषणों में प्रबन्ध के सिद्धान्त को सावभौमिक माना है। हर एक क्षेत्र में इन सिद्धान्तों को लागू किया जा सकता है। हेनरी फयोल के अनुसार यह (प्रबन्ध) सहिता परमावश्यक है चाहे वह वाणिज्य हो उद्योग राजनीति धर्म, युद्ध अथवा उदारता हो, प्रत्येक क्षेत्र में प्रबन्ध का काय किया जाता है और इसके निष्पादन हेतु सिद्धान्त होने चाहिए।

इस प्रकार हेनरी फयोल के प्रबन्ध के क्षेत्र में अपने महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण आज भी प्रबन्ध जगत् में उसका अध्ययन किया जाता है। उनके प्रबन्ध के सिद्धान्त इतने व्यापक हैं कि इनमें आवश्यकतानुसार सशोधन करके किसी भी क्षेत्र में लागू किया जा सकता है।

एफ डब्ल्यू टेलर का योगदान

(Contribution of F W Taylor 1856–1915)

ये प्रबन्ध जगत में वज्ञानिक दृष्टिकोण प्रतिपादित करने वाले प्रबन्ध विशेषज्ञ माने जाते हैं। ये अमेरिका निवासी थे जिन्होंने 19 वष की आयु मे फिलाडेल्फिया में कम्प शिपयार्ड पर एक सामान्य मशीन प्रशिक्षार्थी एव टनर के रूप मे काम शुरू किया। आँखों की खराबी के कारण आगे पढ़ने की इनकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। तीन वष बाद वे मिडवल स्टील वक्स (Midvale Steel Works) में मशीन शाप श्रमिक के रूप में चले गए। दो वष बाद टोली नायक के रूप में उनकी पदोन्नति हो

गए। अपनी योग्यता एवं लग्न के कारण वे चार वर्ष पश्चात् अर्थात् 28 वर्ष की आयु में इसी कम्पनी में मुख्य अभियन्ता (Chief Engineer) बन गए। इसी बीच सायंकालीन कक्षाओं में प्रवेश लेकर उन्होंने एम. ई. की उपाधि प्राप्त कर ली। बाद में वे कई प्रबन्धकों को परामर्श देने का कार्य करने लगे। इन्होंने कई पेपर पढ़े और बाद में जाकर इन पेपरों को पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया गया। टेलर द्वारा सन् 1911 में प्रकाशित पुस्तक 'वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त' (Principles of Scientific Management) का वैज्ञानिक प्रबन्ध में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस पुस्तक में टेलर ने कारखाना प्रबन्ध (Factory Management) अथवा उत्पादन प्रबन्ध (Production Management) के सिद्धान्तों का समावेश किया है। एक औद्योगिक संस्थान में कार्यकुशलता किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है। इसके लिए मशीन एवं उनके चालकों पर भी ध्यान दिया गया है। इसके लिए टेलर ने समय अध्ययन (Time Study), गति अध्ययन (Motion Study) एवं थकान अध्ययन (Fatigue Study) आदि पर प्रयोग किए हैं। ये प्रयोग वैज्ञानिक प्रबन्ध का हृदय है। इसके साथ ही संगठन के अन्तर्गत कार्यों को नियोजन एवं क्रियात्मक (Functional) दो भागों में विभाजित किया है। नियोजन के अन्तर्गत उच्च प्रबन्धकों द्वारा सोचने का कार्य अधिक किया जाता है, जबकि क्रियात्मक कार्य के अन्तर्गत श्रमिक कार्य करने अथवा यन्त्रीकरण सम्बन्धी कार्य से अधिक सम्बन्धित होते हैं। उनसे कार्य लेना उनके ऊपर नियुक्त नायकों (Bosses) की जिम्मेदारी है। टेलर की अन्य रचनाओं में वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management 1912) कारखाना प्रबन्ध (Shop Management 1910) आदि हैं। उनके निबन्धों में मुख्य हैं—

A Piece rate System 1895 Shop Management 1903 On the Art of Cutting Metals 1906 Gospel of Efficiency 1911

प्रबन्ध क्षेत्र में टेलर का योगदान

टेलर को वैज्ञानिक प्रबन्ध का जनक (Father of Scientific Management) कहा जाता है तथा उन्हें कार्यकुशलता का सृजनकर्ता (Creator of Efficiency) भी कहा जाता है। टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण योग दिया है—

1. **प्रबन्ध को विज्ञान बनाना**—टेलर ने इस बात पर जोर दिया कि प्रबन्ध एक विज्ञान है और इस रूप में बनाए रखने हेतु इसमें घटनाओं, तथ्यों आदि का अवलोकन करना चाहिए। अवलोकनों पर प्रयोग (Experiments) किए जाने चाहिए। प्रयोगों की सहायता से ही टेलर ने कार्य, समय एवं थकान अध्ययन किए हैं और कर्मचारियों के वैज्ञानिक चयन के आधार को प्रस्तुत किया है। इसमें प्रबन्ध एक विज्ञान के रूप में कार्य करता है।

2 प्रबन्ध सगठन का निर्माण—टेलर ने इस बात पर जोर दिया कि किसी भी सस्थान म एक उचित प्रबन्ध सगठन का विकास किया जाना चाहिए। यह एक प्रकार से एक यन्त्र का काय करता ह जिनके मा यम स प्रबन्ध कार्यों का सम्पादन आसानी स किया जाता है। यह प्रबन्ध यन्त्र कई तत्त्वों के समावेश से तयार किया जाता है जसे—समय अध्ययन, क्रियात्मक फोरमन शिप प्रमापीकरण नियोजन विभाग कार्यानुमान, विभेदात्मक मजदूरी योजना आदि।

3 प्रबन्ध के सिद्धान्त—टेलर न दोनो पक्षो को न्याय दिलाने के उद्देश्य से प्रबन्ध के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। ये सिद्धान्त सभी के हितो एव सामूहिक विकास हेतु प्रतिपादित किए गए हैं। ये सिद्धान्त निम्न ह—

(1) कार्यानुमान का सिद्धान्त
(2) प्रयोगो का सिद्धान्त
(3) काय नियोजन का सिद्धान्त
(4) कमचारियो के वज्ञानिक चयन एव प्रशिक्षण का सिद्धान्त
(5) काय के वज्ञानिक आवण्टन का सिद्धान्त
(6) सामान के वज्ञानिक चयन एव उपयोग का सिद्धान्त
(7) आधुनिकतम उपकरणो के उपयोग का सिद्धान्त
(8) प्रमापीकरण का सिद्धान्त
(9) कुशल लागत लेखा प्रणाली का सिद्धान्त
(10) प्रेरणात्मक मजदूरी का सिद्धान्त
(11) सन्तोषजनक काय दशाओ का सिद्धान्त
(12) प्रबन्ध के अपवाद का सिद्धान्त
(13) मानसिक क्रान्ति का सिद्धान्त
(14) क्रियात्मक सगठन का सिद्धान्त।

उपयुक्त सभी सिद्धान्तो का वणन पिछले अध्याय म दिया गया है।

4 प्रबन्धकों के दायित्व—टेलर न प्रबन्धको के दायित्व के अन्तगत निम्न चार नए दायित्वो का प्रतिपादन किया है। वे हैं[1]—

(1) कमचारियों के काय के प्रत्येक तत्त्व के लिए विज्ञान का विकास करें जिसस कि परम्परागत अगूठा नियम (Old Rule of Thumb) को बदला जा सके।

(2) कमचारियो के अधिकतम विकास हतु उनका वज्ञानिक चयन एव प्रशिक्षण दिया जाए।

1 *F W Taylor* Scient f c Ma g me t p 36

(3) कर्मचारियों के साथ व पूर्ण हार्दिक सहयोग करें जिससे कि विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य किया जा सके।

(4) प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों के मध्य कार्य एवं उत्तरदायित्व का समान विभाजन होना चाहिए।

उपर्युक्त प्रबन्धकीय दायित्वों से श्रमिकों और प्रबन्धकों में पारस्परिक सहयोग एवं विश्वास उत्पन्न होगा तथा संस्थान में शान्ति से कार्य होता रहेगा।

5 वैज्ञानिक प्रबन्ध का वर्णन—टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध प्रत्येक कार्य के चिन्तन में निष्पादन के तरीके में उसकी योजना का निर्माण व उसे क्रियान्वयन में नियन्त्रण आदि का अध्ययन करता है, तथा इनमें क्रमशः सुधार करते रहना चाहिए। इस दृष्टि से ही वैज्ञानिक प्रबन्ध को एक गतिशील एवं निरन्तर प्रक्रिया सम्बन्धी विज्ञान माना गया है। इस प्रकार से वैज्ञानिक प्रबन्ध के दर्शन में टेलर के अनुसार निम्न तत्वों का समावेश किया गया है[1]—

(1) विज्ञान न कि अंगूठे का नियम
(2) शान्ति न कि संघर्ष
(3) सहयोग न कि व्यक्तिवाद
(4) अधिकतम उत्पादन न कि सीमित उत्पादन
(5) प्रत्येक व्यक्ति का उसकी अधिकतम कार्यकुशलता एवं समृद्धि तक विकास।

इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध का दर्शन आपसी सहयोग एवं विश्वास पर आधारित है।

6 प्रबन्ध के उद्देश्य—टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध का उद्देश्य न केवल समृद्धि की वृद्धि करना ही है बल्कि श्रमिकों एवं समूचे समाज से निर्धनता को समाप्त करना है। इससे श्रमिकों को ऊँची मजदूरी, कार्य की अच्छी दशाएँ तथा निम्न लागत पर वस्तुएँ प्राप्त हो सकेंगी। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रबन्ध जगत् में निम्नलिखित परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी—

(1) श्रमिक को योग्यतानुसार कार्य दिया जाए।
(2) सन्तोषप्रद कार्य की दशाएँ प्रदान की जाएँ।
(3) प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति अपनाकर अधिक कार्यकुशल कर्मचारी को कम कार्यकुशल श्रमिकों से अधिक मजदूरी दी जाए।
(4) समय, गति एवं थकान अध्ययन द्वारा उच्च मजदूरी एवं निम्न श्रम लागत के उद्देश्यों को प्राप्त करना।

7 क्रियात्मक संगठन पद्धति—टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध में इस पद्धति का

1 2 F W Taylor Scientific Management p 140-143

प्रतिपादन करके एक क्रान्तिकारी कदम उठाया है। फोरमन के कार्य करने के भार को समाप्त करके उसके स्थान पर विशेषज्ञों की नियुक्तियाँ की हैं। इससे फोरमन का कार्यभार कम हो जाएगा तथा वह अन्य कार्यों मे अपना समय अधिक लगा सकेगा। इसके अन्तर्गत कारखाना स्तर पर टोली नायक (Gang Boss) गति नायक (Speed Boss) मरम्मत नायक (Repair Boss) एव निरीक्षक (Inspector) नियुक्त किए गए है तथा कार्यालय स्तर पर कार्यक्रम लिपिक (Routine Clerk) निर्देशन पत्र लिपिक (Instruction Card Clerk) समय और लागत लिपिक (Time & Cost Clerk) तथा अनुशासक (Disciplinarian) की नियुक्ति की गई है। इन विशेषज्ञों का सीधा सम्बन्ध श्रमिको से होता है। श्रमिको को इनके अधीन कार्य करना पडता है।

8 मानसिक क्रान्ति—टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्ध की सफलता हेतु कर्मचारियो एव प्रबन्धको मे मानसिक क्रान्ति उत्पन्न करने पर जोर दिया है। श्रमिको व मालिको को अपने हितो को एक दूसरे का विरोधी नही समझना चाहिए तथा एक दूसरे को सहयोग देने एव विश्वास करके कार्य करना होगा। श्रमिको को कार्य की अच्छी दशाए प्रेरणात्मक मजदूरी तथा योग्यतानुसार कार्य का आवण्टन किया जाना चाहिए। श्रमिको को भी अपनी मागो को मनवाने हेतु हडताल, धीरे कार्य करने की प्रवृत्ति घेराव आदि आदतो को छोडना पडेगा।

टेलर के अनुसार प्रबन्धको के निम्न उत्तरदायित्व हैं—

(1) श्रमिक द्वारा किए जाने वाले कार्य का निर्धारण

(2) कार्य हेतु उचित श्रमिक का चयन एव

(3) कार्य मे उच्च स्तरीय निष्पादन हेतु श्रमिको को अभिप्रेरित करना।

विश्व के विकसित देशो मे टेलर के सिद्धान्तो एव तरीको को बडे पैमाने पर लागू किया गया। अमेरिकी उद्योगो एव पश्चिमी यूरोप के उद्योगो पर वैज्ञानिक प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा है और इनको अपनाया भी गया है। टेलर की शिक्षाओ से प्रबन्ध के अन्य विभागो जैसे—वित्त कार्मिक (Personnel) क्रियात्मक सगठन आदि का विकास हुआ है तथा वर्तमान समय गति थकान प्रेरणाओ आदि का आधार बनी है।[1]

टेलर तथा फेयोल—एक तुलनात्मक अध्ययन
(Taylor & Fayol—A Comparative Study)

टेलर तथा फयोल दोनो समकक्ष एव समकालीन प्रबन्ध विशेषज्ञ थे। टेलर ने अमरिका तथा हेनरी फयोल ने फ्रास मे प्रबन्ध सम्बन्धी विचारो का विकास किया। दोनो ही प्रबन्ध विशेषज्ञो के विचारो मे समानताए तथा असमानताए पायी जाती हैं जिनका उल्लेख किया जा सकता है।

1 F W T l Scientific M me t P

टेलर तथा फयोल के विचारो मे समानतायें—प्रो एम बनर्जी न फयोल एव टेलर के कार्यो तथा रचनाओं म समानताए बताई हैं वे निम्नलिखित हैं[1]—

1 दोना ही प्रबन्ध विशषज्ञो ने तत्कालीन दशाओं म सुधार करन क लक्ष्य को अपने सम्मुख रखत हुए प्रबन्ध को विवेकपूर्ण एव सुव्यवस्थित आधार प्रदान किया है। टेलर न प्रबन्ध विचारधारा का वनानिक प्रबन्ध (Scientific Management) तथा हेनरी फयोल ने प्रशासन क सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Administration) का नाम दिया है। आधुनिक प्रबन्ध विज्ञान का इन दोना म प्रेरणा मिलती है।

2 दोनो ही विचारक प्रबन्धको के पेशे (Profession) म रह चुके थे। अत प्रबन्ध विचारधारा का विकास अपने अनुभव क आधार पर किया।

3 दोनो न ही प्रबन्ध म मानवीय साधन के महत्व को स्वीकार किया और यह माना है कि उचित मानवीय व्यवहार क माध्यम स उपक्रम के विभिन्न स्तरो पर उत्पन्न विवादो का सरलता स निपटाया जा सकता है। यह औद्योगिक सफलता के लिए एक आवश्यक कुजी है।

इस प्रकार दोनो ही विचारको न प्रबन्ध-कुशलता पर जोर दिया तथा प्रबन्ध की दशाओं को सुधारने की सिफारिश की। किसी भी उद्योग की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कर्मचारियो एव उनका प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता है। दोनो न प्रबन्ध जगत मे एक वनानिक आधार तयार किया जिस पर आगे चलकर आधुनिक प्रबन्ध की सुदृढ नीव रखी जा सकी है।

टेलर एव फयोल के विचारो म भिन्नतायें—टेलर व फयोल क विचारो म समानताये होने के बावजूद भी उसम कतिपय असमानताए या भिन्नताए भी पाई जाती है। प्रो एम बनर्जी क अनुसार दोना म निम्नांकित असमानताए मिलती है—

1 टेलर ने सर्वाधिक ध्यान कारखाना प्रबन्ध पर दिया है और उत्पादन क इंजीनियरिंग-पहलू जसे—औजारो का प्रमापीकरण, समय एव अध्ययनो पर ध्यान दिया है। इसके विपरीत हेनरी फयोल न प्रबन्धकों क समस्त कार्यो एव उनम निहित सिद्धान्तो पर अत्याधिक ध्यान दिया है।

2 टेलर ने प्रबन्ध के निम्नतम स्तर से काय शुरू किया है और उच्चस्तरीय अध्ययन की ओर आगे बढे हैं। अत उनक अध्ययन का मुख्य बिन्दु श्रमिक और उसके द्वारा सचालित क्रियाए हैं। इसके विपरीत फयोल ने अपनी प्रबन्ध प्रणाली का विकास उच्चस्तरीय प्रबन्ध से शुरू किया है और फिर भी निम्नस्तरीय प्रबन्ध की ओर बढ़ने का काय किया है। इसलिए फयोल ने समन्वय निर्देशन की एकता तथा एकता की भावना आदि प्रबन्धकीय सिद्धान्तो पर विशेष जोर दिया है।

1 M Banerjee B si Administrati n—P ciples & Tech ques p 72

3 टेलर का दृष्टिकोण कार्यकुशलता में वृद्धि करने पर आधारित है। इसीलिए कई प्रयोग (Experiments) जैसे—समय अध्ययन, गति अध्ययन तथा थकान अध्ययन का समावेश किया गया है जबकि फयोल का दृष्टिकोण व्यापक था जिसके कारण उन्होंने प्रबन्ध के तत्त्वों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन सिद्धान्तों को न केवल प्रबन्ध क्षेत्र में ही लागू किया जा सकता है बल्कि राजनीति धर्म युद्ध उद्योग आदि सभी क्षेत्रों में समान रूप से लागू किया जा सकता है। टेलर को कुशलता विशेषज्ञ तथा हेनरी फयोल को प्रबन्ध विशेषज्ञ कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

4 टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों में आधुनिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप परिवर्तन हुए हैं लेकिन हेनरी फयोल के प्रबन्ध के सिद्धान्त आज भी ज्यों के त्यों हैं और उन्हें आज भी विभिन्न क्षेत्रों जैसे सेना, चर्च, सरकार और उद्योग में समान रूप से लागू किया जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

टेलर एवं हेनरी फयोल ने प्रबन्ध जगत में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है जिसको प्रबन्ध जगत कभी नहीं भूल सकता। टेलर को वैज्ञानिक प्रबन्ध का जनक (Father of Scientific Management) कहा जाता है तथा फयोल को यदि प्रबन्ध विशेषज्ञ कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रबन्ध विज्ञान विशेषज्ञ श्री उर्विक (Urwick) ने टेलर एवं हेनरी फयोल इन दोनों विद्वानों के योगदान का तुलनात्मक विवरण निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया है—

टेलर तथा हेनरी फयोल दोनों के ही कार्य एक दूसरे के पूरक थे। इन दोनों ने ही यह अनुभव किया कि प्रबन्ध में प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों तथा उनके प्रबन्ध की समस्या औद्योगिक सफलता की कुंजी है। दोनों ने ही इस समस्या के समाधान के लिए वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग किया। यद्यपि टेलर ने मुख्यतः औद्योगिक प्रबन्ध के क्रम में नीचे से ऊपर की ओर क्रियात्मक स्तर पर काम किया तथा फयोल ने जनरल मैनेजर के पद पर ध्यान केन्द्रित करके ऊपर से नीचे की ओर कार्य पर जोर दिया। यद्यपि यह अन्तर उनके बहुत भिन्न व्यवसाय क्रमों का प्रतिबिम्ब मात्र था।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त
(Principles of Scientific Management)

बीसवीं शताब्दी में प्रबन्ध जगत के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रादुर्भाव एवं विकास एक महत्त्वपूर्ण घटना है। प्रबन्ध का कोई भी विद्यार्थी इसके सिद्धान्तों, मूल आधारों तथा अन्य पहलुओं की उपेक्षा करने का दुस्साहस नहीं कर सकता है।

प्रो. मैकफारलैण्ड के शब्दों में, "वैज्ञानिक प्रबन्ध एक दक्ष सूत्र नहीं है और न ही एक विशेष कदमों की श्रृंखला है, बल्कि यह एक दर्शन एवं विचारधारा मानव व्यवहार का एक दृष्टिकोण है। यह औद्योगिक क्रान्ति की ओर एक मानसिक क्रान्ति है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों का अध्ययन करते समय हम इसे विभिन्न पहलुओं के रूप में देख सकते हैं। इसमें विभिन्न पहलू या भाग ही वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त कहलाते हैं।

वैज्ञानिक प्रबन्ध का अर्थ, उद्देश्य एवं विशेषताएं समझने के पश्चात् प्रबन्ध जगत में टेलर तथा अन्य वैज्ञानिक प्रबन्धकों द्वारा दिए गए प्रमुख तत्त्वों अथवा सिद्धान्तों को जानना आवश्यक हो जाता है। इन सिद्धान्तों पर ही वैज्ञानिक प्रबन्ध की नींव रखी गई है।

टेलर तथा अन्य प्रबन्ध विशेषज्ञों द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबन्ध के निम्नांकित सिद्धान्त हैं—

1. मानसिक क्रान्ति (Mental Revolution)—वैज्ञानिक प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के पश्चात् भी इसकी पूर्ण सफलता के लिए श्रम तथा प्रबन्धकों में मानसिक क्रान्ति उत्पन्न करना आवश्यक हो जाता है। बिना इस क्रान्ति के श्रम और प्रबन्ध के बीच पूर्ण सहयोग न होने पर संस्थान या कारखाने के उद्देश्यों को पूरा नहीं किया जा सकता है। मानसिक क्रान्ति औद्योगिक क्रान्ति का जीवन रक्त है और इसके अभाव में औद्योगीकरण नहीं किया जा सकता है तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध का उपयोग प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं किया जा सकता है। परम्परागत प्रबन्ध के अन्तर्गत श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के पारस्परिक सहयोग तथा मधुर सम्बन्ध नहीं पाए जाते हैं क्योंकि वे अपने स्वार्थों की दृष्टि से एक दूसरे के विरोधी तथा प्रतिस्पर्धी समझते हैं। प्रबन्धकों को श्रमिकों के साथ मानवीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। श्रमिकों को उचित मजदूरी तथा कार्य की दशायें प्रदान करनी होंगी जबकि श्रमिकों को भी अपने श्रम संगठनों के संघर्षात्मक कार्यों के स्थान पर रचनात्मक कार्यों पर जोर देना होगा। उन्हें उद्योग को अपना उद्योग समझ कर कार्य करना होगा। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध का मूल मन्त्र है— श्रम प्रबन्ध का मानसिक क्रान्ति द्वारा उनमें आपसी सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना है। दोनों पक्षों के बीच टूटे हुए सम्बन्ध स्थापित करने के विषय में टेलर ने लिखा है कि "वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत दोनों पक्षों के मानसिक दृष्टिकोण में एक बड़ी क्रान्ति आती है जिसके अन्तर्गत दोनों पक्ष अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों की भांति आधिक्य के बटवारे से अपनी निगाह दूर रखते हैं और इसके साथ ही आधिक्य आकार में वृद्धि करने की ओर अधिक ध्यान देने लगते हैं जब तक कि यह आधिक्य इतना बड़ा हो जाए कि इसमें वितरण के विषय में झगड़ना अनावश्यक होगा।"[1]

इस प्रकार श्रम एवं प्रबन्धकों को न केवल उनके विचारों का त्याग कर सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार करना होगा बल्कि इन दोनों पक्षों को वर्गों के प्रबन्ध

1 Taylor Scientific Management p 29 30

को क्रियान्वित करने हेतु कार्य करने के ढंग पर भी एकमत होना आवश्यक है। दोनों पक्षों द्वारा वैज्ञानिक अन्वेषण (Scientific Investigation) और ज्ञान के तरीके को बिना किसी पक्षपात के स्वीकार करना होगा। इससे उत्पादकता में वृद्धि होगी और दोनों ही पक्षों की समृद्धि में वृद्धि होगी।

2. प्रमापीकरण (Standardisation)—वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत वैज्ञानिक कार्य अध्ययन के आधार पर प्रमापित कार्य निर्धारित किया जाता है और यह देखा जाता है कि यह दिया हुआ कार्य सब व्यक्तियों द्वारा पूरा किया जाता है अथवा नहीं। श्रमिक उसी समय कार्य पूरा कर सकेंगे जब इस दिशा में प्रबन्ध द्वारा महत्त्वपूर्ण कदम उठाए जाते हैं। औजारों, यन्त्रों, मशीनों आदि का प्रमापीकरण आवश्यक है। श्रमिकों द्वारा कार्य को पूरा करने हेतु काम में लाए जाने वाले औजारों, यन्त्रों व मशीनों का प्रमापीकरण करना चाहिए। वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त इस बात पर जोर देते हैं कि उत्पादन में काम में आने वाली मशीनें, औजार, उपकरण, विधियाँ, माल तथा अन्य साधन प्रमापित होने चाहिए। कार्य की दशाएँ, समय, वस्तु की किस्म भी प्रमापित होनी चाहिए। प्रमापीकरण से उत्पादन लागत कम होती है, उत्पादन की विधियों एवं किस्म में सुधार होता है और श्रमिकों की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। ये विभिन्न प्रमाप वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत सामयिक प्रयोगों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।

टेलर ने औजारों और उपकरणों के प्रमापीकरण के विषय में लिखा है कि "कुछ प्रथम श्रेणी, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी में निरुद्देश्य डाले हुए के स्थान पर वे द्वितीय श्रेणी की समरूपता में ज्यादा अच्छे होते हैं।"[1]

प्रत्येक मशीन की चाल भी अनुकूलतम होनी चाहिए। अधिक अथवा धीमी गति के परिणामस्वरूप मशीन को नुकसान पहुँचता है। प्रमापित कार्य का निष्पादन करने हेतु रोशनदान, तापक्रम, नमी, सुरक्षा आदि दशाएँ भी प्रमापित होनी चाहिए। श्रमिकों की कार्यक्षमता शारीरिक तत्त्वों के अतिरिक्त कच्चे माल की किस्म एवं उसको काम में लेने के ढंग पर भी निर्भर करती है। कच्चे माल का भी प्रमापीकरण होना चाहिए जिससे कि उत्पादन वस्तु भी प्रमापित हो सके और कच्चे माल का अपव्यय न हो सके। इसके लिए प्रबन्ध को अनुसंधान एवं वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिए।

3. कार्य अनुमान (Task Idea)—श्रमिक अपनी योग्यतानुसार कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं, इसकी जानकारी हेतु वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसका सही अनुमान लगाया जाता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत कार्य का अनुमान नहीं लगाया जाता था। वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रमापित कार्य निर्धारित किया जाता है। यह कार्य दी हुई प्रमापित दशाओं में एक औसत श्रमिक

1 *F. W. Taylor*: Shop Management, p. 124

द्वारा पूरा किया जा सकता है। टेलर ने इसे एक उचित दिन का कार्य (A proper day's work) कहा है। प्रमापित कार्य वह कार्य है जिसे एक औसत श्रमिक अपने स्वास्थ्य को हानि न पहुंचाते हुए निर्धारित समय में पूरा कर सके। यदि कार्य एक औसत श्रमिक की क्षमता से अधिक निर्धारित किया जाता है तो इससे श्रमिकों में आत्मग्लानि उत्पन्न होगी और यदि औसत कार्य से कम है तो कार्य अनुमान के उद्देश्य निरर्थक सिद्ध करता है।

4 प्रयोग (Experiment)—वैज्ञानिक प्रबंध के अन्तर्गत प्रयोगों अथवा प्रयोगों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कार्य अनुमान हेतु तथा श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करने के लिए कई प्रयोग किए जाते हैं। ये निम्नांकित हैं—

(1) समय अध्ययन (Time Study)—कार्य के नियोजन तथा कार्य के सही निर्धारण हेतु उस कार्य में लगने वाले समय को ज्ञात किया जाता है किसी भी कार्य को पूरा करने में लगे समय तथा उसका समय-समय पर रिकार्ड रखना ही समय अध्ययन कहलाता है। एक ही कार्य को भागों में विभाजित किया जा सकता है। किम्बाल एवं किम्बाल के अनुसार एक औद्योगिक कार्य के तत्त्व के रूप में उसमें लगे समय का अवलोकन एवं रिकार्ड करने की कला ही समय अध्ययन के रूप में परिभाषित की जा सकती है।[1] इसके अन्तर्गत कार्य के मापन की प्रक्रिया को सम्मिलित किया जाता है। इस अध्ययन का मूल उद्देश्य किसी कार्य के निष्पादन में लगने वाले उचित समय को जानना है जिससे कि समय पर कार्य पूरा हो सके।

समय अध्ययन के उद्देश्य—इसके निम्न उद्देश्य होते हैं—

(a) कार्य की एक क्रिया में लगने वाले समय के आधार पर प्रमापित समय का निर्धारण करना।

(b) *समय निर्धारण के माध्यम से वस्तु की पूर्ति में लगने वाले समय का अनुमान।*

(c) मशीनों की कार्यक्षमता का अधिकतम उपयोग करने हेतु।

(d) कार्य की गति के अध्ययन में सहायता करना।

(e) प्रमापित समय के आधार पर समय अंकन का तैयार करके प्रेरणात्मक मजदूरी योजना तैयार करना।

(f) समय पर कार्य पूरा न करने वाले श्रमिकों की असमर्थता के कारणों का पता लगाना तथा यदि उन्हें दूर किया जा सकता है तो इसके लिए कार्य करना।

समय अध्ययन के अन्तर्गत दो तरीकों का काम में लाया जाता है—प्रथम सूक्ष्म गति (Micro Motion) के आधार पर एक कार्य का पूर्ण विवरण ले लिया जाता है और इसी के आधार पर समय अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ—मकान

[1] Kimball and Kimball Principles of Industrial Organisation, p 40

बनाने हेतु पत्थरों को ट्रक में लादने के समय का अध्ययन करना हो तो उसे निम्न भागों में विभाजित किया जाएगा—(i) पत्थर का जमीन से उठाने में लगा समय (ii) पत्थर को लेकर ट्रक तक जाने का समय (iii) पत्थर को ट्रक में फेंकने में लगने वाला समय (iv) खाली हाथ वापस पत्थर उठाने हेतु आने में लगने वाला समय लेकिन यह तरीका त्रुटिपूर्ण है। दूसरा तरीका विराम घड़ी (Stop Watch) की सहायता से अध्ययन करना है। इसके अध्ययन हेतु औसत कुशलता एवं योग्यता वाले श्रमिकों का चयन किया जाता है। इसके अन्तर्गत किसी भी कार्य को अधिकांश श्रमिकों द्वारा पूरा करने में लगे प्रमापित समय को निश्चित कर दिया जाता है। इसके पश्चात् सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए समय निश्चित किया जा सकता है।

(ii) गति अध्ययन (Motion Study)—प्रत्येक कार्य को करते समय श्रमिक के हाथ व पैरों में गति पायी जाती है। शरीर में जितनी अधिक गति पायी जाती है उस कार्य को पूरा करने में उतना ही अधिक समय लगेगा और श्रमिक को थकावट का अनुभव भी अधिक होगा। इसलिए वैज्ञानिक आधार पर अनावश्यक एवं अकुशल गतियों को समाप्त करके कार्य को उचित समय में तथा बिना थकावट के पूरा करने हेतु गति अध्ययन आवश्यक है। गति अध्ययन का श्रेय श्री एवं श्रीमती गिलब्रेथ को दिया जाता है। उनके अनुसार "गति अध्ययन वह विज्ञान है जो कि अनावश्यक अनिर्देशित एवं अकुशल गतियों के उपयोग से उत्पन्न होने वाले दुरुपयोगों को समाप्त करता है।" इस प्रकार गति अध्ययन के माध्यम से अनावश्यक गतियों को समाप्त करके समय और शक्ति की बचत की जाती है।

उद्देश्य—गति अध्ययन के निम्नांकित उद्देश्य हैं—

(1) अनावश्यक अनिर्देशित एवं अकुशल गतियों को समाप्त करके थकान में कमी करना एवं कम समय में कार्य को पूरा करना।

(2) कार्य की सर्वोत्तम विधि ज्ञात करके कार्य को शीघ्रता से पूरा करना।

(3) लागत को कम करना, कार्य कुशलता में वृद्धि करके उत्पादन में वृद्धि करना।

गति अध्ययन हेतु किसी भी कार्य को विभिन्न क्रियाओं में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक क्रिया में लगने वाले समय, गतियों की संख्या आदि का अवलोकन किया जाता है और उनका रिकार्ड तैयार किया जाता है। यदि गतियों का परिवर्तन तेजी से होता है तो कैमरे की सहायता से चित्र ले लिए जाते हैं। इन कैमरों में समय अंकन भी होता रहता है। इसके पश्चात् इससे पता लगाया जा सकता है कि कौनसी गतियाँ अनावश्यक की जा सकती हैं तथा कौनसी साथ-साथ काम में लायी जाती हैं तथा कौनसी गतियाँ अनावश्यक हैं। इससे गतियों की संख्या कम करके थकान तथा समय की बचत की जा सकती है।

गी गिल्ब्रेथ ने शारीरिक गतियों को 18 मूलभूत वर्गों में विभाजित किया था जिसे थर्बलिग (Therblig) का नाम दिया गया है। इन्होंने ईंट चुनने वाले कारीगरों को लेकर अपने गति अध्ययन की विधि का विकास किया था। इन कारीगरों की गतियों को कुछ क्रियाओं में 18 से घटाकर 5 व 2 तक किया था। इस अध्ययन में कुछ यन्त्रों का विकास किया तथा कुछ अनावश्यक गतियों को समाप्त करके श्रमिकों की शक्ति, थकान, समय व लागत पर पड़ने वाले दुष्परिणामों को समाप्त कर दिया था। गति अध्ययन के लिए विधि चार्ट तैयार किए जाते हैं। सूक्ष्म गति अध्ययन किया जाता है तथा सुझावों के माध्यम से भी गति अध्ययन किया जाता है। गति अध्ययन अपने आप में एक साध्य नहीं है। यह उत्पादन बढ़ाने, सयन्त्र संगठन में अधिक कुशलता, कम मानवीय थकावट और उत्पादन लागत कम करने के साधन का कार्य करता है।

(iii) थकान अध्ययन (Fatigue Study)—प्रत्येक कार्य करने में श्रमिक की मांसपेशियों पर जोर पड़ता है और इसके परिणामस्वरूप उसे थकान महसूस होती है। थकान का कार्य के परिणाम से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। टेलर ने हर क्रिया का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करके यह पता लगाया कि यह थकान कैसी होती है और इसमें किस प्रकार से सुधार किया जाए कि श्रमिक कम से कम थके तथा अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके। थकान से श्रमिकों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है। यदि श्रमिक अधिक थकता है तो उसकी कार्यक्षमता में गिरावट आएगी, उत्पादन कम होगा तथा इससे उत्पादन की किस्म में गिरावट आएगी। इसलिए वैज्ञानिक प्रबन्ध में इस बात पर जोर दिया गया है कि श्रमिक पर कार्यभार इतना हो कि उस श्रमिक को थकावट महसूस न हो और कार्य करने में कोई कठिनाई नहीं आए। यही कारण है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता टेलर ने कार्य के उचित वितरण, विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन के सिद्धान्तों तथा प्रमापीकरण के सिद्धान्त की पालना पर जोर दिया है। थकान को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। डा. स्टेनले केंट (Dr Stanley Kent) के अनुसार, "थकान शारीरिक श्रम की घटी हुई कार्यक्षमता है जो कि श्रम के पश्चात् उत्पन्न होती है और आंशिक तौर पर इस पर निर्भर करती है।" थकान चाहे शारीरिक हो अथवा मानसिक हो श्रमिकों के स्वास्थ्य एवं उनकी कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव डालती है। थकान के कारण उत्पादन में गिरावट आती है, कार्य की निम्न किस्म हो जाती है, सब दुर्घटनाओं में वृद्धि होती है, श्रमिकों का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है तथा कार्य भी अच्छा नहीं हो पाता है।

थकान के कारण—वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक श्री टेलर तथा अन्य प्रणेताओं (Pioneers) ने थकान के कई कारण बताए हैं—

(v) कार्यशील व्ययों में वृद्धि (Increase in Working Expenses)—वैज्ञानिक प्रबन्ध अपनाने के कारण कार्यशील व्ययों में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। उच्चस्तरीय प्रबन्ध (Top Level of Management) से लेकर निम्नस्तरीय प्रबन्ध (Low Level of Management) तक विभिन्न विशेषज्ञों की नियुक्तियाँ करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार कार्य समय एवं थकान अध्ययनों पर प्रयोग करने पड़ते हैं। इससे संस्थान के कार्यशील व्ययों में निरन्तर वृद्धि होती है और लाभ कम होने लग जाता है।

3 सैद्धान्तिक आधार पर आलोचना (Criticism from the Theoritical Point of View)—वैज्ञानिक प्रबन्ध व्यवस्था की सैद्धान्तिक दृष्टि से भी आलोचना निम्न प्रकार से की गई है—

(i) असन्तुलित दृष्टिकोण (Unbalanced Approach)—यह प्रबन्ध व्यवस्था किसी भी औद्योगिक उपक्रम के प्रबन्ध का आंशिक रूप से अध्ययन करती है। यह उत्पादन प्रबन्ध (Production Management) पर अधिक जोर देता है। व्यावहारिक जीवन में हम देखते हैं कि प्रबन्ध में उत्पादन प्रबन्ध के अतिरिक्त कर्मिक प्रबन्ध, वित्तीय प्रबन्ध, विक्रय प्रबन्ध आदि भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वैज्ञानिक प्रबन्ध विभिन्न विभागों की क्रियाओं के एकीकृत (Integration) करने का कार्य ही करता है न कि उद्यम से सम्बन्धी समस्याओं के निवारण का कार्य।

(ii) अत्यधिक विशिष्टीकरण (Too much of Specialisation)—वैज्ञानिक प्रबन्ध में श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण अपनाया जाता है। इसके अन्तर्गत अधिक अधिकार क्रियात्मक नायकों (Functional Bosses) को सौंपे जाते हैं तथा नायकों को अधिक कार्य करने को कहा जाता है। इससे समन्वय एवं नियन्त्रण सम्बन्धी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं और औद्योगिक संस्थान में निर्देशों एवं आदेशों में भी समरूपता नहीं पायी जाती है अधिकार एवं उत्तरदायित्व (Authority & Responsibilty) का सही विभाजन न होने के कारण श्रमिकों व कर्मचारियों में कार्य की शिथिलता आती है जो कि संस्थान की प्रगति में बाधक है।

(iii) अमानवोचित एवं निराशापूर्ण धारणाएं (Inhuman and Pessimistic Assumptions)—वैज्ञानिक प्रबन्ध सम्बन्धी विचारधारा मानवीय प्रकृति के विषय में निराशापूर्ण धारणाएं लेकर चलती हैं जो कि मानवोचित नहीं है। व्यवहारवादी व्यावहारिक वैज्ञानिकों (Behavioural Scientists) ने विरोध किया है। वैज्ञानिक प्रबन्ध यह मानकर चलता है कि श्रमिक आलसी एवं कामचोर हैं, उत्तरदायित्व से बचते हैं, महत्त्वाकांक्षी नहीं होते हैं, परिवर्तन का विरोध करते हैं। इसलिए श्रमिकों का निकट से पर्यवेक्षण एवं कठोर नियन्त्रण करने पर जोर दिया गया है। प्रो डगलस मैक्ग्रेगर (Douglas McGr gor) जिन्होंने प्रबन्ध के क्षेत्र में एक वाई नामक सिद्धान्त (Theory Y) का प्रतिपादन किया है इस

साधन पन्ल । मनोवैज्ञानिक इस बात पर जोर देते हैं कि प्रबन्धकों का श्रमिकों के साथ मानवीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । श्रमिकों को अपने काय और काय करने के तरीके पर सोचने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाना चाहिए । श्रमिकों को प्रबन्ध म सहभागिता का अवसर दिया जाना चाहिए तथा सुझाव योजनाओं (Suggestion Schemes) के माध्यम से प्रबन्ध व श्रम के बीच पारस्परिक सहयोग एव मधुर सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए ।

(iii) नीरसता की समस्या (The Problem of Monotony)—वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तगत श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण के माध्यम से प्रत्येक कमचारी को एक विशिष्ट काय दिया जाता है जो उसे प्रबन्ध द्वारा दिए गए तरीके से करना पडता है । हमेशा वही काय करते रहने से श्रमिक का जीवन नीरस हो जाता है और कुछ समय बाद उसकी कायक्षमता घटने लगती है जो कि वैज्ञानिक प्रबन्ध के मूल उद्देश्य को व्यथ सिद्ध कर देता है । नीरसता को दूर करने हेतु मनोवैज्ञानिकों का सुझाव है कि काय का विस्तार (Enlargement of Job) द्वारा काय से सम्बद्ध सभी विधियों का ज्ञान भी श्रमिकों को दिया जाना चाहिए । इससे श्रमिक उस काय को भी समय पर कर सकेंगे और उनकी नीरसता भी दूर हो सकेगी ।

(iv) श्रमिकों के काय करने की गति तेज होती है । वैज्ञानिक प्रबन्ध का उद्देश्य अधिकतम काय करना होता है । इसके लिए श्रमिकों को काय तेजी से करना पडता है । श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है । मानसिक तनाव व थकावट आ जाती है । मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि श्रमिकों से ऐसे वातावरण व इस गति से काय लेना चाहिए कि उसके मानसिक व शारीरिक अगों पर तनाव एव दबाव नहीं पडे । अच्छे व्यवहार से श्रमिकों से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है ।

(v) परम्परागत प्रबन्ध के अन्तगत यह माना जाता था कि श्रमिक से अधिक काय लेने हेतु उसे मौद्रिक प्रेरणाए (Monetary Incentives) दी जानी चाहिए । लेकिन औद्योगिक मनोवैज्ञानिक यह मानकर चलते हैं कि श्रमिक केवल मौद्रिक प्रेरणाओं से ही प्रभावित नहीं होता है । उसे प्रभावित करने वाले अन्य तत्व भी हैं जैसे—काय की सुरक्षा, सामाजिक तत्व, मान्यता, स्वतन्त्रतापूवक सोचने एव विचार करने आदि । अत वैज्ञानिक प्रबन्ध को अपने सिद्धान्तों में संशोधन करके मनोवैज्ञानिक तत्वों जैसे—व्यावसायिक चयन एव मार्गदर्शन, काय विस्तार, काय हेरफेर एव उपयुक्त परामश तथा सुझाव योजनाओं आदि का भी समावेश किया जाना चाहिए ।

वैज्ञानिक प्रबन्ध की उपरोक्त आलोचनाए वैज्ञानिक प्रबन्ध की न होकर उस तरीके की हैं जिसके माध्यम से इसे लागू किया जाता है । हाल ही के कुछ वर्षों में व्यावहारिक वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए सुझावों को वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों में शामिल करके इन दोषों को दूर किए जाने का प्रयास किया गया है । इसके साथ

श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के पारस्परिक सहयोग एवं सद्विश्वास से इन दोषों को दूर किया जा सकता है। सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) के माध्यम से वैज्ञानिक प्रबन्धकों द्वारा श्रमिकों के शोषण को समाप्त किया जा सकता है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध एक सिद्धान्त के रूप में उचित है लेकिन उद्योग में इसे सफलतापूर्वक लागू करने हेतु संस्थान में कार्यरत सभी कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग होना आवश्यक है। प्रो अर्नेस्ट डेल (Ernest Dale) ने टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध की धारणा पर प्रकाश डालते हुए कहा है टेलर ने प्रबन्ध के एक विज्ञान को विकसित नहीं किया था। इसके विपरीत उसने प्रबन्ध के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विश्वास किया था—उसने वे विधियाँ बताई थीं जो कम्पनी के उत्पादन क्षेत्र में प्रयोग की जा सकती थीं। वास्तव में टेलर औद्योगिक इंजीनियरिंग का पिता था न कि वैज्ञानिक प्रबन्ध का।[1]

---

1 Ernest Dale Management—Theory and Practice, p 180

6

चेस्टर बर्नाड का सगठन विश्लेषण
(Organisation Analysis-Chester Barnard)

चस्टर आई बर्नाड (Chester I Barnard) ने अपनी मुख्य रचना फक्शन्स ऑफ दि एक्जीक्यूटिव[1] (The Functions of the Executive) में सगठन के सिद्धान्त सम्बन्धी औपचारिक सगठन क काय आदि क विषय म विषद विवेचन प्रस्तुत किया है। सहकारिकता की प्रारम्भिक अवधारणा के अनुसार उसने सगठन की परिभाषा दो या दो मे अधिक व्यक्तियो की सजग रूप से समन्वित क्रियाओं अथवा शक्तियो की व्यवस्था के रूप म की है। सगठन क जीवन क लिए मूल तत्त्व हैं—सहकार की अभिलाषा सचार की योग्यता, उद्देश्य का अस्तित्व एवं स्वाहृत। बर्नार्ड न अपने विचार उस समय प्रकट किए जब कि पाश्चात्य विद्युत प्रयोगो क प्रतिवेदन टेनर तथा फयोल द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रब ध क सिद्धान्तो तथा सगठन के तार्किक सिद्धा त क साथ सघर्षपूर्ण सिद्ध हो रहे थ।

बर्नार्ड की पुस्तक का प्रथम बडा योगदान सगठन के सकल सिद्धान्त की रचना है जिसन फयाल क माडल को एक विकल्प प्रदान किया तथा वेक बायरिंग आवजर्वेशन और रिल एसेम्बली टस्ट रूम्स की मानवीय खोजो को ध्यान म रखा। बर्नार्ड द्वारा प्रस्तुत सगठन क विश्लेषण की कुछ महत्वपूर्ण बातो का अध्ययन हम कुछ मुख्य शीर्षको म कर सकत है

व्यक्ति और सगठन
(The Individual and Organisation)

व्यक्ति क्या है के प्रश्न पर विचार करत हुए बर्नार्ड न बताया है कि व्यक्ति केवल शरीर मात्र ही नहीं है। मानवीय शरीर एक सावयवी है जिसकी रचना के अग भौतिक एव जीव शास्त्रीय दोनो प्रकार क है। जीवन्त वस्तुए उनक व्यवहार से जानी जाती है और समस्त जीवन्त व्यवहार भौतिक एव जीव शास्त्रीय तत्त्वो का सम्मिश्रण हैं। यदि एक प्रकार क तत्त्वो को निकाल भी दिया जाय तो जीवन्त

[1] Chest r I Barnard The F ctio s of the Ex ut v 1971

रूप एव काय दोनो समाप्त हो जाएँगे। द्विलिंगीय (Bisexual) होने के कारण मानवीय सावयवी दूसरे मानवीय सावयवी के सम्पर्क में आने पर ही व्यवहार करता है। व्यक्ति से बर्नार्ड का अर्थ है एक इकाई विशिष्ट स्वतन्त्र पृथक पूर्ण वस्तु अनेक शक्तियों एव पदार्थों से युक्त जो कि भौतिक जीवशास्त्रीय तथा सामाजिक तत्त्व हैं। व्यक्ति की कुछ सम्पत्तियाँ हैं जैसे—क्रियाएँ अथवा व्यवहार जो कि उत्पन्न होता है मनोवैज्ञानिक कारकों में जिसके साथ मिली हुई है चयन की सीमित शक्ति जिसका परिणाम होता है लक्ष्य।

सगठन या सहकारिता जैसा कि वे दिखाई देते हैं तथा अनुभव किए जाते हैं विरोधी तथ्यों एव विरोधी मानवीय विचारों एव भावनाओं के मूर्त मिश्रण होते हैं। यह निष्पादक का काय है कि विरोधी शक्तियों के मूर्त कार्यों में मिश्रण की सुविधा जनक बनाए तथा सघर्षपूर्ण ताकतों प्रवृत्तियों हितों परिस्थितियों स्थितियों एव आदर्शों का परस्पर मिलाए। बर्नार्ड ने सगठन को औपचारिक एव अनौपचारिक दो रूपों में वर्गीकृत किया है। दोनों के अर्थ जन्म विकास काय एव अन्त सम्बन्ध विषयक चिन्तन निम्नलिखित प्रकार से हैं—

औपचारिक सगठन की परिभाषा
(Definition of Formal Organisation)

दो या अधिक व्यक्तियों का सहयोग सगठन कहलाता है।[1] यह सहयोग मूल रूप में चार प्रकार का हो सकता है—भौतिक परिवेश सम्बन्धी सामाजिक परिवेश सम्बन्धी व्यक्तियों सम्बन्धी तथा अन्य चरों सम्बन्धी। सहयोगी व्यवस्थाओं के अनुभव का विश्लेषण करने के लिए सर्वाधिक उपयोगी अवधारणा के रूप में औपचारिक सगठन की परिभाषा दो या अधिक व्यक्तियों की सजग रूप से समन्वित क्रियाओं की एक व्यवस्था के रूप में की जाती है। किसी भी मूर्त स्थिति में जहाँ सहयोग होता है वहाँ अनेक व्यवस्थाएँ उसका अग बन जाती हैं। इनमें से कुछ जीव शास्त्रीय कुछ मनोवैज्ञानिक तथा कुछ अन्य होती हैं किन्तु इन सबको एक साथ बाँधने वाली चीज मुख्यत सगठन है।

औपचारिक सगठन के तत्त्व (The Elements of Formal Organisation)—कोई भी सगठन तब बनता है जबकि कुछ लोग परस्पर सचार करते हैं जो कार्य करने के इच्छुक होते हैं तथा एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते हैं। इस प्रकार सगठन के तीन मुख्य तत्त्व हैं—सचार सेवा की इच्छा और सामान्य उद्देश्य। ये तत्त्व सगठन की आवश्यक शर्तें हैं तथा सभी सगठनों में पाई जाती हैं। किसी सगठन के निरन्तर अस्तित्व के लिए प्रभावशीलता या कार्यकुशलता भी

1 The def n tion of a fo m l o ga at n s y t m of o ly coo di at d a t v t es o fo of two o m p
—Ch st I B-.n. d Ibd p 81

आवश्यक है। सगठन का जीवन जितना लम्बा हागा ये दोना बातें भी उतनी ही आवश्यक बन जाएगी सगठन की जीव तता के लिए आवश्यक है कि यक्ति सहयागी यवस्था के लिए अपनी शक्तियो का योगदान करने के इच्छुक हा। यह इच्छा तभी हो सकती है जबकि व्यक्ति को विश्वास हो कि सगठन योगदान कर सकता है। जब सगठन की कायकुशला घट जाती है ता यक्ति उसके लिए अपना योगदान करन की इच्छा नही रखते। यदि यक्ति को सगठन की उद्देश्य प्राप्ति क प्रति सतोष है तो वह अपना योगदान करता रहगा। यदि यह सतोष अपेक्षित त्याग स अधिक नही है तो यक्ति की इच्छा लुप्त हा जाती है तथा सगठन अकायकुशल बन जाता है यदि सतोष त्याग से अधिक है तो इच्छा बनी रहेगी और सगठन कायकुशल बना रहेगा।

सक्षेप म एक सगठन का प्रारम्भिक अस्तित्व इन तत्त्वो के सयोग पर निभर करता है जो एक क्षण विशष म बाहरी परिस्थितियो क उपयुक्त होने चाहिए। इसका अस्तित्व यवस्था की समतुल्यता के सधारण पर निभर करता है। यह समतुल्यता या सतुलन मुख्य रूप स आतरिक है तथा अतिम एव मूलभूत रूप स यह यवस्था और इससे बाहर की स्थिति के बीच का सतुलन ह। इस बाहरी सतुलन म दो शब्द हैं—प्रभावशीलता (Effectiveness) तथा कायकुशलता (Efficiency)। इस प्रकार उक्त तीनो तत्त्व बाहरी कारको क अनुसार भिन भिन्न रूप धारण करगे। वे अ त निभर भी हैं इसलिए यदि एक तत्त्व म अन्तर आता ह तो सतुलन की स्थापना हेतु अय तत्त्वो मे भी अतर आ जाता ह। केवल तभी सतुलन रह पाता है।

जटिल औपचारिक सगठन की सरचना (*The Structure of Complex Formal Organisation*)—सगठनो का बर्नाड ने पूण, अपूण, अधीनस्थ एव आश्रित (Complete Incomplete Subordinate and Dependent) के रूप में वर्णित किया ह। राष्ट्रीय एव स्थानीय समाजो में औपचारिक सगठनो का एक तातुजाल बिछा रहता ह। इनमे से कुछ सगठन प्रभावशाली तथा अपेक्षाकृत यापक होत हैं और अन्य सभी सगठन इनके साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध रहते हैं। ये अधीनस्थ रहते हैं। प्रभावशाली सगठना म चच तथा राय मुख्य हैं। अय सभा सगठन इनके अधीनस्थ रहते हैं। यह अधीनस्थता प्रत्यक्ष हो सकती ह या अप्रत्यक्ष हो सकती ह अथवा दोनों हो सकती हैं। अधीनस्थता की यह प्रक्रिया यक्त रूप स पर्याप्त जटिल ह तथा इसम प्राय अनक मध्यवर्ती सोपान होते है। इस प्रकार सरकार की अनेक शाखाए अनक विभाग उपविभाग एव स्थानीय सगठन होते हैं। इसी प्रकार चच के भी अनक प्रशासनिक एव प्रादेशिक उपविभाग तथा विशषीकरण है।

किसी भी रूप में जब नया संगठन जन्म लेता है तो उसका आकार मोटा होना है। सभी बड़े औपचारिक संगठन अनेक छोटे संगठनों को मिलाकर बनाए जाते हैं। बिना छोटे संगठनों का सयोग किए कोई बड़ा संगठन बनाना असम्भव है। बड़े जटिल संगठनों में संचार व्यवस्था आवश्यक रूप से कुछ समस्याएं पैदा करती है इसलिए कोई संगठन एक सीमा से बड़ा नहीं बनाया जाता। यदि एक संगठन अत्यधिक बड़ा बन गया है तो उसका संचालन नए इकाई संगठनों (Unit Organisations) की रचना करके ही किया जा सकता है। सभी संगठन प्रायः कुछ इकाई संगठनों का योग होते हैं।

जब दो या अधिक इकाई संगठनों को एक जटिल संगठन में संयुक्त किया जाता है तो संचार की आवश्यकता के कारण एक सर्वोच्च नेता रखा जाता है। यह अपने सहायकों के साथ मिलकर संगठन की सकल शीर्ष की इकाई बन जाता है। इसी प्रकार समूहों के समूह भी महत्तर समग्र में संयुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार जटिल संरचना का उदाहरण बनता है।

औपचारिक संगठन में निष्पादक संगठन (The Executive Organisation in Formal Organisation)— इकाई संगठन में कुछ निष्पादक कार्य भी सम्पन्न करने को होते हैं किन्तु जरूरी नहीं है कि इन्हें लगातार एक ही व्यक्ति सम्पन्न करे। ये कुछ व्यक्तियों द्वारा वैकल्पिक रूप से सम्पन्न किए जा सकते हैं। जटिल संगठनों में संचार की आवश्यकता के परिणामस्वरूप अधीनस्थ इकाइयों के संगठनों में निष्पादक कार्य एक व्यक्ति में निहित रख जाते हैं। यह औपचारिक संचार की दृष्टि से आवश्यक है तथा निष्पादक संगठनों की स्थापना के लिए भी आवश्यक है। निष्पादक संगठन वे इकाइयाँ हैं जो निष्पादन कार्यों में विशेषज्ञ होती हैं। इनका अलग से एक अध्यक्ष बना दिया जाता है। इसके सदस्य निष्पादन के कार्यों में विशेषज्ञ होते हैं।

निष्पादक संगठनों का आकार सामान्यतः उन्हीं कारणों से प्रभावित होता है जिनसे अन्य संगठनात्मक इकाइयों का होता है। जहाँ अनेक मूलभूत कार्यकारी इकाइयाँ होती हैं वहाँ विभिन्न प्राथमिक निष्पादक इकाई संगठन होते हैं। इसके अध्यक्षों में से ही उच्चतर निष्पादक इकाइयों के लिए सदस्य लिए जाते हैं।

अनौपचारिक संगठन
(The Informal Organisation)

प्रायः सामान्य रूप से यह देखा और अनुभव किया जाता है कि लोग किसी औपचारिक संगठन से न जुड़े हुए भी परस्पर सम्पर्क एवं अन्तःक्रिया करते हैं। ऐसे सम्बन्धों में दो से लेकर भीड़ तक की संख्या में लोग रहते हैं। इन सम्पर्कों तथा अन्तःक्रियाओं की एक विशेषता यह होती है कि ये बिना किसी विशिष्ट सजग संयुक्त उद्देश्य के होते रहते हैं। यह सम्पर्क अचानक हो सकता है या इच्छापूर्ण हो

बन जात है। औपचारिक सगठन द्वारा विकसित दृष्टिकोण सस्थाए रीति रिवाज आदि भी अशत औपचारिक सगठनो के माध्यम से ही अभि यक्त होत हैं। ये एक ही प्रयास के अ त सम्बधित पहलू है। एक समाज की सरचना औपचारिक सगठनो द्वारा होती है तथा औपचारिक सगठना को अनौपचारिक सगठना द्वारा यापकता प्र ान की जाती है। औपचारिक सगठनो क पूण प्रभाव की स्थिति म पूण व्यक्तिवाद एव अव्यवस्था हो जाएगी।

औपचारिक सगठनो द्वारा अनौपचारिक सगठनों का सृजन (Creation of Informal Organisations by Formal)—औपचारिक सगठनो का ज म अनौपचारि क सगठनो से होता है तथा ये दूसरे के लिए आवश्यक भी ह कि तु जब औपचारिक सगठन बन जाते हैं तो ये फिर अनौपचारिक सगठनो की रचना करत हैं तथा अपेक्षा करते हैं। सहयोग की औपचारिक व्यवस्था का अधिकाश भाग अनौपचारिक होता है। यद्यपि प्रत्येक औपचारिक निष्पादक इस तथ्य को अस्वीकार करता है किन्तु यह अस्वीकाय नहीं है कि प्रमुख निष्पादक और यहाँ तक कि सम्पूण निष्पादक सगठन ही उन यापक प्रभावो दृष्टिकोणो आ दोलनो आदि से अपरिचित रहते हैं जो सगठन स प्रभावी हैं। यह बात केवल व्यावसायिक सगठनो के बारे म ही सच नही है वरन् राजनीतिक सगठना सरकारा सेनाओ चर्चों एव विश्वविद्यालयो आदि के बारे म भी सच ह।

यह बात प्राय कही जाती है कि आप एक सगठन को या उसके कार्यों को उसके सगठनात्मक चाट स चाटर से नियमो एव विनियमो से तथा उसके सेवी वग को दखने से नहीं समझ सकत। अधिकाश सगठनो म सगठन की रसियो को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि कौन कौन हैं क्या क्या हैं क्यो-क्यो हैं तथा इसका अनौपचारिक समाज कसा है।

अनौपचारिक सगठन के काय (Functions of Informal Organisation)—औपचारिक सगठन म अनौपचारिक सगठन द्वारा विभिन्न काय किए जात हैं। इसका पहला काय सचार (Communication) सम्ब धी है। दूसरा काय है सेवा करने की इच्छा के नियमन तथा वस्तुगत सत्ता के स्थायित्व द्वारा औपचारिक सगठन म एकरूपता का स धारण। इसका तीसरा काय है व्यक्तिगत ईमानदारी की भावना आत्म सम्मान एव स्वत त्र चयन की भावना को बनाए रखना। इन कार्यों को सम्पन्न करने का दृष्टि स अनौपचारिक सगठन आवश्यक बन जात हैं।

यह सब चेस्टर बर्नार्ड द्वारा प्रस्तुत सगठन का विश्लेषण है जो उसी के श दो म सहकारी व्यवस्थाओ एव सगठनो के सिद्धा त का कठिन प्रस्तुतीकरण है।[1]

1 the diff cult presentat o of the theory of Co-op rative system nd O gan sat ons —Che ter I Barnard op c t pag 123

7

हाथान प्रयोग—अनौपचारिक सगठन की अवधारणा, अभिप्रेरण—एल्टन मेयो, मकग्रेगर, लिकट के योगदान के विशेष सदभ मे अनुशासन

(Howthorne Experiment—Concept of Informal Organisation Motivation—Morale with Special Reference to Elton Mayo McGregor, Likert)

सगठन म मानवीय-व्यवहार का सर्वाधिक महत्वपूण योगदान रहता है। मानव सस्था होने के नाते यह स्वाभाविक है कि सगठन मनोवैज्ञानिक एव मानवीय कारणो से प्रभावित हो। यान्त्रिक एव औपचारिक दृष्टिकोण के समथक सगठनात्मक इकाइयो की सरचना तथा औपचारिक नियमो का अधिक महत्व मानते हैं और सगठन की सफलता के लिए इन्ही की सन्तोषजनक स्थिति पर जोर देते हैं किन्तु आधुनिक विचारक सगठन तथा मानवीय व्यवहार के पारस्परिक सम्बन्धो पर विशेष बल देते हैं। (सगठन का औपचारिक रूप जिसम काय का विशेषीकरण होता है आज्ञा का क्रम रहता है तथा निर्देशन की एकता एव नियन्त्रण का निश्चित क्षेत्र होता है मानवीय व्यवहार से प्रभावित होता है और उसे प्रभावित करता भी है।)

मानव व्यवहार पर उसके चरित्र आदतो भावनाओ मूल्य समाज व्यवस्था आदश परम्परा एव ऐसे ही अन्य तत्वो का जो प्रभाव पडता है वह सगठन मे भी उसकी क्रियाओ को एक नवीन मोड देने का कारण बन जाता है। मानवीय सम्बन्धो का सगठन की कायवाहियो पर क्या प्रभाव पडता है तथा उसम अनौपचारिकताओ का निर्वाह किस प्रकार आरम्भ हो जाता है आदि बातें विचारणीय समस्याएं हैं। व्यापारिक एव प्रशासकीय सगठनो के विद्वानों ने अनेक प्रयोगो द्वारा इन समस्याओ का वैज्ञानिक अध्ययन करने का प्रयास किया है। इन प्रयोगो के आधार पर उन्होने कुछ निष्कष निकाले हैं। इन निष्कर्षों ने सगठन के स्वरूप एव प्रक्रिया से सम्बन्धित विचारो तथा धारणाओ म क्रान्तिकारी परिवतन कर दिया है।

मानव सम्बन्ध दृष्टिकोण अनौपचारिक संगठन पर बल
(Human Relation Approach Stress on Informal Organisation)
अथवा
संगठन का सामाजिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अनौपचारिक संगठन पर बल
(Socio Psychological Approach—Stress on Informal Organization)

(यान्त्रिक एवं औपचारिक दृष्टिकोण के समर्थक संगठनात्मक इकाइयों की सरचना तथा औपचारिक नियमों को अधिक महत्त्व मानते हैं और संगठन की सफलता के लिए इन्हीं की सन्तोषजनक स्थिति पर जोर देते हैं किन्तु आधुनिक विचारक संगठन तथा मानवीय व्यवहार के पारस्परिक सम्बन्धों पर विशेष बल देते हैं।) संगठन का औपचारिक रूप जिसमें कार्य का विशेषीकरण होता है आज्ञा का क्रम रहता है तथा निर्देशन की एकता एवं नियन्त्रण का निश्चित क्षेत्र होता है *मानवीय व्यवहार से प्रभावित होता है और उसे प्रभावित करता है। 1920 के* दशक के अन्तिम वर्षों एवं 1930 के प्रारम्भिक वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका में हाथार्न प्रयोग हुए जिनके फलस्वरूप संगठन में स्थानीय या यान्त्रिक विचारधारा को धक्का लगा और उसकी लोकप्रियता कम हो गयी। इन प्रयोगों ने यह सिद्ध किया कि मनुष्य कोई एकाकी प्राणी नहीं है। मनुष्य अपने ढंग से पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं अतः पर्यावरण पक्ष को उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए। *हाथार्न अध्ययनों ने सिद्ध किया कि संगठन एक सामाजिक प्रणाली* (A Social System) है व्यावहारिक प्रक्रिया का समूह है। हाथार्न प्रयोगों से पता चला * कि संगठन के कर्मचारियों ने अपने सामाजिक स्तर व्यावहारिक आचरण विश्वास एवं उद्देश्यों (जो एक दूसरे से भिन्न तथा परस्पर विरोधी हो सकते हैं) के आधार पर लघु सामाजिक समूहों के संगठन की प्रवृत्ति पायी जाती है। (हाथोर्न प्रयोगों के निष्कर्ष मौलिक थे जिनके परिणामस्वरूप संगठन सम्बन्धी नवीन सामाजिक मनोवैज्ञानिक अथवा मानव सम्बन्ध दृष्टिकोण का उदय हुआ।)

(संगठन एवं प्रबन्ध के सामाजिक मनोवैज्ञानिक अथवा मानवीय व्यवहार दृष्टिकोण के आविर्भाव अथवा प्रतिपादन का श्रेय आस्ट्रेलिया निवासी एल्टन मेयो तथा अमेरिका निवासी रोथलिस बर्जर द्वारा हाथोर्न नामक स्थान पर वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के हाथोर्न कारखाने में किए गए प्रयोगों को है।) मानव व्यवहार पर उसके चरित्र आदतों भावनाओं मान्य समाज व्यवस्था आदर्श परम्परा एवं ऐसे ही अन्य तत्त्वों का जो प्रभाव पड़ता है वह संगठन में भी उसकी क्रियाओं को एक नवीन मोड़ देने का कारण बन जाता है। मानवीय सम्बन्धों का संगठन की कार्यवाहियों पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा उसमें अनौपचारिकताओं का निर्वाह

प्राथिक विचारधारा या मानववादी विचारधारा की सना दी जाती है। मानव सम्ब धी विचारधारा पर मत व्यक्त करते हुए डा व्हाइट ने लिखा है— *यह विचारधारा काय सम्ब धा का समू ह है जो दीघकाल तक एक साथ काय करने के कारण यक्तियो म पारस्परिक अ त सम्ब धा का समह है जो दीघकाल तक एक साथ काय करने के कारण व्यक्तियो मे पारस्परिक अन्त सम्ब धा के कारण विकसित हो जाते हैं। प्रोपचारि क सगठन अत्यधिक सूक्ष्म होता है और सामाजिक प्राथिक स्तर प्रजाति और भावायी अ तर शक्षणिक स्तर और वयक्तिक रुचि और अरुचि जसे मामलो की अभि यक्ति करते हैं । यह परम्परावादी है न कि निर्मित। यह लिखित नही है और न इसे स्वेच्छा रेखाचित्रा से व्यक्त किया जा सकता है।* प्रोपचारिक सगठन जहा विवेकीय और अवमक्तिक होता है वहा अनौपचारिक सगठन भावा मक और वयक्तिक होता है। दोना एक दूसरे का अतिक्रमण कर सकते हैं पूरी तरह मिल सकते हैं या एक दूसरे से पृथक हो सकते हैं।

प्रशासन मानवीय यवहार मे सम्ब धित है और मनोविनान उसे समझने म हमारी सहायता करता है। *प्रशासन के अध्ययन म मनोवज्ञानिक पद्धति का प्रयाग कुमारी एम पी फोले न प्रारम्भ किया तथा उ होने यह बताया कि व्यक्तियो और समहो की इच्छाए उनके पूर्वाग्रह तथा नतिक म य प्रशासन के भीतर किस* प्रकार उनके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। मनोवज्ञानिक दृष्टि से देखने पर यह नात होता है कि प्रशासन अनिवायत मानवीय सम्ब धा का अध्ययन है। प्रशासन के मनोवनानिक अध्ययन स यह बात स्पष्ट हुई है कि यक्तिया और समूहो की मनोवनानिक प्रतिक्रियाओ के कारण प्रशासन के भीतर एक अनौपचारिक सगठन का निर्माण हो जाता है। यह निर्माण चार्टों मे प्रदर्शित औपचारिक सगठन को सशोधित कर देता ह उसका पूरक बन जाता है और इतना महत्त्वपूण हो जाता है कि यदि प्रशासन उसकी अवहलना कर तो वह शायद स्वय सकट म पड जाए। यावसायिक प्रशासन क क्षत्र म मनोविनान की एक नई शाखा विकसित हो गयी है जिसे औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology) कहा जाता है।

स्मरणीय है कि अनौपचारिक सगठन औपचारिक सगठन पर आधारित होता है और उसके बिना उसका अस्तित्व नही हो सकता। अनौपचारिक सगठन क माध्यम स सगठन म एक सीमा तक नमनीयता आती है। यह प्रकार्यात्मक आवश्यकता है लकिन इसके लिए सगठन म अनौपचारिक सरचनात्मक प्रब ध की पूण उपक्षा नही करनी चाहिए। औपचारिक सगठन में अनौपचारिक सगठन के कुछ तत्त्वों का समावेश कर लेना चाहिए। इसस सगठन म मजबूती आ जाती है तथा इसका औचित्य भी बढ जाता है। अनौपचारिक सगठन की सबस बडी कमजोरी यह है कि वह पूणरूपेण अस्थिर होता है निरन्तर परिवर्तित होता रहता है और इसक व्यवहार क सम्ब ध म कोई पूव घोषणा नहीं

मानवीय सम्बन्धो का सगठन की कार्यवाहियां पर क्या प्रभाव पडता है तथा उसम अनौपचारिकताओं का निवाह किस प्रकार प्रारम्भ हो जाता है आदि बातें विचारणीय समस्याए हैं। व्यापारिक एव प्रशासकीय सगठनो के विद्वानो ने अनेक प्रयोगो द्वारा इन समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने का प्रयास किया है। इन प्रयोगो के आधार पर उन्होंने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। इन निष्कर्षों ने सगठन के स्वरूप एवं प्रक्रिया से सम्बन्धित विचारो तथा धारणाओं म क्रान्तिकारी परिवतन कर दिया है।

मानव सम्बन्ध के दृष्टिकोण ने सास्कृतिक अौपचारिक सगठन की प्रतिक्रिया के रूप म जन्म लिया जो सगठन के उन तत्त्वो पर बल देता है जिसकी ओर विचारको ने या तो ध्यान ही नहीं दिया और यदि दिया भी था तो औपचारिकता को गौण मानकर। एल्टन मयो (Elton Mayo) को सामान्यत इस स्कूल का जनक माना जाता है। इसे प्रारम्भ करने म जान डीव (John Dewey) ने अप्रत्यक्ष तथा कर्ट लेविन (Kurt Lewin) ने प्रत्यक्ष रूप स पर्याप्त योगदान किया है। मयो तथा उनके साथियों ने विविध सगठनों पर कई प्रकार के प्रयोग करके कुछ निष्कर्ष निकाले थे।

एल्टन मेयो के निष्कर्ष

1 एक मजदूर द्वारा किए जाने वाले काय की मात्रा उसकी शारीरिक सामर्थ्य (Capacity) म निर्णीत होती है।
2 मजदूरो को काय की प्ररणा देने तथा उनम प्रसन्नता लाने के लिए अर्थेतर पुरस्कारो का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।
3 सर्वोच्च विशेषीकरण का श्रम विभाजन का सर्वाधिक कुशल रूप नहीं कहा जा सकता।
4 प्रबन्ध प्रादर्शों व पुरस्कारो के प्रति कमचारी एक व्यक्ति के रूप म प्रतिक्रिया न कर एक समूह के सदस्य के रूप म करते हैं।

इन निष्कर्षों के अतिरिक्त सगठन पर किए गए अनेक प्रयोगो द्वारा मानव सम्बन्धो के विचारको ने सचार (Communication) सहभागिता (Participation) तथा नेतृत्व (Leadership) पर विशेष जोर दिया है। इन तत्त्वो से सम्बन्धित प्रयोग इस स्कूल के समथको के सन्दर्भ ग्रन्थ बन गए हैं। सगठन से सम्बन्धित इस स्कूल के विचारको ने जो विभिन्न प्रयोग किए हैं उनका अध्ययन सर्वथा उपयोगी है।

हाथान प्रयोग
(Hawthorne Experiments)

(1927 से लेकर 1932 तक पश्चिमी विद्युत कम्पनी के हाथान मजदूरो पर प्रथम बार ऐसे प्रयोग किए गए।) अध्ययन की इस शृंखला को हाथान का

अध्ययन कहा जाता है।)इन प्रयोगों द्वारा कई प्रमुख एव अकल्पनीय बातों का पता लगा।(रोथलिसबर्जर (Roethlishberger) तथा डिक्सन (Dickson) का कथन है कि बढ़ते हुए प्रकाश का उत्पादन के स्तर पर प्रभाव जानने के लिए जो प्रयोग किए गए उनसे प्रयोगकर्त्ताओं ने यह ज्ञात किया कि इन दोनों तत्त्वों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। बाद के अध्ययनों से यह भी पता लगा कि प्रकाश को मन्द कर देने से उत्पादन की मात्रा बढ़ी। उत्पादन की मात्रा में कमी केवल तभी आई जब रोशनी इतनी कम हो गई कि मजदूर अच्छी प्रकार से देख नहीं पाए।)

बाद में परम्परावादी लेखकों के कथनों की सच्चाई को प्रयोगों की कसौटी पर कसा जाने लगा। यह कहा जाता है कि काम की भौतिक परिस्थितियों एवं उत्पादन की दर के बीच प्रत्यक्ष एवं साधारण सम्बन्ध होता है। प्रत रोशनी से सम्बन्धित प्रयोग कर चुकने के बाद इस बात पर प्रयोग किए गए कि विश्राम का उत्पादन पर क्या तथा कितना प्रभाव पड़ता है। पाँच मजदूरों को प्रयोग के लिए चुना गया। उनको क्रमश पाँच दस और पन्द्रह मिनट का अवकाश देकर यह देखा गया कि उनसे उत्पादन की मात्रा पर विभिन्न प्रभाव कम पड़ते हैं। इन प्रयोगों के परिणामस्वरूप उत्पादन वृद्धि तो हुई किन्तु इस वृद्धि का श्रेय विश्राम अवकाश को न दिया जा सकता था क्योंकि इस अवकाश को जब पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया और सारे दिन काम लिया गया तो भी उत्पादन की मात्रा सामान्य रूप से अधिक ही थी। इन सबका यह निष्कर्ष निकाला गया कि उत्पादन की मात्रा को सामान्य रूप से कम बताया जा सकता है इसके बारे में प्रयोगकर्त्ताओं को एक परिकल्पना सुझाई गई कि उत्पादन की मात्रा उस समय बढ़ जाती है जब काम करने वालों की सामाजिक परिस्थितियाँ बदल दी जाती हैं उनके मनोवैज्ञानिक सतोष के स्तर में परिवर्तन कर दिए जाते हैं तथा सामाजिक सम्बन्धों को नया रूप दे दिया जाता है। इस परिकल्पना के आधार पर भी प्रयोग किए गए। इन प्रयोगों का परिणाम आशाजनक था। सामाजिक तथ्यों (Social Facts) की खोज हाथार्न अध्ययनों की सबसे प्रमुख देन मानी जाती है।

(प्रसिद्ध बन्द वार्ता पर किए गए अध्ययन भी इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व पूर्ण रहे हैं।)इन प्रयोगों में वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management) की अनेक मान्यताओं को एक एक करके परखा गया। इस अध्ययन द्वारा कई निष्कर्ष निकाले गए उनको बाद के अध्ययनों द्वारा पुष्ट किया गया। यह सिद्ध हो गया कि एक मजदूर उतना उत्पादन नहीं करता जितना वह कर सकता है वरन् वह उतना उत्पादन करता है जितना करने का उदाहरण या प्रेरणा उसके साथ काम करने वाले व्यक्ति द्वारा उसे प्रदान की जाती है। इस आधार पर उत्पादन की मात्रा तय की जाती है। उत्पादन पर कृत्रिम सीमाएँ लग जाती हैं तथा ये प्राकृतिक सीमाएँ जैसे भौतिक सम्भावना आदि के प्रभाव को कम कर देती हैं।

चौन्न कर्मचारियों पर एक अन्य प्रयोग किया गया। उनका कार्य को एक इकाई के रूप में अलग कमरे में रखा गया तथा छः माह तक उनको निकट से देखा गया। उनका कार्य था टलीफोन के स्विचबोर्डों में तार लगाना। इस कार्य में कुछ को तो व्यक्तिगत रूप से कार्य करना था और कुछ को दूसरे लोगों के साथ मिल कर। इन कर्मचारियों को वेतन उसी प्रकार दिया गया जैसे कि कम्पनी के अन्य कर्मचारियों को दिया जाता था। मजदूरों को घंटा के हिसाब से वेतन दिया गया साथ ही कुछ उत्पादन के अनुसार बोनस भी दिया गया। इसके अतिरिक्त उनको व्यक्तिगत रूप से कार्य रुक जाने के समय का भत्ता दिया गया। जब कभी कार्य ऐसे कारणों से रुक जाता जिन पर मजदूर का अधिकार न था तो कार्यकुशल मजदूरों को आलसी मजदूरों की तुलना में प्रोत्साहन देने के लिए इस प्रकार के भत्ते की व्यवस्था की गई। प्रबन्धात्मक मान्यताएं भी प्रायः वही थीं जो टेलर (Taylor) के प्ररकों के सिद्धान्त थे अर्थात् एक व्यक्ति को अधिक कठिन कार्य करने के लिए यदि अधिक पैसा दिया जाए तो वह अवश्य ही उतना कठिन कार्य करेगा जितना कर सकता है। यदि कुल उत्पादन के बढ़ जाने से श्रमिकों की आय भी बढ़ जाएगी तो वे सहयोग और समन्वय के हर सम्भव प्रयास करेंगे। मजदूरों के उत्पादन तथा उनकी निष्क्रियता का सही एवं विस्तृत रिकार्ड रखा जाना चाहिए जिसके आधार पर उनके वेतन को तय किया जा सके।

प्रयोग के परिणामस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि प्रत्येक उद्योग के मजदूर उत्पादन का आदर्श निश्चित कर लेते हैं। उस आदर्श से अधिक उत्पादन करने वाले को सर्वाधिक कार्यकुशल माना जाता है और जो उससे कम कार्य करते हैं उनको आलसी तथा मुफ्तखोर कहा जाता है। अनेक प्रयोगों के फलस्वरूप यह स्पष्ट हो गया कि थोड़े दिनों बाद कुल उत्पादन का औसत उतना ही हो जाता है जितना उस समूह ने उत्पादन का अपना आदर्श बनाया था। होता यह है कि अनेक दबावों के कारण कोई भी मजदूर फोरमैन अथवा प्रबंध के अन्य किसी अधिकारी से यह नहीं कह पाता कि उत्पादन इससे अधिक भी किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करने से कम उत्पादन करने वालों पर कार्यभार बढ़ता उनका वेतन कम किया जा सकता है अथवा उनको सेवा मुक्त भी किया जा सकता है। दूसरी ओर यदि मजदूर समूह के आदर्श (Groups Norm) से कम उत्पादन करेगा तो यह प्रबन्ध के प्रति अन्याय होगा क्योंकि वह समान वेतन के लिए समान कार्य नहीं कर रहा है। इसके अतिरिक्त उसके स्वयं के लिए परेशानियाँ पैदा हो सकती हैं।

हाथार्न प्रयोगों के परिणाम
(The Results of Hawthorne Experiments)

पाँच वर्ष के लम्बे काल में किए गए हाथार्न प्रयोगों के अनेक परिणाम अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। इन अध्ययनों के बाद जो निष्कर्ष निकाले गए उनमें से मुख्य अग्रलिखित प्रकार से हैं—

1 सामाजिक आदर्शों का महत्त्व (Importance of Social Norms)—यह देखा गया कि उत्पादन का स्तर सामाजिक आदर्शों द्वारा निश्चित किया जाता है। इसको तय करने में मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य का बहुत कम स्थान है। इस निष्कर्ष का प्रकाश एवं ध्वनि के प्रारम्भिक अध्ययनों द्वारा ही निकाल लिया गया था।

2 अनार्थिक प्रेरणाएं (Non economic Motives)—मजदूरों के कार्यों को अर्थेतर प्रेरणाओं द्वारा बहुत अधिक प्रभावित किया जाता है और इस प्रकार योजनाओं की प्रेरणा का प्रभाव बहुत कुछ सीमित हो जाता है। इस सम्बन्ध में पुरस्कार एवं दबाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जा सकते हैं। इन दोनों का रूप प्रतीकात्मक है न कि स्थूल। जो मजदूर समूह के आदर्श से कम या अधिक उत्पादन करते हैं वे शीघ्र ही अपने साथियों का स्नेह एवं आदर खो देते हैं। वायरिंग रूम के मजदूरों में से सभी ने यह प्रयास किया था कि अधिक धन कमाने के साथ-साथ वे अपने साथियों से भी मित्रता-पूर्ण सम्बन्ध बनाए रखें।

बाद के अध्ययनों में मेलविले डाल्टन ने यह सिद्ध किया कि यह बात हमेशा नहीं होती।[1] उन्होंने देखा कि समूह के आदर्श से कम काम करने वाले वे लोग थे जिन्होंने शिक्षा एवं सामाजिक अनुभवों से सीखा था कि प्रेम तथा आदर के साथ भी किस प्रकार काम करते रहा जाता है। डाल्टन ने यह देखा कि 98 समूह में काम करने वाले कर्मचारियों में से एक भी ऐसा न था जिसे मुफ्तखोर कहा जा सके। इसका कारण यह है कि कैथोलिक लोग अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक तथा दूसरे के आदर एवं प्रेम के प्रति बहुत भावुक अधिक स्वाभिमानी एवं अधिक अहंकारी होते हैं। मुफ्तखोर प्राय ऐसी जगहों से आते हैं जहाँ शिक्षा सभ्यता संस्कृति एवं जीवन के अन्य मूल्यों का स्तर अत्यन्त नीचा होता है। वे स्वामिभक्ति सहयोगपूर्ण सम्बन्ध एवं ईमानदारी जैसे गुणों का पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते। डाल्टन का कहना था कि ये मुफ्तखोर ही प्राय संगठन के शीर्ष की ओर बढ़ने में प्रयत्नशील रहते हैं। फिर भी डाल्टन के प्रयोग तथा उपर्युक्त हाथान प्रयोगों की मूल मान्यताओं का विरोध नहीं करतीं। ये भी कर्मचारी वर्ग समूह के आदर्शों को मान्यता देता है और जो लोग इसकी अवहेलना करते हैं उनको संगठन का एकीकृत सदस्य नहीं माना जाता।

उत्पादन की मात्रा पर एक अन्य अर्थेतर तत्त्व का प्रभाव थामस (W I Thomas) के एक कथन द्वारा स्पष्ट हो जाता है। उनका कहना है कि यदि व्यक्ति स्थिति को वास्तविक रूप में परिभाषित करते हैं तो वे परिणामों में वास्तविक होते हैं। मजदूरों का यह विश्वास बन जाता है कि यदि उन्होंने अधिक काम किया तो उनके वेतन की दर घट जाएगी और यदि उन्होंने एक निश्चित मात्रा में उत्पादन

1 Fo deta l d study pl a e ee Wil m F Whyte Mo y d Motivation (New Yo k H pe 19 5) pp —49

नहीं किया तो यह प्रब ध के प्रति उचित नहीं होगा। इस प्रकार परिणामा का अध्ययन करने के बाद वे इस निश्चय पर आते हैं कि उत्पादन की मात्रा समूह के आदेश के अनुसार ही रखी जाए। स्पष्ट है कि मजदूर एक फरटी के उत्पादन की मात्रा निश्चित करने मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं।

3 सामूहिक व्यवहार (Collective Behaviour)—प्राय मजदूरो की क्रिया एव प्रतिक्रिया एक व्यक्ति के रूप मे नहीं वरन् समूह के सदस्य के रूप म होती है। प्रत्येक व्यक्ति म न इतनी सामथ्य होती है और न ही वह इतना स्वतन्त्र होता है कि वह अपने लिए उत्पादन का नियतांश (Quota) निश्चित कर सके। यह सब तो समूह द्वारा तय किया जाना है। जो मजदूर समूह के आदेश से ऊपर या नीचे जाते हैं उनको साथ के कर्मचारियो द्वारा दण्डित किया जाता है। एक व्यक्ति दबावो के कारण अपने व्यक्तिगत व्यवहार को बदलने के लिए तयार हो जाएगा यदि उसका समूह भी अपना व्यवहार बदल लेता है। इस सम्ब ध म लेविन (Lewin) का कहना है कि जब तक समूह के मापदण्ड अपरिवर्तित रहते हैं तब तक व्यक्ति भी परिवतनो का जोरदार विरोध करेगा और वह समूह के मापदण्डो का उल्लघन भी करेगा। किन्तु यदि समूह का मापदण्ड ही बदल जाता है तो व्यक्ति और समूह के मापदण्डो के बीच म रहने वाला विरोध भी मिट जाता है।[1]

लेविन महाशय ने खाने की आदतो के परिवतन पर किए गए प्रयोगो पर विचार विमश करते हुए सगठन की उस शक्ति का विश्लेषण किया है जिसके आधार पर वह व्यवहार मे परिवतन ला सकता है। ये प्रयोग यह जानने के लिए किए गए थे कि लोगो को ऐसा खाना लेने के लिए कसे तयार किया जा सकता है जिसे वे साधारण रूप से उपयोग म नहीं लाते। मानव सम्बन्धो की संस्था ने अनेक प्रयोगो के आधार पर यह निष्कष निकाला है कि प्रब ध व्यक्तिगत कर्मचारियो के साथ अणु के समान पृथक सम्ब ध नहीं रख सकता। उसे उन पर कायकारी समूह के सदस्य के रूप मे विचार करना चाहिए।

4 नेतृत्व का महत्त्व (The Importance of Leadership)—इन अध्ययनो के बाद वज्ञानिक प्रब ध का एक अन्य प्रमुख तत्त्व यह सामने आया कि समूह के आदर्शों के निर्माण तथा कार्या वयन म नेतृत्व का अत्यन्त म हत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त औपचारिक एव अनौपचारिक नेतृत्व के बीच पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। वज्ञानिक प्रब ध य मानकर चलता है कि कम से कम उत्पादन से सम्बन्धित सभी मामलो म मजदूरो का नेतृत्व पूणरूप से सुपरवाइजर अथवा फोरमैन द्वारा किया जाता है किन्तु वास्तविक व्यवहार का निरीक्षण करने पर यह मान्यता कई बार सही नहीं उतरती। कहा गया है कि एक वायरिंग रूम का अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ कि मजदूरो म से ऐक व्यक्ति ऐसा था जो समूह का

1 *Kurt Lew n* Gr up D c s o nd So i l Cha ge

कार्यों मे बड उत्साह के साथ भाग लत तथा जब नता कमरे को छोड देता था तो समू स्वत त्रतापूवक अपनी कायवाही को यथावत् सचालित रखता था। यद्यपि प्रजात त्रा मक समू का उत्पादन इतना नही था जितना सत्तावादी समूह का था तथापि इस समू क उत्पादन का प्रकार उत्तम एव श्रेष्ठ था।

व्यक्तिवादी समूह के परिणाम सन्तोषजनक नही थ य दोनो ही दृष्टियो स असफल रह अर्थात् उनसे न तो समू को ही सतोष प्राप्त हो सका और न कुछ उपलब्धियाँ ही हो सकी। इसके सदस्यो ने अपने नेता स कम सूचना माँगी तथा स्वत त्रतापूर्ण व्यवहार भी कम किया। सामूहिक सहयोग का स्तर भी नीचा था। प्रयोगकर्त्ताओ ने देखा कि इन समूहो के सदस्यो मे निराशा की भावना बहुत अधिक थी।

सत्तावादी (Authoritarian) नेतृत्व के प्रति समूह की दो प्रकार की प्रतिक्रियाए थी। एक ओर तो वे लोग थे जिनकी प्रतिक्रिया आक्रमणकारी एव क्रान्तिकारी थी तथा जो नेता का ध्यान अपनी ओर खीच रहे थे। ऐसे सदस्य सगठन क दूसरे सदस्यो का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित करते थे। दूसरी ओर उ सीन लोग थ जो नता की आलोचना या तो नही करत थे या कम करते थ। जब इन लोगो का नेता गर सत्तावादी को बना दिया जाता तो य निरुत्साहित अथवा उदासीन लोग अत्यन्त भावक बन जाते थे।

लिपिट तथा ह्वाइट क प्रयोगो के परिणामो से प्रभावित होकर अनेक उद्योगो मे औपचारिक नेतृत्व को प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक प्रयास किए गए। कोच तथा फ्रेंच (Coch and French) ने यह प्रमाणित किया है कि प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व ने मजदूरो के काम के प्रति दृष्टिकोण को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इन विचारको ने जिस फक्ट्री का अध्ययन किया उसके मजदूर काय की तकनीकी नवीनताओ को सहज ही स्वीकार नही करते थे। फक्ट्री मे किसी नवीन परिवतनो का मजदूरो द्वारा विरोध किए जाने क दो कारण हो सकत थ। प्रथम तो यह कि उसके मजदूर इतने अधिक निराश होगे कि किसी प्रकार के विकल्प मे उनका आकषण न रहा होगा अथवा दूसरे उन पर यह दबाव डाला जा रहा होगा कि परिवतन को इतना शीघ्र स्वीकार न किया जाय। इन दोनो ही स्थितियो मे मजदूर वग फक्ट्री म किए गए हर प्रकार के परिवतन का जमकर विरोध करता था। जब समूह ने परिवतन का विरोध किया तो व्यक्तिगत कायकर्त्ता पर भी यह प्रभाव डाला गया कि उत्पादन की मात्रा कम करके परिवतन को असफल बना दे। अपनी परिकल्पनाओ को जांच करने के लिए कोच तथा फ्रेंच ने प्रयोग किए। उन्होने अनेक ऐसे मजदूरो को लिया जिनका काय परिवर्तित हो रहा था। इन मजदूरो को तीन गुटो मे विभक्त कर दिया गया। प्रथम ग्रुप को परिवतन की कोई जानकारी नही दी गई तथा प्रब ध ने केवल कुछ समय पूव यह सूचना दी कि अमुक परिवतन

ने मानव सम्ब धा के कारखानो म भाग लिया । मा व सम्ब ध सस्थान ने प्रब ध की प्रकृति को बहुत अधिक प्रभावित किया । मि बेंडिक्स (Bendix) के कथानुसार इस ष्टिकोण के कारण अमरीकी प्रब ध ने और कुछ सीमा तक दूसरे औद्योगिक समाजो ने अपने विचा ो और भान्तो को स्पष्ट रूप मे बदल लिया ।[1]

वज्ञानिक प्रबन्ध एव मानव सम्ब धो की तुलनात्मक विशषताए
(Scientific Management and Human Relations)

वज्ञानिक प्रब ध तथा मानव सम्ब धो के बीच कई विषयो पर पर्याप्त भेद वतमान है । इस भेद का दिग्दशन य दोनो ही स्कूल प्राय उद्ध नाटकीय ढग से किया करते हैं । एक स्कूल द्वारा जिन त वो को आलोचनात्मक एव सकटपूर्ण माना जाता है दूसरा उनको एसा नही मानता था इसी प्रकार एक सस्थान की निगाह म जो विषय केन्द्रीय महत्त्व का दूसरा उसकी पूणत उपेक्षा करता है । दोनो ही स्कूलो म यह तत्त्व समान रूप स पाया जाता है कि सगठन के बौद्धिक बनने क माग तथा मनुष्य द्वारा प्रसन्नता प्राप्ति क माग के बीच कोई ऐसा मौलिक विरोध नही है जिसे दूर न किया जा सके । वज्ञानिक प्रबन्ध यह मानकर चलता है कि अधिकांश कायकुशल सगठन सतोषजनक होते हैं ।

कायकुशलता एक सगठन को सन्तोषप्रद बनाने वाला सबसे महत्त्वपूण एव आवश्यक तत्त्व है क्योकि इसके द्वारा ही उत्पादन की मात्रा बढ़ती है और इस प्रकार यह श्रमिको के वेतन म भी वृद्धि करता है । इस स्कूल के समथको का कहना है कि सगठन म काय करने वाला एक मजदूर वास्तव म एक आर्थिक मनुष्य होता है जो अपना वेतन वृद्धि का हर सम्भव प्रयास करता रहता है । जब वह अपनी आय के कुल हिस्से को प्राप्त करके सन्तोष प्राप्त कर लेता है तो इसका अथ अप्रत्यक्ष रूप से यह माना जा सकता है कि उसक सगठन के हितो से अपने हितो को एकाकार कर लिया है । ऐसी स्थिति म जो सगठन के लिए श्रेष्ठ है वही व्यक्ति क लिए भी है और जो व्यक्ति के लिए श्रेष्ठ है वह वह सगठन के लिए भी है । यह विचारधारा सहयोग म कल्याण देखती है । इस प्रकार आर्थिक बाजार की पूण प्रतिद्वन्द्विता विचारधारा से यह बिलकुल विपरीत है जो यह मानकर चलती है कि पूण प्रतिद्वन्द्विता म ही अथ व्यवस्था का लाभ है और साथ ही उसकी विभिन्न हिस्सेदार इकाइयो का भी कल्याण है ।

मानव सम्बन्धो की विचारधारा के अनुसार सर्वाधिक सन्तोषजनक सगठन वह है जो सर्वाधिक कायकुशल होता है । शिथिल औपचारिक एव बौद्धिक सगठन मे जो केवल आर्थिक आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करता है मजदूर प्रसन्न नहीं हो सकता । इस स्कूल के विचारको का कहना है कि प्रब ध अपने सगठन म श्रम और सत्ता का

[1] ... 1956 319 ff

कुशल रूप म निर्धारित करने के बाद आवश्यक रूप स एक एस सगठन की स्थापना नहा करता जिसस सभी मजदूर सन्तुष्ट हो। वैज्ञानिक प्रबन्ध के समर्थको का यह कहना था कि मजदूरो के सन्तोष और उत्पादन की समस्याए मूल रूप स अथवा स्वाभाविक रूप स न सुलझने वाली समस्याए है। किन्तु मानव-सम्बन्धो के विचारको का मत इसस भिन्न है। इन समस्याओ को सुलझाने म आशावादी दृष्टिकोण अपनाकर इन्हें मानव सम्बन्धो के आधार पर देखने का सुझाव देते हैं। इसके लिए प्रबन्ध (Management) को शिक्षित करना होगा और इस दृष्टि से कुछ कदम उठाने होंगे। उदाहरण के लिए कार्य पर सामाजिक समूहो के विकास को प्रोत्साहन देना होगा और एसा नेतृत्व प्रदान करना होगा जो प्रजातन्त्रात्मक हो सहभागिता (Participation) को प्रोत्साहन दे और जिसमे सचार-साधनों को उपयुक्त महत्त्व प्रदान किया जाए। जब प्रबन्धात्मक अधिकारियो द्वारा मजदूरो की आवश्यकता का वास्तविक प्रकृति को उनके अनौपचारिक सामहिक जीवन को तथा सगठना का भली भाति समझ लिया जाता है तो उनके आगे ऐसी कोई बाधा नही रहती जो उन्ह सगठनात्मक जीवन को प्रसन्न बनान से रोक सके।

मानव-सम्बन्धो के विचारको ने यह बताया कि सगठन के कार्य और व्यवहार को कर्मचारियो की सामाजिक आवश्यकताओ स सम्बद्ध रखना चाहिए।[1] इस प्रकार यदि कर्मचारी प्रसन्न रहग तो सगठन उनका पूरा सहयोग प्राप्त कर सकगा तथा कार्य-कुशलता को भी बढा सकेगा। सगठन को विवेकपूर्ण (Rational) बनाने का तरीका यह है कि विचारपूर्ण प्रयासो द्वारा श्रमिको की प्रसन्नता को बढाया जाए। लोक प्रशासन में आजकल ऐसा साहित्य पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध होने लगा है जिसम यह बताया जाता है कि कई फर्मो म मजदूर काम म इतनी रुचि लेते हैं कि एक दिन या एक घण्टे का काम भी वह किसी कारणवश छोडना नहीं चाहते वे अपने फोरमैन को नाराज या असन्तुष्ट नही रखना चाहते तथा उसे अपने पिता के सदृश मानते हैं। कार्यकर्ताओ के ऐसे समूह को परिवार की उपमा दी जाती है। गाडनर के अनुसार मानव सम्बन्धो का दृष्टिकोण यह प्रतिपादित करता है कि मजदूरो म यह भावना होनी चाहिए कि कम्पनी के उद्देश्यों म उनके कार्यों का महत्त्व है। उन्ह अपने आपको कम्पनी का एक भाग समझना चाहिए तथा उसके लक्ष्यो की प्राप्ति म वह जो योगदान करें उसके लिए उन्ह गर्व होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि कम्पनी के लक्ष्य एस होने चाहिए जो प्रबन्ध के उद्देश्यो म विश्वास प्रेरित कर सकें और मजदूरो म यह विश्वास जाग्रत कर सकें कि इन लक्ष्यो के लिए कार्य करने म प्रत्येक को उचित पुरस्कार और सन्तोष प्राप्त होगा।

इस सब विचार विमर्श का निष्कर्ष यह है कि मानव सम्बन्धो की विचारधारा

1 Burleigh B Gardner Human Relations in Industry 1945 p 283

सगठन क लक्ष्यो एव मजदूरा की आवश्यकताओ के बीच पूर्ण सन्तुलन स्थापित करना चाहती है । इस विचारधारा म तथा वैज्ञानिक प्रब ध (Scientific Management) की विचारधारा म जो अन्तर है वह इस सन्तुलन का ही है । वैज्ञानिक प्रब ध का विचार है कि यदि बाधाओ को हटा दिया जाए तो यह सन्तुलन स्वाभाविक रूप से स्थापित हो जाएगा । मानव-सम्बन्धो का विश्वास है कि आदर्श राज्य का निर्माण विचारपूर्ण तरीके स किया जा सकता है । मानव सम्ब धो का अनेक रचनाओ म यह सुझाया गया है कि एक समाजशास्त्री को चाहिए कि वह प्रबन्ध का इस प्रकार माग दर्शन करे जिसके द्वारा वह स्वय को सभी के लाभ के लिए समाज निर्माण के काय म सलग्न कर सकें । 5

वैज्ञानिक प्रब ध तथा मानव सम्बन्धो की विचारधाराए दो मुख्य मान्यताओ पर आधारित हैं—औपचारिक एव अनौपचारिक सगठन की मान्यताए । औपचारिक सगठन का आधार वे तत्त्व हैं जिनको वैज्ञानिक प्रब ध द्वारा महत्त्वपूर्ण माना जाता है और अनौपचारिक सगठन का समथन मानव सम्ब धो के आधार पर किया जाता है । सगठन से सम्बन्धित इन दोनो मान्यताओ के सम्बन्ध मे पिछले अध्यायो म यथास्थान विचार किया जा चुका है । वास्तव म औपचारिक मान्यता सगठन के उस रूप को इगित करती है जिसका नक्शा प्रबन्ध द्वारा खीचा जाता है । यह नियमों एव उपनियमो पर अधिक जोर देती है । इससे भिन्न औपचारिक सगठन मे कमचारी वग अथवा मजदूरो के बीच सामाजिक सम्बन्ध विकसित हो जाते है जो कालान्तर म सगठन के कार्यों को भी प्रभावित करने हैं तथा वास्तविक व्यवहार म उसके औपचारिक रूप को बहुत कुछ बदल देते हैं ।

सगठन के इन दोनो रूपो अर्थात् औपचारिक एव अनौपचारिक के बीच क्या सम्बन्ध है तथा ये एक दूसरे से किस प्रकार प्रभावित होते हैं यह जानना वतमान समय मे सगठन के विद्यार्थी का एक प्रमुख किन्तु अत्यन्त जटिल काय है । मानव सम्बन्धो के लेखका ने प्रयोगो एव अपनी रचनाओ के आधार पर सफलता के साथ बता दिया है कि सगठन म मानवीय व्यवहार पर सामाजिक सम्बन्ध जसे अनेक ऐसे तत्त्वो का उल्लेखनीय रूप से प्रभाव पडता है जिनका औपचारिक सगठन की दृष्टि से कोई महत्त्व नही है । फिर भी कहा जाता है कि मानव-सम्बन्धो का दृष्टिकोण एकांगी है और इसने अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते समय सगठन के औपचारिक रूप की जो आलोचना की है तथा जो कमिया बताई हैं वे कही कही अतिशयोक्तिपूर्ण हैं । सत्य प्राय दो विरोधी अतिशयोक्तियो के बीच पाया जाता है । सगठन से सम्बन्धित इन दोनो सिद्धान्तो को यदि सयुक्त कर दिया जाय अथवा इनके बीच समन्वय (Synthesis) स्थापित कर दिया जाए तो यह सम्भावना है कि सगठन के रूप एव काय से सम्बन्धित सही विचारधारा की अभिव्यक्ति हो सकेगी ।

औपचारिक एव अनौपचारिक मान्यताओ व बीच समन्वय
(Synthesis between Formal and Informal Concept)

सगठन के रूप एव कार्यों म सम्बन्धित औपचारिक विचारधारा की प्रतिक्रिया स्वरूप अनौपचारिक अथवा मानव-सम्बन्धो की विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ । यह नवीन विकास पूर्वगामी विकास का प्रतिवाद था किन्तु बाद क विचारको न यह देखा कि य वाद (The is) तथा प्रतिवाद (Antithesis) दोना ही सगठन के रूप का सही चित्रण करने म असमर्थ हैं तथा एकागी हैं अत इन दोना के बीच समन्वय (Synthesis) की स्थापना करना अनिवार्य है । इनक परिणामस्वरूप सगठन क विषय म एक नवीन दृष्टिकोण का जन्म हुआ जिसको सरचनावादी (Structuralist) कहा जाता है । इनक मतानुसार प्रत्येक सगठन म मित्रता एव सघर्ष अपरिहार्य हैं व उत्पन्न होत तथा समय समय पर उनको होना भी चाहिए । समाजशास्त्र मजदूरो या सगठन की आवश्यकताओ की पूर्ति का कोइ यत्न नही है । उसका सम्बन्ध न तो प्रबन्ध का सगठन सुधारन स है और न कर्मचारियो का सगठन सुधारन स ।

सरचनावादी दृष्टिकोण मूलत मानव-सम्बन्धो का प्रतिक्रिया क रूप म उत्पन्न हुआ है । यह स्वाभाविक है कि इसके द्वारा मानव-सम्बन्धो क लक्को एव उनक विचारो की कटु आलोचनाए की गई हैं । इन आलोचनाओ का अध्ययन करने क बाद पाठक क सम्मुख इस दृष्टिकोण क आधार का सही चित्र अकित हो सकता है । सरचनावादी विचारको का मत है कि सगठन म कुछ अपरिहार्य विरोध सगठन और व्यक्ति की आवश्यकताओ क बीच बौद्धिकता और अबौद्धिकता के बीच अनुशासन और स्वायत्तता के बीच बने हुए रहत हैं । इन विरोधो को कम किया जा सकता है मिटाया नही जा सकता । मानव सम्बन्धो क विचारको न व्यापारिक और औद्योगिक सगठनो को अपन अध्ययन का केन्द्र बनाया था किन्तु सरचनावादी विचारको न अस्पताला जेला चर्चों सेना एव स्कूला आदि को भी अपन अध्ययन म शामिल कर लिया ।

मानव-सम्बन्धवादियो की सरचनावादियो द्वारा आलोचना
(Structuralists Criticism)

सरचनावादी विचारको का मत है कि मानव सम्बन्ध का दृष्टिकोण सगठन का पूरा चित्रण नही कर पाता । इसका पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण प्रबन्ध का समर्थन करता है और मजदूरों को भ्रमित करता है ।[1] सरचनावादी विचारक सगठन को एक बडी तथा जटिल सामाजिक इकाई क रूप म देखत हैं जिसम अनेक सामाजिक समूह अन्तर्क्रिया रत रहत हैं । सरचनावादी एव मानव सम्बन्धवादी मान्यताओ क बीच पाए जान वाल अन्तरो का अग्र प्रकार म समझा जा सकता है । ये अन्तर ही मानव सम्बन्धों क दृष्टिकोण की आलोचनाए हैं ।

1 Re nh rd Bend x and Lloyd H Fishe The Perspect e of Elto Mayo

1 **समन्वयों की प्रतियोगी प्रवृत्ति**—सम्चनावादी विचारको का कहना है कि सगठन पर प्रतिक्रिया करने वाले सामाजिक समूहो के अपने स्वय के मूल्य होते हैं और ये मूल्य सगठन के मूल्यों के अनुरूप भी हो सकते हैं तथा विपरीत भी। इसलिए यह सम्भावित ही नही स्वाभाविक भी है कि विभिन्न समुदाय कुछ विषय म सहयोग करेंगे और कुछ दूसरे विषयों म प्रतिस्पर्द्धा। ऐसा नहीं हो सकता कि सब पूर्णरूप से परस्पर सहयोगी बन जाएं। मानव सम्बन्धो के लेखको के मतानुसार इन समूहो को एक बडा सुखी परिवार बनाया जा सकता है किन्तु सरचनावादी लेखको के अनुसार यह केवल एक सुखद कल्पना है।

2 **सघष की स्वाभाविकता**—सगठन म जिन समूहो के हित प्राय एक दूसरे के विरुद्ध टकराते हैं वे हैं—प्रबन्ध तथा मजदूर। इसका कारण यह बताया जाना है कि प्रबन्ध मूल रूप स मजदूरो के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्धो की स्थापना का प्रयास करता रहता है इसलिए यह स्वाभाविक है कि इस प्रक्रिया म कई मोडो पर वे दानो आपस म टकरा जाए। मजदूरो को सन्तुष्ट करने के अनेक साधन हैं किन्तु उनम से कोई भी एक पूर्ण नही माना जा सकता। अत मानव-सम्बन्धो के विचारको का यह दावा कि वे अपने सुझावो से सगठन को सघष विहीन बना सकते हैं दु साहस मात्र है।

3 **निराशापूर्ण दृष्टिकोण**—यह सच है कि मानव सम्बन्धो के दृष्टिकोण द्वारा कुछ ऐसे माग सुझाए जाते हैं जिनके द्वारा सगठन म व्याप्त निराशा को कम किया जा सकता है किन्तु इन मार्गो को अपनाने की कुछ स्पष्ट सीमाए है। यह हो सकता है कि काय पर सामाजिक समूहो का विकास मजदूरो के दिवस को प्रसन्नता पूर्ण बना दे किन्तु इसका यह अथ कदापि नही है कि वे एक ही काय को बार बार करना छोड देंगे अथवा अरचनात्मक काय करने स रुक जाएँगे। चिनाय (Chinoy) का कहना है कि मजदूर लोग अपना अधिकाश समय अर्धचेतनावस्था म काय करते हुए व्यतीत करते हैं। काय के बाद वे क्या करेंगे इसके स्वप्न लिया करते हैं और इसी स उनको सतोष प्राप्त होता है।[1]

4 **अवास्तविक विचार**–मानव सम्बन्धो के विचारक सगठन की आनन्ददायक किन्तु अवास्तविक तस्वीर सामने रखते हैं। वे उसे समूहो का शक्ति सघष न मान कर एक परिवार मानते हैं। ये सगठन को अलगाव का प्रतीक न मान कर मानवीय सन्तोष का स्रोत मानते हैं। इन सब मान्यताओ के कारण ये विचारक कायकारी जीवन की वास्तविकताओ से अपने आपको पृथक कर लेते हैं। मजदूरो के असन्तोष का कारण यह बताया जाता है कि वह परिस्थिति को पूरी तरह समझ नही पाता। इसके

1 *El Chinoy* Automobile Workers and the American Dream New York Doubleday 1955

मतानुसार सगठन के संघर्ष हितों के वास्तविक संघर्ष के परिणाम न होकर केवल गलत सूचना अथवा अर्द्ध सूचना के परिणाम होते हैं।

5 आर्थिक प्रेरकों की अवहेलना – मानव-सम्बन्धों के लेखकों ने अनार्थिक प्रेरकों पर इतना अधिक जोर दिया है कि वे अपने वर्णन में वास्तविकताओं की परिधि से बाहर चले गए हैं। अपने पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण के कारण वे भौतिक पुरस्कारों के महत्त्व को नहीं जान पाते। संरचनावादी विचारकों ने मानव-सम्बन्धों के लेखकों की भाँति उद्योग में सामाजिक पुरस्कारों के महत्त्व को स्वीकार किया है किन्तु यह अनेक प्रेरकों में से एक है केवल एकमात्र नहीं। संरचनावादी विचारक उस समय बड़े नाराज होते हैं जब एक मजदूर को सन्तुष्ट करने के लिए उसे सामाजिक सम्मान सौंपा जाता है और उसके वेतन में वृद्धि नहीं की जाती।

6 एकरसता असम्भव है—मानव सम्बन्धों के प्राय सभी लेखक यह मानते हैं कि औद्योगिक संघर्ष अवांछनीय होता है अतः इन लेखकों ने औद्योगिक सामंजस्य (Harmony) बनाने के प्रयासों पर पर्याप्त जोर दिया है। इसके विपरीत संरचनावादियों का कहना है कि संघर्ष के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य होते हैं। स्वयं संगठनात्मक व्यवस्था के लिए संघर्ष महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि ये विचारक संघर्ष मिटाने के कृत्रिम साधनों का विरोध करते हैं। संघर्षों द्वारा हितों एवं विश्वासों के बीच भिन्नता प्रकट होती है और इन भिन्नताओं के माध्यम से संगठन अपनी कमजोरियों से परिचित हो जाता है तथा उनको दूर करने का प्रयास करता है। यदि संघर्षों को दबा दिया जाए या अप्राकृतिक साधनों द्वारा भुला दिया जाए तो संगठन अपनी कमजोरियों से परिचित नहीं हो पाता और इस प्रकार भविष्य में उसके लिए खतरे बढ़ जाते हैं।

7 सक्रिय योगदान असम्भव— मानव सम्बन्धों का दृष्टिकोण प्रजातन्त्रात्मक परम्पराओं को स्वीकार करता हुआ इस बात पर जोर देता है कि संगठन के कार्यों में श्रमिकों को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए। उनको निर्णय के लिए हो रहे वाद विवाद में भाग लेना चाहिए। संरचनावादी विचारकों का कहना है कि यह व्यवहार यद्यपि सुनने में आकर्षक लगता है किन्तु व्यवहार में यह अव्यावहारिक तथा निराशाजनक है। जब कभी इस प्रकार का वाद विवाद होता है तो उसमें निर्णय प्राय पहले से ही लिए जा चुके होते हैं तथा सम्मेलन का वास्तविक लक्ष्य उन निर्णयों पर श्रमिक के समर्थन प्राप्त करना होता है। निम्न श्रेणी के अधिकारियों को निर्णय लेने की शक्ति प्राय एसे विषयों पर दी जाती है जो अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण होते हैं अथवा जिनसे शीर्ष के प्रबन्धकों का कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

मानव सम्बन्धों के दृष्टिकोण की उक्त आलोचनाएँ बहुत कुछ सही हैं। यह सच है कि इन लेखकों के विचार एकांगी हैं तथापि इसके महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। केवल कट्टर विरोधी ही इस बात से इन्कार कर सकता है कि

अच्छा हुआ सचार तथ हिस्सेदारी एव सामाजिक पुरस्कार वेतन म वृद्धि न करने पर भी मजदूरो के जीवन और काय को सुधारने म सहायक बनाते है। वास्तव म मानव सम्ब धा का दृष्टिकोण उनके आर्थिक हितो को बलिदान किए बिना भी मजदूर की सामाजिक स्थिति का सुधार सकता है।

सगठन के प्रति एक सतुलित एव पूर्ण दृष्टिकोण
(A Balanced Approach)

सगठन के अध्ययन म सम्बन्धित अब तक के अधिकांश विचार एकपक्षीय अधूरे तथा दुराग्रहपूर्ण हैं। सगठन के रूप एव प्रक्रियाओ का एक सन्तुलित तथा पूर्ण अध्ययन उसे वही माना जा सकता है जो न तो प्रब ध का समथक हो और न ही मजदूरो का तथा वह सगठन का विश्लेषण करते समय किन्ही पूव मान्यताओ अथवा मूल्यो को लेकर न चले। इसका क्षेत्र इतना विस्तृत हो कि सभी प्रकार के सगठनो को तथा एक सगठन के सभी तत्वो को इसम समाहित किया जा सके। यह आर्थिक तत्वो तथा सामाजिक तत्वो पर समान रूप स जोर दे। इसम सगठन तथा उसके वातावरण के बीच होने वाली क्रिया एव प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जाए।

मानव-सम्बन्धो के विभिन्न लेखो का सावधानी से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि औपचारिक एव अनौपचारिक तत्वो के बीच घनिष्ठ सम्ब ध पाया जाता है किन्तु इन दोनो प्रकार के तत्वो को परस्पर सम्बद्ध करके क्रमिक रूप म दिखाने का प्रयास किया गया है। यह काय करने का श्रेय सरचनावादियो को प्रदान किया जा सकता है।

मानव सम्ब धो पर किए गए अनेक अध्ययनो म यह बताया गया है कि औद्योगीकरण के प्रभाव स सामाजिक जीवन विघटित होता जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप सगठन म अनेक अनौपचारिक सम्बन्ध बन रहे हैं जिनका मनोवैज्ञानिक एव समाजशास्त्रीय महत्व है। मानव सम्ब धो के लेखको न यह स्पष्ट नही किया कि इस प्रकार के समूह कितने सामान्य हैं इनका आपसी सम्बन्ध क्या है तथा उनका तुलनात्मक महत्व क्या है। सरचनावादियो न अपने सगठनात्मक अनुसधानो म यह देखा कि अनौपचारिक काय समूह अधिक सामान्य नही हैं और मजदूरो का बहुमत किसी भी ऐसे समूह स सम्बन्धित नही होता।

ड्यूबिन (Dubin) वाकर तथा गस्ट (Walker and Guest) वालमर (Vollemer) आदि न अनेक प्रयोगो के आधार पर इस मत का समथन किया है। वास्तव म इस विरोधाभास का कारण यह है कि मेयो (Mayo) तथा उनके अनेक अनुयायियो ने यह कल्पना की थी कि औद्योगीकरण के फलस्वरूप सभी सामाजिक एव धार्मिक सस्थाए विघटित होकर समाप्त हो जाएगी। उस समय फक्टी व्यक्ति का घर बन जाएगी जहा उसकी भावनाए सुरक्षित रह सकेंगी व्यक्त हो सकेंगी तथा

पनप मकेंगा। प्रव ध को उम समय मामाजिक तथा भावनात्मक आश्रय प्रदान करना होगा तथा बदले म उसे कठिन काय एव सन्तोषजनक श्रम शक्ति प्राप्त होगी। यह कल्पना सत्य नहीं बन सकी क्योंकि इसके आधार ही गलत थे। आज सामाजिक एव धार्मिक सस्थाओं का रूप निश्चय ही बदल गया है किन्तु वे पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। अत इसम आश्चर्य की कोई बात नहीं कि आज का मजदूर जब फक्ट्री आता है तो वह भावनात्मक दृष्टि स भूखा नहीं होता। कुछ नवीन तथा कुछ पुरातन सामाजिक सस्थाए उसकी आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। यही कारण है कि अनौपचारिक समूह मजदूरो म सामान्य नही है।

सगठन पर उस वातावरण का प्रभाव जिसम वह काय कर रहा होता है अत्यन्त मौलिक एव रचनात्मक होता है। सगठन क बाहर की अनेक प्रक्रियाए सगठन की कायवाहियो पर कई बार निर्णायक प्रभाव डालती हैं। दूसरे सगठन तथा उच्च सगठन जसे सरकार आदि का उस पर पर्याप्त प्रभाव पडता है। एक सगठन क मजदूर तथा हिस्सेदार अन्य कई सगठनो क भी सदस्य होते हैं। इन सब तथ्यो को ध्यान म रखकर ही सगठन की समस्याओं का अध्ययन किया जाना चाहिए।

सरचनावादियों का यह विचार है कि पुरस्कार के प्रति वधानिक प्रब ध तथा मानव-सम्बन्धों का दृष्टिकोण—दोनो क ही विचार आंशिक हैं अत दोनो क अध्ययन को सयुक्त कर देना चाहिए। सामाजिक आदर एव भावनाओं के पुरस्कारो का निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान है और इसीलिए कई बार व्यक्ति कम वतन पान पर भी पदोन्नति को इसलिए स्वीकार कर लेता है कि उसका सम्मान होगा समाज परिवार पडोस म उसका स्तर ऊचा हो जाएगा। प्रतीकात्मक पुरस्कार केवल तभी प्रभावकारी हो सकते हैं जबकि उसको प्राप्तकर्त्ता की पत्नी मित्र एव पडोसियो द्वारा प्रशसा की दृष्टि स देखा जाए। यद्यपि सामाजिक पुरस्कार सगठन म महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं तथापि इससे भौतिक पुरस्कारो का मूल्य कम नहीं हो जाता। कई बार कवल अधिक धन प्राप्ति क लिए उच्च पद को छोड दिया जाता है।

सम्पूर्ण विवरण स स्पष्ट है कि औपचारिक एव अनौपचारिक सिद्धान्त या सगठन क प्रति वज्ञानिक प्रब धक और मानवीय सम्ब धात्मक दृष्टिकोणों की मान्यताओं म एकाकीपन था उनका अध्ययन पूर्ण एव सन्तुलित नहीं था। लोक प्रशासन के विचारकों एव लेखकों न तथा सगठन के विद्यार्थियों न इस तथ्य को समय समय पर देखा है परखा है और इसके सम्बन्ध म अपने सुझाव प्रस्तुत किए हैं। इस दृष्टि स सरचनावादियो की देन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। लोक प्रशासन क अनेक विचारक आज भी सरचनावादियो क तर्कों को मानने को अपनाते। सगठन के अन्य दो दृष्टिकोणों म से ही किसी एक को मान लेते हैं तथा उसक रूप में रंग में अपने विचार व्यक्त करते हैं। किन्तु जसा कि व्हाइट आदि का कहना है कि ये विचारक भी अपने सद्धान्तिक दृष्टिकोण को विकसित करते जा रहे हैं और इस प्रकार

अनजान ही अचेतन एवं अप्रत्यक्ष रूप म सश्लपण (Synthesis) के माग की ओर बन्ते जा रहे हैं।

अभिप्रेरणा अर्थ एवं परिभाषाएं
(Motivation Its Meaning and Definitions)

किसी भी उपक्रम मे चाहे वह निजी क्षेत्र का हो या लोक क्षेत्र का कमचारियों म काय की इच्छा और शक्ति को बनाए रखने के लिए कमचारी अभिप्रेरण एवं प्ररणाश्रा (Employee Motivation and Incentives) का विशेष महत्त्व है। अभिप्रेरणा शब्द अग्रजी भाषा क मोटीवेशन का हिन्दी रूपान्तर है जो लेटिन भाषा के मूवियर (Movere) शब्द से बना है जिसका अथ है गतिशील हाना। आधुनिक अथ मे अभिप्रेरण शब्द का उपयोग 1938 म मेस्लो द्वारा किया गया था।

अभिप्रेरणा या अभिप्रेरण से आशय उस मनोवैज्ञानिक उत्तजना से है जो व्यक्ति को कायशील बनाती है उसे काय निष्पादन के लिए प्ररित करती है। अभिप्रेरणा को हम व्यवहार का गतिज या कमानी कह सकते हैं। व्यक्ति म कितनी ही योग्यता क्या न हो यदि अभिप्रेरणा नहा है तो उसकी योग्यता एक ऐसे सुन्दर इञ्जन की तरह होगी जिसम भाप न हो। मानव का बडी बडी सफलताए अभिप्रेरण के कारण ही हैं। विभिन्न विद्वानो ने अभिप्रेरण को विभिन्न प्रकार स परिभाषित किया है जिनम से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—

माइकेल ज जुसियस के अनुसार अभिप्रेरण निश्चित कार्यों को प्राप्त करने हेतु स्वय या किसी अ य व्यक्ति का प्र रित करन की क्रिया है।

गिलफान के अनुसार अभिप्र रणा ऐसी कोइ विशेष आन्तरिक कारक या दशा है जो क्रिया का आरम्भ करन तथा बनाए रखन की ओर प्रवृत्ति होती है।

सपर न लिखा है अभिप्रेरणा क्रिया करवाने की एसी प्रवत्ति होती है जिसका सूत्रपात प्र रक शक्ति द्वारा होता है और जो समायोजित क्रया द्वारा समाप्त हो जाती है।

मस्काची और ग्लायल के शब्दों म अभिप्रेरणा प्रस नता तथा अप्रसन्नता की आशा है। परिस्थिति द्वारा इन आशाओ का सक्रिय किया जाना हम काय की ओर ले जाता है।

मैक्फारलण्ड न लिखा है अभिप्रेरणा या अभिप्र रणा का विचार मुख्यत मनोवैज्ञानिक है। यह उन कायकारी शक्तियो से सम्बन्धित है जो व्यक्तिगत रूप मे कमचारी को अथवा उसके अधीनस्थ को निर्धारित दिशा म काय करने या नहीं करने के रूप म परिभाषित किया जा सकता है।

अभिप्रेरणा के अर्थ को भली प्रकार स्पष्ट करते हुए डा मामोरिया एव दशोरा ने लिखा है—

अभिप्रेरणा का अर्थ किसी व्यक्ति को कार्य निष्पादन करने के लिए प्रेरित करना है। यह उस रुचि का प्रतीक है जिसके द्वारा व्यक्ति में कार्य करने की इच्छा जाग्रत होती है। प्रबन्ध की दृष्टि से अभिप्रेरणा अत्यन्त आवश्यक है। वे प्रबन्धक जो कर्मचारियों के सफल अभिप्रेरक हैं सामान्यत ऐसा वातावरण तयार करने में सफल होते हैं जिससे उद्देश्यों की पूर्ति सरल की जा सके। मानव प्रकृति से मिलजुल कर रहना पसन्द करता है तथा सहयोगिता की भावना और आगे बढ़ने की प्रवृत्ति के साथ अधिकाधिक उत्पादन की होड़ में लगा रहता है। इस प्रकार की होड़ में कर्मचारी व्यक्ति रूप में विभिन्न समूहों में विभक्त हो जाता है। एक समूह की तुलना में दूसरा समूह अधिक उत्पादन अधिक कार्य एवं अधिक सफल होने की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर कार्य करता है।

अभिप्रेरणा से तात्पर्य व्यक्ति की इच्छा कार्य निष्पादन की तत्परता तथा कार्य करने की इच्छा को जाग्रत करने की प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत भावुक होकर मनुष्य अधिक कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त करता है। अभिप्रेरणा शब्द का प्रादुर्भाव प्रेरणा से हुआ है। प्रेरणा को कई बार इच्छा आवश्यकता प्रेरक तत्त्व तथा अन्त स्फुरण भी कहा जाता है। प्रेरणा वास्तव मे जाग्रत अथवा सुषुप्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दिशा निर्देश है। दूसरे शब्दों में प्रेरणा अमुक व्यवहार क्यों ? का उत्तर है। देखा जाए तो प्रेरणा या आवश्यकता ही कार्य का प्रारम्भ है। कार्य करने के लिए प्रेरित करने वाली मानसिक भौतिक तथा अन्य मानवीय व्यवहार सम्बन्धी बातें प्रेरणा के स्रोत बनती हैं।

अभिप्रेरणा और प्रेरणा के मध्य अन्तर

अभिप्रेरणा और प्रेरणा में चोली-दामन का साथ है तथापि दोनों सर्वथा एक नहीं हैं और हम दोनों के अन्तर पर स्पष्ट रूप से दृष्टिपात कर लेना चाहिए। प्रेरणा (Incentive) वह बाह्य वस्तु है जो एक दूसरे व्यक्ति को देता है जबकि अभिप्रेरणा (Motivation) आन्तरिक है जो व्यक्ति में स्वय होती है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि प्रेरणाएं (Incentives) एक सीमा तक उस बैटरी के समान हैं जिसे चार्ज (Charge) और रिचार्ज (Re charge) करने की आवश्यकता होती है जबकि अभिप्रेरणाएं (Motivations) उस जनरेटर के समान है जिसे किसी बाहरी प्रोत्साहन या उत्तेजन की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु दोनों में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उन्हें एक-दूसरे से पृथक करके नहीं देखा जा सकता। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं—एक भीतरी और दूसरा बाहरी तथा दोनों का संयोग ही वाँछित फल देने मे सक्षम होता है। हम यह भी कह सकते है कि अभिप्रेरणाएं (Motivations) आन्तरिक एवं बाह्य दो प्रकार की होती हैं और बाह्य रूप को प्रेरणाएं (Incentives) कह दिया जाता है।

अभिप्रेरणा के तत्त्व या विशेषताएँ
(Elements or Characteristics of Motivation)

अभिप्रेरणा के अर्थ और उसकी विभिन्न परिभाषाओं को देखने से स्पष्ट होता है कि इसकी विशेषताएं अथवा प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं —

1 अभिप्रेरणा एक अनन्त प्रक्रिया (Unending Process) है—अभिप्रेरणा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति कार्योन्मुख होता है निष्क्रियता अथवा कार्य के प्रति उदासीनता को त्याग कर निरन्तर अधिक कार्य करने की सोचता है। व्यक्तियों से कार्य कराने के लिए उन्हें निरन्तर अभिप्रेरित करना पड़ता है। समय स्थान परिस्थितियाँ व्यवहार आदि सभी मिलकर अभिप्रेरणा सम्बन्धी अनुकूल या प्रतिकूल वातावरण तैयार करते रहते हैं। कार्य के प्रति अनुकूल वातावरण तैयार करने और अनुकूल दशाओं में काम करने के लिए प्रेरित करना ही अभिप्रेरणा है। अभिप्रेरणा की क्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसका सीधा सम्बन्ध समय से है जो स्वयं गतिमान है।

2 अभिप्रेरणा प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर से आती है—अभिप्रेरणा आन्तरिक है जो व्यक्ति में स्वयं होता है। मौलिक मानवीय आवश्यकताएं—भोजन एवं आश्रय आत्म सम्मान प्रशंसा आत्म विकास के लिए अवसर वास्तविकीकरण आदि—मानवीय व्यवहार के शक्तिशाली अभिप्रेरक हैं जो अचेतन रूप में कार्य करते रहते हैं। किसी बाह्य प्रभाव की तुलना में आन्तरिक अभिप्रेरणा का मानव व्यवहार पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है।

3 अभिप्रेरणा से कर्मचारी प्रेरित होते हैं—प्रबन्धक विभिन्न उपायों द्वारा संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयत्न करते रहते हैं। इस दिशा में सफलता तभी सम्भव है जब प्रबन्धक कर्मचारियों को कार्य के लिए प्रेरित कर सकें। अभिप्रेरणा के माध्यम से कर्मचारियों से अधिक काम लेना सम्भव होता है।

4 अभिप्रेरणाएं वित्तीय और गैर वित्तीय हो सकती हैं—किसी भी संस्था या उपक्रम में कर्मचारियों को कार्य के लिए प्रेरित करने के दो मुख्य ढंग हो सकते हैं—(क) वित्तीय प्रलोभन (Monetary Incentives) दिए जाएं एवं (ख) गैर वित्तीय प्रलोभन (Non monetary Incentives) दिए जाएं। वित्तीय अभिप्रेरणा में मजदूरी अथवा वेतन वृद्धि बोनस पुरस्कार पदोन्नति पेन्शन सहभागिता आदि को सम्मिलित किया जाता है जबकि गैर वित्तीय अभिप्रेरणा में प्रशंसा पत्र कार्य मान्यता सद्व्यवहार पीठ थपथपाना आदि सम्मिलित हैं।

5 अभिप्रेरणा एक मनोवैज्ञानिक धारणा है—मक्फारलैण्ड के अनुसार अभिप्रेरणा मुख्यतः मनोवैज्ञानिक है क्योंकि यह व्यक्ति की मानसिक शक्तियों को इस प्रकार विकसित करती है कि वह अपने कार्य में अधिक रुचि ले और कार्य के प्रति नवीनता अनुभव करे।

6 सम्पूर्ण व्यक्ति अभिप्रेरित होता है उसका एक भाग नहीं—प्रत्येक व्यक्ति एक सम्पूर्ण तथा अविभाज्य इकाई है अतः उसकी सब आवश्यकताएं परस्पर सम्बन्धित होती हैं और उसकी एक आवश्यकता या इच्छा पूरी होते ही वह दूसरी इच्छा करने लगता है। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यक्ति अभिप्रेरित होता है केवल उसका एक भाग नहीं।

7 अभिप्रेरणा सन्तुष्टि का कारण नहीं परिणाम है—अभिप्रेरणा एक मानसिक विचार है जिसके द्वारा व्यक्ति कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। वर्तमान अथवा सम्भावित प्रलोभन के आधार पर उसे कार्य करने की प्रेरणा मिलती है अर्थात् अभिप्रेरणा व्यक्ति की कार्य पर सन्तुष्टि का परिणाम है।

8 अभिप्रेरणा मानवीय व्यवहारों का निर्देशन, नियन्त्रण तथा स्पष्टीकरण है—जैसा कि डा मामोरिया एवं दशोरा ने लिखा है—अभिप्रेरणा से निश्चित परिणाम प्राप्त होते हैं। मानवीय व्यवहार को एक दिशा मिलती है। इस सम्बन्ध में दो विचार प्रचलित हैं। कुछ विचारक कहते हैं कि भय बिनु होय न प्रीति' अर्थात् ऋणात्मक अभिप्रेरणा के आधार पर मनुष्य कार्य करता है। दण्ड, प्रताडना सेवा निष्कासन का भय, मान हानि आदि उपायों से मनुष्य डरता रहता है और अपना काम समय पर पूरा करने की चेष्टा करता है किन्तु इस अवस्था में मनुष्य काम चोर, ईर्ष्यालु, असहयोगी, स्वार्थी तथा चापलूस बन जाता है। दीर्घकाल में इससे संगठन को हानि होती है। इसके विपरीत धनात्मक अभिप्रेरणा से कर्मचारी अधिक रुचि लेकर कार्य करता है। उद्योग में अच्छे सम्बन्ध पनपते हैं शोध एवं अनुसन्धान को प्रोत्साहन मिलता है तथा मानवीय व्यवहार अधिक पुष्ट होते हैं। इस प्रकार अभिप्रेरणा ऐसी विधि है जिसमें प्रेरणाओं, उमंगों, इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं, प्रयत्नों या आवश्यकताओं के माध्यम से मानव व्यवहार का निर्देशन, नियन्त्रण एवं स्पष्टीकरण किया जाता है।

9 अभिप्रेरणा व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है—अभिप्रेरणा कार्यक्षमता वर्द्धक है। श्रमिक चाहे कुशल हो या अकुशल, अभिप्रेरणा द्वारा प्रति घण्टा अधिक उत्पादन करता है। जब अधिक रुचि से कार्य किया जाएगा तो स्वाभाविक है कि वस्तु की किस्म में सुधार होगा, लागत मूल्य में कमी आएगी एवं उत्पादन क्रिया में अपव्यय कम होगा।

10 अभिप्रेरणा विनियोग के समान है—अभिप्रेरणा एक प्रकार का विनियोग (Investment) है क्योंकि इसके माध्यम से श्रमिक की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होकर उत्पादन लागत में कमी आती है। उत्पादन का एक भाग श्रमिक पर अभिप्रेरणा या उत्प्रेरणा के रूप में व्यय कर दिया जाए तो यह कोई फालतू का खर्चा नहीं होगा बल्कि वास्तव में विनियोग का कार्य करेगा।

11 अभिप्रेरणा और मनोबल में भिन्नता है—मामोरिया एवं दशोरा के

शब्दों में—अभिप्रेरणा एवं मनोबल दोनों में अन्तर है। अभिप्रेरणा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव कार्य के लिए प्रेरित होता है जबकि मनोबल स्वयं कार्य करने की इच्छा है जो अभिप्रेरणा द्वारा अधिक बलवती होती है। अभिप्रेरणा से कर्मचारी का मनोबल बढ़ता है और वह अधिक कार्य करने की ओर प्रेरित होता है। मनोबल ऊंचा होने पर ही व्यक्ति अधिक निष्ठावान हो सकता है। मनोबल ऊंचा तभी हो सकता है जब व्यक्ति को समुचित अभिप्रेरणा प्राप्त हो रहा हो।

अभिप्रेरणा के उद्देश्य
(Aims of Motivation)

अभिप्रेरणा के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1 कर्मचारियों को स्वेच्छा से अधिकाधिक कुशलतापूर्वक और अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करना।

2 कर्मचारियों के मनोबल को ऊंचा उठाना, उनमें आत्मविश्वास और निष्ठा की भावना पैदा करना।

3 कर्मचारियों की सामाजिक आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरी करना तथा उन्हें यथासाध्य सन्तुष्टि प्रदान करना।

4 श्रम पूंजी के सम्बन्ध को सुधारना।

5 संस्था या उपक्रम में स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों का विकास करना।

6 कर्मचारियों की कार्य कुशलता में अधिकाधिक वृद्धि करना।

7 कर्मचारियों से सहयोग प्राप्त करना और संस्था के प्रति उनमें लगाव उत्पन्न करना।

8 मानवीय साधनों का सदुपयोग करना।

9 संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करना।

अभिप्रेरणा की सुदृढ़ व्यवस्था की अनिवार्यताएं
(Essentials of Sound Motivation System)

कूण्टज एवं ओ डोनल के अनुसार एक सुदृढ़ अभिप्रेरणा व्यवस्था में निम्नलिखित चार बातों का होना जरूरी है—

1 उत्पादक (Productivity)—*एक श्रेष्ठ अभिप्रेरणा व्यवस्था* वह है जो उत्पादक हो अर्थात् अधीनस्थ कर्मचारियों को अधिक कुशलता और श्रम के साथ काम करने के लिए प्रेरित कर सके।

2 प्रतिस्पर्द्धात्मक (Competitive)—एक श्रेष्ठ अभिप्रेरणा व्यवस्था वह है जो कर्मचारियों में अधिक परिश्रम करने की स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को जन्म दे। यही नहीं अभिप्रेरणा की लागत इससे प्राप्त अधिक उत्पादकता से ज्यादा भी नहीं होनी चाहिए।

3 व्यापक (Comprehensive)—एक सुदृढ़ अभिप्रेरणा व्यवस्था को

व्यापक होना चाहिए। उपयुक्त अभिप्रेरण योजना संगठन म लगे व्यक्तियों की न केवल निम्न स्तर की जरूरतों को पूरा करती है जैसे शारीरिक जरूरतें सुरक्षा सम्बन्धी जरूरत बल्कि उच्चस्तरीय जरूरतों को भी पूरा करती है जैसे आत्मतुष्टि की जरूरत सामाजिक महत्व की जरूरत आदि। यही नहीं अभिप्रेरणा का यह योजना संगठन म लगे सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू होनी चाहिए।

4 लचीली (Flexible) एक अच्छ और सुदृढ़ अभिप्रेरण योजना के लिए लचीली होना आवश्यक है ताकि भिन्न भिन्न व्यक्तियों की भिन्न भिन्न मांगो और जरूरतों को पूरा किया जा सके और समयानुकूल परिवर्तन भी लाए जा सकें।

अभिप्रेरणा के प्रकार
(Types of Motivation)

अभिप्रेरणा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और समय समय पर विभिन्न परिस्थितियों म विभिन्न प्रकार की अभिप्रेरणाओं का उपयोग करना पड़ता है। विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार की अभिप्रेरणाओं से अभिप्रेरित होते हैं। अभिप्रेरणाएँ औपचारिक एव अनौपचारिक दो प्रकार की हो सकती हैं और इनम भी प्रत्येक के दो भेद किए जा सकते हैं—धनात्मक और ऋणात्मक। डा मामोरिया एव दशोरा ने इनके प्रकारों तथा उनसे सम्बन्धित मानवीय व्यवहारों को चार्ट म इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

अभिप्रेरणा	मानवीय व्यवहार
1 औपचारिक अभिप्रेरणाएं	
(अ) धनात्मक (*Positive*)	*वेतन बोनस पदोन्नति पुरस्कार* विभिन्न बायदे विशिष्ट लाभ जैसे क्लब म सदस्यता वाहन रखने की विशेष सुविधा अच्छा जलपान-गृह आदि।
(ब) ऋणात्मक (Negative)	झिड़कियाँ देना दुर्व्यवहार अनुशासनात्मक कार्यवाही पद अवनति जबरी छुट्टी पदमुक्ति प्राप्त सुविधाओं को बन्द कर देना आदि।
2 अनौपचारिक अभिप्रेरणाएं	
(अ) धनात्मक (Positive)	प्रशंसा प्रोत्साहन अन्य व्यक्तियों द्वारा मैत्रीपूर्ण व्यवहार सामूहिक सम्मान और स्वीकृति न्यूनतम नियन्त्रण प्रबन्धकों एव सहयोगियों द्वारा सम्मान दिया जाना आदि।

(ब) ऋणा मक (Negative)	आलोचना का पात्र बनना सहयोगियो द्वारा सम्मान नहीं मिलना अ य सहयोगियो द्वारा काय मे स॒योग नहीं देना नियन्त्रको और पयवेक्षको द्वारा झिडकियां देना आदि।

अनेक विद्वानो ने अभिप्ररणाओ को निम्नलिखित तीन भागो म विभाजित किया है—

(क) धना मक एव ऋणात्मक अभिप्र रणाए

(ख) वित्तीय एव अवित्तीय अभिप्र रणाए एव

(ग) व्यक्तिगत तथा सामूहिक या समूह अभिप्र रणाए।

(अ) धना मक एव ऋणात्मक अभिप्ररणाए—इन अभिप्र रणाओ म मानव यवहार के वे सभी रूप सम्मिलित हैं जो उपरोक्त चाट मे बताए गए हैं। धनात्मक अभिप्र रणाओ से चाह वे औपचारिक हा या अनौपचारिक काय करन के लिए प्र रणा मिलती है औद्योगिक शान्ति का सृजन होता है दुघटनाए कम होती हैं। यदि अभिप्र रणाए ऋणा मक हैं तो कुछ समय के लिए तो श्रमिक काम करने क लिए बाध्य होते ह कि तु व लम्बे समय तक सन्तोषजनक काय नही कर पात और श्रमिक असतोष के कारण विभिन्न प्रकार के औद्योगिक विवाद पनप जात हैं। स तुष्ट श्रमिक ही सगठन के हित म रुचिकर काय कर सकते ह।

(ब) वित्तीय एव अवित्तीय अभिप्रेरणाए—अभिप्र रणाए चाहे धनात्मक हो या ऋणात्मक व्यक्तिगत हो या सामूहिक इ ह दो वर्गों म विभाजित किया जाता है—वित्तीय तथा अवित्तीय।

वित्तीय अभिप्र रणाए (Monetary Motivations) इस मा यता पर आधारित ह कि अधिक उत्पादन प्राप्त करने क लिए श्रमिको को अधिक मजदूरी और अधिक लाभाश दिया जाना चाहिए। दूसर शब्दो मे वित्तीय अभिप्र रणा व्यवस्था म श्रमिको को मुद्रा के रूप मे प्र रणा दी जाती है ताकि उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके और जीवन निर्वाह मे उ ह सहायता मिले। मजदूरी अथवा वेतन वृद्धि अधिलाभाश तथा अ य वित्तीय अभिप्रेरणाओ से कमचारियो एव श्रमिको की मूलभूत आर्थिक आवश्यकताओ की स तुष्टि होती है और श्रमिको के काय के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण को प्रो साहन मिलता है। यद्यपि वित्तीय अभिप्र रणाए कमचारियो को सम्पूण अभिप्र रित नही कर पाती क्योकि कमचारी केवल मुद्रा क लिए ही काय नहीं करत तथापि यह निर्विवाद है कि यदि श्रमिको को अपर्याप्त मजदूरी मिलेगी तो वे सरलता से अपना जीवनयापन नही कर पाएँगे उनम आर्थिक असन्तोष जाग्रत होगा जिसस औद्योगिक अशान्ति का उदय और विकास होगा। वित्तीय अभिप्र रणाए किसी भी उद्योग मे मधुर मानवीय सम्ब धो की स्थापना म महत्त्वपूण योग देती हैं अत इन अभिप्र रणाओ का प्रशासन स्पष्ट मानद डो पर

का प्रामाण्य उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि मनोबल का उच्च होना अकार्यकुशल कर्मचारियों का भी प्रलोभन के कारण कार्य के लिए प्रेरित होना व्यक्तिगत सन्तुष्टि प्राप्त होना मनोवैज्ञानिक उत्तेजना मिलना आदि। व्यक्तिगत अभिप्रेरणाओं का प्रशासन सरल और प्रभावी होता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों का आसानी से मूल्यांकन किया जा सकता है तथा उसके प्रतिफल की गणना भी शीघ्रता से हो सकती है। प्रतिफल की गणना शीघ्र होने से प्रेरणाएं भी शीघ्र प्रदान की जा सकती हैं जो श्रमिकों के लिए अधिक प्रभावी और सन्तोषजनक सिद्ध होती हैं।

समूह अभिप्रेरणाओं के प्रमुख लाभ हैं—समूह कर्मचारियों में आपसी मतभेदों और संघर्ष की सम्भावना का कम होना समूह भावना का विकास होना कर्मचारियों पर अत्यधिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता नहीं रहने से पर्यवेक्षण व्ययों में कमी आना कर्मचारियों की अनुपस्थिति में कमी आना काम पर देर से आने की उनकी प्रवृत्ति का दूर या कम होना आदि। इन सभी लाभों का एक प्रभाव यह होता है कि उत्पादित वस्तु की प्रति इकाई लागत में कमी आ जाती है जिससे उपभोक्ताओं समुदाय और सम्पूर्ण राष्ट्र का हित संवर्द्धन होता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग तथा भारतीय राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद द्वारा प्रेरणा व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में सिफारिशें

राष्ट्रीय श्रम आयोग और प्रेरणा व्यवस्थाएं

1 नियोक्ताओं और कर्मचारियों द्वारा इकाई स्तर पर एक सहज और सरल प्रेरणा व्यवस्था की जाए। यह व्यवस्था स्वीकृत आधार पर सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से तैयार की जाए।

2 समूहों पर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से लागू होने वाली व्यक्तिगत एवं समूह दोनों प्रेरणाओं को विकसित किया जाए।

3 जो भी प्रेरणा व्यवस्था कायम की जाए उसको नियोक्ताओं एवं कर्मचारियों द्वारा स्वीकृत प्रमापों या आधारों पर किया जाए।

4 कोई भी प्रेरणा व्यवस्था हो उसका विकास कर्मचारियों के सहयोग से किए गए कार्य अध्ययन के आधार पर किया जाए।

5 कर्मचारियों को प्रेरणा योजनाओं से जो आय हो उसमें अधिक उच्चावचन होने चाहिए।

6 वित्तीय प्रेरणाएं ही काफी नहीं हैं उनके साथ अवित्तीय प्रेरणाएं भी कर्मचारियों और श्रमिकों को दी जानी चाहिए ताकि उत्पादन तथा कार्य के प्रति वे अधिक सक्रिय बनें। अवित्तीय प्रेरणाओं में सेवा सुरक्षा कार्य सन्तुष्टि कार्य स्तर आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने नीजी उद्योगों में ही नहीं वरन् सभी

प्रकार के उद्योगों में उत्पादकता-वृद्धि के लिए प्रभावी प्रेरणा व्यवस्थाओं के निर्माण पर जोर दिया है।

भारतीय राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद की सिफारिशें

4. जून 1962 में भारतीय राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने जर्मनी संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान के उद्योगों में प्रचलित उत्प्रेरणाओं अथवा अभिप्रेरणाओं के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसमें भारत के शिक्षा तथा लाभ क्षेत्रों में उत्प्रेरण भुगतान से सम्बन्धित अनेक सिफारिशें भी की थीं। इन सिफारिशों को डा. के. आर. पी. सिंह ने निम्नवत् प्रस्तुत किया है—

(क) औद्योगिक अभियान्त्रिकी (Industrial Engineering) में शिक्षण स्तर ऊंचा किया जाना चाहिए। सभी अभियान्त्रिकी महाविद्यालयों में विशिष्ट पाठ्यक्रम आरम्भ किया जाना चाहिए। कुल अभियन्ताओं को औद्योगिक अभियान्त्रिकी में ऊंची शिक्षा प्राप्त करने का प्रोत्साहन मिलना चाहिए ताकि औद्योगिक अभियन्ताओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि की जा सके।

(ख) प्रबन्ध परामर्शदाताओं (Management Consultants) की फर्मों में प्रोत्साहन मिलना चाहिए। परामर्शदाता उन छोटी फर्मों को परामर्श दे सकेंगे जो स्वयं औद्योगिक अभियन्ताओं की नियुक्ति नहीं कर सकते।

(ग) कलकत्ता बम्बई मद्रास अहमदाबाद बंगलौर आदि प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों में जहां शीघ्र ही अनेक कारखानों में श्रमिकों के लिए उत्प्रेरण आधारित मजदूरी की व्यवस्था की जाएगी श्रमिकों को पद्धति अध्ययन (Method Study) कार्य माप (Work Measurement) तथा पद मूल्यांकन (Job Evaluation) आदि की शिक्षा प्रदान करने के लिए विशिष्ट तकनीकी संस्थाएं संचालित की जानी चाहिए।

(घ) जर्मनी के रेफा (REFA) जैसा संगठन स्थापित करने की सम्भावनाओं पर विचार विमर्श करने के लिए उद्योग श्रम तथा सरकारी हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली एक त्रिपक्षीय समिति (Tripartite Committee) का गठन किया जाना चाहिए। इस प्रकार के संगठन के द्वारा उपयुक्त उत्प्रेरण योजनाओं की वांछनीयता के सम्बन्ध में श्रमिकों के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले सन्देहों को दूर किया जा सकेगा और श्रमिक यह सोचेंगे कि उद्योगपतियों द्वारा उनका शोषण न होकर उनके हितों की पर्याप्त रक्षा की जा रही है।

(ङ) अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के निर्माण की ओर भारत के उद्योगपतियों को विशेष ध्यान देना चाहिए। श्रमिकों का विश्वास प्राप्त करने के

लिए तथा उत्पादन-आधारित मजदूरी की समस्याओं के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न किए जाने चाहिए।

अभिप्रेरणा का महत्त्व
(Importance of Motivation)

किसी भी औद्योगिक एवं प्रशासनिक या अन्य प्रतिष्ठानों की सफलता में अभिप्रेरणा व्यवस्था का अत्यधिक महत्त्व होता है। उत्पादन के विभिन्न साधनों में केवल मनुष्य ही एक सजीव और सक्रिय साधन है जो अन्य निष्क्रिय साधनों को गति प्रदान करता है। मनुष्य मशीन नहीं है जिससे बटन दबाते ही काम ले लिया जाए। प्रतिष्ठान में काम करने वाले कर्मचारियों और श्रमिकों की अपनी मान्यताएँ, विचारधाराएँ, इच्छाएँ और आकांक्षाएँ होती हैं। उनमें काम के प्रति रुचि उत्पन्न करके विकास के लिए इच्छाएँ जाग्रत करके ही उनसे काम लिया जा सकता है। दबावकारी उपाय या बाध्यताएँ अधिक सफल नहीं होतीं। कालान्तर में इनसे प्रतिक्रिया स्वरूप असन्तोष और विरोध फलता है। कार्मिक प्रबन्ध के आरम्भ से अन्त तक उपक्रम के कर्मचारियों से व्यवहार करना है और दूसरे लोगों के प्रयासों से अपने कार्यों को निष्पादित कराता है तथा अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है। इस दृष्टि से कर्मचारी अभिप्रेरण और प्रेरणाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। व्यक्तियों से सही रूप में काम कराना इस बात पर निर्भर है कि वे मानसिक दृष्टि से काम करने के लिए तैयार हैं या नहीं। अमेरिकी जनरल फूड कारपोरेशन के भूतपूर्व अध्यक्ष क्लेरेन्स फ्रांसिस के शब्दों में, "आप किसी व्यक्ति का समय खरीद कर सकते हैं, किसी विशेष स्थान पर उसकी शारीरिक उपस्थिति का खरीद सकते हैं किन्तु किसी व्यक्ति के उत्साह को, उसकी पहल शक्ति को अथवा उसकी वफादारी को नहीं खरीद सकते। कर्मचारियों से अधिकाधिक काम लेने के लिए उन्हें नियमित रूप से प्रेरित करते रहना आवश्यक है और ऐसी प्रेरक शक्ति ही अभिप्रेरण है।"

अभिप्रेरण प्रक्रिया
(Motivation Process)

अब इस बात पर विचार करना उपयुक्त होगा कि प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए किस प्रकार कदम उठाता है। अभिप्रेरण-प्रक्रिया के दो मुख्य भाग हैं—

(क) क्या किया जाता है एवं

(ख) ऐसे क्यों तथा किस प्रकार किया जाना चाहिए।

प्रथम भाग में अभिप्रेरण के कदम और द्वितीय में इन कदमों से सम्बन्धित नियम आते हैं। ये दोनों ही कदम साथ-साथ उठाए जाते हैं तथापि अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम इनको पृथक् पृथक् रूप में देखेंगे। पहले हम (क) अभिप्रेरण के कदमों का और उसके पश्चात् (ख) अभिप्रेरण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख करेंगे।

(क) अभिप्रेरण के कदम
(Steps of Motivation)

अभिप्रेरण के मुख्य कदम इस प्रकार है—

1 अभिप्रेरण आवश्यकताओं (Motivational Needs) का निर्धारण—अभिप्रेरण प्रक्रिया के इस प्रथम कदम में यह देखा जाता है कि कौन से कर्मचारियों को अभिप्रेरण की कितनी आवश्यकता है। यह देखना जरूरी इसलिए है कि भिन्न भिन्न व्यक्तियों को भिन्न भिन्न प्रकार के अभिप्रेरण की भिन्न भिन्न मात्रा में आवश्यकता होती है। कोई व्यक्ति अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देना चाहता है तो कोई सामान्य स्तर की शिक्षा को ही काफी समझता है। कोई व्यक्ति अपने कार्य की श्रेष्ठता को महत्त्व देता है तो कोई व्यक्ति कार्य की मात्रा को। यदि समूह की दृष्टि से देखें तो कर्मचारियों के समूह भी भिन्न भिन्न प्रकार की अभिप्रेरणाओं को भिन्न भिन्न महत्त्व देते हैं। उदाहरणार्थ कारखाना कर्मचारी कार्यालय कर्मचारी कारीगर समूह अकुशल श्रमिक पर्यवेक्षक अधीनस्थ कर्मचारी आदि की अभिप्रेरण आवश्यकताएँ अलग अलग होती हैं। प्रबन्धक को चाहिए कि वह प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्ति समूहों का ध्यान रखते हुए अभिप्रेरण आवश्यकताओं को निर्धारित करे।

2 अभिप्रेरण उपकरण (Motivational Tools) को निर्धारित करना—अभिप्रेरण प्रक्रिया के इस दूसरे कदम में प्रबन्धक को अभिप्रेरण के विशिष्ट उपकरणों का चुनाव और प्रयोग करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि प्रबन्धक के पास विभिन्न विकल्पों की सूची पहले से ही तैयार हो। प्रबन्धक को चाहिए कि वह इस सूची को तैयार करने में अपने तथा अन्य व्यक्तियों के अनुभव का प्रयोग करे और अपने साथियों से यह जानकारी भी हासिल करे कि किस प्रकार के व्यक्तियों के लिए किन परिस्थितियों में कौन से साधन अभिप्रेरण के लिए प्रभावी सिद्ध होंगे।

3 अभिप्रेरण योजनाओं (Motivation Plans) का चुनाव एवं प्रयोग—अभिप्रेरण योजना को लागू करने के लिए सबसे पहले उपयुक्त योजना का चुनाव करना होता है और तत्पश्चात् उसको लागू करने की विधि समय एवं स्थान का निश्चय किया जाता है। उदाहरणार्थ किसी कारीगर को उसकी कारीगरी के लिए सम्मान देने में यह विचार करना होगा कि सम्मानार्थ किन शब्दों का उपयोग किया जाए सम्मान देते समय किस प्रकार के हाव–भाव प्रदर्शित किए जाएँ आदि। यह भी ध्यान रखना होगा कि अभिप्रेरण का प्रयोग कब और कहाँ किया जाए। कुछ कर्मचारी अपने कार्यों के लिए सार्वजनिक रूप में सम्मान प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं और कुछ ऐसा नहीं चाहते। यह भी निश्चय करना होता है कि एक कर्मचारी को श्रेष्ठ कार्य सम्पन्न करने के कितने समय बाद सम्मान दिया जाए। यदि विलम्ब किया गया तो उस अभिप्रेरण की प्रभावशीलता समाप्त अथवा कम हो जाएगी।

अभिप्रेरण योजनाओं के लागू करने में समय तत्व (Time Element) की ओर ध्यान देना जरूरी है।

4 प्रभाव का अध्ययन (The Follow up)—अभिप्रेरण का अन्तिम कदम प्रभाव का अध्ययन करना है अर्थात् यह जानकारी हासिल करना कि कमचारी प्रेरित हुए अथवा नहीं और यदि नहीं तो अभिप्रेरण की किस अन्य युक्ति का प्रयोग किया जाए। प्रभाव अध्ययन में यह भी शामिल है कि भविष्य के सन्दर्भ में अभिप्रेरक युक्तियों का मूल्यांकन किया जाए।

(ख) अभिप्रेरण के नियम
(Rules of Motivation)

अभिप्रेरण के उपयुक्त कदमों को उठाते समय प्रबन्ध को कुछ मूलभूत नियमों को ध्यान में रखना चाहिए। यह हम पहले बता चुके हैं कि अभिप्रेरण के कदम और उन कदमों से सम्बन्धित नियम—ये दोनों ही साथ साथ उठाए जाते हैं अर्थात् दोनों में चोली दामन का साथ है। अभिप्रेरण के कुछ प्रमुख नियम ये हैं—

(1) आत्महित तथा अभिप्रेरण (Self interest & Motivation)—व्यक्ति स्वार्थवश ही कुछ करता है और अभिप्रेरण योजना इसी स्वार्थ या स्व हित पर आधारित होती है। तथापि यह स्वार्थ विवेकपूर्ण होना चाहिए अर्थात् संस्था के कर्मचारियों को यह अनुभव करना चाहिए कि अन्य कर्मचारियों को उनके लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता देते हुए उसके स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हो रही है। यदि एक कर्मचारी तरक्की के लिए उत्सुक है तो वह या तो दूसरे कर्मचारियों की उन्नति को आघात पहुंचा कर या दूसरे कर्मचारियों को अपने साथ लेकर तरक्की कर सकता है। दोनों ही तरीकों में उसका निजी स्वार्थ छिपा है लेकिन दूसरा तरीका बुद्धिमत्तापूर्ण है क्योंकि इससे उसकी एक प्रभावशाली टीम होती है। इस प्रकार अभिप्रेरण का पहला नियम है कि अभिप्रेरण में निहित स्वार्थ बुद्धिमत्तापूर्ण हो।

(2) पहुंच योग्यता (Attainability)—अभिप्रेरण द्वारा निर्धारित लक्ष्य पहुंच योग्य (Attainable) अर्थात् प्राप्त करने योग्य होना चाहिए तभी श्रम सम्बन्ध अच्छे रह सकेंगे।

(3) विभिन्न पुरस्कार (Different Rewards)—अभिप्रेरण का तीसरा मूल नियम यह है कि विभिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के पुरस्कारों की और इसी प्रकार एक ही व्यक्ति के लिए भिन्न भिन्न समयों पर भिन्न भिन्न प्रकार के पुरस्कारों की व्यवस्था की जानी चाहिए। इससे पुरस्कार व्यवस्था लोचशील और सजीव बनी रहेगी उसमें एक आकर्षण रहेगा। यदि पुरस्कार की एकसी व्यवस्था रखी गई तो वह कुछ समय बाद आकर्षणहीन और प्रभावहीन हो जाएगी।

(4) मानवीय तत्व (Human Element) पर विचार—अभिप्रेरण के इस आधारभूत नियम की मांग है कि मानवीय तत्व का अभिप्रेरण योजना में उचित

महत्त्व दिया जाना चाहिए। यदि कर्मचारी की भावनाओं को चोट पहुँचाई गई या उसके व्यक्तित्व का अपमान किया गया तो अभिप्ररण की कोई भी योजना सफल नहीं हो पाएगी और कर्मचारी अपना काय विपरीत तथा अनिच्छित दिशा में करने लगेगा।

(5) व्यक्ति समूह सम्बन्ध (Individuals Group Relationship)—अभिप्ररण योजना में व्यक्ति और समूह दोनों ही का ध्यान रखा जाना चाहिए क्योंकि समूह का भी व्यक्तियों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कोई भी अभिप्ररण योजना बनाते और लागू करते समय प्रबन्ध को यह अनुमान लगा लेना चाहिए कि उस योजना के सम्बन्ध में समूह का क्या मत है। ऐसी कोई भी अभिप्ररण मजदूरी योजना सफल नहीं हो सकती जिसका समूह द्वारा विरोध किया जा रहा हो।

अभिप्रेरण योजना शुरू करने की वाञ्छनीय शर्तें (Essentials for Implementing Motivation Plans)

अभिप्ररण किसी भी औद्योगिक संस्थान के लिए न केवल अस्थायी आधार तैयार करता है वरन् एक स्थायी नीति को जन्म देता है। भारत में निजी क्षेत्र में अभिप्ररण योजनाओं को बहुत कम स्थान दिया गया है तथापि लोक उद्योगों में कर्मचारियों और श्रमिकों के लिए प्रेरणात्मक योजनाएँ किसी न किसी रूप में लागू की गई हैं। तथापि लोक क्षेत्र के सभी उद्योग इस दिशा में बढ़ चढ़ नहीं माने जा सकते। अभिप्ररण योजना या अभिप्ररणा प्रणाली सुदृढ़ होने पर ही औद्योगिक सम्बन्ध मधुर रह सकते हैं। अभिप्ररण या उत्प्रेरणा योजनाएँ शुरू करने से पूर्व कुछ आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करना या उद्योग में पहले से ही उनका विद्यमान रहना आवश्यक है अन्यथा योजनाएँ सफल नहीं हो सकतीं। मुख्य परिस्थितियों को डा. के. आर. पी. सिंह ने इस प्रकार गिनाया है—

(1) अभिप्ररण या उत्प्ररणा योजना के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाने वाले काय इस प्रकार के होने चाहिए कि उनकी माप सही सही की जा सके। काय माप के आधुनिक तरीकों द्वारा औद्योगिक कार्यों के 95 प्रतिशत कार्यों का माप कर लिया जाता है। ऐसी क्रियाएँ जिनमें काय का माप व्यक्तिगत रूप में या समूह रूप में सम्भव नहीं है या जहाँ कार्यों पर कर्मचारियों का नियन्त्रण अत्यन्त या बराबर होता है उन कार्यों को उत्प्ररणा योजना में सम्मिलित नहीं किया जाता। किसी भी अवस्था में कोरे मानों (Rough Standards) को योजना का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए।

(2) योजना की सफलता की दूसरी शर्त ऐसी वैज्ञानिक मजदूरी संरचना (Scientific Wage Structure) की उपस्थिति है जो काय की भौतिक मानसिक एवं शैक्षणिक जरूरतों तथा मुद्रा वेतन क्रम (Money Scale) से सम्बन्धित काय

मूल्यांकन (Job Evaluation) पर आधारित हो। यदि मजदूरी संरचना इन अर्थों में अपूर्ण होगी तो योजना की शुरुआत होने पर इन अपूर्णताओं में वृद्धि हो जाएगी।

(3) श्रम शक्ति (Work Force) में अत्यधिक अर्जन की भावना होनी चाहिए और उनमें यह विचार आना होना चाहिए कि ऊंची उत्पादकता के फल में पूंजी, श्रम तथा उपभोक्ताओं का हिस्सा निश्चित रहा है।

(4) अभिप्रेरणा योजनाएं ऐसी होनी चाहिए कि उनके अन्तर्गत श्रमिकों को अत्यधिक अर्जन करने का अवसर मिले। लक्ष्यों के सभी स्तर (Slabs of the Targets) इतने ऊंचे निर्धारित नहीं किए जाने चाहिए कि आरम्भ में श्रमिकों को ऊंची आशा मिले किन्तु अन्तत उन्हें निराशा ही हाथ लगे। यदि विभिन्न विभागों की क्रियाएं आपस में अन्तसम्बन्धित हों तो बोनस का आधार या तो अन्तिम उत्पादन (End Product) होना चाहिए या बोनस प्रदान करते समय व्यक्तिगत इकाई की अन्तर्निर्भरता का ध्यान में रखना चाहिए।

(5) बोनस प्रदान करने हेतु समय का निर्धारण (Adoption of Time Values) सामान्य अवस्था के कार्य की औसत गति पर आधारित होना चाहिए और इसके अन्तर्गत थकान, व्यक्तिगत जरूरतों तथा दूसरी बातों पर ध्यान रखा जाना चाहिए। उत्प्रेरणा योजनाओं के फलस्वरूप उत्पादन की किस्म में गिरावट ही नहीं आनी चाहिए। उत्पादन की किस्म पर ध्यान देने के लिए या तो कोई गुणात्मक कसौटी (Equality Criterion) अपनाई जानी चाहिए या सिर्फ अच्छी किस्म के उत्पादन पर ही उत्प्रेरणा या अभिप्रेरणा योजना की शुरुआत के पूर्व पद्धति अध्ययन (Method Study) आवश्यक है।

(6) श्रमिकों के सम्पूर्ण पारिश्रमिक में अभिप्रेरणा भुगतान का भाग बहुत अधिक नहीं होना चाहिए। साथ ही उनकी न्यूनतम आय की भी प्रत्याभूति होनी चाहिए। सामान्यतया सामान्य आय का 50 प्रतिशत से अधिक उत्प्रेरणा पारिश्रमिक नहीं मिलना चाहिए। योजना के मौद्रिक भाग तथा कार्य सम्पादन का अन्तसम्बन्ध इस प्रकार का होना चाहिए कि इससे उत्पादन की औसत लागतों (Unit Costs) में वृद्धि होने के बजाय कमी हो। पर कुछ दशाओं में विशेषकर जहां प्रारम्भिक मजदूरी संरचना का आधार उद्योग विशेष की प्रतियोगी इकाइयों में श्रमिकों की कुल आय होती है वहां अभिप्रेरणा योजना लागू होने पर इकाई विशेष में भी पारिश्रमिक स्तर काफी ऊंचा हो जाता है। पर शर्त यह है कि निम्न मजदूरी (Fall back wage) का निर्धारण प्रचलित मूल्य से निम्न स्तर पर किया गया हो और उत्प्रेरणा योजना के अन्तर्गत सामान्य कुल आय का स्तर ऊंचा रखा गया हो।

(7) सभी अभिप्रेरणा योजनाएं किसी खास कार्य प्रक्रिया (Work

Process) से सम्पादित होता है और यदि य न च्च माल उत्पादन रीति तथा उत्पादित वस्तुओं में किसी प्रकार के परिवर्तन हुए तो योजना में भी परिवर्तन लाना आवश्यक होगा। इस योजना को श्रमिकों तथा प्रबन्धकों का समर्थना प्राप्त होना चाहिए तथा इसे लिखित रूप में एवं स्पष्ट होना चाहिए। यदि किसी श्रमिक अथवा श्रमिका को विशेष बल के कारण उत्पादन में उन्नति होनी हो तो उनके लिए उन श्रमिका को पृथक् पारिश्रमिक मिलना चाहिए और इस प्रकार के पारिश्रमिक कार्य के पुनर्मापन के द्वारा समय समय पर परिवर्तन भी करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि मौद्रिक उत्प्रेरण या अभिप्रेरणा योजना के साथ-साथ उन्नति के लिए एक सुझाव योजना (Suggestion Scheme) की शुरुआत भी करनी चाहिए।

(8) श्रमिकों की योजना की पूरी जानकारी होनी चाहिए और उनमें यह विचार व्याप्त रहना चाहिए कि उनके अतिरिक्त प्रयत्न पर उन्हें अतिरिक्त मौद्रिक पारिश्रमिक किसी न्यून यन्त्रित न आधार पर प्राप्त होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि योजना स्पष्ट एवं आसान हो।

(9) बोनस या भुगतान की गणना की अवधि भी यथासम्भव छोटी होनी चाहिए। साधारण अवस्था में इस अवधि एक माह से अधिक नहीं होनी चाहिए। अवधि लम्बी होने पर प्रयत्न एवं पारिश्रमिक के प्रत्यक्ष सम्बन्ध का अधिक थम जाता है।

(10) विभिन्न प्रकार के कार्यों की माप के लिए विभिन्न प्रकार की कसौटी अपनाई जानी चाहिए।

(11) भारतीय पृष्ठभूमि में यह भी आवश्यक है कि अतिरिक्त की छटना न हो। अभिप्रेरणा योजना एक समय से और इस प्रकार लागू की जाए कि छटनी की सम्भावना न रहे।

ये आवश्यक परिस्थितियाँ जैसा कि डा सिंह का अभिमत है वर्तमान समय में भारतीय नौकरशाही में उपलब्ध नहीं हैं अथवा बहुत कम हैं।

अभिप्रेरणा के सिद्धान्त
(Theories of Motivation)
अथवा
अभिप्रेरणा सम्बन्धी विचारधाराएँ
(Concepts of Motivation)

विभिन्न प्रबन्धशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने समय समय पर अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धान्तों अथवा विचारधाराओं का प्रतिपादन किया है। हम इन सिद्धान्तों का विवेचन क्रमश निम्न प्रकार से करेंगे—

1 आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त (Need of Hierarchy Theory) जिसका प्रतिपादन मैस्लो (Maslow) ने किया है।

2 अभिप्ररणा आरोग्य सिद्धान्त (Hygiene Theory of Motivation) जिसका प्रतिपादन हजबर्ग (Herzberg) द्वारा किया गया है।

3 अभिप्ररणा तथा एक्स एवं वाई का सिद्धान्त (Motivation and X and Y Theory) जिसका प्रतिपादन मक्ग्रगर (McGregor) ने किया है।

4 अन्य मुख्य सिद्धान्त—

(i) अभिप्ररणा का एकात्मक सिद्धान्त (Monistic Theory)
(ii) अभिप्ररणा का बहुलवादी सिद्धान्त (Pluralistic Theory)
(iii) सहभागिता सिद्धान्त (Participation Theory)
(iv) कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षण सिद्धान्त (Employee Centred Supervision Theory)
(v) पथ गन्तव्य सिद्धान्त (Path goal Theory)
(vi) भय एवं दण्ड का सिद्धान्त (Fear and Punishment Theory)
(vii) पुरस्कार सिद्धान्त (Reward Theory)
(viii) करट तथा स्टिक सिद्धान्त (Carrot and Stick Theory)
(ix) व्यक्तिगत एवं सगठनात्मक आवश्यकता सिद्धान्त (Individual and Organisation Need Theory)

1 आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त
(Need of Hierarchy Theory of Motivation)
अथवा
अभिप्रेरणा का मस्लो का सिद्धान्त
(Maslow s Theory of Motivation)

विख्यात मनोवैज्ञानिक ए एच मस्लो (A H Maslow) ने अपनी पुस्तक Motivation and Personality में अभिप्ररणा के सिद्धान्त को आवश्यकताओं की क्रमबद्धता के आधार पर विकसित किया है। मस्लो की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति हर समय अभिप्ररणा की अवस्था में रहता है किन्तु अभिप्ररणा की मात्रा भिन्न होती है। व्यक्ति पूर्णतः सन्तुष्ट भी नहीं होता। ज्यों ही उसकी एक आवश्यकता सन्तुष्ट हो जाती है दूसरी आवश्यकता जाग्रत हो जाती है अर्थात् आवश्यकताओं की क्रमबद्धता चलती रहती है। एक व्यक्ति में कार्य के प्रति रुचि तथा शक्ति उत्पन्न करने के लिए उसकी एक के बाद दूसरी आवश्यकताओं को क्रमबद्धता में सन्तुष्ट करना होता है। मस्लो ने प्राथमिकता (Priority) के आधार पर आवश्यकताओं को पाँच वर्गों या श्रेणियों में बाँटा है—

1 शारीरिक मूलभूत आवश्यकताएं (Physiological Needs)—भोजन शरण स्थल आदि।

2 सुरक्षात्मक आवश्यकताए (Safety Needs)—भय ताडना आदि के विरुद्ध सुरक्षा।
3 सामाजिक आवश्यकताए (Social Needs)—प्रेम सहयोग मैत्री आदि।
4 सम्मान एव स्वाभिमान की आवश्यकताए (Egoistic Needs)—सम्मान सामाजिक स्तर आदि।
5 आत्म विकास तथा आत्म परिपूर्ति सम्बन्धी आवश्यकताए (Self Actualization Needs)।

मस्लो के अनुसार शारीरिक आवश्यकताएँ प्राथमिकता क्रम मे पहले होती हैं। इन आवश्यकताओ की सन्तुष्टि हो जाने के उपरान्त सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ प्राथमिक स्थान ग्रहण कर लेती हैं। यह क्रम अन्त तक चलता रहता है और इसी क्रम के अनुसार मानव काय प्रेरणा भी विभिन्न आवश्यकताओं और क्रियाओं की ओर काय करती रहती है।

1 शारीरिक मूलभूत आवश्यकताए (Physiological Needs)—मस्लो के अनुसार आवश्यकताओ की क्रमबद्धता का सबसे पहला स्तर शारीरिक मूलभूत आवश्यकताओ अथवा जीवन निर्वाह की मूलभूत आवश्यकताओ का है। इसमे जल भोजन वायु आवास तथा यौन सम्पर्क प्रमुख हैं। ये आवश्यकताए व्यक्ति को काय करने के लिए सबसे अधिक प्रेरित करती हैं और प्रथम स्तर की हैं। इन आवश्यकताओ की पूर्ति न होने पर व्यक्ति एकदम असन्तुष्ट रहता है उसे अपना जीवन यापन करना भी कठिन हो जाता है और यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी हो सकती है। इन प्रथम स्तर की आवश्यकताओ की सन्तुष्टि होने पर ही अन्य आवश्यकताए जन्म लेती है। प्रथम स्तर की इन आवश्यकताओ की अनुभूति व्यक्ति को बारम्बार होती है।

2 सुरक्षात्मक आवश्यकताए (Safety Needs)—प्रथम स्तर की अर्थात् शारीरिक मूलभूत आवश्यकताओ की सन्तुष्टि हो जाने के उपरान्त व्यक्ति सुरक्षा स्थायित्व और निश्चितता की आवश्यकताओ (Safety Stability and Security Needs) की सन्तुष्टि करने का प्रयत्न करता है। यदि प्रथम स्तर की आवश्यकताओ की ओर से व्यक्ति को पूर्ण या पर्याप्त सन्तुष्टि है तो ये द्वितीय स्तर की आवश्यकताए सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लेती हैं। व्यक्ति अपने रोजगार की सुरक्षा चाहता है और उसमे स्थायित्व तथा निश्चितता पाने का प्रयत्न करता है। यदि किसी कर्मचारी की नियुक्ति अस्थाई है तो उसके मन मे सदैव यह भय व्याप्त रहता है कि न जाने कब उसे अपनी नौकरी से हाथ धोना पड जाएगा अत वह अपनी नौकरी को स्थाई बनाने अथवा कोई अन्य रोजगार प्राप्त कर उसमे सुरक्षा स्थायित्व निश्चितता पाने को बराबर प्रयत्नशील रहता है।

3 सामाजिक आवश्यकताएं (Social Needs)—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के लिए उसे अनेक सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना आवश्यक है। अतः प्रथम एवं द्वितीय स्तर की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर उसे पूरा ध्यान देना पड़ता है क्योंकि यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हुई तो उसके लिए समाज में रहना सम्भव नहीं हो पाता। उसके मन में यह आशंका बनी रहती है कि कहीं उसका सामाजिक बहिष्कार न हो जाए। प्रथम दोनों स्तर की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होने पर सामाजिक आवश्यकताएं सर्वोच्च हो जाती हैं और मनुष्य सहयोग, प्रेम, मित्रता आदि के लिए लालायित रहता है।

4 सम्मान तथा स्वाभिमान की आवश्यकताएं (Egoistic Needs)—सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के बाद व्यक्ति सम्मान और स्वाभिमान सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है। आवश्यकताओं की क्रमबद्धता में इनका चौथा स्थान है। व्यक्ति चाहता है कि उसे समाज में प्रतिष्ठा मिले, जिस संस्था में वह काम कर रहा है उसमें सम्मान और मान्यता मिले, उसके व्यक्तित्व की शक्ति में वृद्धि हो। प्रत्येक व्यक्ति इन आवश्यकताओं की अधिकाधिक सन्तुष्टि चाहता है किन्तु सभी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि प्रायः नहीं हो पाती। कुछ आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो जाती है और कुछ की जीवन पर्यन्त भी नहीं हो पाती। एक कर्मचारी जितने अधिक ऊँचे पद पर होगा, उसकी सम्मान और स्वाभिमान की आवश्यकताएं भी उतनी ही अधिक तथा ऊँचे स्तर की होंगी और यह सम्भव नहीं है कि निम्न स्तर के सभी कर्मचारी उच्च पद पर पहुँच जाएं। प्रायः कर्मचारी को न तो इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त अवसर ही मिल पाता है और न ही इनकी सन्तुष्टि को वे अधिक महत्त्व देते हैं। कुछ व्यक्ति तो इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के प्रति प्रायः उदासीन रहते हैं।

5 आत्म विकास तथा आत्म परिपूर्ति सम्बन्धी आवश्यकताएं (Self Actualization Needs)—मैस्लो के अनुसार आवश्यकताओं की क्रमबद्धता में अन्तिम स्थान आत्म विकास की आवश्यकताओं का है अर्थात् इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर व्यक्ति सबसे अन्त में ध्यान देता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि जो कुछ उसमें बनने की योग्यता है वह उसके योग्य बन जाए—अर्थात् आत्म विश्वास की योग्यता की पूर्ति का वह आकांक्षी होता है। लेकिन इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में मनुष्य आगे अवश्य बढ़ता है पर उन्हें पूरी तरह प्राप्त नहीं कर पाता। एक संगीतकार को संगीत रचना करनी चाहिए लेकिन इसमें वह कहाँ तक आगे बढ़ सकता है इसे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। मैस्लो के अनुसार "एक संगीतकार को संगीत रचना करनी चाहिए, एक कलाकार को रंग करना चाहिए, एक कवि को लिखना चाहिए यदि वह अन्ततोगत्वा प्रसन्न होना चाहता है। एक व्यक्ति जो हो सकता है उसे वह होना चाहिए।" इन्हीं आवश्यकताओं को हम आत्म विकास कह सकते हैं।

मस्लो क अनुसार विभिन्न स्तर क व्यक्ति विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओ स प्र रणा प्राप्त करत है। इस सम्ब ध म मामोरिया एव दशोरा ने लिखा है कि—"सका यह भी अथ लिया जा सकता है कि एक आवश्यकता स तुष्ट हो जाने के उपरान्त प्र रक नही रह जाती। मस्लो को यह भी अनुभव था कि कई बार इस प्राथमिकता क्रम के अपवाद भी देखने को मिलते हैं। व्यक्ति अपनी अ य आवश्यकताओ की स तुष्टि नही करते हुए भी स्वाभिमान और आत्म विकास की स तुष्टि करने म लग जाते हैं। वास्तव म देखा जाए तो समाज म व्यक्ति प्रत्येक स्तर पर आशिक रूप स स तुष्ट और आशिक रूप से अस तुष्ट पाए जाते हैं तथा वे शारीरिक सुरक्षात्मक सामाजिक तथा स्वाभिमान की आवश्यकताओ क लिए एक साथ प्रयत्न शील रहते हैं। अत यह कहा ना सकता है कि मस्लो का आवश्यकता प्राथमिकता क्रम केवल सामान्य व्यवहार की जानकारी देने म समर्थ है।

अद्ध विकसित या विकासशील अथ व्यवस्थाओ म आवश्यकताओ की क्रमबद्धता क्रमश शारीरिक सुरक्षात्मक सामाजिक स्वाभिमान और आत्म विकास की होती है जबकि विकसित अथ यवस्थाओ म शा रिक सुर ात्मक सामाजिक और स्वाभिमान सम्ब धी आवश्यकताओ को अधिक प्र रक नही माना जाता क्योकि ये आवश्यकताए तो वहा लगभग सभी को सुलभ होती हैं। विकसित देशो क लोगो की अधिकाश क्रियाए आत्म विकास की ओर अग्रसर होती हैं। वहा स्वाभिमान तथा सामाजिक आवश्यकताओ को कम महत्व दिया जाता है। जो विकासशील देश स्वय स्फूर्ति स्थिति (Take off stage) पर पहुच गए हैं उन्हे शारीरिक और सुरक्षात्मक सुविधाए तो प्राय सुलभ होती हैं किन्तु स्वाभिमान तथा आत्म विकास पर वे अधिक केन्द्रित नहीं हो पाते अर्थात् ऐसी अथ व्यवस्थाओ म प्राय सामाजिक आवश्यकता सर्वोच्च होती है।

आवश्यकता क्रम क मुख्य तत्व

मस्लो क अनुसार आवश्यकता क्रम विभिन्न तत्वो पर आधारित हैं। डा मामोरिया एव दशोरा ने कुछ मुख्य तत्वो को इस प्रकार गिनाया है—

1 उच्च आवश्यकताए बाद का प्रगतिमूलक विकास हैं।

2 आवश्यकता का स्तर जितना ऊचा होगा उतना ही जीवन रक्षा की दृष्टि स कम प्रभावी होगा। अधिकतम ऊची आवश्यकता को भविष्य क लिए टाला जा सकता है या पूर्णत समाप्त भी किया जा सकता है।

3 उच्च आवश्यकता स्तर पर जीवन यापन करने का अथ अधिक जैविक क्षमता दीर्घ आयु रोगो से मुक्ति सुख की नींद सोना या अच्छा खाना आदि स है।

4 ऊची आवश्यकताए मानसिक रूप से कम तीव्र होती है।

5 उच्च आवश्यकताओ की पूर्ति स स तोष की मात्रा म वृद्धि होती है तथा आन्तरिक मनोभावनाए अधिक स तुष्ट होती ह।

6 सामान्य विचारो की परिपक्वता प्राप्त होती है।

7 उच्च आवश्यकताओ के लिए बाह्य वातावरण तथा दशाए (जैसे आर्थिक शक्षणिक आदि) अधिक अच्छी होनी चाहिए।

8 उच्च आवश्यकताओ की सन्तुष्टि निम्न स्तरीय आवश्यकताओ की अपेक्षा व्यक्ति का आत्म विकास करने मे अधिक सहायक होती है।

मैस्लो का अभिमत है कि ये विभिन्न स्तर कई बार एक दूसरे पर निर्भर और साथ साथ हो सकते हैं।

मस्लो के सिद्धान्त का मूल्यांकन

मस्लो का सिद्धान्त आशावादी दृष्टिकोण पर आधारित है और इस बात पर बल देता है कि विभिन्न प्रकार की मानवीय आवश्यकताओ को प्राथमिकता के आधार पर सन्तुष्ट करने का प्रयास किया जाना चाहिए। किसी भी सस्था सगठन या उपक्रम मे औद्योगिक शान्ति बनाए रखने कर्मचारियो को उपक्रम के लक्ष्यो को प्राप्त करने की दिशा मे अधिकाधिक सक्रिय बनाने आदि के लिए यह आवश्यक है कि उनकी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के प्रयत्न किए जाए। मस्लो का सिद्धान्त उपयोगी है तथापि अनेक दृष्टियो से इसकी आलोचना विभिन्न प्रबन्ध शास्त्रियो ने और अनुसन्धानकर्त्ताओ द्वारा की गई है। आलोचको मे बनिस क्रिस आर्गिरिस पोर्टर सलेस आदि मुख्य हैं। आलोचको का कहना है कि—

1 आवश्यकताओ की क्रमबद्धता का सिद्धान्त व्यावहारिक धरातल पर खरा नही उतर सकता। यह आदर्शवादी और सैद्धान्तिक अधिक है व्यावहारिक कम।

2 आवश्यकताओ का जो वर्गीकरण किया गया है वह प्रत्येक क्षेत्र मे उपयुक्त नही माना जा सकता।

3 यह आवश्यक नही है कि निम्न स्तर की आवश्यकताए पूरी होने पर ही उच्च स्तर की आवश्यकताए अभिप्रेरणा देने लगेंगी।

4 आवश्यकताओ को मनुष्य देश काल तथा परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तनीय है। जो आवश्यकताए एक देश मे या एक क्षेत्र मे प्राथमिक हो सकती हैं वे ही दूसरे देश या क्षेत्र मे गौण हो सकती हैं।

5 औसत व्यक्ति इतना अधिक दूरदर्शी नही होता कि वह अपनी भावी आवश्यकताओ का पहले से ही अनुमान लगाकर प्राथमिकता क्रम निर्धारित कर ले।

6 आवश्यकताओ के स्तर विभिन्न ऐसे घटको से प्रभावित होते हैं जिन पर मस्लो ने ध्यान नही दिया है। उदाहरणार्थ पैतृक प्रभाव एक ऐसा आधारभूत प्रभाव है जो व्यक्ति की आवश्यकताओ के स्तर को प्रभावित करता है। एक उच्च अधिकारी का पुत्र एक साधारण क्लर्क के पद को अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल प्राय नही मानेगा। इसी प्रकार व्यक्ति की आय से भी उसकी आवश्यकताओ के स्तर

प्रभावित होगा। जितनी आय होगी आवश्यकताओं का स्तर भी उतना ही अधिक ऊँचा होगा।

उपर्युक्त आलोचनाएं मस्लो के सिद्धान्त की उपयोगिता को समाप्त नहीं करती। मस्लो ने विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान आकर्षित किया है और अभिप्रेरण विज्ञान को उन्नत बनाया है।

2 अभिप्रेरणा आरोग्य सिद्धान्त

(Hygiene Theory of Motivation)

अथवा

अभिप्रेरणा का हर्जबर्ग का सिद्धान्त

(Herzberg's Theory of Motivation)

हर्जबर्ग ने अभिप्रेरणा की एक नवीन विचारधारा प्रस्तुत की है जिसे 'अभिप्रेरणा आरोग्य (स्वास्थ्य) का सिद्धान्त या विचारधारा' कहा जाता है। हर्जबर्ग तथा उनके सहयोगियों ने 1950 में लगभग 200 अभियन्ताओं तथा लेखाकारों से किए गए साक्षात्कार में प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर इस अभिप्रेरणा सिद्धान्त का प्रतिपादन और विकास किया। हर्जबर्ग का सिद्धान्त मस्लो के स्व विकास दृष्टिकोण (Self Actualization Approach), तथा मैकग्रेगर के एक्स एवं वाई सिद्धान्त से काफी मिलता जुलता है। हर्जबर्ग के अभिप्रेरणा आरोग्य सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की आवश्यकताओं के दो समूह या घटक होते हैं—(क) आरोग्य तत्त्व (Hygienic Factors) एवं (ख) अभिप्रेरक तत्त्व (Motivating Factors)। आवश्यकताओं के ये दोनों घटक एक दूसरे से भिन्न होते हैं और मानव-व्यवहार को भिन्न भिन्न तरीके से प्रभावित करते हैं।

कर्मचारी-सन्तुष्टि के घटकों या तत्त्वों का निर्धारण करने के लिए जो उपरोक्त साक्षात्कार किया गया उसमें व्यक्तियों से पूछा गया कि वे कब अपने कृत्यों (Jobs) से अच्छा अनुभव करते हैं और कब बुरा। हर्जबर्ग तथा उनके सहयोगियों ने अपने शोध से दो प्रमुख निष्कर्ष निकाले जो इस प्रकार हैं—

(1) जब व्यक्ति अपने कार्य से असन्तुष्टि प्राप्त करते हैं तो इसका प्रमुख कारण वह वातावरण होता है जिसके अन्तर्गत वे कार्य करते हैं। हर्जबर्ग ने इस वातावरण को प्रभावित करने वाले घटकों को आरोग्य सम्बन्धी तत्त्व (Hygienic Factors) के नाम से पुकारा है। ये तत्त्व आवश्यकताओं के प्रथम समूह में आते हैं और कर्मचारी-क्रिया के बाह्य वातावरण को प्रभावित करते हैं। ये तत्त्व मनुष्य को सन्तुष्टि प्राप्त करने से रोकते हैं। आवश्यकताओं के इस प्रथम समूह अथवा आरोग्य तत्त्वों अथवा वातावरण या कृत्य को प्रभावित करने वाले बाह्य तत्त्वों में प्रमुख हैं—(i) पर्यवेक्षण (Supervision) (ii) कार्य दशाएं (Working Conditions)

(iii) काय सुरक्षा Job Security) (iv) मजदूरी (Wage) (v) स्थिति (Status) (vi) कम्पनी की नीति और प्रशासन (Company Policy and Administration) (vii) पारस्परिक वयक्तिक सम्ब ध (Inter personal Relations) ।

(2) जब यक्ति काय मे स तुष्टि प्राप्त करत ह तो एसी सन्तुष्टि कवल काय स ही प्राप्त की जा सकती ह । हजबग न काय स सन्तुष्टि प्राप्त करने वाले घटकों को अभिप्रेरक तत्व (Motivating Factors) कहा है और इनको मास्लो आवश्यकताओ क दूसरे समू म सम्मिलित किया है । ये तत्व कमचारी को अधिक कुशलता और लगन के साथ काय करने के लिए अभिप्रेरित करते ह । इन्हें हजबग न काय के आ तरिक घटक माना है । अभिप्रेरक तत्वो म मुख्य ह— (i) काय स्वय (Work itself) (ii) उपलब्धियां (Achievements) (iii) मा यता अथवा काय का अनुमोदन मिलना (Recognition) (iv) उत्तरदायित्व (Responsibility) (v) उन्नति (Advancement) (vi) विकास की सम्भावना (Possibility of Growth) आदि ।

हजबग ने अपने सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट करत हुए बताया है कि आरोग्य त व (Hygienic Factors) कमचारी म काय क प्रति असन्तुष्ट उत्पन्न होने म रोकते हैं अर्थात् य तत्व मनुष्य को असन्तुष्ट से सन्तुष्ट की ओर ले जाते हैं । य तत्व कमचारी की कायक्षमता उत्पादकता या स तुष्टि म वृद्धि नही करत इनका काय केवल यह है कि य कमचारी म असन्तुष्ट नही होने देते । ये काय क बाहरी वातावरण स सम्ब धित होत हैं । गलरमन (Gellerman) ने लिखा है— प्रभावी अभिप्रेरण के लिए आरोग्य तत्व पूव आवश्यकताए हैं किन्तु ये अभिप्रेरित करने म निबल हैं । य मनोबल क आधार तो बना सकते ह किन्तु व्यक्तियो द्वारा प्रभावी काय करन की इच्छा म वृद्धि नही कर सकते । दूसरी ओर अभिप्रेरक तत्व (Motivating Factors) यक्ति को अपने काय से सन्तुष्टि प्रदान करत ह तथा उस अधिकाधिक काय करने क लिए अभिप्रेरित करते हैं। ये काय क आन्तरिक वातावरण से सम्ब धित होत हैं । साराश रूप म कमचारियो को असन्तुष्टि से बचाने के लिए आरोग्य सम्ब धी तत्वो पर और कमचारियो को अभिप्रेरित करने के लिए अभिप्रेरक तत्वो पर ध्यान दिया जाना चाहिए । हजबग तथा उनक साथियो के अनुसार उद्योगो का सम्ब ध आरोग्य तत्वो से अधिक है जिनका प्रभाव असन्तुष्टि को घटाने पर पडता है । काय को अधिक सन्तोषप्रद बनाने क लिए अभिप्रेरक तत्वो का प्रभावी उपयोग करना होगा ।

उपरोक्त सिद्धान्त के विश्लेषण स स्पष्ट है कि हजबग न प्रेरणा (Incentive) तथा अभिप्रेरणा (Motivation) मे अन्तर किया है । प्रेरणा को बाह्य तत्व माना गया है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को देता है जबकि अभिप्रेरणा को आन्तरिक तत्व

माना गया है जो व्यक्ति के भीतर रहती है। परन्तु एक ऐसी बैटरी की भाति है जिसे बार बार चार्ज करना पड़ता है जबकि अभिप्रेरणा वह जनरेटर है जिसे बाहरी लोगो के सहयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती।

मिद्धान्त का मूल्याकन

हर्जबर्ग का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह कार्य से सन्तुष्टि और असन्तुष्टि के घटकों पर प्रभाव डालता है। यह कर्मचारी सन्तुष्टि के तत्वो का निर्धारण करता है। इसके पीछे निहित धारणा कार्य वेतन कार्य-दशाए सुरक्षा आदि विभिन्न तत्त्वों के विश्लेषण पर आधारित हैं। यह सिद्धान्त बताता है कि प्रबन्धकों को प्रभावी अभिप्रेरणा के लिए कार्य को अधिक सन्तोषप्रद बनाना होगा जो अभिप्रेरक तत्वों के उपयोग से ही सम्भव है। इस सिद्धान्त की भी अनेक दृष्टियों से आलोचनाए की गई हैं यथा—

1 असन्तुष्टि और सन्तुष्टि प्रदान करने वाले तत्वों में स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं खीची जा सकती।

2 यह सिद्धान्त मजदूरी तथा वेतन पर और पारस्परिक व्यक्तिगत सम्बन्धों को अभिप्रेरक तत्व नही मानता जो कि अनुचित है।

3 इस सिद्धान्त के उपयोग का क्षेत्र काफी सीमित है।

4 इस सिद्धान्त द्वारा अभिप्रेरणा और सन्तुष्टि का सम्बन्ध अत्यधिक सरल बना दिया गया है जबकि व्यवहार में ऐसा नही है।

5 यह सिद्धान्त विगत अनुभवों के विपरीत है और साथ ही विधि वैज्ञानिक दोषों से ग्रस्त है।

3 अभिप्रेरणा तथा 'एक्स एव वाई' का सिद्धान्त

(Motivation and X and Y Theory)

अथवा

अभिप्रेरणा का मकग्रेगर का सिद्धान्त

(Mc Gregor s Theory of Motivation)

अभिप्रेरणा के आधुनिक सिद्धान्तों (Modern Theories of Motivation) में मैस्लो हर्जबर्ग तथा मकग्रेगर के सिद्धान्त अग्रणी हैं। मैस्लो तथा हर्जबर्ग के सिद्धान्तों का उल्लेख हम कर चुके हैं। मकग्रेगर (Mc Gregor) ने प्रबन्ध सम्बन्धी विचारधारा को निम्नलिखित दो भागों में बाटा है—

(क) एक्स सिद्धान्त (X Theory)

(ख) वाई सिद्धान्त (Y–Th ory)

एक्स सिद्धान्त जहा निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है वहा वाई सिद्धान्त आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। मकग्रेगर के एक्स (X) तथा

वाई (Y) सिद्धा न को मोटे तौर पर परम्परागत तथा आधुनिक विचारधाराग कहा जा सकता है। एक्स सिद्धात क दापो क निवारण क लिए भी मक्ग्रगर ने वाइ सिद्धा न का प्रतिपादन किया।

(क) एक्स-सिद्धा त (X Theory)

एक्स सिद्धात एक परम्परागत सिद्धा त है जो यह मानकर चलता है कि व्यक्ति प्राय काय करना न ा चाहत अत उनस काय लेने हेतु उह डराना धमकाना लताडना या अन्य किसी भी प्रकार स भय दिखाना आवश्यक है। प्रारम्भिक काल म उद्योगपतियो का प्रमुखत विचार था कि श्रमिका स पूरा काम लेन क लिए उन्ह भय या दण्ड द्वारा आतकित किया जाना चाहिए। उसका मानना था कि भय बिन होय न प्रीति। कठोर नियमन बनाना नियमो को कठोरता स अनुपालन करवाना और नियमा के उल्लघनकर्त्ता का नौकरी से निकाल दना या अन्य प्रकार स शारीरिक एव मानसिक रूप म दण्डित करना आवश्यक समझा जाता था। भय प्रताडना दण्ड दे ा कमचारियो म अधिक लम्बे समय तक काम लेना कठोरता का व्यवहार करना आदि विचारो म धीरे धीरे परिवतन होने लगे क्योकि श्रमिक अधिकाधिक सगठित होने लग और उनक शोषण को रोकने के लिए आवाज उठन लगी। अब भय और द ड को प्र रणा विरोधी माना जान लगा और पुरस्कार की विचारधारा (Reward Theory) सामने आई। टलर (Taylor) न यह मत व्यक्त किया कि अधिक काय क लिए अधिक पुरस्कार देना आवश्यक है। उचित पारिश्रमिक श्रमिका के लिए अभिप्र रणा का काम करेगा और वे अधिक कुशलतापूवक काय करग। यह प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ कि श्रमिको से काम लेने के दो ढग हो सकत है—प्रोत्साहन अथवा दण्ड (Carrot or Stick) और इनम जो ढग उपयुक्त हो वही अपनाया जाना चाहिए। श्रमिको को विश्वास मे लेकर ही उनस अधिक काम लिया जा सकता है। कत्तव्यनिष्ठ और कुशल कमचारियो को सामान्य मजदूरी या वेतन के अतिरिक्त पुरस्कार भी देकर अधिक काय के लिए प्र रित किया जा सकता है जब कि कामचोर और कत्तव्य क प्रति उदासीन व्यक्तियो को वेतन कटौती दण्ड आदि के प्रावधान द्वारा ठीक और अधिक काम के लिए प्र रित किया जा सकता है।

मैकग्रगर ने उपरोक्त सभी विचारो—भय एव दण्ड विचारधारा पुरस्कार विचारधारा प्रोत्साहन अथवा दण्ड विचारधारा—के सम्मिश्रण का एक्स सिद्धा त (X Theory) की सज्ञा दी। मैकग्रगर ने बताया कि एक्स सिद्धा त भ्रामक धारणाओ पर आधारित है यथा—श्रमिक सामा यत सुस्त होते हैं श्रमिक कामचोर होते हैं अधिकाश कमचारी उत्तरदायित्व टाल दना पसन्द करते हैं अत उन्हें ठीक ढग से काम पर लगाने के लिए भय और निय त्रण की विधिया आवश्यक है।

इस प्रकार की मिथ्या धारणाओं के कारण ही मैकग्रेगर तथा अन्य आधुनिक विद्वानों ने एक्स सिद्धान्त को अनुचित तथा असफल माना है।

एक्स सिद्धान्त जिन मान्यताओं को लेकर चलता है उनमें मुख्य ये हैं—

1 एक सामान्य व्यक्ति स्वेच्छा से कार्य करने को उत्सुक नहीं होता है।

2 एक सामान्य व्यक्ति में कार्य के प्रति प्राय अरुचि की भावना होती है।

3 अधिकांश व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी नहीं होते अत उनमें कुछ कर दिखाने की भावना नहीं होती।

4 अधिकांश व्यक्तियों में उत्तरदायित्ववहन-क्षमता बहुत कम होती है और वे यह चाहते हैं कि उन्हें समय समय पर अधिकारियों का निर्देशन प्राप्त होता रहे ताकि वे निर्देशानुसार काम करते रहें या लकीर के फकीर बने रहें।

5 अधिकांश व्यक्तियों में प्रबन्धकीय समस्याओं को सुलझाने की रचना मक क्षमता नहीं होती।

6 सामान्य व्यक्तियों में कार्य करने के लिए उन पर दबाव डालना या उन्हें भय दिखाना आवश्यक है। डराना धमकाना दमकाना आदि उपायों को काम में लेना चाहिए क्योंकि तभी व्यक्ति कार्य करने को तत्पर होंगे।

7 अधिकांश व्यक्ति वित्तीय प्रलोभन के आधार पर ही कार्य करते हैं। अत यदि उन्हें अधिक पारिश्रमिक दिया जाएगा तो वे अधिक समय तक और अच्छा कार्य करने को तत्पर होंगे।

8 प्रबन्ध की दृष्टि से सामान्यत श्रमिक की कोई आवाज नहीं होती वह तो एक मशीनी पुर्जा होता है जिसे अपनी बुद्धि का परिचय देने का सुअवसर प्राप्त ही नहीं होता।

9 अधिकांश व्यक्ति परम्परागत ढंग से कार्य सम्पन्न करना उचित समझते हैं।

अधिकांश परम्परावादी सिद्धान्त उपरोक्त मान्यताओं पर आधारित है और नेतृत्व का निरंकुशतावादी सिद्धान्त भी इन्हीं मान्यताओं में विश्वास करता है। लगभग पन्द्रहवीं सदी के मध्य से 18वीं सदी के मध्य तक प्रबन्धकों का विश्वास दबावकारी और दमनकारी नीतियों में ही रहा पर कालान्तर में उक्त सिद्धान्त प्रतिपादित करने के उपरान्त मैकग्रेगर को अपने सिद्धान्त के प्रति आशंका पैदा हो गई। मैकग्रेगर ने बदली हुई परिस्थितियों के परिवेश में यह अनुभव किया कि मानवीय व्यवहार की दृष्टि से एक्स सिद्धान्त सही नहीं है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है स्वतन्त्र समाज में रहता है उसकी आवश्यकताओं शिक्षा तथा रहन-सहन के स्तर में परिस्थितियों के अनुसार सुधार होता रहता है वह प्रबन्धक से अच्छे व्यवहार की आशा करता है। यह मानव-स्वभाव है कि वह दण्ड और भय के वातावरण के विरुद्ध विद्रोह कर बैठता है। मैकग्रेगर ने यह अनुभव किया कि प्रबन्धकीय क्रियाओं

के सफल सचालन के लिए व्यक्ति की प्रकृति तथा उसके प्रेरक विचारों को समझना जरूरी है। अपनी इस परिवर्तित विचारधारा के आधार पर मक्ग्रेगर ने वाई सिद्धान्त (Y Theory) को जन्म दिया।

(ख) वाई-सिद्धान्त (Y Theory)

एक्स सिद्धान्त के दोषों को दूर करने के लिए मक्ग्रेगर ने जिस वाई सिद्धान्त का प्रतिपादन किया वह मानवीय मूल्यों तथा प्रजातान्त्रिक व्यवस्था पर आधारित है। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि व्यक्ति स्वेच्छा से काय करना चाहता है और उसमें आशावादी तथा रचनात्मक प्रकृति होती है।

वाई सिद्धान्त की प्राथमिक मान्यताएं निम्नलिखित हैं—

1 व्यक्ति स्वतन्त्र वातावरण चाहता है और प्रबन्धक से सद्व्यवहार की अपेक्षा करता है।

2 व्यक्ति स्वेच्छा से काम करना चाहता है अतः उसे काम करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

3 *काय करना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि खेलना और विश्राम करना।*

4 एक औसत कर्मचारी दायित्व को निभाना सीख लेता है।

5 बाह्य नियन्त्रण भय प्रताड़ना—कठोर अनुशासन ऐसी विधियाँ ही व्यक्ति को काय के लिए प्रेरित नहीं करती वरन् व्यक्ति स्वयं निर्देशित और नियन्त्रित होता है तथा जिस काय के लिए उसे नियुक्त किया जाता है उसको पूरा करना वह अपना उत्तरदायित्व समझने लगता है। यह आवश्यक है कि प्रबन्ध कर्मचारियों को काय करने का उचित वातावरण प्रदान करे तथा काय करने के उचित साधन सुलभ कराए।

6 व्यक्ति में उत्तरदायित्व से बचने की प्रवृत्ति स्वभाविक नहीं वरन् इसका मूल कारण महत्वाकांक्षा का अभाव होना और सुरक्षा को अत्यधिक बल दिया जाना है।

7 व्यक्ति काय निष्पादन केवल वित्तीय प्रलोभनों के कारण ही नहीं करता है बल्कि गैर वित्तीय प्रलोभन भी उसे काय करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। काय सम्बन्धी अभिप्रेरणा सामाजिक स्वाभिमान तथा आत्म सम्मान स्तरों पर भी ठीक उसी प्रकार प्राप्त होती है जिस तरह कि शारीरिक तथा सुरक्षात्मक आवश्यकता स्तरों पर। इसी प्रकार काय निष्पादन के लिए अभिप्रेरणा केवल पुरस्कार में ही नहीं मिलती बल्कि यह भी आवश्यक है कि उसकी उपलब्धियों की प्रशंसा की जाए। काय को मान्यता देना भी अपने आप में एक पुरस्कार है।

8 संगठन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने की विवेक शक्ति सामान्यतः सभी लोगों में पाई जाती है कुछ में कम और कुछ में अधिक। चातुर्य

तथा सृजनात्मकता का गुण न्यूनाधिक सभी में पाया जाता है। प्रबन्ध को चाहिए कि वह कर्मचारियों से काम लेते समय इन गुणों का लाभ उठाए।

9 वर्तमान औद्योगिक युग में मानव योग्यता और क्षमता का पूरा उपयोग नहीं किया जा रहा है।

10 वार्ड सिद्धान्त लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित है और कर्मचारियों की सन्तुष्टि पर बल देता है। इस सिद्धान्त का मूलभूत उद्देश्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप में उन दशाओं का सृजन करना है जिनके माध्यम से संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके। मैकग्रेगर ने लिखा है कि एक प्रभावशाली संगठन वह है जहाँ नियन्त्रण तथा निर्देशन के स्थान पर निष्ठा और सहयोग संस्थापित हो गया है और प्रत्येक निर्णय से प्रभावित होने वाले व्यक्ति सम्मिलित किए जाते हैं। वार्ड सिद्धान्त सहभागिता विचारधारा (Participative Theory) के महत्त्व पर बल देता है जिसमें कर्मचारियों में अधिक कार्य लेने के लिए अभिप्रेरित करने हेतु संस्था के प्रत्येक स्तर पर भागीदारी होनी चाहिए।

मैकग्रेगर द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त दोनों सिद्धान्तों (एक्स तथा वार्ड सिद्धान्तों) को अन्य विद्वानों ने विभिन्न नामों से पुकारा है। निक्र ने एक्स सिद्धान्त को न्याय संगठन तथा वार्ड सिद्धान्त को सामूहिक अभिप्रेरणा की संज्ञा दी है तो ड्रकर ने वार्ड सिद्धान्त को उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध कहा है और आर्गिरिस ने समन्वित एवं स्वनियन्त्रित प्रबन्ध (Management by Integration and Self control) पुकारा है।

4 अभिप्रेरणा के अन्य सिद्धान्त
(Other Theories of Motivation)

अभिप्रेरणा के अन्य सिद्धान्तों में हम एकात्मक सिद्धान्त बहुतवादी सिद्धान्त सहभागिता सिद्धान्त कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षण सिद्धान्त पथ लक्ष्य सिद्धान्त भय एवं दण्ड सिद्धान्त पुरस्कार सिद्धान्त क्रेट तथा स्टिक सिद्धान्त और व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक आवश्यकता सिद्धान्त का उल्लेख करेंगे।

(1) अभिप्रेरणा का एकात्मक या द्रव्यात्मक सिद्धान्त (Monistic Theory of Motivation)—इस सिद्धान्त की आधारभूत मान्यता है कि व्यक्ति केवल अधिकाधिक धन प्राप्ति हेतु ही कार्य करता है अर्थात् मुद्रा ही मानवीय व्यवहार का आधार है। इस प्रकार यह सिद्धान्त आर्थिक मनुष्य (Economic Man) की विचारधारा पर आधारित है जिसका अभिप्राय है कि व्यक्ति केवल मौद्रिक पुरस्कार की आकांक्षा से ही कार्य करता है और मौद्रिक पुरस्कार की मात्रा जितनी अधिक होगी व्यक्ति के प्रयत्न भी उतने ही अधिक होंगे। दूसरे शब्दों में कर्मचारी को दिए जाने वाले पारिश्रमिक की मात्रा जितनी अधिक होगी वह उतना ही अधिक कार्य करने को तत्पर होगा।

अभिप्ररणा के एकात्मक सिद्धान्त स निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं अथवा यह विचारधारा अभिप्रेरणा के निम्नलिखित सिद्धान्तो को स्पष्ट करता है—

1 व्यक्तिगत अभिप्ररणा समूह अभिप्ररक की तुलना म अधिक प्रभावशाली होती है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति स्वय के द्वारा सम्पादित काय के अनुसार पारिश्रमिक दिए जान से अधिक अभिप्ररित होता है। व्यक्ति इस अनुभूति से प्रभावित रहता है कि जितना अधिक वह काय करेगा उस उतना ही अधिक पारिश्रमिक मिलेगा अन्य किसी व्यक्ति को नहीं। दूसरी ओर समूह प्ररणा म व्यक्ति के प्रयत्नो के पुरस्कार म सम्पूर्ण समूह की हिस्सेदारी होती है फलस्वरूप व्यक्तिगत अभिप्ररणा मन्दी या फीकी पड जाती है। यदि किसी समूह के कुछ व्यक्ति तो निष्ठापूवक काम करत हैं और शेष व्यक्ति कम काम करत हैं या गुलछर्रे उडाते हैं तो पुरस्कार की राशि का सम्पूर्ण समूह म विभक्त करना न्यायपूर्ण नहीं होगा और इस बात की प्रत्येक सभावना है कि कमचारियो म तनाव तथा विरोध उत्पन्न होगा। ऐसी स्थिति म अभिप्ररणा का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा।

2 यदि प्रयत्नो का पुरस्कार शीघ्र भुगतान किया जाता है तो अभिप्ररणा प्रणाली अधिक प्रभावी होती है। यदि कमचारी का वेतन या पुरस्कार समय पर नहीं मिलता और भुगतान म अनावश्यक विलम्ब होता है तो कमचारी का उत्साह मन्द हो जाता है।

3 अतिरिक्त उत्पादन का जितना अधिक पुरस्कार दिया जाएगा कमचारी उतना ही अधिक काय करन क लिए अभिप्ररित होगा। मान्यता को ध्यान मे रखत हुए ही विख्यात प्रबन्ध विद्वान एफ डब्ल्यू टेलर ने विभेदात्मक मजदूरी पद्धति (Differential Price Rate System) लागू किए जाने का सुझाव दिया था।

अभिप्ररणा का एकात्मक या द्रव्यात्मक सिद्धान्त परम्परागत और घिसापिटा है। मनुष्य को केवल एक आर्थिक मनुष्य मानकर चलना अनुचित है। मनुष्य केवल मुद्रा प्राप्त करन के लिए ही काय नहीं करता। वह शारीरिक सुरक्षात्मक सामाजिक स्वाभिमान आदि आवश्यकताओ की पूर्ति स भी काफी अभिप्ररित होता है। लोक कल्याणकारी तथा परोपकारी अभिप्ररणाए भी अपना महत्त्व रखती हैं तथापि ये आलोचनाए एकात्मक सिद्धान्त की इस मान्यता को नकार नहीं सकतीं कि मौद्रिक अभिप्ररणा मनुष्य को अधिक काय करने के लिए निश्चित रूप से अभिप्ररित करती हैं। जब तक मुद्रा हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति का माध्यम है तब तक व्यक्ति अधिक मुद्रा पाने के लिए प्रयत्न करता रहेगा।

(2) अभिप्ररणा का बहुलवादी या अनेकवादी सिद्धान्त (Pluralistic Theory of Motivation)—यह आधुनिक सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि व्यक्ति केवल एक उद्देश्य या एक ही आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं वरन् अनेक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए काय करता है। ये आवश्यकताए विभिन्न

समयो पर विभिन्न तनाव उत्पन्न करके व्यक्ति को इस प्रकार व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती हैं जो उसकी दृष्टि में तनाव कम करने वाला तथा उसकी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने वाला हो। आवश्यकताओं और उनकी सन्तुष्टि का क्रम निरन्तर चलता रहता है। मनोवैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों द्वारा इन आवश्यकताओं को अनेक श्रेणियों में बाटा गया है यथा—(1) मूलभूत शारीरिक या जीवन निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताएं (2 सामाजिक आवश्यकताएं (3) सम्मान तथा स्वाभिमान सम्बन्धी आवश्यकताएं (4) सुरक्षा एवं निश्चितता सम्बन्धी आवश्यकताएं (5) अपने विकास सम्बन्धी आवश्यकताएं। अनेकवादी सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति मौद्रिक और अमौद्रिक दोनों प्रकार की अभिप्रेरणाओं से प्रेरित होता है।

अभिप्रेरणा का अनेकवादी सिद्धान्त एकात्मक या द्वयात्मक सिद्धान्त का पूरक सिद्धान्त है और व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति में मौद्रिक एवं अमौद्रिक दोनों प्रकार की अभिप्रेरणाओं का महत्व स्थापित करता है। एकात्मक और अनेकवादी दोनों ही सिद्धान्त व्यक्ति को अधिकाधिक कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। अनेकतावादी सिद्धान्त के प्रवर्तक मैसलो थे जिनका आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त (Need of Hierarchy Theory) प्रबन्ध विज्ञान के क्षेत्र में काफी विख्यात है। इस सिद्धान्त का वर्णन हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं।

(3) सहभागिता सिद्धान्त (Participative Theory)—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस सिद्धान्त की मान्यता है कि कर्मचारी को संस्था या उपक्रम के प्रबन्ध में सहभागिता प्रदान करनी चाहिए क्योंकि कर्मचारी का उद्देश्य केवल मुद्रा कमाना ही नहीं होता बल्कि वह संस्था में अपनत्व की भावना का अनुभव भी करना चाहता है। यदि संस्था में काम करने वाले कर्मचारियों को संस्था के प्रबन्ध में सहभागिता दी गई अर्थात् संस्था के कार्य निर्धारण नीति निर्धारण आदि में शामिल किया गया तो वे इससे अधिकाधिक प्रेरित होंगे। रेंसिस लिकर्ट ने लिखा है समूह के सभी व्यक्तियों (प्रबन्धक सहित) के एम सम्बन्धों का विकास करना चाहिए ताकि वे आवश्यकताओं भावनाओं आकांक्षाओं मूल्यों तथा लक्ष्यों को सामान्य हित में देख सकें। इस प्रकार के सम्बन्ध अभिप्रेरणा के लिए आवश्यक हैं और उनका विकास सहभागिता प्रदान करने से ही सम्भव हो सकता है।

(4) कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षण सिद्धान्त या प्रतिरूप विचारधारा (Employee Centred Supervision Theory or Pattern Concept)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन रेंसिस लिकर्ट ने किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारी को प्राप्त होने वाला पर्यवेक्षण उसकी उत्पादकता सन्तुष्टि अभिप्रेरणा आदि को प्रभावित करता है। यदि कर्मचारी को पर्यवेक्षण अच्छा नहीं मिलता और वह सन्तुष्ट नहीं हो पाता तो वह प्रबन्ध द्वारा चाही गई उत्पादकता नहीं दे पाता

असमर्थ रहता है किन्तु यदि कर्मचारी को अच्छा पर्यवेक्षण प्राप्त होता है और वह सन्तुष्ट होता है तो उसकी उत्पादकता अभिप्रेरित होती है। कर्मचारी की इच्छा होती है कि उसकी समस्याओं का समुचित समाधान हो, उसे उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाए तथा उसे सामाजिक सुरक्षा मिले। यदि कर्मचारी अनुभव करता है कि संस्था की सम्पूर्ण व्यवस्था में वह एक मशीनी पुर्जा है तो उसके मन में भी आघात पहुँचता है जिससे उसकी उत्पादकता तथा सन्तुष्टि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वास्तव में सम्पूर्ण अभिप्रेरण पर पर्यवेक्षण पद्धति का अधिक प्रभाव होता है। रेंसिस लिकर्ट का सुझाव है कि नियोक्ताओं और पर्यवेक्षकों को कार्य केन्द्रित (Job Oriented) न होकर कर्मचारी केन्द्रित (Employee Oriented) होना चाहिए। कर्मचारियों के प्रति प्रबन्धकों का व्यवहार मानवीय तथा हितैषी होना चाहिए। कर्मचारियों को लक्ष्यों के निर्धारण, नीति निर्धारण आदि में सम्मिलित किया जाना चाहिए। उन्हें कार्य सम्बन्धी नियोजन में हित साध्य अधिकतम स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए।

(5) पथ-लक्ष्य सिद्धान्त (Path goal Theory)—इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जार्ज पोलस माहोरी एवं जोन्स (Georgo Poulous Mahorey & Jones) हैं। इसका सम्बन्ध उत्पादकता से है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति उस समय अधिक परिश्रम के लिए अभिप्रेरित होते हैं जब उनके सामने लक्ष्य पूर्णतः स्पष्ट हों और कठिन हों। यदि कर्मचारी उच्च उत्पादकता को अपनी लक्ष्य पूर्ति का पथ मान लेते हैं तो फिर वे उच्च उत्पादक बनने की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होते हैं। दूसरी ओर यदि वे निम्न उत्पादकता को अपने लक्ष्यों की पूर्ति का पथ मान लेते हैं तो वे निम्न उत्पादक बनने की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होते हैं। सारांशतः पथ लक्ष्य सिद्धान्त में कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए उत्पादकता पर अधिक बल दिया गया है। यह मान्यता है कि कर्मचारी की आवश्यकताएँ बहुत ऊँची हैं, उसके लक्ष्य बहुत प्रबल हैं तथा वह इच्छित मार्ग अपनाने में बाधाओं से मुक्त है।

(6) भय एवं दण्ड का सिद्धान्त (Fear and Punishment Theory)—यह सिद्धान्त अभिप्रेरणा का सबसे पुराना सिद्धान्त है जिसके अनुसार कर्मचारियों और श्रमिकों को भय दिखा कर या दण्ड देकर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित किया जा सकता है। यदि नौकरी से निकाल देने, पदावनति कर देने आदि का भय दिखाया जाए तो कर्मचारी घबरा जाएगा और तत्परता से कार्य करने से प्रेरित होगा। भय एवं दण्ड सिद्धान्त के समर्थक प्रायः यही सूत्र दोहराते रहते हैं या तो कार्य करो या चले जाओ, या न उत्तर दो और न प्रश्न करो, करो या मरो। इसीलिए इस सिद्धान्त को करो या मरो सिद्धान्त (Do or Die Theory) भी कहा जाता है।

है कि

अनेक ग्र.

एक निश्चित यूनतम सामा की पूर्ति न होने पर उसे दण्डित किया जाता है। दूसर शब्दो म उ ही कमचारियो का पुरस्कार दिया जाना चाहिए जिनका काय निष्पादन एक निश्चित न्यूनतम स्तर स ऊपर है और जिनका काय निष्पादन इस निश्चित न्यूनतम स्तर से नीचे है व दण्ड के पात्र हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त पुरस्कार का शतयुक्त बना देता है।

करट एव स्टिक सिद्धान्त भी एक परम्पर गत सिद्धान्त ही है जो तब तक उपयुक्त रहता है जब तक कि व्यक्ति की शारीरिक एव सुरक्षा सम्ब धी आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो जाती। किन्तु जब इन प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो जाती है तो यक्ति उनकी आवश्यकताओ (सामाजिक पद सम्मान मा यता प्राप्ति की चाह करता है और इस स्थिति म अभिप्ररण का यह सिद्धान्त अपना महत्त्व खो बठता है। मैक्ग्रगर के श द म करट तथा स्टिक का सिद्धान्त एक बार व्यक्ति क पर्याप्त जीवन निर्वाह स्तर तक पहुच जान के बाद काय न ी करता है क्योकि तब तक व्यक्ति मुख्यत उच्चतम आवश्यकताओ से अभिप्र रित होता है।

(9) व्यक्तिगत एव सगठनात्मक आवश्यकता सिद्धान्त (Individual and Organisation Need Theory of Motivation)—इस सिद्धा त के प्रतिपादन और विकास का श्रेय क्रिस आर्गिरिस को जाता है। इस सिद्धान्त की मा यता है कि व्यक्तिगत और सगठनात्मक आवश्यकताए अलग अलग होती हैं और स्वभावत एक यक्ति अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओ की स तुष्टि को प्राथमिकता प्रदान करता है। अत यक्तियो को काम के लिए अभिप्ररित करने हेतु सगठनात्मक आवश्यकताओ की तुलना म उनकी यक्तिगत आवश्यकताओ की स तुष्टि को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। दूसर शब्दो म नियोक्ता या प्रब धक यदि सस्था के कमचारियो की व्यक्तिगत आवश्यकताओ को पहल स तुष्ट नही करेंग तो व कमचारी न तो सस्था क उद्देश्यो की पूर्ति म अपना भरसक भाग देंग और न ही कुशलता से काय करन क लिए अभिप्रेरित होग।

आधुनिक प्रब ध विज्ञानो क मतानुसार व्यक्तिगत आवश्यकताओ की स तुष्टि के स्थान पर सगठनात्मक आवश्यकताओ की स तुष्टि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योकि आवश्यकताओ म यक्तिगत आवश्यकताए भी स्वत निहित हैं। व्यक्ति आखिर स गठन का भी एक अग होता है।

(10) आशा एव उपलब्धि सिद्धान्त (Expectation & Achievement Theory of Motivation)—यह सिद्धा त बतलाता है कि प्रत्येक यक्ति म अपनी कुछ आशाए होती ह जिनकी उपलब्धि का प्रयास वह करता है। यदि किसी यक्ति म आशाए नही है तो उनका सृजन करना चाहिए। यदि उपलब्धि आशा से कम होती है तो यक्ति को अभिप्र रण मिलता है। दूसरे श दो म आशा और महत्त्वाकाक्षाओ का अधिक बढ़ाना ठीक नही है क्योकि आशा और उपलब्धि मे

यदि अधिक स्तर हुआ तो व्यक्ति में निराशा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार आशा के अभाव या आशा के कम होने पर भी अभिप्रेरणा उत्पन्न नहीं होगा। सारांशत आशा और उपलब्धि में समुचित संतुलन होना चाहिए और अभिप्रेरणा समुचित रूप में उत्पन्न होती रहे।

अभिप्रेरणा के प्रत्येक सिद्धान्त का किसी न किसी दृष्टिकोण से अपना महत्त्व होता है। किसी न किसी अवसर पर या किन्हीं परिस्थितियों में कोई न कोई दृष्टिकोण अपनी उपयुक्तता प्रस्थापित करता है। एक श्रेष्ठ प्रबन्धक को अभिप्रेरणा के सभी सिद्धान्तों का ध्यान में रखना चाहिए और आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग करना चाहिए। सभी सिद्धान्तों के अच्छे तत्त्वों को देखते हुए व्यवहार में जो प्रबन्धक उनका सन्तुलित प्रयोग करता है वह अपने उद्देश्य में सफल ही होता है। परम्परागत सिद्धान्तों को ठुकराया नहीं जा सकता और व्यवहार में हम देखते हैं कि भय और दण्ड जैसे अति प्राचीन सिद्धान्त का भी प्रयोग अनेक अवसरों पर औद्योगिक या प्रशासनिक संगठनों में किया जाता है। पुरातन और नूतन दोनों को साथ लेकर उनका श्रेष्ठ संयोजन ही एक उपयुक्त मार्ग है।

अभिप्रेरणा के संयन्त्र अथवा विधियाँ

(Tools or Techniques of Motivation)

कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के विभिन्न साधनों अथवा विधियों में से निम्नलिखित विशेष महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि ये अभिप्रेरक साधन सभी वर्गों को किसी न किसी रूप के कार्य के लिए प्रेरित करते हैं—

(1) वेतन द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Pay)—आज के भौतिकवादी युग में हमारी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति मुद्रा द्वारा होती है अतः स्वाभाविक है कि अधिक वेतन या मजदूरी सभी कर्मचारियों को किसी न किसी कार्य के लिए प्रेरित करती है। संगठनों में विभिन्न पदों का वर्गीकरण वेतनमान के आधार पर होता है अर्थात् जिस व्यक्ति को जितना अधिक वेतन मिलता है उसका पद सोपान संगठन में उतना ही ऊँचा होता है। आज की औद्योगिक अशान्ति का मुख्य कारण अधिक वेतन की माँग है। यह इस बात का द्योतक है कि अधिक कार्य के लिए धन से प्रेरित होते हैं। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक समय मौद्रिक प्रेरणाएँ व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरित नहीं कर सकतीं—विशेष तौर पर जब उसकी आधारभूत आवश्यकताएँ भी सन्तुष्ट हो गई हों। अनेक बार देखने में आता है कि उचित वेतन या अधिक मजदूरी पाने के उपरान्त भी हड़तालें करते हैं क्योंकि तब वे अन्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना चाहते हैं यथा—आत्मसम्मान की चाहना, अनुमोदन की चाहना आदि। यहाँ मस्लो का यह सिद्धान्त लागू हो जाता है कि जब व्यक्ति की एक आवश्यकता पूरी हो जाती है तो दूसरी आवश्यकता उसे श्रम के लिए प्रेरित करेगी। डा. मामोरिया एवं दशोरा न

सन्तुलित विचार प्रगट करते हुए लिखा है कि— हम यह दावे के साथ कह नहीं सकते कि प्रबन्धकों को अधिक वेतन कार्य के लिए प्रेरित नहीं करता और श्रमिकों को सदैव अधिक मजदूरी कार्य के लिए प्रेरित करती है क्योंकि यह अनुमान लगाना कठिन है कि धन किस समय किस स्तर के व्यक्ति को किन परिस्थितियों में कार्य के लिए प्रेरित करता है। धन का प्रेरक तत्त्व समय परिस्थिति व्यक्ति की आर्थिक स्थिति शैक्षणिक स्तर मानसिक स्थिति वर्ग के स्तर आश्रित व्यक्तियों की संख्या आदि से प्रभावित होता है। आधुनिक प्रबन्ध प्रणाली में भृत्ति अभिप्रेरण पर अधिक बल दिया जाता है किन्तु भृत्तियाँ सदैव ही व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरित नहीं करती। किसी भी प्रणाली से तभी अभिप्रेरणा मिल सकती है जब श्रमिकों को इस बात का पूर्ण विश्वास हो जाए कि भविष्य में दी जाने वाली भृत्ति में कटौती नहीं की जाएगी उसे कार्य अधिक तेज गति से नहीं करना पड़ेगा तथा कार्य सम्पूर्ण हो जाने पर उसकी सेवा निवृत्ति नहीं की जाएगी।

2 कार्य सुरक्षा द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Job security)— कर्मचारी कार्य सुरक्षा द्वारा अभिप्रेरित होते हैं। सभी कर्मचारी चाहते हैं कि उन्हें न केवल एक निश्चित समय पर निश्चित वेतन मिलता रहे वरन् उनकी नौकरी भी स्थाई और सुरक्षित रहे। व्यवहार में यह देखा गया है कि प्रबन्ध वर्ग की तुलना में श्रमिक वर्ग कार्य सुरक्षा को अधिक महत्त्व देते हैं क्योंकि श्रमिक वर्ग प्रायः अशिक्षित और अकुशल और गरीब होते हैं। उच्च प्रबन्ध वर्ग के लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं प्रायः कार्य सुरक्षा को अधिक महत्त्व नहीं देते तथा एक संस्था को छोड़कर दूसरी संस्था की ओर उच्च पद की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। दूसरी ओर सामान्य कर्मचारी अपनी संस्था में कार्य सुरक्षा के लिए लालायित रहते हैं। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में जहाँ अर्द्ध बेरोजगारी और बेरोजगारी निरन्तर बढ़ती जा रही है सभी प्रकार के कर्मचारियों और श्रमिकों के लिए कार्य सुरक्षा एक महत्त्वपूर्ण प्रेरक है। अतः सर्वोवर्गीय प्रबन्धकों को इस दिशा में सचेत रहना चाहिए। नौकरी की गारंटी देकर नियमित रूप से कार्य प्रदान करके बेरोजगार कर्मचारियों का अन्य प्रकार का कार्य देकर बाजार में मन्दी आने पर भी रोजगार की सुरक्षा देकर स्वचालित मशीनों के उपयोग और अभिनवीकरण के उपरान्त भी रोजगार प्रदान कर श्रमिकों को कार्य सुरक्षा दी जा सकती है कार्य सुरक्षा से अभिप्रेरित श्रमिक संगठन के प्रति निष्ठावान रहते हैं।

3 कुशल नेतृत्व द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Efficient Leadership)— कुशल नेतृत्व अधीनस्थों के लिए अच्छी अभिप्रेरणा का काम करती है। इससे कर्मचारियों को विश्वास और प्रेम मिलता है। प्रबन्धकों का दायित्व है कि वे अपने अधीनस्थों की कठिनाइयों को ध्यान से सुनें और उन्हें दूर करने के अविलम्ब प्रयत्न करें। इससे अधीनस्थ अभिप्रेरित होते हैं वे लगन निष्ठा तथा परिश्रम से कार्य करते हैं।

4 लक्ष्यों द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Goals)—प्रबन्धकों से अपेक्षित है कि वे अधीनस्थों को संस्था के लक्ष्यों और उद्देश्यों के बारे में समुचित जानकारी प्रदान करें और यह स्पष्ट कर दें कि संस्था के लक्ष्यों की पूर्ति में उनके स्वयं के लक्ष्यों की पूर्ति निहित है अर्थात् संस्था और कर्मचारी के लक्ष्य एक हैं—उनमें चोली दामन का साथ है। ऐसा होने पर अधीनस्थ लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित हो उठेंगे क्योंकि उनमें यह आशा जगी रहेगी कि संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति पर वे किसी न किसी रूप में पुरस्कृत होंगे।

5 चुनौती द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Challenge)—जो व्यक्ति कुशल होते हुए भी कार्य के प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं उन्हें जोश दिलाकर काम के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। जोश दिलाने पर वे चुनौती को स्वीकार करके अपनी पूर्ण क्षमता से काय के लिए प्रेरित हो उठते हैं। चुनौती अभिप्रेरणा की वह विधि है जो कर्मचारी की आन्तरिक योग्यता को बाहर ले आती है। चुनौती को स्वीकार करने और तदनुसार पूर्ण क्षमता से काय करने में कर्मचारी गर्व का अनुभव करते हैं। चुनौती द्वारा अभिप्रेरणा देते समय प्रबन्धकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि जो भी पुरस्कार आदि घोषित किया जाए उसे काय एवं निष्पादित होते ही अविलम्ब दे दिया जाए।

6 प्रशंसा एवं मान्यता द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Praise and Recognition)—अभिप्रेरणा की इस विधि से कर्मचारी की आत्मतुष्टि होती है और उसका मनोबल बढ़ता है। प्रत्येक कर्मचारी की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसके काय की प्रशंसा की जाए। प्रबन्धक अपने अधीनस्थ कर्मचारी की प्रशंसा करके उसका उत्साह बढ़ा सकता है और उससे अधिक काय ले सकता है। जब कर्मचारी अच्छा काय करते हों तो पर्यवेक्षक को मौन बने रहना या हर समय गलतियों के लिए दोषी ठहराना उचित नहीं है। होना यह चाहिए कि पर्यवेक्षक उसकी प्रशंसा करते हुए उस गलती सुधार के लिए सुझाव दे। यदि कर्मचारी के अच्छे काय की प्रशंसा समूह के समक्ष की जाती है तो इससे कर्मचारी का आत्म विश्वास और आत्म सम्मान बढ़ता है और वह स्वतः ही काय के लिए प्रेरित होता है। काय के सफल निष्पादन पर पर्यवेक्षक कर्मचारी या श्रमिक की अनेक रूपों में प्रशंसा कर सकता है यथा—(क) धन्यवाद बहुत अच्छे शाबाश आदि शब्द कहकर (ख) पीठ थपथपाकर (ग) अधिक रुचिकर काय देकर प्रशंसा पत्र देकर (घ) वेतन वृद्धि की सिफारिश करके (ङ) पदोन्नति देकर (च) अतिरिक्त लाभ या पुरस्कार या बोनस आदि देकर (छ) विशिष्ट कायकर्ताओं की सूची (Honour s Board) में नाम देकर आदि।

7 दण्ड द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Punishment)—इस विधि का प्रयोग बहुत आवश्यक होने पर ही किया जाना चाहिए। अनुशासन की दृष्टि से

यद्यपि प्रशसा और दण्ड दोनो पर्चालित विधियां हैं कि तु प्रशसा विधि दण्ड विधि की तुलना मे अधिक प्रभावी होती है क्योकि प्रथम विधि आशा और उत्साह का सचार करती है जबकि दूसरी विधि निराशा उ पन्न करती है। वास्तव म दण्ड का प्रावधान विशेष अपराध के लिए होना चाहिए छोटे मोटे कारणो के लिए दण्डित करना उपयुक्त नही है। सामा य कारणो पर दण्ड कमचारी मे निराशा और विद्रोह की भावना पैदा करता है।

8 काय के प्रतिफल पूव जानकारी द्वारा अभिप्र रणा Motivation by Pre knowledge of Results) —यदि कमचारी को उसके द्वारा किए जा रहे काय की सफलता की जानकारी समय समय पर दी जाती रहे तो यह जानकारी एक शक्तिशाली प्रेरक सिद्ध होगी। काय प्रोत्साहन तथा काय निष्पादन के लिए सही मागदशन तथा किए जा रहे काय का अवलोकन श्रमिक म आ म विश्वास जाग्रत करता है।

9 स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा द्वारा अभिप्र रणा (Motivation by Sound Competition)—यह अभिप्र रणा की एक प्रमुख तकनीक है। काय निष्पादन कौशल वस्तु किस्म सुधार आदि की दृष्टि से स्वस्थ अथवा विशिष्ट प्रकार की प्रतियोगिता होड) श्रमिको तथा अ य सभी प्रकार के कमचारियो म होनी चाहिए और जो व्यक्ति तुलना मक दृष्टि स अधिक सफल सिद्ध हो उस सर्वोत्तम पुरस्कार दिया जाना चाहिए। स्वस्थ प्रतियोगिता विक्रय उत्पादन सुरक्षा आदि सभी क्षेत्रो म हो सकती है। यह प्रतिस्पर्द्धा सामूहिक प्रयासो को भी अभिप्र रित करती है जसा कि हम प्राय खेल के म दान मे अनुभव करत हैं। जब किसी उपक्रम को अ य उपक्रमो स प्रतियोगिता का सामना करना पडता है तो उपक्रम के सभी कमचारी एकजुट होकर प्रतिस्पर्द्धा मे विजय पाने के लिए अपनी पूण क्षमता से काय करते है। प्रतियोगिता द्वारा प्रतिस्पर्द्धा की विधि इस दृष्टि से कुछ दोषपूण है कि इसमे आपसी वमनस्य उ पन्न होने के अवसर विद्यमान रहते हैं। प्रतियोगिता म पराजित व्यक्ति निराश हो जाता है और यह भी हो सकता है कि अधिक प्रतियोगिता से कायकर्त्ताओ का नतिक पतन हो जाए। अत इन दोषो के बारे म समुचित सावधानी रखी जाना आवश्यक है।

10 काय मे सहभागिता द्वारा अभिप्र रणा (Motivation by Participation in Work)—जब कमचारी सस्था के नीति निर्माण निणय प्रक्रिया आदि मे भाग लेते हैं तो वे स्वय को प्रब ध का ही एक भाग समझने लगते हैं जिससे उनकी आ म तुष्टि होती है और वे काय के प्रति अधिक उत्साह प्रदर्शित करते हैं। प्रब ध अपने कमचारियो स विभिन्न क्षेत्रो म सहयोग प्रा त कर सकता है यथा—उत्पादन विधियाँ सुरक्षात्मक और लागत कम करने सम्ब धी उपाय कायकारी सम्ब ध म सुधार कमचारियो के सम्ब ध म नीति निर्धारण सामान वहन प्रणाली आदि। सहभागिता

के अनेक रूप हो सकते हैं यथा सनाहकारी पयवे रण श्रमिक प्रब घ सहयोग सुभाव कायक्रम प्रजातन्त्रीय पयवेक्षण आदि।

11 परिवतन द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Change)—कुछ ऐस अवसर भी उपस्थित हो सकते हैं कि कमचारी की प्रवृत्ति म परिवतन लाने के लिए प्रबन्धक को स्वय अपनी प्रवृत्ति म परिवतन करना पडता है। इस परिवतन द्वारा अभिप्रेरणा कहा जाता है। उदाहरणाथ यदि कार्यालय म अधिकारी देरी स आता है तो अधीनस्थ म भी देरी से आने की आदत पड जाती है और इस आदत या प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए अधिकारी स्वय समय पर आने लगता है।

12 आकषण द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Attraction)—कमचारियो को अच्छा काम करने के प्रति आकषण प्रदान करके अभिप्रेरित किया जा सकता है। जो कमचारी अच्छा काम करें या समय-पूव ही काय पूरा कर दें उनको प्रशसा देकर उनके काय को मान्यता देकर उन्हें पुरस्कृत कर अभिप्रेरित किया जा सकता है। ये विभिन्न आकषण हैं जो व्यक्ति को अच्छा काय करने को अभिप्रेरित करते हैं।

13 स्तर एव अभिमान द्वारा अभिप्रेरणा (Motivation by Status and Pride)—अभिप्रेरणा की इस विधि को डा मामोरिया एव दशोरा ने बडी अच्छी तरह स्पष्ट किया है—

स्तर से तात्पर्य व्यक्ति की सामाजिक स्थिति से है। अभिप्रेरणा का माध्यम होने के नाते स्तर का अथ महत्त्वाकांक्षा तथा सामाजिक मान्यता दृष्टियो से लिया जाता है। व्यक्ति समाज म प्रतिष्ठा प्राप्त करने की कामना रखता है। उस अन्य व्यक्तियो स सम्मान मिलता रहे तो वह अधिक प्रसन्नता अनुभव करता है एव मानसिक तृषा की सन्तुष्टि होती है।

प्रबन्ध सगठन म विभिन्न स्तर बनाकर कमचारियो को यथोचित सम्मान देता है। जैसे प्रबन्धक के लिए अधिक आरामदायक कुर्सी अच्छा सुसज्जित कमरा विक्रयकर्त्ता के लिए सामान्य नक्की की लगान लगी मेज और बेंत वाली कुर्सी स्टेनोग्राफर एव टकण लिपिक के लिए विशिष्ट बठने की व्यवस्था आदि प्रदान किए जाते हैं।

व्यक्ति एक निश्चित स्तर प्राप्त करने की चेष्टा करता है और अपने इच्छित स्तर प्राप्त हो जाने पर वह अधिक उच्च स्तर प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है। अच्छे काय निष्पादन एव श्रेष्ठ प्रयास के लिए प्रबन्धक व्यक्तियो को प्रेरित कर सकता है। समान स्तर के व्यक्ति समान सुविधाए चाहते हैं अत समान व्यवस्था होनी चाहिए जसे चपरासी अलग कमरा निजी तार की व्यवस्था जिसमे गोपनीय आलेख रखे जा सकें तथा आरामदायक फर्नीचर आदि।

स्वाभिमान का उद्गम किसी विशिष्ट प्रणाली पर आधारित नहीं है। अच्छा व्यवहार म धुर उत्पादन गत्यात्मक नतृत्व समाज सेवा नतिक आचरण

प्रादि कई तत्व व्यक्ति को स्वाभिमानी बनाने के लिए प्र रित करते हैं। कम्पनी के किसी भी कमचारी से बात करने पर पता लग जाता है कि कम्पनी के प्रति उसके विचार कैसे हैं। वह उस कम्पनी विशेष का कमचारी होने के नाते स्वाभिमान अनुभव करता है अथवा नहीं। वह कम्पनी के आदर्शों और अच्छे गुणों के कारण स्वय गौरवान्वित अनुभव करता है या नहीं। स्वाभिमान जाग्रत होने पर उत्पादन म लाभ होता है।

14 मानवीय व्यवहार द्वारा अभिप्र रणा (Motivation by Human Behaviour)—प्रब धकों को अपने अधीनस्थों के साथ मानवीय व्यवहार करके उन्हें अभिप्र रित करना चाहिए। प्रब धकों को यह समझना चाहिए कि श्रमिक अपना श्रम बेचता है स्वय को नहीं। कमचारी स्तर म कितना भी छोटा क्यों न हो वह अपने अधिकारी से सद्व्यवहार की कामना करता है इसम उसे सन्तुष्टि मिलती है और वह काय के प्रति निष्ठा तथा गौरव का अनुभव करता है।

मनोबल अथ एव परिभाषाए
(Morale Its Meaning and Definitions)

मनोबल (Morale) का श कोषीय अथ काय के प्रति विश्वास तथा रुचि सम्ब धी भावना एव श्रेष्ठ विचारधारा से है। यह वह आन्तरिक शक्ति है जो किसी व्यक्ति को काय के लिए प्र रित करती है। 1930 म मानवीय सम्ब ध श द की उत्पत्ति से पूव मनोबल श द का ही अधिकाशत प्रयोग किया जाता था। मनोबल किसी भी प्रशासनिक या औद्योगिक सगठन का वह आधार स्तम्भ है जिसके सहारे उसकी समस्त क्रियाए सचालित होती हैं। कमचारियों का उच्च मनोबल किसी भी उपक्रम की सफलता के लिए आवश्यक है। सगठन अथवा उपक्रम का निर्देशित पथ प्रदर्शन एव पयवेक्षित करने के लिए सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा जो कदम उठाए जाते हैं उनका सगठन के मनोबल पर गहरा प्रभाव पडता है। मनोबल को एक प्रकार से सगठन की जीवन शक्ति कह सकते हैं जिसके बिना समस्त प्रब धकीय क्रियाए निर्जीव रूप म सचालित होती रहती है।

मनोबल से आशय मन के बल अथवा आन्तरिक बल से है जिसके माध्यम से कार्य व्यक्ति काय करने के लिए प्र रित होता है। यदि प्रतिष्ठान म कमचारी समय पर आते हैं ईमानदारी से अपना काय निष्पादन करते हैं काय म आने वाले अवरोधों को तुरन्त दूर करने की चेष्टा रखते हैं अधिकारियों के आदेशों का अनुपालन करते हैं तो यह माना जाता है कि उस प्रतिष्ठान के कमचारियों या श्रमिकों का मनोबल ऊचा है। इसके विपरीत स्थितियाँ होने पर यह कहा जाएगा कि कमचारियों का मनोबल नीचा अथवा गिरा हुआ है। इस प्रकार 'उच्च मनोबल' (Higher Morale) वह सुनिश्चित स्थिति है जिसम सामूहिक प्रयास के लिए

पूर्ण सहयोग पाया जाता है। औद्योगिक जगत् म विभिन्न अध्ययनो से यह सामान्य मत प्रतिपादित हुआ है कि प्रतिष्ठान के पक्ष मे विचार रखने वाले कमचारी साधारणत अधिक अच्छे कमचारी (Better Employees) होते हैं और उनका मनोबल उच्च होता है।

मनोबल को विद्वानो ने विभिन्न रूप से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

फिलप्पो के अनुसार— मनोबल वह मानसिक स्थिति अथवा व्यक्तियो तथा समूहो की अभिवृत्ति है जो उनकी सहयोग करने की स्वच्छा का निर्धारण करती है।

स्टाऊपर एव बुचानन के अनुसार— मनोबल को किसी समूह या सगठन के कार्यों एव उद्देश्यो की प्राप्ति म सक्रिय सहयोग देने की तत्परता के रूप म व्यक्त किया जाता है।

विलियम आर स्प्रीगल के शब्दो म मनोबल का आशय बहुत से व्यक्तियो के जो आपस म किसी आधार पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं सहकारी दृष्टिकोण या सामूहिक मानसिक अवस्था से है।

न्यटन के मत मे मनोबल व्यक्तियो के समूह की एक ऐसी क्षमता है जो सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति हेतु निरन्तर एव अन्तिम काय करने को प्रेरित करती है।

डी एफ एल ब्रचक शब्दो म मनोबल को किसी समूह या सगठन के कार्यों तथा उद्देश्यो की प्राप्ति म सक्रिय सहयोग देने की तत्परता के रूप म व्यक्त किया जा सकता है।

वारवेन के अनुसार मनोबल शिथिलता से रोजगार के प्रति कमचारियो की अभिवृत्तियो के सम्मिलन के रूप म परिभाषित किया जाता है। कमचारी अपने कृत्यो काय दशाओ पयवेक्षको कम्पनी वतन और रोजगार के अन्य पहलुओ के सम्बन्ध म सोचते ह या महसूस करते ह उन सबको यह (मनोबल) एक सश्लेषण (Synthesis) है या उन सबको एक साथ प्रस्तुत करना है। इस प्रकार परिभाषित करने से मनोबल शब्द म वयक्तिक और सामूहिक मनोबल सम्मिलित होता है।

डल योडर के अनुसार मनोबल रोजगार के प्रति कमचारियो की अवस्थाओ— उनके वयक्तिक कृत्यो जिनके साथ वे काय करते हैं उनके पयवेक्षको उनके सघ काय की दशाओ और सम्पूर्ण रोजगार के प्रति एक सश्लेषण की तरह माना गया है।

जान एफ मी के शब्दो म कमचारी अथवा समूह का अच्छा मनोबल व्यक्ति तथा समूह के मानसिक व्यवहार का द्योतक है जिससे कर्मचारी यह अनुभव करने लगता है कि उसके सन्तोषप्रद कार्यों एव कम्पनी के उद्देश्यो की पूर्ति मे तालमेल है दूसरे शब्दो म कमचारी कम्पनी तथा स्वय के हित एक साथ देखने लगता है और वह केवल कम्पनी के आदेशो का पालन करने तक ही सीमित नही रहता।

मनोबल का इन विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि मनोबल शब्द में वैयक्तिक और सामूहिक मनोबल सम्मिलित हैं। मनोबल वह उत्साह अनुभूति और साहस है जिससे व्यक्ति अथवा समुदाय प्रेरित होकर अधिक कार्य करते हैं। मनोबल कर्मचारी की शक्ति विश्वास स्वाभिमान और लगन का प्रतीक है। मनोबल में उच्च और निम्न दोनों ही तरह के मनोबल सम्मिलित हैं।

मनोबल की विशेषताएं
(Characteristics of Morale)

मनोबल के अर्थ और उसकी परिभाषाओं के अध्ययन से इसकी निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं जो इसकी प्रकृति का बोध कराती हैं—

1 **वैयक्तिक एवं सामूहिक**—मनोबल में वैयक्तिक और सामूहिक दोनों तरह के मनोबल सम्मिलित हैं। वैयक्तिक मनोबल उस दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है जो एक कर्मचारी अपनी संस्था के प्रति रखता है। दूसरे शब्दों मे इसका अभिप्राय उस सन्तुष्टि से है जो कर्मचारी को अपने कार्य से तथा कार्य करने वाले समूह का सदस्य होने से प्राप्त होता है। सामूहिक मनोबल का दृष्टिकोण अधिक व्यापक है। यह कार्य करने वाले सम्पूर्ण समूह की सन्तुष्टि पर बल देता है। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि वैयक्तिक मनोबल द्वारा ही सामूहिक मनोबल का उदय होता है।

2 **उच्च एवं निम्न**—मनोबल दो भागों में वर्गीकृत है—(क) उच्च एवं (ख) निम्न। उच्च मनोबल को अभिव्यक्त करने के लिए सामान्यतया समूह भावना (Team Spirit) जोश या उत्साह टिके रहने का गुण नैराश्य प्रतिरोध आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में यदि व्यक्ति या समूह बिना विवाद या कलह के टीम की भावना से या जोश से अपना कार्य सम्पादित करते हैं और उनमें कार्य करने की चाह झलकती है तो मनोबल उच्च माना जाता है। निम्न मनोबल को अभिव्यक्त करने के लिए सामान्यतया विवाद उदासीनता निराशा आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उच्च मनोबल तस्वीर के धनात्मक (Positive) पहलू को और निम्न मनोबल ऋणात्मक (Negative) पहलू को अभिव्यक्त करता है।

3 **मानसिक अवस्था**—मनोबल व्यक्तियों और समूहों की मानसिक अवस्थाओं का सूचक है।

4 **मानसिक तत्त्व**—मनोबल उत्साह भावना विश्वास आशा आदि मानसिक तत्त्वों पर आधारित है।

5 **सम्पूर्ण वातावरण**—मनोबल किसी वर्ग समुदाय या समाज के सदस्यों में व्याप्त समग्र वातावरण को अभिव्यक्त करता है।

6 मनोबल किसी सामूहिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी व्यक्ति-समूह की दृढ़तापूर्वक और निरन्तर एक साथ काम करने की इच्छा है।

मनोबल की विशेषताओं पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। डेल योडर का विचार है कि प्रविकांश नियोक्ता या प्रबन्धक उत्पादकता (Productivity) और किस्म (Quality) को उच्च मनोबल के साथ सम्बन्धित करते हैं ताकि कर्मचारियों के मनोबल का विकास एवं अनुरक्षण सम्भव हो सके।[1] डेल योडर ने उच्च मनोबल को कर्मचारी अथवा श्रमिक समूह की उस मस्तिष्कावस्था से सम्बन्धित किया है जो समूह गतिविधियों तथा समूह कार्यों के प्रति उत्साही और मैत्रीपूर्ण दृष्टिगत होती है। इसके विपरीत यदि समूह असन्तुष्ट असावधान सुस्त अथवा निराशावादी हो तो यह उसके निम्न मनोबल का सूचक है। कीथ डेविस का अभिमत है कि उच्च मनोबल एक सुप्रबन्धित संगठन का प्रतीक है जिसे प्रत्यक्ष अथवा खरीदा नहीं जा सकता है।[2] निम्न मनोबल के सूचक तत्व हड़तालें शिथिल कार्य अनुपस्थिति आदि हैं। क्रेच एवं क्रचफील्ड (Krech and Crutchfield) ने उच्च मनोबल के प्रतीकों की एक सूची प्रस्तुत की है जिसे सार रूप में प्रार सी अग्रवाल ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—(1) समूह के लिए केवलमात्र बाह्य दबावों के कारण नहीं बल्कि आन्तरिक संशक्ति (Cohesiveness) के कारण एक साथ रहने की प्रवृत्ति (2) सदस्यों के विरोधी वर्गों में विभाजित होने की प्रवृत्ति का प्रभाव (3) परिवर्तित स्थितियों के साथ मेल जोल करने एवं आन्तरिक झगड़ों को निपटाने की समूह की योग्यता (4) समूह के सदस्यों के (संगठन से सम्बन्धित) हानि की भावना (5) समूह के सदस्यों के बीच लक्ष्यों की सामुदायिकता (Community) (6) समूह के उद्देश्यों एवं नेतृत्व के प्रति सदस्यों की धनात्मक अभिवृत्ति एवं (7) समूह के सदस्यों का समूह को बनाए रखने एवं उसके धनात्मक मूल्यों के प्रति सम्मान की इच्छा।

मनोबल महत्त्व एवं प्रभाव या परिणाम

(Morale Its Importance and Effects or Consequences)

मनोबल प्रत्येक संगठन या संस्था का मानसिक बल है उसका आवश्यक तत्त्व है। उच्च मनोबल संगठन को सफलता की ओर अग्रसर करता है जबकि निम्न मनोबल संस्था के विकास में बाधक होता है। एक सैनिक संगठन मनोबल के आधार पर हार या जीत में बदल सकता है व्यापारिक तथा प्रशासनिक संगठनों में मनोबल वह केन्द्र बिन्दु है जिससे प्रशासन की सभी रेखाएं प्रसारित की जाती हैं।

मनोबल के महत्त्व को उसके प्रभावों और परिणाम के सन्दर्भ में अच्छी तरह समझा जा सकता है। चूंकि मनोबल दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है—(क) उच्च मनोबल एवं (ख) निम्न मनोबल। अतः यह स्वाभाविक है कि हम दोनों मनोबलों के महत्त्व और प्रभाव को अलग अलग देखें।

1 *Dal Yoder* Op cit pp 58 59

2 *Keith Davis* Op cit p 445

(क) उच्च मनोबल के प्रभाव या परिणाम
(Effects of High Morale)

किसी भी सस्था म यदि कमचारी अनुशासित रहते हैं अधिकारिया के आदेश का अनुपालन करते हैं आशावादी और प्रसन्नचित्त हैं तो इस प्रकार की बातें उच्च मनोबल का प्रतीक हैं। उच्च मनोबल के मुख्यतया निम्न प्रभाव होते हैं—

1 इससे श्रमिको की बदली (Turnover) म कमी आती है। सामग्री का अपव्यय कम होता है श्रमिको द्वारा हडताल या तालाबन्दी आदि कायवाहिया कम हो जाती हैं। औद्योगिक विवाद नहीं पनपते श्रमिको की परिवेदनाए बहुत कम या नाम मात्र की रह जाती ह श्रमिका पर पयवेक्षण काय की आवश्यकता घट जाती है उपक्रम का वातावरण मधुर और प्ररणादायक बन जाता है तथा श्रमिका की कायकुशलता और जीवन स्तर का विकास होता है।

2 कमचारी अपने दायित्वा का पालन करने म प्रसन्न होत हैं और जटिल स जटिल काय स भी नहीं घबराते। सगठन के कार्यों का सफल सचालन ही उन्हें सन्तोप देता है। वे सगठन के प्रति गौरव की अनुभूति करते हैं और सगठन या उपक्रम क लक्ष्यो को अपना लक्ष्य मानकर चलते हैं। उद्योग क कमचारिया म जब उच्च मनोबल होता है तो वे इस प्रकार के आन्दोलनो से प्रभावित नही होते जसे— कम काम करो नियमानुसार काम करो सीट पर बठ रहो आदि।

3 उच्च मनोबल समूह के उद्दश्य तथा नेता के नेतृत्व म विश्वास जाग्रत करता है सदस्या का एक दूसरे के प्रति सहयोग बनाता है सदस्या के मानसिक शारीरिक एव भावात्मक स्वास्थ्य म वृद्धि करता है तथा सगठन मे कायकुशलता लाता है।

4 सगठन म मनोबल का ऊचा स्तर कमचारिया में सहयोगी भावना का प्रसार करता है। सामूहिक काय (Team Work) और मनोबल समानाथक होते हुए भी एक नहीं हैं। मनोबल का अथ एक समूह के विभिन्न दृष्टिकोणा से है जबकि सामूहिक काय एक छोटे समूह द्वारा घनिष्ठता के साथ और समन्वित रूप म किए गए काय की ओर सकेत करता है। श्रष्ठ मनोबल सामूहिक काय की स्थापना का कारण बन जाता है अत यह माना जाता है कि कमचारी पूरी तरह मिल जुलकर काम कर सकेंगे किन्तु यह भी सम्भव है कि उच्च मनोबल के होते हुए भी एक समुदाय के लोग टीम भावना से काय न करें।

5 जिस सगठन के कमचारियो का मनोबल ऊचा होता है उनम अपने सगठन के प्रति गौरव की अनुभूति होती है जिसके फलस्वरूप वे सगठन के लक्ष्या का अपना लक्ष्य मानकर चलते हैं।

आर सी डेविस के अनुसार उच्च मनोबल से किसी भी सस्था या उपक्रम म निम्नलिखित प्रभाव उत्पन्न होने चाहिए[1]—

1 सगठन के उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु स्वच्छिक सहयोग।
2 श्रेष्ठ अनुशासन और नियमो व्यवस्थाओ तथा आदेशो का स्वच्छिक अनुपालन।
3 सगठन तथा नेतृत्व के प्रति वफादारी।
4 सगठन के प्रति गौरव।
5 कर्मचारियो के पहलपन का उचित और प्रभावपूर्ण प्रदान।
6 सुदृढ़ सगठनात्मक क्षमता या कठिन समय म सगठन को उबारने की चेष्टा और योग्यता।
7 सगठन तथा कार्यों में कर्मचारियों की बढ़ी हुई रुचि।

एम एस वाइटल्स (M S Vitales) ने उच्च मनोबल के महत्त्व को इगित करते हुए लिखा है कि उच्च मनोबल महत्त्वपूर्ण है क्योकि उत्पादकता तथा क्रियाओ का कुशल सचालन श्रमिको के सहयोग पर निर्भर करता है। औद्योगिक मतभेद निम्न मनोबल के कारण उत्पन्न होते हैं अत निम्न मनोबल के प्रभावो को समाप्त करने के लिए उच्च मनोबल का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। किसी भी प्रतिष्ठान की सफलता के लिए आवश्यक है कि उच्च मनोबल के लिए उपयुक्त वातावरण तयार किया जाए। यह जरूरी है कि उच्च अधिकारी अपने दायित्वो एव कार्यों का ज्ञान रखते हो दायित्वो की स्पष्ट व्याख्या हो स्पष्ट नीति का निर्धारण हो नीति के क्रियान्वयन म भ्रम पदा होने की गु जाइश न हो उच्च और सहायक अधिकारियो म मतभेद पदा न हो मध्यस्तरीय तथा पर्यवेक्षण स्तर के प्रबन्धको का अभाव न हो आदि।

(ख) निम्न मनोबल के प्रभाव या परिणाम

(Effects of Low Morale)

जब कर्मचारियो का मनोबल गिरा हुआ होता है तो सगठन म अनेक दोष पैदा हो जाते हैं। यदि कर्मचारी उदासीन हैं झगडालू प्रकृति के हैं अनुशासनहीन हैं कार्य के प्रति रुचि नहीं रखते ह आलोचक और विरोधी ह तो यही माना जाता है कि कर्मचारियो का मनोबल निम्न है।

डा विलियम आर स्प्रीगल (William R Spri gel) ने निम्न मनोबल के प्रभाव अथवा परिणाम इस प्रकार बताए हैं—

1 उत्पादकता म कमी आती है।
2 अनुपस्थितिया बढती है।

1 R C Davis The Fundamentals of Top Management p 552

3 नियमो तथा पयवक्षरण काय मे विरोध उत्पन्न होता है।
4 शिकायतो परिवेदनाओ आदि म वृद्धि होती है।
5 कमचारियो मे मन मुटाव होता है।
6 श्रमिको की बदली मे वृद्धि होती है।
7 दुघटनाए बन्ती हैं।
8 अधिक मदिरापान से बीमारियो म वृद्धि हानी है।

स्पष्ट है कि मनोबल एक सस्था का प्राण है उसकी जीवन शक्ति है। कीथ डविस ने मनोबल के महत्व को इगित करते हुए ठीक ही लिखा है कि जिस प्रकार औरत की शक्ति का अनुमान कभी भी कम न ी लगाना चाहिए उसी प्रकार मनोबल की शक्ति का अनुमान भी कभी कम न ी लगाना चाहिए।

मनोबल को प्रभावित करने वाले तत्व
(Factors affecting Morale)
अथवा
मनोबल के निर्धारक तत्व या घटक
(Morale Determinants)

किसी भी सस्था अथवा उपक्रम म मनोबल को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व होते ह। प्राय कहा जाता है कि मनोबल को प्रत्येक चीज प्रभावित कर सकती है—कुछ की तीव्रता अधिक होती है कुछ की सामा य और कुछ की बहुत ही कम। प्राय मनोबल को प्रभावित करने वाले या उसके निर्धारक तत्वो मे निकटतम पयवक्षरण (Immediate Supervision) सगठन के काय (Company Opera tion) व्यक्तिगत पुरस्कार (Per onal Reward) काय-सन्तुष्टि (Job Satis-faction) काय की मनोवैज्ञानिक दशाए (Psychological Conditions of Work) काय के सम्ब घ (Work Relations) सगठन म एकीकरण (Integra tion in the Organisation) आदि को सम्मिलित किया जाता है।

फिलप्पो (Flippo) ने मनोबल को प्रभावित करने वाले घटको मे निम्न को सम्मिलित किया है[1]—

(1) वेतन (Pay) (2) सुरक्षा (Security) (3) किए गए काय की प्रसिद्धि (Credit for work done) (4) काय दशाए (Working Conditions) (5) उचित एव योग्य नेतृत्व (Fair and Competent Leadership) (6) अवसर (Opportunity) (7) सहयोगियो की अनुकूलता (Congeniality of Associates) (8) कमचारी लाभ (Employee Benefits) (9) सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Status) तथा (10) उचित तीव्रता (Worthwhile Activity)।

1 Edwin B Flippo P nc pl s of Person el M nagement p 438

डा नेग्न ने मनोबल की मेज के पाँच पाए बताए है। ना लेग्न के विवरण के सारांश को प्रस्तुत करते हुए मामोरिया एव दशोरा ने लिखा है—विस्तृत रूप म मनोबल पाँच मुख्य घटकों पर आधारित है जिनका विद्यमान होना अथवा न होना विभिन्न परिस्थितियो पर निर्भर करता है। मनोबल एक ऐसी मेज है जिसके पाँच पाए हैं जिसके एक भी पाए के टूटने पर वह भली भाति खडी नहीं रह सकता—

(1) समूह के प्रत्येक सदस्य का समूह के उद्देश्यो म विश्वास।

(2) समूह के प्रत्येक सदस्य का नेतृत्व के सभी स्तरो मे इस विश्वास—अर्थात् नेतृत्व की योग्यता म विश्वास तथा नेतृत्व म सीधा सम्पर्क।

(3) समूह के प्रत्येक सदस्य का दूसरे समूहो म इस विश्वास अर्थात् एक ऐसी धारणा कि वे सभी समूहो के प्रति स्वामिभक्त हैं तथा उनकी कठिनाइ म अन्य लोग भी सहयोग करेंगे।

(4) समूह के प्रत्येक सदस्य का समूह म इस विश्वास अर्थात् मानसिक, भावनात्मक भौतिक तथा काय की दशाओ म इस विश्वास।

(5) प्रबन्धात्मक योग्यता म दृढ विश्वास के अन्तर्गत दो बातें सम्मिलित की जाती हैं—

(अ) संगठन की स्थिति प्रबन्धन एव आदेश प्रदान करने की विधियाँ सम्प्रेषण प्रणाली तथा मानव पूर्ति की विधियाँ।

(ब) प्रत्येक संगठन म एक अनौपचारिक संगठन होता है जो औपचारिक संगठन की भाँति ही महत्त्वपूर्ण होता है। कई बार अनौपचारिक संगठन अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि जिन अवस्थाओ म औपचारिक संगठन निष्फल हो जाते हैं अनौपचारिक वार्तालाप द्वारा संगठन की स्थिति सुधारी जाती है। संगठनात्मक योग्यता प्रबन्धन के काय की प्रणाली पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त सम्प्रेषण प्रणाली पर भी यह निर्भर करता है कि व्यक्ति कितनी शीघ्रता से अपनी समस्याओ का निराकरण प्राप्त करता है एव कितनी शीघ्रता से परस्पर सम्पर्क करने म समर्थ है।

उल्लेखनीय है कि मनोबल प्रभावक तत्त्वो म से कुछ प्रशासन अथवा प्रबन्ध द्वारा प्रभावित किया जा सकता है जबकि अन्य तक प्रभाव से अछूते हैं। प्रो हूमन ने प्रभाव डालने वाले इन तत्त्वो को नियन्त्रण की दृष्टि म तीन भागो म बाटा है। इनके प्रथम स्तर स्वय अधीनस्थ अधिकारी होते हैं। अधीनस्थो का एक निश्चित दृष्टिकोण बनाने के लिए आवश्यकता है कि पहले उनको यह बात समझाई जाए। यदि अधीनस्थो की सामर्थ्य की क्षमता सीमित है तो यह आशा न । है कि उस संगठन का मनोबल ऊँचा उठ पाएगा।

संगठन के एक सदस्य के मनोबल के पीछे उसका स्तर एव स्थिति भी

महत्वपूर्ण भाग नहीं है। एक फैक्ट्री में काम करने वाले उन मजदूरों में जो प्रभावशाली संघों के नेता हैं या सदस्य हैं एक विशेष प्रकार का मनोबल होता है। इन तत्वों का दूसरा स्रोत प्रबन्ध के अधिकार के बाहर की चीज है। इसमें हम उन तत्वों को समाहित करते हैं जो बाह्य होते हुए भी उसके मनोबल पर प्रभाव डालते हैं। पारिवारिक समस्याएं धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं के उत्तरदायित्व एवं मजदूर संघों आदि की माँग कुछ ऐसे तत्व हैं जो बाह्य होते हुए भी मनोबल को प्रभावित करते हैं। ये संघ एवं संस्थाएं आवश्यक रूप से संगठन के मनोबल को नीचा नहीं गिराती किन्तु कई बार ये उसके विकास में सहायक होती हैं। तीसरे मनोबल को प्रभावित करने वाले कुछ तत्व ऐसे हैं जो प्रबन्ध के अधिकार क्षेत्र में होते हैं। जैसे संगठन की नीतियाँ प्रक्रियाएँ लक्ष्य संचार व्यवस्था आदि। इनके अतिरिक्त संगठन में एक अच्छा नेतृत्व सन्तोषजनक संगठनात्मक व्यवस्था आदेश की एकता पर्याप्त पुरस्कार और अनुशासन उच्च अधिकारी का अधीनस्थ के प्रति दृष्टिकोण आदि मिलकर संगठन में मनोबल का स्तर निर्धारित करते हैं। कई बार अधीनस्थ अधिकारियों के मनोबल पर उस काम का बहुत कम प्रभाव पड़ता है जो किया जा रहा है किन्तु उस तरीके का अधिक प्रभाव पड़ता है जो किया जा रहा है। यदि अधीनस्थों को यह शक हो जाए कि उच्च अधिकारी उनके व्यवहार पर तथा काम के नक्शों पर विश्वास नहीं करता तो मनोबल निम्न स्तर का होगा हेमन के शब्दों में "इसमें सन्देह नहीं कि अधीनस्थ का मनोबल प्रबन्धक के प्रतिदिन के सम्पर्क द्वारा स्पष्टता से प्रभावित होता है। प्रबन्धक जिस ढंग से पर्यवेक्षण निर्देशन नेतृत्व एवं सामान्य दृष्टिकोण प्रदर्शित करेगा उसके आधार पर अच्छा या बुरा मनोबल बन जाएगा।

मनोबल के अंग
(Components of Morale)

लेटन एवं सिलिण्डर (Laighton and Schelinder) ने लिखा है कि मनोबल एक भावनात्मक एवं मानसिक स्थिति है जो काम करने की इच्छा को प्रभावित करती है और इस इच्छा से व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक उद्देश्य प्रभावित होते हैं। इन विद्वानों का अभिमत है कि कर्मचारी मनोबल (Employee Morale) मुख्यतः निम्नलिखित अंगों के संयोजन का परिणाम है—

1 यह क्या है (What it is)—यह मानव मस्तिष्क की एक अभिवृत्ति है काम की प्रवृत्ति है यह उसकी एक स्थिति है और एक भावनात्मक दबाव है।

2 यह क्या करता है (What it does)—यह उत्पादन किस्म लागत सहयोग उत्साह अनुशासन स्वैच्छिक प्रेरणा और सफलता सम्बन्धी तत्वों को प्रभावित करता है।

3 यह कहाँ रहता है (Where it resides)—यह व्यक्तियों अथवा सहयोगियों के मस्तिष्क एवं भावनाओं तथा उनकी सामूहिक प्रतिक्रियाओं में निवास करता है।

4 यह किसको प्रभावित करता है (Whom does it effect)—यह निकटतम सहयोगियों अधिकारियों समाज तथा उपभोक्ताओं को प्रभावित करता है।

5 यह क्या प्रभावित करता है (What it effects)—यह कार्य के प्रति अभिरुचि प्रतिष्ठान के सर्वोत्तम हित में सहयोग व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से सन्तोष आदि को प्रभावित करता है।

मनोबल के प्रकार
(Types of Morale)

मनोबल के मुख्य प्रकार ये बताए गए हैं—

1 व्यक्तिगत मनोबल (Individual Morale)
2 समूह या सामूहिक मनोबल (Group Morale)
3 कृत्य मनोबल (Job Morale)
4 संगठन मनोबल (Organisation Morale)
5 उच्च एवं निम्न मनोबल (High and Low Morale)

मनोबल के व्यक्तिगत एवं सामूहिक दो पक्ष होते हैं। ये दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक के द्वारा दूसरे को प्रेरणा एवं स्थिरता प्राप्त होती है। व्यक्तिगत रूप में मनोबल अनेक परिस्थितियों के आधार पर तैयार होता है जैसे—अन्तर प्राप्त करने के अवसर सम्मान और व्यक्तिगत शक्ति सफल एवं आदर के योग्य समझे जाने का अधिकार तथा व्यक्तिगत आत्म विकास का अवसर आदि। संगठन में सामूहिक मनोबल को विकसित करने वाली स्थितियों में मुख्य हैं— आकर्षक व्यक्तिगत सम्बन्ध संगठन की शर्तों एवं कर्मचारियों के स्वाभाविक दृष्टिकोणों एवं तरीकों में एकरूपता संचार के उपयुक्त साधन आदि आदि। मनोबल का व्यक्तिगत रूप कर्मचारियों को अपना कार्य श्रेष्ठ रूप में सम्पन्न करने के लिए प्रेरित करता है ताकि उस व्यक्तिगत रूप से मान्यता प्राप्त हो सके। मनोबल का सामूहिक रूप कर्मचारी को संगठन के उद्देश्य एवं लक्ष्यों के साथ एकाकार होने के लिए प्रेरित करता है ताकि उसका संगठन अधिक प्रतिष्ठित बन सके।

इसी प्रकार मनोबल किसी विशिष्ट तथ्य उदाहरणार्थ—कृत्य वातावरण कार्य की दशाओं आदि की अपेक्षा समग्र की विचारधाराओं भावनाओं आदि से सम्बन्ध रखता है। संगठन मनोबल व्यक्ति की मानसिक अवस्था है जो उसे अपने व्यक्तिगत हित की अपेक्षा संगठन की सेवा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करने को अभिप्रेरित करती है। एक अन्य दृष्टिकोण से मनोबल को उच्च एवं निम्न बताया

गया है। हम उच्च एवं निम्न मनोबल के अर्थ तथा प्रभावों का उल्लेख पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं।

मनोबल कैसे विकसित करें ?
(How to Develop Morale ?)

किसी भी संगठन में उच्च मनोबल की स्थापना के लिए विभिन्न उपाय सुझाए गए हैं। इनमें कुछ ये हैं—

1 संगठन के उद्देश्य एवं लक्ष्य का ज्ञान—जिस संगठन में हम उच्च मनोबल की स्थापना करने जा रहे हैं उसमें सर्वप्रथम यह व्यवस्था करनी चाहिए कि सभी सदस्य संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से परिचित हो सकें। लक्ष्यहीन प्रयासों में प्रभावशीलता उत्साह एवं व्यक्तिगत रुचि का अभाव पाया जाता है। उद्देश्य का ज्ञान कराने पर मनोबल ऊँचा उठाने के उदाहरण सैनिक प्रशासन में पर्याप्त रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। जब जर्मनी के सैनिकों को यह बताया गया कि केवल उन्हीं की धमनियों में शुद्ध रक्त बहता है और इसलिए सारे विश्व पर विजय प्राप्त करके साम्राज्य स्थापित करना उनका महत्त्वपूर्ण अधिकार एवं कर्त्तव्य है तो वे सभी हिटलर के अनुयायी हो गए। देश की स्वतन्त्रता एवं आक्रमणकारी के विनाश के लक्ष्य पर चलने वाले देशभक्त सैनिकों का मनोबल बहुत ऊँचा होता है। प्रशासकीय संगठनों में भी मनोबल विकसित करने के लिए जरूरी है कि उसके कर्मचारियों को संगठन के लक्ष्य का ज्ञान हो साथ ही वे इस बात से भी परिचित हों कि उनका कार्य संगठन के लक्ष्य को प्राप्त करने में कहाँ तक सहयोग करेगा। प्रशिक्षण द्वारा भी कर्मचारी के सम्मुख संगठन तथा कर्मचारी के कार्य का उद्देश्य स्पष्ट किया जाता है।

कहा जाता है कि संगठन में निम्न स्तर के कर्मचारियों के लिए सरकारी नीति के सामान्य लक्ष्यों का ज्ञान अधिक महत्त्व नहीं रखता है। फिर भी यदि कर्मचारियों की निरपेक्षता एवं उदासीनता अविश्वास एवं विरोध में परिवर्तित होने की सम्भावना हो तो मनोबल पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। अनुभव के आधार पर यह कहा जाता है कि संगठन के सदस्यों को नीति से परिचित कराने के लिए कुछ निश्चित कदम उठाना जरूरी है। यदि संगठन के कर्मचारी महत्त्वपूर्ण नीतियों से सूचित रहते हैं तो उनमें संगठन के प्रति अपनत्व का भाव विकसित होता है।

2 नीति निर्माण में भाग लेने की भावना—जब संगठन के कर्मचारियों का यह विश्वास हो जाता है कि उनको नीति निर्माण के कार्य में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जा रहा है तो वे अपने दायित्वों में विशेष रुचि लेने लगते हैं। उनको ऐसा महसूस होता है मानो उन पर ही संगठन के संचालन का उत्तरदायित्व है। दायित्व का यह भार उनको गम्भीरता प्रदान करता है। एक कर्मचारी के संगठन की प्रक्रिया एवं स्वरूप सम्बन्धी सुझाव को यदि उच्चाधिकारी ध्यान देकर सुनें उस

पर विचार करे तथा उसे उचित प्रशंसा प्रदान करे तो कर्मचारी को यह अनुभव होता है कि उसका भी कुछ महत्त्व है। फलत उसका मनोबल ऊ चा होता है।

3 कार्य की वाछनीयता—संगठन का प्रत्येक कर्मचारी यदि यह सोचता है कि प्रस्तुत पद उसके सम्मान गुण एव बुद्धिमत्ता के अनुरूप है तो उसमे सन्तोष की भावना उत्पन्न होगी। जब कर्मचारी यह सोचने लगता है कि वह जिस कार्य को कर रहा है वह कोई महत्त्व ही नहीं रखता तो वह संगठन के लिए प्रत्यक्ष घातक सिद्ध होता है। कर्मचारी को कार्य करने से वेतन प्राप्त हो। केवल यही पर्याप्त नहीं है यथार्थ मे उसे इससे पूरा सन्तोष भी प्राप्त होना चाहिए। ओ एल मी व्हाइट ने ठीक ही लिखा है कि उच्च मनोबल मनुष्य उस विश्वास के साथ जुड़ा होता है जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य को महत्त्वपूर्ण एव मूल्यवान मानता है। इस विश्वास का विकास करना प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण दायित्व है जिसे केवल अवसर पर नहीं छोडा जा सकता।

4 उच्चाधिकारी मे विश्वास—संगठन के कर्मचारियो के मनोबल को ऊ चा उठाने का एक महत्त्वपूर्ण आधार समझा जाता है कि वे उच्चाधिकारियो की ईमानदारी निष्पक्षता एव न्यायप्रियता मे विश्वास करें और यह मान कर चलें कि वे जो कुछ भी निर्णय लेंगे संगठन की अच्छाई के लिए ही होगे। जब उनको यह सन्देह होने लगता है कि उच्च अधिकारी या सहयोगी कर्मचारी संगठन के कल्याण के लिए नहीं वरन् व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिए प्रयास कर रहे हैं तो उनका मनोबल गिरने लगता है।

5 भावनाओं का विकास—संगठन का मनोबल ऊ चा उठाने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण साधन यह है कि कर्मचारियों का भावनात्मक विकास कर उनमे स्वामिभक्ति के भाव जाग्रत किए जाए। इसके लिए यद्यपि कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं अपनाया जा सकता क्योकि कोई व्यक्ति एक बात से अधिक प्रभावित होता है तो दूसरा किसी अन्य बात से। तथापि ईमानदारी एव स्वामिभक्ति के साथ संगठन के लक्ष्यो मे अपने आपको खो दें इस सामान्य रूप से अच्छा समझा जाता है।

6 प्रेरणादायक नेतृत्व – सैनिक एव व्यापारिक संगठनों मे प्रेरणादायक नेतृत्व सर्वविदित है। महाराणा प्रताप जैसे सेनापति ने केवल थोडे से सैनिकों के बल पर सम्राट अकबर की विशाल सेनाओं के दात खट्टे कर दिए थे। प्रभावशाली नेतृत्व अपने अधीनस्थो एव सहयोगियो मे मनोबल का विकास करने के लिए अनेक उपाय काम मे ला सकता है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एव प्रभावशाली तरीका उसका स्वय का व्यवहार है जो संगठन के सदस्यो पर अमिट छाप छोडता है।

7 कार्य की उचित शर्तें—कर्मचारी मे मनोबल के विकास के लिए आवश्यक कुछ बातें इस बात से प्रभावित होती हैं कि उनको कार्य करने की उचित दशाए प्रदान की जाती हैं या नहीं। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो वह अपने कार्य

से स तोष नही होगा वे नेतृत्व से प्रभावित नही होगे तथा अपने उच्च अधिकारो की ईमानदारी पर स देह करेंगे। अत उच्च मनोबल की स्थापना के लिए यह उपयोगी है कि कर्मचारियो का काय निरापद हो उनको छुट्टियो की सुविधा पदोन्नति के अवसर स तोषजनक सेवा निवृत्ति के लाभ आदि प्रदान किए जाए।

कमचारी को अच्छा वेतन दिया जाना चाहिए ताकि वह अपने परिवार की सभी आवश्यकताओ का सन्तोषजनक रूप से निर्वाह कर सके। कई बार पारिवारिक अशान्ति गृह कलह परिवार की आवश्यकताओ का अ यधिक भार आदि ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि चाहते हुए भी एक व्यक्ति सगठन मे अपने दायित्वो के प्रति आवश्यक ध्यान न ी दे पाता।

8 पदोन्नति के अवसर—सगठन के प्राय सभी सदस्य पदोन्नति म रुचि लेते हैं। यदि उन्हे यह आश्वासन मिल जाए कि उनको पदोन्नत किया जा सकता है तो वे अधिक कुशलता क साथ काय करना चाहेगे। मुख्य रूप से महत्वाकांक्षी व्यक्ति पदोन्नति के अवसरो से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। जब किसी कमचारी को वह नही मिल पाता जो वह चाहता था अथवा उसे वह पद प्राप्त नही होता जिसका वह स्वप्न देखता था तो वह घोर निराशा से भर जाता है। लोक-सेवाओ म यह निराशा अत्य त घातक सिद्ध हो सकती है अत जहाँ तक हो सके इसे रोकने का प्रयास करना चाहिए।

9 काय की मान्यता—मानव प्रकृति अपने कार्यों की मान्यता एव सराहना चाहती है। यदि सरकार क कार्यों को जनहित मे उचित मान्यता मिल जाए उसकी उचित प्रशसा कर दी जाए तो वह अपन आपको पुरस्कृत समझने लगती है। यदि कोई अधिकारी अपने काय मे असाधारण योग्यता प्रदर्शित करता है तो उस उसके व्यवसायियों एव जनता के सम्मुख उचित सम्मान दिया जाना चाहिए।

मनोबल का माप
(Measurement of Morale)

किसी सगठन या उपक्रम म कमचारियो का मनोबल कसा है यह जानने के लिए हमे उनके कार्यों हाव भाव सुझाव मौखिक विचार आलोचनाओ पूछे गए प्रश्नो क उत्तर आदि का विवेकपूर्ण निवचन करना चाहिए। प्रत्यक्ष रूप म मनोबल का माप एक कठिन काय है क्योकि प्राय कमचारी उपक्रम क प्रति अपने स तोष या अस तोष अपन काय आदि के बार म वास्तविक ब त कहने से सकुचाते हैं। विभिन्न सर्वेक्षणो और प्रश्नावलियो के माध्यम से कमचारियो की वास्तविक भावनाओ को ज्ञात किया जा सकता है। इसलिए विशाल आकार के उपक्रमो म कमचारी मनोबल को मापने के लिए एक सुनिश्चित प्रणाली की आवश्यकता समझी जाती है। बड़े सगठनो म प्रब धको और कमचारियो म कोई सीधा सम्पक नही

होते अतः कर्मचारियों के मनोबल का माप किसी सुदृढ़ और सुनिश्चित विधि द्वारा ही किया जा सकता है। छोटे उपक्रमों में भी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रबन्धक को कर्मचारियों के मनोबल के बारे में आवश्यक जानकारी मिल सके।

मनोबल को मापने के लिए प्रायः औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों विधियों (Both Formal and Informal Mehods) का सहारा लिया जाता है।

(क) औपचारिक विधियाँ—इन्हें क्रमबद्ध विधियाँ भी कहते हैं। इनमें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष विधियाँ सम्मिलित हैं। प्रत्यक्ष विधियों में प्रश्नावलियाँ सम्मति सर्वेक्षण धारणा माप आदि सम्मिलित किए जाते हैं जबकि अप्रत्यक्ष विधियों में उत्पादन स्तर अनुपस्थिति विक्रय दर आदि के आधार पर मनोबल ज्ञात किया जाता है।

(ख) अनौपचारिक विधियाँ—इन विधियों में निम्नलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं—(i) विशेष अवसरों पर कर्मचारियों की टिप्पणियों या विचारों का विश्लेषण अथवा निर्वचन (ii) कर्मचारी तथा कर्मचारी समूह व्यवहार का अध्ययन एवं (iii) पर्यवेक्षकों द्वारा रिपोर्ट किए गए विचार और कर्मचारी के प्रति धारणाएं।

मनोबल का मूल्यांकन करने के लिए सामान्यतः निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लाई जा रही हैं—

(i) अवलोकन (Observation)

(ii) साक्षात्कार (Interview)

(iii) प्रश्नावलियाँ या धारणा सर्वेक्षण (Questionnaires or Attitude Surveys)

(iv) कम्पनी के लेखे तथा प्रतिवेदन (Company Records and Reports)

अवलोकन—इस विधि में उपक्रम का प्रबन्धक कर्मचारी के व्यवहार हाव भाव और कार्यों को देखता रहता है तथा कर्मचारी की बातें सुनता है। वह कम्पनी के प्रति कर्मचारी के विचार को जानने का प्रयत्न करता है। कर्मचारी की कार्यकारी आदतों और अभिव्यक्तियों में परिवर्तन को ध्यान देता है। यदि कर्मचारी के सामान्य व्यवहार में कोई परिवर्तन पाया जाता है तो उसे तब तक शंका की दृष्टि से देखा जाता है जब तक कि यह स्पष्ट न हो जाए कि परिवर्तन आवश्यक था परिवर्तन प्रतिष्ठान के लिए अनुकूल है या प्रतिकूल आदि।

साक्षात्कार—इस विधि से कर्मचारी से आमने-सामने तथा व्यक्तिगत रूप में विचारों का मौखिक आदान प्रदान हो सकता है। इस प्रकार दोनों पक्षों के विचार स्पष्ट हो जाते हैं तथा एक दूसरे के विचारों में समानता लाने के लिए प्रयत्न किए जा सकते हैं। साक्षात्कार पद्धति से मतभेद के कारणों का सरलता से पता लगाया जा सकता है बशर्ते कि साक्षात्कार के समय प्रबन्धकों अथवा अधिकारियों द्वारा

ऐसा वातावरण बना लिया जाए कि कर्मचारी स्वतः यह अनुभव करे कि उसे उपयुक्त विचार विमर्श के लिए बुलाया गया है और प्रबन्धकों की मंशा किसी भी प्रकार उसको प्रभावित करने की नहीं है। साक्षात्कार प्रणाली को विश्वसनीय बनाने के लिए साक्षात्कार का प्रारम्भ प्रबन्धक की ओर से किया जाना चाहिए। उसे चाहिए कि वह उपक्रम के विभिन्न व्यक्तियों से अनौपचारिक रूप से बातचीत करता रहे और उपयुक्त समय पर कुछ चुने हुए कर्मचारियों का साक्षात्कार आयोजित करे।

प्रश्नावली—उपक्रमों में सामान्यतया दो प्रकार की प्रश्नावलियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं— धारणा माप (Attitude Scale) तथा सम्मति माप Opinion Scale)। धारणा सर्वेक्षण के द्वारा वह जानकारी प्राप्त की जाती है कि कर्मचारी कम्पनी के बारे में क्या सोचते हैं किस प्रकार की शिक्षा और सूचना वे प्राप्त करना चाहते हैं उनकी इच्छाएं क्या हैं आदि। मनोबल में सुधार तथा सेवीवर्गीय आयोजन की प्रभाव क्षमता का मूल्यांकन भी धारणा सर्वेक्षण से किया जाता है। इस प्रकार का सर्वेक्षण श्रमिकों और पर्यवेक्षकों दोनों के लिए काम में लाया जा सकता है। जानकारी विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त की जा सकती है यथा—मजदूरी की दरें नियोजन विधि कर्मचारी के मूल्यांकन कार्यक्रम आदि। सम्मति सर्वेक्षण के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट विषयों पर—यथा कार्य—दशाओं कम्पनियों की नीतियों आदि पर—कर्मचारी की सम्मति प्राप्त की जाती है।

कम्पनी आलेख एवं प्रतिवेदन—प्रत्येक उपक्रम में कर्मचारियों के कार्य सम्बन्धी अभिलेख या प्रतिवेदन पर्यवेक्षकों तथा अधिकारियों की सहायता से तैयार किए जाते हैं। इन अभिलेखों के गहन अध्ययन से कर्मचारियों के मनोबल को भली प्रकार मापा जा सकता है। उपक्रम के अभिलेखों में उत्पादन की मात्रा एवं किस्म कर्मचारियों के प्रतिवेदन तथा सुझाव कर्मचारी अनुपस्थिति और मंदता दुर्घटनाओं की दर दोषपूर्ण वस्तुओं की मात्रा तथा उनकी लागत आदि के बारे में जानकारी दी जाती है और इन सूचनाओं से कर्मचारियों के बढ़ते या गिरते हुए मनोबल का पता लगाया जा सकता है। इस विधि का मुख्य दोष यह है कि इससे कर्मचारियों के भूतकालीन मनोबल का ही आभास मिलता है वर्तमान मनोबल का नहीं और इसलिए यह विधि मनोबल सुधारने के तात्कालिक उपाय सुझाने में अधिक कारगर नहीं मानी जाती है।

मनोबल और अभिप्रेरणा
(Morale and Motivation)

मनोबल अभिप्रेरणा दोनों भिन्न होते हुए भी परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मनोबल कार्य करने की इच्छा तथा कार्य क्षमता के लिए प्रयुक्त किया गया है जबकि अभिप्रेरणा को कार्य करने की इच्छा और कार्य की क्षमता के बीच की खाई को पाटने वाला पुल माना गया है। अतः स्वाभाविक है कि दोनों के

बीच सम्बन्ध है। मनोबल संस्था या उपक्रम के प्रति संतुष्टि और अच्छी भावना को अभिव्यक्त करता है और अभिप्रेरणा इस भावना तथा संतुष्टि का निर्माण करती है। जिस प्रकार व्यक्तियों तथा समूहों के लिए अभिप्रेरणाएं परिवर्तित होती रहती हैं ठीक उसी प्रकार मनोबल भी व्यक्तियों तथा समूहों के साथ बदलता रहता है। इसके अतिरिक्त अच्छे या बुरे अथवा उच्च या निम्न मनोबल के निर्धारक घटक अपने में अभिप्रेरणा के समस्त अंगों को सम्मिलित कर लेते हैं। उदाहरणार्थ जो धनात्मक लक्ष्य (Positive Goals) अभिप्रेरणा के अंग हैं वे ही उच्च मनोबल के लिए सामान्यतया आवश्यक समझे जाते हैं। मनोबल के लिए समूह संसक्ति अथवा समूह आकर्षण को अत्यावश्यक माना गया है। इसी प्रकार प्रगति कार्य निष्पत्ति की जानकारी आदि जो कि अभिप्रेरणा के अंग हैं उच्च मनोबल के निर्धारक माने जाते हैं और इन सबका विपरीत निम्न मनोबल के लिए उत्तरदायी है। सारांशतः अभिप्रेरणा और मनोबल में काफी हद तक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और अभिप्रेरणा के विभिन्न अंगों का मनोबल पर प्रभाव पड़ता है।

मनोबल और उत्पादकता
(Morale and Productivity)

यह आशा की जाती है कि जिस प्रतिष्ठान का मनोबल और नैतिक चरित्र ऊँचा होगा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में अधिक सफलतापूर्वक अग्रसर हो सकेगा। अनेक विचारकों का निष्कर्ष है कि कर्मचारियों के उच्च मनोबल के फलस्वरूप गुण और मात्रा की दृष्टि से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। दूसरी ओर आधुनिक अनुसंधान यह भी सिद्ध करते हैं कि मनोबल और उत्पादन में ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है कि मनोबल ऊँचा होगा तो उत्पादन भी बढ़ेगा। ऐसी भी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं कि कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा होने पर भी उत्पादन कम हो। उदाहरणार्थ यदि पर्यवेक्षक लोगों को मनमानी करने देता है उनसे अपनापन निभाता है उन्हें प्रसन्न रखने के अनुचित प्रयास करता है तो मनोबल ऊँचा होने पर भी उत्पादन का स्तर अवश्य गिर जाएगा। जबकि दूसरी ओर श्रम नजरबन्दी शिविर में मनोबल चाहे नीचा ही होगा दबाव और कठोरता से काम लेकर मनोबल खराब होते हुए भी उत्पादन का स्तर कायम रखा जा सकता है। यह अलग बात है कि एक लोकतान्त्रिक समाज में प्राय ऐसे व्यवहार की आशा नहीं की जाती।

उत्पादन की मात्रा से मनोबल का प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो अथवा न हो किन्तु प्रत्येक प्रशासकीय संगठन के नेता अथवा अध्यक्ष का प्रयत्न होना चाहिए कि वह अपने कर्मचारियों का मनोबल बढ़ाए। संगठन के सदस्यों के मनोबल के संगठन को अपेक्षाकृत अधिक सफल बनाता है।

मनोबल को नष्ट या प्रभावहीन बनाने वाले कारण
(Causes which Destroy or Undermine Morale)

एक प्रशासकीय सगठन म मनोबल की मात्रा कितनी है इस मापने के लिए कोई प्रत्यक्ष साधन नही है। फिर भी कुछ ऐसे सूचक अथवा सकेत अवश्य हैं जिनके आधार पर यह परखा जा सके कि मनोबल का स्तर कितना होगा। सगठन के व्यवहार क निरीक्षण द्वारा तथा दृष्टिकोण एव मनोबल स सम्बन्धित सर्वेक्षण करके यह पता लगाना चाहिए कि सगठन के कमचारियो मे मनोबल कितना है। यदि मनोबल सतोषजनक न हो तो उसका विकास करने के लिए उपयुक्त साधनो का यथोचित सहारा लेना चाहिए साथ ही उन दशाओ एव क्रियाओ को निरुत्साहित करना चाहिए जो मनोबल का गिराती अथवा प्रभावहीन बनाती हैं।

जिस देश मे नागरिक सवाओ पर राजनीतिक हस्तक्षेप रहता है वहा मनोबल बहुत गिर जाता है। इस सकट को रोकने के लिए आवश्यक है कि प्रथम राजनीतिक अध्यक्ष एव प्रशासनिक सवाओ के बीच उचित सम्बन्धो का विकास किया जाए। दूसरे असुरक्षा की भावना दूर की जाए। इस भावना के कई रूप हो सकते हैं जसे सेवा का समाप्त हो जाना पुनवर्गीकरण और वेतन-स्तरो म कमी अभिकरण का पुनगठन आदि। डा ह्वाइट क शब्दो म राजनीतिक और प्रशासनिक अस्थिरता मनोबल क अभाव को घटाती है जबकि स्थायित्व उसके निर्माण के लिए नीव का काम करता है। *तीसरे कभी कभी गलत प्रस भी नागरिक सवाओ के* मनोबल को नीचा गिरा देता है। प्रत्येक देश म समाचार-पत्रो की रुचि प्राय आलोचना एव दोषपूर्ण बिन्दुओ पर केन्द्रित हो जाती है ईमानदारी एव कायकुशलता पर नही। ह्वाइट के कथनानुसार हम किसी भी योग्यतम व्यक्ति स यह आशा नही कर सकते कि वह उस सेवा की इच्छा करे जो ऐसी अनुत्तरदायी आलोचना का विषय है जिसमे कि कुछ समाचार पत्रो द्वारा सरकारी अधिकारियो एव कमचारियो के विरुद्ध कीचड उछाली जाती है।

भारतीय सन्दभ मे मनोबल को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(Factors Influencing Morale in India)

प्रत्येक देश मे कार्मिक वग की मनोदशा का अध्ययन करने पर कुछ ऐसे तत्त्व प्राप्त होते हैं जिनका मनोदशा पर अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव पडता है। भारतीय सन्दभ म निम्नलिखित तथ्यो का प्रभाव अनुकूल देखने म आया है—

1 परम्परागत प्रभाव के फलस्वरूप सरकारी सवाओ को आज भी निजी सस्थाओ की नौकरियो से श्रेष्ठतर समझा जाता है। जनमानस म सरकारी सवाओ की प्रस्थिति (Status) उसी स्तर की निजी सवाओ स अच्छी समझी जाती है। यही कारण है कि सरकारी सेवाओ म निजी सेवाओ स लोग कम वेतन पर भी आ ते।

2 संविधान की धारा 311 के फलस्वरूप सरकारी सेवाए पूर्ण सुरक्षित हैं। अत किसी सरकारी प्रशासनिक संगठन से यदि सेवा सम्बन्धी प्रावधान का कर्मचारी को पूरा लाभ न मिले तो मनोवैज्ञानिक रूप से उसे अपनी नौकरी की सुरक्षा की भावना उसे उस ओर आकर्षित करती है।

3 प्रत्येक सरकारी कर्मचारी अपने सेवाकाल में कुछ न कुछ पदोन्नति नियमानुसार अवश्य प्राप्त करता है। निजी संस्थाओं में यह आवश्यक नहीं है।

4 सरकारी कर्मचारी को यह विश्वास होता है कि सेवा निवृत्ति के बाद उसे सरकार से पेंशन मिलेगी। इस पेंशन के लिए सरकारी कर्मचारियों को कोई अंशदान नहीं देना पड़ता। वेतन के समान ही पेंशन चुकाना भी सरकार का उत्तरदायित्व है।

5 दूसरी ओर निजी संस्थाओं में प्राविडेण्ट फण्ड की व्यवस्था है जिसमें कर्मचारियों को अंशदान देना पड़ता है और फिर भी फण्ड की सुरक्षा पेंशन की सुरक्षा से कहीं कम है।

6 सरकारी सेवा की शर्तें निजी सेवा की शर्तों से अधिक आकर्षक और सुविधाजनक होती हैं जिनका मनोबल पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

जिन तथ्यों का भारतीय कर्मचारियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है उनमे मुख्य ये हैं—

1 कर्मचारियों के मन में प्रशासकीय नीतियों की ईमानदारी के प्रति शंका व्याप्त रहती है। लोगों के दिल में यह बात घर कर चुकी है कि सगे सम्बन्धियों और शक्तिशाली लोगों को लाभ पहुचाने के लिए बिना किसी प्रशासकीय कारण के सरकारी नीतियों में परिवर्तन होता रहता है। नीतियों का क्रियान्वयन भी भेदभावपूर्ण होता है अत कर्मचारियों को नीतियों की निष्पक्षता के प्रति अविश्वास रहता है।

2 प्रशासन में आए दिन राजनीतिक हस्तक्षेप होता है। अत्यन्त वरिष्ठ पदाधिकारी तक में यह विचार पनप गया है कि राजनीतिक हस्तक्षेप के फलस्वरूप अब योग्यता के आधार पर पदोन्नति देने अथवा नियुक्ति करने का कार्य दुष्कर होता जा रहा है। सरकारी कर्मचारियों में यह भावना घर कर चुकी है कि उन्नति के लिए नेताओं राजनीतिज्ञों आदि का आशीर्वाद प्राप्त करना जरूरी है।

3 अधिकारियों और कर्मचारियों को अपनी नौकरी की सुरक्षा के प्रति भी आशंका रहती है। उन्हें यह विश्वास नहीं रहता कि नियमों और कानूनों के अनुसार इमानदारीपूर्वक कार्य करने पर भी मौका पड़ने पर उच्च प्रशासकीय अधिकारी उनका साथ देंगे।

कर्मचारी वर्ग आज यह समझने लगा है कि प्रशासकीय निर्णय प्राय प्रशासनिक आधार पर न लिए जाकर राजनीतिक कारणों से लिए जाते हैं।

राजनीतिक दबाव के कारण सरकार उचित मामला म भी न्यायिक जाँच की माँग स्वीकार कर लेती है और न्यायिक निणय पूण निष्पक्ष होगा यह भी निश्चित नही है।

राजनीतिक और प्रशासनिक दानो ही क्षेत्रा म कमचारी वग को अनेक ऐसी बातो के लिए उत्तरदायी ठहराना या निन्दित करने की प्रवृत्ति पनप रही है जिनके लिए वास्तव म वह उत्तरदायी नही है। आलोचना का मुख्य रूप सृजनात्मक न होकर आक्रामक होता है जिससे कमचारियो के हृदय म अनेक शकाए उत्पन्न होती हैं।

सरकारी सगठना म काम की दशाए भी बहुत कुछ असन्तोषजनक होती हैं। वातावरण एसा बन चुका है कि ईमानदारी स काय सचालन सम्भव नही है। राजनीतिक नेता उचित मागो पर भी ध्यान नही देत जब तक हडताल घेराव आन्दोलन आदि न किए जाए ऐसा विश्वास जाने अनजाने कमचारियो के मन म पनप रहा है।

वास्तविक आय रुपय के मूल्य गिरने से कम होती जा रही है अत आर्थिक परेशानिया भ्रष्टाचार को बढा रही हैं।

कमचारी वग अपने भविष्य के बारे म आशकित है क्याकि सेवा की शर्तों म प्राय बडी जल्दी जल्दी परिवतन किए जाते रहे हैं।

अनेक राज्या म राजनीतिक अस्थिरता भी कमचारियो के मन मे आशका पदा किए हुए है। कमचारी यह समझते हैं कि उनका जो काय आज उचित है वही नयी सरकार द्वारा कल निन्दनीय माना जा सकता है।

लोगो म यह विचार भी घर करता जा रहा है कि राजनीतिक अखाड बाजी का जो चक्कर चलता है उसम पुलिस प्रशासन भी बदले की भावना से कमचारियो के प्रति निरकुश बन सकता है।

उपयुक्त सभी कारण बहुत कुछ इस बात के लिए उत्तरदायी हैं कि सरकारी कमचारियो का मनोबल स्वतन्त्र भारत मे वसा नही है जसा कि होना चाहिए।

8

प्रशासनिक व्यवहार—निर्णय प्रक्रिया (एच साइमन)

(Administrative Behaviour—Decision Making H Simon)

प्रशासनिक व्यवहार —
(Administrative Behaviour)

1945 म हर्बट ए साइमन ने प्रशासनिक व्यवहार (Administrative Behaviour) नाम स एक पुस्तक का प्रकाशन किया जो एक प्रशासनिक सगठन म निर्णय निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन है। इसम कुल 11 अध्याय हैं। अध्याय II एव III म कुछ प्रविधीय मसला पर विचार किया गया है ताकि मानवीय तार्किक चयन की सरचना का विश्लेषण किया जा सके। अध्याय IV और V म तार्किक चयन का सिद्धान्त रचा गया है ताकि एक सगठनात्मक पर्यावरण म निर्णय निर्माण पर पडने वाले प्रभावो का समझ सके। अध्याय VII और X म इन प्रभाव प्रक्रियाओ का विस्तार स अध्ययन किया गया है ताकि निर्णय निर्माण की प्रक्रिया पर सगठन के प्रभावो पर विचार किया जा सके। अध्याय XI म यह देखा गया है कि इस विश्लेषण का उपयोग सगठनात्मक सरचना म किस प्रकार किया जा सकता है। इसमे व्यक्ति एव सगठन क मध्य अभिप्रेरणात्मक कडी प्रस्तुत की गई है ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि सगठनात्मक प्रभाव और विशेष रूप से सत्ता के प्रभाव मानवीय व्यवहार के रूप म निर्धारण मे कितनी प्रभावशाली शक्तियाँ हैं।

साइमन की पुस्तक मानवीय व्यवहार म प्रशासनिक व्यवहार सम्बन्धी जो विषय सामग्री उपलब्ध होती है उसका वर्णन हम सक्षेप म निम्नलिखित प्रकार स कर रहे हैं—

प्रशासनिक व्यवहार क अध्ययन का महत्व
(Importance of the study of Administrative Behaviour)

प्रो साइमन का मत है कि सगठन का अध्ययन करते समय ।

केन्द्रित साधरण कर्मचारी होता है क्योंकि सरचना की सफलता स्वय उसकी कार्य सम्पन्नता के आधार पर जाची जाएगी।[1] यदि हम किसी सगठन की सरचना और कार्य के विषय मे अन्तर्दृष्टि चाहते हैं तो इसके लिए श्रेष्ठ तरीका यह है कि जिस प्रकार सगठन मे तथा सगठन द्वारा इन कर्मचारियो के निर्णयो एव व्यवहार को प्रभावित किया जाता है उस तरीके का विश्लेषण करें। सगठन के उद्देश्यो को पूरा करने का वास्तविक कार्य नीचे के स्तर के कार्यकर्त्ताओ द्वारा किया जाता है। किसी भवन का निर्माण कोई इन्जीनियर या आर्किटेक्ट के हाथो नहीं वरन् मिस्त्री के द्वारा होता है। इसलिए प्रशासनिक पदसोपान मे निम्नतम स्तर पर कार्य करने वाले व्यक्ति किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं होते वरन् उसका सगठन की लक्ष्य प्राप्ति मे उल्लेखनीय योगदान रहता है। इस निम्नतम या कार्यात्मक स्तर से ऊपर वाले कर्मचारियो का भी महत्व होता है। वे सगठन मे उल्लेखनीय भूमिका अदा करते हैं। यह सच है कि मेजर द्वारा युद्ध क्षेत्र मे वास्तविक बन्दूक नहीं चलाई जाती किन्तु युद्ध के परिणामो पर उसके कार्यों का प्रभाव बन्दूक चलाने वाले से किसी प्रकार मे कम नहीं होता। जब हम प्रशासनिक प्रक्रिया का इस रूप मे वर्णन करते हैं तो यह सामाजिक मनोविज्ञान की एक समस्या बन जाती है जिसमे कार्यकर्त्ताओ के एक समूह पर पर्यवेक्षकों का एक समूह और रखना पड़ता है जो कि कार्यशील समूह का समन्वित एव प्रभावशाली व्यवहार की ओर मोड सके।

व्यवहार करते समय कैसा तथा चयन किया जाता है। साइमन ने लिखा है कि समस्त व्यवहार कर्त्ता के लिए तथा उन लोगो के लिए जिन पर वह प्रभाव एव सत्ता का प्रयोग करता है भौतिक रूप मे सम्भव समस्त कार्यों मे से विशेष कार्यों का चेतन अथवा अचेतन रूप से चयन करता है।[2] कार्यों का चयन कभी तो अचेतन और अनजाने रूप मे होता है तथा कभी यह नियोजित अथवा निर्धारित क्रिया के रूप मे होता है।

व्यवहार पर मूल्यो एव तथ्यो का प्रभाव
(Influence of Values and Facts on Behaviour)

अधिकाश मानवीय व्यवहार और विशेष रूप से प्रशासनिक सगठनो मे मानवीय व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है जो लक्ष्य अथवा उद्देश्यो के प्रति उन्मुख होता है। यह उद्देश्यपूर्णता उसके व्यवहार के प्रतिमान मे एकीकरण लाती है जिसके अभाव मे प्रशासन अर्थहीन होता है। प्रशासन का मुख्य कार्य कार्य को सम्पन्न करना होता

1 In the study of organisation the operative employee must be at the focus of attention for the success of the structure will be judged by his performance with in it —Herbert A Simon op cit p 3

2 All behaviour involves conscious or unconscious selection of particular action out of all those which are physically possible to the actor and to those persons over whom he exercises influence and authority —Herbert A Simon op cit p 3

है तो उद्देश्य क्या कार्य किया जाना चाहिए इसके लिए एक प्रमुख मापदण्ड प्रस्तुत करता है। विशिष्ट कार्यों को प्रशासित करने वाले छोटे छोटे निर्णय अपरिहार्य रूप से उद्देश्य एवं प्रणाली से सम्बन्धित व्यापक निर्णयों को प्रभावित करते हैं। चलने वाला व्यक्ति एक कदम उठाने के लिए अपने पाँव की मांसपेशियों को सक्रिय करता है वह अपने उद्देश्य की ओर आगे बढ़ने के लिए एक कदम उठाता है वह अपने उद्देश्य या लक्ष्य डाक के डिब्बे तक उसमें पत्र डालने जाता है वह पत्र इसलिए डालता है ताकि कुछ सूचना अन्य व्यक्ति को दे सके आदि आदि। इस प्रकार मानवीय व्यवहार चयन की एक न टूटने वाली श्रृंखला है। यह तब तक चलती है जब तक कि अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँच जाते। जो निर्णय अन्तिम लक्ष्य के चयन की ओर ले जाते हैं उनको मूल्यात्मक निर्णय कहा जाता है तथा जो निर्णय इस लक्ष्य को क्रियान्वित करते हैं वे तथ्यात्मक निर्णय कहे जाते हैं। कभी-कभी एक ही उद्देश्य में मूल्य तथा तथ्यात्मक तत्व मिला लिए जाते हैं।

प्रशासनिक व्यवहार उद्देश्यपूर्ण (Purposive) तथा तार्किक (Rational) होता है। जहाँ तक सामान्य लक्ष्य अथवा उद्देश्य से निर्देशित है वहाँ तक यह उद्देश्यपूर्ण तथा जब यह पहले से चयनित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उचित विकल्पों का चयन करता है वहाँ तक यह तार्किक है। वास्तविक व्यवहार में प्रत्येक निर्णय एक प्रकार से समझौता होता है। अन्तिम रूप से जिस विकल्प का चयन किया जाता है वह लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति को कभी सम्भव नहीं बनाता किन्तु वह तत्कालीन परिस्थितियों में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ समाधान मात्र होता है। पारिस्थितिक स्थितियाँ अपरिहार्य रूप से उपलब्ध विकल्पों को सीमित करती हैं।

प्रशासनिक व्यवहार निर्णय प्रक्रिया है
(Administrative Behaviour is Decisional Processes)

प्रशासनिक क्रिया एक सामूहिक क्रिया है। इसको सम्पन्न करने के लिए संगठित कार्य आवश्यक है जिन तकनीकों से यह कार्य सम्पन्नता सुविधाजनक बनती है उनको प्रशासनिक क्रिया कहते हैं। उल्लेखनीय है कि प्रशासनिक क्रियाएं अथवा व्यवहार मूल रूप से निर्णय निर्माण की प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत संगठन के सदस्यों के निर्णयों में कुछ तत्व डाले जाते हैं इन तत्वों के चयन एवं निर्धारण के लिए नियमित संगठनात्मक प्रक्रियाएं स्थापित की जाती हैं तथा इनकी सूचना संगठन के सम्बन्धित सदस्यों तक पहुँचाई जाती है। संगठन व्यक्ति से उसके स्वयं निर्णय लेने की कुछ स्वायत्तता को छीन लेता है तथा इसके स्थान पर संगठनात्मक निर्णय प्रक्रिया की स्थापना करता है।

प्रशासनिक व्यवहार जो कि एक निर्णय प्रक्रिया है वास्तव में समन्वय विशेषज्ञता और दायित्व से युक्त होता है। समन्वय इसलिए जरूरी है क्योंकि सामूहिक व्यवहार में केवल सही निर्णय लेना ही पर्याप्त नहीं है वरन् ये निर्णय

उस समूह के सभी सदस्यों द्वारा पारित भी होने चाहिए। सत्ता या प्रभाव के माध्यम से यह कार्य किया जा सकता है। कार्यात्मक स्तर पर विशेषज्ञता का लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से एक संगठन का कार्य इस प्रकार विभाजित किया जाता है ताकि सभी विशेषज्ञता पूर्ण प्रक्रियाएं वैसी योग्यता रखने वाले लोगों द्वारा ही सम्पन्न की जा सकें। इसी प्रकार निर्णयों में योग्यता लाने की दृष्टि से निर्णय लेने का उत्तरदायित्व भी इस प्रकार आवंटित किया जाए ताकि विशेष योग्यता की अपेक्षा वाले निर्णय ऐसी योग्यता रखने वालों द्वारा ही लिए जाएं। प्रत्येक संगठन के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे समूह द्वारा निर्धारित मानकों का अनुशीलन करें। अधीनस्थ सेवीवर्ग की स्वेच्छा उन नीतियों द्वारा सीमित हो जाती है जो प्रशासनिक पदसोपान में शीर्ष पर स्थित लोगों द्वारा बनाई जाती हैं।

प्रशासनिक व्यवहार पर संगठनात्मक प्रभाव

(Organisational Influence over Administrative Behaviour)

संगठन में उच्च स्तरों पर लिए गए निर्णयों का प्रभाव केवल तभी हो सकता है जबकि उनको नीचे तक संचारित किया जाए। यह प्रभाव दो प्रकार का होता है। प्रथम कार्य करने वाले कर्मचारी में स्वमेव दृष्टिकोण, आदतों एवं ऐसी मन स्थिति की स्थापना की जाती है ताकि वह संगठन के लिए उपयोगी निर्णय ले सके। दूसरे संगठन में अन्य कहीं लिए गए निर्णयों को कार्य करने वाले कर्मचारियों पर लागू करना। संगठन में निर्णय लेने वाले सभी कर्मचारियों को प्रभावित करने की दृष्टि से सत्ता का विशेष महत्त्व है। जब कोई अधीनस्थ कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के निर्णयों का अनुशीलन करता है तो वह एक प्रकार से उसकी सत्ता से निर्देशित होता है। सत्ता का प्रयोग करते समय यह आवश्यक नहीं कि उच्च अधिकारी अधीनस्थ को समझाकर प्रभावित करे किन्तु वास्तविक व्यवहार में सुझाव एवं समझाने बुझाने की कार्यवाही चलने लगी है। सत्ता का प्रयोग ऊपर नीचे तथा अगल-बगल में होता है। सत्ता का एक औपचारिक रूप प्रत्येक संगठन में पाया जाता है। इसकी सहायता के लिए सत्ता का अनौपचारिक रूप भी विकसित हो जाता है जो संगठन के दिन प्रतिदिन के कार्यों में सहयोग करता है। औपचारिक सत्ता मुख्य रूप से विवादों के निपटारे के लिए सुरक्षित रहती है।

साइमन का कहना है कि मानवीय व्यवहार की यह प्रभावी विशेषता है कि एक संगठित समूह के सदस्य स्वयं को उस समूह के साथ समरूप बना लेते हैं।[1] निर्णय लेते समय संगठन के प्रति स्वामिभक्ति से प्रभावित होकर वे कार्य के विकल्पों में से चयन करने में अपने कार्यों के संगठन पर होने वाले परिणामों का विचार

1 It is prevalent characteristic of human behaviour that members of a organised group tend to identify with that group

—Herbert A Simon Ibid p 12.

करते हैं। जब कोई व्यक्ति एक कार्य निश्चित करने का निर्णय लेता है कि यह भाग्य के लिए कल्याणकारी न तो वह स्वयं या नागरिक के साथ एक रूप पर रहता है। राष्ट्र दल या संगठन के प्रति एक रूप होना आधुनिक समाज की संरचना में मौलिक महत्त्व की बात है। एकरूपता का आभास या संगठनात्मक स्वामिभक्ति प्रशासन में महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है। इसके कारण निर्णय लेना तथा व्यवहार करना सरल तथा सुनिश्चित बन जाता है अन्यथा प्रत्येक निर्णय के समय समस्त मानवीय मूल्यों पर विचार करना पड़ेगा। मूल्यों के सीमित क्षेत्र पर केन्द्रित होना इसलिए भी मूलभूत है ताकि प्रशासक को उसके निर्णयों के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके।

प्रशासनिक व्यवहार के औचित्य का मापदण्ड मुख्य रूप से कार्यकुशलता होती है। यह सभी तर्कपूर्ण व्यवहारों पर लागू होता है। कार्यकुशलता का अर्थ संक्षेप में यह है कि छोटे से छोटा रास्ता अपनाया जाए, सस्ते साधन अपनाए जाएँ, ताकि लक्ष्य प्राप्ति में समय और साधन लेना कम से कम लगे। संगठन के सदस्यों पर पड़ने वाला प्रभाव मुख्यतः अनौपचारिक प्रकृति का होता है। सूचना एवं परामर्श के माध्यम से सम्पूर्ण संगठन की सभी दिशाओं में प्रभाव डाला जाता है।

संगठनात्मक स्वामिभक्ति एवं कार्यकुशलता के मापदण्डों की भाँति प्रशिक्षण द्वारा भी साइमन के निर्णय एवं प्रशासनिक व्यवहार को प्रभावित किया जाता है। प्रशिक्षण द्वारा एक कर्मचारी को स्वयं निर्णय लेने के लिए तैयार किया जाता है। इसमें सत्ता एवं परामर्श के निरन्तर प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती। प्रशिक्षण सेवाकालीन अथवा सेवा पूर्व होना प्रक्रिया का हो सकता है। जब अनेक निर्णयों में एक जैसे तत्त्व निहित होते हैं तो इस विषय में कर्मचारी को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। प्रशिक्षण द्वारा प्रशिक्षणार्थी को आवश्यक तथ्य दिए जाते हैं उसके चिन्तन हेतु एक सन्दर्भ दिया जाता है इसके साथ समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं तथा उन मूल्यों का अन्वेषण किया जाता है जो निर्णय लेते समय ध्यान में रखे जाने चाहिए।

प्रशासनिक व्यवहार में तार्किकता
(Rationality in Administrative Behaviour)

साइमन के पूर्व अर्थशास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों की अतीत कालीन सर्वाधिक धारणा यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया कि व्यक्ति तार्किकता का पूर्णतः इच्छुक रहा है। साइमन ने इसके विपरीत इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति तार्किक होता है। प्रत्येक प्रशासक यह प्रयास करता है कि वह सही निर्णय ले। प्रशासक के निर्णय का सही होना एक सापेक्षिक बात है। वह तब सही है जबकि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उचित साधनों का चयन करता हो। एक तर्कहीन प्रशासक का प्रभावशाली भावना से चयन से सम्बन्ध रखता है।

निर्णय की प्रक्रिया में उन विकल्पों को चुना जाता है जो वांछित लक्ष्यों पर पहुचने के सही साधन होते हैं। लक्ष्य स्वयं भी प्राय अन्तिम उद्देश्य के लिए साधन मात्र ही होते हैं। इस प्रकार उद्देश्यों की एक शृंखला अथवा पदसोपान होता है। तार्किकता (Rationality) का अर्थ साधन साध्य की कड़ियों की रचना करना है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी साधन साध्य सम्बन्ध व्यवहार को एकीकृत करने की चेष्टा करते हैं। साधन तथा साध्य का पदसोपान जिस प्रकार व्यक्ति के व्यवहार की विशेषता है उसी प्रकार यह संगठन के व्यवहार की भी विशेषता है।

प्रत्येक क्षण में व्यक्ति या संगठन के सम्मुख वैकल्पिक व्यवहारों की बहुत बड़ी संख्या होती है। इनमें से कुछ तो व्यक्ति के चेतना पटल पर होते हैं और कुछ नहीं होते। चयन अथवा निर्णय का अर्थ यह है कि इनमें से प्रत्येक क्षण के लिए एक व्यवहार को छाँट लिया जाता है। कुछ समय तक व्यवहार को निर्धारित करने वाली निर्णयों की ऐसी शृंखला को रणनीति (Strategy) कहा जाता है। प्रत्येक रणनीति के अपने कुछ सम्भावित परिणाम होते हैं। तार्किक निर्णय का कार्य ऐसी रणनीति का चयन करना है जो अपेक्षित परिणामों की दृष्टि से उत्तम की जाती है। निर्णय की प्रक्रिया में तीन कदम होते हैं—पहले सभी वैकल्पिक रणनीतियों की सूची बनायी जाती है दूसरे प्रत्येक रणनीति के सभी परिणामों का निर्धारण किया जाता है तथा तीसरे इन परिणामों पुजों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। एक बार जब एक रणनीति अपना ली जाती है तो उसे बदल कर दूसरी रणनीति अपनाया जाना उचित नहीं होता क्योंकि समय का बड़ा महत्व है। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति ने डाक्टर बनने के लिए अपने जीवन के सात वर्ष प्रशिक्षण में व्यतीत किए और दस वर्ष उसके व्यवहार में लगा दिए तो इसके बाद उसके यह सोचने का प्रश्न नहीं उठता कि उसे डाक्टर बनना चाहिए अथवा इंजीनियर बनना चाहिए। यही बात प्रशासनिक व्यवहार पर लागू होती है।

प्रशासनिक व्यवहार में ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका है। ज्ञान के द्वारा यह निर्धारित होता है कि किन वैकल्पिक रणनीतियों से कौन से परिणाम प्राप्त होंगे। कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से इन कार्यों के परिणामों को नहीं जान सकता। वह भविष्य के परिणामों की अपेक्षा कर सकता है। ये अपेक्षाएँ ज्ञात अनुभवात्मक सम्बन्धों तथा वर्तमान स्थिति के बारे में सूचना पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए सेवावर्ग के चयन को प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया का उल्लेख किया जा सकता है। इसमें प्रत्येक प्रत्याशी की योग्यता के बारे में परीक्षाओं से सेवा मूल्यांकन से तथा अन्य साधन स्रोतों से आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं। इन आँकड़ों के आधार पर तुलनात्मक भविष्यवाणी करके यह निर्धारित किया जाता है कि कार्य पर कौन सा प्रत्याशी सबसे सन्तोषजनक कार्य करेगा। यदि भविष्यवाणियाँ सही हैं तो सही निर्णय लिया जा सकेगा।

गैर सरकारी संगठना म निर्णय लने की समस्या सरकारी प्रभिकरणा की अपेक्षा अधिक सम्ल ज्ञाती ह। गैर-सरकारी संगठना म कवल उन्हीं परिणामा का ध्यान म रखा जाता है जो संगठन को प्रभावित करत है जबकि सरकारी अभिकरण म निर्णय का सामाजिक मूल्या के प्रकाश म देखा जाता है। उदाहरण के लिए जब एक गैर सरकारी निगम का अध्यक्ष अपने किसी सम्बन्धी का फम म पद सौंपना चाहता ह ता उस यह देखना होगा कि नियुक्ति का फम की कार्य कुशलता पर क्या प्रभाव पडगा। किन्तु यदि उसा पद पर लोक सवा म नियुक्ति करनी हो ता उस यह देखना होगा कि इस काय का लोक सवा म अवसर की समानता क सिद्धात पर क्या प्रभाव पडगा।

संगठन म व्यक्ति का व्यवहार स मश्रित प्रकृति का हाता है इसलिए कोई निर्णय लेते समय संगठन के सदस्य को अन्य सदस्या के निर्णयों स भी प्रभावित होना पडता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपने कार्यों क परिणामा के बारे म सोचने के साथ साथ दूसरा के कार्यों पर भी विचार करना होता है। यह कारक सम्पूर्ण प्रशासी व्यवहार की प्रक्रिया का एक मूलभूत तत्त्व है। प्रशासक को कोई रणनीति चुनन से पूर्व यह देखना होगा कि उसने क्या रणनीति चुनी है इसी प्रकार उसको भी यह देखना होगा कि उसने क्या रणनीति अपनायी है। प्रशासनिक कार्य एक प्रकार स टीमवर्क होता है। इसमे प्रत्येक सदस्य को अपना काय तो कुशलता स करना ही है साथ ही अन्य के कार्यों की अपेक्षा का ध्यान भी रखना है। सभी के कार्यों म समन्वय रखना ह तथा प्रत्येक का दूसरा के निर्धारित कार्यों की सूचना प्रदान की जाती है। समन्वय के अभाव म सहयोग प्रभावहीन बन जाता है तथा अपने लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाता।

प्रशासनिक व्यवहार की सीमाए
(Limits of the Administrative Behaviour)

किसी एक अकेले व्यक्ति का व्यवहार तार्किकता की उच्च श्रेणी तक पहुच जाए यह असम्भव है। प्रत्येक व्यक्ति के सामने विकल्पा की संख्या इतनी अधिक रहती है तथा उसे प्राप्त सूचना इतनी व्यापक होती है कि वस्तुगत तार्किकता के करीब पहुचना भी असम्भव होता है। व्यक्तिगत चयन कुछ प्रदत्ता के परिवेश म होता है। इन प्रदत्ता (givens) द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत ही यह व्यवहार को समायोजित किया जाता है।

प्रशासनिक व्यवहार की वस्तुगत वास्तविकता के लिए तीन बाता का होना आवश्यक है-(क) तार्किकता के लिए आवश्यक है कि पूर्ण ज्ञान हो तथा प्रत्येक चयन के प्रत्याशित परिणामा का पूर्वानुमान हो। वास्तव म परिणामा का ज्ञान हमेशा अधूरा रहता है। (ख) ये परिणाम भविष्य म प्राप्त होते हैं अत कल्पनात्मक रूप से उनके साथ संलग्न मूल्या का ध्यान रखा जाए। इन मूल्या का अनुमान भी

केवल अपूर्ण रूप में ही लगाया जाता है। (अ) तार्किकता के लिए यह आवश्यक है कि सभी सम्भावित वैकल्पिक व्यवहारों में से चयन किया जाए। वास्तविक व्यवहार में इन सभी सम्भावित व्यवहारों में से केवल कुछ ही ध्यान में आ पाते हैं। इन कारणों से मानवीय व्यवहार की तार्किकता सीमित हो जाती है।

प्रशासनिक सिद्धान्त का सम्बन्ध मुख्य रूप से मानवीय सामाजिक व्यवहार के तार्किक एवं अतार्किक पहलुओं के बीच की सीमा रेखा से होता है। प्रशासनिक क्षेत्र में यद्यपि मानवीय व्यवहार तार्किक होता है किन्तु उसकी यह तार्किकता सीमित है और इसीलिए संगठन तथा प्रशासन के उपयुक्त सिद्धान्त के लिए यहाँ स्थान रहता है।

प्रशासनिक व्यवहार को समझने की दृष्टि से यहाँ आर्थिक व्यवहार के साथ उसकी तुलना कर ली जाय तो उचित होगा। साइमन ने आर्थिक व्यक्ति और उसके चचेरे भाई प्रशासनिक व्यक्ति के मध्य अन्तर किया है। उसके मतानुसार आर्थिक व्यक्ति उसके लिए उपलब्ध सभी विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करता है, जबकि प्रशासनिक व्यक्ति केवल संतोषजनक या ठीक-ठाक कार्य से ही सन्तुष्ट हो जाता है। आर्थिक व्यक्ति इसकी समस्त जटिलताओं के साथ वास्तविक दुनिया पर विचार करता है। प्रशासनिक व्यक्ति यह मानता है कि उसके द्वारा देखी गई दुनिया एक भनभनाती हुई तथा भ्रम उत्पन्न करती दुनिया का एक सरलीकृत प्रतिरूप है। वह इस सरलीकरण से इसलिए सन्तुष्ट हो जाता है क्योंकि वह मानता है कि वास्तविक दुनिया मुख्यतः खाली है। वास्तविक दुनिया के अधिकांश तथ्य उसके सामने आने वाली समस्याओं से सम्बन्ध में अधिक सगति नहीं रखते। अपनी इन दो विशेषताओं के कारण प्रशासनिक व्यक्ति सभी सम्भावित व्यावहारिक विकल्पों की परीक्षा किए बिना ही अपना चयन कर लेता है। वह अपने निर्णय अपेक्षाकृत सरल नियमों के आधार पर ले लेता है।

प्रशासन में निर्णय प्रक्रिया

(Decision Making)

संगठन का आधुनिक सिद्धान्त जिन समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सम्बन्धी पहलुओं पर बल देता है उनका एक सहज परिणाम यह हुआ है कि संगठन में चयन के क्षेत्र में नियम और पद सोपान प्रमुख न रहकर नेतृत्व एवं निर्णय प्रक्रिया बन चुके हैं। साइमन और उसके साथियों द्वारा आरम्भ किया जाने वाला यह प्रयास तथा बनार्ड, कूपर, सामाजिक और लडमुट तथा मार्च और डसन आदि कितने ही प्रशासकों के वैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर इतना आगे बढ़ चुका है कि प्रशासकीय निर्णय प्रक्रिया का अध्ययन करने उसे समझने विवेचित करने एवं वैज्ञानिक बनाने के लिए नए-नए मॉडल प्रस्तुत किए जा रहे हैं। निर्णयकर्ता तथा निर्णय प्रक्रिया का विज्ञान आदि शोधकों से हाल ही में जो सामग्री प्रकाशित हुई है वह निर्णय प्रक्रिया के महत्त्व को समझाने की अपेक्षा

निर्णय प्रक्रिया की जटिलताओं एवं सूक्ष्मताओं पर एक उपयोगी एवं सार्थक दृष्टि डालती है।

निर्णय प्रक्रिया प्रकृति एवं क्षेत्र
(Decision Making Process Nature & Scope)

प्रशासन अथवा संगठन कुछ कार्य विशेषों के संपादन के लिए बनाए जाते हैं और किसी भी मानवीय कार्य को भौतिक रूप से सम्पन्न करने के लिए एक मानसिक निर्णय की पूर्व आवश्यकता होती है अर्थात् पहले एक निर्णय प्रक्रिया आरम्भ होती है और जहां वह रुक जाती है वही कार्य सम्बन्धी निर्णय जन्म ले लेता है। यदि निर्णय यह हो कि अभी निर्णय नहीं लेना है तो यह भी एक निर्णय है और प्रशासक की प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया इन्हीं निर्णय एवं उप निर्णयों से बंधी होती है। निर्णय प्रक्रिया को प्रशासकीय संगठन का केन्द्रबिन्दु अथवा हृदय मानने वाले सभी लेखक यह मानते हैं कि प्रत्येक संगठन में यह निर्णयकर्त्ता केन्द्र एक निर्णायक भूमिका निभाता है और संगठन के अन्य सभी अंग प्रत्यक्ष इसकी अनुपालना मात्र करते हैं। प्रशासन अथवा संगठन में यदि उच्च स्तरों पर नीति निर्माण व यंत्र संचालित होता है तो वह एक सद्धांतिक, जटिल एवं व्यापक निर्णय होता है जिसमें राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रतिक्रियाएं आपस में अनुबद्ध होती हैं। इसी प्रकार नीति क्रियान्वयन के क्षेत्र में भी संगठन का हर स्तर प्रशासकीय निर्णय लेता है जो अपनी श्रेष्ठता एवं व्यवहारिकता के लिए कुशल नेतृत्व एवं प्रभावशाली संचार व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार निर्णय प्रक्रिया का क्षेत्र प्रशासकीय नेतृत्व एवं संगठनात्मक संचार व्यवस्था से इस तरह अन्तसम्बद्ध है कि संगठन की सारी सफलता निर्णय प्रक्रिया की वैज्ञानिकता पर निर्भर कही जा सकती है। आदर्शात्मक एवं व्यवहारिक दोनों ही दृष्टियों से निर्णय प्रक्रिया के कार्य दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उनसे प्रशासकीय योजनाओं से उत्पन्न आकांक्षाओं की पूर्ति होती है प्रशासकों की भावनात्मक आवश्यकताओं को परितोष मिलता है संगठन के निम्न स्रोत उत्पन्न होते हैं और संगठन के अन्दर तथा बाहर के पारस्परिक विरोध एवं द्वन्द्व के समाधान होता रहता है। इतना ही नहीं व्यक्तिगत रूप से भी निर्णय प्रक्रिया एक कठिन दुविधाजनक एवं व्यक्तिपरक कार्य है। निर्णयकर्त्ता चाहे सृजनात्मक निर्णय ले अथवा घिसा पिटा रूटीन निर्णय दोनों ही स्थितियों में बुद्धि एवं भावना के तन्तुओं को झकझोरता है। अनिश्चय एवं सम्भावनाओं की चिन्ता उसे सदैव घेरे रहती है और अपनी निर्णय प्रक्रिया के माडलों में वैद्य विवेक (Rationality) और अबुद्धिवादी तत्वों (Irrational elements) के अनुपात के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए सचेष्ट होना है। संगठन अध्येताओं में, राज कटाना और मार्टिन शुबिक क्रमश इसी प्रकार के बुद्धिवादी और अबुद्धिप्रधान माडलों के प्रणेता हैं। विलियम जी गोरे इन दोनों प्रतिवादी मान्दलों के बीच एक मध्यमार्गी ह्यूरिस्टिक मान्दल (Heuristic

model) बनाने का प्रयास करते हैं जिसके द्वारा निर्णय प्रक्रिया की बनावट व क्रियान्विता में फैला सकता के बीच एक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी समन्वय या विकल्प प्राप्त हो सके।

प्रशासकीय निर्णय का क्षेत्र केवल नीति निर्माण एवं नीति क्रियान्वयन तक ही सीमित होकर संगठन के कर्मचारियों के मनोबल तथा आचरण को भी समाहित करता है। हर्बर्ट साइमन की सारी शोध प्रशासकीय निर्णय को व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य में देखती हुई उसे आचरण का एक नियामक तत्त्व मानती है जिसकी श्रेष्ठता एवं प्रयोजनशीलता सर्वांग के मनोबल को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। निर्णय स्थिति के नकारात्मक एवं सकारात्मक पहलू प्रशासकों एवं राजनेताओं के मध्य नीति के प्रकाश में आते हैं। साइमन मानता है कि निर्णय प्रक्रिया के अव्यवस्थित होने पर ही प्रशासकीय सत्ता का अवरोध क्षेत्र (Zone of resistance) पनपने लगता है और प्रशासकीय नेतृत्व संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में चुनौतियाँ एवं बाधाएँ अनुभव करता है। आधुनिक संगठन सिद्धान्त निर्णय प्रक्रिया की इसी केन्द्रीयता पर बल देता है और गहराई व विस्तार से समझने के लिए उसे संगठन की समग्रता के संदर्भ में अभिनव दृष्टि से प्रस्तुत करता है।

निर्णय प्रक्रिया अर्थ एवं दृष्टिकोण
(Decision Making Process Its Meaning and Approaches)

निर्णय लेने की प्रक्रिया कुछ कार्यों के विकल्पों में से करणीय कार्य को छाँटना है। जब यह कहा जाता है कि निर्णय लिया गया तो इसका अर्थ यह है कि एक लम्बी प्रक्रिया से गुजर कर यह तय कर लिया गया है कि क्या किया जाएगा। हमन के शब्दों में निर्णय निर्धारित की गई एक ऐसी स्थिति है जो कार्य के वास्तविक रूप में सम्पन्न होने से पहले आती है। यह प्रबन्धक द्वारा लिया गया एक निष्कर्ष है कि उसको तथा दूसरों को उसके बाद क्या करना चाहिए।[1] टेरी के मतानुसार निर्णय दो या अधिक सम्भावित विकल्पों में से एक व्यावहारिक विकल्प को चुनना है। यह परिभाषा थोड़े से शब्दों में निर्णय की पद्धति का स्पष्टीकरण करती है। वस्तुतः निर्णय लेने वाले व्यक्ति के सम्मुख अनेक विकल्प होते हैं। इन विकल्पों के गुण-दोषों पर वह बौद्धिक रूप से विचार करके यह निश्चित करता है कि उसे क्या करना चाहिए। एक निर्णायक की स्थिति उस राहगीर के समान है जिसके सामने कई रास्ते खुले हुए हों तथा उनमें से उसे किसी एक को चुनना हो। मेनले जोन्स (Manley Jones) का कहना है कि निर्णय एक समाधान होता है जो कुछ विकल्पों की परीक्षा करने के बाद छाँटा जाता है। यह इसीलिए छाँटा जाता है कि निर्णय लेने वाला यह पहले से ही देख लेता है कि उसके द्वारा चुने गए कार्य

1 H mann op cit p 111
2 Terry op cit p 52

प्रक्रिया को केवल एक मशीन के रूप म साधन मान लना गलत होगा। संगठन म व्यक्ति की भावनाए आवश्यकताए प्रत्याशाए और महत्वाकांक्षाए होती हैं। उनके ज्ञान एव समस्याओ का सुलझान की सामर्थ्य की सीमाए होती है। साइमन के शब्दो म निर्णय का इस पूर्वविचारो म से निकाले गए निष्कर्ष मान सकत हैं। ये निष्कर्ष बड निर्णयो के लिए पूर्वविचार बन जात ह।[1] निर्णय की य विभिन्न परिभाषाए यह स्पष्ट करती हैं कि निर्णय लेना एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक निष्कर्ष पर पहुचा जाता है। निष्कर्ष पर पहुचने स पूर्व इस प्रक्रिया पर कौन कौन से तत्व प्रभाव डालते हैं तथा यह प्रभाव निर्णयो के रूप को किस प्रकार बदल देता है यह जानना नाक प्रशासन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण किन्तु कठिन काय है।

व्यक्तिगत और संगठनात्मक निर्णय ✓

प्रशासन क क्षेत्र म भी निर्णय प्रक्रिया उसी प्रकार महत्वपूर्ण होती है जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन म। व्यक्तिगत और संगठनात्मक अथवा प्रशासकीय दोनो ही निर्णयो की प्रकृति प्राय एक जैसी होती है तथापि दो। स्थितियो म कुछ आधारभूत अन्तर ह—

प्रथम व्यक्तिगत निर्णय एक सामित धरातल क होत है जबकि प्रशासनिक निर्णय सामाजिक संगठनात्मक एव तकनीकी निर्णय कह जा सकते हैं। गोरे एव डाउसन ने प्रशासनिक निर्णयो को व्यक्तियो के मानसिक प्रयासो का एसा परिणाम माना है जो संगठन की स्थिति का सामूहिक रूप से प्रभावित करते ह। प्रशासनिक अथवा संगठनात्मक निर्णय संगठन के उद्देश्यो की एक सीमा रेखा म आबद्ध होत है। राजनीतिक नीति निर्णय उन्हे और भी अधिक सीमित करत हैं। प्रशासकीय नेतृत्व नीतियो को जिस रूप म देखता है उसकी यह व्याख्या प्रशासनिक निर्णय को मूल्य एव तथ्य प्रदान करती है तथा उस निर्णय से प्रभावित होने वाले संगठन के उद्देश्य अथवा संगठन के लाभो को प्राप्त करन वाल जन साधारण उस निर्णय को सन्तुलित एव नियमित करते है। दूसर शब्दो म प्रशासनिक निर्णय संगठन के उद्देश्य नीति नेतृत्व साधना उपभोक्ताओ क हित आदि निर्णायक तत्वो स सम्बन्धित होत हैं और इस रूप स संगठन निर्णय प्रक्रिया व्यक्तिगत निर्णय प्रक्रिया स अधिक लम्बी अधिक समयपूर्ण अधिक सीमित और कम सरल होती है।

दूसरे, प्रशासनिक अथवा संगठन के निर्णयो को प्रत्यायोजित किया जा सकता है जबकि व्यक्तिगत निर्णयो को व्यक्ति स्वय ही लेता है उनको हस्तांतरित नहीं कर सकता तथापि व्यक्तिगत क्षेत्र क निर्णयो म भी इसी की प्रकृति प्रमुख होती है उनका प्राथमिक रूप स विभिन्न व्यक्तियो की सलाह पर छोडा जा सकता है। इस प्रकार कुछ विशेष प्रकृति के संगठनात्मक निर्णयो को एक व्यक्ति का इच्छा स लिया जा सकता है।

1 *H rb rt A S mon* Comments on the Theo y of Orga at on Am ic P l t cal S c Re iew 46 1130 Decembe 1952

तीसरे, जहां तक निर्णयों की नियान्वित का प्रश्न है व्यक्तिगत निर्णय प्राय एक व्यक्ति द्वारा और सगठनात्मक निर्णय अनेक व्यक्तियों द्वारा नियान्वित किए जाते हैं। सगठनात्मक निर्णयों का उत्तरदायित्व तब तक किसी एक व्यक्ति पर नहीं हो सकता जब तक कि उसे सौंपा ही न जाए। सचार-साधनों के अधिकाधिक प्रयोग द्वारा तथ्यों के ज्ञान और सगठन के लक्ष्य के आधार पर समयानुकूल निर्णय लेने के लिए सगठन के निर्णयों का उत्तरदायित्व किसी एक व्यक्ति को सौंपना जरूरी होता है। सचार साधन सम्बन्धी प्रशासकीय निर्णय लेने में केन्द्र अधिक कुशल होता है और यही कारण है कि सगठन में उसी व्यक्ति को निर्णय लेने का अधिकार सौंपा जाता है जो केन्द्रीय स्थिति पर हो। सगठन का औपचारिक नेता प्राय निर्णय लेने के लिए उत्तरदायी होता है। एक समय में लिए जाने वाले निर्णय पर प्रभाव डालने वाली परिस्थितियाँ अनेक प्रकार की होती है।

प्रशासनिक निर्णयों की प्रकृति भी व्यक्तिगत निर्णयों की भाँति अत्यन्त जटिल होती हैं। निर्णयों के परिणाम की आशकाएं प्राय व्यक्ति को इतना भयभीत कर देती है कि वह इस उत्तरदायित्व का सम्भालने की अपेक्षा अपना बड़े से बड़ा बलिदान देने को भी तैयार हो जाता है। प्रत्येक निर्णय चाहे वह कितना ही सोच समझकर लिया गया हो उससे कुछ व्यक्तियों को प्रसन्नता होती है और कुछ को चिन्ता कुछ व्यक्ति उसे बहुत अच्छा मानते है जबकि दूसरे लोग उसकी आलोचना करते है।

प्रशासनिक तथा राजनीतिक निर्णय

निर्णय और निर्णय प्रक्रिया का प्रशासन के सदर्भ में विशेष तकनीकी अर्थ है। प्रत्येक मानसिक एवं बौद्धिक कार्य की प्रक्रिया निर्णय प्रक्रिया की पर्यायवाची मानी जा सकती है किन्तु सन्दर्भों का अन्तर उनमे प्रकृतिजन्य अन्तर भी उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णयों की तुलना की जा सकती है। चूँकि राजनीतिक निर्णयों का क्षेत्र नीति सम्बन्धी प्रश्न होते हैं प्रशासन नीति सम्बन्धी निर्णयों में भाग लेते हुए भी उन नीतियों तक सीमित रह जाता है। अत स्वभावत जहाँ राजनीतिक निर्णय व्यापक स्तर पर कुछ कुछ अस्पष्ट भी हो सकते हैं वहाँ प्रशासनिक निर्णयों मे निश्चितता एव स्पष्टता अधिक आवश्यक है। इसी प्रकार उद्देश्यों की दृष्टि से भी राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय बहुत कुछ एक उद्देश्य रखते हुए भी क्रमश लोक-कल्याण और कार्य कुशलता के उद्देश्यों पर अधिक बल देते है। अत निर्णय प्रक्रिया में भाग लेने वाला राजनीतिज्ञ अपने निर्णय को जिस परिप्रेक्ष्य में देखता है वह परिप्रेक्ष्य उस प्रशासक का नहीं हो सकता जिसे अपने निर्णय को निपुणता में क्रियान्वित करना है। इसी प्रकार राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णयों में वैकल्पिक बहुलता एव अपना निर्णय प्रक्रिया की अवधि एवं निर्णय के निर्धारक तत्वों आदि में अन्तर देखे जा

सकते हैं। राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया स्वभावत प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया से अधिक जटिल अधिक मिश्रित अधिक चुनौतीपूर्ण एव कम वैज्ञानिक होती है। राजनीतिक निर्णय मूल्यों की दृष्टि से भी एक दूसरी भावभूमि पर खड़े होते हैं जबकि प्रशासनिक निर्णयों को सभवत उनके मूल्य-तत्वों को घटा कर अधिक तथ्यपूर्ण बनाया जा सकता है। यद्यपि प्रशासकीय निर्णय राजनीतिक निर्णयों के अग कहे जा सकते हैं तथापि क्षेत्र प्रकृति तत्त्व एव प्रक्रिया सभी दृष्टियों से भिन्न होने के साथ-साथ वे अपने आप में ऐसी इकाइया है जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रशासनिक नेतृत्व एव सगठन की सचार-व्यवस्था से प्रभावित होता रहता है।

निर्णय प्रक्रिया एव नीति में सम्बन्ध

निर्णय लेने की प्रक्रिया का अर्थ समझते समय उसके एव नीति (Policy) के सम्बन्ध को समझ लेना चाहिए। सगठन की नीति का निश्चय निर्णयों की एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है। नीति निर्धारित करते समय सगठन के शीर्ष के अधिकारी अनेक विकल्पों में से कुछ को चुनते है। जब सगठन की नीति निर्धारित हो चुकती है तो बाद में लिए जाने वाले निर्णय इन नीतियों के अनुसार ही होते हैं। सगठनात्मक नीति द्वारा एक मार्ग निश्चित कर दिया जाता है और जैसा कि टैरी (Terry) का कथन है निर्णय प्राय नीति द्वारा प्रदर्शित मार्ग के अनुसार ही निर्धारित किया जाता है।[1] उनके मतानुसार नीति अपेक्षाकृत विस्तृत होती है अनेक समस्याओं को प्रभावित करती है तथा इसका प्रयोग बार बार किया जाता है। इसके विपरीत निर्णय का सम्बन्ध एक विशेष समस्या से होता है और इसका प्रयोग लगातार नहीं किया जा सकता। सगठन में समय-समय पर लिए जाने वाले निर्णय नीतियों की भांति स्थायी पवित्र और अपरिवर्तनीय नहीं होते। इनको आवश्यकता परिस्थिति एव वातावरण के अनुसार बदला जा सकता है। इस सम्बन्ध में साइमन का यह कहना सही है कि प्रशासकीय निर्णयों से सलग्न मूल्य (Values) किसी मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक अर्थ में कदाचित ही अन्तिम मूल्य होते है। साइमन का मत है कि अधिकांश लक्ष्यों और क्रियाओं के मूल्य का स्रोत साधन-साध्य सम्बन्ध (Means-ends relationship) होता है जो उनको ऐसे लक्ष्यों एव क्रियाओं से सम्बद्ध करता है जो अपने आप में मूल्यवान हैं।[2]

नीति और निर्णय की प्रक्रिया के सम्बन्ध के समान ही निर्णय की प्रक्रिया एव सगठन का भी परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। निर्णय लेने वाले व्यक्ति पर सगठन के रूप द्वारा कुछ सीमाए लगाई जाती हैं। साइमन के शब्दों में सगठन व्यक्ति से उसकी कुछ निर्णयात्मक स्वायत्तता लेकर उसके स्थान पर एक सगठनात्मक निर्णय लेने की प्रक्रिया स्थापित कर देता है।[3]

1 *Terry* op cit p 52
2 *Herbert A Simon* op cit p 5
3 *Herbert A Simon* op cit p 8

प्रशासनिक निर्णय के बारे में दृष्टिकोण

प्रशासनिक निर्णय अथवा निर्णय प्रक्रिया का विश्लेषण करते समय लोक प्रशासन के अध्येता उसे निम्न पाँच दृष्टियों से देखते हैं—

(1) प्रशासनिक निर्णय विकल्प चयन का एक चरम स्थिति है।
(2) प्रशासनिक निर्णय स्थिति नहीं बल्कि चयन प्रक्रिया है।
(3) प्रशासनिक निर्णय प्रत्येक प्रकार की स्थिति अथवा प्रक्रिया मात्र न होकर एक विशेष प्रकार की चयन स्थिति है।
(4) प्रशासनिक निर्णय में केवल वे ही प्रक्रियाएँ समाविष्ट होती हैं जो वास्तविक चयन प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।
(5) कुछ लोग यह मानते हैं कि निर्णय प्रक्रिया चयन की सभी प्रक्रियाओं तथा उनके बाद की स्थितियों को भी अपने अध्ययन क्षेत्र में समाहित करती है।

प्रशासनिक निर्णय के अध्ययन मॉडल में चाहे संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाए अथवा व्यापक यह स्वाभाविक है कि व्यक्ति, समूह और वातावरण तीनों तत्वों की क्रिया प्रतिक्रियाएँ अनिवार्यतः दिखाई देंगी। प्रशासनिक निर्णय में प्रशासक की अपनी भूमिका होगी और उसकी अपनी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, आचरण सिद्धान्त, मूल्य-आस्था एवं संगठन निष्ठा के प्रश्न प्रत्येक निर्णय के साथ उभर कर आएँगे। इसी प्रकार व्यक्तियों का एक समूह होने के कारण कोई भी संगठन निर्णय समूह मनोविज्ञान, समूह हित, समूह आचरण तथा समूह मनोबल आदि के प्रश्नों से प्रभावित ही नहीं होगा बल्कि सीमित एवं विस्तृत भी बनेगा। वातावरण समूह और नेतृत्व की प्रक्रियाओं तथा विस्तृत परिप्रेक्ष्य में संगठन के मूल्यांकन से निर्मित एक प्रशासकीय संस्कृति को जन्म देता है और यह प्रशासकीय संस्कृति (Administrative Culture) उन मूल्यों एवं तथ्यों का महत्त्व प्रदान करती है जिनके सन्दर्भ में नीति निर्णयों के विकल्प उभरने लगते हैं। प्रशासनिक निर्णय इन्हीं तत्त्वों प्रक्रियाओं एवं परिणामों (Forces Processes and Outcomes) का अध्ययन है। ये तत्त्व प्रक्रियाएँ और परिणाम अन्तसम्बद्ध हैं अन्योन्याश्रित हैं और एक अविरल प्रवाह के रूप में संगठन को दिशा विशेष प्रदान करते हैं। प्रशासनिक निर्णयों के अध्ययनकर्ता जब इन अन्तर्क्रियाओं की गहराई में जाते हैं तो अपने अध्ययन का दृष्टिकोण निर्धारित करने के लिए उन्हें निर्णय के कुछ विशेष तत्त्वों पर बल देना पड़ता है। प्रशासनिक निर्णय-साहित्य में अब तक ये तीन दृष्टिकोण रहे हैं—

प्रथम	—	Intuitive Approach
द्वितीय	—	Normatic Approach
तृतीय	—	Scientific Approach

प्रथम दृष्टिकोण निर्णय प्रक्रिया मे अप्रत्याशित एव संयोग तत्त्वो की अपेक्षा इस बात पर अधिक बल देता है कि निर्णयकर्ता अपने अन्तर्ज्ञान एव अन्तर्दृष्टि से स्थिति का मूल्यांकन कर विकल्पो का चयन करे। द्वितीय दृष्टिकोण मूल्यपरक है और तथ्यो को गौण मानकर मूल्यो को निर्धारक कारक मानता है। तृतीय दृष्टिकोण मे मूल्यो का अपना स्थान है किन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि निर्णय की आधारभूमि और परिणाम के बीच की सभी स्थितियो को विशेषकर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एव सगठनात्मक दशाओ का तथ्यात्मक विश्लेषण कर उसे उपयोगी एव व्यावहारिक विकल्प निकाला जाए जो सन्तोषपूर्ण हो।

निर्णय प्रक्रिया के तत्त्व या अग

सगठन के सदर्भ मे प्रशासनिक निर्णय तत्त्व को विश्लेषित करने के लिए यह स्वाभाविक है कि इन सभी तत्त्वो एव पहलुओ पर दृष्टि डाली जाए जो निर्णय प्रक्रिया के अविभाज्य अग है। निर्णय प्रक्रिया मे एक बौद्धिक गतिविधि तथा एक तार्किक मार्ग का अनुसरण करने के साथ साथ कितनी ही अतार्किक भावनात्मक जनतन्त्रात्मक विनम्रतात्मक एव रहस्यात्मक तत्त्व भी होते हैं। निर्णय प्रक्रिया का चित्र (Profile) एक प्रकार का प्रयास है जिसमे मूल्य तथ्य द्विविभाजन (Value Fact Dichotomy) का आधार लेकर चलना कठिन है। इसी प्रकार मूल्य अथवा तथ्य मे से किसी एक पर बल देना भी निर्णय की वैज्ञानिकता को नष्ट करना है। अत निर्णय प्रक्रिया के अध्ययन के लिए एक ऐसा प्रतिमान उपयोगी एव प्रयोजनशील होगा जो विभिन्न तत्त्वो को आनुपातिक दृष्टि से सतुलित कर सके। निर्णय प्रक्रिया के प्रमुख तत्त्व ये हैं—

(i) सगठन के उद्देश्य (Objectives)
(ii) सगठन की नीतिया (Policies)
(iii) सगठन का नेतृत्व (Leadership)
(iv) प्रशासनिक परिस्थितिया (Administrative Situations)
(v) विकल्पो का मूल्याकन (Evaluation of Options)
(vi) अन्तिम चयन (Final Choice)

इस तरह एक प्रशासक के निर्णय मे मूल्य तथ्य एव उनके मूल्यांकनकर्त्ता अधिकारी तथा सगठनात्मक परिस्थितियाँ सापेक्ष दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती हैं। निर्णय जितना गम्भीर होगा उतना ही मूल्यो की ओर झुकेगा किन्तु उसकी व्यावहारिकता उपयोगिता एव लोकप्रियता उतनी ही अधिक होगी जितना कि वह तथ्यो के वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित हो सकेगा। प्रशासनिक निर्णय इस दृष्टि से व्यक्तिगत और राजनीतिक निर्णयो से भिन्न होते हैं क्योकि उनमे समूह बोध की चेतना अधिक होती है और होनी भी चाहिए। प्रशासकीय निर्णय व्यक्तिगत निर्णयो की अपेक्षा अधिक विवेकसम्मत होते हैं और उनके परिणाम भी दूरगामी

प्रशासन का निर्णय प्रक्रिया के सभी विद्यार्थी यह मानकर चलते हैं कि प्रक्रिया म प्रत्येक स्तर अथवा कदम एक दूसरे से इतना सम्बद्ध है कि पहला स्तर दूसरे स्तर का निर्णायक कहा जा सकता है। गुण्डवग निर्णय प्रक्रिया को छ स्तरो से गुजरता हुआ एक प्रशासनिक क्रिया मानता है। उनके शब्दो म य स्तर हैं—

(i) समस्या को परिभाषित करना समझना और सीमित करना।
(ii) समस्या का मूल्यांकित करना।
(iii) समाधान के मूल्यांकन की कसौटियाँ निर्धारित करना।
(iv) सूचना एव सामग्री सकलित करना।
(v) समाधानो के विकल्पों म से एक का चयन।
(vi) स्वीकृत समाधान का प्रयोग।

मिचफील्ड इन्ही विभिन्न स्तरो को दूसरी शब्दावली म पाँच मानता है। हरबर्ट साइमन भी इसी प्रकार निर्णय प्रक्रिया को तीन प्रमुख स्तरों म विभाजित करता है। उसके अपने शब्दों म निर्णय लेने की क्रिया मुख्य रूप से तीन चरणो म समाहित की जा सकती है —

(i) निर्णय लेने के लिए अवसर ढूढना
(ii) काय के लिए सम्भावित विकल्प पहचानना और
(iii) विकल्पो म से एक को चुनना।

निर्णय प्रक्रिया के प्रथम चरण को मैं अन्वेषण काय (Intelligence Activity) मानता हूँ। दूसरे चरण को मेरी राय म स्वरूप निर्धारण कहा जाना चाहिए और तीसरे को मैं चयन क्रिया (Choice Activity) कहना चाहूगा। साइमन जिन्होंने प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया के साहित्य म एक क्रान्तिकारी योग दिया है यह मानते हैं कि निर्णय प्रक्रिया प्रशासनिक आचरण के विभिन्न स्वरूपो का ही एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। निर्णय-चक्र (Decisioning Cycle) म निर्णयकर्ता का बोध चेतना स्वीकृति, दूरदृष्टि आदि म सारी बातें निहित होती हैं जो आचरण के नियामक तत्त्व भी कही जा सकती हैं। निर्णय प्रक्रिया इन विभिन्न चरणो पर मूल्य तथा विभाजन के प्रश्न अपना प्रभाव डालते है और साइमन के मत म निर्णय का प्रयास विद्यमान स्थिति को बदलने का एक एसा प्रयास कहा जा सकता है जो कुल मिलाकर चयन प्रक्रिया म निर्णयकर्ता की अपनी भूमिका की महत्ता का मान है।

प्रथम चरण समस्या को पहचानना समझना और स्वीकार करना

निर्णय प्रक्रिया का पहला चरण समस्या का पहचानना समझना और स्वीकार करना है अर्थात् समस्या और समस्याहीनता के बीच की स्थिति म अन्तर करना। प्रशासन म यह एक बडी भारी दुविधा होती है कि किस समस्या माना जाए और किसे सामान्य। समस्याओं को पहचानना और स्वीकार करना अपने-आप म अनेको प्रश्नो को जन्म देता है जैसे (i) क्या समस्या लगती है अथवा है?

(म) क्या समस्या स्पष्ट दिखाई दे रही है। अथवा अन्य समस्याओं से उलझी हुई है? (य) समस्या को देखते समय क्या निर्णयकर्ता अपनी समस्याओं को उसमें तो मिला रहा है? (र) क्या समस्या को केवल समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि संगठन के किस स्तर पर समस्या को देखा अथवा समझा जाना चाहिए?

सरल शब्दों में समस्या का समझना या प्रथम उपचरण यह अपेक्षा करता है कि समस्या के क्षेत्र स्तर और प्रकृति का निर्धारण एवं निश्चयता से पहचाना जाए। प्रशासन की जटिल दुनिया में यह काम इतना सरल नहीं है जितना प्रायः लगता है क्योंकि संगठन की अन्तर्सम्बन्धित समस्याएं जब समग्रता में प्रस्तुत होती हैं तो स्वभावतः बाद भी निर्णयकर्ता उनके पहलुओं तथा विशिष्ट भागों को समझने में नौसिखिया ही भूल कर सकता है।

प्रथम प्रयास का दूसरा उपचरण समस्या के इतिहास की पहचानना है। प्रायः कितनी ही समस्याएं होती हैं जो पूर्वनिर्णय और निष्कर्षों में जन्म लेती हैं। समस्या का इतिहास स्थितियों के पूर्व अनुभव तथा स्थिति के निरन्तर विकास एवं परिवर्तित स्थिति को समझने में सहायता करते हैं। यह सच है कि ऐतिहासिक ज्ञान किसी भी प्रशासनिक समस्या की नवीनता एवं विचित्रता का परिचय नहीं देता किन्तु समस्या के इतिहास से परिचित निर्णयकर्ता एक विशेष लाभदायक स्थिति में होता है जिससे वह पुरानी और नई स्थितियों की तुलना द्वारा समस्या की गम्भीरता जटिलता एवं अन्तर्निभरताओं को सरलता से समझ सकता है। वास्तव में तथ्यों को एकत्रित करने का कार्य तभी प्रारम्भ किया जाना चाहिए जबकि पहले समस्या को उसकी पृष्ठ भूमि में भली प्रकार समझ लिया जाए। इसके बिना निर्णायक यह निश्चित नहीं कर पायेगा कि कौनसा तथ्य उपयोगी है और कौनसा नहीं। अध्यक्ष को यथासम्भव अधिक से अधिक तथ्य एकत्रित करने चाहिए यद्यपि कई बार वह आवश्यकता के अनुरूप तथ्य एकत्रित नहीं कर पाता। बहुत से तथ्य ऐसे होते हैं जिन्हें प्राप्त करने में काफी धन और समय व्यय होता है। डक्कर के अनुसार कोई ठीक निर्णय लेने के लिए यद्यपि सभी तथ्यों को प्राप्त करना जरूरी नहीं है तथापि यह अवश्य ज्ञात करना होगा कि उसके पास किस सूचना की कमी है ताकि वह यह जान सके कि निर्णय में कितनी जोखिम है तथा प्रस्तावित कार्य में कितनी कठोरता बरती जा सकती है।

इसी प्रथम चरण का तीसरा उपचरण समस्या से उत्पन्न स्थिति का सर्वेक्षण करना है। यह सर्वेक्षण निर्णयकर्ता को यह समझने में सहायता देता है कि स्थिति किस प्रकार की है समस्या स्पष्ट रूप में क्या चेतावनी देती है समस्या में कौन कौन सी नयी और विलक्षण बातें हैं समस्या का संगठनात्मक प्रभाव किन किन भागों पर होगा और कितना गहरा होगा आदि। स्थिति का यह सर्वेक्षण जिसे जॉन फ़िफ़नर ने स्थिति संस्थापन (Structuring the Situation) कहा

है समस्या को समझने का ही एक महत्वपूर्ण चरण है। स्थिति का मानसिक रूप से अध्ययन करते समय संगठन के मूल्य उद्देश्य और नीतियाँ स्थिति की एक विशेष प्रकार की जानकारी देती है और ऐसा करने से स्थिति जो अस्पष्ट उलझी हुई एवं अव्यवस्थित प्रतीत होती है धीरे धीरे आकार ग्रहण करने लगती है। स्थिति की यह साकारता निर्णयकर्त्ता संगठन और संगठन की उपलब्ध स्थितियों का एक ऐसा चित्र कही जा सकती है जिसे निर्णयकर्त्ता स्वयं बनाकर स्वयं ही देखना चाहता है और उसे सही करने की प्रक्रिया मे बार बार सुधारता है।

अगला उपचरण समस्या की भावी दिशाओं और नये क्षितिजों का अन्वेषण कहा जा सकता है। ऐसा करते समय निर्णयकर्त्ता स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास करता है और उसमें स्वयं सक्रिय भाग लेने लगता है। कल्पित तथ्यों और मूल्यों की अपनी तस्वीर में वह यह पहचानने का प्रयास करता है कि संगठन के उद्देश्य इस निर्णय में कितने उत्प्रेरक हैं। कौन कौनसी क्रिया प्रतिक्रियाएं दुर्बल बिन्दुओं का जन्म देंगी ? क्या निर्णय आगे की निर्णय प्रक्रिया को गम्भीर मोड़ देगा ? निर्णय का अनुपालन किस स्तर पर होगा और कौन-कौन से व्यक्ति अमुक निर्णय से किस सीमा तक किस प्रकार प्रभावित होंगे ?

निर्णय प्रक्रिया के प्रथम चरण की ये विभिन्न क्रियाएं बतलाती है कि निर्णयकर्त्ता एक सैनिक की तरह अपनी रणनीति तैयार करता है। स्ट्रेटजी या रणनीति (Strategy) का यह पहला स्तर इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है कि इस स्तर पर समस्या का माप की जाती है और यह नाप और माप ही समस्या के शरीर में रक्त मांस के तत्वों की प्रति स्थापित करती है। समस्या का क्षेत्र निर्धारित करना समस्या की गहराई नापना है उसके अन्तर्सम्बन्धों को पहचानना तथा उसे अन्य स्थितियों से अलग करना है। उसकी प्रकृति को गम्भीर और सकटकालीन बतलाना समस्या को संगठन की नीति और उद्देश्यों के लिए घातक मानना है। इस तरह प्रथम चरण का यह सर्वेक्षण यद्यपि निर्णय प्रक्रिया का आरम्भिक स्तर है तथापि इसमें मूल्य और तथ्यों का एक स्पष्ट संघर्ष देखा जा सकता है। मूल्य वे हैं जो नीति और संगठन के उद्देश्य की व्याख्या के अन्तर्गत निर्णयकर्त्ता की समझ में आते है और तथ्य व कल्पित स्थितियाँ हैं जो मूल्यों के चश्मे से देखी जा रही वर्तमान और भावी दुनिया की यथार्थ और सम्भावित वास्तविकताएं हैं। इस स्तर पर यह सम्भव है कि मूल्य तथ्यों को दबा दें चूंकि तथ्य अनुमानित हैं और मूल्य आदतों एवं परम्पराओं से सुदृढ़ होते हैं। साइमन की मान्यता है कि समस्या का यह स्तर निर्णय प्रक्रिया का हृदय है और आने वाले स्तरों पर यह प्रयास होता है कि जहां तक सम्भव हो समस्या से उसी तरह मुकाबला किया जाए जैसा इस स्तर पर सोचा गया था। बहुत कम स्थितियों में तथ्यों का यह दूसरा स्तर इतना कटु एवं कठोर होता है कि वह पहले स्तर की तस्वीर को प्रभावित कर सके। समस्या को

परिभाषित करना उस समस्याओं के पुंज से बाहर निकालना है और यह तभी सम्भव है जब समस्या का घेरा स्पष्ट रूप में दिखाई देता हो और नहीं दिख रहा हो तो स्थिति को इस प्रकार देखा जाए कि वह स्पष्ट हो जाए। इस चरण को जिसे सामान्य सर्वेक्षण या अन्वेषण कहना है प्रारम्भिक मूल्यांकन भी कहा जा सकता है। चूंकि इस स्तर पर निर्णयकर्त्ता अपने आप से तथा समस्या से जो प्रश्न कर रहा है वे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं और समस्या को पहचानने अथवा समझने के लिए यह आवश्यक है कि जिस समस्या पर निर्णय लेना है उसकी गहराई, गम्भीरता, परिणाम, अन्तर्सम्बन्ध एवं उपसमस्याओं के महत्व को इस तरह देखा जाए कि निर्णय यदि पूर्णतया प्रमाणिक नहीं है तो भी अन्वेषणात्मक (ह्यूरिस्टिक) दृष्टि से आगामी घटनाओं को तर्कसंगत प्रकाश देख सकें। इस स्तर पर यह आवश्यक है कि भूतकालीन अनुभव के आधार पर समस्या की समग्रता को ध्यान में रखते हुए वास्तविकता के सन्दर्भ में भविष्य का निर्धारण किया जाए। इसी प्रकार यह भी ध्यान रखा जाए कि निर्णयकर्त्ता अपने तथा समस्या के मध्य कोई सम्बन्धी समस्या से पृथक रखते हुए मानसिक दृष्टि से समस्या के अति समीप आने का प्रयास करें कि समस्या की जटिलताएं किस प्रकार टुकड़ों में समझ में आ सकें और इन टुकड़ों से एक सर्वांगीण चित्र का आकार मस्तिष्क में निर्मित किया जा सके।

समस्या को समझना अथवा उसे परिभाषित करना कई दृष्टियों से लाभदायक है। प्रायः सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करके कार्य निर्धारण लेने की प्रक्रिया टाली भी जा सकती है। यह आवश्यक है कि किसी संगठन में कार्य की वास्तविक माँग के पीछे कुछ लोगों के व्यक्तिगत हित अथवा कुछ नेताओं के अपने स्वार्थ निहित हों। समस्या के अध्ययन में स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है और तब प्रत्यक्ष या परोक्ष से सम्बन्धी कोई निर्णय लेकर विवाद में पड़ने की सम्भवतः आवश्यकता ही न हो। इसी कारण कि वह व्यक्तिगत स्तर पर उन असन्तुष्ट व्यक्तियों और नेताओं से मिलकर समस्या को सुलझा सकता है। इसके अतिरिक्त समस्या को परिभाषित करना इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके बिना उसे सुलझाने के लिए विभिन्न विकल्प नहीं सोचे जा सकते। समस्या को समझे बिना और उसके पहलुओं पर विचार किए बिना विकल्पों का चयन करना कभी-कभी बड़ा खतरनाक सिद्ध होता है। हरमन (Harmann) के अनुसार प्रबन्धात्मक निर्णय लेते समय सही उत्तर पाने की अपेक्षा सही प्रश्न पाना अधिक कठिन होता है। सही प्रश्न पाने से अभिप्राय उचित विकल्प ढूंढने से है। तीसरे, समस्या का समुचित विश्लेषण करने पर उस तत्व को ढूंढना सुगम हो जाता है जिसके माध्यम से व्यूह रचना (Strategy) बनाई जा सके। उदाहरणतया, यह कि प्रत्येक व्यवस्था में ऐसे तत्व अथवा भाग होते हैं जो अन्य की पूर्ति में सहायक होते हैं। इन तत्वों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—एक सीमित करने वाले तत्त्व (Limiting factors) और पूरक तत्त्व (Comple

mentary factors)। जब इन दोनों ही प्रकार के कुछ तत्वों म कुछ परिवतन होते हैं तो लक्ष्य प्राप्ति का माग भी बदलना होता है। बनार्ड के अनुसार रणनीति व तत्व (Strategic factors) निणय के वातावरण के केन्द्र बिन्दु होते हैं।

द्वितीय चरण स्वरूप निर्धारण

निणय प्रक्रिया का दूसरा चरण जिसे साइमन स्वरूप निर्धारण या Designing कहता है तथ्यों की खोज एव खोज की कसौटी भी कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में इस चरण के मुख्य रूप के दो उपचरण हैं। एक तथ्यों को सतनिपूर्ण ढग से समस्या के वातावरण से चुनना जो कपूर के शब्दों में एक दृष्टिकोण का प्रश्न है। दूसरे तथ्यों का मूल्याकन करना जो तथ्यों की तथ्यात्मक एव गम्भीरता के मूल्यात्मक प्रश्नों से सम्बन्धित है। एक निणयकर्त्ता जब समस्या को पहचान लेता है तो वह उसके अध्ययन की ओर उन्मुख होते समय उसके विश्लेषण के लिए मुख्य रूप से निम्न प्रकार के प्रश्न पूछता है—

(1) समस्या के तथ्य क्या हैं और सचमुच में वे तथ्य हैं इसकी क्या कसौटी मानी जाए ?
(2) तथ्यों की वास्तविकता से भी अधिक समस्या से उनका क्या सम्बन्ध है जिससे वह सगत अथवा असगत बनते है ?
(3) क्या तथ्य दृश्य और अनुभवपरक है या उनमें कुछ ऐसे उपतथ्य मिले हुए हैं जिन्हें ढूढने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता है ?
(4) उन तथ्यों की जानकारी के स्रोत क्या हैं और वे स्रोत कितने विश्वसनीय हैं ?
(5) तथ्यों से परस्पर क्या सम्बन्ध है और क्या इन सभी तथ्यों को समस्या के आकार प्रकार के सदर्भ में उनके विभिन्न रूपों को पहचानने में अधिक सहायता मिल सकती है ?

उपयुक्त सभी प्रश्न प्रथम चरण की जानकारी से उत्पन्न होते हैं किन्तु यदि उन की खोज में यह पूर्वाभास या पूर्व जानकारी अन्तिम कसौटी बन जाए तो बहुत से तथ्य उभर कर सामने नहीं आ सकेंगे। तथ्यों की खोज में निष्पक्षता सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है और निणयकर्त्ता के लिए सबसे बडी चुनौती यही है कि वह उन तथ्यों को पहचाने और स्वीकार करे जो इतने कटु या भीषण हैं कि वह उन्हें देखना व सुनना नहीं चाहता। तथ्यों की खोज अनेक चरणों से गुजरती है। प्रथम तो यह तथ्य कि सग्रहकर्त्ता कितना स्वतन्त्र निष्पक्ष एव समस्या के समाधान में निष्ठवान है दूसरे इस समस्या के विभिन्न दृष्टिकोणों का कितना ज्ञान है जो तथ्यों से सम्बद्ध हों। तीसरे तथ्यों में कितनी गहराई और सप्रभाव्यता है जिससे कि उन्हें नीति के सन्दर्भ में परखा जा सके। तथ्यों में ऐसे कितने तथ्य हैं जो नये तथ्यों को समझने और पहचानने में सहायक सिद्ध हो सकते है ये सभी प्रश्न एक

सम्भावना के रूप म काम म आते है। इसी प्रकार कुछ विकल्प ऐसे प्रतीत होते है जिनकी दूरगामी सम्भावना कुछ कठिन आशकाओ पर आधारित होती है। इतना ही नहीं विकल्पो की उपलब्धि को इस दृष्टि स भी देखा जाता है कि उनमे सबस अधिक उपयोगी नीति क अनुरूप एव व्यावहारिक कौनसा है। कसौटी के य ि य मक त व स्पष्ट जटिल होते हैं कि यह कहना कठिन होता है कि कौनसा मूल्य अथवा कौनसा तथ्य अथवा कौनस परिणाम की सम्भावना उनकी प्राथमिकताओ को बदल सकती है। कसौटी के निर्माण में चाहे कोई सा भी अथवा कितने ही निर्णायक तत्व क्यो न रखे जाए प्रत्येक प्रशासनिक निर्णयकर्त्ता को अपने विकल्पो को प्रथम द्वितीय तृतीय क क्रम मे सगठित करना पडता है। यह क्रम लाभ हानि उद्देश्य प्राप्ति उद्देश्य भ्रष्टता वतमान कीमत भावी लाभ आदि के सन्दर्भ म निश्चित किया जाना है। एक कुशल निर्णयकर्त्ता वह होता है जो सम्भावित विकल्पो की सख्या बढा सक और कुछ स्थितियो के बदलने पर उनकी प्राथमिकता म अन्तर करने का लचीलापन सुरक्षित रख सके। निर्णय प्रक्रिया का यह चरण इस दृष्टि से निर्णायक है कि इस स्तर तक पहुचत-पहुचत निर्णय क्रम एक ऐसा मोड लेता है जहा निर्णयकर्त्ता का विवेक-क्षेत्र सीमित निश्चित एव तुलनात्मक बन जाता है और वह निर्णय प्रक्रिया के अन्तगत मोड की ओर उन्मुख होने लगता है।

तृतीय चरण विकल्पो का चयन

निर्णय प्रक्रिया का तीसरा और अन्तिम चरण है विकल्पो का चयन। यद्यपि प्रत्येक सगठन म और प्रत्येक निर्णयकर्त्ता क साथ म चयन की कसौटी म कुछ न कुछ परिवतन ना ा र्जा वा र किन्तु प्रशासन क सामान्य सिद्धान्तो क आधार पर यह सम्भव है कि चयन का मापक य त्र निश्चित कर लिया जाए। उदाहरण के लिए अन्तिम चुनाव करत समय चाहे निर्णय व्यक्तिपरक हो अथवा तटस्थ/वस्तुपरक यह आवश्यक है कि उसम—

(i) गुणवाची तत्व परिमाणवाची तत्वो की अपेक्षा गुरुतर होगे

(ii) उसम वाछनीयता और सम्भाव्यता क बीच एक समन्वय स्थापित करना होगा जिस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा जा सकता है

(iii) उसम निर्णय की सीमाओ अथवा अव्यावहारिकताओ का उतना ही ध्यान रखना पडगा जितना कि निर्णय से उत्पन्न होन वाली भावी पुनर्निर्णयो की सम्भावनाओ एव जटिलताओ का।

कुल मिलाकर निर्णय नियम-सापक्ष होते हुए भी मूल्य निरपेक्ष हो सकता है। इसस तथ्यो की यथार्थताए मूल्यो की आदर्शवादिताओ के साथ समझौता कर सकती है। इसम सगठनात्मक और मानवीय पहलू सतुलित होकर लाभ हानि समीकरण क अनुसार चलत हुए भी ऐसी स्थिति ला सकते हैं जबकि द्वितीय और तृतीय सम्भावना पर प्रयोग क रूप म स्वीकार की जा सकती है। व्यापार की

सुविधा की तरह प्रशासन की निर्णय प्रक्रिया में भी विकल्प चयन उसी नियम से किया जा सकता है जिसे प्रो हैकिंग और स्मिथ बाउण्ड्री गेन और बाउण्डरी लास (Boundary Gain and Boundary Loss) कहते हैं। ये ऐसे हानि-लाभ हैं जो कम से कम नोन हैं और जिन्हें एक व्यापारी स्वीकार करने को तैयार होता है। बाउन्ड्री गेन और लास का देखकर जब व्यापारी कोई निर्णय लेता है तो वह चाहता है कि निर्णय से जो बुरे से बुरा परिणाम निकले वह बाउडरी लास से अधिक अच्छा हो और जो सबसे अच्छा परिणाम निकले वह बाउन्डरी गेन से अधिक आकर्षक हो। प्रशासक भी कुछ-कुछ इसी प्रकार के निर्धारक तत्त्व बना सकता है और ऐसा करते समय उसका निर्णय कर्ता की परिधि में रह सकेगा।

इस तरह निर्णय समाधान का अंतिम विकल्प है। तीनों ही स्तरों पर चाहे वह अन्वेषण का स्तर हो अथवा सामग्री और विकल्प की संरचना का अथवा अन्तिम विकल्प चयन का निर्णयकर्ता को अध्ययन के मापदण्ड विकसित करने पड़ेंगे। यदि व्यवस्था सुखी स्वतन्त्र एवं जनतन्त्रात्मक प्रतियोगिता की अनुमति देती है तो इन मापदण्डों का स्वीकृत करवाना अपने आप में निर्णयकर्त्ता का सबसे बड़ा कार्य होगा। निर्णय एक सामूहिक सयन्त्र का निर्माण करता है और इस प्रक्रिया में असहमति विरोध विघटन एवं मनभेद की एक सहज स्थिति होती है। निर्णयकर्त्ता से अपेक्षा की जाती है कि निर्णायक क्षण तक पहुँचने से पहले वह मार्मिक ढंग से एक-एक चरण पार करे। निर्णय प्रक्रिया का मॉडल चाहे रेशनल हो या ह्यूरिस्टिक वह भविष्यवाणी का एक उपक्रम है। भविष्यवाणियाँ अनिश्चितता और संदिग्धता को कम करती हैं। निर्णय प्रक्रिया की तकनीक मस्तिष्क का वह सुरक्षात्मक विधान सुझाती है जिससे आचरण और व्यवहार की भावी आशंकाएं कम परेशान करें और स्थिति को बिगड़ने न देकर अनुकूल रूप से बदला जा सके। पहले चरण और तीसरे चरण में जो अन्तर है वह दूसरे चरण की यथार्थता से टकराकर एक द्वन्द्वात्मक पद्धति को जन्म देता है और मार्क्स की शब्दावली में यह भी कहा जा सकता है कि समस्या का व्याख्या थीसिस है और तथ्यों की व्याख्या एण्टीथिसिस तो विकल्पों का चुनाव एक ऐसा सिन्थेसिस को जन्म देगा जो मध्यमार्गी नीति और गुणात्मक दृष्टि से उत्तम होने के साथ-साथ भविष्य में फिर थीसिस बन सकेगी और इस तरह प्रशासन प्रक्रिया विकासोन्मुख बनी रहेगी।

निर्णय कैसे लिये जाएं ?

(How to make Decisions)

नाक प्रशासन के विज्ञान के निर्णय लेने के विभिन्न सोपानों से सम्बन्धित विचारों का अध्ययन करने के बाद यह बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है कि निर्णय किस प्रकार लिया जाना चाहिए। निर्णय की प्रक्रिया के ये सोपान निर्णायक के मार्ग की एक सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं जिसके आधार पर यह निश्चित किया जा

सकता है कि किसी भी समस्या को सुलझाने हेतु कार्य का निर्णय करने के लिए क्या कदम उठाए जाएं। जब एक संगठन का अध्यक्ष निर्णय की प्रक्रिया के इन सभी सोपानों से परिचित रहता है तो भूल की गुंजाइश कम हो जाती है और उसके द्वारा लिए गए निर्णय विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक प्रकृति के होते हैं। इसके विपरीत जब निर्णायक को इन क्रमों की आवश्यकता एवं महत्त्व का ज्ञान नहीं रहता तो वे प्रायः पथभ्रष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि अध्यक्ष का यह निर्णय है कि संगठन में संचार के नये साधनों का प्रयोग किया जाए तो इसके लिए वह समस्या का पूर्ण रूप से अध्ययन करेगा, उसके विभिन्न पहलुओं के संभावित परिणामों पर विचार करेगा और उसके बाद अन्य विकल्पों की कल्पना करेगा तथा उन्हीं में से किसी एक का चुनाव करेगा। इस क्रम के किसी भी स्तर की अवहेलना करने पर उसके द्वारा लिया गया निर्णय अत्यन्त खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

निर्णय किस प्रकार लिए जाएं यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जिसका संतोषजनक उत्तर प्राप्त करना प्रत्येक अध्यक्ष का उत्तरदायित्व है। इस प्रश्न का एक उत्तर निर्णय की प्रक्रिया के सोपानों द्वारा दिया जाता है किन्तु यह उत्तर स्पष्ट एवं संतोषजनक नहीं है। इसमें अपनाया गया सामान्यीकरण (Generalisation) अनेक संदेह एवं प्रश्नवाचक चिह्न उपस्थित कर देता है जिन पर विचार किए बिना निर्णायक का अधिक लाभ नहीं होता। निर्णय लेने के तरीके का वर्णन दूसरे प्रकार से गुणात्मक रूप में किया जाता है अर्थात् एक अध्यक्ष का अथवा प्रबन्धक को किस प्रकार निर्णय लेना चाहिए यह बताने के लिए उनके सम्मुख अच्छे निर्णय के कुछ गुण प्रस्तुत कर दिये जाते हैं और कह दिया जाता है कि उनके द्वारा लिए गए निर्णयों में ये गुण होने चाहिये। निर्णय के गुणात्मक पहलुओं पर जोर देने वाले विचारकों का यह कहना है कि एक श्रेष्ठ निर्णय वह होता है जिसमें निम्नलिखित गुण समाहित हों—

1. बुद्धिपूर्णता—निर्णय बुद्धिपूर्ण होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि सम्बन्धित समस्या पर पूरी तरह से विचार कर लिया जाए। उस पर विचार करते समय निर्णायक के सम्मुख तथ्य रहने चाहिए और इन तथ्यों के चयन तथा उनकी व्याख्या में उसे अपनी इच्छाओं, भावनाओं आदि का समावेश नहीं करना चाहिए। कई बार अबौद्धिक तत्त्वों के प्रभाव से तथ्यों की गलत व्याख्याएं कर दी जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप लिए गये निर्णय अयथार्थ या निरर्थक हो जाते हैं।

2. वस्तुपरकता—निर्णय वस्तुनिष्ठ (Objective) होना चाहिए। यह गुण पूर्व वर्णित गुण में मिलता है तथा तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक निर्णय को बौद्धिक न बनाया जाए। वस्तुनिष्ठता बुद्धि की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता समझी जाती है। जिस प्रकार एक हंस दूध को पानी से अलग कर देता है उसी प्रकार बुद्धि द्वारा तत्त्वों को अच्छाई एवं बुराई को पृथक करके देखा जा

सकता है। निर्णय लेते समय यदि निर्णायक के व्यक्तिगत भाव प्राथमिकताएं मूल्य एवं सहज प्रवृत्तियों का प्रभाव रहा तो यह निश्चित है कि लिया गया निर्णय तथ्य सगत कम होगा।

3. समय पर—यह आवश्यक है कि निर्णय समय पर लिया जाए। समय से पूर्व लिए गए निर्णय का कोई महत्त्व नहीं होता और समय के बाद लिए जाने वाले निर्णय प्रभावहीन हो जाते हैं।

4. प्रतिक्रियाओं से सजग—अध्यक्ष द्वारा जो निर्णय लिए जाएं उनकी सम्भावित प्रतिक्रियाओं पर पहले से ही विचार कर लेना चाहिए। सगठन में जो भी निर्णय लिया जाता है उसकी पृष्ठभूमि में सम्भावित प्रतिक्रियाओं का एक चित्र रहता है। निर्णय लेने वाला यह चाहता है कि सगठन के सदस्यों द्वारा एक विशेष रूप में प्रतिक्रिया की जानी चाहिए। यदि वह प्रतिक्रिया उस रूप में होती है तो निर्णय सफल समझा जाता है और यदि प्रतिक्रिया का रूप निर्णायक की आकांक्षा से भिन्न या विपरीत होता है तो वह असफल कहा जाता है। इसलिए अध्यक्ष को इस बात पर भली प्रकार विचार कर लेना चाहिए कि निर्णय के प्रति सगठन के सदस्यों की क्या प्रतिक्रियाएं होंगी।

निर्णय किस प्रकार लेना चाहिए इस प्रश्न के उत्तर के रूप में इन विचारकों के मत का अध्ययन करना भी महत्त्वपूर्ण है जो तत्त्वों (Factors) के समर्थन का विचार प्रस्तुत करते हैं। तद्नुसार निर्णय लेते समय निर्णायकों को कुछ तत्त्व ध्यान में रखने चाहिए। यदि निर्णय इन तत्त्वों के अनुसार है तो वह सफल एवं प्रभावशील होगा।

टरी ने निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले बाह्य तत्त्वों का वर्णन किया है। ये हैं—(1) कानूनी सीमाएं (Legal Limitations) (2) बजट (Budget) (3) सामाजिक आचार (Mores) (4) तथ्य (Facts) (5) इतिहास (History) (6) आन्तरिक नैतिक चरित्र (Internal Moral) (7) अपेक्षित भविष्य (Future as Anticipated) (8) उच्च अधिकारी (Superiors) (9) दबाव समूह (Pressure Groups) (10) कर्मचारी वर्ग (Staff) (11) कार्यक्रम की प्रकृति (Nature of Programm) एवं (12) अधीनस्थ कर्मचारी (Sub ordinates)।

ये सभी तत्त्व निर्णय की प्रक्रिया को बुद्धिपूर्ण वस्तुगत एवं सफल बनाने में प्रभावी रूप से सहायक होते हैं। निर्णयों पर इन तत्त्वों के प्रभाव का अध्ययन एक उदाहरण द्वारा किया जा सकता है। मान लीजिए एक पंचायत-समिति अपने क्षेत्र के गांवों में कुछ कुएं बनाने का निर्णय लेना चाहती है तो उसे सर्वप्रथम यह देखना होगा कि क्या उसे ऐसा करने का कानूनी अधिकार है। यदि कानून से उसकी शक्तियां सीमित हैं जिनके कारण वह कुएं बनाने से सम्बन्धित निर्णय लेने का अधिकार

किया जाता है। व्यवहारवादी मानते हैं कि निर्णय लेने के तरीके का कोई सर्वमान्य रूप निश्चित नहीं किया जा सकता। कोई एक तरीका एक समय में अच्छा है तो वही दूसरे समय में निकम्मा सिद्ध होता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि निर्णय लेने का अभ्यास एक व्यक्ति अथवा संस्था को श्रेष्ठ निर्णायक बना सकता है। इसके लिए यह जरूरी है कि प्रशासकों को निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। निर्णय लेते समय जिस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए उसके सम्बन्ध में टेरी (Terry) ने अनेक बातों का उल्लेख किया है।[1] उनके मतानुसार सबसे पहले यह निश्चय करना होगा कि समस्या क्या है? जब समस्या का निश्चय हो जाए तो उसकी एक सामान्य पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए आवश्यक सूचना तथा तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण प्राप्त करना होगा। इसके बाद उन तरीकों पर विचार किया जाएगा जिनके कार्य की साधना की जा सकती है। प्रारम्भ में एक कामचलाऊ निर्णय लिया जाता है तथा अस्थायी योजना बनाई जाती है किन्तु बाद में उसका मूल्यांकन करके उसमें महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को क्रियान्वित करने का प्रयास किया जाता है। इस योजना की क्रियान्विति से जो परिणाम प्राप्त होते हैं उनके प्रकाश में यह निश्चय किया जाता है कि निर्णय को कायम रखा जाए अथवा संशोधित या परिवर्तित किया जाए।

निर्णय लेने की प्रजातन्त्रात्मक प्रक्रिया
(The Democratic Pattern of Decision Making Process)

प्रशासन में निर्णय लेने की प्रक्रिया पर प्रजातन्त्रात्मक तरीकों एवं आदर्शों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भ में प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था इतनी लोकप्रिय न थी। प्रशासनिक संगठनों के निर्णय प्रायः एक व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज समझे जाते थे। निर्णय लेते समय अपने अधीनस्थों से परामर्श या उनकी राय का आदर करने की उसे आवश्यकता नहीं होती थी। किन्तु व्यक्ति के जीवन में ज्यों-ज्यों प्रजातन्त्रात्मक मूल्य घर करते गए प्रशासकीय संगठनों में निर्णय लेने की प्रक्रिया का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया। अब निर्णय लेने की प्रक्रिया में न केवल संगठन का अध्यक्ष वरन् अनेक आन्तरिक और बाह्य तत्त्व प्रभाव डालते हैं। कुछ विचारकों का मत है कि निर्णय कभी भी एक व्यक्ति द्वारा लिया जाना था और न लिया जाता है। साइमन का मत है कि यदि एक व्यक्ति निर्णय लेगा तो वह निर्णय पूरी तरह से बौद्धिक नहीं हो सकता। उनके ही शब्दों में "एक अलग अकेले व्यक्ति के व्यवहार का किसी उच्च श्रेणी की बौद्धिकता पर पहुँचना असम्भव है।"[2]

प्रशासकीय संगठनों का निरीक्षण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि जो निर्णय लिए जाते हैं उनमें अनेक व्यक्तियों का योगदान रहता है। जनता के हाथों में सम्प्रभु शक्ति का निवास रहने के कारण प्रशासनिक अधिकारी अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार

1 *Terry op cit pp 66 67*
2 *Herbert A Simon op cit p 79*

नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति म निर्णय लेने की जोखिम को कोई भी एक व्यक्ति अपने कन्धो पर नही लेना चाहता। अत प्रशासकीय निर्णयो की प्रकृति सहकारी (Co-operative) अथवा योगदानपूर्ण (Contributory) बन जाती है। सेकलर हडसन का यह कहना सही है कि सरकार द्वारा निर्णय लेना एक ऐसी क्रिया है जो एक से अधिक व्यक्तियो द्वारा सम्पन्न होती है। यह हो सकता है कि निर्णय की घोषणा एक व्यक्ति द्वारा की जाए किन्तु निर्णय तक पहुचने की प्रक्रिया मे अनेको का योगदान रहता है। यह राजनीतिक व्यवस्था का एक भाग है।[1] निर्णय की प्रक्रिया को गोरे तथा डाइसन (Gore and Dyson) ने एक सामाजिक रणनीति (Social Strategy) माना है जिसम एक समस्यापूर्ण स्थिति के लिए मिलजुल कर प्रतिक्रिया की जाती है। उनके कथनानुसार निर्णय व्यक्तिगत पसन्दो को सम्बन्धो के जाल म बुन देते हैं जिनसे कार्य का आधार बनता है। उन्होने आगे स्पष्ट शब्दो म बताया है कि निर्णय व्यक्तियों के सहयोगपूर्ण प्रयासों का परिणाम होते हैं।

सगठन के अध्यक्ष का निर्णय लेने की औपचारिक शक्ति प्राप्त होती है किन्तु जब वास्तविक व्यवहार म वह निर्णय लेन लगता है तो सगठन के दूसरे सदस्यो का उस पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। अध्यक्ष चाहे अथवा न चाहे उसकी क्रियाओ पर सगठन के सदस्यो का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दीर्घगामी या अल्पकालीन प्रभाव अवश्य पडता है। टनिनबाम तथा मासारिक (Tannenbam and Massarik) ने अधीनस्थो के साथ मिलकर निर्णय लेने की प्रक्रिया की आवश्यकताओ एव लाभो का वर्णन किया है। उनके मतानुसार अध्यक्ष के निर्णय सम्पूर्ण सगठन के भविष्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। अधीनस्थ अधिकारी भी क्योकि वे सगठन का ही एक भाग हैं इन निर्णयो म पर्याप्त रुचि रखते हैं तथा उनकी यह तीव्र इच्छा रहती है कि इन निर्णयो मे व भी कुछ योगदान करें। जिस देश मे राजनीतिक व्यवस्था का रूप प्रजातान्त्रात्मक होता है तथा जिसके समाज म प्रजातन्त्रात्मक परम्पराओ की जडें गहरी होती हैं व ाँ अधीनस्थो की यह इच्छा कई गुणा बढ जाती है। समस्या को प रभाषित करने और उसके सम्बन्ध म सम्भावित विकल्पो की खोज मे अधीनस्थ अधिकारी भी भाग ल सकते ह कि तु जब विकल्पो का चुनाव करना होता ह तो उनके योगदान की लक्ष्मण रेखा आ जाती ह।

टेर्निबाम तथा मासारिक ने स्पष्टत कहा है कि उद्यम मे प्रबन्धात्मक अधिकारी अधीनस्थ के रूप मे प्रबन्ध निर्णय की प्रक्रिया के केवल दो सोपानो म योगदान कर सकते हैं व तीसरे सोपान म योगदान नही दे सकते। अधीनस्थो द्वारा दिया जाने वाला योगदान दो विभिन्न रूप धारण कर सकता है।

1 S kl Hud op c t p 29
2 W ll m J Go d J W Dyson Th M k g of Dec s o 1954 p 1

मात्रा एव गुण एक साथ बढ जाते हैं साधनों का अपव्यय एवं दुरुपयोग रुक जाता है और इस प्रकार कम कीमत में अधिक एवं अच्छे परिणाम प्राप्त हो जाते हैं।

2. उदासीनता का अभाव—अधीनस्थों का अधिक से अधिक सहयोग तथा निर्णयों के प्रति उनमें अपनत्व की भावना यह सम्भव बनाते हैं कि सगठन के कार्यों से वे उदासीन न रहें।

3. शान्तिपूर्ण सम्बन्ध—सगठन में अभियोगो (Grievances) की न्यूनता तथा प्रबन्धक एवं अधीनस्थो और प्रबन्धक एवं सघ के बीच अधिक शान्तिपूर्ण सम्बन्धों का विकास भी प्रजातान्त्रिक निर्णय प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण लाभ है। निर्णय लेने समय अधीनस्थ अधिकारी अपनी शिकायतों एवं विरोधों को स्पष्ट कर देते हैं और निर्णय लेने में उनका प्रभाव रहता है।

4. स्वेच्छापूर्ण स्वीकृति—जब निर्णय मिल जुल कर लिए जाते हैं तो अधीनस्थ अधिकारियों में उन्हें स्वीकार करने के लिए अरुचि नहीं रहती। जब सगठन के अध्यक्ष अथवा प्रबन्धक द्वारा निर्णय लिए जाते हैं तो उन निर्णयों के अनुसार प्राय कुछ नवीन परिवर्तनों की व्यवस्था की जाती है। जब अधीनस्थ कर्मचारियों को यह अनुभव होता है कि अध्यक्ष ने निर्णय लेते समय स्वेच्छाचारिता से काम लिया है या उनकी राय को महत्त्व नहीं दिया है तो वे परिवर्तनों को क्रियान्वित करने के लिए तैयार नहीं होते। कई बार उनका विरोध इतना बढ जाता है कि वे अध्यक्ष के प्रत्येक कार्य के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपना लेते हैं। टेननबाम तथा मासारिक के शब्दों में जब उच्च अधिकारियों द्वारा परिवर्तन स्वच्छाचारी रूप से बिना स्पष्ट किए ही लागू कर दिए जाते है तो अधीनस्थ कर्मचारी स्वय को असुरक्षित अनुभव करते हैं और प्रतिक्रियास्वरूप ऐसे कदम उठाना चाहते हैं जिनका उद्देश्य नवीन परिवर्तनों को निष्क्रिय करना हो।[1]

एक अच्छा निर्णायक उसी को समझा जाता है जो अपने अधीनस्थों की प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखे और निर्णय लेने से पूर्व ही उसके उद्देश्यों एवं स्वरूप को अधीनस्थों के सामने स्पष्ट कर दे। ऐसा करने के लिए निर्णय लेने की प्रक्रिया में अधीनस्थों के योगदान की व्यवस्था की जानी चाहिए। जब अधीनस्थों की असुरक्षा की भावना सुरक्षा में परिणत हो जाती है तो निर्णयों का अन्ध होकर विरोध करने की उनकी प्रवृत्ति भी बदल जाती है और वे बुद्धिपूर्वक उन्हें स्वीकार करने लगते हैं।

5. अधीनस्थों के प्रबन्ध में सुविधा—निर्णय लेने की प्रक्रिया में अधीनस्थों के योगदान की व्यवस्था कर देने पर एक अन्य लाभ यह होता है कि अधीनस्थों के नियन्त्रण की अनेक समस्याएँ या तो कम हो जाती हैं या सरल हो जाती हैं। उनके व्यवहार का उच्चाधिकारियों को अधिक पर्यवेक्षण (Supervision) करने का

1 Tannenbaum and Massarik op cit p 216

आवश्यकता नहीं रहता। उन पर रखे गये वाले नियन्त्रण का कठोरता घट जाती है और अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता कम हो जाती है। निर्णय लेने में जो कर्मचारी भाग लेते हैं वे उन निर्णयों को क्रियान्वित करने में उत्तरदायित्व महसूस करते हैं। इस स्वीकृति के अभाव में — की सत्ता केवल औपचारिक एवं नाम मात्र की रह जाती है। अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा उच्च अधिकारियों के निर्णय स्वीकार करने पर उच्च अधिकारी की सत्ता में वृद्धि हो जाती है।

(6) उच्च स्तर के निर्णय—सम्यापूर्ण निर्णयों के स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा होता है। एक व्यक्ति की अपेक्षा कई व्यक्तियों के मस्तिष्क द्वारा किया गया कार्य अधिक उपयोगी एवं सार्थक होता है। संगठन का प्रत्येक एक समस्या से सम्बन्धित सभी विकल्पों का पता नहीं सोच पाता। इसका कारण यह है कि वह समस्या के सभी पहलुओं का विस्तृत ज्ञान नहीं रखता। यदि प्रत्येक पहलू का विस्तृत ज्ञान रखने वाला अधिकारी उस सम्बन्ध प्रदान करता निश्चित रूप से उसके निर्णय अधिक अच्छे होंगे।

आवश्यक परिस्थितियाँ

इस प्रकार हम देखते हैं कि परामर्श के आधार पर लिए गए निर्णय कई प्रकार से उपयोगी एवं लाभदायक होते हैं। यहाँ ध्यान में रखने योग्य एक बात यह है कि प्रत्येक स्थिति में इस प्रकार के निर्णय लेना न तो सम्भव होता है और न उपयोगी ही। इस प्रकार के निर्णय लेने के लिए कुछ उपयुक्त परिस्थितियाँ होनी चाहिए होती हैं।

प्रथम, इस प्रकार के निर्णय केवल तभी लिए जा सकते हैं जबकि उनका तुरन्त लेना जरूरी न हो। जब निर्णय जल्दी लिए जाते हैं तथा उनका सम्बन्ध किसी संकटकालीन स्थिति से है तो योगदानपूर्ण व्यवहार जो निर्णय की गति को धीमा करता है अनुपयुक्त रहेगा। सैनिक निर्णयों का ऐसे ही निर्णयों का उदाहरण कहा जा सकता है।

दूसरे, सहयोगपूर्ण व्यवस्था में व्यय किए गए समय व अतिरिक्त धन की मात्रा भी महत्त्वपूर्ण है। यदि इस प्रकार निर्णय लेने में बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ता तो उससे प्राप्त होने वाले सभी लाभ अपना महत्त्व खो देंगे।

तीसरे, अधीनस्थों को निर्णय लेने में आमन्त्रित करने का अवसर इस पर कभी ऐसा न हो कि उच्च अधिकारियों की औपचारिक सत्ता समाप्त हो जाए।

चौथे, जब अधिक लोग निर्णय की प्रक्रिया में भाग लेने लगते हैं तो उन निर्णयों के समय से पूर्व खुल जाने का भय रहता है।

पाँचवें, योगदानपूर्ण व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने के लिए संचार-व्यवस्था का उचित प्रबन्ध होना जरूरी है ताकि निर्णय में भाग लेने वाले मनुष्य परस्पर विचार विमर्श कर सकें।

छठ, जब अधीनस्थो का निणय लने का अवसर दिया जाता है तो उनको इस काय क लिए पूरी तरह प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है।

निणय कब लिए जाए ?

(When to take Decisions ?)

निणय लेने की प्रक्रिया का स्वभाव अथ विधि एव प्रक्रिया जान लेने के बाद इस सम्ब ध म एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि निर्णय कब लिए जाए। दूसरे श दो म वह कौनसा समय ह जब निणय लेना उपयोगी सार्थक एव प्रभावशाली रहता है अर्थात् एस कौन स अवसर हैं जब निणय लेना जरूरी हो जाता है और उसे आग क लिए नही टाला जा सकता। निर्णय लने के लिए कुछ उपयुक्त परिस्थितियाँ होती हैं तथा उचित अवसर होते ह जिनके फलस्वरूप निर्णायक को यह आपत्तिपूर्ण तथा जोखिम भरा माग अपनाना पडता है। यह देखा जाता है कि व्यक्ति निर्णय लेने स कतरात हैं। व कवल उ हीं परिस्थितियो म निणय लना अधिक पसन्द करते हैं जहा उनके व्यवहार का कम स कम आलोचनाओ का सामना करने पड। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति क निर्णय लेने की सामथ्य की कुछ सीमाए होती ह जिसका अतिक्रमण न तो उसके लिए सम्भव होता है न उपयोगी ही।

प्र यक व्यक्ति केवल उसी क्षेत्र म नि णि लेना चाहता ह जो औपचारिक रूप स उसको सौपा गया ह। इस क्षेत्र का उल्लघन करने पर अन्य व्यक्ति के उत्तरदायित्व पर प्रहार होने लगता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति आलाचनाओ क डर तथा अधिक उत्तरदायित्व बढ जाने की आशका से केवल एक सीमित क्षेत्र म ही निणय लेना पसन्द करता है। सगठन म एक व्यक्ति विशेष जब निणय लेता है ता वह ऐसा तभी करता है जब उपयुक्त अवसर प्रदान किया जाए। निणय लेने के अवसर तीन रूपा म प्रदान किए जा सकते हैं। चेस्टर बर्नार्ड (Chester Barnard) न अवसर प्रदान करने की इन परिस्थितियो का वणन निम्न प्रकार से किया है—

(1) उच्च अधिकारियों की सत्ता (The Authority of Superiors)

सर्वोच्च अधिकारी को औपचारिक रूप से यह अधिकार प्राप्त होता ह कि वह समय समय पर अपने अधीनस्थो को आज्ञा एव निर्देश सचारित करता रहे। अपने इस औपचारिक अधिकार को निभाने के लिए उच्च अधिकारी को समयानुसार एस निणय लेने पडते हैं जिनका सम्ब ध आज्ञाओ एव अनुदेशो की व्याख्या व्यवहार तथा वितरण से होता है। कई बार उच्च अधिकारी अपने उत्तरदायित्व अधीनस्थ अधिकारियो को सौंपकर स्वय का भार हल्का कर लेता है किन्तु इस प्रकार क प्रत्यायोजन की एक सीमा होती है। इस सीमा से परे वह निणय लेने के काय म अपने आपको अछूता नहीं रख सकता। सगठन के व्यवहार म प्राय ऐसा भी देखा जाता है कि उच्च अधिकारी द्वारा लिए गए नि ण नतिक रूप से गलत सिद्ध हुए हैं

हैं संगठन की दृष्टि से हानिप्रद प्रतीत होते हैं और क्रियान्वित करने में असम्भव दिखाई देते हैं तो उनकी उचित व्याख्या करने के लिए उच्च अधिकारी द्वारा अन्तिम निर्णय लेना आवश्यक बन जाता है।

(2) अधीनस्थों की असमर्थता (Incapacity of Sub ordinates)

कई बार ऐसा होता है कि जिन विषयों पर अधीनस्थों को स्वयं निर्णय लेना चाहिए वे न लेकर उन विषयों को निर्णय के लिए उच्च अधिकारियों के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं। इस तरह प्रस्तुत विषयों को अपीलीय विषय (Appellate Cases) कहा जाता है। यह प्रस्तुत करने का अवसर कई कारणों से पैदा हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि अधीनस्थ अधिकारी निर्णय लेने में असमर्थ हैं यदि अधीनस्थों को दिए गए निर्देश अपूर्ण हैं यदि परिस्थितियों ने ऐसा करना आवश्यक बना दिया है यदि कार्य क्षेत्र या आज्ञा में संघर्ष उत्पन्न हो गया है अथवा अधीनस्थ अधिकारियों की सत्ता प्रभावशाली नहीं रही है तो एक अधीनस्थ अधिकारी किसी विषय पर स्वयं निर्णय न लेकर उस विषय को उच्च अधिकारी के निर्णय के लिए प्रस्तुत करने को प्रेरित होता है। जिस संगठन में निर्णय के ऐसे अवसरों की संख्या बढ़ जाती है वहाँ उच्च अधिकारी कार्यभार से दब जाता है और संगठन की कार्यकुशलता में बाधा पड़ जाती है। ऐसे अवसरों को रोकने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए जाते हैं। कार्यपालिका का संगठन कर्मचारियों की योग्यता एवं अनौपचारिक संगठन की प्रक्रियाओं के विकास आदि द्वारा ऐसे अवसरों की संख्या को कम किया जा सकता है। बर्नार्ड के शब्दों में कार्यपालिका के कार्य की कसौटी यह है कि वह आवश्यक या अप्रत्यायोजित ऐसे निर्णयों को ले और शेष को अस्वीकार करे।[1]

(3) कार्यपालिका की पहल (The Initiative Executive)

अनेक बार कार्यपालिका पहल करके निर्णय लेने के अवसर पैदा करती है। एक कार्यपालिका ने निर्णय के अवसर पैदा करने में कितनी पहल की इस आधार पर उसकी स्थिति का समर्थन की योग्यता एवं संचार साधनों की पर्याप्तता का पता लगाया जा सकता है। यदि एक संगठन में संचार के सुविकसित साधनों का उपयोग हो रहा है और अध्यक्ष संगठन की प्रत्येक स्थिति से भली भाँति परिचित है तो वह निर्णय लेने में पहल करते समय सफलतापूर्ण व्यवहार करेगा। अध्यक्ष को केवल वे ही कार्य करने चाहिए जिनको संगठन का अन्य व्यक्ति अधिक सफलतापूर्वक नहीं कर सकता। उसे वे निर्णय लेने चाहिए जिनको लेने की सामर्थ्य किसी अन्य में न हो।

निर्णयों के प्रकार
(The Types of Decisions)

प्रशासकीय संगठन में लिए जाने वाले निर्णय महत्व की दृष्टि से निर्णयकर्ता की दृष्टि से एवं विषयवस्तु की दृष्टि से कई प्रकार के होते हैं जिनमें से कुछ ये हैं—

1 Ch I B n d Th F of h F 9 8

(1) व्यक्तिगत निर्णय एवं संगठनात्मक निर्णय
(Individual Decisions and Organisational Decisions)

चेस्टर बर्नार्ड ने प्रशासकीय संगठन में लिए जाने वाले निर्णयों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया है—व्यक्तिगत निर्णय और संगठनात्मक निर्णय। व्यक्तिगत निर्णय सामान्य रूप से दूसरों को प्रत्यायोजित नहीं किए जा सकते जबकि संगठनात्मक निर्णय यदि हमेशा नहीं तो प्रायः प्रत्यायोजित किए जा सकते हैं। संगठन के महत्त्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित निर्णय क्रियान्वित होने से पूर्व अनेक सहायक निर्णय लेना आवश्यक हो जाता है। इन निर्णयों को उपनिर्णय अथवा कम महत्त्व के निर्णय कहा जा सकता है। ऐसे निर्णय भी प्रायः उसी व्यक्ति द्वारा लिए जाते हैं जिसने प्रमुख निर्णय लिया है। किन्तु कई बार ये निर्णय संगठन के अन्य सदस्यों द्वारा भी लिए जा सकते हैं। ऐसा करते समय ये सदस्य व्यक्तिगत रूप में नहीं वरन् संगठनात्मक रूप में व्यवहार करते हैं।

निर्णय लेने की भाँति उनकी क्रियान्विति के समय भी अनेक सहायक निर्णय लेने की आवश्यकता हो सकती है। इस आवश्यकता की पूर्ति संगठन के दूसरे सदस्यों द्वारा संगठनात्मक रूप में की जाती है। संगठन में लिए जाने वाले अधिकांश निर्णयों का स्वरूप संगठनात्मक होता है व्यक्तिगत नहीं। अनेक कारणों से निर्णय लेने के उत्तरदायित्व को कोई भी व्यक्ति तब तक अपने ऊपर नहीं लेना चाहता जब तक ऐसा करने के लिए उसे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी न ठहराया जाए। जिसके कन्धों पर व्यक्तिगत निर्णय लेने का भार रहता है वह संचार व्यवस्था का पूरा उपयोग करता है। चेस्टर बर्नार्ड के कथनानुसार केन्द्रीय या सामान्य संगठन के निर्णय संगठन की संचार-व्यवस्था के केन्द्रों पर सब स्पष्ट रूप में लिए जा सकते हैं।

(2) प्रचलित निर्णय एवं अप्रचलित निर्णय
(Routine Decisions and Non routine or Innovative Decisions)

गोर तथा डाइसन ने भी प्रशासकीय संगठन में लिए जाने वाले निर्णयों को दो भागों में विभाजित किया है।[1] कुछ निर्णय ऐसे होते हैं जो संगठन के व्यवहार को उसी रूप में संचालित होने देते हैं तथा उसके क्रम में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालते। ऐसे निर्णयों को उन्होंने प्रचलित निर्णय (Routine Decisions) का नाम दी है। दूसरे प्रकार के निर्णय वे होते हैं जो कि संगठन के रूप एवं व्यवहार में कुछ नवीनताओं एवं परिवर्तनों का सूत्रपात करते हैं तथा इस प्रकार संगठन की प्रचलित पद्धतियों को अप्रासंगिक बना देते हैं। ऐसे निर्णयों को उन्होंने अप्रचलित या नवीनतावादी (Non routine or innovative) कहा है।

1 William J Gore and J W Dyson The Making of Decision pp 23

प्रथम प्रकार क अर्थात् प्रचलित निणयो म यह बात प्राय स्पष्ट रहती है कि क्या किया जाना है और किस प्रकार किया जाना है। इन निर्णयो के परिणामो का पहले स ही अनुमान लगाया जा सकता है क्योकि य प्रचलित व्यवहारो के अनुरूप होते हैं। इस प्रकार क निणयो द्वारा दो महत्वपूर्ण काय किए जाते हैं। प्रथम यह कि इनके आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि वो ढक धार पर क्या होन जा रहा है। दूसरे जब हम परिवतन क सम्ब ध मे विचार करते हैं तो इन निणयो द्वारा वस्तुस्थिति का ज्ञान कराया जाता है। यदि हम चा त हैं कि वस्तुस्थिति का मूल्याकन किया जाए अथवा उनका कोई विकल्प ढ ढा जाए तो हमको निर्णयो के दूसरे प्रकार को अपनाना होगा। साइमन ने इन निर्णयो को कायक्रम विहीन (Non Programmed) की सज्ञा प्रदान की है। इनको अप्रचलित निणय अथवा नवीन गति वाले (Innovative) निर्णय भी कहा जा सकता है।

निर्णयो क इन दोनो प्रकारो क बीच पर्याप्त अन्तर होता है। पहला अन्तर यह है कि प्रचलित निणयो द्वारा सु ा एव सफलता प्रदान की जाती है तथा भविष्य म उन कार्यो का वायदा किया जाता है जो अतीतकाल म पुरस्कार प्रदान करती रही है। दूसरी ओर अभिनव निणय अनिश्चित होते हैं। उ क द्वारा एक ऐसा भविष्य प्रस्तुत किया जाता है जो अज्ञात एव चि तापूर्ण है। प्रचलित निर्णयो म जो साधन व्यय किए जाते हैं उनका पुरस्कार स तोषजनक रूप म प्राप्त हो जाता है। इनम व्यय किया गया धन अधिक मात्रा म वापस लौटता है। इसम भिन्न नवीन निणयो को खर्चीले प्रयोग समझा जाता है जिनम लगाया गया धन भाग्य क सहारे पर छोड दिया जाता है। दूसरा अन्तर यह है कि नवीन निर्णय परिवतन का सूत्रपात करते हैं अत उनका विश्लेषण की बौद्धिक योजना के आधार पर सचालन होना है। किन्तु व्यवहार मे प्राय ऐसा नहीं होता और ये भावना मक तत्व जसे पूर्वाग्रह आदि म प्रभावित हो जाते हैं। दूसरी ओर प्रचलित निर्णयो म भावना प्रवृत्ति आदत आदि अबौद्धिक तत्वो क प्रभाव की गु जाइश बहुत कम रहती है। तीसरा अन्तर यह है कि प्रचलित निर्णयो म भागीदारो के बीच का सम्ब ध स योगपूर्ण रहता है जबकि किसी न किसी प्रकार का सघष नवीन निणयो का एक आवश्यक तत्त्व माना जाता है।

नवीन निणय क्योकि प्रचलित पद्धति क अनुकूल नहीं होते और किसी न किसी प्रकार क परिवतन का सूत्रपात करते हैं अत इनमे एक प्रकार की जोखिम छिपी है इनमे भविष्य के प्रति आशका बनी रहती है। इसी अथ म इनको चिन्तापूर्ण कहा जाता है। किन्तु इसका यह अथ कदापि नहीं है कि इस प्रकार क निणय अस्वाभाविक होते हैं। किसी भी सगठन द्वारा इस प्रकार के निणय बहुत लिए जाते हैं। एक प्रशासकीय सगठन म लिए जाने वाले निण । म से प्राय दो प्रतिशत निर्णय इस प्रकार के होते हैं।

(3) विधयात्मक निर्णय और निषेधात्मक निर्णय
(Positive Decisions and Negative Decisions)

प्रशासकीय संगठन में निर्णय लेना एक कला है जिसे केवल अभ्यास द्वारा ही अर्जित एवं विकसित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता कि किस प्रकार का निर्णय सर्वश्रेष्ठ होगा। एक निर्णय की श्रेष्ठता समय एवं परिस्थिति पर निर्भर करती है। चेस्टर बर्नार्ड (Chester Barnard) का कहना है कि कार्यपालिका के निर्णय की श्रेष्ठ कला इस बात में निहित है कि ऐसे प्रश्नों पर निर्णय न लिए जाएं जो इस समय आवश्यक नहीं हैं, अपरिपक्व निर्णय न लिया जाए, ऐसे प्रभावहीन निर्णय न लिए जाएं और ऐसे निर्णय न लिए जाएं जो दूसरों को लेने चाहिए।

निर्णय लेने के सम्बन्ध में इन बातों का ध्यान रखने से कई प्रकार के लाभ होने की सम्भावना बढ़ जाती है। जब अध्यक्ष कोई निर्णय अपरिपक्व रूप से नहीं लेता तो वह इस प्रकार कोई एक दृष्टिकोण अपनाने में बच जाता है तथा उसका पूर्वाग्रह का विकास रुक जाता है। जब वह ऐसे निर्णय नहीं लेता जिनको वह प्रभावशाली न बना सके तो वह अपनी सत्ता को नष्ट होने से बचा लेता है। इसी प्रकार जहाँ दूसरों को निर्णय लेना चाहिए वहाँ स्वयं निर्णय न लेकर वह अनेक दृष्टियों से अच्छा ही करता है। इससे संगठन में मनोबल बना रहता है, अधीनस्थ अधिकारियों में योग्यता का विकास होता है, उनको उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है और साथ ही सत्ता भी सुरक्षित रह सकती है।

निर्णय लेने की कला का यह अध्ययन निर्णयों के दो मुख्य रूपों को प्रस्तुत करता है। प्रथम विधयात्मक निर्णय होते हैं जो कुछ करने के लिए कहते हैं तथा कार्य का निर्देशन करते हैं। ये निर्णय क्रिया पर रोक भी लगाते हैं तथा लोगों को कुछ न करने का आदेश भी दे सकते हैं। दूसरे निषेधात्मक निर्णय होते हैं जो कोई निर्णय न लेने का निर्णय करते हैं। इस प्रकार के निर्णय प्रशासकीय संगठन में प्रायः लिए जाते हैं और कुछ दृष्टियों से इन्हें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। निषेधात्मक निर्णय प्रायः अचेतन, अप्रेक्षणीय, अतार्किक एवं सहज प्रवृत्तियों पर आधारित रहते हैं।

(4) स्तरीय अन्तर
(The Distinction based on Levels)

विषय के आधार पर निर्णय को तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है—प्रमुख निर्णय, गौण निर्णय एवं निम्न स्तरीय निर्णय। बर्नार्ड के शब्दों में संगठन में हम ज्यों-ज्यों मुख्य कार्यपालिका से निम्न स्थितियों में उतरते आते हैं निर्णयों का प्रकार एवं परिस्थितियाँ बदलती जाती हैं। उच्च स्तर में सम्बन्धित निर्णयों पर जिनका सम्बन्ध संगठन के मुख्य लक्ष्यों से होता है अधिक ध्यान देने

की आवश्यकता होती है। इन्हे प्रमुख निर्णय कहा जा सकता है। जिन निर्णयों का सम्बन्ध संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने वाले साधनों से होता है उनको हम गौण निर्णय कह सकते हैं। ये निर्णय संगठन की रचना एवं विकास से सम्बन्धित होते हैं। इनमें प्रमुख निर्णयों को व्यवस्था में विभाजित कर दिया जाता है तथा तकनीकी एवं आर्थिक समस्याओं को प्रमुख महत्व दिया जाता है। निम्न स्तर के निर्णयों का सम्बन्ध तकनीकी रूप में से ही व्यवहार से होता है। इन स्तरों पर ही अन्तिम सत्ता रहती है।

निर्णय लेने की समस्याएँ एवं सीमाएँ

(The Problems and Limitations of Decision Making)

निर्णय लेना एक बहुत जटिल प्रक्रिया है। कई बार स्वयं निर्णय लेने वाला भी यह नहीं जान पाता कि उसने एक विशेष निर्णय क्यों लिया। समय एवं परिस्थितियों के प्रभाव में आकर वह ऐसा निर्णय लेने के लिए बाध्य हो जाता है जिसे वह स्वेच्छा से लेना नहीं चाहता। निर्णय की प्रक्रिया जटिल होने के साथ ही अत्यन्त समस्यापूर्ण भी है। इसमें जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उनका अध्ययन हम निम्नलिखित प्रकार से कर सकते हैं—

1. काम का आधिक्य—प्रशासकीय संगठन में निर्णय लेते समय अध्यक्ष के सम्मुख एक सबसे बड़ी कठिनाई या समस्या कार्यभार के कारण उत्पन्न हो जाती है। संगठन में मुख्य रूप से दो प्रकार के कार्य होते हैं—एक तो वे जिनका सम्बन्ध प्रतिदिन की समस्याओं से होता है और दूसरे वे जो संगठन के मूल लक्ष्य से सम्बन्धित होते हैं जिनके द्वारा दीर्घगामी परिणाम प्राप्त किया जाता है। जब निर्णय लेने वाला अध्यक्ष संगठन की प्रतिदिन की समस्याओं का समाधान करने में उलझ जाता है तो उसके पास इतना समय नहीं रह पाता कि मूल समस्याओं पर समुचित ध्यान दे सके। ऐसी स्थिति में निर्णय की प्रक्रिया का रूप अधिक प्रभावशाली नहीं रह जाता।

प्रतिदिन के कार्यों में आने वाली अध्यक्ष की उलझनें कई परिस्थितियों का परिणाम होती हैं। प्रथम तो यह कि अधीनस्थ कर्मचारी का निर्णय लेने की जोखिम से बचने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र की समस्याओं को अध्यक्ष के विचारार्थ प्रस्तुत कर देते हैं। दूसरे स्वयं अध्यक्ष भी मनोवैज्ञानिक रूप से प्रतिदिन के कार्यों में अपने आपको अधिक उलझाए रखना चाहता है। इस सम्बन्ध में मार्च (March) ने अनेक प्रयोग किए हैं जिनके परिणामस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि अध्यक्ष से यह कह दिया जाए कि नियम प्रति के कार्य और संगठन के मूल लक्ष्य दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं तो भी अध्यक्ष नियम प्रति के कार्यों में अपेक्षाकृत अधिक रुचि लेते हैं।

2. प्राथमिकता की समस्या—निर्णय लेने के मार्ग में एक अन्य कठिनाई प्राथमिकता सम्बन्धी आती है। संगठन जिन समस्याओं का सामना कर रहा है

यदि वे संख्या में कम हैं और उनकी प्रकृति सरल है तो अध्यक्ष उन सबका समाधान आसानी से कर देता किन्तु जब जटिल समस्याओं की संख्या बढ़ जाती है तो प्राथमिकता के अनुसार समस्याओं का क्रम निर्धारण करना पड़ता है। निर्णय लेते समय इन समस्याओं को प्राथमिकता की कसौटी पर कसना अनिवार्य है। यह प्राथमिकता निश्चित करने का कार्य जितना योग्यतापूर्वक होगा संगठन की सफलता एवं कार्यक्षमता उतनी ही अधिक बढ़ जाएगी। समय एवं साधनों की सीमाओं की दृष्टि से अध्यक्ष को यह निर्धारित करना होगा कि किस समस्या पर पहले निर्णय लिया जाए और किस पर बाद में।

3 **निर्णय की सार्थकता निश्चित करना**—अध्यक्ष द्वारा लिया गया निर्णय गलत है अथवा सही यह जानने के लिए कोई मापदण्ड अवश्य होना चाहिए ताकि उससे उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों से बचा जा सके और निर्णयों को क्रियान्वित करने से पूर्व ही उनमें सुधार किया जा सके। कहा जाता है कि एक निर्णय की उपयोगिता निश्चित करते समय उस पर कार्यकुशलता मितव्ययिता आदि की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए और खरा होने पर ही उसे कार्यान्वित करना चाहिए। मार्क्स के मतानुसार एक सही निर्णय की कसौटी सामान्य हित संविधान की आत्मा तथा नैतिक सिद्धान्त होनी चाहिए।[1]

निर्णय की प्रक्रिया से सम्बन्धित इन समस्याओं के अतिरिक्त इसकी कुछ सीमाएं भी होती हैं जिनके आधार पर इसके व्यवहार के स्वरूप को जाना जा सकता है। निर्णय लेने का अधिकार संगठन के उच्च अधिकारियों को होता है जो अपनी सत्ता (Authority) और प्रभाव (Influence) द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अधीनस्थ अधिकारियों के व्यवहार को प्रभावित करते रहते हैं। उच्च अधिकारी द्वारा लिए गए निर्णयों का लक्ष्य अधीनस्थों के व्यवहार को व्यवस्थित निर्देशित और नियन्त्रित करना होता है तथा इस प्रकार वे उनके व्यवहार को बौद्धिकता प्रदान करते हैं।

संगठन के लिए जाने वाले निर्णयों में जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं उनका अध्ययन दो भागों में किया जा सकता है। एक भाग में वे निर्णय होते हैं जो संगठन के सर्वोच्च अधिकारी द्वारा लिए जाते हैं। ये निर्णय प्राय संगठन के मूल लक्ष्य से सम्बन्धित होते हैं और अपेक्षाकृत इनका महत्त्व अधिक होता है। दूसरे भाग में ऐसे निर्णय आते हैं जो पद सोपान में बीच के स्तर के अधिकारी द्वारा लिए जाते हैं। इन निर्णयों का सम्बन्ध प्राय संगठन के साधनों से होता है। ये महत्त्व की दृष्टि से चाहे कम हों किन्तु संख्या और प्रभाव की दृष्टि से अधिक होते हैं। इन दोनों ही प्रकार के निर्णयों की अपनी अपनी सीमाएं (Limitations) होती हैं जिनका अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

1 *F M Marx* The Administrative State 1957 p 185

मध्यस्थ अधिकारियो के निणय का सामाएँ

मध्यस्थ अधिकारिया स हमारा आशय उनमे है जा पद सोपान म उच्च अधिकारी स नीचे होते हैं कि तु निम्न स्तर क कमचारियो से जिनका स्तर ऊ चा होता है। ये अधिकारी सगठन म निणय लन की शक्ति रखन हैं किन्तु इनके द्वारा लिए गए निर्णय अनेक शर्तों एव सीमाओ से प्रतिबधित रहत हैं—

1 ल य की सीमा—सगठन क इन अधिकारियो क निणय उस लक्ष्य के अनुरूप होने चाहिए जो मुख्य अधिकारी द्वारा निधारित किया गया है। राबर्ट टेनिनबाम (Robert Tannenbam) के अनुसार यह महत्वपूण है कि समूह के प्र येक सदस्य द्वारा लिए गए निणय समूह के अनुरूप होने चाहिए न कि उनके व्यक्तिगत लक्ष्य क अनुरूप।[1] सगठन क सदस्यो को लक्ष्यो के अनुरूप ढालने के लिए प्रशिक्षण एव निरन्तर पयवक्षण द्वारा प्रयास किए जा सकत हैं।

2 मापदण्डों की सीमा—उच्च अधिकारियो द्वारा बौद्धिकता के एसे माप दण्ड स्थापित कर दिए जात ह जिनक आधार पर उन्ह अपने निर्णय लने होते हैं। यह निश्चित कर दिया जाता है कि इन अधिकारियो द्वारा एस निणय किए जाए जिनम कम खच म अधिक स अधिक परिणाम प्राप्त हो सकें। एस मापदण्डो द्वारा व्यक्तिगत इच्छा के अवसर कम कर दिए जात ह।

3 विशेषीकरण की सीमा—सगठन म विशेषीकरण (Specialization) की स्थापना द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को एक निश्चित काय सौप दिया जाता है। इसका अथ यह है कि एक अधिकारी केवल अपन विशिष्ट क्षेत्र म ही निर्णय ले सकता है तथा अन्य विषयो को उन अन्य क्षेत्रो क विशषज्ञ अधिकारियो क विचाराथ छोड देता है। टेनिनबाम क अनुसार यह सीमा सगठन के प्रब धात्मक कार्यों का एक पहलू है।

4 औपचारिक सीमा सगठन म सत्ता के औपचारिक माग निधारित कर दिए जाते है जिनक फलस्वरूप इन मध्यस्थ अधिकारियो द्वारा लिए गए निर्णय उच्च सत्ता क विचार पयवेक्षण स्वीकृति निदशन आदि के विषय होत ह।

5 वांछित व्यवहार की सीमा—सामा य रूप स अधीनस्थ अधिकारियो स जिस व्यवहार की कल्पना की जाती है उसम भी इन अधिकारियो की स्वच्छाचारिता को उच्च अधिकारी द्वारा सीमित किया जा सकता है। वह समय-समय पर अतिरिक्त प्रतिब ध लगा कर व्यवहार के विकल्पो की सख्या को कम कर सकता है।

6 सूचनापरक सीमा—सर्वोच्च अधिकारी अधीनस्थो को सम्बधित सूचना भेजकर एस विकल्पो म परिचित करा सकता है जो उसे पहले म ज्ञात नहीं है।

7 समय की सीमा—उच्च अधिकारियो का कई बार अधीनस्थ अधिकारियो को यह निर्देश होता है कि एक निश्चित समय तक निणय ले लिया जाना चाहिए।

1 *Rob t Tann nbam* M ge al Dec s n M king The Journal of Bus ness 23 33 37 (Jun 19 0)

समय की यह सीमा निणय लन म इन अधिकारियों को स्वेच्छा का चुनकर प्रयोग नही करने देती।

4. क्षत्र की सीमा—कुछ निश्चित समस्याओ के क्षेत्रो मे सर्वोच्च अधिकारी अपन अधीनस्थो से एक निश्चित प्रकार के व्यवहार की आशा करते है। फ तत इन क्षेत्रो म अधीनस्थो की स्वच्छा के लिए कोई गु जाइश नही रह जाती। टनिनबाम क ही शब्दो म यहाँ अधीनस्थ अधिकारी स यह आशा नही की जा सकती कि अपने व्यवहार को निर्देशित करन क लिए वह निणय ल अपितु यह आशा की जाती है कि उस रूप म व्यव हार करे जो उच्च अधिकारी द्वारा निश्चित किया गया है।

उच्च अधिकारी क निर्णय पर सीमाए

हमने देखा कि अधीनस्थ अधिकारियो के निणय पर अधिकाँश सीमाए उच्च अधिकारी द्वारा लगाई जाती हैं। इमस यह निष्कर्ष कदापि नही निकालना चाहिए कि उच्च अधिकारी सर्वेसर्वा होता ह और वह जिस समय तथा जो निर्णय लेना चाहे ले सकता ह क्योकि उनके निणय भी अनक प्रकार से प्रतिबधित रहत है। टेनिनबाम लिखत है कि उनके निणय शून्य म नही बनते उन पर भी व सभी सीमाए लगा रहती हैं जिनका पहल वणन किया गया है। इसके अतिरिक्त उन पर अनेक प्रभाव भी र त है। उच्च अधिकारियों के निर्णयो पर सीमाए अनक व्यक्तियो एव समूहो की सत्ता द्वारा लगाई जाती ह। यद्यपि कई बार इन सीमाओ का मानना या न मानना अध्यक्ष की इच्छा पर निभर रहता है तथापि कुछ विशेष परिस्थितियो म उच्च अधिकारी इन सीमाओ का अवहेलना करन म स्वय को असमथ है। उच्च अधिकारी के निर्णयो की कुछ म त्वपूण सीमाए ये है—

1. उच्च अधिकारियों का प्रभाव—प्रशासकीय सगठन का अध्यक्ष अनुत्तरदायी नही हो सकता। उस पर भी नियत्रण एव पयवेक्षण रखन वाल अधिकारी होते हैं जिनक निर्देशन तथा सुझावो का उस पालन करना पडता है।

2. अधीनस्थों का प्रभाव – उच्च अधिकारी औपचारिक रूप म अपने अधीनस्थो पर नियत्रण रखता हैं तथापि उसका व्यवहार अपन अधीन थो क प्रभाव से अछूता न ी र ता। कोई भी निणय लेने समय उ च अधिकारी को अधीनस्थो की प्रतिक्रिया का पूरा ध्यान रखना होता है। यदि वह एसा न करे या अधीनस्थो की इच्छाओ भू ाओ एव प्राथमिकताओ की अवहेलना कर ता उसक निणय प्रभाव शाली नही हो सकत और कुछ समय बाद उसकी औपचारिक सत्ता एक मजाक बन कर रह जाएगी। टेनिनबाम का कथन है कि औपचारिक अधीनस्थो का सत्ता की अस्वीकृति का क्षत्र औपचारिक सर्वोच्च की असत्ता (Non authority) का क्षेत्र परिभाषित करता है।

इस सम्ब ध म चेस्टर बर्नार्ड का यह कहना भी उपयुक्त है कि अच्छ सगठनो म सु व्यवस्थित कार्यपालिका के व्यवहार का कोई सिद्धा त नही हो सकता कि वे

जाएगा प्रसारित नहीं की जाएगी जिनका पालन नहीं किया जा सकता या नहीं किया जाएगा। कार्यपालिकाएं नहीं बल्कि स अनुभवी व्यक्ति बर्नार्ड इस सम्बन्ध म विचार किया है व जानते हैं कि ऐसा करना सत्ता अनुशासन एवं नैतिक चरित्र का नष्ट करता है।[1] एक अच्छे नेतृत्व की यह विशेषता मानी जाती है कि वह औपचारिक प्रशासन की स्वीकृति क क्षेत्र म वृद्धि कर अपनी सत्ता के क्षेत्र को कई गुना कर ले।

3 बाहरी समूहों का प्रभाव—संगठन के अध्ययन के निर्णयों पर एस व्यक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है जो उद्यम के औपचारिक सदस्य के सदस्य नहीं होते। बाहर म प्रभाव डालने वाले संगठन के इन समुदायों म रॉबर्ट टननबाम (Robert Tannenbaum) के मतानुसार मुख्य ये हैं—

(i) सरकारी एजेन्सियाँ स्थानीय राज्य एवं संघ स्तर पर
(Government Age cies Local Stat and Federal)

(ii) प्रबन्ध म अनुबन्ध करने वाले दल
(Parties to Contract with Managem nt)

(iii) आर्थिक समूह
(Economic Groups)

(iv) पंच फैसला करने वाले
(Arbitrators)

(v) कार्टेल व्यापारिक संघ तथा अन्य व्यापारिक संस्थाएं
(Cartels Trade Associations and Other Business Associations)

(vi) सामान्य सामाजिक व्यवस्था
(The General Social Order)

ये विभिन्न समुदाय एवं संगठन के अंग न होने पर भी उसकी निर्णयों को अनेक प्रकार स प्रभावित करते रहते हैं। कोई भी अध्यक्ष चाहे वह कितना ही योग्य सजग एवं औपचारिक रूप स व्यक्तित्वसम्पन्न क्यों न हो निर्णय लेते समय इन सभी से अवश्य ही प्रभावित होता है। इनके प्रभावों के प्रति उदासीनता अथवा उपेक्षा दिखाने पर उसके निर्णय अधिक सफल तथा सार्थक नहीं हो सकते।

निर्णय लेने की आधारभूमि

(The Grounds of Decision Making)

संगठन के व्यवहार का अध्ययन करने म सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह जानना है कि कर्मचारी उन विकल्पों का चयन किस आधार पर करता है अर्थात्

1 Ch s rl Barna d The Functions of the Ex utive 1938 p 167

कार्यकर्ता की प्रेरणाएं क्या होती हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया बौद्धिक और अबौद्धिक दोनों ही आधारों पर सञ्चालित हो सकती है। प्रशासकीय निर्णय लेते समय कार्यकारी प्रेरणाओं के मुख्य रूप से दो विभिन्न तत्त्व होते हैं वे ये हैं—

(i) मूल्यात्मक तत्व (Value Elements)

(ii) तथ्यात्मक तत्त्व (Factual Elements)

उक्त दोनों तत्त्वों के बीच का अन्तर सम्भवतः साधन और साध्य का अन्तर है। वैसे दोनों एक दूसरे के निकटतम सम्बन्धी हैं।

प्राय प्रत्येक मूल्यात्मक प्रेरणा में तथ्यात्मक तत्त्व निहित होता है जिसे पूरी तरह पृथक नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि प्रत्येक लक्ष्य अपने आप में लक्ष्य नहीं होता वरन् वह किसी बड़े लक्ष्य का साधन होता है। इन दोनों प्रकार की प्रेरणाओं के महत्वपूर्ण रूप का अध्ययन आवश्यक है—

कुछ महत्वपूर्ण मूल्य प्रेरणाएं
(Some Important Value Motives)

संगठन के कार्यों में निर्णय लेते समय जिन मूल्य प्रेरणाओं का प्रभाव रहता है वे अनेक प्रकार की होती हैं। लोक प्रशासन के विचारकों ने जिन मुख्य प्रेरणाओं का वर्णन किया है वे चार हैं—

1 संगठन के लक्ष्य (The Purpose)—प्रशासकीय विकल्पों के चुनाव पर संगठन के लक्ष्यों का बहुत प्रभाव पड़ता है। किसी भी प्रस्तावित कार्य का इस आधार पर देखा जाता है कि क्या यह संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में योग देगा। संगठन के लक्ष्यों में हमारा तात्पर्य केवल यह नहीं है कि क्रियाएं किन मूल्यों की दिशा में अग्रसर हो रही हैं अपितु यह भी है कि इसस लोगों के किस वर्ग की तथा कभी सेवाएं सम्पन्न होंगी। संगठन को उन लोगों का समर्थन प्राप्त हो जाएगा जो इसके लक्ष्यों को स्वीकार करते हैं। जो लक्ष्यों को स्वीकार नहीं करते वे इसका विरोध करेंगे। कभी कभी वर्ग विशेष संगठन पर छा जाता है और उसके माध्यम से वह अपने लक्ष्यों को पूरा करता रहता है।

2 कार्यकुशलता (Efficiency)—एक दूसरी मूल्य प्रेरणा जो अधिकांश संगठनों को प्रभावित करती है कार्यकुशलता है। कहा जाता है कि यदि संगठन के लक्ष्यों की दृष्टि से दो कार्यों का एकसा ही परिणाम निकलता है तो हमें कम खर्च वाला कार्य चुनना चाहिए। दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि यदि दो [illegible] परिणाम या फल प्रदान कर सके। प्रश्न प्राथमिकताओं का है। कुछ लोग बचत (Economy) का महत्व देते हैं जबकि दूसरे लोग कार्यकुशलता को। अधिकांश विचारकों का तर्क है कि प्रशासन के समस्त विज्ञान एवं कला प्रशासकीय संगठन द्वारा साधनों के कुशल प्रयोग से सम्बन्धित है।

(ii) अन्तर सम्मान एवं व्यक्तिगत शक्ति के अवसर।
(iii) कार्य का वांछित भौतिक आवश्यकताएं जैसे—सफाई व्यक्तिगत कार्यालय आदि।
(iv) आदर्श लाभ जैसे—कार्य के प्रति सम्मान परिवार अथवा दूसरों के लिए सेवा देशभक्ति या धार्मिक भावनाएं आदि।
(v) संगठन के सामाजिक सम्बन्ध में व्यक्तिगत सुविधा और सन्ताप।
(vi) व्यवहारों एवं दृष्टिकोणों के लिए मान्यता तथा संगठन के व्यवहार के तरीके रीति रिवाजों की स्वीकृति एवं लोकप्रियता।
(vii) बड़ी तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं में भाग लेने की भावना।

व्यावहारिक जीवन में हमें ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं जिनमें इन प्रलोभनों में से किसी का भी प्रभाव किसी कर्मचारी में वह इच्छा जाग्रत कर सकता है जिसके अनुसार वह संगठन के लक्ष्यों एवं मूल्यों को कुछ देन दे सके।

बर्नार्ड द्वारा दी गई प्रेरकों की इस सूची में एक उल्लेखनीय बात यह है कि वे इस विषय के सभी आधुनिक लेखकों की भांति इस पर जोर देते हैं कि भौतिक प्रेरक वेतन बोनस आदि सम्भवतः अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं हैं जो एक कर्मचारी को संगठन के लिए उसके सक्रिय एवं उत्साहपूर्ण सहयोग को प्रेरित कर सकें। केवल अच्छा वेतन मिलने पर यह हो सकता है कि एक कर्मचारी औपचारिक रूप से कार्य करता रहे किन्तु अधिक पहल का प्रयोग तो वह केवल तभी करेगा जब उसको अभौतिक (Non material) सन्तोष प्राप्त होंगे।

संगठन के मूल्यों एवं व्यक्ति के मूल्यों के बीच परस्पर व्यवहार का लाभ सम्मेलनों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यदि हम एक सम्मेलन में प्रशासकों के समूह का निरीक्षण करें तो देखेंगे कि उनका व्यवहार अनेक मूल्यों से प्रभावित होता है। यदि ऊपर से देखा जाए तो सम्मेलन का सारा वाद विवाद संगठन के औपचारिक रूप पर ही होता है। एक व्यक्ति जो किसी विषय का समर्थन अथवा विरोध करता है वह भी उसे सैद्धान्तिक रूप दे देता है किन्तु यदि हम यह जानना चाहें कि सम्मेलन के विभिन्न सदस्यों ने जो दृष्टिकोण अपनाया है उसका क्या कारण है तो हम उनके व्यक्तिगत मूल्य को जानना होगा। यदि सम्मेलन के दो सदस्यों में परस्पर विद्वेष है तो वाद विवाद में भी एक दूसरे का विरोध कर सकते हैं यद्यपि विरोध का रूप सैद्धान्तिक होगा। वास्तविकता को न तो वे स्वयं ही स्वीकार करेंगे और न दूसरे के कहने पर ही मानेंगे। दो व्यक्तियों के हित टकराते हैं तो वे आपस में विरोधी बातें करने लग जाते हैं। कई बार व्यक्ति के चरित्र की गौण विशेषताएं भी अप्रत्यक्ष रूप से संगठन में उसके व्यवहार को प्रभावित करती है। एक व्यक्ति जिसमें असुरक्षा की भावना प्रभावशील है अपने व्यवहार में भी इस भावना से अवश्य प्रभावित होगा। यदि सम्मेलन के सभी व्यक्तियों ने एक प्रस्ताव को एकमत से स्वीकार या

बात का ज्ञान एवं सूचना भी है कि सगठन के दूसरे सदस्य क्या कर रहे हैं किस प्रकार काय कर रहे हैं तथा क्या करेंगे। इस प्रकार यह सब काय समन्वय का है कि वह सगठन के प्रत्येक सदस्य को यह जानकारी दे कि दूसरे कमचारियो से सम्बन्धित उनके काय क्या हैं ?[1]

निर्णय प्रक्रिया के प्रभावक तत्त्व

(Elements Influencing the Decision Making)

किसी सगठन का एक कमचारी जब सगठन मे रहकर व्यवहार करता है तो वह व्यवहार उसके उस व्यवहार से भिन्न होता है जो वह सगठन के बाहर रहकर करता है। कारण यह है कि जब वह सगठन मे व्यवहार करता है तो उस पर दूसरे व्यक्तियो का भारी प्रभाव पडता है। वास्तव मे प्राय सभी छोटे सगठनो मे अधिकाश कमचारी एेसे होते हैं जिनकी सगठन के लिए मूल्य देन यह होती है कि वे दूसरे कमचारियो के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इसलिए यदि हम जानना चाहते हैं कि एक प्रशासकीय सगठन मे क्या हो रहा है तो हम यह देखना चाहिए कि सगठन इसके सदस्यो को निर्णय लेने मे किस प्रकार प्रभावित करता है।

जब अनेक विकल्पो मे से एक का चुनाव किया जाता है तो यह चयन कमचारी पर पडने वाले कई प्रभावो का परिणाम होता है। उसने अपने सम्पूर्ण जीवन के पूव अनुभवो द्वारा जो योग्यता ज्ञान चरित्र एव व्यक्तित्व प्राप्त किया है वह तथा निर्णय लेते समय जो प्रभाव उसके ऊपर काय कर रहे होते हैं वह मिलकर उसके व्यवहार का रूप निश्चित करते हैं। कई बार व्यक्ति के उपयुक्त पूव अनुभवो का उसके व्यवहार पर अधिक प्रभाव पडता है। एक विशेष परिस्थिति मे उसके काय का जो रूप होता है वह उसके चरित्र की उन आदतो का परिणाम होता है जो अभ्यास के कारण उसके व्यक्तित्व का अग बन चुकी होती हैं। लोक प्रशासन की भाषा मे इनको आन्तरिक प्रतिक्रियाए (Internalized Reactions) कहा जाता है। इस प्रकार सगठन अपने कमचारियो पर जो प्रभाव डाल सकता है वह दीघसूत्री तथा समूहीकृत होता है। यह प्रभाव आन्तरिक बनकर उनके दृष्टिकोण एव व्यक्तित्व का एक अग बन जाता है। व्यक्ति के व्यवहार पर सगठन के अन्दर तथा सगठन के बाहर पडने वाले प्रभावो को मुख्य रूप से चार वर्गों मे विभाजित किया जाता है जो निम्नलिखित है—

1 पूव प्रभाव—वे अवस्थाए जिनको व्यक्ति सगठन का सदस्य बनने से पूव प्राप्त करता है। इसमे उसकी पूव शिक्षा काय का अनुभव तथा अन्य सभी अनुभव जो उसके व्यक्तित्व एव चरित्र के निर्माणक भाग होते हैं सम्मिलित किए जा सकते हैं।

1 Simon dOh s op cit p 65

2 बाहरी प्रभाव—जब व्यक्ति सगठन का सदस्य बन जाता है तो उस पर बाह्य स्रोतो द्वारा भी अनेक प्रभाव डाल जाते हैं। सगठन तो प्रति सप्ताह कुछ समय के केवल कुछ ही घण्टे लेता है। इसके अतिरिक्त वह अपना यूनियन अथवा व्यावसायिक सगठन का सदस्य हो सकता है। इस प्रकार के बाहरी प्रभाव किसी न किसी मात्रा म अवश्य पडते है।

3 औपचारिक प्रभाव—कर्मचारी पर औपचारिक सगठनात्मक प्रक्रिया का प्रभाव पडता है। उसके कुछ उत्तरदायित्व हो जाते हैं वह कुछ आज्ञाए प्रसारित करता है प्रशिक्षित कार्यक्रम चलाता है सांख्यिकीय प्रतिवेदन देता है तथा इसी प्रकार के अन्य काय करता है।

4 कर्मचारी पर उस अनौपचारिक सामाजिक ढाचें का प्रभाव भी पडता है जो सगठन म विकसित हो जाता है।

बाह्य प्रभाव
(External Influence)

सगठन म काय करने वाले व्यक्तियो के व्यवहार पर जो बाह्य प्रभाव पडते हैं उन सभी को जानना एव अध्ययन करना असम्भव सा है। हमारे लिए केवल उन प्रभावो की जानकारी हो पर्याप्त है जो प्रशासन को समझने की दृष्टि म महत्व पूर्ण हैं—

1 सामाजिक दृष्टिकोण एव व्यवहार के तरीके—प्रत्येक समाज के अपने कुछ विश्वास एव रीति रिवाज होते हैं जिनके अनुसार वह अपना जीवन सचालित करता है। समाज मे रह कर एक व्यक्ति जिस प्रकार दूसरे व्यक्तियो के साथ व्यवहार करता है उससे यह शिक्षा मिलती है कि सगठन में रहकर दूसरे व्यक्तियो के साथ कसा व्यवहार करना चाहिए। समाज की परम्पराए (Mores) व्यवहार के उन स्थापित तरीको को कहते है जो समाज के सभी सदस्यो की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के बाद प्रभावकारी होते हैं। एक बालक जिस समाज म जन्म लेता है उसके आचरण के तरीको को धीरे धीरे सीखता रहता है। जब वह वयस्क हो जाता है तो अधिकाश परम्पराए जसे पहनने खाने अपरिचितो से मिलने तथा विभिन्न परिस्थितियो म व्यवहार करने के उपयुक्त तरीको के साथ वह इतना अभ्यस्त हो चुका है कि ये सभी बातें स्वाभाविक सी बन जाती हैं। व्यक्ति को इन सामाजिक परम्पराओ के प्रति जागरूकता केवल तभी आती है जब वह इनका भग करता है। समाज की कुछ परम्पराए सगठन के उचित व्यवहार का निश्चय करती हैं। कई सगठन म कार्यकर्ताओ का पहनने के लिए एक विशेष पोशाक होती है। अधीनस्थो एव उच्च अधिकारियो से व्यवहार करने का तरीका अलग अलग होता है। मरियम मीनाग ने मत व्यक्त किया है कि एक सरकारी अभिकरण का अस्तित्व पाथक्य म नही

होना। य सत्व समाज क राति रिवाजो एव व्यवहारा क तले रहता है जो इस घेर रहते हैं।[1]

प्रशासकीय सगठन म सामाजिक रीति रिवाज क ग्राधार पर जिन बाता का रूप निश्चित किया जाता है उनम से उल्लेखनीय हैं—सत्ता (Authority) स्तर (Status) और कायकुशलता (Efficiency)। एक समाज की परम्पराए प्राय यह निश्चय कर लेती हैं कि व्यक्ति का सत्ता क प्रति क्या दृष्टिकोण हुआ? वह अपने उच्चाधिकारी की ग्राज्ञा मानना अपना धम समझेगा अथवा उसकी हर बात का विरोध करने म रुचि लेगा। यदि सगठन म ग्रनेक वग बन जाए तो सत्ता का किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए? पारितोषिक दण्ड आदि के माध्यम स क्या सत्ता के प्रति आज्ञाकारिता प्राप्त की जा सकती है आदि? सत्ता क रूप समाज म व्यापक रूप स प्रभावशाली रहते हैं। यह सामान्य रूप मे मान लिया जाता है कि यदि एक व्यक्ति एक सगठन म काय स्वीकार कर रहा है तो उस एक उचित सीमा म सगठन के नियन्त्रणकत्ताग्रो की ग्राज्ञाए माननी पडगी। प्रजातन्त्रात्मक समाज म प्रशासकीय सगठनो म सत्ता क स्वेच्छाचारी प्रयोग का स्वीकार नहीं किया जा सकता।

सत्ता (Authority) की भाति स्तर (Status) का निर्धारण भी प्राय समाज क रीति रिवाजो से हुआ करता है। दूसरे लोगो के साथ व्यवहार करत समय हम उनका ऊचा सम्मान या नीचा स्तर प्रदान करते हैं तथा जसा स्तर प्रदान किया जाता है उसी के अनुरूप उनके साथ व्यवहार करत हैं। यदि कोई अधीनस्थ अथवा उच्च पदाधिकारी स्तर व्यवस्था को मा यता नही देता तो उसके व्यवहार को सगठन म मान्यता प्राप्त नहीं हो सकती। सगठन के किसी भी कमचारी को उसक स्तर के प्रतिकूल काय नही दिया जाएगा। इस दृष्टि स हम देखत हैं कि विभाग के मुखिया को कुर्सी लाने ले जाने का काम नहीं किया जा सकता।

कुछ समाजा मे कुशलता पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। यहाँ उस व्यवहार को जिसम स्रोतो का जान बूझकर अपव्यय किया जाता है अथवा उनका कम उपयोग किया जाता है अच्छा नहीं समझा जाता। उसे यदि अनैतिक नहीं तो अबौद्धिक अवश्य कहा जाता है। अपव्यय क प्रति एक सगठन की धारणाए उसके आर्थिक धार्मिक एव सस्थागत रूप पर निभर करती हैं। अनेक समुदाया म यह देखा जाता है कि उसके सदस्य अपने समुदाय के प्रति स्वामिभक्त होते हैं। इसका अथ यह है कि यदि एक सगठन की दूसरे सगठन से फण्ड काय क्षेत्र शक्ति के अन्य क्षेत्र आदि के आधार पर प्रतियोगिता हो जाए तो वह अपने सदस्यो से यह आशा करता है कि वे अपने समूह के हितो का पक्ष लेंगे। जो प्रशासक अपने लोगो की प्रगति के लिए नहीं लडता अथवा जो अपने सगठन के लक्ष्यो के लिए जागरूक नहीं है वह अपने अप

1 *S m n and Others* op cit p 69
2 *Fri J Ro hl sberg r* Management a d M al p 60

का मनोबल बनाए नहीं रख सकता । इस तथ्य का कोई तार्किक आधार न । है वरन् इन तो उस विशेष समाज म प्रभावशाली समूह की स्वामिभक्ति की भावना (Group Loyalty Spirit) से प्रकट होता है ।

किसी समाज म पाए जाने वाले अ य विश्वास भी लोक अभिकरणों के कम चारियों के यवहार को प्रभावित करने का काय करते हैं। साइमन आदि के अनुसार विश्व म व्याप्त अनेक प्रकार की सस्थाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जब मानव प्रकृति हर जगह एक समान रहती है मानवीय व्यवहार अनेक प्रकार का हो सकता है ।[1] एक समाज के विभिन्न यक्तियों म भी भिन्नताए होती हैं किन्तु व अलग अलग समाज के यक्तियो की अपेक्षा कम होती हैं । दो समाज के यक्तियो के बीच प्राप्त भेदो की प्रकृति यक्तिगत न होकर सामाजिक होती है। हमारा अधिकाश यवहार ऐसा होता है जो उन परिस्थितियो म सामाजिक रूप स होता चाहिए । कभी कभी एक बड़ा सगठन भी अपना स्वय का सामाजिक वातावरण बना लेते हैं विशेषत उस समय जब व बहुत अधिक समय तक सगठन म ही रहते हैं। सैनिक सगठनो के अधिकारी वर्ग की रूढ़िया इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। फिर भी उस सनिक सगठन की परम्पराए जो प्रजातन्त्रात्मक समाज म रहती हैं उस सनिक सगठन की परम्पराओं स भिन्न होगी जो तानाशाही समाज म रहती हैं। यदि सगठन के रीति रिवाज समाज के रीति रिवाजो स भिन्न या विरोधी होग तो उनको प्रभावित कर अनुकूल बनाया जा सकता है। साइमन आदि विद्वानो के मतानुसार किसी भी सगठन का प्रशासकीय यवहार उस समाज के यवहारो एव विश्वासो स भिन्न नहीं हो सकता जिसम वह काय कर रहा है। जब भी कोई सगठन नए कमचारी की नियुक्ति करता है तो उसके प्रशिक्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण काय यह होता है कि उस सगठन म स्वीकृत यवहार के तरीको के अनुसार ढाला जाए। प्राय सभी सगठनो म नए कमचारी स यह आशा नहीं की जाती कि वह सगठन की योजनाओं एव अपने स्थान को अच्छी प्रकार स समझे बिना ही आगे बढ जाए।

2 यक्तिगत प्रवत्तिया एव उनका प्रभाव—सगठन का अधिकाश यवहार अबौद्धिक एव अचेतन मन द्वारा सचालित होता है यक्ति के बुद्धिपूर्ण कार्यों मे ही प्राय एकता तथा समरूपता पाई जाती है। किन्तु जो काय भावनाओं एव प्रवृत्तिया स प्रेरित होकर किया जाता है उसमे अनेक प्रकार की विभिन्नताए दृष्टिगोचर होती हैं। यही कारण है कि सगठन के कार्यों म एकरूपता लाना कठिन होता है। सगठन म कोई कमचारी जो काय करता है वह केवल बुद्धि द्वारा ही तो नहीं होता। उस काय का सही कारण जानने के लिए हम उस यक्ति के सम्पूर्ण यक्तित्व की ओर झाकना होगा तथा इसके लिए हम मनोविश्लेषण अथवा इसी प्रकार के अ य तरीको का

1 S on and Oth rs p c t p 72

अपनाना होगा। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ एवं इच्छाएं प्राय समाज द्वारा उससे की गई मांगों के साथ टकरा जाती हैं। टकराने पर व्यक्ति के मस्तिष्क में जो हलचल होती है वह उसके स्वभाव का एक अंग बन जाती है। कभी कभी व्यक्ति की चेतना उसकी गलत प्रवृत्तियों एवं इच्छाओं के लिए उसे दोषी ठहराती है तथा प्राय उनको भिन्न दिशा की ओर उन्मुख करती है। मनुष्य के व्यक्तित्व में समाज और अपनी चेतना के प्रति जो संघर्ष रहता है उसके कारण उसका व्यवहार अबौद्धिक एवं अकल्पनीय बन जाता है। एक उच्च अधिकारी जब एक तुच्छ घटना पर लाल पीला हो जाता है तो हो सकता है कि वह पिछले सप्ताह उसकी पदोन्नति रुक जाने के कारण उत्पन्न क्रोध को प्रकट कर रहा हो। यद्यपि क्रोध के इस सही कारण को न तो वह स्वयं पहचानेगा और न ही स्वीकार करेगा।

संगठन में मानवीय व्यवहार को परखने के लिए उसके व्यक्तित्व के विभिन्न तत्वों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये तत्व कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे—व्यक्ति की वस्तुपरकता उसका प्रभुत्व उसकी महत्त्वाकांक्षाएं उसकी गतिशीलता उसकी सामाजिकता आदि। इनके प्रभाव से प्रेरित होकर ही एक व्यक्ति संगठन में व्यवहार करता है।

व्यक्ति की वस्तुपरकता (Objectivity) का अर्थ है कि उसका व्यवहार वास्तविक स्थिति की आवश्यकताओं से प्रभावित होना चाहिए न कि आत्माभिव्यक्ति की इच्छा से। मनोविकारों से प्रभावित व्यवहार परिस्थितियों को वास्तविक अवस्थाओं के साथ अपना समायोजन नहीं कर पाता। साइमन आदि के कथनानुसार वस्तुपरक व्यक्ति वह है जो स्थिति पर बौद्धिक रूप से विचार कर सकता है क्योंकि वह मनोविकारों के प्रभाव से स्वतन्त्र है।[1] असामञ्जस्यपूर्ण व्यवहार प्राय निराशाओं (Frustration) से उत्पन्न होता है। निराश एवं हताश व्यक्ति किसी भी प्रकार का अबौद्धिक कदम अपना सकते हैं—वे शारीरिक हिंसा पर उतर सकते हैं बचकाने व्यवहार का बहाना ले सकते हैं उचित परिवर्तनों के प्रति भी वे अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं दिखाते तथा सन्तुलन एवं पहल का समस्त मनोबल खो देते हैं। इनमें से कोई भी एक व्यवहार उनको संगठन की क्रियाओं के अयोग्य बना देगा। सरकारी अभिकरणों में भी जब पक्षपातपूर्ण व्यवहार होने लगता है तो कर्मचारियों के दिन निराशा से भर जाते हैं। दूसरे की बुराइयाँ करना तथा अफवाहें फैलाना ऐसे संगठनों की प्रवृत्तियाँ बन जाती हैं।

प्रभावशीलता (Ascendance) से अर्थ यह है कि एक व्यक्ति पारस्परिक सम्बन्धों में नियन्त्रण रखने तथा पहल करने की शक्ति को कितना प्राप्त कर पाता है। प्रभावशीलता की मात्रा व्यक्ति की प्रकृति के साथ परिस्थितियों से भी प्रभावित होती है। एक प्रशासक अपने अधीनस्थों के साथ व्यवहार करते समय प्रभावी हो

1 Si[illegible] nd O[illegible] s op cit p 74

सकता है किन्तु वह उच्च अधिकारियों के सामने समपणकारी बन जाता है। इसकी विपरीत स्थिति भी सम्भव है। सा मन तथा अ य के मतानुसार प्रभावशीलता अथवा समपणकारी प्रवृत्ति प्राय निराशा अथवा व्यर्थ तत्व के दूसरे ढंगों का परिणाम हो सकती है।[1] एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति स्व संगठन म अपने स्तर तथा अपनी प्रगति के बारे में चिन्तित रहता है। अपने वास्तविक व्यवहार म वह प्रभावशाली नो भी सकता है और न भी किन्तु वह अपने पद वेतन एवं स्तर म किसी प्रकार के परिवर्तन के प्रति बड़ा भावुक रहता है। बर्ले गार्डनर (Burleigh Gardner) के मतानुसार ऐसे व्यक्तियों की उपस्थिति कर्मचारी वर्ग के प्रब ध की विशद समस्याएं उत्पन्न कर देती है।

कर्मचारियों के बीच काय की तत्परता एवं स्थायित्व के आधार पर भी महत्त्वपूर्ण अ तर पाए जाते हैं। कुछ लोग बडी जल्दी मे निर्णय न लेने हैं और वे जो निर्णय लेते हैं उन पर डटे रहते है। इसके विपरीत अनेक व्यक्तियों को निर्णय लेते समय काफी असमंजस का सामना करना पड़ता है फलत निर्णय लेने म पर्याप्त विलम्ब हो जाता है। निर्णय लिए जाते हैं उन पर भी व पूरी तरह से दृढ नहीं रहते। जब कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया जाता है तो अधिकांश प्रशासक उस बहुत समय पहले से ही लोगों के सामने विचाराथ रख देते हैं।

सामाजिकता का अथ यह है कि एक व्यक्ति मे उन लोगों का दृष्टिकोण एवं इच्छाएं समझने की शक्ति होनी चाहिए जिनके साथ रहकर उसे व्यवहार करना है। संगठन के अलग अलग कर्मचारियों पर प्रभाव डालने के ढंग भी अलग अलग होते हैं। एक व्यक्ति आर्थिक प्रलोभनों से अधिक प्रभावित होता है जबकि दूसरे व्यक्ति के साथ भावनात्मक व्यवहार कारगर होता है। इस प्रकार कर्मचारियों के व्यक्तित्व के मूल तत्त्वों को समझकर ही उनके साथ तदनुकूल व्यवहार किया जाना चाहिए। ऐसा करने पर ही एक प्रशासक लोकप्रियता प्राप्त करने के अतिरिक्त अपने संगठन का मनोबल एवं अनुशासन ऊंचा उठा सकता है।

3 **पूर्व प्रशिक्षण का प्रभाव**—संगठन के कर्मचारियों को नवीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए चार तथा योग्यता प्रदान करने के उद्देश्य से पर्याप्त शि क्षण प्रशि क्षण एवं कार्यानुभव प्रदान किया जाता है। इस समस्त प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारियों म व्यावसायिक दृष्टिकोण विकसित होता है। वकीलों डाक्टरों इंजीनियरों आदि की स्वामिभक्ति अपने व्यवसाय के प्रति भी उतनी ही रहती है जितनी विशेष योग्यता के प्रति। प्रशिक्षण द्वारा कर्मचारी मे अपने व्यवसाय के प्रति जो दृष्टिकोण विकसित हो जाता है वह अपने साथी कर्मचारियों के साथ रहने पर और भी अधिक विकसित हो जाता है। व्यवसायवाद पूर्व प्रशि क्षण एवं बाह्य समूह के साथ इन

1 *Simon and Others op cit p 75*

दोनों के मिले जुले प्रभाव का परिणाम होता है। एक ऐसे सगठन मे जिसके सभी कर्मचारी एक ही व्यवसाय के होते हैं व्यवसाय की स्वामिभक्ति सगठन की स्वामिभक्ति को बढावा देती है और एक सुसगठित समूह का निर्माण कर देती है। अनेक सगठनात्मक कार्यों मे अनेक प्रकार के व्यवसायो का सहयोग आवश्यक होता है और इस आवश्यकता के परिणामस्वरूप विभिन्न व्यवसायो के कर्मचारियो के बीच एकता की भावना का विकास होता है। फिर भी कभी कभी सगठन की स्वामिभक्ति के बीच प्रतियोगिता भी पैदा हो जाता है। उदाहरण के लिए एक सरकारी अभिकरण का नियन्त्रक यह जानता है कि अमुक यदि वह समझे कि वह व्यय अवैध है तो उसके लिए व्यय सगठन के लक्ष्य की उन्नति के लिए परमावश्यक है तो भी स्वीकृति प्रदान करने से मना कर सकता है।

इस प्रकार सगठन मे कार्य करने वाला व्यक्ति एक कोरे कागज के समान नहीं होता जिस पर कुछ भी लिखा जा सके तथा उससे मनचाहा व्यवहार कराया जा सके। जिस समय एक कर्मचारी को सगठन मे नियुक्त किया जाता है उस समय तक उसका व्यक्तित्व पूरी तरह से बन चुका होता है उसमे समाज के रीति रिवाज परिपक्व हो चुके होते हैं वह सगठन के बाहर अनेक सस्थाओ का सदस्य होता है। इसके अतिरिक्त उसे अनेक व्यावसायिक सस्थाओ मे प्रशिक्षण दिया जाता है। कर्मचारी के व्यवहार को प्रभावित करने या निर्देशित करने की सगठन की योग्यता पर कुछ निश्चित सीमाएँ होती हैं। सगठन को सबसे बडा अधिकार यह प्राप्त होता है कि उसको चुनाव के समय स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। इस अधिकार का प्रयोग करते हुए एक सगठन ऐसे कर्मचारी नियुक्त कर सकता है जो उसके साथ सहयोग कर सके। उदाहरण के लिए सहकारी विभाग का कार्यालय ऐसे व्यक्ति को नियुक्त होने से रोक सकता है जो पारस्परिक सहकारिता मे विश्वास नही करता है। व्यावसायिक स्तर पर तो कर्मचारी का चुनाव स्वय ही हो जाता है अर्थात् जो व्यक्ति जिस व्यवसाय मे निपुण है उसे उसी पद पर नियुक्त किया जाता है। ऐसी नियुक्ति की प्रक्रिया की कुछ अपनी समस्याएँ भी होती हैं। इसके अतिरिक्त एक पद के प्रति एक व्यक्ति केवल इसीलिए आकर्षित नहीं होता कि वह उसकी रुचि का रहता है वरन् इसलिए भी कि उस पद पर वेतन अधिक मिलता है।

आन्तरिक प्रभाव (Internal Influence)

सगठन के बाहर से पडने वाले इन प्रभावो का ही मानवीय व्यवहार की पूरी व्याख्या नही कहा जा सकता। यदि ये बाहरी प्रभाव ही व्यवहार का निर्णय करते तो लोग सगठन मे भी ऐसा व्यवहार करते जैसा उसके बाहर करते हैं। वास्तविकता यह है कि एक सगठन मे किसी विशेष पद पर नियुक्त हो जाने के बाद व्यक्ति का व्यवहार भी एक विशेष रूप धारण कर लेता है। उसमे इतनी विशिष्टता आ जाती है कि कई बार हम कर्मचारी के पहनाव बोलने एव चलने का ढग

मिलने का तरीका आदि बातो को देखकर ही यह बता देते हैं कि यह किस सगठन म काय कर रहा होगा। व्यक्ति के विचार विश्वास व्यवहार एव दृष्टिकोण को ढालने मे सगठन का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। मनोविज्ञान की पुस्तको म एक सेवा निवृत्त सनिक का वृत्तान्त आता है जो बाजार से कुछ खरीद कर सामान हाथो म लटकाए लौट रहा था। माग म कुछ मसखरे मित्रो ने अनजाने म अचानक ही जोर की आवाज मे कह दिया— सावधान। यह सुनते ही वह सनिक सीधा सावधान की स्थिति म खडा हो गया और उसके हाथ का सारा सामान धरती पर बिखर गया। जब मित्रो की हसी की आवाज सुनी तो उस वस्तुस्थिति का सही भान हुआ। वास्तव म व्यवहार की कथा से मिलते हुए सगठन के अनेक नियम मान्य व्यवहार मूल्य दृष्टिकोण आदि उसके कमचारियो के व्यक्तित्व का एक अविच्छिन्न अग बन जाते हैं। सगठनात्मक व्यवस्था निरन्तर व्यक्ति के दृष्टिकोणो को मोडने एव ढालने का काय करती रहती है। इस प्रकार एक व्यक्ति जो करता है या निर्णय लेता है उस पर उस सगठन का पर्याप्त प्रभाव रहता है जिसम वह काय कर रहा है। सगठन म रहकर व्यक्ति जो काय जिस प्रकार स कर सकता है तथा करता है उसे वह सगठन से बाहर रहकर उस रूप म नहीं करेगा। इस तथ्य की पृष्ठभूमि म अनेक मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय कारण रहते हैं जो मिलकर सगठनात्मक व्यवहार को एक विशेष रूप प्रदान कर देते हैं—

1 वे मूल्य तथा प्रेरणाए जिन पर सगठन के एक कमचारी को निर्णय लेने होते हैं तथा व्यवहार करना होता है प्राय वही होते हैं जो सगठन के अथवा उस सगठनात्मक इकाई के हैं जिसम वह काय कर रहा है। सगठन म रहकर कमचारी उसके लिए सौंपे गए विशेष उत्तरदायित्व तक ही सीमित एव केन्द्रित रहता है उसके बाहर काम करने की सामर्थ्य एव आवश्यकता उत्पन्न होने पर भी वह करने के लिए बाध्य नहीं होता। इस प्रकार एक कमचारी जिन मूल्यो एव प्रेरणाओ के साथ काय करता है वे आवश्यक रूप से सम्पूर्ण सगठन के मूल्य नहीं होते वरन् उस कार्यविशेष के होते हैं जो उसको सौंपा गया है। सा मन आदि के कथनानुसार सगठन म यह एक ऐसी विशेषता होती है कि सगठन के पूरे काय को कई आशिक कार्यो म विभक्त कर दिया जाता है तथा वह विभाजित काय एक कमचारी अथवा कमचारी-समूह का लक्ष्य बन जाता है।[1]

2 सगठन म कमचारी पर अन्य सस्था द्वारा अनेक प्रभाव डाले जाते हैं और यदि ये प्रभाव न्यायोचित एव वैध हैं तो उसे वे स्वीकार भी करने होते हैं। इन प्रभावो को एक व्यवस्थित एव नियोजित रूप म डालने के लिए सचार व्यवस्था की सहायता ली जाती है। सचार का रूप कुछ भी हो सकता है जसे आज्ञाए

[1] Simon and Others op cit p 80

सूचनाएं परामर्श प्रशिक्षण आदि। सचार के इन विभिन्न साधनों को जानबूझ कर विशेष रूप प्रदान किया जाता है ताकि एक कर्मचारी को सगठनात्मक प्रभाव के एक नियोजित वातावरण में रखा जा सके। सत्ता की श्रेणियों को औपचारिक रूप प्रदान करने के पीछे भी यही तर्क कार्य करता है।

3 एक कर्मचारी स्थायी रूप से कुछ आशाए बना लेता है कि सगठन के दूसरे लोगों के साथ उसका व्यवहार कैसा रहेगा और विशेष परिस्थितियों में वे किस प्रकार व्यवहार करेंगे।

4 कर्मचारी से यह आशा की जाती है कि वह सगठन के लक्ष्यों को आगे बढ़ाने में निष्क्रिय की अपेक्षा सक्रिय दृष्टिकोण रखेगा। इसका अर्थ यह है कि जब उसके सामने कोई समस्या उठ खड़ी होगी तो वह उसका सलझाते समय केवल सगठन के लक्ष्यों एव प्राप्त निर्देशों से ही प्रभावित नहीं वरन् स्वय की पहल करने की शक्ति का प्रयोग करेगा। सगठन के लक्ष्यों को कम समय एव कम व्यय में प्राप्त करने के लिए ऐसा करना परम आवश्यक है न तो सगठन के कर्मचारियों के लिए कदम-कदम पर रुकावटें आ एगी वे किसी भी नए कार्य को पूरा करने के लिए नए निर्देशों की राह ताकते रहेंगे। परिणामस्वरूप कार्य रुक जाएगा और श्रम शक्ति एव समय का व्यर्थ व्यय होगा। अत कर्मचारियों को सगठन की समस्याओं में पूरी रुचि के साथ कार्य करना चाहिए।

सगठन के कार्यों में सक्रिय भाग लेने तथा अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाने की कर्मचारियों की इच्छा से आशय उस गुण से है जिसे प्राय उच्च मनोबल कहा जाता है। यदि एक डाक्टर का मनोबल ऊचा है यदि उसने सगठन के लक्ष्यों एव उत्तरदायित्वों को सही रूप में समझ कर उन्हें निभाने के लिए अपनी पूरी शक्ति एव योग्यता लगाने की इच्छा जाग्रत करनी है तो उस पर पड़ने वाले सगठन के प्रभाव इन शक्तियों को प्रभावपूर्ण क्रिया की ओर सचालित करने का कार्य करेंगे। यदि इस प्रकार का मनोबल न हुआ तो सगठन पर पहल और निर्देशन का अनावश्यक अतिरिक्त भार बढ़ जाएगा जो उसकी कमर को झुका देगा।

5 सगठन में कार्य करने वाला व्यक्ति एक प्रशासकीय व्यक्ति बन जाता है जिसकी उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि सगठनात्मक प्रभाव उसे केवल कुछ कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं करते वरन् उसमें यह आदत डालते हैं कि सगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए दूसरों के सहयोग से जो भी न्याय वह कर सके करे। इस प्रकार वह सहकारी व्यवहार की आदतें विकसित कर लेता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति पर सगठन में जो भी प्रभाव पड़ते हैं वे उनमें सहयोग की भावना का ही विकास करते हैं। यह हो सकता है कि सगठन की विभिन्न इकाइयों के विचारों में मतभेद हो। कुछ अयोग्य कर्मचारी मिलकर सगठन में फूट पैदा कर सकते हैं। परीक्षण के कुछ तरीके पहल की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने

क ण्यान पर उसे कम कर सकते ह । फिर भी अधिकाश सगठनो म प्रभाव का प्राय वही रूप प्राप्त होता है जो प०ल को बनाया देता है । प्राय वे ही सगठन अधिक समय तक जीवित रहत हैं जिनक सस्था पर पडन वाले प्रभाव सम्प्राग की प्रान्तो का विकसित तथा सरक्षित रखते हैं ।

निणय प्रक्रिया क अध्ययन का एक प्रतिमान माडल
(A Model for the Study of Decision Making Process)

उपयुक्त विवचन क पश्चात् हम निणय प्रक्रिया क अध्ययन का एक माडल प्रस्तुत करना चाहग । यह माडल जो सामान्यत राजनीतिक निणय प्रक्रिया पर भी लागू हो सकता है प्रशासन क वातावरण एव सन्दभ म अधिक निश्चितता स लागू होता है । माडल क निर्माण म उन तीन विशषताग्रो का विशष ध्यान रखा गया है जो माडल निर्माण क उद्दश्यो से सम्बन्धित है । समाज शास्त्र के अध्ययन म माडल निर्माण के प्रयास मुख्य रूप स इसलिए उपयोगी मान जात हैं कि उनके माध्यम स समाजशास्त्रीय ज्ञान की सप्राप्ति अधिक निश्चित विश्वसनीय एव वज्ञानिक बन सकती ह । दूसर माडल बनान की प्रक्रिया एक एस बौद्धिक प्रयास का द्योतक है जिसक द्वारा कोई भी प्रक्रिया अपनी समग्रता में अपन विभिन्न तत्त्वो और उनके अन्तसम्बन्धो सहित विश्लेषित की जा सकता है । तीसर माडल निर्माण द्वारा जो समस्याए अथवा अवस्था सम्बन्धी क प्रश्न स्पष्टता एव निश्चितता स उभरते हैं उनक अध्ययन क लिए नए माडलो का निर्माण किया जा सकता है । इस प्रकार माडल निर्माण का बौद्धिक प्रयास समाजशास्त्रीय अध्ययन स वज्ञानिकता अवस्था एव तहत विश्लषण तथा ज्ञान की निरन्तरता एव गहराई म आग बढाने का प्रयास है । माडल निर्माण समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं करता वह कवल स्पष्टता स यह सकत करता है कि जिस समस्या को हम विश्लेषित कर रहे हैं उसक प्रमुख तत्त्व क्या ह व किन प्रकार अन्तसम्बन्धित है और उसकी क्रिया प्रतिक्रियाग्रो द्वारा किस प्रकार क सम्भावित परिणाम निकल सकते हैं । प्रशासनिक निणय प्रक्रिया क क्षेत्र म साइमन और गोरे तथा डाउसन आदि अनेक गम्भीर विद्वान् माडल निर्माण के अभ्यास कर चुके हैं । डाउसन क माडल जो बुद्धिपरक (Rational) अधिक ह अध्ययन म वज्ञानिकता को प्राथमिकता देते हैं । दूसरी ओर गोरे का ह्यूरिस्टिक माडल (Heuristic Model) यह मानकर चलता है कि प्रशासनिक सगठन म अविवक निरपेक्ष (Non rational) तत्त्व अधिक प्रभावी होत ह और निणय-प्रक्रिया का अध्ययन विवक सम्मत ज्ञात हुए भी मानवीय एव मनोवज्ञानिक पक्षो की अवहेलना नहीं कर सकता

प्रशासनिक निणय प्रक्रिया का प्रस्तुत अध्ययन मॉडल एक प्रानेस माडल' है जिसका अथ है कि इस माडल म तत्त्वो की गतिशीलता (Dynamics) और

उनक घवरा से उत्पन्न प्रवत्तियो क अध्ययन पर अधिक बल है। मॉडल निर्माण के पीछे मूल मान्यता यह है कि निणय चू कि एक बौद्धिक चिन्तन की निरन्तरता म विराम का क्षण है अत कोइ भी घटना परिणाम या तत्त्व अपन आप मे स्वतन्त्र नही है बल्कि भूत एव भविष्य की प्रतिक्रियाओ स जुडा हुआ है। प्रॉसस माडल होन क साथ साथ प्रस्तुत माडल को एक इनपट आउटपुट माडल (Input Output Model) भी कहा जा सकता है। व्यवस्था विश्लेषण (Systems Analysis) के विद्यार्थी यह मानते हैं कि किसी भी व्यवस्था म जब इनपुट डाली जाती है तो वे एक प्रक्रिया विशेष स गुजर कर कालान्तर म आउटपुट म परिवर्तित हो जाती है

प्रस्तुत माडल म प्रशासनिक निणय की विभिन्न इनपुटो का विश्लेषण है और प्रत्येक इनपुट किन किन प्रतिक्रियाओ क कारण कौन कौन सा आउटपटो म बदल जाती हैं इस ओर सकेत है। इस तरह प्रॉसेस और इनपुट आउटपुट माडल होन क कारण निणय प्रक्रिया का यह माडल सामान्य परिवतनो क साथ सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओ के अन्तगत चलने वाल प्रशासनो पर लागू हो सकता है और उनक सगठनात्मक पदसोपानो के विभिन्न स्तरो पर लिए गए निणयो का विश्लषित परीभिन एव मूल्याकित करने म सहायक हो सकता है।

प्रस्तुत माडल क अनुसार प्रशासनिक निणय विचार स लकर क्रियान्विति तक तीन प्रकार के वृत्तो (Circle) स गुजरता है। य वृत्त है—1 अनुभूति वृत्त (Peraptional Circle) 2 मूल्यांकन वृत्त (Evaluational Circle) और 3 स्ट्राटजी (रणनीति) वृत्त (Strategy Circle)।

ये तीनो वृत्त निणय क्रिया क सभी स्तरो पर हो सकते हैं किन्तु इनका शीष यन्त्र मे पाया जाना अनिवाय है। निम्न स्तरो पर हो सकता है स्ट्राटजी वृत्त महत्त्वपूर्ण न हो किन्तु मुख्य अधिकारी क स्तर पर जहा क्रियान्विति का उत्तरदायित्व भी होता है सगठन का वृत्त भी केवल विद्यमान ही नही होता अपितु अन्तिम निणय क लिए निर्णायक होता है।

निर्णय प्रक्रिया क ये तीन वृत्त चाहे सगठन म औपचारिक रूप स न हो किन्तु निणयकत्ता का यदि वह अकेला भी है तो भी इन तीनो वृत्तो की सचालन भूमिका स्वय ही निभानी पडती है। प्रथम वृत्त म सगठन क शीष निणय यन्त्र म तीन तत्त्व सन्निहित होत है—(1) सगठन के नीति उद्द्श्य (Policy Objectives) (2) सगठन का उपलब्ध वातावरण (Given Organisational Climate) और (3) निर्णयकर्त्ता कर्त्ताओ की व्यक्तिगत मूल्यो मुखता (Value Inclinations)। जब कोई समस्या उपस्थित होती है तो निणयकत्ता का यह प्रशासनिक परिवेश क्रियाशील बन जाता है। उसक उस अनुभूति वृत्त (Perapitonal Circle) को तथ्यो का इनपुट मिलता है और यहा ही एक मशीन की भाँति यह चक्र घूमने

लगाता है तो उद्देश्य वातावरण मूल्य एव तथ्य आपस म मिलते टकरते हैं टूटते ह और अन्तर्वचरण से उनम एक प्र तसिश्रित क्रिया सम्पन्न होती है जो आउटपुट (Output) के रूप म कुछ विकल्पो की यथार्थता बन कर सामने आती है।

इस अनुभूति वृत्त मे व्यक्ति और सगठन औपचारिक एव अनौपचारिक मूल्य एव तथ्य तथा उद्देश्य एव क्रियान्विति की समस्याओ के बीच एक सीधा टकराव होता है। उद्देश्य मूल्य वातावरण एव तथ्य जो इस स्तर पर एक दूसरे को मथते हैं निर्णयकर्त्ता की मनोदशा का निर्माण करते हैं। उसका अनुभूति जगत तथ्यो की यथार्थतावादी अथवा मूल्य सापेक्ष स्थिति से निर्मित होकर समस्या को समाधानात्मक विकल्पो के रूप म देखने लगता है। य ही पर सगठन म उपलब्ध सचार व्यवस्था विशेषीकरण सत्ता वितरण पर्यवेक्षण प्रणाली नौकरशाही-पद्धति आदि इस अनुभूति वृत्त को विशाल एव सकीर्ण बनाता है। प्रशासनिक नेतृत्व क्रियाशील बनता है और व्यक्ति एव सगठन के तनाव अथवा पूरक तत्त्व मिलकर विकल्प आउटपुटो की प्रकृति एव सख्या निर्धारित करते हैं।

सख्या के ये आउटपुट विकल्प जो भी और जसे भी उभर कर सामने आते हैं निर्णय प्रक्रिया की गति को नियमित करते हैं। अनुभूति वृत्त से बाहर आने पर ये आउटपुट दूसरे मूल्याकन वृत्त (Evaluation Circle) की इनपुट बन जाते हैं। समस्या और समाधानो के सन्दर्भ म सोचता हुआ निर्णयकर्त्ता का मस्तिष्क फिर अपने मूल्याकन वृत्त को पनस्त घुमाता है। इस बार इस वृत्त म जो तत्त्व विकल्प इनपुटो के साथ घर्षण करते हैं वे हैं—(1) विकल्पो की कीमत (2) सगठन की क्रियान्विति की क्षमता, (3) परिणाम की जटिलता और (4) व्यावहारिकता की सम्भावनाए। ये सभी तत्त्व जिनकी प्रभावशालीनता उनकी आनुपातिक शक्ति पर निर्भर करती है विकल्प इनपुटो का विभिन्न मूल्याकन प्रतिक्रियाओ म डालकर अन्ततोगत्वा मूल्याकन की एक सन्तुलित प्रणाली द्वारा प्राथमिकता आउटपुटो (Preference Outputs) के रूप म प्रस्तुत करती है। इस तरह मूल्याकन वृत्त विकल्प इनपुटो को प्राथमिकता आउटपुटो म परिवर्तित करने का एक बौद्धिक अभ्यास कहा जा सकता है।

प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया का यह स्तर यद्यपि काफी निर्णायक कहा जा सकता है तथापि विकल्पो म से सर्वश्रेष्ठ एव अन्तिम विकल्प का चयन इस वृत्त के आउटपुटो को फिर तीसरे वृत्त के इनपुटो म डालकर अन्तिम आउटपुट को सगठन निर्णय बनाने का प्रयास करता है। तीसरा वृत्त जिसे समाकलो वृत्त कहा गया है, इस स्तर पर प्रशासनिक निर्णय की व्यावहारिकता दूरगामी एव पुनर्निर्णय एव भावी निर्णय सम्बन्धी जटिलताओ का ही परीक्षण करता है। शीर्ष स्तर पर सगठन म निर्णय की श्रेष्ठता एव वैधानिकता ही पर्याप्त नहीं होती। यह सही होते हुए भी इसलिए गलत हो सकता है कि उसके तकनीकी पक्ष पर पर अनुभूति एव मूल्याकन के वृत्तो म बचे न रहे हो तो गौण रह गए हो। अत प्रथम विकल्प लगभग अन्तिम

निर्णय होते हुए भी एक स्वतन्त्र मूल्यांकन चाहता है। दूसरे वृत्त में विकल्प प्राथमिकता की आउटपुट सूची तीसरे वृत्त में इनपुट बनाकर डाली जाती है और उसके मंथन से जो आउटपुट सामने आते हैं वह अन्तिम निर्णय की स्थिति कहा जा सकती है।

तीसरे वृत्त का यन्त्र अन्तिम पुनर्मूल्यांकन मुख्यतः विकल्प के आलोक में स्थिति पर एक पुनर्दृष्टि डालता है जिसका एक परिणाम अनिर्णय (Non decision) अथवा पुनर्निर्णय (Re decision) भी हो सकता है। इस वृत्त से बाहर निकलने वाला आउटपुट वैज्ञानिक ढंग से एक निश्चित दिशा निर्देश करता है और उसका चयन करने कीमत एवं विरोधों के बावजूद भी करना पड़ता है। इस सबके उपरान्त भी सम्भव है कि निर्णय सही न हो अथवा मंहगा पड़े पर इस प्रक्रिया विशेष से गुजरने का एक बड़ा लाभ यह है कि जो कुछ होगा वह प्रत्याशित होगा और जानबूझ कर जानी पहचानी अनुमानित सम्भावनाओं से निपटना क्रियान्विति की स्थिति में मनोबल एवं संगठन के ढाँचे पर नकारात्मक प्रभाव नहीं डाल सकेगी।

इस तरह प्रारम्भ में अन्त तक यह मॉडल निर्णय प्रक्रिया की निरन्तरता गतिशीलता विकासशीलता एवं जटिलता (Continuity Dynamism Incrementality and Complexity) को सुस्पष्ट एवं सम्बद्ध ढंग से प्रस्तुत करता है। इस मॉडल की अपनी सीमाएं हैं और स्वभावतः यह प्रत्येक स्तर की विशदता एवं सम्पूर्णता का द्योतक नहीं होता जिन निर्धारक कारकों को यहां चुना गया है वे न तो आत्मनिर्भर हैं और न ही पूर्णतः अन्तर्निर्भर। कारकों और प्रक्रियाओं की अन्योन्याश्रितता को भी मॉडल में गहराई से नहीं लिया गया है और उनमें से प्रत्येक पर एक उपमॉडल निर्मित किया जा सकता है। प्रस्तुत मॉडल की आधारभूमि मैक्रो (Macro) है और जटिलताओं को सरलता से प्रस्तुत करने का कार्य केवल प्रक्रिया को तार्किक एवं विकासशील दृष्टि से बुद्धिपूर्वक वर्णित करना मात्र कहा जा सकता है। इनपुट आउटपुट का स्थूल रूप इसलिए चुना गया है कि व्यवस्था विश्लेषण के गम्भीर विद्वान् इसे सम्पूर्ण गतिचक्र एवं व्यवस्था संचालन के सन्दर्भ में पहचान कर अपने निष्कर्ष निकाल सकें। प्रस्तुत मॉडल में प्रक्रिया की यन्त्रवत् आकृति बनाने की अपेक्षा यह अधिक महत्त्वपूर्ण है। संगठनात्मक एवं मानवीय पहलू यदि यन्त्रीकरण किया में डाल दिए जाएं तो वे रूप परिवर्तित किस प्रकार कर सकते हैं। मॉडल का हर चक्र इनपुट गिरने पर घूमता है और रुकने पर उससे जो आउटपुट निकलता है वह द्वन्द्वात्मक विकास से कहीं अधिक स्तरीय विशिष्टता का प्रतीक है।

उपसंहार (Conclusion)

प्रशासन में निर्णय प्रक्रिया के अध्ययन जैसे जैसे वैज्ञानिक बने हैं वैसे वैसे ही उनकी उपयोगिता बढ़ी है जिसने शोध की नई मांगों को जन्म दिया है। निर्णय

प्रक्रिया की गहरी जानकारी के लिए आज का सामाजिक ज्ञान एवं प्रयुक्त बौद्धिक धरातल प्रस्तुत करता है। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की शोधें प्रासंगिक प्रक्रिया और और उनके अन्तर्सम्बन्धों का समर्थन म अन्तर्दृष्टि प्रदान करने लगी हैं। अध्ययन के नए नए मॉडलों ने प्रशासनिक निर्णय की नई दिशाएं खोजी हैं जिसका परिणाम यह निकला है कि प्रशासनिक निर्णय की कला प्रशासनिक निर्णय का विज्ञान बन गई है। एक वैज्ञानिक ज्ञान की विशेषता होती है कि वह दूसरों तक पहुंचाया जा सकता है और उसके द्वारा उत्पन्न की जाने वाली क्षमताएं स्वयं भी निरन्तरता से बढ़ाई जा सकती हैं। दूसरे शब्दों म प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन प्रशासनिक निर्णयकर्ता को विश्लेषणात्मक और परिचालनात्मक क्षमताए (Analytical and Operational Skills) प्रदान करती हैं जिन्हें निर्णयकर्ता अपने अ य सहयोगियों को सिखाकर प्रशासनिक ज्ञान का व्यावहारिक बना सकता है। विश्लेषणात्मक क्षमताए जो मुख्यत समग्र अनुभूति साधारणीकरण प्रक्रिया मूल्य निर्पेक्षता एव स्वाभाविक आभास आदि का अभ्यास चाहती है परिचालनात्मक दक्षताओं के साथ मिलकर कुशल निर्णयकर्ता प्रस्तुत कर सकती है। ये परिचालनात्मक दक्षताए जो मस्थाबोध सम्प्रेषण कौशल व्यक्तित्व परीक्षण क्षमता आदि द्वारा उभारा जा सकता हैं किसी भी सगठन म निर्णय प्रक्रिया को व्यावहारिक बनाने के लिए उपयोगी होती हैं। निर्णय प्रक्रिया का यह ज्ञान इन दक्षताओं को प्राप्त करने एव प्रशासनिक आचरण को आन्तरीकृत करने (Internalise) म सहायक होता है बशर्ते कि एक प्रशासक यह पूर्वाभास पा सके कि वह जो निर्णय कर रहा है वह एक समस्या के समाधान की खोज है। सगठन म उसके चारो ओर जो नीति मनोबल और साधनो का वातावरण है वह एक अनुक्रिया य त्र (Response mechanism) है। इस यन्त्र को अपने साथ लेकर चलना और इसके माध्यम से स्थिति या वातावरण म परिवर्तन लाना निर्णय प्रक्रिया का एक कार्य है। सगठनात्मक निर्णय न नीति निर्पेक्ष हो सकता है और न ही पूर्णत अवैयक्तिक। इस तक पहुंचने की प्रक्रिया एक बौद्धिक प्रक्रिया है और हर स्तर पर इनपुट आउटपुट तत्त्व विभिन्न निर्धारक तत्त्वों से प्रभावित होते हुए अन्तिम विकल्प तक पहुंच जाता है। ये स्तर अनुभूति मूल्यांकन और रणनीति (Strategy) की दृष्टि से निर्णयकर्त्ता को बार बार झकझोरते हैं और प्रक्रिया की निरन्तरता को बनाए रख कर एक उत्तरोत्तर विकासमान स्थिति (Incremental Position) तक पहुंचाता है। निर्णय का यह वैज्ञानिक विश्लेषण और परीक्षण इसकी व्याख्या गति विकास और अन्तिम मत य तक को पहचानने म सहायक होता है। अन्त म यह कहा जा सकता है कि किसी सगठन म प्रशासनिक निर्णय एक ऐसी अनिवार्य प्रक्रिया है जिसमें सगठन की स्थितियां प्रशासनिक नेतृत्व एव अकल्पनीय तत्त्वों की एक गहन भूमिका होते हुए भी प्रशासनिक अध्ययनों के लिए सम्भव है कि इस प्रक्रिया के हर चरण हर तत्त्व और

हर मोड़ का बाा नक अध्ययन प्रस्तुत करें और यदि ऐसा हो सका तो निर्णय प्रक्रिया का यन मद्दा तक ज्ञान निर्णय सम्बन्धी आचरण और व्यवहार को गुणात्मक दृष्टि से समुन्नत बना सकेगा।

निर्णय प्रक्रिया और हरबट साइमन
(Decision Makin and Herbert Simon)

निर्णय प्रक्रिया पर हरबट साइमन के जो विशिष्ट विचार हैं सार रूप में उनको अवस्थी और महेश्वरी ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया है

विगत कुछ वर्षों में प्रशासकीय चिन्तन एवं सिद्धान्त के क्षेत्र में निर्णय करना एक नवीन प्रश्न है।

निर्णय करने के तीन मुख्य तत्त्व है। प्रथम, उसके सामने एक समस्या होनी है और उसकी चुनौती का वह स्वीकारता है। दूसरा, समस्या के समाधान के अनेक विकल्प होते हैं जिन्हें वह स्वयं सोचता या सुझाये जाते हैं। उन पर वह विचार करता है। तीसरा वह विभिन्न विकल्पों में से उत्कृष्टतम विकल्प का चयन करता है। हरबट साइमन द्वारा अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त के साथ दार्शनिक सिद्धान्त को समन्वित करके निर्णय करने के आधुनिक सिद्धान्त को आधारशिला रखी गयी है। हरबट साइमन पहला विचारक था जिसने दार्शनिक और आर्थिक विचार को सम्भावित किया था।

अपनी रचना प्रशासकीय आचरण (Administrative Behaviour) में सर्वप्रथम इस बात पर साइमन ने बल दिया है कि निर्णय से तात्पर्य तथ्यों एवं मूल्य (Value) तत्वों का उचित योग होता है। तथ्य से तात्पर्य यह है कि कोई वस्तु क्या है और क्या रही है। क्या तथ्या सम्बन्धी विवरण की पुष्टि की जा सकती है या उसे अस्वीकृत किया जा सकता है ? उदाहरण के लिए मेज लकडी से बनती है कमरा उष्ण करने से गर्म किया जाता है या कक्षा में छात्रों की संख्या 20–21 होती है। यह सब तथ्यों के उदाहरण हैं। ये सत्य या असत्य होते हैं। द्वितीय मूल्य जो अंग्रेजी के वेल्यू का हिन्दी अनुवाद है से तात्पर्य पसन्दगी से है। जब कोई कहता है कि वह प्रातःकाल में घूमना पसन्द करता है तो यह पसन्दगी की अभिव्यक्ति है। यह मूल्य का कथन है। जब कोई कहता है कि 26 जनवरी जैसा राष्ट्रीय दिवस एक सुअवसर है तो इससे पसन्दगी जाहिर होती है। साइमन का मत है कि हर निर्णय अनेकों तथ्यों और एक या दो मूल्य दृष्टिकोणों का परिणाम होता है। दूसरे शब्दों में निर्णय मूल्य दृष्टिकोण और अनेकों तथ्यों का समन्वय है। साइमन ने उदाहरण दिया है कि एक सेनापति आक्रमण की पद्धति के बारे में निर्णय करना चाहता है। वह इस मूल्य (या महत्त्व) दृष्टिकोण से प्रारम्भ करता है। मुझे आक्रमण करना चाहिए शत्रु पर आक्रमण सफलतापूर्वक करना चाहिए। यह नि

कथन है। इसके विपरीत तथ्य कथन है। अचानक आक्रमण सफल होता है। यह तथ्य अनेकों पूर्व अनुभवों पर आधारित है। द्वितीय एक अन्य तथ्य कथन यह है कि अचानक आक्रमण की परिस्थितियाँ में आक्रमण का स्थान और समय छिपा है। इन दोनों तथ्य कथनों को मूल्य कथन से संयुक्त करना आक्रमण की सफलता के लिए आवश्यक है। इस उचित तथ्य एवं मूल्य सम्बन्धी कथनों का संयुक्त करने पर निर्णय सम्भव होता है अर्थात् आक्रमण के समय व स्थान व सफलतापूर्वक आक्रमण का संयोग आक्रमण सम्बन्धी निर्णय लेने के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार हर निर्णय तथ्य कथनों एवं मूल्य कथनों के संयोग का परिणाम है। जिस मूल्य कथन से कोई प्रारम्भ करता है वह प्रथम मूल्य कथन है और उसके बाद द्वितीय स्तर के कथन होते हैं। साइमन का मत था कि निर्णय करने की यह विशिष्ट रीति केवल सैद्धान्तिक महत्त्व की है। निर्णय करने की परिस्थिति में इसका कोई उपयोग नहीं किया जाता लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं है इस सम्बन्ध में साइमन ने अपने मन्तव्य का सही वर्णन नहीं किया है। वस्तुतः निर्णय करने की प्रक्रिया को समझाने में यह बहुत सहायक है।

द्वितीय साइमन का मत है कि निर्णय का अर्थ विभिन्न विकल्पों में से चुनाव करना है। यह विचार उसने अर्थशास्त्रियों से ग्रहण किया है। जब कोई समस्या सामने होती है तो उसके विभिन्न विकल्प होते हैं। निर्णयकर्त्ता को उनमें से अधिकतम लाभ या वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उनमें से चयन करना पड़ता है। हर विकल्प के अपने परिणाम होते हैं। अर्थशास्त्री को इनमें अधिकतम लाभ के लिए किसी विकल्प के विभिन्न परिणामों में से चयन करना पड़ता है। इस दृष्टि से किसी निर्णय के तीन तत्त्व होते हैं। प्रथम किसी समस्या के होने पर वह उससे सम्बन्धित सभी विकल्पों से परिचित होता है जिनके अभाव में यह निर्णय नहीं किया जा सकता। अतः निर्णय करने के पहले विकल्पों का पता लगाना जरूरी है। द्वितीय विकल्प के हर परिणाम का ज्ञान होना चाहिए। हर विकल्प के कुछ अच्छे और कुछ बुरे परिणाम होते हैं। तृतीय अत्यन्त उचित चुनाव होना चाहिए इस दृष्टि से भविष्य का अनुमान लगाने की क्षमता होनी चाहिए। एक परिणाम आज अच्छा हो सकता है, सम्भव है कल अच्छा न हो, और परसों हो सकता है वह बुरा हो जाए। अतः किसी परिणाम के सही अनुमान के लिए भविष्य में दृष्टिपात करने की क्षमता होनी चाहिए। अतः यदि कोई निर्णय उचित होना है तो इन तीन शर्तों का पूरा होना आवश्यक है लेकिन कोई भी चुनाव 100 प्रतिशत सही नहीं हो सकता। अतः किसी परिस्थिति विशेष में जो निर्णय लिया जाता है वह सापेक्ष दृष्टि से उचित होता है। जिस दुनिया में हम रहते हैं उसमें शत प्रतिशत उचित निर्णय असम्भव है। सापेक्ष दृष्टि से उचित निर्णय

ही सम्भव है। सापेक्ष दृष्टि से उचित निर्णय एक ऐसी स्थिति है जिसमें कुल विकल्प और उनके कुछ परिणाम ज्ञात होते हैं और इनमें से चुनाव किया जाता है। वास्तविक रूप में यही सम्भव भी है। हरबर्ट साइमन ने समय के प्रभाव पर प्रकाश डाला है और अर्थशास्त्रियों द्वारा जब अधिकतम लाभ के विचार का प्रचार किया जा रहा था उस समय साइमन ने काफी समय पर बल दिया। एक स्थिति में एक संगठन जब अधिकतम के लिए प्रयत्नशील होता है तो समय का तत्त्व बाधक बनता है। एक व्यक्ति को एक समय के अन्दर ही निर्णय लेने पड़ते हैं। आज का अच्छा निर्णय कल बुरा हो सकता है, और बुरा निर्णय भविष्य में अच्छा हो सकता है।

मनुष्य का आचरण कुछ बातें पूर्ण करने पर निर्भर करता है। कोई व्यक्ति उसी विकल्प का चयन करता है जिससे उसकी वांछित शर्तें पूरी होती हों या अधिकतम की उपलब्धि जिस विकल्प के द्वारा सम्भव होता है अतः विभिन्न विकल्पों में से चयन का तत्त्व हर मानव स्थिति में विद्यमान रहता है। सत्य तो यह है कि हम जीवन में यह देखते हैं कि कोई निर्णय लेने के लिए कुछ परिस्थितियाँ हों। इसका अर्थ है कि जिस प्रकार हम निर्णय का निरीक्षण करते हैं वह कुछ परिस्थितियों और सीमाओं पर निर्भर है। पहली सीमा यह है कि मनुष्य के लिए निरपेक्ष निर्णय करना, जिस प्रकार अभी बतलाया गया है सम्भव नहीं है। द्वितीय सन्तुष्टि का तत्त्व है अर्थात् निर्णय सन्तुष्ट करने वाला होना चाहिए। उचित निर्णय के मार्ग में तीसरी बाधा डबती रकम अर्थात् निश्चितता के तत्त्व की है यदि हम एक निर्णय ले चुके हैं तो दूसरा निर्णय लेने में असमर्थ हो जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई विवाहित है तो कानून उसे दूसरा विवाह करने से रोकता है। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति इंजीनियर है तो वह डाक्टर के पद पर नियुक्त नहीं हो सकता है।

निर्णय लेने के सम्बन्ध में मनुष्य के वास्तविक आचरण का अध्ययन किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि निर्णय के लिए तीन बातें पहले आवश्यक हैं। प्रथम बात है समस्या का होना क्योंकि समस्या का ही समाधान ढूँढना है। द्वितीय बात है खोज व्यवहार। एक समस्या के होने पर व्यक्ति उसके समाधान के विभिन्न विकल्पों की खोज करता है। यही खोज व्यवहार है। खोजे गए इन विभिन्न विकल्पों में से व्यक्ति एक का चयन करता है। कुछ व्यक्ति विकल्पों के खोज में ही डूबे रहते हैं जबकि अन्य कुछ विकल्पों की खोज के बाद रुक जाते हैं तथा इनमें से ही एक विकल्प को चुन लेते हैं। दूसरे शब्दों में यह खोज व्यवहार तब तक चलता रहता है जब तक कि समस्या सम्बन्धित न्यूनतम परिस्थितियों को सन्तुष्ट करने वाला विकल्प प्राप्त नहीं हो

जाता है। यदि निर्णय स्तर घटिया है तो द्वितीय और तृतीय विकल्प भी सन्तोषजनक हो सकते हैं। संगठन की दृष्टि से साइमन के निर्णय सम्बन्धी तीसरी बात महत्त्वपूर्ण है। वह यह है कि किस प्रकार निर्णयों का वर्गीकरण किया जाए? निर्णय शब्द का प्रयोग हम हर ऐसी परिस्थिति के लिए कर सकते हैं जिसमें चयन का तत्त्व विद्यमान हो। हम विभिन्न प्रकार के निर्णयों में कैसे भेद कर सकते हैं? सामान्यतः विभिन्न क्षणों और स्तरों पर निर्णय लिए जाते हैं। साइमन उन्हें निश्चित निर्धारित निर्णय (Programmed Decisions) तथा अनिश्चित और अनिर्धारित निर्णय (Unprogrammed Decisions) की संज्ञा देता है। निश्चित निर्णय से तात्पर्य यह है कि एक निश्चित कार्यक्रम हमारे दिमाग में है या उसकी रूपरेखा है उसको क्रियान्वित करने से एक निश्चित निर्णय प्राप्त होता है। हर सरकारी नियम या उपनियम एक कार्यक्रम है, और उसके क्रियान्वयन से एक निश्चित निर्णय प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए नियम यह है कि निर्धारित शर्तें पूर्ण करने वाले आवेदक को लाइसेन्स दे दिया जाए, ऐसे मामलों में यह निर्णय करते समय कि आवेदक को लाइसेन्स दिया जाए या न दिया जाए हम केवल यह देखते हैं कि उसने निर्धारित शर्तें पूर्ण की हैं या नहीं। यदि वह शर्तें पूर्ण करता है तो लाइसेंस दे दिया जाता है। इस प्रकार का निर्णय निर्धारित या निश्चित निर्णय है। इस प्रकार का कार्यक्रम जटिल भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में निर्णय करना भी जटिल होता है। उदाहरण के लिए यदि नियम में यह स्पष्ट नहीं किया गया हो कि क्या करना चाहिए तो ऐसी स्थिति में स्वविवेक की पर्याप्त गुंजाइश होती है। यह सरल व निश्चित निर्णय नहीं है। अनिश्चित या अनप्रोग्राम्ड निर्णय से यह तात्पर्य है कि निर्णय लेने के लिए किसी भी प्रकार का प्रोग्राम या नियम या उपनियम या रिवाज नहीं है। ऐसी स्थिति में निर्णय अपने प्रयत्नों से ही लेना पड़ता है। सत्य तो यह है कि निश्चित और अनिश्चित निर्णय एक ही लम्बे क्षितिज के दो छोर हैं। मानव जीवन में कोई निर्णय पूरी तरह अनिश्चित नहीं होता जीवन में पर्याप्त ज्ञान और अनुभव स्वतः ही संचित होता जाता है। अनिश्चित परिस्थितियों का सामना करने के लिए मनुष्य के मस्तिष्क में एक रूप रेखा जो चाहे जैसी भी हो विद्यमान होती है। इसी प्रकार कोई पूर्ण निर्णय सम्भव नहीं है। छोटे और बड़े स्तरों का छानने समय कहीं कहीं पर तो विवेक की आवश्यकता पड़ती है।

निर्णयों का विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकरण किया है, किन्तु सरलता की दृष्टि से उन्हें दो प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं—प्रथम नियम उपनियम और रिवाज के आधार पर समस्या को समझना और तत्पश्चात् ही निर्णय लेना। उदाहरण के लिए निर्धारित नियमों के द्वारा हम यह पता चल सकता है कि आवेदनपत्र में जो बात की गयी है उसका उत्तर हाँ में या ना में हो? नियमों से हम एक

समस्या के समाधान का पता चल सकता है। सीधे हा या न म जवाब देना सरल कायक्रम का उदाहरण है लेकिन हर मामले म यह सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए निर्धारित नियम के अनुसार एक काय मे तीन प्रकार की स्थितियाँ हो सकती हैं। क स्थिति का उपाय या समाधान य है और ख स्थिति का समाधान र है और ग का समाधान न है। यह निर्णय की उच्च प्रक्रिया है। इसम केवल एक स्थिति का उल्लेख न करके तीन सम्भावित स्थितियां और उनके समाधान की व्याख्या की गया है। एक निश्चित निर्णय जो जटिल प्रकृति का उतना ही कठिन है जितना कि एक अनिश्चित परन्तु सरल निर्णय।

निर्णय करने के सिद्धान्त और निर्णय करने सम्बन्धी अध्ययनो क क्षेत्र म उन्नति हुई है। उसका भी उल्लेख करना यहाँ उचित है। उचित निर्णय करने के क्षेत्र म विगत् 20 वर्षों म महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। निर्णय को औचित्यपूर्ण होना कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। जब एक प्रशासन म कोई निर्णय लेना होता है तो उसम जोखिम या रिस्क रहती है। जोखिम को कम करने की दशा म अनक प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं। अमेरिका के राज्य सचिव मकनेमारा ने एक बार कहा था कि मुझ एक समस्या से सम्बद्ध पूरे तथ्य या सारा इन्फारमेशन दे दीजिए और मैं पूरा सही निर्णय ले लूगा। इस कथन मे सार्थकता है इसीलिए आज सभी सगठनो म ज्यादा से ज्यादा तथ्य सकलित किए जाते हैं। कम्प्यूटर से तथ्य एकत्रित करने म भरपूर सहायता मिलती है। इतना होते हुए भी यह मानना ही पडगा कि जोखिम पूरी मात्रा मे समाप्त नहीं किया जा सकता है। हर निर्णय मे कुछ जोखिम तो रहता ही है।

इसके अलावा मानवीय अबुद्धिवाद क्या है और क्यो है इस पर अन्वेषण हुए हैं। क्या कारण है कि मनुष्य जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहता है व्यतीत नहीं कर पाता? यह एक गहरा प्रश्न है परन्तु इतना कह देना तो उचित ही है कि मानव अबुद्धिवाद का आंशिक कारण ज्ञान का अभाव भी है। विभिन्न अध्ययनो से स्पष्ट हुआ है कि अनेका उद्योगपति अधिक लाभ की आकाक्षा न करके बिक्री म अधिकतम वृद्धि चाहते हैं। यह प्रमाणित हो चुका है कि मनुष्य को एक स्थिति म पहुचकर लाभ स सन्तुष्टि नहीं होती। वह ख्याति अर्जित करना चाहता है और इसी से उसे स ाप मिलता है एव इस प्रकार विश्लेषणो से अबुद्धिवाद के तत्त्वो को कम करने म सहायता मिलती है।

तृतीय दिशा जिसमे प्रगति हुई है निर्णयो को स्वीकृत कराने की है। निर्णयो का महत्त्व तो इसी म है कि उन्हें क्रियान्वित किया जाए नहीं तो वे केवल कपोल कल्पना ही हैं। निर्णय तीन तरीको से स्वीकृत कराया जा सकता है। एक तरीका शक्ति के प्रयोग का है। दूसरा मार्ग भावनात्मक सहानुभूति और सम्मोहन का है। निर्णयो को स्वीकृत कराने के ये दोनो तरीके खतरो स खाली नहीं हैं।

तीसरा तरीका सहयोगियो मे निर्णय के प्रति समान आदर और औचित्य का भाव जाग्रत करना है। यह तभी सम्भव है जबकि उन्हें परिस्थिति और तथ्यो से अवगत कराया जाए और तभी दूसरे व्यक्ति उन मूल्यो को सहज ही स्वीकार करते हैं जिनसे प्रेरित होकर निर्णय लिया गया है। ऐसी स्थिति म व भी वही निर्णय लेंगे जो मैंने लिया है। इसे हम परस्पर विचार विमर्श या प्रशिक्षण के माध्यम से विकसित कर सकते हैं। उच्चाधिकारियो को निर्णय लेते समय अपने नीचे के अधिकारियो से परामर्श करना चाहिए। भले ही वह उनके परामर्श को न माने। इसका निर्णय अपने अधीनस्थो के परामर्श म भिन्न हो सकता है लेकिन निर्णय करने म परामर्श नितान्त आवश्यक है। मुख्य कार्यपालक के द्वारा एक बार अपने अधीनस्थो से परामर्श करने पर नैतिक दृष्टि से उसका पक्ष सबल हो जाता है और अधीनस्थो म सन्तोष की भावना उत्पन्न होती है। विचार विमर्श के अभाव से अधिक खतरनाक कोई तत्व निर्णय के क्रियान्वयन म बाधक नहीं होता।

9

प्रबन्ध की अवधारणा और उसकी प्रविधियाँ
(Concept of Management and Its Techniques)

प्रबन्ध एक नया तथा विकासशील विज्ञान है जिसके अन्तर्गत नीति निर्धारण नीति को कार्यान्वित करना आदि आता है। किसी भी व्यावसायिक एवं औद्योगिक इकाई की स्थापना के उपरान्त दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या उसके प्रबन्ध की आती है। कोई भी व्यवसाय स्वयं नहीं चल सकता चाहे वह संवेग (Momentum) की स्थिति में ही क्यों न हो उसके लिए एक नियमित उद्दीपन (Repeated Stimulus) की आवश्यकता पड़ती है[1] और इस नियमित उद्दीपन की पूर्ति का एकमात्र स्रोत है— व्यवसाय का मस्तिष्क अर्थात् प्रबन्ध (Management)। विख्यात प्रबन्ध विशेषज्ञ पीटर एफ. ड्रकर ने लिखा है— प्रबन्धक ही प्रत्येक व्यापार का गतिशील एवं जीवन दायक तत्त्व होता है उसके नेतृत्व के अभाव में उत्पादन के साधन केवल साधन मात्र रह जाते हैं कभी उत्पादन नहीं बन पाते। एफ. सी. हूपर के शब्दों में प्रबन्ध चलाने वाली एक शक्ति है जो औद्योगिक इकाई को प्रेरणा देती है उसको एक इकाई के रूप में संगठित करती है तथा सम्पूर्ण शक्तियों एवं साधनों के सर्वोत्तम उपयोग के लिए दशाएँ एवं सम्बन्ध निर्धारित करती है।[3] इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रबन्ध ही व्यवसाय तथा उद्योग रूपी शरीर का मस्तिष्क अथवा उसकी जीवनदायिनी शक्ति है। प्रबन्ध वह जीवनवटी है जो संगठन को शक्ति देती है संचालित करती है और नियन्त्रण में रखती है। व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रबन्ध के आवश्यक सिद्धान्तों के अनुपालन द्वारा ही वर्तमान औद्योगिक अशान्ति दूर की जा सकती है।

सामान्य रूप में देखें तो प्रबन्ध प्रक्रिया की आवश्यकता उन सभी अवस्थाओं में पड़ती है जहाँ किसी भी कार्य को पूरा करने के लिए कुछ व्यक्तियों का होना आवश्यक है। प्रत्येक व्यावसायिक एवं आर्थिक क्रिया में कुछ व्यक्ति मिलकर कार्य

1 *Edwin M Robinson* Business Organisation and Practices p 188
2 *Peter F Drucker* Practice of Management p 1
3 *F C Hooper* Management Survey

को पूरा करते हैं। औद्योगिक क्रान्ति से व्यवसाय एवं उद्योग दोनों प्रभावित हुए हैं। इसके साथ ही प्रबन्ध का क्षेत्र भी इस क्रान्ति के प्रभाव से अछूता नहीं रहा है।

19वीं शताब्दी के प्रबन्ध में स्वामी सेवक धारणा (Master Servant Approach) का बोलबाला था। श्रम को एक मानवीय साधन न मानकर एक व्यापार की वस्तु माना जाता था। लेकिन वर्तमान सदी के प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रयोग किए गए और इन प्रयोगों के परिणामस्वरूप मानवीय सम्बन्धों की विचारधारा (Human Relations Approach) का प्रादुर्भाव हुआ है। श्रम मानवीय साधन पहले है तथा उत्पादन का साधन बाद में। प्राचीन समय में प्रबन्ध और उद्यमी एक ही होते थे। एक ही व्यक्ति सब कार्य कर लेता था। लेकिन औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण, विवेकीकरण, मशीनीकरण, आधुनिकीकरण, स्वचालन आदि का आधुनिक उत्पादन प्रणाली में महत्त्व बढ़ गया है। इससे प्रबन्ध भी एक व्यवसाय अथवा पेशा (Profession) बन गया है और प्रबन्ध विशेषज्ञों की उत्पादन, वित्त, विक्रय, कार्मिक (Personnel) तथा अन्य विभागों में नियुक्तियाँ की जाने लगी हैं। अब वर्तमान प्रबन्ध प्राचीन प्रबन्ध से बिल्कुल ही भिन्न प्रकृति का हो गया है।

प्रबन्ध का अर्थ एवं अवधारणा
(The Meaning and Concept of Management)

प्रबन्ध को आधुनिक व्यावसायिक तथा औद्योगिक जगत् में अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। कुछ व्यक्तियों ने इसे संकीर्ण अर्थ में लिया है जबकि बहुमत व्यापक अर्थ के पक्ष में है। संकीर्ण अर्थ में प्रबन्ध दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति है और वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्तियों से कार्य करा सकता है प्रबन्धक कहलाता है। विस्तृत अर्थ में प्रबन्ध कला और विज्ञान दोनों है और यह निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न मानवीय प्रयासों से सम्बन्ध रखता है। इस अर्थ में प्रबन्ध के कार्य काफी व्यापक हैं, यथा योजनाकरण (Planning) प्रेरणा (Motivation) संगठन (Organisation) उद्योग संचालन (Direction) उद्योग पर समुचित नियन्त्रण (Control) नीति निर्धारण और कार्यान्वयन विभिन्न व्यक्तियों के प्रयत्नों तथा उद्योग के निर्धारित उद्देश्यों में समन्वय (Co ordination) आदि।

प्राध्यापक हेमन ने प्रबन्ध के निम्नलिखित तीन प्रचलित अर्थों का उल्लेख किया है—

(i) प्रबन्ध अधिकारियों (Managerial Personnel) के अर्थ में

(ii) प्रबन्ध विज्ञान (Management Science) के अर्थ में एवं

(iii) प्रबन्ध प्रक्रिया (Management Process) के अर्थ में।

प्रो हेमन द्वारा बताए इन तीनों अर्थों को संक्षेप में स्पष्ट करते हुए आर सी

अग्रवाल ने लिखा है—प्रबन्ध दृष्टिकोण के अनुसार प्रबन्ध से आशय सामान्यत प्रबन्ध अधिकारियों से होता है जिसके अन्तर्गत सम्बन्धित इकाई में कार्य करने वाले लोगों के कार्यों पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। द्वितीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रबन्ध से आशय एक विज्ञान से होता है जिसमें व्यावसायिक नियोजन संगठन संचालन समन्वय प्रेरणा तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विश्लेषण होता है। तृतीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रबन्ध शब्द का अर्थ एक प्रक्रिया के रूप में किया गया है जिसके अन्तर्गत अन्य लोगों के साथ मिलजुल कर कार्य किया जाता है। इन तीनों दृष्टिकोणों में से यह तृतीय दृष्टिकोण अधिक महत्त्वपूर्ण है।

प्रबन्ध के कार्यों एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्रबन्ध की जो परिभाषाएं विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई हैं उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—

1 प्रो किम्बाल एवं किम्बाल के अनुसार व्यापक रूप में प्रबन्ध उस कला को कहते हैं जिसके द्वारा किसी उद्योग में मनुष्यों और माल को नियन्त्रित करने के लिए आर्थिक सिद्धान्तों को व्यवहार में लाया जावे।[1]

आगे फिर इन्हीं लेखकों ने प्रबन्ध के विषय में लिखते हुए कहा है कि प्रबन्ध में उद्योग को प्रारम्भ करने पूंजी जुटाने प्रमुख औद्योगिक नीतियों का निर्धारण करने सब प्रकार के उपकरणों का प्रदान करने संगठन की सामान्य रूपरेखा बनाने तथा कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त करने के सभी कार्य शामिल किए जाते हैं।[2]

2 प्रो ब्रेच के अनुसार प्रबन्ध किसी उपक्रम के कार्यों को प्रभावशाली रूप में नियन्त्रित व नियोजित करने के दायित्व की सामाजिक प्रक्रिया है। इस दायित्व में अग्रलिखित बातें शामिल हैं—(अ) कार्य योजना के अनुसार ही होगा इसके लिए उचित विधिक्रम बनाकर लागू करना व उसे बनाए रखना तथा (ब) उपक्रम में लगे व्यक्तियों का मार्ग निर्देशन एकीकरण तथा निरीक्षण करना जिससे कार्य ठीक प्रकार से हो जाए।[3]

3 प्रो कूण्ट्ज तथा प्रो ओ डोनल के अनुसार जब व्यक्तियों का सहयोग एक सामान्य उद्देश्य के लिए एक समूह के रूप में संगठित हो उस समूह का आधार व विशेषता प्रबन्ध है अर्थात् व्यक्तियों द्वारा कार्य करवाना प्रबन्ध है। समूह की क्रियाओं में इस प्रकार का समन्वय कराने हेतु प्रबन्धक नियोजन संगठन कर्मचारियों की भर्ती निर्देशन तथा अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं पर नियन्त्रण करता है।[4]

1 *Kimball and Kimball* Principles of Industrial Organisation p 150
2 *Kimball and Kimball* Principles of Industrial Organisation p 157
3 *E F L Brech* Organisation the Framework of Management p 10
4 *Koontz & O Donnell* Principles of Management p 3

4 प्रो एम बार्जी के अनुसार व्यापक अर्थ म प्रबन्ध उन सभी क्रियाओं का योग है जिनका सम्बन्ध कुछ योजनाए नीतिया एव उद्देश्य निश्चित करना इनकी पूर्ति हेतु मनुष्य मुद्रा माल और मशीनें जुटाना इन सभी को काय म लगाना इनके कार्यों की जाच करना और कार्य म लगे व्यक्तिया को नकद पारिश्रमिक देना एव उन्हें मानसिक सन्तोष प्रदान करने से है। [1]

5 प्रो टेरी के अनुसार प्रबन्ध एक पृथक प्रक्रिया है जिसमें नियोजन सगठन वास्तविकता तथा नियन्त्रण को शामिल किया जाता है तथा इनका निष्पादन व्यक्तियों एव साधनो के उपयोग द्वारा उद्देश्यों का निर्धारित एव प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

6 प्रो न्यूमैन व प्रो सुमर के अनुसार प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह एक प्रक्रिया है क्योंकि इसम क्रियाओं की कई सारणिया सम्मिलित हैं जिनसे उद्देश्यों को पूरा किया जाता है। यह सामाजिक प्रक्रिया है क्योंकि ये काय मुख्य रूप से मनुष्यों के बीच सम्बन्धों से सम्बन्धित हैं। [3]

7 प्रो स्प्रीगल एव प्रो लसबर्ग के अनुसार प्रबन्ध एक उद्यम या उपक्रम का वह काय है जिसका सम्बन्ध व्यवसाय के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न क्रियाओं के निर्देशन व नियन्त्रण से है। प्रबन्ध आवश्यक रूप से एक कार्यकारी काय (Executive function) है इसका विशेष रूप से मानवीय प्रयास के निर्देशन करने से सम्बन्ध है। [4]

8 आर सी डेविस के अनुसार प्रबन्ध कार्यकारी नेतृत्व का काम है। यह मुख्यत एक मानसिक क्रिया है। यह काय के नियोजन सगठन तथा सामूहिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों का नियन्त्रण करने से सम्बन्धित है। [5]

9 मेरी कूशिंग नाइल्स के अनुसार अच्छा प्रबन्ध मानवीय भौतिक शक्ति एव समय के सदुपयोग से तथा उसम सम्मिलित लोगों को सन्तुष्ट करना एव जनसाधारण की सन्तुष्टि हेतु सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है।

10 अमेरिकन मैनेजमेण्ट एसोसिएशन ने भी प्रबन्ध की परिभाषा इस प्रकार की है कि प्रबन्ध मानवीय तथा भौतिक साधनों को क्रियाशील (Dynamic) सगठन की इकाइयों म लगाता (Guide) है जिनका उद्देश्य ग्राहकों का सन्तोष प्रदान करना तथा कर्मचारियों म उच्च स्तर का मनोबल (Moral) तथा काय पूर्ण करने म उत्तरदायित्व उत्पन्न करना है।

1 *M B n r/e* Bus Admı st at o p 19
2 *G o ge R Terry* Pr n ples of Man g ment p 4
3 *N wman & Su rme* The P oce s of Ma ag me t p 9
4 *Sp g l & Lan burgh* Ind stri l Managem nt p 109
5 *R C Da is* The F ndamentals f Top M n geme t

11 स्टनल वेन्स के अनुसार प्रबन्ध केवल निर्णय लेने तथा मानवीय क्रियाओं पर नियन्त्रण रखने की विधि है जिसमें पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके।

12 विलकिन्सन तथा फोस्टर के शब्दों में प्रबन्ध एक ऐसा शब्द है जिसका सामान्य उपयोग उस विधि का वर्णन करने के लिए किया जाता है जिसके द्वारा व्यक्ति उस पर सीमाएं लगाने के बाद भी उचित उद्देश्य प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

13 जे बेटे के अनुसार एक प्रबन्धक वह व्यक्ति है जो वस्तुओं अथवा सेवाओं के उत्पादन में मानवीय क्रियाओं के निर्देशन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।[1]

उपरोक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जिसमें किसी भी उपक्रम के दिए हुए उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सामूहिक रूप से काय करने वाले मानवीय तथा भौतिक साधनों के योजनाबद्ध संगठन के माध्यम से निर्देशन नियमन व नियन्त्रण से कार्य करवाया जाता है। दूसरे शब्दों में एक उपक्रम के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए दूसरों से काय लेने की प्रक्रिया ही प्रबन्ध कहलाती है। आर सी अग्रवाल ने प्रबन्ध की एक उपयुक्त परिभाषा देते हुए लिखा है कि प्रबन्ध से आशय निम्न में सम्बन्धित क्रियाओं के समूह से है—

(1) निश्चित योजनाओं नीतियों तथा उद्देश्यों को निर्धारित करना (2) इनकी प्राप्ति के लिए मानव धन सामग्री तथा यन्त्रों की व्यवस्था करना (3) इन सबको क्रियाशील (चालू) करना (4) उनके द्वारा प्राप्त उपलब्धियों की जाँच करना तथा (5) इस क्रिया में संलग्न व्यक्तियों को सामग्री परितोषण तथा मानसिक शान्ति प्रदान करना।

प्रबन्ध की विशेषताएं
(Characteristics of Management)

विभिन्न विद्वानों एवं लेखकों द्वारा प्रबन्ध की दी गई विभिन्न परिभाषाओं से हम निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है—

1 प्रबन्ध एक प्रक्रिया है (Management is a process)—प्रबन्ध दूसरों से काय लेने की एक प्रक्रिया है। सामूहिक रूप से काम करने की यह प्रक्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि सम्बन्धित उपक्रम के लक्ष्यों की पूर्ति नहीं हो जाती है। यह प्रक्रिया जिसकी देख रेख में चलती है वह प्रबन्धक होता है।

—

1 A manager is a person who attempts to achieve stated objectives by directing human activities in the production of goods and services

—J Bete

2 प्रबन्ध विशिष्ट उद्द श्यों की पूर्ति करता है (Specific objectives)— किसी भी संस्थान म प्रत्यक प्रबन्धकीय प्रक्रिया का सम्बन्ध कुछ दिए हुए उद्दश्य की पूर्ति करना होता है । य उद्दश्य प्रबन्धक द्वारा पहले से ही निर्धारित कर लिए जाते हैं । प्रबन्ध की सफलता इन उद्दश्यो की पूर्ति पर निभर होती है ।

3 अन्य लोगों से काय लने की कला (Art of getting things done through others)— प्रबन्धक स्वय काय नहीं करता है । वह स्वय योजनाबद्ध सगठन क माध्यम स दूसर लागा स काय करवाता है । दूसरा स काय किस प्रकार करवाया या लिया जाए कि प्रबन्ध क उद्दश्यो की पूर्ति हा जाए यह एक साधारण काय नहा है । यह एक कला है कि किस प्रकार दूसरो क माध्यम स काय करवाकर प्रबन्धकीय उद्दश्या को पूरा किया जाता है ।

4 प्रबन्ध एक मानवीय क्रिया है (Human Activity)— प्रबन्ध एक मानवीय क्रिया है क्योकि किसी भी उपक्रम म नियाजन सगठन निर्देशन प्ररणा समन्वय एव नियन्त्रण सम्बन्धी क्रियाए मानवाय क्रियाग्रा स घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं । इनके बिना प्रबन्ध काय नही कर सकता है ।

5 कार्यों मे समन्वय स्थापित करना (Co-ordination in the work)— प्रबन्धक उपक्रम के दिए हुए उद्दश्या की पूर्ति हतु दूसरे लोगो स काय करवाता है । विभिन्न स्तरीय अधिकारियों तथा विभिन्न विभागों के कार्यों म समन्वय करक ही समय पर काय पूरा करके उद्दश्या की पूर्ति की जा सकता है ।

6 प्रब ध विश्व-व्यापी है (Management is universal) प्रबन्धकीय प्रक्रिया केवल एक देश तथा उत्पादन के क्षेत्र तक ही सामित नहीं है वल्कि यह सभी देशो म तथा समस्त कार्यों म पाई जाती है । कुछ व्यक्तियो द्वारा दिए हुए उद्दश्या की पूर्ति हतु दूसरे व्यक्तिया का म गदशन नेतृत्व तथा निर्देशन किया जाता ह । सामाजिक आर्थिक धार्मिक सांस्कृतिक एव राजनीतिक तथा शिक्षण सस्थाग्रो की सभी क्रियाग्रा हतु प्रबन्ध का आवश्यकता हाती ह ।

7 प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है (Manag m nt is a social process)— प्रबन्ध के काय मौलिक रूप से मानवाय क्रियाग्रा से सम्बन्धित हाने क कारण प्रब ध एक सामाजिक प्रक्रिया ह । प्रबन्ध द्वारा मानवीय क्रियाग्रो को नियोजित सगठन निर्देशित समन्वित एव नियन्त्रित किया जाता ह । जैसा कि ब्रेच ने लिखा ह कि मानवाय तत्त्व की विद्यमानता ही प्रब ध को सामाजिक प्रक्रिया का विशष लक्षण प्रदान करती ह ।

8 प्रबन्ध का अपना पृथक अस्तित्व है (Managem nt has a distinct entity)— प्रबन्ध का अपना एक पृथक एव भिन्न अस्तित्व ह क्योकि इसका प्रमुख काय स्वय काय करना न होकर दूसरो से काय करवाना है । दूसरो म काय इस

प्रकार लिया जाता है कि पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है। आज प्रबन्ध एक स्वतन्त्र विकसित विज्ञान के पथ पर अग्रसर है।

9 प्रबन्ध कला एवं विज्ञान दोनों है (Management is an Art as well as a Science)—आज प्रबन्ध को संकीर्ण अर्थ में लेने का विचार अपना महत्त्व खो चुका है। प्रबन्ध एक व्यापक अवधारणा है यह कला एवं विज्ञान दोनों है। यह कला इसलिए कहा जाता है क्योंकि प्रबन्धकीय कला एक व्यक्तिगत कला है जो अन्तर्ज्ञान से प्राप्त की जाती है। प्रबन्ध विज्ञान इस रूप में है कि इसके कुछ सार्वभौमिक सिद्धान्त और नियमों का विकास हो चुका है।

10 प्रबन्ध एक पेशा है (Management is a Profession)—आधुनिक प्रबन्ध विशेषज्ञों के अनुसार प्रबन्ध एक व्यवसाय अथवा पेशा है क्योंकि इसमें वे सभी लक्षण पाए जाते हैं जो पेशे में होने हैं। प्रत्येक पेशे का अपना एक शास्त्र होता है जिसके अध्ययन के बिना वह पेशा नहीं किया जा सकता। प्रबन्धकार का अपना एक शास्त्र है जिसमें इसके सिद्धान्तों नियमों नीतियों आदि का उल्लेख होता है। इन सिद्धान्तों नीतियों आदि का प्रबन्ध शास्त्र के समुचित अध्ययन के बिना कोई भी व्यक्ति प्रबन्ध कार्य सफलतापूर्वक नहीं चला सकता। अमेरिका इंग्लैण्ड जर्मनी जापान तथा अन्य विकसित औद्योगिक देशों में प्रबन्ध एक पेशे के रूप में विकसित हो गया है। इन देशों में प्रबन्धकों को पेशेवर के रूप में विकसित करने हेतु कई प्रबन्धकीय शिक्षा संस्थान एवं पाठ्यक्रम चलाए गए हैं हमारे देश में भी प्रबन्ध पूंजीपति प्रबन्धकों का स्थान शनैः शनैः पेशेवर प्रबन्धक ग्रहण करते जा रहे हैं।

11 प्रबन्ध की आवश्यकता सभी स्तरों पर (Management is needed at all levels)—प्रबन्ध की आवश्यकता संगठन के सभी स्तरों पर पड़ती है। इसी कारण प्रबन्ध स्तर का उल्लेख किया गया है।

12 प्रबन्ध तथा स्वामित्व एक नहीं है (Management and ownership are not one and the same)—प्रबन्ध के विकास के प्रारम्भिक काल में उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था। इसलिए स्वामी ही प्रबन्धक का कार्य कर लेता था। लेकिन वर्तमान समय में श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण से उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। इससे प्रबन्धक का कार्य केवल प्रबन्ध करना है तथा पूंजीपति उद्योग में पूंजी लगाकर स्वामित्व प्राप्त कर सकते हैं। प्रबन्ध एक पेशे (Profession) के रूप में पनपने लगा है अतः आधुनिक समय में दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं।

प्रबन्ध की प्रकृति
(Nature of Management)

प्रबन्ध की विचारधारा उतनी ही प्राचीन एवं गतिशील है जितनी कि मानव की सभ्यता एवं संस्कृति है। प्रत्येक युग का प्रभाव इस पर पड़ा है। समय के

परिवतन के अनुसार प्रब धकीय विचारधारा तथा इसकी प्रकृति म व्यापक परिवतन होते गए हैं। प्रबन्ध को विभिन्न प्रब ध विशेषज्ञो न अपने समय म भिन्न भिन्न नामा से पुकारा ह। उदाहरणाथ वज्ञानिक प्रब ध के जनक (Father of Scientific Managem nt) श्री टेलर ने इस तकनकी निश्चयवाद (Technological Determinism हेनरी फयोल ने सावभौमिकता (Universality) प्रो ड्रकर न आर्थिक विस्तार (Economic Dimensions) प्रो शल्डन न समझौते की भावना (Spirit of Compromise) प्रो ब्रच ने सामाजिक प्रक्रिया (Social Process) तथा प्रो ए पल न मानवीय तत्व (Human Factor) का नाम दिया ह। अत प्रब ध की प्रकृति विभिन्न प्रब ध विशेषज्ञो की विचारधाराओ से प्रभावित हुई ह। प्रब ध की प्रकृति को निम्न पहलुओ क सदभ म आसानी से समझा जा सकता ह—

1 प्रबन्ध एक अर्जित एव जन्मजात प्रतिभा क रूप मे

(Management as an acquired and inborn ability)

परम्परागत प्रब ध (Traditional Management) यह मानकर चलता ह कि प्रब ध एक ज मजात प्रतिभा ह। प्रब धक बनाए नहीं जाते हैं बल्कि ज म लेते हैं। यह विचारधारा 18वी शताब्दी के अ त तक प्रचलित रही। इसी विचारधारा ने परम्परागत एव पतृक विरासत वाले उद्योग धन्धो का विकास किया। आज भी भारतीय अथ व्यवस्था म इस प्रकार की विचारधारा वाले प्रब धक पाए जाते हैं। भारत म वर्षों से चली आ रही प्रब ध अभिकत्ता प्रणाली (Managing Agency System) इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सन् 1970 म भारत सरकार न इस प्रणाली को अधिनियम पारित करक समाप्त कर दिया। वतमान समय म यह विचारधारा कोई महत्त्व नही रखता है क्योकि अब स्वामित्व और प्रब ध दोनो पृथक पृथक काय हो गए हैं तथा प्रब ध एक पेशे क रूप मे विकसित हो रहा है।

2 प्रबन्ध एक सव व्यापी प्रक्रिया के रूप म

(Management as a universal process)

प्रो हनरी फयोल जसे प्रब ध विशेषज्ञो का कथन है कि प्रब ध एक सावभौमिक प्रक्रिया है जिसे समान रूप से कहीं भी प्रयुक्त किया जा सकता है। प्रब ध कवल व्यावसायिक क्रियाओ को पूरा करने हतु ही प्रयोग नही किया जाता है अपितु इस विषय का प्रयोग अन्य क्षेत्रो म भी प्रयुक्त किया जा सकता है। चाहे परिवार हो या गिरजाघर मन्दिर हो या मस्जिद कुटीर उद्योग हो या बड उद्योग श्रम सघ का नेता हो या जिला परिषद् का अध्यक्ष दश का प्रधानम त्री हो या स्काउट्स का नेता पाठशाला हो अथवा महाविद्यालय एव विश्वविद्यालय अस्पताल हो अथवा औद्योगिक प्रतिष्ठान सास्कृतिक कायक्रम हो अथवा सिनेमाघर सभी क्रियाओ म प्रब ध का उपयोग करना आवश्यक है क्योकि काय सामूहिक रूप स कई व्यक्तियो द्वारा किया

जाता है जिसके लिए नियोजन संगठन अभिप्ररणा समन्वय निर्देशन एवं नियन्त्रण आदि प्रबन्धकीय कार्यों का सम्पादन किया जाता है।

3 प्रबंध एक पेशे के रूप में

(Management as a Profession)

आधुनिक प्रबंध विद्वानों का यह स्पष्ट मत है कि प्रबन्ध एक पेशा है तथा इसी रूप में प्रबन्ध का शनै शनै विकास होता जा रहा है। अमेरिका इंग्लण्ड जापान जर्मनी जैसे विकसित समुन्नत और उद्योग प्रधान देशों में व्यावसायिक प्रबन्ध का विकास एक स्वतन्त्र पेशे के रूप में हो चुका है तथा प्रबन्धकों को उनकी प्रबंध योग्यता के आधार पर ही प्राय कार्य सौंपा जाता है। अमेरिका में औद्योगिक इंजीनियर एक पेशेवर व्यक्ति ही होता है। जिस प्रकार एक वकील को कानूनी और डाक्टर को डाक्टरी की शिक्षा की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार एक प्रबन्धक को प्रबन्धकीय शिक्षा की आवश्यकता होती है। भारत में भी अब पूंजीपति प्रबन्धकों का स्थान पेशेवर प्रबन्धक ग्रहण करते जा रहे हैं। भारत में अब यह विचारधारा बल पकड़ती जा रही है कि प्रबंधकों को भी वकीलों डाक्टरों अथवा इन्जीनियरों की तरह पेशेवर व्यक्ति का स्थान दिया जाना चाहिए। आज के भारतीय विश्वविद्यालयों में प्रबन्धकीय विज्ञान का अध्ययन महत्वपूर्ण होता जा रहा है। भारत तेजी से औद्योगिक विकास की दिशा में बढ़ता जा रहा है और विकसित औद्योगिक क्षेत्रों में यह धारणा तेजी से समाप्त होती जा रही है कि पिता की भांति पुत्र भी व्यवसाय का प्रबन्ध कर लेगा। देश में जब विकसित औद्योगिक क्षेत्रों में किसी व्यवसाय अथवा उद्योग का प्रबंध संचालन प्रबन्धकों को इस आधार पर नहीं सौंपा जाता कि वे पूंजी लगाने वाले व्यक्तियों के पुत्र या सम्बन्धी हैं बल्कि इसलिए सौंपा जाता है कि वे प्रबन्ध करने में दक्ष हैं।

पेशे का अर्थ—प्रबंध एक पेशा है अथवा नहीं इस बात का निश्चय करने में पूर्व हमें पेशे की परिभाषा और उसके लक्षणों का विकास करना होगा।

शब्द कोष अथवा डिक्शनरी के अनुसार पेशा वह व्यवसाय है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति किसी विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति करके दूसरे व्यक्तियों को निर्देश मार्ग-दर्शन अथवा परामर्श देता है।

हाल एवं जानसन के अनुसार पेशा एक व्यवसाय है जिसके लिए कुछ विशिष्ट ज्ञान आवश्यक है जिसे समरूपता की उच्च डिग्री द्वारा समाज के एक सम्बन्धित वर्ग की सेवा के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

दुर्खेम एवं गिलन ने लिखा है पेशा एक विशिष्ट प्रकार का कार्य है जिसका निष्पादन क्रमबद्ध ज्ञान तथा सामान्य शब्दावली के प्रयोग से किया जाता है और इसके लिए कुछ निश्चित प्रमापों तथा मान्यता प्राप्त संस्था द्वारा प्रतिपादित एक आचार संहिता की आवश्यकता होती है।

लुईस डी ब्रान्सिस के अनुसार प्रब ध को एक पेशे के रूप म तभी परिभाषित किया जा सकता ह जबकि प्रब ध काय मे य लक्षण विद्यमान हो—(i) बौद्धिक प्रकृति की प्रब ध प्रशिक्षण व्यवस्था का अस्तित्व (ii) अ य व्यक्तियो के लिए प्रब ध क्षेत्र म प्रवेश (iii) वित्तीय पुरस्कार को ही सफलता का माप दण्ड न माना जाना।

प्रबन्ध एक पेशा है—इन विभिन्न परिभाषाओ स स्पष्ट है कि पेशा आजीविका का एक साधन है जिसके लिए ऐसे प्रारम्भिक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिसम प्रब धकीय ज्ञान तथा कायकौशल का सम वय हो जो केवल व्यक्तिगत स्वाथ पोषण पर आधारित न होकर दूसरे के सेवाभाव पर आधारित हो तथा जिसकी सफलता का एक मात्र मापदण्ड केवल वित्तीय पुरस्कार न हो। यदि हम प्रब ध को पेशे की उपरोक्त परिभाषाओ और विशेषताओ के स दभ मे देखें तो हमे प्रब ध को पेशा स्वीकार करने म कोई हिचक नही होनी चाहिए। आज प्रबन्ध विज्ञान के समुचित सिद्धान्तो का विकास हो चुका है और प्रबन्ध के लिए संचित ज्ञान भी उपलब्ध है। प्रबन्ध सिद्धा ता तकनीको तथा विधियो के औपचारिक प्रशिक्षण के लिए देश विदेश म बड पमाने पर प्रब ध शिक्षण संस्थाओ और प्रशिक्षण के द्रो की स्थापना की जाने लगी है। भारत म प्रब ध शिक्षण प्रशिक्षण के लिए सरकारी एव निजी सस्थाए कलकत्ता मद्रास बम्बई हैदराबाद आदि म स्थापित की गई है। विकसित और समृद्ध देशो म तो प्रबन्धको की अपनी प्रतिनिधि सस्थाओ का अस्तित्व है ही भारत जसे विकासशील देशो म भी प्रब धको न अपनी प्रतिनिधि सस्थाओ का गठन करना शुरू कर दिया है और उनकी भी आचार सहिताओं का निर्माण किया जा रहा है।

अमेरिकन मैनेजमेन्ट एसोसिएशन ने प्रबन्ध को एक श्रेष्ठ पेशे के रूप म माना है और उसकी निम्नलिखित पाच विशेषताओ का उल्लेख किया है

(i) प्रबन्धकीय ज्ञान समूह का हस्तान्तरण किया जा सकता है। हम प्रबन्ध सिद्धा तो को समझ सकते हैं और व्यवहार म उनका प्रयोग कर सकत हैं।

(ii) प्रबन्ध की अपनी वज्ञानिक विधि है। ऐसी निश्चित विधियाँ हैं जिनके आधार पर प्रब धकीय कार्यों को सम्पन्न किया जा सकता है और प्रब धकीय कार्यों का नेतृत्व सम्भव है।

(iii) प्रबन्ध एक ऐसा पेशा है जिसम चातुय और साधन आव यक हैं जिन्ह कि प्रब धक अपने कार्यों तथा दायित्वो को पूरा करने के लिए काम म लाते है।

(iv) प्रबन्ध एक ऐसा पेशा है जो नतिक आचार सहिता पर आधारित है जो आदश अथवा श्रेष्ठ पेशेवर प्रब धक हैं व नतिक आचार सहिता क आधार पर काम करते हैं।

(v) प्रबन्ध एक ऐसा पेशा है जो अन्य किसी भी श्रेष्ठ पेशे के समान अनुशासन के गुणों से युक्त है। अन्य पेशों की तरह प्रबन्धक भी कार्य निष्पादन और न्याय कुशलता के लिए पूरी तरह अनुशासनबद्ध रहते हैं।

अभी कुछ ही समय पूर्व भारत सरकार ने श्री राजिन्दर सच्चर की अध्यक्षता में एक समिति (सच्चर समिति) नियुक्त की थी जिसने अक्टूबर 1978 में प्रकाशित अपने प्रतिवेदन में पेशेवर प्रबन्धक को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। इस समिति के अनुसार पेशेवर प्रबन्धक वह व्यक्ति है जो—

(क) (i) विधि, लेखाशास्त्र, आयुविज्ञान, अभियांत्रिकी या वास्तुकला पेशे से सम्बन्धित हो (ii) किसी ऐसे मान्यता प्राप्त पेशेवर संस्था का सदस्य हो जिसको अपने सदस्यों पर पर्यवेक्षण का अधिकार हो अथवा (iii) जो किसी मान्यता प्राप्त संस्था या विश्वविद्यालय से प्रबन्धकीय उपाधि या डिप्लोमा प्राप्त किए हुए हो अथवा (iv) जो किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त किए हो और जिसे अधिशासी के रूप में किसी कम्पनी, निगम या सरकार में कार्य करने का कम से कम 5 वर्ष का अनुभव हो अथवा

(ख) जो किसी कम्पनी, निगम या सरकार में अधिशासी के रूप में कार्य करने का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव रखता हो।

पेशेवर प्रबन्धक की जो परिभाषा सच्चर समिति ने दी है वह सवमान्य नहीं हो सकती तथापि परिभाषा की दिशा में एक सराहनीय प्रयास अवश्य है। यदि हम इस परिभाषा को ग्रहण करें तो एक पेशेवर और एक गैर पेशेवर प्रबन्धक में स्पष्ट अन्तर कर सकते हैं।

उपरोक्त परिभाषाएँ और स्पष्टीकरण इस मत की स्थापना करते हैं कि प्रबन्धक एक पेशा है। वही व्यक्ति सफल प्रबन्धक बन सकता है जिसे प्रबन्ध विज्ञान के सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान हो और जिसके पास प्रबन्ध ज्ञान का समुचित भण्डार हो, जिसका नैतिक स्तर ऊँचा हो और जो दूसरों को प्रभावित करने में समर्थ हो। चूँकि प्रबन्ध आज एक पेशे के रूप में स्थापित हो चुका है अतः कुशल प्रबन्धक अपने कार्य के बदले में पारिश्रमिक तो लेता ही है, पर साथ ही सेवा-तत्व को अधिक महत्व देता है। लॉरेंस एप्पल ने लिखा है — प्रबन्ध पेशा बन चुका है। हारवर्ड यूनिवर्सिटी के भूतपूर्व अध्यक्ष लावेल के शब्दों में प्रबन्ध एक बूढ़ी कला किन्तु सबसे जवान पेशा है।

प्रबन्ध एक पेशा नहीं है—अनेक विद्वान् प्रबन्ध को एक पेशा मानने के मत से सहमत नहीं हैं। उनका तर्क है कि प्रबन्ध में पेशे की सभी विशेषताएं नहीं पाई जातीं। हेरोल्ड कूण्टज एवं सिरिल ओ'डोनेल ने लिखा है "यद्यपि प्रबन्ध के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति हो रही है तथापि यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रबन्ध

अभी पूरान एक पेशा नहीं है। हॉज एवं जानसन के शब्दों में चूंकि प्रबन्ध अभी पेशे की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता अत इसे पूरान पेशे की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उविक ने कुछ मध्यवर्ती मार्ग अपनाते हुए लिखा है यद्यपि प्रबन्ध विज्ञान में पेशे के समस्त लक्षण विद्यमान नहीं है तथापि यह विज्ञान पेशे की कुछ विशेषताओं को ग्रहण या सम्मिलित करने में तत्पर है।

यद्यपि प्रबन्ध कुछ दृष्टियों से पेशे की विशेषताओं को ग्रहण करता जा रहा है तथापि वैज्ञानिक अर्थ में इसे पेशा नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार एक वकील डाक्टर इंजीनियर या चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट का एक पेशा होता है उस रूप में प्रबन्ध पेशा नहीं है। अभी न तो प्रबन्ध का तुरन्त पूर्ण विकास हो पाया है और न ही प्रबन्ध सभा की स्थापना हो पाई है। पेशे के सदस्यों के लिए जिस प्रकार एक सामान्य आचार संहिता होती है वैसी आचार संहिता प्रबन्ध क्षेत्र में विकसित नहीं हो पाई है। प्रबन्ध क्षेत्र में प्रवेशार्थियों के लिए कोई एक रूप विधि नहीं है। एक डाक्टर वकील या इंजीनियर को विशिष्ट प्रमाण पत्र दिया जाता है जबकि प्रबन्धकों के लिए किसी प्रकार का विशिष्ट प्रमाण-पत्र आवश्यक नहीं है। पेशेवर प्रबन्ध परामर्शदाताओं का अभाव भी खटकने वाला है।

प्रबन्ध का पेशे के रूप में विकास होना—प्रबन्ध का पेशे होने न होने के सम्बन्ध में जो विवेचन ऊपर किया गया है उससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रबन्ध का अभी विशुद्ध रूप में पेशे के रूप में पूर्ण विकास नहीं हुआ है किन्तु शनै शनै उसका पेशे के रूप में विकास हो रहा है अर्थात् वह पेशे की कुछ विशेषताओं को यान्त्रिक रूप में ग्रहण करता जा रहा है। चूंकि प्रबन्ध में पेशे जैसी कुछ विशेषताएं पाई जाने लगी हैं इसीलिए कुछ विद्वान और संस्थान प्रबन्ध को पेशे के रूप में मानने लगे हैं और अमेरिकन मैनेजमेन्ट एसोसिएशन ने तो प्रबन्ध को एक वैध पेशा स्वीकारा है। जो भी हो प्रबन्ध अभी पेशा बना नहीं है हाँ पेशा बनता जा रहा है। स्टेनले वेन्स के अनुसार प्रबन्ध को पेशे के रूप में विकसित करने में अनेक घटक उत्तरदायी सिद्ध हुए हैं यथा—स्वामित्व का नियन्त्रण से अलगाव नागरिकों को शोषण से बचाने के लिए व्यवसाय के सम्बन्ध में राजकीय नियमों का लागू होना व्यवसायियों में सामाजिक प्रतिष्ठा की बढ़ती हुई इच्छा श्रम-संघ आन्दोलन का विकास होना वैज्ञानिक प्रबन्ध दर्शन की विचारधारा का महत्त्व कम हो रहा है।

भारत में प्रबन्ध एक पेशे के रूप में—विश्व के विकसित और उद्योग प्रधान देशों की तुलना में भारत की अर्थ व्यवस्था अभी विकासशील अवस्था में है तथापि यहाँ भी प्रबन्ध एक पेशे के रूप में तेजी से विकसित होने लगा है। सर जेम्स लिण्डसे का मत है भारत में जिस रूप में औद्योगिक संगठन विकसित

हो रहे हैं उससे यही प्रतीत होता है कि यहाँ पेशाकारी प्रबंध (Professional Management) केवल अस्तित्व में ही नहीं पाया है वरन् शीघ्रता से विकास को प्राप्त कर लेगा। भारत में ग्राल इण्डिया मैनेजमेन्ट एसोसिएशन ने जिस प्रबंध ग्रान्दोलन को प्रारम्भ किया है उसमे व्यावसायिक तथा औद्योगिक क्षेत्र की रुचि निरन्तर बढ़ती जा रही है। देश मे प्रबन्ध शिक्षा की माग मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। विशिष्ट प्रबंधकीय सेवाओ का प्रयोग बढ रहा है तथापि पेशे व प्रबंध की प्रवृत्ति को वह प्रोत्साहन अभी नही मिल पाया है जो मिलना चाहिए था। परम्परागत व्यावसायिक और औद्योगिक क्षेत्र प्रबंध विज्ञान के विकास में बाधक है। निजी क्षेत्र की तुलना मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों मे पेशेवर प्रबंधको का महत्व बढता जा रहा है।

जो प्रवृत्तियाँ देश मे गतिशील हैं उनसे यही सकेत मिलता है कि निकट भविष्य अथवा आने वाले कुछ दशको मे भारत मे प्रबन्ध का उसी तरह पेशे के रूप मे विकास हो जावेगा जिस रूप मे आज अमरीका इंग्लैंड जापान या जर्मनी मे है।

4 प्रबन्ध एक सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में

(Management as a Social Responsibility)

उद्योग तथा व्यवसाय के विकास के साथ साथ प्रबंध का क्षेत्र भी बदलता रहा है। 19वीं शताब्दी मे परम्परागत प्रबन्ध (Traditional Management) का बोलबाला था और व्यवसाय मे प्रबंधक व स्वामि व दोनो एक ही होते थे। उस समय प्रबंध का कार्य स्वामित्व के उद्देश्यों की पूर्ति करना था अर्थात् स्वामित्व के लाभ को अधिकतम करना था। परन्तु 20वीं शताब्दी मे अनेक तकनीकी एव राजनीतिक परिवर्तनों ने परिणामस्वरूप पेशेवर प्रबंधको तथा अन्य विशेषज्ञो को जन्म दिया है। व्यवसाय के क्षेत्र मे हुए इन परिवर्तनो से प्रबन्धको के उत्तरदायित्वो मे भी पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। अब आधुनिक प्रबन्ध का दायित्व न केवल उसके स्वामित्व के हितो की रक्षा करना है बल्कि उसे संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों समाज सरकार एव उपभोक्ताओं के हितो की रक्षा भी करनी होगी। समाज के इन विभिन्न वर्गों के प्रति प्रबंधक के दायित्वो को प्रबंधक के सामाजिक दायित्वो (Social Responsibilities of Management) के नाम से पुकारा जाता है। प्रो बनर्जी ने व्यवसाय मे पाए जाने वाले हितो की विभिन्नता (Diversity of interest) को बताते हुए प्रबंधक के सामाजिक दायित्वो का विवरण अग्रलिखित रूप मे किया है[1]—

1 *M Banerj e* Bus ness Administ at on p 15

प्रबन्धक
↓

कर ↓	कल्याण हेतु उपहार ↓	अधिक मजदूरी व अन्य लाभ ↓	लाभांश ↓	सस्ती एवं अच्छी वस्तु ↓
सरकार	समाज	कर्मचारी	स्वामी	ग्राहक
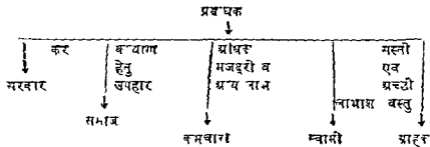
प्रबन्धक को सामाजिक दायित्वों को पूर्ण रूप से निभाहने के लिए पूर्ण उत्साह एवं ईमानदारी से कार्य करना होगा। स्वामियों द्वारा यह माँग की जाती है कि उन्हें अधिकाधिक लाभांश मिले। कर्मचारियों द्वारा ऊँची मजदूरी तथा कम कार्य के घण्टे एवं अन्य लाभों की माँग की जाती है। समाज यह चाहता है कि प्रबन्धक अधिकाधिक वस्तुओं का उत्पादन करें तथा समाज के उत्थान हेतु शिक्षण संस्थाओं, धर्मशालाओं, अस्पतालों आदि हेतु अधिक दान दें। सरकार यह चाहती है कि प्रबन्धक औद्योगिक विकास की नीति का पालन करें तथा सरकार द्वारा लगाए गए करों आदि का नियमित व ईमानदारी से भुगतान करें। उपभोक्ता या ग्राहकों की माँग यह होती है कि उन्हें आसानी से सस्ती कीमत पर अच्छी वस्तु मिल जाए। इस प्रकार हितों की विभिन्नता में एक प्रबन्धक का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह सभी के हितों का ध्यान रखे तथा इनमें सन्तुलन रखने का प्रयास करे।

जहाँ पर स्वामी अधिकांश व्यवसायों के प्रबन्धक होते हैं उन देशों में स्वामी के उद्देश्य अर्थात् लाभ के उद्देश्य की पूर्ति होती है तथा अन्य उद्देश्यों एवं हितों की उपेक्षा की जाती है। इसमें मजदूरों का निम्न स्तर, कार्य की असन्तोषजनक दशाएँ, अधिक ऊँची कीमतें, मिलावटखोरी, करों की चोरी, सामाजिक कार्यों हेतु बहुत कम चन्दा आदि प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ प्रबन्ध का एक व्यवसाय के रूप में पूर्ण विकास नहीं हो पाया है ये प्रवृत्तियाँ हमें देखने को मिलती हैं। लेकिन हाल ही में हमारे युवा प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी द्वारा घोषित आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत इन बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने का संकल्प लिया गया है। सभी प्रबन्धकों का दायित्व है कि वे इन बुराइयों को समाप्त करके प्रबन्ध को एक व्यवसाय के रूप में विकसित करने में अपना योगदान प्रदान करें।

स्वर्गीय प्रो. ए. एन. अग्रवाल ने भी अपने लेख में बहु व्यवसाय उद्देश्यों (Pluralistic Business Goal) को दो वर्गों में विभाजित किया है[1]—

1 A. N. Agrawala, Social Responsibilities of Management in Developing Countries

1 सगठनात्मक उद्देश्य (Organisational Goals)—इसके अन्तर्गत व्यवसाय स प्राप्त लाभ (Profit) व्यवसाय का विस्तार (Expansion) एव नव प्रवतन (Innovation) आदि उद्देश्य सम्मिलित किए जा सकते ह।

2 गैर सगठनात्मक उद्देश्य (Non organisational Goals)—इसके अन्तगत कायरत कमचारियो के कल्याण जसे ऊची मजदूरी सन्तोषप्रद काय की दशाए उपभोक्ताओ को अच्छी किस्म की सस्ती वस्तुए प्रदान करना सरकारी नीतियो एव कायक्रमो क क्रिया वयन म सहयोग प्रदान करना तथा सरकार द्वारा लगाए गए करो का नियमित व पूर्ण रूप स भुगतान करना और समाज के कल्याणकारी कार्यो जस शिक्षण सस्थाए रोजगार अस्पताल वस्तुओ का अधिक उत्पादन आदि म हाथ बटा कर समाज की सवा करने आत हैं।

अत उपरोक्त दानो प्रकार के व्यवसाय क उद्देश्यो क प्रति प्रब धक का उत्तरदायित्व है। सफल प्रबन्धक वही माना जाता है जो कि इन विरोधी हितो म समन्वय एव सन्तुलन स्थापित करके समाज क सभी वर्गों के हितो की रक्षा करता है और अपन दायित्वो को निभाता है। इस प्रकार प्रब धक का कत्तव्य है कि व्यवसाय स प्राप्त प्रतिफल का समान रूप स इस प्रकार वितरण कर कि शेयरधारियो को उचित लाभांश कमचारियो को उचित वेतन एव काय की दशाए पूर्तिकर्त्ताओ एव उपभोक्ताओ हेतु उचित कामत मिल और सामान्य रूप स व्यवसाय इस प्रकार से स्थानीय समाज तथा राष्ट्र क लिए। क परिसम्पत्ति (Assets) बन जाए।

प्रब ध एक कला एव विज्ञान के रूप में

(Management as an Art & a Science)

प्रबन्ध विज्ञान है अथवा कला इस जानने के लिए हमे विज्ञान एव कला का अथ जानना आवश्यक है। सुव्यवस्थित ज्ञान को ही विज्ञान कहते हैं। इसम अवलोकन व प्रयोगो को आधार माना जाता है तथा कारण एव परिणाम के सम्ब ध का अध्ययन किया जाता है। कला का अथ इस सुव्यवस्थित ज्ञान को व्यावहारिक उपयोग म लाना है।

जो व्यक्ति प्रबन्ध को एक विज्ञान के रूप म स्वीकार करते हैं उनका कथन है कि प्रबन्ध एक नवीन एव विकासमान विज्ञान है। अभी इसके सिद्धान्तो का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। प्रब ध के जो भी सिद्धान्त पूर्ण रूप स विकसित हो गए हैं उनम कारण एव परिणाम के सम्बन्ध का अध्ययन किया जा सकता है और य सिद्धान्त यापक अनुभवो प्रयोगो परीक्षणो एव व्यावहारिक अनुभवो पर आधारित हैं। अत इससे स्पष्ट है कि प्रब ध एक विज्ञान के रूप म अपने विभिन्न सिद्धान्तो तकनीको नियमो आदि के साथ विकसित हो रहा है।

इसके विपरीत वे व्यक्ति आते हैं जो प्रबन्ध विषय को एक विज्ञान के रूप मे स्वीकार नहीं करते हैं। उनकी धारणा है कि प्रब ध समाज विज्ञानो के अन्तगत

आता है क्योंकि इसम मानवीय व्यवहारो का अध्ययन किया जाता है। मानव व्यवहार का अध्ययन होन स प्रब ध भौतिक एव रासायनिक विज्ञाना की भाति एक निश्चित विज्ञान Exact Science) न ी माना जा सकता। प्रब ध के सिद्धा त गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की भाति निश्चित नही हैं। उनकी तुलना ज्वार भाटा क सिद्धान्त से की जा सकती है। विभिन्न देशा की सभ्यता संस्कृति सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितिया भिन्न भिन्न होन के कारण एक देश के प्रबन्ध के सिद्धा त दूसरे देश म सही रूप स लागू नही किए जा सकत हैं इसलिए प्रब ध को विज्ञान नही मानना चाहिए।

फिर भी हम कह सकते हैं कि प्रब ध एक नवीन विकासमान विज्ञान है जिसम मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। प्रब ध विज्ञान भौतिक एव रासायनिक विज्ञानो की भाति एक निश्चित एव शुद्ध विज्ञान नही है क्योंकि इसमे मानव व्यवहारो का अध्ययन है। प्रब ध विज्ञान को चिकित्सा एव इन्जीनियरिंग विज्ञाना की श्रेणी म रखा जा सकता है। इनमे सद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

प्रब ध क कला पक्ष क अ तगत प्रब ध के सिद्धा तो नियमा विधिया तकनीकी विश्लेषण आदि का व्यावहारिक उपयोग स माना है। इसक अ तगत प्रबन्ध मानव व्यवहार जीवन दर्शन और व्यावहारिक शक्ति आदि प्राप्त करके व्यवहार म अधिक प्रभावपूर्ण प्रब धक बनन म सफल होते हैं। इस प्रकार कला पहलू क अ तर्गत प्रब धक सद्धान्तिक ज्ञान सामग्री को व्यवहार म अपनाता है।

19वी शताब्दी तक प्रब ध विषय को कला ही माना जाता था लेकिन अब बीसवी शताब्दी म विशेषकर द्वितीय महायुद्ध क पश्चात् स इस विज्ञान भी माना जाने लगा है। यद्यपि प्रब ध का विज्ञान पहलू उतना विशुद्ध एव निश्चित (Pure and exact) नही है जितना भौतिक एव रासायनिक विज्ञान है क्योंकि प्रबन्ध मे मानवीय व्यवहारो का अध्ययन किया जाता है, जिन्हे निश्चित सीमाओ एव प्रयोगो म नही बाधा जा सकता फिर भी प्रब ध एक विज्ञान है। इस प्रकार प्रब ध के विज्ञान पहलू द्वारा सिद्धान्तो एव नियमो का निमाण किया जाता है और कला पहलू उनको प्रब ध क क्षेत्र म लागू करता है। अत प्रब ध को कला एव विज्ञान दोनो के रूप मे स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि विज्ञान जानना तथा कला करना सिखाती है। एक कुशल प्रबन्धक हेतु दोनो ही पहलू उसी प्रकार आवश्यक हैं जिस प्रकार एक चिकित्सक के लिए चिकित्सा का सद्धान्तिक एव व्यावहारिक ज्ञान

प्रब ध एक गतिशील प्रक्रिया के रूप मे
(Management as a Dynamic Process)

आधुनिक समय म किसी भी उपक्रम या संस्थान म प्रब ध अपने पूव निर्धारित कार्यों जैसे—नियोजन संगठन अभिप्रेरण निर्देशन सम वय एव

नियन्त्रण आदि को एक दिए हुए ढंग से सम्पादित करने तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह निरन्तर विश्लेषण निर्णय मूल्यांकन एवं कार्य करने की एक गतिशील प्रक्रिया है। प्रबन्ध सभी कार्यों को प्रतिदिन देखता रहता है तथा परिस्थितियों के अनुसार उनमें परिवर्तन एवं संशोधन करता है। यही नहीं प्रबन्ध उद्योग अथवा व्यवसाय के प्रत्येक स्तर के लिए आवश्यक है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रबन्ध एक गतिशील एवं सृजनात्मक प्रक्रिया है।

प्रबन्ध एक गतिशील प्रणाली या पद्धति के रूप में

(Managemet as a System)

प्रबन्ध का एक पद्धति अथवा प्रणाली के रूप में अध्ययन महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। इस विचारधारा का विकास गत लगभग पाँच दशाब्दियों से हुआ है और इसे विकसित करने का प्रमुख श्रेय संयुक्त राज्य अमरीका को है। वहां 1967 में सार्वजनिक प्रबन्ध पर राष्ट्रीय कमीशन (National Institute on Public Management) की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य बेरोजगारी जन कल्याण शिक्षा आदि की तरह अन्य राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए प्रबन्धकीय पद्धतियों और तकनीकों की प्रयुक्ति का अध्ययन करना है। यह कमीशन ऐसी पद्धति अथवा विधि के लिए सिफारिश करता है जिसके माध्यम से प्रबन्ध तकनीकों को लागू किया जा सके।

प्रबन्ध-जगत में प्रणाली विचारधारा का दृष्टिकोण सामान्यतः यह है कि अन्य पदार्थ विज्ञान और जीवविज्ञान प्रणालियों की भांति प्रबन्ध प्रणाली भी व्यक्ति जगत् के मध्य सम्बन्धों का एक औपचारिक संगठित एवं व्यवस्थित मिश्रण है अर्थात् प्रत्येक संगठन में कार्यरत व्यक्तियों का एक समूह होता है जिसमें परस्पर औपचारिक सम्बन्ध होते हैं और उन व्यक्तियों में से प्रत्येक व्यक्ति की अपनी क्रियाओं का कोई एक पृथक उद्देश्य नहीं होता वरन् सभी व्यक्तियों की क्रियाओं का अन्तिम उद्देश्य संगठन के सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति करना होता है। प्रबन्ध वैज्ञानिकों का अभिमत है कि प्रबन्धकों को प्रत्येक व्यक्ति की क्रिया को एक अंग के रूप में तथा सभी व्यक्तियों की क्रियाओं को संयुक्त रूप में एक प्रणाली के रूप में मानना चाहिए और इसी आधार पर प्रबन्ध-कार्य करना चाहिए। प्रबन्धकीय प्रणाली की विचारधारा किसी एक पहलू या पक्ष के स्थान पर सभी पहलुओं पर एकसाथ विचार करने का आग्रह करती है। दूसरे शब्दों में प्रबन्ध की प्रणाली विचारधारा में किसी एक ही भाग का अध्ययन नहीं किया जाता वरन् सभी भागों का अध्ययन किया जाता है अर्थात् यह सम्पूर्ण के अध्ययन पर बल देता है। विश्व के प्रबन्ध विशेषज्ञों ने यह मत प्रस्थापित किया है कि आधुनिक वृहद्स्तरीय उद्योगों और व्यवसायों की बढ़ती हुई जटिल समस्याओं का सामना करने के लिए प्रबन्धकीय विचारधारा को अपनाया जाना चाहिए। प्रबन्धक को एक संगठन के

विभिन्न अंगों को अलग अलग न मानकर सम्पूर्ण संगठन की एक ही पद्धति या प्रणाली या व्यवस्था मानना चाहिए और तदनुसार कार्य करना चाहिए।

प्रबन्ध प्रणाली को पारिभाषिक रूप में स्पष्ट करते हुए हरलानाफी ने लिखा है "एक प्रणाली अनेक इकाइयों का जो परस्पर सम्बद्ध होती है समूह है।" मारटन के अनुसार "प्रणाली विभिन्न भागों अथवा वस्तुओं का ऐसा संयोजन है जिनमें एक जटिल इकाई का निर्माण होता है।" जानसन केस्ट के मत में "प्रणाली अन्तःक्रियाशील प्रणालियों का संगठन है।" सेमूर टिस का कहना है कि "प्रणाली परस्पर सम्बद्ध भागों का एक समूह होती है। जिस प्रकार अणु-परमाणुओं की एक प्रणाली होती है अथवा व्यक्ति के अंगों की एक प्रणाली होती है और समूह व्यक्तियों की प्रणाली होती है ठीक उसी प्रकार प्रबन्ध को अनेक भागों उपभागों अथवा उप प्रणालियों की प्रणाली माना जाना चाहिए।" वेस्ट चर्चमैन ने इसलिए लिखा है कि "प्रणाली में या अन्य सम्पूर्ण प्रणाली एवं अनेक अंगों के बारे में सोचने की विधि है।" प्रबन्ध प्रणाली की विचारधारा संगठन या संस्थान की सभी क्रियाओं के एकीकरण और समन्वय पर बल देती है और साथ ही उप प्रणालियों या विभिन्न भागों के पूर्ण विकास की ओर भी अपना पूरा ध्यान देती है। इसी विचारधारा को हम वैज्ञानिक भाषा में प्रबन्ध एक पद्धति के रूप में (Management as a System) अथवा प्रबन्ध में प्रणाली विचारधारा (System Approach to Management) कहते हैं। प्रबन्ध प्रणाली विचारधारा में सर्वप्रथम प्रणाली को परिभाषित अथवा निश्चित किया जाता है और तत्पश्चात् उद्देश्य निर्धारण औपचारिक उप प्रणालियों का निर्माण तथा सभी भागों या उप प्रणालियों का व्यवस्थित एकीकरण करना होता है।

प्रबन्ध जगत् में साधारणतः बन्द एवं खुली (Closed and Open) प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है। डल और ब्राशवाई ने बन्द प्रणाली को सूचना सकारण प्रणाली (Information tight System) का नाम दिया है जिसके अन्तर्गत समस्त क्रियाओं पर प्रबन्ध का पूर्ण नियन्त्रण होता है। इसके विपरीत खुली प्रणाली में प्रबन्ध का समस्त क्रियाओं पर पूरा नियन्त्रण नहीं होता है। बन्द प्रणाली का वातावरण से कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं होता जबकि खुली प्रणाली का वातावरण से परस्पर सम्बन्ध होता है।

प्रबन्ध का क्षेत्र
(Scope of Management)

प्रबन्ध का क्षेत्र व्यापक है। जहाँ किसी कार्य करने हेतु सामूहिक प्रयास किए जाते हैं तथा इसके लिए नियोजन संगठन अभिप्रेरण निर्देशन समन्वय एवं नियन्त्रण करने की आवश्यकता होती है वहाँ प्रबन्ध प्रक्रिया प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रयुक्त की जाती है। यही कारण है कि प्रबन्ध का कार्य क्षेत्र व्यक्ति के परिवार में

भी है ता स्वय म भी है। मन्दिर मस्जिद चच शिक्षण सस्थाए अस्पताल धार्मिक व सामाजिक उत्सव युद्ध औद्योगिक प्रतिष्ठान कोई भी क्षेत्र प्रबन्ध क उपयोग के बिना नहीं चलाया जा सकता है।

व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्षेत्र म भी प्रबन्ध के क्षेत्र की व्यापकता का अनुमान उन विभिन्न क्रियाओं से लगाया जा सकता है जिनम प्रबन्ध एक विशिष्ट विषय के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। कार्यालय प्रबन्ध (Office Management) उत्पादन प्रबन्ध (Production Management) विपणन प्रबन्ध (Marketing Management) कार्मिक प्रबन्ध (Personnel Management) यातायात प्रबन्ध (Transport Management) वित्तीय प्रबन्ध (Financial Management) क्रय प्रबन्ध (Purchase Management) तकनीकी प्रबन्ध Technical Management) आदि व क्षेत्र है जो प्रबन्ध सिद्धान्त प्रबन्ध प्रणालियां एवं प्रबन्ध प्रक्रिया का पूर्ण रूप स उपयोग किया जाता है। प्रबन्ध का कायक्षेत्र इतना विस्तृत एवं व्यापक बन गया है कि इससे कोई भी सामाजिक धार्मिक आर्थिक राजनीतिक प्रशासनिक व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्षेत्र अछूता नहीं रह सकता है। किसी न किसी रूप म प्रबन्ध प्रक्रिया म प्रबन्ध सिद्धान्तों एवं प्रबन्ध प्रणालियों का उपयोग किया जाता है। डा मूमैन ने प्रबन्ध को एक सामाजिक प्रक्रिया बताया है क्योंकि इसका सम्बन्ध समाज म रहन वाले विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्धों के अध्ययन करने से है।

ड्रकर के अनुसार प्रबन्ध तीन प्रकार के काय करता है।[1]

1 व्यवसाय का प्रबन्ध (Managing a business)

2 प्रबन्धकों का प्रबन्ध (Managing managers)

3 श्रमिकों और काय का प्रबन्ध (Managing workers and work)

उपरोक्त तीनों कार्यों का अलग अलग अध्ययन विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जा सकता है। फिर भी प्रबन्धक का एक निर्णय स तीनों कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। प्रथम काय का सम्बन्ध व्यवसाय की आर्थिक कुशलता से है। प्रबन्धक का यह कत्तव्य है कि वह व्यवसाय की आर्थिक कुशलता को बनाए रखे। दूसरे काय के अन्तगत प्रबन्धक मानवीय और भौतिक साधनों को सगठित करके निर्देशन व नियन्त्रण के माध्यम स उत्पादन का प्रामाणिकरण करता है। तीसरा काय श्रमिकों के कार्यों का वितरण करके तथा उन्हे निर्देशन रूप स सम्बन्ध रखना है।

व्यवसाय का प्रबन्ध करने सम्बन्धी कार्य प्रबन्धक का प्राथमिक काय है क्योंकि व्यवसाय एक आर्थिक संस्था है जबकि प्रबन्धकों का प्रबन्ध श्रमिकों और काय के प्रबन्ध का सम्बन्ध सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति से है। प्रबन्ध इन दोनों कार्यों म अधिक रुचि रखता है। इसलिए ये दोनों काय प्रबन्धक के सामाजिक

1 P F Druck The Practice of Managem nt P 2

दायित्वों (Social Responsibilities of Management) की ओर संकेत करते हैं। ये तीनों कार्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जब भी कोई प्रबन्धक कोई कदम उठाता है तो तीनों कार्य प्रभावित होते हैं। इन तीनों पर जोर देते हुए श्री पी० ड्रकर ने लिखा है कि "यदि इनमें से एक को भी छोड़ दिया गया होता तो हम प्रबन्ध अधिक आवश्यक नहीं होता और हम एक व्यवसाय नहीं करना पड़ता और न ही औद्योगिक समाज होता।"[1]

अतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सामूहिक रूप से कार्य करना पड़ता है तथा आधुनिक औद्योगिक एवं व्यावसायिक विकास के परिणामस्वरूप प्रबन्ध एवं स्वामित्व दो अलग-अलग वर्ग पनपने लगे हैं। ऐसी परिस्थितियों में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रबन्ध को किसी न किसी रूप में प्रयुक्त किया जाना परमावश्यक है।

प्रबन्ध के सिद्धान्त
(Principles of Management)

प्रबन्ध का अध्ययन करते समय प्रबन्ध के सिद्धान्तों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। जहाँ भी दो या दो से अधिक व्यक्ति निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करेंगे वहाँ प्रबन्ध के सिद्धान्तों की आवश्यकता स्वतः उठ खड़ी होगी। प्रबन्ध के सिद्धान्तों की आवश्यकता पहले भी थी, आज भी है और भविष्य में भी रहेगी। पहले की तुलना में इन सिद्धान्तों की उपयोगिता निरन्तर बढ़ती जा रही है क्योंकि प्रबन्ध के क्षेत्र में क्रान्ति आ रही है—आए दिन परिवर्तन हो रहे हैं। प्रबन्ध के सिद्धान्तों की आवश्यकता निम्न दृष्टियों से है—

(1) प्रबन्धकीय कार्य कुशलता में वृद्धि के लिए
(2) प्रबन्ध की प्रकृति को समझने के लिए
(3) अनुसंधान-कार्य में सुधार लाने के लिए एवं
(4) सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए।

जब प्रबन्ध के सिद्धान्तों का अनुपालन किया जायगा तो प्रबन्धकीय कार्य कुशलता में वृद्धि होगी। पविष्य में प्रबन्ध के सिद्धान्तों के अनुपालन अथवा प्रयोग से प्रबन्धक समस्याओं के समाधान में मार्गदर्शक रेखाओं का प्रयोग करके प्रभावी सिद्ध हो सकता है और उसे पुरानी परिश्रमपूर्ण तथा जोखिम भरी और तीर तुक्के वाली विधियों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। प्रबन्ध एक व्यापक अवधारणा है जिसके विभिन्न प्रकार से ... प्रबन्ध के सिद्धान्तों का भली भाँति अध्ययन कर लिया जाता है तो प्रबन्धक के अर्थ और उसकी प्रकृति को

1 If one of the ... were omitted we would not have management any more and we also not have business enterprise or an industrial society. —P F Drucker The Practice of Management P 17

अपेक्षाकृत सुगमता और स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है। कुण्टज तथा ओ'डोनेल ने लिखा है प्रबन्ध के सिद्धान्त प्रबन्ध-तत्त्वों की एक जाँच सूची के रूप में कार्य करते हैं। प्रबन्ध सिद्धान्तों के अभाव में प्रबन्धों का प्रशिक्षण तीर-तुक्के की पद्धति पर आधारित होगा। प्रबन्ध सिद्धान्तों का विकास होने से सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में गतिशीलता प्राप्त होती है। प्रबन्धकीय कार्य कुशलता में वृद्धि होती है, साधनों का अधिकतम सदुपयोग हो पाता है और फलस्वरूप प्रबन्ध का समाज के सांस्कृतिक स्तर पर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ता है। प्रबन्ध के सिद्धान्तों के अध्ययन अनुपालन से कर्मचारियों तथा मर्यादक प्रबन्धकों की कार्य-कुशलता में वृद्धि कर पाना सुगम होता है। इसके आधार पर प्रबन्धक न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन सम्भव बनाता है। प्रबन्ध सिद्धान्तों की आवश्यकता अनुसंधान-कार्यों में सुधार लाने के लिए भी है। व्यक्तियों के स्वभाव उनकी आदतों, शारीरिक अवस्थाओं, मनोवैज्ञानिक धारणाओं, अभिवृत्तियों आदि का अध्ययन करने में प्रबन्ध सिद्धान्तों की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है।

प्रसिद्ध फ्रेंच उद्योगपति हेनरी फयोल ने प्रबन्ध के 14 सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिनका उल्लेख पुस्तक में यथास्थान किया जा चुका है। हेनरी फयोल द्वारा प्रतिपादित प्रबन्ध सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ अन्य सिद्धान्त भी विद्वानों ने बताए हैं जिनमें मुख्य ये हैं —

1 उद्देश्य का सिद्धान्त
2 नियोजन का सिद्धान्त
3 नीति निर्धारण का सिद्धान्त
4 अपवाद का सिद्धान्त
5 प्रमापीकरण का सिद्धान्त
6 नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त

उद्देश्य का सिद्धान्त बताता है कि किसी भी संस्था अथवा संगठन के उद्देश्य पूरी तरह स्पष्ट होने चाहिए और सभी कर्मचारियों को इन उद्देश्यों की समुचित जानकारी होनी चाहिए ताकि वे उनकी प्राप्ति के प्रयत्नों में असमंजस की स्थिति में न रहें। संस्था अथवा संगठन के सभी कार्य वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किए जाने चाहिए।

नियोजन के सिद्धान्त की माँग है कि संस्था या संगठन के सभी कार्य पूर्व निर्धारित योजना अनुसार किए जाने चाहिए। नियोजन विभाग को योजना निर्माण के समय संस्था या संगठन का उपलब्ध पूँजी, उपकरण साधनों, भावी परिस्थितियों आदि को ध्यान में रखकर चलना चाहिए। एक श्रेष्ठ नियोजन श्रेष्ठ प्रबन्ध की पूर्व आवश्यकता है। श्रेष्ठ नियोजन के अभाव में प्रबन्ध से उत्तम परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते।

नीतियाँ नियोजन का प्रमुख तत्त्व अथवा अंग होती हैं अतः प्रबन्धक के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह निर्धारित उद्देश्यों या लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निश्चित और स्पष्ट नीतियाँ निर्धारित करे। नीति निर्धारण का कार्य उच्च प्रबन्ध का होता है जिसे यह ध्यान रखना चाहिए कि नीतियाँ व्यावहारिक हों तथा वास्तविक तथ्यों पर आधारित हों। उच्च प्रबन्ध को संस्था या संगठन अथवा उपक्रम की आवश्यकताओं आंतरिक परिस्थितियों उपलब्ध साधनों भावी परिस्थितियों आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिए और इस बात के प्रति पूरी सावधानी रखनी चाहिए कि नीतियाँ निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हों तथा कर्मचारियों के कार्य के लिए अभिप्रेरित करने वाली हों।

अपवाद का सिद्धान्त जिसका प्रतिपादन एफ डब्ल्यू टेलर ने किया था यह बताता है कि प्रत्येक स्तर पर प्रबन्धक को अपनी अधिकार सीमा के अन्तर्गत आवश्यक निर्णय लेने के लिए तत्पर रहना चाहिए। केवल वे ही मामले उच्च प्रबन्धकों के लिए छोड़ जाने चाहिए जो उसकी समझ या अधिकार सीमा के बाहर हों। दूसरे शब्दों में केवल अपवादजनक मामले ही उच्च प्रबन्धकों के समक्ष रखे जाने चाहिए अन्यथा नियमित निष्पादित हो रहे कार्यों के बारे में उच्च प्रबन्धकों से अधिक पूछताछ नहीं करनी चाहिए। उच्च प्रबन्धकों को केवल समय समय पर इनके निष्पादन की सूचना दे देना ही पर्याप्त है।

प्रमापीकरण के सिद्धान्त की मान्यता है कि कोई भी कार्य शुरू करने से पहले उसके प्रमाप (Standards) निश्चित कर लेने चाहिए और तत्पश्चात् उन कार्यों का निष्पादन उन्हीं प्रमापों के आधार पर होना चाहिए। प्रमापीकरण के सिद्धान्त के अनुपालन से कर्मचारियों की कार्यकुशलता बढ़ती है और निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

नियन्त्रण के विस्तार के सिद्धान्त का प्रतिपादक ग्रेकुनाज (Gracunas) को माना जाता है जिसने बताया है कि योग्य से योग्य प्रबन्धक भी असंख्य व्यक्तियों के कार्यों का नियन्त्रण और निर्देशन नहीं कर सकता अतः अधीनस्थों की आवश्यकता है। नियन्त्रण के विस्तार का अभिप्राय अधीनस्थों की उस संख्या से है जिस पर एक प्रबन्धक नियन्त्रण रखता है। यदि किसी संस्थान या संगठन में तीन प्रबन्धक हैं और प्रत्येक प्रबन्धक अपनी योग्यतानुसार क्रमशः सात दस और पन्द्रह अधीनस्थों पर नियन्त्रण रख सकते हैं तो हम कहेंगे कि अमुक प्रबन्धक के नियन्त्रण का विस्तार क्षेत्र सात अधीनस्थ हैं अमुक नियन्त्रण के विस्तार का क्षेत्र 10 अधीनस्थ हैं और तीसरे का नियन्त्रण विस्तार 15 अधीनस्थ है। ग्रेकुनाज की मान्यता है कि प्रायः कोई भी प्रबन्धक अथवा अधिकारी प्रत्यक्ष रूप से पाँच और अधिक से अधिक 6 अधीनस्थों का ही उचित रूप में निरीक्षण नियन्त्रण कर सकता है इनसे अधिक का नहीं। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार एक अधिकारी तीन से लेकर छः अधीनस्थों

का भी निरीक्षण कर सकता है। इन अध्ययनों के आधार पर हम अधिकारी द्वारा निरीक्षण नियन्त्रण किए जाने वाले अधीनस्थों की औसत संख्या 4 या 5 मान सकते हैं।

प्रबन्ध विज्ञान की आवश्यकता
(Need of the Science of Management)

औद्योगिक एवं व्यावसायिक जगत् में हुए आमूलचूल परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप प्रबन्ध का एक विज्ञान के रूप में आविर्भाव हुआ है। विकसित राष्ट्रों जैसे अमरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान आदि में इस विज्ञान के रूप में स्थान प्राप्त हो गया है। विकासशील देशों में भी इस महत्त्व को स्वीकार किया जाने लगा है तथा इसका दिन प्रतिदिन विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग बढ़ता जा रहा है। प्रबन्ध विज्ञान की आवश्यकता निम्न कारणों से उत्पन्न हुई है—

1 तकनीकी परिवर्तन (Technological Changes —गत शताब्दी के मध्य से ही तकनीकी क्षेत्र में बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। उत्पादन के तरीकों तथा वस्तु की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ है। श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण, मशीनीकरण, स्वचालन, विवेकीकरण, आधुनिकीकरण आदि आधुनिक उत्पादन प्रणाली का अभिन्न अंग बन गए हैं। औद्योगिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप बढ़ने से विभिन्न उद्योग, करारोपण एवं निगम प्रबन्ध सम्बन्धी क्षेत्रों में कई नए कानून बन गए हैं। श्रमसंघ का विकास भी तेजी से हुआ है। हड़तालें, तालाबंदियाँ, सामूहिक सौदाकारी, घेराव, धीरे काम करना आदि हमारी औद्योगिक पद्धति का अभिन्न अंग बन गए हैं। इन सभी कार्यों हेतु हम औद्योगिक अभियन्ता, श्रम अधिकारी, लेखाकार, सांख्यिकीविद्, मनोविज्ञानविद् तथा अन्य व्यावसायिक कर्मचारियों (Professional Personnels) की आवश्यकता महसूस हुई। इन सभी कार्यों के समन्वय एवं नियन्त्रण हेतु प्रबन्धकों की आवश्यकता है क्योंकि इन सभी के विषय में प्रबन्ध विज्ञान का ज्ञान रखते हैं।

2 साधनों के अधिकतम उपयोग की आवश्यकता (Need for Maximum Utilization o Resources)—स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषता प्रतिस्पर्धा का विद्यमान होना है। प्रतिस्पर्धा में वही उद्योग विजयश्री प्राप्त कर सकता है जो न केवल अच्छे कच्चे माल ही खरीदे बल्कि अच्छी मशीनें व अच्छे प्रबन्धक भी रखे। इन सबके लिए एक सुयोग्य प्रबन्धक की आवश्यकता पड़ती है। साधन सीमित होते हैं उनमें वर्कर पर उपयोग होते हैं तथा आवश्यकताएँ अनन्त होती हैं। आवश्यकताओं की अधिकतम सन्तुष्टि हेतु साधनों का इस प्रकार से उपयोग किया जाए कि सस्ती कीमत पर अच्छी किस्म की वस्तु की पूर्ति की जा सके। साधनों का अधिकतम उपयोग, सस्ती एवं अच्छी वस्तुओं की पूर्ति, अच्छी मशीनरी व कच्चे माल का उपयोग आदि हेतु वैज्ञानिक ज्ञान एवं शोध का सहारा लेना आवश्यक है और इसमें प्रबन्ध विज्ञान की आवश्यकता होती है।

3 प्रबन्ध सिद्धान्तों की उपादेयता (Usefulness of Scientific Principles)—प्रब ध व्यवहार म विभिन्न प्रब ध सिद्धान्तो की उपयोगिता म स्वरूप सिद्ध हुई है। प्रब ध सिद्धान्तो क उपयोग से उपक्रमो म उत्पादन एव उत्पादकता म वृद्धि हुई है। उत्पादित वस्तुओ की उपयोगिता एव प्रकृति म महत्त्वपूर्ण परिवतन हुआ है। उद्योग एव व्यवसायो का विस्तार होन से समाज म रोजगार क अवसरो म वृद्धि हुई है। अत किसी भी उपक्रम के प्रब धक हेतु प्रब ध क सिद्धान्तो का उतना ही महत्त्व है जितना एक चिकित्सक हेतु सर्जरी के सिद्धान्तो का है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि व ही देश अधिक सम्पन्न एव उच्च जीवन स्तर प्राप्त करने म सफल हुए हैं जिन देशो म व्यावसायिक प्रब ध का ज्ञान एव दक्षता आदि का काफी विकास हो चुका है।

4 सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने हेतु (Accomplishing Social Responsibilities)—परम्परागत प्रब ध के अन्तगत प्रब ध एव स्वामित्व दोनो का पृथक् अस्तित्व नही था और प्रब धक का दायित्व स्वामित्व के हितो का रक्षा करना था लेकिन आधुनिक प्रब ध एक व्यवसाय (Profession) क रूप म जन्म ले चुका है तथा स्वामित्व एव प्रब ध दोनो अलग अलग हो गए हैं। प्रब धक का उत्तरदायित्व स्वामित्व के हितो की रक्षा करना ही नही है बल्कि इसके उत्तरदायित्व बाहरी जगत् से भी हैं। प्रब धक का दायित्व उपक्रम की स्थापना करने उसका सचालन करने और लाभ प्राप्त करने तक ही सीमित नही है बल्कि उस उपक्रम म काय करने वाले कमचारियो कच्चा माल प्रदान करन वालो प्रतियोगियो उपभोक्ताओ समाज एव राष्ट्र के प्रति भी अपने उत्तरदायित्वो को निभाना पडता है। आज विनियोजक (Investors) अपनी पूजी पर अधिक लाभाँश चाहते हैं। कमचारी ऊची मजदूरी काय की अच्छी दशाए और अन्य लाभ चाहते हैं। उपभोक्ता सस्ती एव अच्छी वस्तु चाहते हैं। समाज वस्तुओ का अधिक उत्पादन, रोजगार क अधिक अवसर समाज के उत्थान हेतु शिक्षण सस्थाओ अस्पताल धमशाला आदि हेतु प्रत्यक उपक्रम का सहयोग चाहती है तथा सरकार द्वारा लगाए गए करो का नियमित एव पूर्ण भुगतान चाहती है इस प्रकार आधुनिक प्रब ध की आवश्यकता इन विभिन्न एव परस्पर विरोधी हितो म सतुलन स्थापित करके अपने उत्तरदायित्वो को पूरा करने हेतु है। इन उत्तरदायित्वो का निभाने हेतु प्रब ध विज्ञान के सिद्धान्तो एव व्यवहारो की आवश्यकता होती है।

5 निर्बाध सचालन एव उद्देश्यो की पूर्ति हेतु (Uninterrupted Working and Attaining Objectives)—किसी भी व्यवसाय एव उद्योग क उद्देश्यो की प्राप्ति तथा इसके प्रभावपूर्ण सचालन हेतु प्रबन्ध विज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रबन्ध विज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करते हुए प्रो कुण्टज एव प्रो ओ डानेल ने लिखा है कि "शायद प्रब ध से अधिक महत्त्वपूर्ण मानवीय क्रियाओ का कोई अन्य क्षेत्र नही है।

प्रबन्ध का यह कार्य है कि वह स्थान के रूप में कार्य करने हेतु एक आन्तरिक वातावरण की स्थापना कर एवं बनाए रखे जिससे कि सामूहिक उद्देश्यों को प्रभावपूर्ण एवं कुशलता से प्राप्त किया जा सके।[1] प्रबन्धक भविष्य के बारे में अनुमान लगाता है योजना बनाता है सगठन का निर्माण करता है तथा विभिन्न मानवीय एवं भौतिक साधनों को जुटा कर काम में लगाता है। इसके पश्चात् इस क्रिया में निर्देशन समन्वय एवं नियन्त्रण आदि के रूप में भी अपना योगदान देता है। मूल्यांकन करके पता लगाता है कि उपक्रम के उद्देश्यों को किस सीमा तक पूरा किया जा चुका है।

प्रो हरबिसन एवं प्रो मायर्स ने प्रबन्ध के महत्त्व को तीन रूपों में बताया है—

1 प्रबन्ध को एक आर्थिक साधन (Economic Resource) के रूप में बताया है। जिस प्रकार भूमि श्रम व पूंजी उत्पादन के साधन हैं उसी प्रकार प्रबन्ध भी एक साधन है लेकिन यह सब साधनों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिन देशों में इस साधन की कमी पाती है उस देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास नहीं हो पाता है।

2 प्रबन्ध एक अधिकार सत्ता प्रणाली है (Management is a system of authority)। एक औद्योगिक समाज में प्रबन्ध के क्षेत्र में दो वर्ग पाए जाते हैं—एक प्रबन्धित (Managed) तथा दूसरे प्रबन्धक। अतः प्रबन्धकों को प्रबन्धित करने हेतु अधिकार सत्ता दी जानी चाहिए। इस अधिकार सत्ता के अभाव में प्रबन्धक एक निष्क्रिय साधन (Passive factor) बन जाता है तथा उद्योग अथवा व्यवसाय के लिए हुए उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकेगा। वास्तव में प्रबन्धक नियम बनाने तथा लागू करने वाला एक वर्ग है।

3 प्रबन्ध एक वर्ग या गण है (Management is a class or an elite)। एक औद्योगिक समाज में प्रबन्धक एक छोटा सा समूह या वर्ग होता है। प्रत्येक देश में इनका मान अधिकार सत्ता होती है। एक पूंजीवादी समाज में भी परिवर्तन हो रहा है तथा आधुनिक समय में पूंजीपतियों का स्थान प्रबन्धकों द्वारा लिया जा रहा है। यह एक व्यवसाय या पेशा (Profession) के रूप में विकसित हो गया है। अतः प्रबन्ध विज्ञान के माध्यम से किसी भी उद्योग अथवा व्यवसाय को निर्बाध रूप से चलाया जा सकता है तथा लिए हुए लक्ष्यों की पूर्ति की जा सकती है।

भारत में प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्त्व
(Need and Importance of Management in India)

हमारे देश में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से एक समाजवादी समाज की सरचना करने का बीड़ा हमारी सरकार ने उठाया है। देश का तीव्रगति से आर्थिक

1 Koontz & O'Donnell Principles of Management p 5

विकास करने के लिए आधारभूत एव भारी उद्योगों की स्थापना की गई है। कृषि क्षेत्र म भी हरित क्रान्ति के क्षेत्र म विस्तार करने हेतु गहन कृषि कार्यक्रम (Intensive Agricultural Programmes) अपनाए जा रहे है। इन सभी कार्यों की सफलता तथा उद्देश्यों की प्राप्ति इनके सफल प्रबन्ध पर निर्भर करती है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु देश के साधनों का अधिकतम उपयोग एव वस्तुओं का अधिक उत्पादन करना नितान्त आवश्यक है। इन सबों हेतु कुशल एव बुद्धिमान प्रबन्धकों की आवश्यकता है। प्रो० ए० एन० सरीन के अनुसार यह अब स्वीकार किया जाने लगा है कि विकासशील देशों म मुख्य अन्तर तकनीकी न होकर प्रबन्धकीय (Managerial) है। विकसित तकनीकी का आयात किया जा सकता है लेकिन प्रबन्धकीय योग्यता हमारे समाज की आवश्यकताओं एव स्वभाव के अनुकूल देश म ही तैयार करनी होगी।[1]

यह अनुमान लगाया गया है कि इग्लैण्ड म प्रबन्धक कर्मचारी अनुपात 1 2 अमेरिका म 1 17 जबकि हमारे देश म यह अनुपात 1 100 है। अतः भारत म प्रबन्धकों की भारी कमी है। फरवरी 1965 म इन्स्टीट्यूट ऑफ अलाइड मैनपावर रिसर्च (Institute of Allied Manpower Research) द्वारा लगाए गए अनुमानों के अनुसार सन् 1976 तक 2 5 लाख प्रबन्धकों की आवश्यकता होगी। पाचवी पचवर्षीय योजना म हमे 1 46 लाख प्रबन्धकों की आवश्यकता होगी। एक अन्य अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष हम 80 हजार प्रबन्धकों की आवश्यकता होती है जबकि प्रतिवर्ष 4600 प्रबन्धक ही तैयार किए जाते हैं। इस अन्तर को देखते हुए हम दो कार्यों की आवश्यकता होगी—

1 हम सरकारी प्रशासक जिनका सम्बन्ध कानून एव आदेशों की परिपालना करवाना है उन्हें विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों के प्रशासन हेतु दक्षता प्रदान करने हेतु प्रशिक्षण देना होगा।

2 दूसरा काम हमे परम्परागत प्रबन्धकों जो कि पारिवारिक स्वामित्व वाले व्यवसायों म पाए जाते हैं के स्थान पर व्यवसायिक प्रबन्धकों (Professional Managers) को लाना होगा और साथ ही प्रशासन हेतु लगाए गए प्रशासक जिन्हें कि सरकारी उद्योगों म प्रबन्धक नियुक्त कर दिया है उनके स्थान पर भी व्यवसायिक प्रबन्धकों को नियुक्त करना है।

हमारे देश मे उद्योग हेतु प्रबन्धकों की पूर्ति निम्न स्रोतों से की जाती है —

1 प्रबन्ध म भर्ती से पूर्व प्रशिक्षण (*Pre recruitment Training in Management*)—इस प्रकार का प्रशिक्षण विभिन्न विश्वविद्यालयों के व्यावसायिक प्रशासन विभागों द्वारा स्नातकोत्तरीय पाठ्यक्रम के रूप म दिया जाता है। अहमदाबाद

1-2 *A N Sarin* Management Development in India (The Illustrated Weekly of India Nov 25 1971)

एव कलकत्ता का प्रब धकीय सस्थाम्रो तथा सेन्ट जवियर श्रम सम्ब ध सस्थान कलकत्ता द्वारा भी इस प्रकार का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के रूप म चलाया जाता है।

2 कायरत प्रबन्धको का प्रशिक्षण एव विकास (Training & Development of Practising Managers)—उच्च तथा मध्यस्तरीय कायरत प्रब धको हेतु इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह सुविधा हैदराबाद के एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज इण्डिया कुछ प्रब धकीय सस्थानो द्वारा प्रदान की जाती है। इसके पूरक रूप म राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council) अखिल भारतीय प्रब धक मच एव प्रा शिक प्रबन्धक सघो द्वारा भी यह सु विधा प्रदान की जाती है।

3 सुपरवाइजरी स्टाफ का प्रशिक्षण एव विकास (Training & Development of Supervi ory Staff —इस दिशा म नेशनल इ स्टीटयूट आफ टेक्नीकल एज्यूकेशन इन इण्डिया जसी सस्थाए म वपूण योगदान देकर सुपरवाइजरी स्तर के प्रब धको की प्रशिक्षण सुविधाए प्रदान कर रही हैं।

4 श्रमसघ नेताओ का प्रशिक्षण (Training of Trade Union Lead rs — इस दिशा म कुछ प्रब धकीय शिक्षण सस्थाम्रो तथा एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कालेज आफ इण्डिया हैदराबाद द्वारा काम किया गया है। कुछ श्रम सघो द्वारा भी इस ओर अपना योगदान दिया गया है।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (N P C) 1958 द्वारा भी प्रब ध के विभिन्न स्तरो के लिए समय समय पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो का आयोजन किया जाता है। हैदराबाद के कालेज द्वारा भी विभिन्न स्तरीय प्रब धको के लिए विभिन्न विषयो म प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो की सुविधा प्रदान की जाती है।

प्रो सुराज ने आगे लिखा है कि औद्योगिक क्षेत्र के एक बड भाग को विभिन्न कार्यों के सम्पादन हेतु प्रब धकीय विकास एव प्रशिक्षण को आवश्यक रूप से स्वीकार करना है। इस क्षेत्र हेतु किसी प्रकार के शक्षणिक कार्यक्रम की आवश्यकता है जिससे यह प्रशिक्षण को एक विनियोग समझ सकें।[1]

श्री तरनेजा ने प्रब ध एव आर्थिक विकास के सम्ब ध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि इस प्रकार प्रब धकीय कुशलता की ऊ ची मात्रा से आर्थिक वृद्धि की क्रिया तीव्र होगी।[2]

1 *A N S n* Managem n Development i Ind a (Illust at d W ekly of Ind a Nov 25 1971)

2 Thus the highe degre of ma ager al sp r t the fast r w ll b th pr cess of eco om c g owth
—*R S T n j* M nagement the Tasks & Ch lleng s (Econom c T me Feb 12 1971)

श्री शराफ ने प्रबन्धक को एक व्यवसाय (Pr f ssion) के रूप में स्वीकार करते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डाला है कि व एक व्यवसाय या पेशा है जो कि मनुष्य मुद्रा और मानव जनित साधनों के अधिकतम उपयोग हेतु समान रूप से उत्तरदायी है। एक अंग के रूप में यह व्यक्तियों का सम्मिलित करता है जो कि व्यावसायिक सफलताओं हेतु अभिप्रेरित किए जाते हैं और जिन्होंने व्यावसायिक नीति सम्बन्धी संहिता (Code of Professional Ethics) स्वीकार करली है। व निम्न संगठन से सम्बन्धित हैं उसकी दीर्घकालीन वृद्धि कल्याण एवं सम्पन्नता में उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।[1]

श्री डान्टन ने व्यवसाय की आधुनिक समय में सफलता की महत्त्वपूर्ण कमी के विषय में लिखा है कि सरकारी नियन्त्रण एवं राष्ट्रीय करण की बढ़ती हुई मात्रा में हमारे व्यवसायपतियों ने लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों को भी महसूस किया है। प्रबन्धकों ने अन्तिम रूप में स्वीकार कर लिया है कि व्यवसाय की सफलता लोगों के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है जो कि सुविधा की दृष्टि से समरूप वर्गों में बांटे जा सकते हैं—(1) अंशधारी एवं विनियोक्ता (2) कर्मचारी (3) ग्राहक (4) समाज जिसमें समस्त उपक्रम चलता है और (5) सरकार।[2]

भारतीय प्रबन्ध को कई महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं। श्री रंगनेकर ने लिखा है कि भारतीय प्रबन्ध कई अन्तरालों को पाटने के लिए प्रयत्नशील है। ये अन्तर हैं—तकनीकी अन्तर विदेशों से तकनीकों के आयात द्वारा कुशलता अन्तर नवीन तकनीकी में प्रबन्धकों एवं अन्य स्टाफ को प्रशिक्षण एवं विकास द्वारा पाटने का प्रयास किया जा रहा है। यह साधन अन्तर (कच्चे माल शक्ति पूर्ति ईंधन व जल की निरन्तर कमी) को पाटने का प्रयास भी कर रहा है।[3]

बिना प्रबन्ध के विकास के हमारे देश की द्रुत गति से विकास सम्भव नहीं होगा। प्रबन्ध के विकास में महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए श्री सेठ ने कहा है कि भारतीय साधनों का प्रबन्ध मानव व माल का प्रबन्ध और विज्ञान एवं तकनीकी साधनों के विकास में ही हमारी भावी सम्पन्नता का रहस्य विद्यमान है। आज

1 *M n o R Shoff* Impact of Govt Control on Management (Econ m T mes Feb 12 1971)

2 *R S Dav* Cha g g Soc al Env onm nt & M nagement (Eco om c Times Feb 12 1971)

3 *H S Rangnekar* Nar owi g the Creditab l ty Gap in I dia (Ind an Manag ment Janu y 1975)

हम 580 मिलियन नाग है। सन् 2000 ई म 960 मिलियन के लगभग हो जाएगा।[1]

भारतीय प्रब ध की प्रगति एव किस्म का मूल्याकन करने हेतु हम अपने ध्यान विशेष बकाम पर ध्यान देना होगा। हमारे देश म औद्योगिक क्षेत्र का अधिकाश भाग सावजनिक क्षेत्र के अ तगत आता है। लोहा एव इस्पात भारी इजीनियरिंग जनोपयोगी सवाए बक तथा बीमा आदि उद्योग सावजनिक क्षेत्र के अन्तगत आते हैं और सरकार सबस बड़ नियोक्ता क रूप म काय कर र ी है। इन उद्योगो मे प्रब ध का मूल्याकन करने हेतु हम उद्योगो के लाभ की एक कसौटी मानना होगा। लेकिन इस आधार पर हम देखेंगे कि सभी सावजनिक उद्योग बुरी तरह असफल हुए हैं। स असफलता के कारण पर प्रकाश डालते हुए आ मानू मसानी ने लिखा ह कि इस असफलता क कई कारण हैं। इनम स दो का विवरण देना आवश्यक है यद्यपि अन्य कारण भी हैं जो कि सभी सरकारी व्यवसायो और औद्योगिक उपक्रमो म विद्यमान हैं। प्रथम वेतनो पर रोक अथवा सीमा द्वितीय सरकारी उद्योगो का ार प्रब धको द्वारा प्रब ध करना।

वेतनो की सीमाबन्दी स काय करने की प्रेरणा पर पाबन्दी लगती है। इससे अकायकुशलता का बढ़ावा मिलता है। अकायकुशलता स उद्योग का लाभ प्रभावित होता है। लाभ कम होन स फिर वेतन पर रोक या सीमा लगा दी जाती है। इसके परिणामस्वरूप प्रब धको की किस्म पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। हैदराबाद के सावजनिक उपक्रम सस्थान के एक अध्ययन क अनुसार एक निजी क्षेत्र के उद्योग क मुख्य कायकारी अथवा पूर्णकालीन सचालक को सभी लाभो सहित प्रतिमाह 7500 रु मिलते हैं जबकि सावजनिक उद्योगो म अधिकतम पारिश्रमिक की सीमा 4000 रु प्रति माह है।

दूसरी विशेषता सावजनिक उद्योगो म गर प्रब धको (Non Managers) द्वारा प्रब ध करना है। कई उद्योगो का प्रबन्ध सिविल सर्विस द्वारा किया जाता है। उन्हे औद्योगिक प्रब ध का अनुभव न होने पर भी वे उस उद्योग को एक सरकारी विभाग की भाति चलाते हैं। उसका दिमाग सरकारी क्षेत्र मे उनकी पदोन्नति की ओर लगा रहता है और व पूर्ण निष्ठा व लगन के साथ काय न ीं करते हैं। सन् 1972-73 म हमारे देश क विभिन्न प्रान्तो म प्रशासको एव तकनीकी विशेषज्ञो (Administrators V/s Technocrats) के बीच सघर्ष भी चला था

1 *S C Seth* Management 2000 A D—An Indian S n r o (Indian Management M y 1975)

2 *M no Masan* I dian Management has come of Ag (Illustrat d Weekly I Ind a Nov 2 1971)

और इसके परिणामस्वरूप कई सस्थानो मे मुख्य अधिकारी उस सस्थान के काय को जानने वाला विशेषज्ञ नियुक्त किया जाने लगा है। इसी विचार का नरर प्रा के एन राव न अपना म त्री पद स याग पत्र सरकार को सौंप दिया था।

हमारे देश म प्रब ध श्रम का अनुपात बहुत कम है। इस अनुपात म वृद्धि करनी होगा निमय कि विभिन्न सस्था तथा उद्योगो म व्यावसायिक प्रबन्धको की नियुक्तिया करके साधनो का अधिकतम उपयोग किया जा सके। इस ओर हमारे देश म विभिन्न विश्वविद्यालयो सस्थाना सस्थाओ आदि द्वारा चलाए जा रहे पाठ्यक्रम एक सराहनीय कदम है लेकिन फिर भी प्रब धको की पूर्ति इनकी माँग की तुलना म कम है। इस ओर सरकार को पूर्ण ध्यान देना होगा क्योंकि वतमान समय मे सार्वजनिक क्षेत्र क बढते हुए महत्व तथा सरकार क एक बड नियोजक के रूप म आ जाने स देश की तस्वीर बदली जा रही है इस दायित्व को सरकार द्वारा निभाना होगा।

विपणन उत्पादन इ जीनियरिंग कमचारी एव वित्त आदि क्षेत्रो म प्रब धकीय तकनीको का पूर्णरूपेण उपयोग करके लाभ उठाया जा रहा है। फिर भी भारतीय प्रब ध को देशी उत्पादन मे वद्धि करने हेतु अनुसधान एव विकास (Res arch & Development) पर भी ध्यान देना होगा। भारत म इस पर बहुत ही कम राशि का यय किया जा रहा है जबकि औद्योगिक विकास के लिए ये दोनो अ यन्त आवश्यक हैं।

भारतीय प्रब ध को सार्वजनिक सम्बन्धो (Public Relations) पर भी ध्यान देना होगा। प्रब ध की समाज म क्या वक्तव्य परिकल्पना (Image) है इस पर भी प्रब ध की सफलता निभर करती है। प्रब धक की सफलता इसी म निहित है कि किस सीमा तक वह अपने सामाजिक दायित्वो को निभाता है। कमचारियो को ऊ चा वेतन तथा अच्छी काय दशाए शेयरधारियो का उचित लाभाश उपभोक्ताओ को उचित कीमत पर अच्छी वस्तु समाज को उचित अशदान (अस्पताल शिक्षण सस्थाए रोजगार आदि) एव सरकार को उचित सहयोग प्रदान करना तथा उचित करो का भुगतान करना आदि रूपो म अपने दायित्वो को पूरा करके समाज म अपना ऊ चा स्थान प्राप्त कर सकता है।

उपरोक्त बातो से इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि भारत म प्रबन्ध की आवश्यकता एव महत्व निम्न रूपो म स्वीकार करना होगा—

(1) देश की विभिन्न पचवर्षीय योजनाओ की सफलता हेतु
(2) आर्थिक विकास द्रुत गति से करने हेतु
(3) देश मे एक प्रतिस्पर्धात्मक औद्योगिक क्षेत्र का विकास करने हेतु
(4) देश के साधनो का अधिकतम उपयोग करने हेतु
(5) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार म विदेशो प्रतिस्पर्द्धा करने हेतु

(6) उत्पादन एव उत्पादकता म वृद्धि करन हेतु
(7) स कारी तन्त्र स अकुशलता एव अकमण्यता को दूर करन हेतु
(8) प्रबन्ध त क सामाजिक दायित्वो की पूर्ति हेतु
(9) देश म व्याप्त भ्रष्टाचार लालफीताशाही आदि बुराइया को दूर करने हेतु
(10) परम्परागत प्रब ध क स्थान पर व्यावसायिक प्रब ध को प्रो साहन।

इन आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु हमारे देश म प्रबन्ध शिक्षा का विस्तार एव प्रचार करना होगा। इस क्षेत्र म हमार देश क विभिन्न विश्वविद्यालयो द्वारा एम बी ए क पाठ्यक्रम तथा व्यावसायिक प्रशासन म स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी चलाए जा रह है। आजादी क पूर्व इस क्षेत्र म विभिन्न संस्थाओ तथा सगठनो की बहुत कमी थी। लकिन आजादी क पश्चात् विभिन्न राज्य सरकारो तथा केन्द्रीय सरकार न इस दिशा म सराहनीय काय किया ह। प्रबन्ध शिक्षा क लिए अहमदाबाद बम्बई कलकत्ता दिल्ली जयपुर बगलौर हैदराबाद विशाखापत्तनम मद्रास आदि स्थानो पर कई शिक्षण स थाए चल रही है जिनम प्रतिवष सकडो प्रबन्धक तयार करके निकाल जात हैं। कई प्रबन्धक सघो द्वारा तथा निजी क्षेत्र क उद्यमियो द्वारा भी इस क्षेत्र म सराहनीय काय किया जा रहा है।

सरकार भी एक बड नियोजक क रूप म देश क आर्थिक विकास म योगदान दे रही है। अत सावजनिक क्षेत्र क उद्योगो के प्रब ध हेतु भी प्रशिक्षण एव विकास कायक्रम बड पमान पर चलाए जाने चाहिए।

प्रबन्ध की सीमाए
(Limitations of Management)

प्रबन्ध की आवश्यकता एव महत्व क विषय म अध्ययन करन क पश्चात् हम इस निष्कष पर पहुचते ह कि इसके माध्यम स सामूहिक रूप स किए जान वाले कार्यों का प्रभावपूर्ण व कुशलतापूवक करक व्यवसाय एव उद्योग के लक्ष्यो का प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी हम यह नही कह सकत कि प्रबन्ध किसी भी उद्योग एव व्यवसाय की विभिन्न समस्याओ हेतु एक रामबाण औषधि है। इस विषय की भी अपनी सीमाएँ हैं। य सीमाय निम्न हैं—

1 प्रबन्ध विज्ञान भौतिक एव रासायनिक विज्ञानो की भाति एक विशुद्ध एव निश्चित विज्ञान नही है। यह एक सामाजिक विज्ञान है जिसक अ तगत मानवीय व्यवहार का अध्ययन किया जाता है, इसे किसी भी एक सामान्य तथ्य के आधार पर सही निष्कष नही निकाला जा सकता है।

2 प्रब ध स्वाथ एव मौद्रिक प्रतिस्पर्धा स प्रभावित होता ह। प्रब धक मानवीय साधन है तथा किसी भी प्रबन्धक को दूसरे पूजीपति या उद्योगपति द्वारा अधिक मौद्रिक पारिश्रमिक एव अन्य सुविधाए देन पर वह एक उद्योग को छोडकर

उस उद्योग में चला जाएगा। इससे प्रबन्धक पर स्वामी हावी रहते हैं और प्रबन्धक अपनी स्वतन्त्र नीतियों को प्रबन्ध में लाने में असमर्थ रहते हैं।

3 विभिन्न देशों के आर्थिक विकास का स्तर तथा सभ्यता व संस्कृति भिन्न होने के कारण प्रबन्ध के सिद्धान्तों को समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। निश्चित सिद्धान्तों के अभाव में सामान्य रूप से निकाले गए निष्कर्षों को सभी देशों में समान रूप से लागू करना असम्भव होता है।

4 प्रबन्ध में पार्किन्सन के नियम (Law of Parkinson) का लागू होना। इस नियम के अनुसार किसी भी संस्था या उद्योग में कार्यरत अधिकारी कार्यभार कम न रहने पर भी कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करवाते रहते हैं।

प्रो पार्किन्सन के अनुसार इस प्रकार की प्रवृत्ति के दो कारण हैं—

(i) एक अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करना चाहता है। प्रत्येक विभाग या कार्यालय में यह शिकायत रहती है कि उसके अधीनस्थों की संख्या कम है।

(ii) अधिकारीगण कार्यभार को अधिकता दिखाने हेतु एक दूसरे के लिए परस्पर कार्य का निर्माण करते रहते हैं।

इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों की संख्या बढ़ती जाती है और लालफीताशाही को प्रोत्साहन मिलता है। कार्यक्षमता में गिरावट तथा कार्य पूरा करने में देरी उत्पन्न होती है।

5 प्रबन्ध की जटिलताओं में वृद्धि तथा व्यवसाय के वातावरण में परिवर्तन के परिणामस्वरूप प्रबन्ध के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों में परिवर्तन आए हैं। विभिन्न समाज विज्ञानों जैसे समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि में कई नए परिवर्तनों तथा प्रयोगों में प्रबन्ध विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रभावित किया है। इस प्रकार बदलती हुई परिस्थितियों में प्रबन्ध के सिद्धान्तों में समय समय परिवर्तन होने से उन्हें पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि ओलीवर शेल्डन (Oliver Sheldon) ने सही ही कहा है कि "जहाँ तक मानव से सम्बन्ध है, प्रबन्ध विज्ञान के सिद्धान्त अपर्याप्त हो सकते हैं।"

प्रबन्ध के स्तर
(Levels of Management)

विभिन्न विद्वानों एवं लेखकों ने प्रबन्ध के स्तर को विभिन्न भागों में विभाजित किया है। एक ओर प्रबन्ध में उच्च प्रबन्ध, निम्न उच्च प्रबन्ध, मध्यम प्रबन्ध, फोरमैन एवं कार्यकारी दल है। दूसरी ओर प्रबन्ध को दो भागों में बाँटा गया है—प्रथम प्रशासनिक प्रबन्ध (Administrative Management) एवं द्वितीय कार्यकारी प्रबन्ध (Operating Management)। इन्हें उच्चस्तरीय प्रबन्ध एवं निम्नस्तरीय प्रबन्ध भी कहा जाता है। उच्चस्तरीय प्रबन्ध (Top Management) को प्राय

प्रशासनिक प्रबन्ध (Administrative Management) एवं निम्नस्तरीय प्रबन्ध (Lower level of Mana em nt) को कार्यकारी प्रबन्ध Operating Management) कहा जाता है। इन्हें क्रमश प्रबन्ध के सोचने सम्बन्धी कार्य (Thinking Functions of Managem nt) तथा करने सम्बन्धी कार्य (Doing Functions of Management) भी कहा जाता है।

सामान्यतया प्रबंध के स्तरों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—

(1) उच्च प्रबन्ध (Top Mana_ement)

(2) मध्यम प्रबन्ध (Middle Mana ement)

(3) निम्न प्रबन्ध (Lower Mana_ement)

प्रबन्ध के इन स्तरों को निम्न चार्ट में देखा जा सकता है—

उच्च प्रबन्ध (Top Management)
↓

प्रबंधक (Mana er)	प्रबन्धक सचालक (Mana ing Director)	प्रबंधक अभिकर्ता (Mana_ing Agent)	सचिव एवं कोषाध्यक्ष (Secretaries & Treasurers)	उप महाप्रबंधक (Dy General Manager)

मध्यम प्रबन्धक (Middle Man gement)
↓

विभागाध्यक्ष (Head of Departments)	अधीक्षक (Superintendents)

निम्न प्रबन्ध (Lower Management)
↓

फोरमैन (Foremen)	प्रथम रेखा पर्यवेक्षक (First Line Sup rvisors)
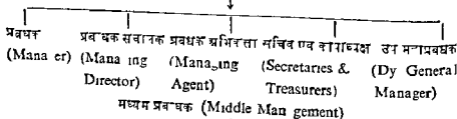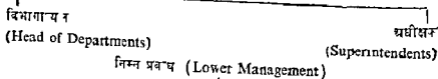
1 उच्च प्रबंध (Top Management)—यह संस्थान का सर्वोच्च स्तर होता है। एक बड़े संस्थान में सामान्यतया प्रबंध संचालक मण्डल (Board of Directors) संस्थान सम्बन्धी उद्देश्यों एवं नीतियों को तैयार करते हैं लेकिन प्रबंध का वास्तविक कार्य प्रबन्ध-संचालक अथवा महाप्रबन्धक द्वारा किया जाता है। इसे उच्च प्रबन्ध में सम्मिलित किया जाता है। इसे मुख्य कार्यकारी (Chief Executive) भी कहा जाता है। यह कार्य को करने सम्बन्धी आदेश एवं हिदायतें देता है। यह संचालक मण्डल के प्रति जवाब देने के लिए दायी है। यह एक ओर सचालक मण्डल तथा दूसरी ओर शेष संगठन के बीच एक कड़ी का कार्य करने वाला अधिकारी होता है। मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में नियोजन संगठन निर्देशन अभिप्रेरणा

समन्वय एवं नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य भी करता है। इसकी सहायता हेतु उप महाप्रबन्धक अथवा उपाध्यक्ष भी होते हैं।

2 मध्यम प्रबन्ध (Middle Management)—इसके अन्तर्गत विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्ष एवं अधीक्षक आते हैं। ये मुख्य कार्यकारी की हिदायतें प्राप्त करते हैं तथा उनके अधीनस्थ पर्यवेक्षकों को कार्य करने में निर्देशन एवं मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। इनका मुख्य कार्य इनके समान स्तर, निम्न स्तर एवं उच्च स्तर पर कार्य करने वालों की क्रियाओं का समन्वय करना होता है।

3 निम्न प्रबन्ध (Lower Management)—इसमें फोरमैन एवं पर्यवेक्षकों को शामिल किया जाता है। इनका सम्बन्ध साधारण श्रमिकों से रहता है। यह स्तर श्रमिकों एवं मध्यम प्रबन्ध के बीच एक कड़ी का कार्य करता है। ये कार्य व्यक्तियों एवं भौतिक वस्तुओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं। ये वास्तव में कार्यकर्ता प्रबन्धक होते हैं जिनका कार्य व्यापक होता है। श्रमिक आदेशों, नीतियों, स्तरों, हिदायतों, मार्गदर्शन, प्रोत्साहन, पदोन्नति एवं उच्च वेतन प्राप्ति के लिए पर्यवेक्षकों पर निर्भर करते हैं। पर्यवेक्षक की सफलता श्रमिकों के कार्य निष्पादन, उनके सन्तोष एवं सहयोग पर निर्भर करती है। पर्यवेक्षक को श्रमिकों का मनोबल ऊँचा रखना चाहिए।

उपर्युक्त प्रबन्ध के स्तर एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। किसी भी संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु इन तीनों ही प्रबन्धकीय स्तरों का होना आवश्यक है।

प्रबन्ध का प्रशासन एवं संगठन से अन्तर
(Management is Distinguished from Administration and Organization)

प्रबन्ध क्षेत्र में विभिन्न विद्वानों एवं लेखकों ने एक ही विचारधारा को विभिन्न रूपों में प्रयोग किया है। इन विभिन्न शब्दों का अर्थ अलग अलग लगाया जाता है। ऐसे तीन शब्द हैं—प्रबन्ध, प्रशासन एवं संगठन। जहाँ तक संगठन शब्द का सम्बन्ध है इसका अर्थ किसी भी संस्थान अथवा उद्योग की उस संरचना से है कि जिसके अन्तर्गत दिए हुए उद्देश्यों की पूर्ति हेतु व्यक्तियों, सामान, यन्त्र एवं औजारों के सम्बन्धों को स्थापित किया जाता है।

जहाँ तक प्रबन्ध एवं प्रशासन शब्दों के अर्थ का सम्बन्ध है—विभिन्न प्रबन्ध विशेषज्ञों ने इनकी अलग अलग शब्दों में परिभाषा दी है। सरकारी क्षेत्र एवं व्यावसायिक क्षेत्र दोनों में ही इनका अलग अलग अर्थ लगाया जाता है। सरकारी संस्थानों में प्रशासन को व्यापक माना जाता है जबकि किसी भी व्यवसाय या उद्योग में प्रबन्ध के अन्तर्गत सभी प्रबन्धों अथवा प्रबन्धकीय प्रक्रिया को शामिल किया जाता है तथा प्रशासन के अन्तर्गत उच्चस्तरीय प्रबन्ध की समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। उदाहरणार्थ एक उद्योग में एक फोरमैन को एक प्रशासक कभी नहीं माना

जाता है यद्यपि उसक रोजमर्रा का एक छोटा भाग प्रशासन स सम्ब ध रखता है। इस प्रकार प्रब ध एव प्रशासन क सम्ब ध म सकुचित व्यापक भिन्न एव पर्यायवाची विचार प्रस्तुत किए गए है। कुछ विद्वान् प्रब ध और प्रशासन को पर्यायवाची मानते हैं जबकि कुछ प्रब ध को प्रशासन स व्यापक तथा अन्य प्रशासन का प्रब ध से व्यापक मानते है। फिर भी प्रब ध एव प्रशासन क सम्ब ध म पायी जाने वाली विचारधारा को मोटे तौर पर अमेरिकी विचारधारा तथा अग्रजी विचारधारा—दो प्रमुख विचारधाराओं म विभाजित किया जा सकता है।

अमरिकी विचारधारा

(American School of Thought)

इस विचारधारा क अनुसार प्रशासन शुद्ध प्रब ध की तुलना म कहीं अधिक व्यापक है तथा प्रशासन म प्रब ध सम्मिलित होता है। प्रशासन एक उच्चस्तरीय काम है जिसक अन्तगत एक व्यावसायिक उपक्रम की मूल नीतियों का निर्धारण लक्ष्यों एव उद्देश्यों की स्थापना करना तथा उन सीमाओं का निर्धारण किया जाता है जिनम प्रब ध को काय करना होता है। दूसरी ओर प्रब ध निम्नस्तरीय काय करता है जो कि प्रशासन द्वारा निर्धारित एव निर्देशित नीतियों क क्रियान्वयन म सम्ब ध रखता है। इस प्रकार प्रशासन विचारात्मक काय (Thinking function) है जबकि प्रब ध का सम्ब ध काय करन (Doing function) से है। इस विचारधारा क समथकों म प्रो स्प्रीगल शुल्ज शल्डन मिलवार्ड आदि प्रमुख हैं।

प्रो स्प्रीगल क अनुसार प्रशासन उपक्रम का वह काय है जिसका समस्त नीतियों एव मुख्य उद्देश्यों के निर्धारण स सम्ब ध है। प्रशासन उद्यम के सामान्य उद्देश्यों का निश्चिन करता है इसकी नीतियों का स्थापना करता है कार्यविधि की सामान्य योजना तयार करना है।[1]

इसी तरह प्रो स्प्रीगल न प्रब ध की परिभाषा देते हुए लिखा है कि प्रब ध एक उद्यम का वह काय है जिसका सम्ब ध उद्यम क उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न क्रियाओं का निर्देशन एव नियन्त्रण करना होता है। प्रब ध वास्तव म कार्यकारी काय है।

इस प्रकार प्रशासन उद्देश्यों एव मुख्य कार्यक्रमों का निर्धारण करता है जबकि काय करने का सम्ब ध प्रशासन स होता है।[2] इस प्रो स्प्रीगल ने निम्न चित्र म समझाया है—

1 2 W R Spiegel Industrial Management p 109
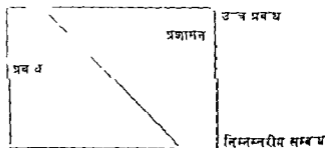
इस प्रकार प्रशासन का काय निर्धारणात्मक काय (Determinative function) तथा प्रबन्ध का काय कार्यकारी काय (Executive function) म सम्बन्ध रखते हैं जिन उपरान्त चित्र म दर्शाया जा सकता है।

श्री शुल्ज (J N S hulze) के अनुसार प्रशासन प्रबन्ध एव सगठन की निम्न परिभाषाए दी गयी हैं—

'प्रशासन वह शक्ति है जिसके द्वारा सगठन एवं प्रबन्ध के अस्तित्व हेतु उद्देश्यों का निर्धारण करता है तथा जिनके अन्तगत काय करना है व नीतियां बनाता है। प्रबन्ध वह शक्ति है जिसके माध्यम स पूव सगठन की पूव निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु नेतृत्व मार्गदशन एव निर्देशन दिए जाते हैं। सगठन पारस्परिक उद्देश्यों को पूरा करने हेतु विभिन्न आवश्यक सामग्री साधनों सामग्री यन्त्र और काय स्थान आदि का सुव्यवस्थित समायोजन मात्र है।

शा ल्डन (Oli er Sh ldon) के अनुसार प्रशासन उद्योग म वह काय है जिसका सम्बन्ध निगम नीति का निर्धारण वित्त उत्पादन एव वितरण का समन्वय सगठन का ढांचा निश्चित करना एव अन्तिम रूप स कार्यकारी नियन्त्रण करने से है जबकि प्रबन्ध का सम्बन्ध नीति का क्रियान्वयन तथा सगठन का निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु काय म लगाने से है। सगठन एक प्रभावपूर्ण सगठन का निर्माण करता है सम्पूर्ण निर्देशन का रूप मत करता है। इस प्रकार प्रशासन सगठन को निर्धारित करता है जबकि प्रबन्ध उपयोग करता है।[1]

आग्ल/अंग्रेजी विचारधारा

(En li h School of Thou ht)

इसी का विचारधारा के ठीक विपरीत आंग्ल विचारधारा के अनुसार प्रबन्ध का प्रशासन म शामिल माना गया है तथा प्रशासन एव सगठन को प्रबन्ध को आवश्यक अंग माना गया है। इस विचारधारा के आधार पर आंग्ल प्रबन्ध विचारकों ने प्रबन्ध-कार्य को दो भागों म विभाजित कर दिया है—एक है प्रशासनिक प्रबन्ध (Administrative Management) जिसे प्रशासन कहा जाता है वह सम्बन्ध लिए गए काय के क्रियान्वयन हेतु नीतियों का निर्धारण करना नीतियों म समय-समय पर परिवतन करना योजनाए तैयार करना तथा नियन्त्रण के स्तरों का निर्धारण करके वास्तविक कार्य से तुलना करना होता है। दूसरा है क्रियात्मक प्रबन्ध (Operative Management)—इसका सम्बन्ध मानवीय एव भौतिक साधनों का इस प्रकार सगठन के अन्तर्गत उपयोग करना है जिसस कि निर्धारित लक्ष्यों को पूरा किया जा सके। इस प्रकार प्रबन्ध नीति निर्धारण करने का काय करता है जबकि प्रशासन इनके क्रियान्वयन का काय करता है। इस विचारधारा के समर्थकों

1 *Sh ldon* Phil sophy of Management p 3_

म प्रो ब्रच का नाम उ नेख य है। इ होने प्रबन्ध एव प्रशासन की निम्न शब्दो म व्याख्या की है—

प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है जो कि एक प्रतिष्ठान की क्रियाओ के प्रभावी नियोजन एव नियमन क उत्तरदायित्व का समावेश करती है।

प्रशासन उद्योग का वह काय है जो कि पद्धतियो के निर्धारण एव सचालन से सम्ब ध रखता है जिसक द्वारा क यक्रमो का निर्धारण किया जाता है क्रियाओ की प्रगति का नियमन किया जाता है और उनका प्रगति को योजनाओ क सदभ म जाचा जाता है।[1]

इस प्रकार प्रो ब्रच क अनुसार उच्च प्रबन्ध नीतियो का निर्माण करता है नियामक प्रबन्ध नियोजन समन्वय एव नियन्त्रण सम्बन्धी काय करता है जबकि निम्नस्तरीय प्रबन्ध का काय निरीक्षण करना एव कार्यविधियो सम्बन्धी निर्णय लेना होता है। इस विचारधारा क अन्य समथको म ओ ए हाल एव जी ज सी स्नियन प्रमुख ह।

प्रो किम्बाल एव प्रो किम्बाल प्रबन्ध एव प्रशासन तथा सगठन म विभेद करना उचित नहीं समझते हैं क्योकि प्रबन्ध एव प्रशासन दोनो पर्यायवाची हैं। फिर भी इनके द्वारा प्रबन्ध प्रशासन एव सगठन की परिभाषाए दी गई हैं जो निम्न प्रकार स हैं—

प्रबन्ध म सभी कत्तव्य एव काय सम्मिलित है जो कि एक उद्यम की प्ररणा वित्त नीतियो के निर्धारण समस्त आवश्यक औजारो सामान्य सगठन की रूपरेखा तयार करना तथा प्रमुख अधिकारियो का चयन करने स सम्बन्ध रखता है।

प्रशासन अथवा निर्देशन म वे सभी काय एव क्रियाए सम्मिलित हैं जिनका सम्ब ध सस्थान क वित्तीय एव सगठन के उद्देश्यो को ध्यान म रखत हुए क्रियान्वयन करना होता है।

सगठन प्रबन्ध का सहायक है इसके अन्तगत विभिन्न विभागो एव कमचारियो क कत्तव्यो का निर्धारण करना उनक कार्यो का बटवारा एव शक्तियो तथा विभागो क बीच सम्बन्ध निर्धारण करना आदि आत हैं। सगठन वास्तव म प्रबन्ध का यन्त्र है।[2]

प्रो न्यूमन (William Newman) ने भी प्रबन्ध एव प्रशासन म अन्तर करने से स्पष्ट इन्कार किया है। उनके अनुसार य एक दूसरे क स्थान पर प्रयोग म लाए जात हैं। ये एक दूसर के पर्यायवाची हैं। प्रशासक प्रबन्धक एव अधिशासी (Executive) एक दूसर स मिलते जुलत हैं। इनक अनुसार सामान्य उद्देश्यो की

1 *E F L Br h Pr c ples d Pract ces of M g m t* p 17
2 *Kimball and K mb ll Pr cipl of Ind str l O ga s t o* p 157 158

पूर्ति की ओर निर्दिष्ट समूह के प्रयासों का मार्गदर्शन, नेतृत्व एवं नियंत्रण करना प्रशासन है जो कि प्रबंध से मिलता जुलता है।

प्रबंध और प्रशासन को प्रशासनिक एवं व्यावसायिक संस्थाओं में अलग अलग प्रकार से समझा जाता है। सरकारी संस्थाओं में प्रशासन को प्रबंध से व्यापक माना जाता है। व्यावसायिक जगत् में प्रबंध को प्रबंध प्रक्रिया (Management Process) में लिया जाता है जिसमें प्रशासन सामूहिक रूप में प्रबंध का कार्य सम्मिलित है। व्यवसाय में सामान्य रूप में प्रशासन का सम्बन्ध उच्चस्तरीय प्रबंध में लिया जाता है।

प्रो. मैकफारलैण्ड (Dalton E McFarland) के अनुसार "प्रशासन में मुख्य उद्देश्यों एवं नीतियों का निर्धारण आता है जबकि प्रबंध में उद्देश्यों को पूरा करने तथा नीतियों को प्रभावपूर्ण बनाने सम्बन्धी क्रियाएं सम्मिलित हैं।"[1]

प्रो. मिलवर्ड के अनुसार प्रबंध नीति के क्रियान्वयन हेतु नियोजन एवं पर्यवेक्षण (Supervision) से सम्बन्ध रखता है जबकि संगठन किसी भी प्रशासन या उद्योग में सामूहिक रूप से कार्य करने वालों के कार्यों, उत्तरदायित्व, अधिकारों का विवरण एवं सुपुर्दगी करने वाली प्रक्रिया है। यह (संगठन) एक ढांचा है जिसके चारों ओर प्रबंधकीय एवं प्रशासनिक क्रियाएं चक्कर लगाती रहती हैं। दूसरे शब्दों में प्रशासन निर्देशन देने का कार्य करता है, प्रबंध कार्यकारी (Executive function) करता है जबकि संगठन वह यंत्र है जिसके माध्यम से प्रशासन व प्रबंध अपने कार्य करते हैं। प्रशासन निर्धारणात्मक कार्य (Determinative function or Thinking function) से सम्बन्ध रखता है जबकि प्रबंध कार्यकारी कार्य (Executive function or Doing function) करता है। संगठन इन दोनों प्रकार के कार्यों को सम्पूर्ण करने हेतु एक ऐसे यंत्र या ढांचे का निर्माण करता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न व्यक्तिगत समूहों के कार्यों, उत्तरदायित्वों एवं अधिकारों का बंटवारा किया जाता है और उन्हें अपने अपने कार्य-भार हेतु जिम्मेदार ठहराया जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)—विभिन्न प्रबंध विद्वानों ने प्रशासन, प्रबंध एवं संगठन की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। उपरोक्त सभी परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् प्रबंध, प्रशासन एवं संगठन सम्बन्धी अन्तर हम निम्न निष्कर्षों पर पहुंच सकते हैं—

1 आधुनिक समय में 'प्रबंध' एवं 'प्रशासन' दोनों शब्दों में भी मतभेद विद्यमान है। संगठन इस मतभेद से परे निकल गया है क्योंकि इसके अन्तर्गत विभिन्न व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों, अधिकारों, कर्त्तव्यों की सुपुर्दगी सम्बन्धों का

1 *McFarland* Management Principles and Practices p 10

स्थापना एव प्रयासो का समन्वय आदि क्रियाओ को सम्मिलित किया जाने लगा है। इस पर मतभेद नही पाया जाता है।

2 प्रबन्ध शब्द आग्ल विचारधारा के अन्तगत प्रशासन शब्द से व्यापक माना जाता है। विभिन्न यूरोपीय देशो मे सम्बन्ध को अधिक महत्व दिया जाता है तथा प्रशासन एव सगठन दोनो को इसके अन्तगत सम्मिलित किया जाता है जबकि दूसरी ओर अमरीकी विचारधारा के अनुसार प्रशासन को या रू माना जाता है और प्रबन्ध व सगठन को इसमे सम्मिलित किया जाता है।

3 व्यावहारिक जीवन मे नीति निर्धारण करने वाले एव उनका क्रियान्वयन करने वाले अलग अलग व्यक्ति नही होते हैं। उदाहरणार्थ उच्चस्तरीय प्रबन्ध द्वारा नीति निर्धारण का काय करना प्रबन्ध है लेकिन जब वे मध्यमस्तरीय प्रबन्धको द्वारा इसके क्रियान्वयन का काय देखते हैं तो वह प्रशासन होगा। इसी प्रकार निम्नस्तरीय प्रबन्ध क्रियान्वयन का काय करते हैं तो प्रशासन का काय करते है लेकिन जब वे मध्यम व उच्चस्तरीय प्रबन्ध को इसके विषय मे सलाह देते हैं अथवा विचार विमर्श करते हैं तो यह प्रबन्ध का काय हुआ। इस स्थिति मे प्रबन्ध और प्रशासन मे अन्तर करना बडा मुश्किल हो जाता है। एकाकी अथवा साझेदारी फर्म मे प्रबन्धक व प्रशासन दोनो एक ही व्यक्ति होता है जबकि बडे उद्योगो या कम्पनियो मे दोनो अलग अलग होते हैं। इसमे दोनो के नामो मे भ्रम पैदा हो जाता है।

अत हम यह कह सकते हैं कि प्रशासन और प्रबन्ध दोनो को पूर्णरूप से अलग अलग नही किया जा सकता है। एक ही व्यक्ति प्रबन्ध के काय के साथ प्रशासन का काय भी करता है। ये दोनो काय एक दूसरे से जुडे हुए है। दोनो के सिद्धान्त प्रक्रिया कायक्षेत्र आदि समरूप ही हैं तथा दोनो ही सार्वभौमिक हैं। अत दोनो को पर्यायवाची मानना होगा।

10

सत्ता
(Authority)

संगठन के आधुनिक सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए अनेक विचारकों ने उन मनभूत मान्यताओं की खोज की है जिनके आधार पर संगठन का रूप बना रहता है तथा संगठन की क्रियाशीलता एवं निष्क्रियता सार्थकता एवं निरर्थकता सिद्ध होती है। प्रत्येक संगठन उन सभी औपचारिकताओं के साथ जन्म लेता है जो परम्परावादी विचारकों द्वारा प्रस्तुत की गई थी। एक संगठन का नाम लेते ही एक ऐसा चित्र उपस्थित करता है जिसमें नीचे से ऊपर तक कुछ सीढ़ियां बनी हुई हैं। ऊपर वाली सीढ़ी पर जो अधिकारी बैठा हुआ है वह अपने से नीचे की सीढ़ियों पर बैठे अधिकारियों को आदेश निर्देश देता है तथा उनके कार्यों का समन्वय नियन्त्रण पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन करता है। संगठन का यह चित्र हमारे सामने उन नेताओं को खड़ा कर देता है जिनकी बातों सुनने के लिए अनेक अनुयायी तैयार रहते हैं तथा जिनके निर्देशों पर संगठन की गतिविधियां अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती हैं। संगठन के उच्च सोपानों के अधिकारियों के पास कुछ सत्ता रहती है जिसके आधार पर वे अपने भारी उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हैं। इस सत्ता की मात्रा प्रायः उतनी ही होती है जितना इन अधिकारियों के उत्तरदायित्वों का विस्तार होता है। संगठन के इस चित्र के जब हम निकट जाते हैं तो ज्ञात होता है कि उच्च अधिकारी अपनी सत्ता का प्रयोग कुशलता के साथ नहीं कर पा रहा है। मानवीय कमजोरियाँ समय की सीमाएं कार्यकुशलता की माग एवं अन्य ऐसे ही अनेक तत्व उसे अपनी सत्ता का प्रत्यायोजन करने के लिए प्रेरित एवं प्रभावित करते हैं।

जब सत्ता का प्रत्यायोजन कर दिया जाता है तो नीचे की सीढ़ियों के अधिकारियों को कुछ शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं और उन पर अनेक उत्तरदायित्वों का भार आ पड़ता है। जब निम्न सोपानों के अधिकारी अपनी सत्ता का प्रयोग करने लगते हैं तो उनके कार्यों में समन्वय स्थापित करने की कठिनाई पैदा होती है। उच्च अधिकारी के हाथों में समन्वय स्थापित करने का एक नया कार्य और आ जाता है। कार्यों में समन्वय इसलिए जरूरी हो जाता है कि प्रत्यायोजित शक्तियों के प्रयोग से सम्भावित टकराव को रोका जा सके और उनके बीच परस्पर सहयोगपूर्ण

व्यवस्था कायम की जा सके। इस प्रकार संगठन के कार्यों में एकरूपता बनाए रखने के लिए उस पर नियन्त्रण कायम रखना भी एक अत्यावश्यक कार्य हो जाता है।

सत्ता की प्रकृति

(The Nature of Authority)

सत्ता का संगठन में वही स्थान है जो मानव शरीर में आत्मा का है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण हो जाता है उसी प्रकार जब तक हम एक संगठन में सत्ता की उचित व्यवस्था नहीं करते वह कार्यहीन नहीं हो सकता। सत्ता को समाज की नींव का पत्थर कहा जाता है। मानव व्यवहार चाहे वह संगठन में हो अथवा उसके बाहर किसी न किसी प्रकार की शक्ति पर आधारित रहता है। जब संगठन में पद सोपान की स्थापना कर अधीनता स्थापित की जाती है तो वहाँ सत्ता का प्रयोग स्वाभाविक बन जाता है। सत्ता को हम मानवीय व्यवहार के सन्दर्भ में ही देख सकते हैं। यह कोई निगूढ़ तत्व (Abstract Entity) नहीं है वरन् एक ऐसी चीज है जिसका विश्लेषण और अध्ययन मानव क्रियाओं में ही किया जा सकता है। साइमन स्मिथबर्ग तथा थामसन (Simon Smithburg and Thompson) ने कार्य विभाजन और सत्ता को किसी भी संगठन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता माना है। उनके कथनानुसार जब कभी हम एक संगठन का ढाँचा तैयार करते हैं तो उसका संगठन की प्रत्येक इकाई को एक स्थान देना होता है और उसके बाद इन स्थानों को कुछ श्रेणियों से सम्बन्धित कर दिया जाता है। इन श्रेणियों को सत्ता की श्रेणी (Line of Authority) कहते हैं। प्रत्येक संगठन में पाई जाने वाली सत्ता की श्रेणियाँ औपचारिक भी हो सकती हैं और अनौपचारिक भी। सत्ता की अनौपचारिक श्रेणियाँ में प्रधानस्थ अधिकारियों का कार्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है। साइमन तथा अन्य लेखकों के शब्दों में अनेक अनुभवी प्रशासक सत्ता की इस पद सोपान-निहित श्रेणियों के महत्त्व से इतने प्रभावित हैं कि उनका यह विश्वास बन चुका है कि जब तक इनका पर्यवेक्षण न किया जाए संगठन के स्वरूप एवं कार्यों के वास्तविक तथ्यों का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

सत्ता का अर्थ

(The Meaning of Authority)

सत्ता एक ऐसा शब्द है जिसके अनेक प्रकार से अनेक अर्थ प्रस्तुत किए जाते हैं। इस शब्द की व्यापकता तथा अर्थों की अनेकरूपता कई बार पाठकों के मस्तिष्क में भ्रम पैदा कर देती है। एक संगठन का अध्ययन करते समय वे कभी इस प्रकार तत्वों को भी सत्ता समझने लग जाते हैं जो यथार्थ में सत्ता नहीं होते। वे या तो उसका विकृत रूप होते हैं अथवा उसकी केवल प्रतिच्छाया। सत्ता को विद्वानों ने अनेक रूपों में परिभाषित किया है। हर्बर्ट साइमन (Herbert Simon) के अनुसार सत्ता (Authority) को निर्णय लेने की शक्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

प्रभावित हुए बिना ही स्वीकार कर सकता है। सम्भवतः वह उसके गुणों की जाँच करे ही न सके।

(iii) वह प्रस्तावों को यह जानते हुए भी कि वे गलत हैं, स्वीकार कर लेता है। यह प्रस्ताव उसे इसलिए गलत प्रतीत हो सकते हैं क्योंकि उसके व्यक्तिगत मूल्यों से मेल नहीं खाते या संगठन के मूल्यों के अनुरूप नहीं हैं अथवा दोनों ही बातें हैं।

इन तीनों ही प्रकार के प्रस्तावों की स्वीकृति में प्रथम प्रकार को सत्ता की परिधि से अलग रखा जाता है। प्रस्ताव अनेक प्रकार के हो सकते हैं। प्रत्येक प्रस्ताव को जो सम्प्रेषण क्रिया व्यक्तियों को सक्रिय बनाता है सत्ता कहा जा सकता है। वे आज्ञाएँ, अनुदेश, परिनियम, सुझाव आदि कुछ भी कहे जा सकते हैं। प्रस्ताव तो प्रायः उस रूप के होते हैं जो एक समस्या का समाधान करने के लिए सुझाया जाता है। जब तक किसी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया जाता तब तक उसे सत्तापूर्ण नहीं कह सकते। वास्तव में सत्तापूर्ण सम्बन्ध वे होते हैं जिसमें एक व्यक्ति किसी प्रस्ताव के गुणों से प्रभावित हुए बिना ही उसे स्वीकार कर लेता है।

सत्ता के सम्बन्ध को मुख्य रूप से वस्तुनिष्ठ (Objective) एवं व्यावहारिक सन्दर्भ में ही देखा जा सकता है। सत्तापूर्ण सम्बन्धों द्वारा उच्च अधिकारी एवं निम्न अधिकारी दोनों को ही क्रियाशील बनाया जाता है। जब इस प्रकार क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं तभी दो व्यक्तियों के बीच सत्ता का सम्बन्ध रहता है। साइमन के कथनानुसार व्यवहार के अभाव में सत्ता नहीं होती चाहे संगठन की कागजी विचारधारा कुछ भी हो।[1] सत्ता के आदेशों को स्वीकार किया जाता है तो अधीनस्थ अधिकारियों के सामने कोई विकल्प नहीं रहता, उनको वे आज्ञाएँ स्वीकार करनी होती हैं।

कभी-कभी तो अधीनस्थ व्यक्ति उन आज्ञाओं को ऐसी स्थिति में स्वीकार करते हैं जब उनकी अपनी कोई पसन्द नहीं होती। किन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि अधीनस्थ अधिकारी को अपनी इच्छा के विपरीत भी आज्ञाएँ स्वीकार करनी होती हैं। यदि दो व्यक्तियों के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाए और इस मतभेद को वाद-विवाद से, समझाने-बुझाने से या अन्य प्रकार से प्रभावित करने से दूर न किया जा सकता तो उसे सत्ता द्वारा सुलझाया जाता है। सत्ता का आदेश अन्तिम होता है, उसके शब्द अकाट्य होते हैं, उसका विरोध नहीं किया जा सकता। आज्ञाएँ मनवाना और मतभेदों को सुलझाना सत्ता के दो प्रमुख गुण हैं। किन्तु वह इन दोनों की परिधि में ही सीमित नहीं रहती, उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सत्ता के रूप को भली प्रकार समझने के लिए इसका सत्ता और शक्ति (Power), सत्ता और प्रभाव (Influence), सत्ता और उत्तरदायित्व (Responsibility) एवं सत्ता और जवाबदेयता (Accountability) के बीच का सम्बन्ध देखना चाहिए।

1 Herbert A. Simon, op. cit., p. 15.

नही क त । उनके स्थान पर अधीनस्थ अधिकारी न शक्तियो का प्रयोग करत है । इस प्रकार उच्च अधिकारी केवल सत्ताधारी ह, शक्तिवान नही ।

अधीनस्थ अधिकारी सत्ताधारी न होते हुए भी शक्तिवान हैं । मेरी पाकर फालेट (Mary Parker Follett) के कथनानुसार शक्ति साधारण रूप से कार्य करने की योग्यता होती है तथा निर्णय उस कहते हैं जिसमे शक्ति का एक विशेष नक्शा प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग म ले या जाता है और सत्ता म नियन्त्रण निहित रहता है । मेरी फॉलेट ने शक्ति को आत्मविकास की सामर्थ्य (Self development Capacity) माना है । उनका सुझाव है कि जो सत्ता मनमाने ढंग से विकसित नहीं की जा सकती है तथा जो सामर्थ्य की एक अभिव्यक्ति नहीं है वह एक रिक्त नैतिकता (Empty Ethics) है । फिफनर तथा शेरवुड (Pfiffn r and Sherwood) ने सत्ता और शक्ति की परिभाषा देते हुए दोनों के रूप का विवेचन किया है । उनका कहना है कि औपचारिक पद सोपान के अर्थ म सत्ता को आज्ञा देने का आधिकार समझा जा सकता है जबकि शक्ति म अपने मूल्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करने की सामर्थ्य होती है ।[1]

सत्ता और प्रभाव (Authority and Influence)

व्यक्ति के व्यवहार पर दूसरे लोगों के अनेक प्रकार के प्रभाव पडते है । इन सभी प्रभावों को हम सत्ता नही कह सकते । समझाना, सुझाव देना या प्रभावित करना आदि बातें प्रभाव के रूप म होती है जो आवश्यक रूप से सत्ता का निहित होना सिद्ध नही करती । सत्ता और प्रभाव के बीच के अन्तर को स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रभाव उस कहते हैं जिसम एक अधीनस्थ अधिकारी अपने विचाराधीन विकल्पो म से कुछ विकल्पो को इसलिए चुन लेता है कि वह आज्ञा प्राप्त करने के औपचारिक मापदण्डो को अपनी पसन्द का आधार बनाता है । सुझाव प्रभाव और आदेश ऐसे शब्द ह जिनके बीच स्पष्ट रूप से अन्तर नही दर्शाया जा सकता । इसके अर्थो म भ्रम रहता है । इनके बीच स्पष्ट रूप से कोई विभाजक रेखा भी नही खीची जा सकती ।

जब कभी सुझावो को बिना किसी आलोचना या विचार विमर्श के स्वीकार कर लिया जाता है तो उसे हम सत्तापरक कार्य कहते है किन्तु सत्ता का यह रूप अत्यन्त विकृत है । सत्तापरक सम्बन्धो मे प्राय ऐसा होता है कि एक व्यक्ति जो एक क्षण किसी का अधीनस्थ होता है दूसरे क्षण दूसरे का उच्च अधिकारी बन जाता है । इसलिए यह एक विचारणीय प्रश्न है कि किसी को उच्च क्यो माना जाये । प्रभाव और सत्ता के सम्बन्धो का यह अध्ययन इस बात का सूचक है कि सत्ता अपने आप म कोई अधिकार शक्ति सामर्थ्य या कोई प्रभाव नही होती वरन्

1 Pfiffner and Sherwood op cit p 77

इसका अस्तित्व इन मदद बिना भी रह सकता है। इन तत्वों के बिना सत्ता का रूप बेजान शरीर की भांति निष्क्रिय और निरर्थक होता है। यह वास्तविक तभी होती है जब इन तत्वों का उचित रूप से सत्ता के कानूनी रूप के साथ सम योजन कर लिया जाए। सत्ता के स्वरूप में उच्च अधिकारियों का आदेश इतना नहीं प्रधान जितना अधीनस्थ अधिकारियों के व्यवहार।

सत्ता और उत्तरदायित्व
(Authority and Responsibility)

सत्ता और उत्तरदायित्व के बीच गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। जिस किसी व्यक्ति को कुछ करने के उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं, उसे उन उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए सत्ता सौंपना भी जरूरी हो जाता है। सत्ता के बिना उत्तरदायित्व पूरे नहीं हो सकते और उत्तरदायित्वों के बिना सत्ता एक गलत दिशा पकड़ सकती है। मार्शल आदि के अनुसार सत्ता की व्यवस्था की यह एक महत्वपूर्ण विशेषता होती है कि यह सदैव उत्तरदायित्वपूर्ण होती है। यदि जनसत्ता धारी व्यक्ति अपने अधिकारों का पूरी तरह या कुशलता के साथ उपयोग नहीं कर पाता तो वह अपनी सत्ता का प्रत्यायोजन (Delegate) कर देता है। जब सत्ता प्रत्यायोजित की जाती है तो अधीनस्थ अधिकारी को सत्ता के स्रोत उच्च अधिकारियों का यह विश्वास दिया जाता है कि वे उनको सौंपे गए कार्यों को सन्तोषजनक रूप से पूरा करेंगे। अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा इस प्रकार के कर्तव्य की स्वीकृति उनके उत्तरदायित्वों की सूचक है।

सत्ता का प्रत्यायोजन (Delegation) उत्तरदायित्व के बिना अधूरा और निष्फल रहता है। हैमन (Haimann) के शब्दों में उत्तरदायित्व और सत्ता की मान्यताएं एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं।[1] उत्तरदायित्व का मूल तत्व कर्तव्य (Obligation) होता है। उत्तरदायित्व का अर्थ है—अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा वह कार्य सम्पन्न करने का कर्तव्य जो उच्च अधिकारियों द्वारा चाहा जाए। यह सच है कि जब किसी व्यक्ति या संगठन को कुछ करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है तो उसे ऐसा करने की पर्याप्त सत्ता (Sufficient Authority) सौंपी जाती है किन्तु प्रश्न यह है कि पर्याप्त सत्ता क्या होती है। कभी कभी यह कहा जाता है कि पर्याप्त सत्ता का अर्थ है आदेश की एकता अर्थात् एक व्यक्ति का यह अधिकार होना चाहिए कि वह कर्मचारियों को बिना किसी प्रकार के हस्तक्षेप के कर्तव्य की ओर निर्देशित कर सके।

उत्तरदायित्वपूर्ण सत्ता का शाब्दिक अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये। किसी व्यक्ति को जब कोई उत्तरदायित्व सौंपा जाए तो उस निभाने के लिए कोई

1 H m nn Theo P ofess o al Man gement 1966 p 56

भी किसी प्रकार की भी और चाहे जितनी सत्ता नहीं सौंपी जा सकती। उनके अधिकारों पर कुछ सीमाएं भी लगानी होती हैं। हम यह नहीं कह सकते कि अपने कार्यों को पूरा करने के लिए वह जो चाहे सो करे। उदाहरण के लिए हम लोक प्रशासन में सत्ता और उत्तरदायित्व के व्यवहार को ले सकते हैं। यहां जब कार्यपालिका को कुछ करने के उत्तरदायित्व सौंप जाते हैं तो साथ ही कुछ शक्तियां भी दे दी जाती हैं किन्तु ये शक्तियां असीमित नहीं होती। इन पर संसद्, न्यायपालिका, लोकमत, विरोधी दलों और देश के अन्य स्रोतों की अनेक सीमाएँ लगी रहती हैं। कार्यपालिका के व्यवहार पर प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों की भी अनेक सीमाएँ होती हैं। इन सबके अतिरिक्त एक कार्यपालिका को उसकी इकाइयों का भी पूर्ण सहयोग मिलना चाहिये और यह सहयोग केवल औपचारिक (Formal) व्यवस्था द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिये अनेक अनौपचारिक तरीके अपनाने होते हैं जो कार्यपालिका के कार्यों को सीमित कर देते हैं। उत्तरदायित्व का भार कार्य पूरा हो जाने पर जारी भी रह सकता है और समाप्त भी हो सकता है। उत्तरदायित्व की धारा में कार्यों के प्रभाव के साथ साथ मान्य अन्त रहते हैं।

जब कभी सत्ता का प्रत्यायोजन किया जाता है तो साथ-साथ उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन भी होता है। सत्ता और उत्तरदायित्व को एक ही सिक्के के दो पहलू माना जा सकता है। कुछ विचारकों का कहना है कि उत्तरदायित्व को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता अर्थात् उसे अधीनस्थों को नहीं सौंपा जा सकता। एक उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थों को कुछ कार्य करने की शक्ति दे सकता है लेकिन वह अपने उत्तरदायित्व को उन पर नहीं थोप सकता किन्तु इस स्थिति में एक अधीनस्थ अधिकारी जो प्रत्यायोजित कार्य सम्पन्न कर रहा है तथा उसके पास ऐसा करने की शक्ति भी है उत्तरदायित्व के भार से मुक्त नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा किया गया तो वह अपने कार्य को सम्पन्न नहीं कर पायेगा अपितु सत्ता का दुरुपयोग करेगा।

उपर्युक्त विवरण से उत्तरदायित्व के दो रूप प्रकट होते हैं। हम तात्कालिक उत्तरदायित्व और अन्तिम उत्तरदायित्व के बीच भेद कर सकते हैं तात्कालिक उत्तरदायित्व उन अधीनस्थ अधिकारियों का होता है जिनको कुछ सत्ता हस्तान्तरित (Delegate) की जाती है और कुछ कार्य करने के लिये जवाबदेह ठहराया गया है। अन्तिम उत्तरदायित्व उन अधिकारियों का होता है जो उच्च स्तर पर हैं तथा जिनके द्वारा शक्तियां हस्तांतरित की जाती हैं। तात्कालिक उत्तरदायित्व प्राय उसके प्रति होता है जिसने शक्तियाँ प्रत्यायोजित की हैं। यदि अधीनस्थ अधिकारी प्रत्यायोजित शक्तियों का उचित रूप से उपयोग नहीं कर पाते तो उनसे वे शक्तियाँ छीनी जा सकती हैं तथा उनके विरुद्ध अन्य कार्यवाही भी की जा सकती है। यह

एक संगठन का आन्तरिक मामला माना है कि नागरिक उत्तरदायित्व की अवहेलना पर क्या कार्यवाही की जाय।

संगठन के बाहर वाले लोग तो संगठन से सम्बन्धित प्रत्येक अच्छे या बुरे काय के लिए उच्च अधिकारी को ही उत्तरदायी मानते हैं क्योंकि अन्तिम उत्तरदायित्व उसी पर रहता है। उदाहरण के लिए हम मन्त्री और विभागाध्यक्ष को ले सकते हैं। जब एक विभाग विशेष में कोई अनियमितता होती है अपव्यय होता है गबन होता है या अन्य कोई गलती होती है तो उसके लिए हम मन्त्री को ही दोषी ठहराते हैं क्योंकि संविधान ने उस विभाग में सम्बन्धित उत्तरदायित्व और सत्ता पूर्ण रूप से उसी को सौंपा है यद्यपि तथ्य यह है कि कई बार मन्त्री को अपने विभाग की गतिविधियों का पता भी नहीं होता। अन्तिम रूप से उत्तरदायी होने के कारण विभाग से सम्बन्धित सभा प्रश्नों का मन्त्री को ही उत्तर देना पड़ता है। मन्त्री किसी भी स्थिति में अपने इस उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन (Delegation) नहीं कर सकता।

जब कभी उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों को सत्ता का प्रत्यायोजन करता है तो वह स्वयं को मुक्त महसूस नहीं करता। उसके ऊपर प्रत्यायोजन के कारण कुछ नवीन कार्यों का उत्तरदायित्व और आ जाता है। उदाहरण के लिए उसे उन अधीनस्थों के ऊपर लगातार अधीक्षण (Supevision) निदेशन (Direction) और नियन्त्रण (Control) रखना होता है जिनको सत्ता हस्तान्तरित की गई है। न्यूमन (Newman) का कथन है कि कई बार हस्तान्तरित सत्ता (Delegated Authority) का भी हस्तान्तरण कर दिया जाता है। इस प्रकार का हस्तान्तरण सही रूप में हस्तान्तरण नहीं माना जा सकता और न ही यह अधीनस्थ अधिकारियों को कुछ उत्तरदायित्व सौंपता है। ऐसी स्थिति में प्रत्यायोजन करने वाले व्यक्ति को अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों को प्रभावशाली बनाने के लिए लगातार देख रेख करनी होती है। न्यूमन ने इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा समझाया है। वे लिखते हैं कि यदि डेविस (Davis) ने राष्ट्रीय बैंक से पहले कुछ धन उधार लिया और बाद में अपने पुत्र को उसे पुनः ऋण के रूप में दे दिया तो इस कार्य से डेविस का लिया हुआ कर्ज न तो कम हो जाता है और न ही उस वापस चुकाने का उसका उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। यद्यपि यह सच है कि प्रत्यायोजन द्वारा उत्तरदायित्व न तो समाप्त होता है और न परिवर्तित होता है तथापि कुछ व्यावहारिक स्थितियों के कारण उत्तरदायित्वों का प्रत्यायोजन कर दिया जाता है। हैमन (Haimann) के मतानुसार प्रत्यायोजन और पुनर्प्रत्यायोजन (Delegation and Re-delegation) कार्यपालिका को सौंपे गए बड़े-बड़े कार्यों की सम्पन्नता के लिए आवश्यक हैं।

उत्तरदायित्व और सत्ता के बीच सम्बन्धों के बारे में एक ध्यान रखने योग्य

बात यह है कि इन दोनों का अनुपात बराबर होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि एक अधीनस्थ को इतनी शक्ति सौंप दी जाय कि वह अपने सभी कर्त्तव्यों तथा अंगीकृत उत्तरदायित्वों को ठीक प्रकार से पूरा कर सके। दूसरे शब्दों में यदि आप किसी को उत्तरदायी बनाना चाहते हैं तो उसे अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करने की सत्ता दी जानी चाहिए। सत्ता और उत्तरदायित्व की मात्रा में असमानता होने पर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। यदि सत्ता कम और उत्तरदायित्व अधिक हुए तो वे पूरे न हो होंगे। दूसरी ओर यदि सत्ता अधिक और उत्तरदायित्व कम हुए तो सत्ता के दुरुपयोग की सम्भावना होगी। हेमेन (Haimann) के शब्दों में "प्रत्यायोजित सत्ता और उत्तरदायित्व के बीच असमानता अनचाहे परिणाम उत्पन्न करती है।"[1]

यद्यपि एक संगठन में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जब निम्न अधिकारी हस्तान्तरित शक्ति के साथ कोई उत्तरदायित्व न लेना चाहे तथापि सत्ता और उत्तरदायित्व की समान मात्रा का सिद्धान्त सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है। बर्नार्ड और उर्विक (Barnard and Urwick) ने उत्तरदायित्व और सत्ता में समानता के सिद्धान्त को इस आधार पर चुनौती दी है कि कई बार व्यक्तियों को ऐसी स्थिति में डाल दिया जाता है जबकि वे उत्तरदायी तो बना दिये जाते हैं किन्तु सत्ता नहीं रख सकते।[2] सत्ता और उत्तरदायित्व के बीच समान मात्रा का सिद्धान्त न्यूमेन (Newman) के अनुसार एक बुरा सिद्धान्त है जो अनेक गलत फहमियाँ पैदा कर सकता है।[3] सत्ता के रूप एवं प्रयोग पर अनेक बाह्य परिस्थितियों की सीमायें तथा आन्तरिक बाधाओं के बन्धन रहते हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक उत्तरदायी व्यक्ति को समान उत्तरदायित्व नहीं सौंपे जा सकते। कई उत्तरदायित्वों की प्रकृति ऐसी होती है जिनमें सत्ता की आवश्यकता नहीं रहती और होती है तो सत्ता प्राप्त नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिये आपका यह एक नागरिक उत्तरदायित्व (Civic Responsibility) हो सकता है कि अपने पड़ोसियों की सुख सुविधा के लिए कार्य करें किन्तु यह उत्तरदायित्व आपको कुछ शक्ति नहीं सौंपेगा। इसके नाम पर आप स्थानीय सरकार में कोई पद प्राप्त नहीं कर सकते।

चेस्टर बर्नार्ड (Chester Barnard) का मत है कि किसी भी संगठन में एक अच्छी कार्यपालिका वह होती है जो यह समझती है कि वे कार्य किस प्रकार सम्पन्न कराए जाएँ जिनको करने की सत्ता नहीं दी जा सकती। इसलिए एक नए प्रशासक का सबसे पहले यह बताना महत्त्वपूर्ण है कि अधिकांश संगठनों में ऊँचे या नीचे स्तर के व्यक्तियों को बहुत थोड़ी सत्ता देने या बिल्कुल न देने पर पूरी तरह से जवाबदेह और उत्तरदायी ठहराया जाता है।[4] उत्तरदायित्वों के कुछ विस्तृत रूप

1 H m op t p 59
2 L Urw ck N t h Th y f O g at pp 51–52
3 N wm n Adm t t A t pp 1–4
4 R w f U w k book Th Fl m t f Ad trat n P nel

भी शील है। इसका एक नैतिक तत्व भी होता है जिसमें हम उत्तरदायित्व को अधिक से अधिक लेने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं और उसके बदले या उसके लिए सत्ता की आकांक्षा नहीं करते। जनरल क्ले (General Clay) के विचार में उत्तरदायित्व के इसी रूप की अनुभूति होती है। वे एक ऐसे व्यक्ति की मित्रता में सन्तोष का अनुभव करते हैं जो अपने उत्तरदायित्व को निरंतर व्यापक बनाना चाहता है। नैतिक रूप में उत्तरदायित्व का कुछ भी अर्थ लिया जा सकता है किन्तु इसका अर्थ यहाँ नहीं होता कि उत्तरदायित्व और समान माना का सिद्धान्त कोई महत्व नहीं रखता। हेमन (Haimann) के अनुसार सत्ता और उत्तरदायित्व की मान्यताएं परस्पर घनिष्ठ रूप से इतनी सम्बन्धित हैं कि जब तक दोनों की मात्रा समान न हो सत्ता व्यावहारिक उद्देश्य के लिए प्रयोजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रभावहीन हो जाती है।[1]

उत्तरदायित्व के अन्य रूपों को हम आश्रय के आधार पर विभाजित कर सकते हैं। इस प्रकार के विभाजन के लिए यह देखना जरूरी है कि उत्तरदायित्व एक व्यक्ति में निहित है अथवा अनेक व्यक्तियों में। लोक प्रशासन में समितियां (Committees) मण्डल (Boards) निगमों (Corporations) आदि के अधिकाधिक प्रयोग के कारण सत्ता को केवल एक व्यक्ति न होकर एक समूह को बनाया जाता है। ऐसी स्थिति में सम्पन्न किए जाने वाले कार्यों के लिए किसी एक व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता और संगठन में होने वाली गल्तियां तथा अनियमितताओं के लिए कोई एक व्यक्ति दोषी नहीं माना जा सकता। इन उदाहरणों में उत्तरदायित्व का रूप व्यक्तिगत रूप से भिन्न है तथा इसे सम्मिलित उत्तरदायित्व (Joint Responsibility) का नाम दिया जाता है।

सम्मिलित उत्तरदायित्व व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Individual Responsibility) की अपेक्षा कई कारणों से अधिक उपयुक्त समझा जाता है। इस प्रकार के उत्तरदायित्व में सत्ता का प्रयोग पर्याप्त विचार विमर्श के बाद होता है इसलिए कार्य ठीक ढंग से होते हैं और सत्ता का दुरुपयोग नहीं हो पाता। सामान्य जनहितकारी कार्य करने में अधिक सफल हैं। साथ ही क्योंकि सम्मिलित उत्तरदायित्व की व्यवस्था से कोई भी एक व्यक्ति शक्ति का प्रयोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ साधन के लिए नहीं कर सकता। सम्मिलित उत्तरदायित्व की व्यवस्था में जो निर्णय लिए जाते हैं उनके प्रति अधीनस्थ कर्मचारियों की अधिक श्रद्धा और सद्भावना रहती है क्योंकि वे यह जानते हैं कि ये निर्णय अनेक व्यक्तियों की एक लम्बी विचारधारा के परिणाम हैं।

सम्मिलित उत्तरदायित्व की व्यवस्था को दोषों से मुक्त नहीं समझा जा

1 Haimann op cit p 60

सकता। इमम वे अनेक लाभ नहीं होते जो व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की विशषता समझ जाते हैं। उदाहरण के लिए जब किसी काय के लिए हम एक व्यक्ति को उत्तरदायी ठहरा देते हैं तो वह काय जल्दी सम्पन्न हो सकता है और उसम उत्तरदायी व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत रुचि का प्रयोग कर सकता है। य तीनों ही बातें सम्मिलित उत्तरदायित्व की व्यवस्था म प्राय नहीं पाई जाती।

सत्ता और जवाबदेयता (Authority and Accountability)

जवाबदेयता (Accountability) और उत्तरदायित्व (Responsibility) वस्तुत कुछ समानार्थक से शब्द हैं जिनको प्राय एक-दूसरे के लिए भी प्रयुक्त कर दिया जाता है। जवाबदेयता शब्द का प्रयोग मुख्यरूप स सैनिक सगठनों म किया जाता है और इस अथ म जवाबदेयी होने का अथ है—सही-सही और पर्याप्त रिकाड रखना और इस प्रकार जन-सम्पत्ति की सुरक्षा करना। अनेक लेखकों ने जवाबदयता (Accountability) और उत्तरदायित्व (Responsibility) के बीच भेद दिखाने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए पीटरसन और प्लोमन (Peterson and Plowman) के अनुसार जवाबदेयी होने का अथ है पूरे किए गए अथवा न किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी (Answerable) होना।[1] पर इस प्रकार की परिभाषाओं से यह स्पष्ट नहीं होता है कि उत्तरदायित्व (Responsibility) के सम्बन्ध म दी गई परिभाषाओं से ये अधिक भिन्न नहीं हैं।

जवाबदयता की मान्यता उत्तरदायित्व की व्यवस्था म अपने आप निहित हो जाती है। दोनों के बीच मुख्य अन्तर यही माना जा सकता है कि उत्तरदायित्व (Responsibility) म नैतिकता (Morality) का पुट रहता है तथा यह नीति शास्त्र के क्षेत्र म भी अपना दखल रखती है। दूसरी ओर जवाबदेयता एक कानूनी मान्यता है जिसका सम्बन्ध प्रशासनीय नियोजन स अधिक है और जो नियन्त्रण की योजना के एक भाग के रूप म भी काय करती है। सत्ता और जवाबदेयता का निकट सम्बन्ध है। सत्ता के दो रूप होते हैं। पहले रूप म वह पूरी तरह स औपचारिक और कानूनी होती है तथा दूसरे रूप म वह औपचारिकताओं तथा बाह्य प्रभावों से निश्चित होती है। सत्ता का पहला रूप जवाबदेयता से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है जबकि उसके दूसरे रूप म उत्तरदायित्व समाविष्ट रहता है।

सत्ता के काय
(Functions of Authority)

सत्ता अपने-आप म कोई गुण नहीं होती। उसका महत्त्व एक साधन तथा सिद्धान्त के रूप में होता है जिसके द्वारा कुछ लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। कहा

1 Elmore Peterson and E Grosvenor Plowman Business Organization and Management p 104

जाता है कि सत्ता द्वारा दूसरे व्यक्तियों के सचारित निणयों के अधीन व्यक्ति के निर्णयों को रखकर समूह में समन्वित व्यवहार कायम किया जाता है। इस प्रकार सत्ता के प्रयोग द्वारा यह सम्भव होता है कि निणय की प्रक्रिया को वास्तविक कार्यों से अलग किया जा सके। जिस प्रकार एक जहाज के कप्तान को प्रतिदिन अपने जहाज की स्थिति का ज्ञान रहता है तथा उस ज्ञान के आधार पर ही वह निणय करता रहता है उसी प्रकार एक सगठन का सदस्य अपने व्यवहार को सगठन की निर्णय लेने वाली इकाई के सम्मुख प्रस्तुत करता रहता है। इस प्रणाली में एक तो व्यक्ति के कार्यों के बीच भी समन्वय बना रहता है तथा दूसरे अनेक व्यक्तियों के व्यवहार के बीच भी समन्वय स्थापित हो जाता है। दोनों स्थितियों में विशेष निणयों को सामान्य निर्णयों के अधीन रखा जाता है निणय लेने की प्रक्रिया में विशेषीकरण (Specialization) बिना सत्ता के प्रयोग के भी हो सकता है। एक इकाई को केवल परामर्श देने का काय सौंपा जा सकता है तथा उसकी सिफारिशों के आधार पर वास्तव में कुछ निणय लिए जा सकते हैं जिन्हें सगठन स्वीकार करे। जब सगठन एक स्टॅफ अभिकरण (Staff Agency) की सिफारिशों को बिना उनके लाभों की जाच किए स्वीकार कर लेता है तो सका अर्थ है कि वह अभिकरण वास्तव में कुछ सत्ता का प्रयोग कर रहा है। सम्भवत सगठन में ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करना बहुत कठिन होगा जहा निणय लेने की प्रक्रिया का एक प्रभावशाली विशेषीकरण स्थित हो और उस लाग करने के लिए किसी प्रकार का सत्ता का प्रयोग न करे। जब एक समूह के कार्यों का समन्वय करने के लिए सत्ता का साधन के रूप में उपयोग किया जाता है तो सत्ता मुख्य रूप में तीन प्रकार के काय करती है। साइमन (Simon) ने इन कार्यों का निम्न प्रकार से उल्लेख किया है[1]—

(1) यह उन लोगों पर कुछ उत्तरदायित्व सौंपती है जो सत्ता का प्रयोग करते हैं।

(2) यह निणय लेने में विशेषज्ञता को कायम करती है।

(3) यह क्रियाओं के बीच समन्वय स्थापित करती है।

1 सत्ता के राजनीतिक एव कानूनी पहलुओं पर चिन्तन करने वाले विचारकों ने इस तत्व पर जोर दिया है कि सत्ता का एक प्रमुख काय यह है कि यह व्यक्तिगत कार्यों को समाज द्वारा स्थापित आदर्शों के साथ एकरूपता स्थापित करती है। चार्ल्स मरियम (Charles Merriam) आदि विचारकों का नाम इनमें उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए व्यवस्थापिका के कानूनों को लिया जा सकता है। व्यवस्थापिका के कानून केवल राज्य द्वारा नियुक्त प्रशासकीय पदाधिकारियों द्वारा ही सत्तावादी नहीं माने जाते अपितु उल्लघन की स्थिति में उन सभी व्यक्तियों द्वारा

1 Simon Administrative Behaviour pp 135 140

माने जाते हैं जो इस कार्यक्षेत्र में मग्न हैं। जब कभी इनका उल्लंघनकर्त्ता सदस्य के विरुद्ध दबावों (Sanctions) का प्रयोग किया जा सकता है। यह सच है कि अनेक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं के केन्द्र में सत्ता की व्यवस्था निहित रहती है तथा साथ ही उसे लागू करने वाले दबाव भी रहते हैं। राज्य को इसका सर्वेम महत्त्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है। वस सम्पत्ति का कानून धार्मिक संस्थाएँ और परिवार भी बहुत-कुछ इसी श्रेणी में आते हैं।

जब सत्ता को उत्तरदायित्व लागू करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है तो इस प्रक्रिया में सम्भवत दबाव (Sanctions) एक कठिन अभिनय प्रस्तुत करते हैं। दबावों के बिना सत्ता प्राय प्रभावहीन एवं महत्त्वहीन हो जाती है। जब भी कभी हम किसी की आज्ञाओं का पालन करते हैं तो चेतन अथवा अचेतन रूप से हमारे दिल में उन दबावों का भय रहता है जिनको आज्ञापालन न करने पर हमारे विरुद्ध प्रयोग में लाया जा सकता है। एक सत्ता के दबावों का रूप नैतिक सामाजिक धार्मिक राजनीतिक कानूनी अथवा अन्य किसी प्रकार का हो सकता है। इन दबावों के भय से ही समाज में ऐसी परम्पराएँ स्थापित हो जाती हैं जिनके फलस्वरूप प्रत्येक यह विश्वास करने लगता है कि उस सत्तापूर्ण संस्थाओं द्वारा बनाए गए कानूनों का पालन करना चाहिए और उन दूसरों के अधिकारों को मान्यता देनी चाहिए। सत्ता और उत्तरदायित्व के सम्बन्धों को केवल दबावों के माध्यम से वर्णित नहीं किया जा सकता फिर भी यह एक तथ्य है कि सत्ता अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले व्यक्तियों को उत्तरदायी बना देती है।

2 सत्ता का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि इसके द्वारा जो निर्णय लिए जाते हैं उनमें उच्च स्तर की बुद्धि का प्रयोग किया जाता है और वे अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं। सत्ता का प्रयोग करते समय एक संगठन के उच्च अधिकारी अपने विशिष्ट ज्ञान का सहारा लेते हैं। प्रशासकीय कुशलता के लिए विशेषीकरण मौलिक रूप में महत्त्वपूर्ण विषय है। इसके द्वारा संगठन के प्रयासों का परिणाम कई गुणा हो जाता है। विशेषीकरण एक ही साथ कार्यों की प्रक्रिया से सम्बन्धित होता है और वह निर्णय भी लेता है। बड़े संगठनों में विशिष्ट ज्ञान का लाभ प्राप्त करने के लिए संगठन के कार्यों को विभिन्न भागों में बाँट दिया जाता है तथा यह व्यवस्था की जाती है कि जिस कार्य में एक विशेष योग्यता की आवश्यकता है उसे योग्यता प्राप्त व्यक्तियों द्वारा ही पूरा किया जाए। इसी प्रकार निर्णय लेने की प्रक्रिया में भी विशेषज्ञता का लाभ प्राप्त करने के लिए निर्णय लेने का उत्तरदायित्व यथासम्भव इस प्रकार किया जाता है कि जिन निर्णयों में विशेष ज्ञान और कुशलता की आवश्यकता होती है वे विशेषज्ञता प्राप्त व्यक्तियों द्वारा ही लिए जाएँ। इसीलिए एक संगठन के निर्णयों को अनेक भागों में विभाजित कर दिया जाता है और संगठन के प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी भाग के साथ सम्मिलित कर लिया जाता है।

प्रकृति अत्यन्त कठोर होती है। यही कारण है कि उनमे अस्वीकृति का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है।

उच्चाधिकारी के विचार ✓
(Ideas of Superiors)

किसी भी सगठन विशेष म काय करने वाले उच्च अधिकारी कितनी सत्ता का उपयोग करेंगे यह बात ब त कुछ उनके स्वय के विचारो एव सोचन के तरीके पर निभर करती है। जब व अपने अधीनस्थो को आदेश एव निर्देश प्रदान करते हैं तो हमेशा ही व एक सत्ताधारी के रूप म व्यवहार नही करते। यह एक व्यावहारिक बात है कि यदि सत्ता का बार बार प्रयोग किया जाए तो वह उतनी प्रभावशील नही रहेगी। यह ी कारण है कि प्रशासन के आधुनिक लेखको द्वारा इस बात पर जोर दिया जाता है कि उच्चाधिकारियो को अपनी सत्ता पर स्वय ही अकुश लगाना चाहिए। उनकी सिफारिशो के अनुसार एक उच्च अधिकारी को सत्ता का यथासम्भव कम प्रयोग करना चाहिए और अन्य प्रकार के प्रभावो एव दबावो का काम म लाना चाहिए।

✓नेतृत्व की सीमाए
(The Limitations of Leadership)

नेता का चाहे कितनी भी सत्ता प्रदान कर दी जाए वह उसका प्रयोग अनियन्त्रित रूप से नहीं कर सकता। प्रो चार्ल्स मरियम (Charles E Merriam) ने राज ।तिक सत्ता के प्रयोग की सीमाओ का वर्णन किया है। यदि हम प्रशासकीय सगठनो के इतिहास पर एक विहगम दृष्टि डालें तो शीघ्र ही यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनके नेता किस सीमा तक वास्तव म नेतृ व करते थे। प्रत्यक सगठन के सदस्या का नेतृत्व स्वीक र नही किया जाता या उसके प्रति उदासीनता बरती जाती है। इस प्रसग म हबर्ट सा मन की लक्षण युक्त अ भ यक्ति उल्लेखनीय है कि एक नेता या उच्च अधिकारी केवल एक बस का चालक होना है। यदि वह चालक यात्रियो को वाछित दिशा म न ले जाए तो यात्रियो द्वारा वह छोड़ दिया जाएगा। चालक अपनी स्वेच्छा का प्रयोग बहुत कम कर सकता है। व केवल यह ी देख सकता है कि किस सडक का प्रयोग किया जाय।[1] इसी प्रकार जब सगठन का नेता अपनी शक्ति का प्रयोग सगठन के लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए करता है तो वह प्रभावशाली बना रहता है। इसके विपरीत यदि उसकी आज्ञाए सगठन के लक्ष्यो से भिन्न हु तो वह अपना प्रभाव खो देगा और उसकी सत्ता अर्थहीन बन जाएगी।

साराश म सगठन म सत्ताधारी की स्थिति एव व्यवहार का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि वह जिस सत्ता का प्रयोग करता है वह किसी प्रकार भी अनियन्त्रित एव अबाधित नही होती वरन् उस पर अनेक प्रकार के

1 H b t A S m n Ad in trat B h iour p 134

किस प्रकार का व्यवहार करेंगे। सत्ता पर मनोविज्ञान का प्रभाव मर्यादित होता है। न्यूट सायमन आदि विचारकों का कहना है कि मनोवैज्ञानिक सूक्तियां सत्ता के क्षेत्र को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण होती हैं तथा उस मात्रा का भी स्पष्ट करती हैं जिसमें अधीनस्थ की आज्ञाओं का पालन किया जायगा किन्तु जब सत्ता को स्वीकार कर लिया जाता है तो इसके द्वारा यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि अधीनस्थ का व्यवहार क्या होगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान प्रशासन में एक शर्त के रूप में प्रवेश पाता है जिस प्रकार कि भौतिक शारीरिक तथा वातावरण सम्बन्धी अन्य तत्त्व प्रवेश पाते हैं यह प्रशासन की तकनीक का एक भाग है इसे प्रशासन की विचारधारा का भाग नहीं माना जा सकता।[1]

सत्ता के स्रोत
(Sources of Authority)

किसी भी व्यावसायिक उपक्रम में सत्ता हमारे समाज में निजी सम्पत्ति पर वैधानिक अधिकारों पर आधारित है। एक व्यावसायिक संगठन में एक मालिक चाहे वह प्रोप्राइटर हो, साझेदार हो अथवा अंशधारी हो, उसे वैधानिक अधिकार है कि वह उसकी सम्पत्ति का उपयोग करने हेतु निर्देशन दे। इस स्वामित्व के नियन्त्रण की सीमा उसकी उस व्यवसाय में वैधानिक स्थिति पर निर्भर है। निगमों (Corporations) में अंशधारियों को मताधिकार प्राप्त हो अथवा न हो सकता है लेकिन जिन्हें मताधिकार प्राप्त है वे सचालक मण्डल (Board of Directors) के सदस्यों का चुनाव कर सकते हैं। सचालक मण्डल द्वारा सभापति (Chairman) का चुनाव किया जाता है जो कि इसका मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। स्वामित्व से लेकर प्रबन्ध के क्रियात्मक स्तर (Operating level of management) तक के सम्बन्धों का अध्ययन करके इनकी अधिकार सत्ताओं का पता लगाया जा सकता है। यदि सभापति या अध्यक्ष किसी बाहरी व्यक्ति को मासिक वेतन पर नियुक्ति किया जाता है तो उसके अधिकार अलग होंगे। इसके विपरीत यदि सभापति अथवा अध्यक्ष कम्पनी का स्वामी एवं प्रबन्धक दोनों का कार्य करता है, तो वह दोनों अलग अलग लेकिन एक दूसरे से सम्बन्धित कार्यों को कर रहा है।

निरकुश बनाम प्रजातान्त्रिक सत्ता
(Autocratic Versus Democratic Authority)

किसी भी व्यावसायिक संगठन में सत्ता का स्रोत उच्च स्तर में होता है। यह संगठन के विभिन्न स्तरों को एक दूसरे से जोड़ देती है। उच्च स्तर से प्राप्त सत्ता संगठन के माध्यम से विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त होती है। धर्मार्थ संस्थाओं

[1] Sim n p cit p 1

(Charitable Institutions) अथवा न लाभ न हानि वाली संस्थाओं में उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सत्ता उच्च स्तर के स्थान पर निम्न स्तर से प्राप्त होती है। प्रजातान्त्रिक अधिकार-सत्ता के अन्तर्गत भी सत्ता का स्रोत निम्न स्तर का होता है। उदाहरणार्थ श्रम संघ निम्न स्तरीय साधारण श्रमिकों से शुरू होता है तथा स्थानीय, जिला, प्रान्त, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर इनके संगठन बनाये जाते हैं।

इस प्रकार एक श्रम संगठन में सत्ता जो कि एक न लाभ न हानि वाला संगठन है, अधिकार सत्ता निम्न स्रोत में निम्न प्रकार प्राप्त की जा सकती है—

स्थानीय सत्ता के जनसाधारण सदस्य

↓

स्थानीय संघ के अधिकारी

↓

जिला स्तरीय अधिकारी

↓

अन्तर्राष्ट्रीय संघ के अधिकारी
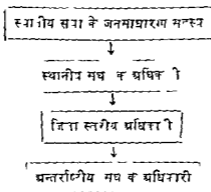
एक व्यावसायिक संगठन में उच्च स्तर से निम्न स्तर वाली सत्ता सर्व प्रथा है क्योंकि एक उपक्रम के प्रबन्ध की सफलता के लिए यह आवश्यक है। हमारी प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था में सामूहिक स्तर में कार्य करने पर किए गए अनुसंधानों आदि के कारण क्रियात्मक समूहों की प्रभावपूर्णता में सुधार हेतु प्रजातान्त्रिक तरीकों पर जोर दिया गया है। सभी प्रबन्धक निर्णयन (Decision making) और समस्या निवारण हेतु प्रजातान्त्रिक तरीकों को अधिक उपयुक्त नहीं मानते हैं। कई कार्यकारी अधिकारी श्रमिकों की सहभागिता को भी एक प्रकार से उनकी अधिकार सत्ता का छीनना समझते हैं।

अधिकार-सत्ता की समस्या का एक प्रभावपूर्ण प्रस्ताव सत्ता के स्पष्ट अर्थ समझने अधिकारात्मक व्यवहार और समूहों द्वारा प्रजातान्त्रिक कार्य करने आदि पर निर्भर करता है। प्रबन्धकों को एक बीच का रास्ता अपनाना होगा जो कि न तो निरंकुशता को बढ़ावा दे और न अधिक प्रजातान्त्रिक प्रणाली को ही प्रोत्साहित करेगा। प्रजातान्त्रिक कार्यवाही के हमारे ज्ञान को किस प्रकार काम में लाया जाए इसके लिए हमें अनुसंधान करना होगा। आधुनिक प्रगतिशील प्रबन्धक अपना अधिकांश समय साझेदारी प्रबन्ध (Participative Management) पर अनुसंधान करने में लगा रहे हैं। अतः किसी भी व्यावसायिक संगठन में प्रजातान्त्रिक सामूहिक कार्य की विचारधारा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

सत्ता के भेद
(Kinds of Authority)

किसी भी प्रशासनिक संस्थान में सत्ता का भारार्पण (Delegation of Authority) स्पष्ट एवं उचित करने हेतु संगठन के अधिकारियों को सभी प्रकार की सत्ता का ज्ञान होना आवश्यक है। सत्ता मुख्य रूप से रेखा, कर्मचारी तथा क्रियात्मक होती है। सत्ता सम्बन्धों से ही उपक्रम के विभिन्न भागों को जोड़कर भी उनका समन्वय किया जाता है। अधिकार सत्ता के विभिन्न भेदों का विवरण निम्न प्रकार से दिया जाता है—

1 रेखा सत्ता (Line Authority)—यह एक संगठन की मूल एवं आधारभूत अधिकार सत्ता है। यह दूसरों को प्रभावित करने, उनको आदेश देने, कार्य करने अथवा निश्चय करने सम्बन्धी अन्तिम सत्ता है। इसी के माध्यम से संगठन में की जाने वाली समस्त क्रियाओं का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अनुमोदन किया जाता है। इसी से संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के विचारों को जानकर उनका निर्देशन किया जाता है और उनको निर्णयों, योजनाओं, नीतियों, पद्धतियों, विधियों और उद्देश्यों के अनुरूप बनाया जाता है। यह एक कर्मचारी और उसके पर्यवेक्षक के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों का हृदय है। रेखा अधिकार सत्ता न केवल निश्चय करने का अधिकार मानती है बल्कि यह आदेश देने का अधिकार है। रेखा सत्ता एक प्रत्यक्ष सत्ता है जो कि एक अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर प्रत्यक्ष रूप से लागू की जाती है और इस प्रकार यह सत्ता ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होती है।

एक संगठन के कर्मचारियों की क्रियाओं को सत्ता द्वारा आदेशित करना अथवा उनको अन्तिम रूप से अनुमोदित करना एक कर्मचारी अधिकारी का विशेषाधिकार मात्र है। पर प्रबन्धकीय व्यक्ति उनके अधिकार क्षेत्र तक उनके कार्यों को निश्चित करने, योजना बनाने, संगठित करने अथवा नियन्त्रण करने का कार्य कर सकते हैं लेकिन वे दूसरों तक अपने अधिकारों को आदेश के रूप में काम में नहीं ले सकते हैं। जब कभी भी यदि कोई व्यक्ति दूसरों के व्यवहार को निश्चित करता है तो वह प्रबन्धकीय कार्य करता है।

यद्यपि रेखा सत्ता आदेश देने का अधिकार है लेकिन यह एक असीम सत्ता (Absolute Authority) नहीं है। प्रत्येक अधिकारी जो इसका उपयोग करता है और इससे प्राप्त परिणामों के लिए जिम्मेदार होता है उसे हमेशा सोच समझकर तथा सत्ता के भारार्पण क्षेत्र का ध्यान में रखते हुए इसका प्रयोग करना चाहिए। इससे संगठन के निर्धारित उद्देश्यों को पूरा किया जा सकेगा। इसके लिए सभी व्यक्तियों द्वारा स्वीकृति दी जानी चाहिए।

रेखा-सत्ता का प्रमुख उद्देश्य संगठन के कार्य को प्रभावपूर्ण ढंग से करना है। यह कई रूपों में किया जाता है—

1 इससे संगठन में क्रियात्मक क्रियाओं को आसानी से किया जा सकता है। इससे व्यवसाय में विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने की शक्ति का सृजन होता है। संदेशवाहन के माध्यम से नेतृत्व भी महत्वपूर्ण ढंग से किया जाता है।

2 विभिन्न व्यक्तियों की सत्ता के क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण करके नियन्त्रण करने में मदद करती है। इसकी सहायता से उपक्रम की योजनाओं और नीतियों के अनुरूप कर्मचारियों से काम लिया जाता है।

3 रेखा सत्ता से विभिन्न प्रस्तावों अथवा कार्यों की स्वीकृति एवं अनुमोदन प्राप्त किया जा सकता है। बिना स्पष्ट अधिकार सत्ता के संगठन में कार्यरत कर्मचारी निश्चित नहीं होते कि उनकी क्रियाएं प्रभावी होंगी अथवा नहीं।

रेखा-सत्ता केवल उन्हीं प्रबन्धकों को दी जाती है जो व्यावसायिक उपक्रम के आधारभूत कार्यों में लगे हुए हैं। अधिकांश निर्माणकारी उद्योगों में प्रबन्धक के आधारभूत कार्य उत्पादन और विक्रय माने जाते हैं। इसी प्रकार विपणन उपक्रम (Marketing Enterprise) में भी क्रय (थोक एवं फुटकर) दोनों ही आधारभूत कार्य हैं जबकि यही एक निर्माणकारी उद्योग में सेवा कार्य (Service Function) के अन्तर्गत आता है।

रेखा-सत्ता को समझने हेतु निम्नांकित चित्र दिया जा सकता है—
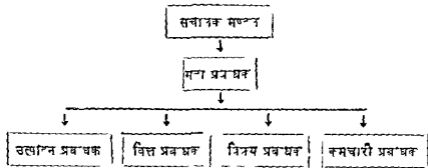
उपरोक्त चित्र में सत्ता का प्रवाह (Flow of Authority) ऊपर से नीचे की ओर है। सर्वोच्च सत्ता अधिकारी संचालक मण्डल है जिसके नीचे महाप्रबन्धक (General Manager) काम करता है तथा महाप्रबन्धक अपने नीचे उत्पादन, वित्त, विक्रय एवं कर्मचारी विभागों के अध्यक्षों को निर्देश अथवा आदेश देकर काम करवाता है। विभिन्न विभागाध्यक्ष अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश देकर उनके सम्मान के लिए हुए उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु प्रेरणा देते हैं।

2 कर्मचारी सत्ता (Staff Authority)—इस सत्ता का व्यवसाय और उद्योग

म ग्राही तरम न ी समभा गया है। इस भली भाति न समभने के कारण ही कामन ी अधिकारी के कार्यों के विषय म भ्रम उ पन हो जाता है। किसी निए हुए सगठन म कमचारी अधिकार सत्ता का समभना बडा कठिन हो जाता है जबकि मके साथ स रता अ धकार सत्ता भी ह। स प्रकार की सत्ता का क्षेत्र सीमित हात ह जिसम आदेश देने के अधिकारी की अनुपस्थिति र ती है और इसका विभिन कार्यों जम ियोजन सिफारिश सलाह अथवा सहायता करना आदि म सहायक ाय क रूप म मन्त्र देना जाता है। स प्रकार की अधिक र सत्ता के अन्तगत रेखा कमचारियो को स्टाफ अधिकारी (Staff Officers) सलाह देने का काय करत हैं और स सत्ता का प्रवाह नीचे स ऊपर की ओर पाया जाता है। इसम रेखा सत्ता की भांति अधिकारियों को आदेश दन क अधिकार नही होते हैं। इनका काय केवल विभिन्न सलाह रेख अधिकारियो का देना होता है। विश न्तो को अलग अलग विभ गो म ि युक्त करने पर उन्हें अपने विभाग म कायरत कमचारियो पर अधिकार सत्ता अवश्य प्राप्त होती है। इनका मूल उद्देश्य विभिन्न उच्च अधिकारियों की सलाह के रूप म सेवा करना है। इस प्रकार य अधिकारी जब अन्य रेखा अधिकारियों को सलाह दन का काय करत है तब स्टाफ सत्ताधारी होते है लेकिन अपने ही विभागो का नियन्त्रण करन म रेखा अधिकारियो के रूप म काय करत है अर्थात् य स्टाफ तथ रेखा दोनो सत्ताओ का उपयोग करते हैं।

किसी भी उपक्रम क बढत हुए आकार एव जटिल समस्याओ के परिणाम स्वरूप कमचारी सत्ता (Staff Authority) उत्पन्न होती है। एक बडे आकार वाल उपक्रम म रेखा-सत्ता अपर्याप्त होती है। इसलिए कुछ अतिरिक्त स्थानो का सृजन किया जाता है और इनम विशेषज्ञो की नियुक्तियां कर दी जाती हैं। य अपने-अपने क्षेत्र मे विशेष कुशलता रखते हैं और इनकी सलाह के आधार पर रेखा अधिकारी संस्थान की विभिन समस्याओ का सामना करने म सफल हो जाते हैं।

विशेषज्ञो की नियुक्ति के कारण सगठन म श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण क लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। इसस विभिन उत्पादन क साधनो का अधिकतम उपयोग सभव हो जाता है। विभिन्न क्रियाओ का एक ही विभाग म केन्द्रीयकरण होन स नीति नियन्त्रण म आसानी रहती है। विभिन महत्वपूर्ण सेवा काय जसे कार्मिक (Personnel) वित्त क्रय आदि को प्रभावपूर्ण ढग स नियन्त्रित किया जा सकता है।

स्टाफ अधिकारी विभिन रेखा अधिकारियो द्वारा निष्पादित काय का मूल्यांकन करत हैं और विभिन्न विभागों उप विभागो एव क्रियाओ म सन्तुलन स्थापित करते हैं।

वतमान समय म हम अधिकाश उपक्रमो म रेखा अधिकार-सत्ता एव कमचारी अधिकार-सत्ता दोनो का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। केवल छोटे संस्थानो म कुछ सीमा तक रेखा सत्ता मिलती है। लेकिन इस दोहरी प्रणाली के

सफलतापूर्वक कार्य करने हेतु दोनों में ही पारस्परिक सहयोग एवं तालमेल होना आवश्यक है। लेकिन फिर भी कुछ कारणों से इस दोहरी व्यवस्था को चलाने में कठिनाई उत्पन्न होती है। कई रेखा अधिकारी यह नहीं चाहते हैं कि उन्हें कर्मचारी अधिकारी सलाह दें और कार्य पूरा करने में अपनी साख बढ़ाएँ। बिना संकट के रेखा अधिकारी स्टाफ अधिकारियों से सलाह ही नहीं लेते हैं।

इसके साथ ही कभी-कभी कर्मचारी अधिकारी कई विषयों पर ऐसी सलाह देते हैं जिसे व्यवहार में लागू करना कठिन हो जाता है।

कई बार रेखा अधिकारी को कर्मचारी अधिकारी का कार्य दे दिया जाता है जिसमें वह उस पूर्ण सफलता से नहीं कर पाता है। इन कठिनाइयों के बावजूद भी रेखा एवं कर्मचारी अधिकारियों की इस दोहरी प्रणाली को सफलतापूर्वक लागू करने हेतु निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं[1]—

1 व्यावहारिक एवं उपयोगी सलाह देने हेतु सुरक्षित एवं सुप्रशिक्षित व्यक्तियों को ही स्टाफ अधिकारियों के पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए। इन अधिकारियों द्वारा रेखा अधिकारियों को अपनी ठोस सलाह का समर्थन तथा इससे प्राप्त होने वाले लाभों के विषय में जानकारी देनी चाहिए।

2 रेखा अधिकारियों को भी किसी भी महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में पूर्व विशेषज्ञों से सलाह लेने की आदत हो जानी चाहिए। विशेषज्ञों से सलाह नहीं लेने के पीछे पर्याप्त कारण होने चाहिए। दोनों प्रकार के अधिकारियों के बीच संघर्ष को टालने हेतु एक दूसरे के कार्यों को समझते रहना चाहिए।

3 स्टाफ अधिकारियों को कुछ अधिकार प्रदान करने चाहिए जिससे कि बिना उनकी स्वीकृति के रेखा अधिकारी निर्णय न ले न सकें।

4 किसी विषय पर दोनों अधिकारियों में मतभेद होने पर उच्च महा प्रबन्धक को अपील करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इससे दोनों के विवाद समाप्त हो जाएँगे तथा दोनों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो जाएँगे।

क्रियात्मक सत्ता (Functional Authority)—यह कर्मचारी सत्ता की भाँति रेखा अधिकार-सत्ता की अधीनस्थ प्रणाली है। यह रेखा तथा स्टाफ अधिकार-सत्ता के बीच की स्थिति है। यह सत्ता अधिकांश सेवा विभागाध्यक्षों (Service Chiefs) को सौंपी जाती है जिसके अन्तर्गत इन अधिकारियों को अन्य विभागों के कर्मचारियों को आदेश देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है चाहे ये विभाग सेवा विभाग हों अथवा क्रियात्मक विभाग हों। इस अधिकार-सत्ता की सीमा अन्य विभागों के कर्मचारियों के क्रियात्मक मार्गदर्शन तक

1 Ch tt η S S Man gement—Its P nciples a d Te hn q s P 134

होती है जिससे कि विभिन्न नीतियों, प्रणालियों और कार्यात्मक तरीकों की जानकारी मिल सके। क्रियात्मक अधिकार सत्ता स्टाफ सत्ता का ही परिणाम है। यह अधिकार सत्ता उस समय उत्पन्न होती है जब कर्मचारी अधिकारी न केवल सलाह ही देता है बल्कि इन सिफारिशों को प्रभावपूर्ण ढंग से कैसे लागू करने के बारे में भी बताता है।

इस सत्ता के अन्तर्गत रेखा अधिकारियों के अधीनस्थ कर्मचारियों को न केवल अपने अधिकारी का आदेश मानना पड़ता है बल्कि उस क्रियात्मक अधिकारी का भी आदेश मानना पड़ता है। अतः एक ही कर्मचारी के एक से अधिक अफसर होते हैं। यही सबसे बड़ी कमी इस प्रकार की संगठन संरचना की है कि इसमें आदेश की एकता के सिद्धान्त (Principle of Unity of Command) की अवहेलना की जाती है। लेकिन आधुनिक व्यवसाय जगत में निरन्तर सरकारी नियमन, श्रम संघ के कार्य और जन समर्थन आदि में परिवर्तन हो रहे हैं और इन परिवर्तनों का व्यवसाय में प्रतिकूल प्रभाव न हो इसके लिए क्रियात्मक अधिकार सत्ता का होना आवश्यक है। कर्मचारी अधिकारियों को ही विभिन्न विभागों के कर्मचारियों को मार्गदर्शन देने हेतु क्रियात्मक अधिकार-सत्ता प्रदान नहीं की जाती है बल्कि विभिन्न क्रियाओं के समन्वय हेतु रेखा अधिकारियों को भी इस प्रकार की अधिकार सत्ता प्रदान की जाती है। उदाहरणार्थ वस्तुओं को पैक करने का कार्य उत्पादन विभाग का है लेकिन विक्रय प्रबन्धक इस कार्य को पूरा करने के लिए पैकिंग के कार्य में रुचि रखता है और कभी-कभी उसे क्रियात्मक अधिकार-सत्ता प्रदान की जाती है जिससे कि वह उत्पादन विभाग के पैकिंग करने वाले कर्मचारियों का मार्गदर्शन कर सके। टेलर ने प्रबन्ध के क्षेत्र में इसी अधिकार-सत्ता का अनुमोदन किया है।

इस प्रकार की सत्ता का सबसे बड़ा दोष आदेश की एकता के सिद्धान्त का अभाव पाया जाता है। एक ही कर्मचारी को कई अधिकारियों के आदेशों का पालन करना पड़ता है। इसमें कौन किसके प्रति उत्तरदायी है तथा किसका कौन अधिकारी एवं अधिकार क्षेत्र है इसके अभाव में विभिन्न कर्मचारी अपने अधिकारों एवं दायित्वों को पूर्ण रूप से निभा नहीं सकते हैं। लेकिन इस दोष को दूर करने हेतु दो उपाय काम में लिए जा सकते हैं—

1. अधीनस्थ कर्मचारियों को अपने रेखा अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए न कि क्रियात्मक अधिकारियों के प्रति।

2. क्रियात्मक सत्ता की सीमा संगठन के प्रथम स्तर तक ही सीमित रहनी चाहिए जो कि रेखा अधिकारी के पद से नीचे आती है। सेवा विभाग अधिकारियों (Service Department Executives) को स्टाफ तथा क्रियात्मक अधिकार-सत्ता प्राप्त होती है तथा उनके स्वयं के विभाग में रेखा अधिकार-सत्ता भी प्राप्त होती है।

किसी भी संगठन में किस प्रकार की अधिकार-सत्ता का उपयोग किया जाए यह उस उद्योग की प्रकृति और कर्मचारियों की इच्छा तथा उच्चस्तरीय प्रबन्धकों पर निर्भर करती है संस्थान में पाई जाने वाली समस्याओं के आधार पर ही रखा कर्मचारी एवं नियामक अधिकार-सत्ता माँगी जा सकती है

सत्ता का भारार्पण
(Delegation of Authority)

संगठन की एक सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया अधिकार-सत्ता का भारार्पण है। सभी क्षेत्रों में सत्ता का भारार्पण आवश्यक है। एक व्यावसायिक निगम (Business Corporation) में सर्वोच्च स्थान संचालक मण्डल (Board of Directors) का होता है। वे महा प्रबन्धक (General Manager) को अधिकार सौंपते हैं। इनके नीचे विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्ष फोरमैन सुपरवाइज़र तथा श्रमिक कार्य करते हैं। अतः विभिन्न कार्य एक व्यक्ति नहीं कर सकता है और विभिन्न कार्यों हेतु विभिन्न व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। ये विभिन्न व्यक्ति अपने दिये हुए अधिकारों से अपने दायित्वों को पूरा करते हैं। सत्ता का भारार्पण संचालक मण्डल द्वारा महा प्रबन्धक को होता है। महा प्रबन्धक फिर अपने अधीनस्थ अधिकारियों एवं कर्मचारियों को इसका एक भाग अपने पास रखकर शेष का भारार्पण करता है। इस प्रकार अधिकार सत्ता का भारार्पण का प्रवाह उच्चस्तरीय प्रबन्ध से निम्न स्तरीय प्रबन्ध तक होता है। विभिन्न अधिकारियों का संगठन में जैसी स्थिति होती है उसी के अनुसार उनको अधिकार-सत्ता का भारार्पण कर दिया जाता है। यह एक औपचारिक संरचना है जिसके माध्यम से सत्ता सम्बन्धों को स्थापित किया जाता है। एक परिवार का मुखिया भी अपने अधिकारों में से कुछ अधिकारों का भारार्पण उसकी धर्मपत्नी उसके बड़े लड़के तथा उसकी पत्नी इत्यादि को करता है। बिना अधिकार दिए पूर्ण रूप से कार्य नहीं किया जा सकता है।

अर्थ (Meaning)—सत्ता के भारार्पण का अर्थ प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों में से कुछ कार्य अन्य व्यक्तियों को सौंपने से है। इस कार्य को सौंपने की प्रक्रिया के साथ-साथ अधिकार तथा दायित्व भी सौंपे जाते हैं। विभिन्न प्रबन्ध विशेषज्ञों ने भी भारार्पण की परिभाषाएँ दी हैं। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

1. प्रो. चटर्जी (S S Chatterjee) के अनुसार प्रबन्धक और उसके अधीनस्थ चाहे वे प्रबन्धक हैं अथवा गैर प्रबन्धक के बीच प्रबन्धकीय कार्य अथवा क्रियात्मक कार्य में हिस्सा देना ही भारार्पण में सम्मिलित है।[1]

2. प्रो. ब्रेच (F E L Brech) के शब्दों में संक्षेप में भारार्पण का अर्थ

[1] S S Chatterjee Management p 107

है प्रबन्ध प्रक्रिया के चार तत्त्वों में से प्रत्येक का एक अंश दूसरों को हस्तान्तरित करना अर्थात् अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं को आदेशित करना और इसी प्रकार के व्यक्तियों की क्रियाओं हेतु निर्णय लेने की जिम्मेदारी लेना जो कि इन क्रियाओं के नियोजन, समन्वय एवं नियन्त्रण से सम्बन्ध रखती है।[1]

3 श्री एलन (Louis A Allen) के अनुसार भारार्पण प्रबन्ध की शक्ति है वह एक प्रक्रिया है जिसको अपनाकर प्रबन्धक अपने कार्य का विभाजन करता है जिससे वह कार्य के उसी भाग को सम्पादन कर जिसे केवल वह ही संगठन में अपने विशिष्ट स्थान के कारण प्रभावी रूप से कर सकता है तथा जिससे वह शेष काम में दूसरों की सहायता प्राप्त कर सकता है।[2]

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि भारार्पण स्वयं संगठन प्रक्रिया (Organisation Process) का एक अभिन्न अंग है जिससे कार्यकारी प्रशासक अथवा प्रबन्धक कम्पनी के उद्देश्यों हेतु अन्य व्यक्तियों को कार्य में हिस्सा लेने के लिए सम्भव प्रयत्न करते हैं। इसमें कार्यों और उत्तरदायित्वों को सौंपने की एक अतिरिक्त प्रक्रिया को शामिल किया जाता है जिससे कि संगठन का नेतृत्व करने वाले को कार्य करने में सहायता मिल सके। इसमें अधिकार भी प्रदान किए जाते हैं जिससे कि अपनी जिम्मेदारियों को पूर्ण रूप से निभा सकें।

आधुनिक व्यावसायिक जगत में विभिन्न जटिलताओं एवं समस्याओं के कारण विभिन्न अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं। एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी समस्त कार्य नहीं कर सकता है। अतः वह अपने अधीनस्थों को कार्य सौंप देता है जिससे कि उसके पास उच्च स्तरीय प्रबन्ध के कार्यों के लिए समय आसानी से मिल जाता है। इस विधि को जिसके अन्तर्गत अधिकारी अपने कार्यभार को अपने अधीनस्थों में बाँट देते हैं और इस कार्य को करने हेतु दायित्व एवं अधिकार सौंप देते हैं भारार्पण की प्रक्रिया कहते हैं।

भारार्पण के माध्यम से उच्च प्रबन्धक अपने कार्यभार को कम कर देते हैं और अन्य उच्च स्तरीय निर्णयों में अधिक समय लगा सकते हैं। इससे प्रबन्धक की कार्यकुशलता में वृद्धि हो जाती है और वह प्रभावपूर्ण ढंग से अपना कार्य कर सकने में सफल होता है। इससे प्रबन्धक एवं उनके अधीनस्थ कर्मचारियों के सम्बन्ध प्रभावित होते हैं तथा कार्य निष्पादन भी इससे प्रभावित होगा। उचित भारार्पण के अभाव में अधीनस्थ कर्मचारी कई अधिकारियों से आदेश प्राप्त करेंगे और वे असमंजस में पड़ जाएँगे कि किस अधिकारी का आदेश माना जाए।

यदि कार्यभार को बाँटा नहीं जाए तथा उपक्रम में अधिकारों का बटवारा

1 F E L B h Org at F am work (M n g m nt p 19
2 L u A Alle M g me t & Orga sat o p !

नहीं हो तो वह संगठन ही व्यर्थ है। भारार्पण एक सीमेंट की भांति है जो कि विभिन्न कार्यों को एकत्रित करने तथा विभिन्न व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध निर्धारित करने का कार्य करता है।

भारार्पण के तत्व (Elements of Delegation)—भारार्पण प्रक्रिया में कुछ तत्त्व अथवा पहलू होते हैं जिनके बिना भारार्पण की प्रक्रिया अधूरी रह जाती है। इन्हें हम भारार्पण सत्ता के आधारभूत कदम (Basic Steps in Delegating Authority) भी कह सकते हैं।

विलियम न्यूमन (William Newman) के अनुसार भारार्पण प्रक्रिया में तीन मुख्य पहलुओं को शामिल किया जाता है। ये हैं[1]—

1 कार्यभार सौंपना (Assignment of Duties)—भारार्पण प्रक्रिया में सबसे पहले यहां प्रबन्धक को यह निश्चय करना पड़ता है कि संस्थान में कौन-कौन सी प्रवृत्तियां निर्धारित हैं तथा उनमें से किन का वह स्वयं करेगा तथा किन का भार वह सहयोगी प्रबन्धकों (उत्पादन प्रबन्धक वित्त प्रबन्धक विक्रय प्रबन्धक कर्मचारी प्रबन्धक आदि) को सौंपेगा। कार्यभार का विभाजन एक प्रबन्धक एवं उसके अधीनस्थ कर्मचारियों में तभी सम्भव होता है जबकि कार्य को आसानी से विभाजित किया जा सकता है। कार्यभार सौंपने हेतु कार्य का विभाजन आवश्यक है। भारार्पण का अर्थ समस्त दायित्वों का त्यागना नहीं है क्योंकि एक प्रबन्धक उसके समस्त कार्य को उसके अधीनस्थों को नहीं सौंप सकता है। भारार्पण की सफलता के लिए आवश्यक है कि संगठन में प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व निश्चित हो।

2 सत्ता (Authority)—सत्ता की कई रूपों में व्याख्या की गई है। वैधानिक अधिकार (Legal Authority) से तात्पर्य किसी व्यक्ति को वैध निर्णय कार्यवाही करने के अधिकार से है। तकनीकी अधिकार (Technical Authority) का अर्थ है किसी विशिष्ट क्षेत्र में एक व्यक्ति के दृष्टिकोण को मान्यता देना। अन्तिम अधिकार सत्ता (Ultimate Authority) किसी व्यक्ति द्वारा कुछ कार्य कार्यवाही करने के प्राप्त अधिकारों के स्रोत से होता है। क्रियात्मक अधिकार (Operational Authority) का अर्थ अधीनस्थों को कुछ निर्णय लेने का अधिकार है। प्रशासनिक अधिकार (Administrative Authority) में कुछ स्वीकृतियां अथवा अधिकारों को शामिल किया जाता है। अधिकार हमेशा असीमित नहीं होते हैं। किसी भी व्यावसायिक संगठन में कार्य का बंटवारा उच्च स्तरीय प्रबन्धकों एवं उनके अधीनस्थों के बीच किया जाता है लेकिन केवल कार्य के बंटवारे से ही उद्देश्य पूरे नहीं होते हैं बल्कि कार्य को पूरा करने हेतु उनको सत्ता भी प्रदान की जानी चाहिए। जिस प्रकार से एक प्रबन्धक द्वारा किसी कार्य के सम्पादन हेतु अधिकार

1 William Newman Administrative Action p 165

प्रदान किए जाते हैं उसी प्रकार अधीनस्थों को भी अधिकार दिए जाने चाहिए। किसी भी अधीनस्थ अधिकारी अथवा कर्मचारी द्वारा कार्य का प्रभावपूर्ण ढंग से पूरा करने हेतु अधिकार भी दिए जाने चाहिए। जिस प्रकार एक प्रबन्धक के सम्पूर्ण कार्य का भारार्पण उसके अधीनस्थों को नहीं हो सकता है उसी प्रकार सत्ता भी पूर्ण रूप से सौंपी नहीं जा सकती। कुछ भाग रिजर्व के रूप में रखना आवश्यक है। उदाहरणार्थ एक विक्रय प्रबन्धक को अपने नीचे के विक्रेताओं को स्थान कीमत निर्धारण आदि अधिकार प्रदान करने चाहिए जिससे कि वस्तु की बिक्री बढ़ाई जा सके।

अधिकार सत्ता के स्रोत एक स्थिति से दूसरी स्थिति में बदलते रहते हैं। अधिकार स्थिति क्षमता ज्ञान व्यावहारिक आदि कारणों से उत्पन्न हो जाती है।

3 उत्तरदायित्व (Responsibility)—भारार्पण एकपक्षीय प्रक्रिया (One way Process) नहीं है। कोई भी भारार्पणकर्त्ता (Delegator) अपने अधीनस्थों को कार्य एव अधिकार देकर बेकार नहीं बैठ सकता है। वह अपनी जिम्मेदारी को अधीनस्थों के कार्य को देखकर निभाता है। वह अपने कार्य को पूरा करवाने हेतु अधीनस्थों पर निर्भर है तथा इसको पूरा करने हेतु अपने अधिकारी के प्रति उत्तरदायी है। एक निगम में महाप्रबन्धक अपने सहयोगी प्रबन्धकों जैसे उत्पादन प्रबन्धक वित्त प्रबन्धक विक्रय प्रबन्धक आदि से कार्य करवाने हेतु सचालक मण्डल के प्रति उत्तरदायी है और सचालक मण्डल शेयरधारियों के प्रति दायी है। कार्यभार सौंपने वाले प्रबन्धक अपने अधीनस्थों के कार्य को मापने एव उसका मूल्यांकन करने का कार्य करते हैं। कार्य एव अधिकार का भारार्पण किया जा सकता है लेकिन दायित्व का भारार्पण (Delegation of Responsibility) सम्भव नहीं है। एक प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को कार्यभार एव अधिकार सौंप सकता है लेकिन उनके सम्पादन हेतु वह उच्च स्तरीय अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होता है। इसीलिए प्रबन्धक को अपने अधीनस्थों को निर्देशित करने नियमित एव नियन्त्रित करने हेतु कुछ सुरक्षित अधिकार रखने चाहिए। अधीनस्थों को दिए गए कार्यों को पूरा करने का दायित्व हो जाता है और वे अपने अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

11

नेतृत्व
(Leadership)

नेतृत्व संगठन की आवश्यक स्थिति है। प्रत्येक संगठन या संस्थान में कर्मचारियों को कार्य हेतु अभिप्रेरित करने के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया जाता है उनमें नेतृत्व एक प्रमुख साधन और तकनीक है। प्रबन्ध जगत में नेतृत्व का अपना विशिष्ट स्थान है। बिना नेतृत्व के संगठन केवल व्यक्तियों और मशीनों के ढेर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। नेतृत्व के अभाव में कोई भी संगठन न तो व्यवस्थित और पूर्ण औपचारिक संरचना ही प्राप्त कर सकता है और न ही वांछित लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में प्रगति ही कर सकता है। संगठन में सत्ता का तत्त्व होता है और सत्ता के साथ नेतृत्व का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। संस्था या प्रतिष्ठान की सफलता नेतृत्व की किस्म पर निर्भर है। यदि कर्मचारी क्रियाओं का सही संचालन किया गया और उनका प्रभावी मार्गदर्शन किया गया तो संस्था की सफलता की पूरी सम्भावना रहती है। पीटर एफ ड्रकर ने लिखा भी है— प्रबन्ध किसी व्यावसायिक उपक्रम का प्रमुख और दुर्लभ प्रसाधन है। अधिकांश व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के असफल होने का प्रमुख कारण अकुशल नेतृत्व ही है।

नेतृत्व की आवश्यकता और महत्ता
(Necessity and Importance of Leadership)

नेतृत्व रूपी घोड़ा दबने पर ही संगठन की क्रिया रूपी बन्दूक चल सकती है अन्यथा नहीं। नेतृत्व वह योग्यता है जिससे नेता-संस्था के कर्मचारियों से इच्छित कार्य लेने में समर्थ होता है। आयोजन, संगठन, निर्णयन आदि प्रबन्धकार्य तब तक नगण्य हैं जब तक कि नेता अधिकारियों और कर्मचारियों को इच्छित दिशा में कार्य करने के लिए निर्देशित करके उन्हें कार्य के लिए अभिप्रेरित न कर दें। आधुनिक परिस्थितियों में प्रत्येक प्रकार के संगठन में—चाहे वह धार्मिक हो, सामाजिक हो, आर्थिक हो, राजनीतिक हो या व्यावसायिक हो, नेतृत्व का विशेष महत्त्व है। प्रबन्ध जगत में नेतृत्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका को पीटर ड्रकर के समान ही इंगित करते हुए जार्ज जी स्नावर ने लिखा है कि "अधिकांश व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के असफल होने में अकुशल नेतृत्व जितना उत्तरदायी है, उतना कोई अन्य कारण उत्तरदायी नहीं है।"

नेतृत्व का महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है कि यह संगठनात्मक व्यवहार का प्रभावशाली सुधारक है। यह ठीक ही कहा गया है कि अभी तक और अनेक बातों के स्थानापन्न (Substitute) विकसित हो गए हैं किन्तु नेतृत्व के स्थानापन्न का विकास नहीं हुआ है। लोक-कल्याणकारी राज्य के प्रसार के साथ सरकार का कार्य क्षेत्र दिन प्रतिदिन विस्तृत होता जा रहा है। विशालकाय प्रशासनिक संगठन जन्म ले चुके हैं और आए दिन नए बृहदाकार संगठन स्थापित हो रहे हैं। छोटे बड़े सभी संगठनों में जटिलताएं और विशेषीकरण घर करते जा रहे हैं। तकनीकी विकास ने एक विशेष स्थिति पैदा कर दी है। संगठनों के सामाजिक भागों में वृद्धि हो रही है। लोकतन्त्रात्मक राज्य में लोकतन्त्रात्मक संगठनों का जनता के प्रति उत्तरदायित्व निर्विवाद रूप से स्थापित हो चुका है। ये सभी परिस्थितियां हर प्रकार के संगठनों में कुशल नेतृत्व की मांग करती हैं।

प्रशासकीय नेतृत्व एक अनिवार्य तत्त्व बन गया है जिसके बिना किसी भी संगठन की कोई भी योजना पूरी नहीं हो सकती, किसी भी कार्यक्रम को गति नहीं मिल सकती, संगठन की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है और न ही समन्वय और सहयोग की प्रक्रियाएं प्रभावशाली बन सकती हैं। नेतृत्व के बिना छोटे बड़े किसी भी संगठन की स्थिति वही है जो समुद्र में नाविक के बिना नाव की होती है। जनसंख्या के प्रसार के साथ-साथ प्रशासकीय एवं व्यावसायिक संगठनों को अगणित कार्यक्रम सम्पादित करने पड़ते हैं जिनके क्रियान्वयन की सफलता बहुत कुछ उनके नेतृत्व पर निर्भर है। सच्चर हडसन ने ठीक ही लिखा है कि "नेतागिरी की समस्याओं का असाधारण महत्त्व आकार, जटिलता, विशेषीकरण, संगठनात्मक सत्ता, तकनीकी विकास और सामाजिक मांग जैसे क्रान्तिकारी तत्त्वों की वृद्धि के साथ बढ़ गया है।" (नेतृत्व द्वारा ही संगठन के वांछित उद्देश्यों की पूर्ति की दृष्टि से व्यक्तियों के समूह की क्रियाओं का सुचारु संचालन, मार्ग निर्देशन, नियन्त्रण और समन्वय सम्भव है।)

टेननबाम, वेश्लर एवं मसारिक (Tannenbaum Weschler and Massarik) के अनुसार नेतृत्व में एक अन्तर्व्यक्ति प्रभाव (Inter personal Influence) उपस्थित रहता है जिसका प्रयोग वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए परिस्थितियों के अनुरूप निर्देशन एवं सम्प्रेषण प्रणाली द्वारा किया जाता है। एक नेता अपने नेतृत्व का प्रयोग या उपयोग अपने अनुयायियों की परिस्थिति विशेष में प्रभावित करने के लिए करता है।[1] एक प्रभावी नेता में यह क्षमता और कुशलता है कि वह अपनी इच्छानुसार व्यक्तियों को कार्य करने के लिए बाध्य या अभिप्रेरित कर सके। वह विभिन्न ढंगों से कार्य करवा सकता है—यथा व्यक्तियों को

1 *Tannenbaum Weschler and Massarik* Leadership and Organisation A Behavioural Science Approach p 24

अपने व्यक्तित्व से प्रभावित करके नम्र निवेदन करके डरा धमकाकर अपने प्रतिष्ठा और पद का मत्व देकर या व्यक्तियों को उनके उत्तरदायित्व का भान कराकर। किसी भी सगठन म नतृत्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि नेता द्वारा जसा कि मामोरिया एव दशोरा न लिखा है निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति की चेष्टा की जाती है—

1 वह अपने सहयोगियों तथा अनुयायियों को अधिक काम के लिए प्रेरित करता है अर्थात् निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति करने तथा वाँछित स्तर तक उत्पादन बढ़ाने का प्रयास करता है।

2 वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करता है अत उनकी आवश्यकताओं का पर्याप्त ध्यान रखता है। इस दिशा मे कर्मचारियों के वेतन एव अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

3 वह शिखर प्रबन्धकों के सम्मुख अपने समूह के हितों को प्रस्तुत करता है तथा समूह के सदस्यों से सगठन के लक्ष्यों की पूर्ति म सहयोग लेता है।

साराशत प्रबन्ध जगत म नतृत्व की आवश्यकता और महत्त्व (1) सामूहिक क्रियाओं के सचालन के लिए (2) समन्वय की भावना के विकास के लिए (3) अधिकारियों और कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए (4) कर्मचारियों को कार्य हेतु अभिप्रेरित करने हेतु (5) अधिकारी वर्ग को सुविधा प्रदान करने के लिए (6) प्रबन्ध को सामाजिक प्राणी के रूप म परिवर्तित करने के लिए एव (7) व्यवसाय की सफलता के लिए है।

सगठन म नतृत्व की बढ़ती हुई आवश्यकता के फलस्वरूप ही आज प्रशासकीय और व्यावसायिक सगठनों के अधिकारी विभिन्न शिक्षण-सस्थाओं के व्यवस्थापक राजनीतिज्ञ आदि नतृत्व म अधिकाधिक रुचि लेने लग हैं। सत्ता और प्रबन्ध विषय का प्रत्येक लेखक नतृत्व पर अपनी दृष्टि टिकाता है। नतृत्व सुनिश्चित रूप स प्रारम्भ स ही प्रबन्ध क अध्ययन का एक अविभाज्य अग रहा है तथापि आज इसका अध्ययन अधिकाधिक विशिष्टीकृत होता जा रहा है।

नेतृत्व का अर्थ एव प्रकृति
(The Meaning and Nature of Leadership)

इस बात पर विचारक एकमत हैं कि नतृत्व अनिवार्य रूप स सगठन का केन्द्रीय तत्त्व है तथापि नतृत्व के गुणों और विशेषताओं के सम्बन्ध म मतभेद हैं। चेस्टर बर्नार्ड का कथन सही प्रतीत होता है कि नतृत्व के गुणों का पता स्वय नेता को या उसके पीछे चलने वालों को भी नहीं रहता है। उन्हीं के शब्दों म वास्तव में मैंने कोई ऐसा नेता कभी नहीं देखा जो पर्याप्त रूप स बुद्धिमत्तापूर्वक यह कह सके कि वह नेता बनने योग्य क्या है और न ही उस नेता के अनुयायी यह बता सकते हैं कि वे उसका अनुगमन क्या कर रहे हैं। हम नेतृत्व को किन्ही विशेष गुणों अथवा विशेषताओं की परिधि म नहीं बाध सकते क्योंकि इसका निर्धारण तो

सम्पन्न परिस्थिति आवश्यकता संगठन के लक्ष्य उद्देश्य और प्रकृति आदि विभिन्न तत्वों द्वारा होना है और ये तत्त्व अति परिवर्तनशील प्रकृति के हैं।

प्रशासकीय संगठन में नेतृत्व की विद्वानों ने विभिन्न शब्दों में परिभाषा की है। प्रसिद्ध विचारक हेमन ने लिखा है कि नेतृत्व को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा कार्यपालक व्यक्ति और संगठन के बीच मध्यस्थता कर कुछ विशेष लक्ष्यों के चयन और उनकी प्राप्ति द्वारा कल्पनात्मक रूप में दूसरों के कार्यों का निर्देशित पथ प्रदर्शित तथा प्रभावित किया जाता है। यह कार्य उसके द्वारा इस रूप में किया जाता है कि दोनों को अधिक से अधिक संतोष प्राप्त होता है।[1] हेमैन की इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि एक नेता संगठन के लक्ष्यों एवं उसके सदस्यों के लक्ष्यों के बीच एकरूपता तथा सहयोग पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है। वास्तव में अपने इन्हीं गुणों द्वारा एक नेता संगठन में अपने अधीनस्थों को सामान्य लक्ष्यों की दिशा में स्वेच्छा से चलने के लिए प्रेरित करता है। केवल सत्ता का सहारा लेना एक अच्छे नेता का गुण कभी नहीं माना जाता। रॉबर्ट टैनीबाम तथा फ्रेड मासारिक के मतानुसार नेतृत्व में सत्व नेता अनुगामी के व्यवहार को प्रभावित करता है।[2] इस परिभाषा के अनुसार नेतृत्व में दो व्यक्ति होते हैं—एक प्रभावित करने वाला और दूसरा प्रभावित होने वाला। इनमें पहला नेता होता है और दूसरा अनुगामी। अनुगामी को अपना व्यवहार नेता के निर्देशन तथा आदेशों के अनुसार संचालित करना होता है। यद्यपि नेतृत्व का मुख्य कार्य दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करना है और यह कार्य नेता के साथ में कुछ शक्ति एवं स्थिति की आवश्यकता पर जोर देता है तथापि अनेक विचारकों का मत है कि एक नेता के लिए सत्ता की औपचारिक रचना अनावश्यक होती है। कूञ्ज (Koontz) तथा ओडोनेल (O Donnel) ने लिखा है कि नेतृत्व एक सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लोगों को साथ ही वचन हेतु समझाने की क्रिया है।[3] टैनीबाम और मासारिक (Tannebamm and Massarik) की भांति बर्नार्ड (Bernard) ने भी नेतृत्व के तीन आधार माने हैं। ये हैं—व्यक्ति (Individual) अनुयायी (Followers) और दशाएं (Conditions)। उनका कहना है कि नेतृत्व व्यक्तित्व के स्वयं के उन गुणों का प्रदर्शित करता है जिनके द्वारा वे संगठन के व्यवहार में लोगों की क्रियाओं का निर्देशित करते हैं।[4]

मूनी तथा रेले (Mooney and Reiley) ने नेतृत्व को सत्ता का ही एक रूप माना है। यह रूप तब प्रकट होता है जब सत्ता प्रक्रियाओं में संलग्न होती है।[5]

1 H m nn op c t p 440
2 R b t T n bamm nd Fred M r k L d h p A Frame f R f n e" I4 gement S 4/ U t 1 57
3 H K a d O D nn l P pl f M n gem nt p 69
4 B d p it p 83
5 M o y J D a d R i f y A C Onwa d I try 1931 pp 32 33

मूनी तथा रेले न ननत्व एव सत्ता क बीच घनिष्ट सम्बन्ध माना है। सत्ता के बिना कोई भी व्यक्ति नेतत्व के उत्तरदायित्वा को पूरा नहीं कर सकता और सत्ता सम्पन्न प्रत्येक व्यक्ति एक नेता होता है। किन्तु जसा कि एल उर्विक आदि का मत है नेतृत्व का यह सही अथ नहीं माना जा सकता। नतृत्व शब्द म जो बातें निहित हैं उन्ह केवल सत्ता शब्द द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। कई बार हम ऐस व्यक्तियो को नतृत्व करते पाते हैं जो अधिकृत सत्ता का उपयोग नहीं करते। बर्नार्ड (Bernard) द्वारा प्रस्तुत की गई पूर्वोक्त परिभाषा को एल उर्विक (L Urwick) ने प्राथमिकता दी है किन्तु इसम कुछ सशोधन सुझाए हैं। वह नेतृत्व का व्यक्तियो म व्यवहार का एसा गुण मानता है जिसक द्वारा अन्य व्यक्ति नता का निर्देशन स्वीकार करते हैं।[1] इस प्रकार उर्विक नतृत्व के सत्तावादी रूप की अपक्षा उसक गुणात्मक पहलू पर अधिक जोर देता है।

नेतृत्व क्या नहीं है ?

(The Illusion of Lead rship)

नतृत्व शब्द बहुत ही लोकप्रिय है किन्तु इसका अथ अस्पष्ट एव भ्रमपूर्ण है। नतृत्व की अनक विशषताए बनाई गई है पर कई बार नतृत्व क य गुण परस्पर विरोधी प्रतीत होते ह। किसी व्यक्ति क व्यवहार म नतृत्व स सम्बन्धित एक या कुछ गुणो को देखकर उस नतृत्व की सज्ञा दे दी जाती है जबकि वास्तव म वह क्रिया नेतृत्व की न होकर कुछ और ही होती है। नतृत्व क अथ रूप एव प्रकृति के सम्बन्ध म भ्रम अथवा अस्पष्टता का मूल कारण यह हैं कि नतृत्व अनक गुणो का समन्वय है और इन गुणो की मात्रा एव प्रभाव निश्चित रहत हैं। यदि इस निश्चित मात्रा म कोई कमी हुइ अथवा किसी गुण का अभाव रहा तो हो सकता ह कि एक व्यक्ति का ऊपर स देखन पर नेतृत्व दिखाई देन वाला काय नतृत्व न होकर कुछ और हो। नतृत्व क सम्बन्ध म जिन परिस्थितियो एव अवस्थाओ द्वारा भ्रम उत्पन्न होता है। व मुख्यत य हैं—

1 नेतृत्व भय नहीं है—नतृत्व का आशय किसी एसी सत्ता स नहीं है जिसक अस्तित्व स अधीनस्था म भय पदा होता हो। प्राय जब कभी भी एक व्यक्ति क आगमन स किसी व्यक्ति-समूह म भय की लहर उठत हुए देखत हैं तो एसा लगता ह कि उस व्यक्ति एव व्यक्ति समूह क बीच नता और अनुयायी का सम्बन्ध ह किन्तु यह प्रतीति मिथ्या एव भ्रामक है। नेता की उपस्थिति म डर पदा होना आवश्यक नहीं है। नता क प्रति अनुयायियो क मन म श्रद्धा सम्मान एव आदर की भावना रहती है और कई बार नता के आगमन स अनुयायियो क मन म निर्भीकता क भाव जाग्रत होत ह। नता अनुयायियो का भय प्रदाता एव सरक्षक होता ह।

1 *L Urw ck* op cit p 38

व उसकी समस्याओं तथा कठिनाइयों को दूर करने में सन्तोषजनक रूप से भाग लेता है।

2 **केवल आज्ञा देना नेतृत्व नहीं है**—नेता अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप देने के लिए अपने अनुयायियों को आज्ञाएं एवं निर्देश देता है। अनुयायियों का यह कर्त्तव्य है कि वे इन आज्ञाओं को शिरोधार्य कर अपने व्यवहार का रूप निर्धारित करें। आज्ञा देना नेता के कार्यों एवं व्यक्तित्व का एक भाग है किन्तु उसे उसकी एक मात्र विशेषता नहीं कहा जा सकता और इसलिए प्रत्येक आज्ञा देने वाला नेता नहीं होता। एक स्वामी अपने सेवक को, पिता अपने पुत्र को, पति अपनी पत्नी को तथा शिक्षक अपने शिष्यों को आज्ञाएं देता है। इन सभी प्रसंगों में आज्ञा देने वाले को हम नेता नहीं कहते। इनमें नेता से भिन्न अन्य अनेक सम्बन्ध रहते हैं जैसे पिता पुत्र के बीच रक्त-सम्बन्ध। इसके अतिरिक्त वे नेतृत्व की अनेक विशेषताओं से वंचित रहते हैं। स्पष्ट है कि आज्ञा देने के काम की सामान्यता को देखकर ही नेता और अनुयायी का सम्बन्ध मान लेना भ्रामक होगा।

3 **नेतृत्व लोकप्रियता नहीं है**—लोकप्रियता के आधार पर भी किसी को नेता मान लेना नेता शब्द का दुरुपयोग है। यह सच है कि नेता एक संगठन में केन्द्र बिन्दु होता है जिसके व्यवहारों, विचारों एवं व्यक्तित्व पर संगठन के सभी सदस्यों की दृष्टि रहती है। संगठन के प्रायः सभी सदस्यों की जुबान पर उनका नाम रहता है और वे अपने आपको उसका अनुयायी कहने में गौरवान्वित अनुभव करते हैं। लोकप्रियता उसका महत्त्वपूर्ण गुण है किन्तु इसे एकमात्र गुण नहीं कहा जा सकता। कई बार व्यक्ति के लोकप्रिय होने पर भी उस संगठन की नीतियों एवं कार्यक्रमों को संचालित करने का कोई अधिकार नहीं होता। इस प्रकार की अधिकार विहीन लोकप्रियता मैत्रीपूर्ण स्तर पर भी हो सकती है।

एक संगठन की एक ही इकाई के समान पदों पर कार्य करने वाले विभिन्न सदस्यों के बीच यदि किसी को लोकप्रियता प्राप्त हो जाए तो हम उसे नेता नहीं [illegible]। संगठन के सदस्यों में आज्ञाकारिता की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व होते हैं और इन तत्त्वों की उपस्थिति लोकप्रियता के लिए आवश्यक नहीं है। लोकप्रियता एक ऐसी चीज है जो प्रायः हँसमुख प्रकृति, सरल व्यवहार, सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व और कभी-कभी मूर्खतापूर्ण कार्यों के परिणामस्वरूप भी प्राप्त हो जाती है। बुद्धिहीन लोकप्रिय व्यक्ति में संगठन के सदस्य मजाक कर सकते हैं उसे अपने मनोरंजन का साधन बना सकते हैं किन्तु उसकी आज्ञाओं, निर्देशों एवं इच्छाओं का पालन करने के लिए वे कदापि तैयार नहीं होंगे। इस प्रकार का लोकप्रिय व्यक्ति और कुछ भी हो सकता है किन्तु नेता नहीं।

4 **नेतृत्व करिश्मा नहीं है**—अनेक व्यक्तियों में कुछ चमत्कारपूर्ण विशेषताएं (Charismatic Qualities) पाई जाती हैं जिनके आधार पर वह दूसरे व्यक्तियों

का अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस प्रकार आकर्षित किए गए व्यक्ति उसे लोकप्रिय बना देते हैं और कभी-कभी तो यह भ्रम होने लगता है कि सम्भवतः वह उनका नेता है। चमत्कारी व्यक्ति अत्यन्त सक्रिय होते हैं और समय समय पर इनके द्वारा अन्य लोगों के व्यवहार को प्रभावित भी किया जाता है किन्तु इन्हें भी नेता कहना इसलिए गलत माना जाएगा क्योंकि केवल व्यक्तित्व के गुण एक मनुष्य को नेता नहीं बना देते। इसके लिए कुछ अन्य बातों की भी आवश्यकता होती है। कई बार हम लोगों को यह कहते हुए सुनते हैं कि अमुक व्यक्ति एक अच्छा नेता होने योग्य था किन्तु परिस्थिति वातावरण एवं अन्य कई कारणों से वह ऐसा न बन सका।

एक व्यक्ति में शक्ति चालाकी बुद्धि ज्ञान निर्णय लेने की योग्यता आदि गुण जब अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में होते हैं तो उसके एक सफल नेता होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। ये गुण उस व्यक्ति को एक नेता नहीं बना सकते किन्तु एक अच्छा नेता बना सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि पहले उसका नेता होना जरूरी है जो इन गुणों के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता उसके बाद ही इन गुणों का वह अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने में उपयोग कर सकता है। एक प्रशासकीय नेता व्यक्तियों के समूह की आवश्यकताओं और उनके संगठन की संरचना का परिणाम होता है। वह एक प्रकार से प्रशासन और अन्य स्थितियों की उपज है और इसलिए संगठन का रूप उसके लक्ष्य व्यवहार के नियम आदि बातों की पृष्ठभूमि में ही उसका अध्ययन किया जा सकता है। कहने का आशय है कि केवल करिश्मा वाले व्यक्ति को नेता कह देना भ्रामक है।

5 **नेतृत्व उच्च पद नहीं है**—व्यक्ति की उच्च स्थिति उसे नेता नहीं बना देती। संगठन में उच्च पद प्राप्त हो जाने से ही वह अपनी आज्ञाओं निर्देशों एवं आदेशों को संगठन के अधीनस्थ सदस्यों से स्वीकृत नहीं करा सकता और इस स्थिति में उसे नेता भी नहीं कहा जा सकता। दूसरी ओर हम एक ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना कर सकते हैं जो पदसोपान की दृष्टि से बहुत नीचे है किन्तु संगठन के अन्य सदस्य उसका सम्मान करते हैं तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करने में तत्परता दिखाते हैं। यह अधिकारी उच्च स्तर पर न होते हुए भी एक नेता है। पहले उदाहरण में उच्च अधिकारी को न मानना और दूसरे उदाहरण में एक निम्न अधिकारी को भी नेता मान लेना हमारे सम्मुख नेतृत्व के दो भिन्न रूपों को प्रस्तुत करते हैं। नेतृत्व का पहला रूप सत्ताधारी तानाशाही एवं बाध्यकारी प्रकृति का है जिसे आज के प्रजातान्त्रिक युग में नेतृत्व का वास्तविक रूप नहीं माना जाता। नेतृत्व का दूसरा रूप मानवीय सम्बन्धों भावनाओं प्रभावशाली प्रकृति के व्यक्तिगत गुणों ज्ञान एवं बुद्धि के उच्च स्तरों आदि पर निर्भर करता है। नेतृत्व का यह रूप ही आज वास्तविक अथवा ठीक समझा जाता है।

संगठन का अध्यक्ष होना मात्र ही एक नेता होने का प्रमाण नहीं है। इसके पक्ष में हम दो आधार प्रस्तुत कर सकते हैं। फिफनर तथा शरवुड (Pfiffner and Sherwood) के अनुसार इन दो बातों में प्रथम है प्रजातन्त्रात्मक मूल्य और दूसरा है संगठन में नियन्त्रण की प्रक्रिया।[1] एक प्रशासकीय संगठन में शक्ति प्राप्त करने के लिए स्तर के अतिरिक्त अनेक साधन होते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि नेतृत्व शब्द का प्रयोग केवल उन्हीं लोगों के लिए करना चाहिए जो संगठन में निर्णय लेने की प्रक्रिया पर प्रभाव डालने वाले कार्य सम्पन्न करें। (गिब (Gibb) ने पिछले कुछ वर्षों के नेतृत्व से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि अध्यक्ष और नेता के बीच अन्तर किया जाना आवश्यक है।[2] आज्ञा पालना के प्रसंग में हम मालिक और सेवक, शिक्षक और विद्यार्थी, पिता और पुत्र के बीच पाए जाने वाले जिस सम्बन्ध का उल्लेख किया था वह सम्बन्ध एक अधिकारपूर्ण एवं अध्यक्षतावादी सम्बन्ध था जिसे नेतृत्व का सम्बन्ध नहीं माना जा सकता। यह सही है कि पदसोपान में स्थिति प्रभाव का महत्त्वपूर्ण स्रोत है किन्तु जैसा कि फिफनर तथा शरवुड का मत है अध्यक्षता एवं नेतृत्व को एक ही चीज नहीं माना जा सकता। दोनों के बीच शक्ति का अन्तर है। एक व्यक्ति जिसका कोई प्रभाव नहीं है एक संगठन का अध्यक्ष हो सकता है किन्तु जो इस प्रभाव प्राप्त कर लेता है वह एक नेता बन जाता है।[3])

नेतृत्व के दोनों रूपों में जो अन्तर है वह प्रजातन्त्रात्मक मान्यता के अतिरिक्त संगठन की नियन्त्रण प्रक्रिया के आधार पर भी निश्चित किया जाता है। यह अन्तर नियन्त्रण प्रक्रिया के रूप पर आधारित रहता है। आज्ञा देने की शक्ति प्राय औपचारिक पदसोपान द्वारा दी जाती है। इन आज्ञाओं का प्राय नियमित रूप से पालन किया जाता है। संगठन के अधिकांश कार्यकर्ता इस प्रकार की आज्ञाओं को चुनौती देने की परवाह नहीं करते। आज्ञापालन करते समय संगठन के सदस्य यह नहीं देखते कि ये आज्ञाएँ किस व्यक्ति द्वारा दी गई हैं बल्कि यह देखते हैं कि आज्ञा देने वाले का पद एवं स्थिति क्या है। इसके विपरीत नेतृत्व का सम्बन्ध एक प्रचलन (Routine) से भिन्न होता है। प्राय नेतृत्व की आवश्यकता तब होती है जब परिवर्तन और मनोबल (Morale) के प्रश्न उपस्थित होते हैं। इस स्थिति में संगठन के सदस्य औपचारिक सत्ता को चुनौती देने लगते हैं और तब नेतृत्व का अस्तित्व सम्भव बनता है। सत्ता को चुनौती देने की आवश्यकता प्राय उस समय होती है जब संगठन का अध्यक्ष केवल अध्यक्ष होता है और नेतृत्व के गुणों की उपेक्षा करता

1 *Pfiffner and Sherwood* Administrative Organisation, p 50
2 *Cecil A Gibb* Leadership, *in* Gardner Lindzey (ed) Handbook of Social Psychology Vol II p 88
3 *Pfiffner and Sherwood* op cit p 351

है। एक श्रेष्ठ कार्यपालिका वह है जो अपनी शक्ति स्थिति में नेतृत्व की विशेषताओं का समन्वित कर ले।

प्र सोपान के उच्च स्तर एवं नेतृत्व के बीच सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए न्यूमैन का कथन है कि एक प्रबन्धक तब तक अपने कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं कर सकता जब तक वह केवल सत्ता पर निर्भर रहना न छोड़ दे और नेतृत्व के गुणों को न अपनाए। यह सम्भव है कि एक प्रबन्धक अपने कार्यों को अपने मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना भी सफलतापूर्वक सम्पन्न कर ले किन्तु यह सम्भावना कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जब संगठन में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें अधीनस्थ अधिकारी अपने अध्यक्ष की सत्ता को चुनौती देने का प्रयास करते हैं तो अध्यक्ष को नेतृत्व के गुणों का प्रयोग करना पड़ता है। संगठन का सर्वोच्च अधिकारी यह जानता है कि उसके बाद का उच्च अधिकारी उसी समय नेता बन सकता है जब उसके अधीनस्थ कार्यकर्त्ता उसे ऐसा बना देते हैं। ऐसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं जब अधीनस्थों को एक मध्यस्थिर अधिकारी को नेता बनाना पड़ता है और सर्वोच्च अधिकारी को उसे उनका नेता स्वीकार करना पड़ता है।

सैनिक संगठनों में नेतृत्व की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। वहाँ उच्च अधिकारी को मुख्य रूप से आदेश देने (Commanding) का कार्य करना पड़ता है। सैनिक संगठनों में आज्ञा देने वाले इन अधिकारियों की स्थिति बहुत कुछ असैनिक संगठन के अध्यक्षों से मिलती जुलती है। अध्यक्ष की भाँति एक कमाण्डर (Commander) को भी केवल इसी कारण नेता नहीं कहा जा सकता कि वह आज्ञाएँ देता है या उसके पास सत्ता है। सैनिक संगठन में कमाण्डरों के पास इतनी सत्ता होती है कि वे अपने अधीनस्थों से जो चाहें करवा सकते हैं। फिर भी यह माना जाता है कि आज्ञा देने वाले अधिकारी के पास नेतृत्व के अपने गुण भी हों तो यह सोने में सुहागे की भाँति श्रेष्ठ माना जाएगा। बिशलिन (Beishline) का मत है कि कमाण्डर को इस बात के लिए एक उत्साहपूर्ण इच्छा प्रकट करनी चाहिए कि संगठन के व्यक्तिगत सदस्य उद्देश्यों को प्रभावशाली रूप से पूरा करने के लिए अधिकतम सहयोग प्रदान करें।[1]

नेतृत्व से सम्बन्धित विचारधाराएँ
(Theories Concerning Leadership)

प्रारम्भ में विचारकों में यह धारणा थी कि नेतृत्व में लोगों को इस प्रकार प्रभावित करने की योग्यता है कि वे स्वेच्छा से लक्ष्य के प्रति प्रेरित हो सकें। यह मान्यता थी कि नेतृत्व कुछ विशेष गुण अथवा विशेषताओं का समन्वय है जो व्यक्ति में जन्मजात पाई जाती हैं सिखाई नहीं जातीं। नेतृत्व के क्षेत्र में जो आधुनिक

1 John R b rt Beshl e, M l t y Management f N t l D fe c P 4 0

अनुसंधान हो चुके हैं उनमें इस परम्परावादी विचारधारा का आंशिक समर्थन ही मिल पाया है। आज नेतृत्व को किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं समझा जाता। अब यह माना जाने लगा है कि नेतृत्व के गुण, को अनुभव शिक्षा और प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

नेतृत्व के सम्बन्ध में मुख्यतः निम्नलिखित तीन दृष्टिकोण प्रचलित हैं—

(1) लक्षणवादी विचारधारा (The Trait Theory)

(2) स्थितिवादी विचारधारा (The Situational Theory) तथा

(3) अनुयायी विचारधारा (The Follower Theory)।

1. लक्षणवादी विचारधारा (The Trait Theory)

इस विचारधारा के अनुसार नेताओं में कुछ व्यक्तिगत गुण होते हैं जिनके आधार पर वे संगठन में अपने अनुयायी बना लेते हैं। लक्षणवादी विचारधारा के समर्थकों ने आगमन विधि के आधार पर अर्थात् विभिन्न नेताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर उनके व्यक्तिगत गुणों का संकलन किया है और जिन गुणों को उन्होंने सामान्य पाया है उन्हें एक नेता के आवश्यक गुण मान लिया है। टीड (Tead) चेस्टर बर्नार्ड (Chester Bernard) शैल (Schell) आदि की मान्यता है कि जिन व्यक्तियों को साधारणतः नेता माना जाता है उनमें कुछ सामान्य गुण दिखाई देते हैं। प्रो टीड के अनुसार ये सामान्य गुण मुख्यतः इस हैं—शारीरिक शक्ति उद्देश्य का ज्ञान एवं निर्देशन उत्साह मित्रता और भावनाएं ईमानदारी तकनीकी विशेषज्ञता बुद्धि शिक्षा देने की योग्यता विश्वास और निर्णय लेने की सामर्थ्य। स्टोगडिल के दृष्टि में एक नेता में प्रधानतया सात गुण होने चाहिए—प्रथम शारीरिक और संरचनात्मक विशेषताएं (Physical and Constitutional Factors) जैसे ऊंचाई वजन शारीरिक बनावट शक्ति स्वास्थ्य आदि दूसरे बुद्धि (Intelligence) तीसरे आत्म विश्वास (Self confidence) चौथे सामाजिकता (Sociability) पांचवें इच्छा शक्ति (Will Power) जैसे पहल करने की शक्ति और महत्वाकांक्षा छठे नियन्त्रण (Dominance) सातवें कुछ अन्य लक्षण (Some Other Traits) जैसे बात करने का ढंग प्रसन्न प्रकृति उत्साह अभिव्यक्ति का गुण मौलिकता आदि।

लक्षणवादी सिद्धान्त नेता में व्यक्तित्व के गुणों का अस्तित्व मानकर एक उपयोगी विचार प्रस्तुत करता है तथापि कई दृष्टियों से यह अनुपयुक्त है। प्रथम इस सिद्धान्त के समर्थकों ने नेतृत्व के अलग-अलग गुणों का वर्णन किया है अर्थात् विपक्षर एवं शरहुन के शब्दों में अभी तक लक्षणों (Traits) का कोई एक जैसा रूप विकसित नहीं हुआ है। दूसरे नेतृत्व के गुणों अथवा विशेषताओं की सूचियाँ भ्रामक हैं। इनमें विभिन्न शब्दावलियों का प्रयोग किया गया है और इनके द्वारा गिनाई गई विशेषताओं की संख्या भिन्न भिन्न है। तीसरे यह नहीं बताया गया है कि

कौन-सा लक्षण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है और कौन-सा सबसे कम। चौथे नेतृत्व प्राप्त करने और नेतृत्व कायम रखने की विशेषताओं के बीच अंतर नहीं किया गया है। पांचवें यह भी स्पष्ट नहीं है कि किन विशेषताओं को प्राप्त कर कोई व्यक्ति अच्छा नेता बन सकता है अथवा किन विशेषताओं के अभाव में वह नेतृत्व की परिधि से बाहर हो जाता है। छठे नेतृत्व पर परिस्थितियों के प्रभाव को नहीं भुलाया जा सकता। एक ही संस्था में अलग अलग परिस्थितियों के नेतृत्व की भिन्न भिन्न विशेषताओं की आवश्यकता होती है। अनेक विशेषताएं जन्मजात नहीं होतीं वरन् उन्हें प्रशिक्षण द्वारा विकसित किया जाता है। व्यक्तिगत योग्यताओं और गुणों के आधार पर एक व्यक्ति अपने नेतृत्व के कार्यों को भली प्रकार सम्पन्न कर सकता है पर नेता बनने के लिए केवल ये वैयक्तिक गुण ही पर्याप्त नहीं हैं। संगठन के स्वरूप और परिस्थितियों का उस पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

2. स्थितिवादी विचारधारा (The Situational Theory)

लक्षणवादी विचारधारा में नेतृत्व पर परिस्थितियों के प्रभाव की उपेक्षा की गई थी जबकि आधुनिक अनुसंधान के आधार पर विकसित स्थितिवादी विचारधारा के अनुसार एक नेता के व्यवहार और गुणों पर परिस्थितियों (Situations) का भारी प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति की विशेषताएं अथवा उसके गुण नेतृत्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं तथापि नेतृत्व कुल मिलाकर एक विशेष समूह की परिस्थितियों का परिणाम होता है। एक ही समूह में भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भिन्न नेतृत्व विकसित हो सकता है। एक परिस्थिति में जो व्यक्ति-समूह का नेता है दूसरी परिस्थिति में यह सम्भव है कि वह व्यक्ति नेता न रहे और दूसरा कोई व्यक्ति उसका स्थान ग्रहण कर ले।

उदाहरण के लिए सहायक अधिकारी तब प्रभावशाली बन जाता है जब उसका उच्चाधिकारी प्रभावहीन हो या उसमें नेतृत्व के गुण न हों। दूसरे शब्दों में यहां सहायक अधिकारी का नेता बनना परिस्थिति के कारण सम्भव हुआ। इसी प्रकार यदि उच्चाधिकारी योग्य एवं प्रभावशाली हो तो उसका सहायक अधिकारी नेता कभी नहीं बन सकता चाहे उसमें नेता बनने के गुण मौजूद हों।

वास्तव में स्थितिवादी विचारधारा लक्षणवादी सिद्धान्त की विरोधी न होकर पूरक है। इन दोनों ही सिद्धान्तों के संयोग से नेतृत्व की मान्यता का सही रूप विकसित होता है। अनेक बार यह देखा जाता है कि उपयुक्त परिस्थितियां होने पर भी एक व्यक्ति नेता नहीं बन पाता क्योंकि उसमें नेतृत्व के व्यक्तिगत गुणों का अभाव होता है। दूसरी ओर कई बार उचित परिस्थितियों के अभाव में भी अनेक प्रतिभाएं कुण्ठित होती देखी गई हैं। फिर भी परिस्थितियों के निर्माण की एक सीमा होती है जिसके आगे व्यक्तिगत योग्यताएं रुक जाती हैं। मिलेट की मान्यता है कि नेतृत्व प्राय: परिस्थिति के अनुसार बनता या बिगड़ता जाता है।

सम्भावना चाहिए। यह एक प्रकार से थोपा गया नेतृत्व है और समूह द्वारा इसे तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक संगठन के सदस्य उसे अपनी आवश्यकताओं के संतोष का माध्यम स्वीकार न कर लें।

इस प्रकार नेतृत्व की मान्यता (Concept of Leadership) के सम्बन्ध में तीनों प्रमुख दृष्टिकोण हैं। ये तीनों अपने-आप में पूर्ण नहीं कहे जा सकते यद्यपि प्रत्येक की अपनी सीमाएँ हैं। नेतृत्व का एक सही एवं वास्तविक दृष्टिकोण इन तीनों का सम्मिलित रूप समझा जाएगा। जब नेतृत्व के स्वरूप पर विचार किया जाए तो उसे परिस्थितियों द्वारा निर्धारित माना जाना चाहिए। प्रो. हर्मेन (Haimann) ने लिखा भी है कि नेतृत्व एक व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं होती अपितु यह अनेक विभिन्नताओं जैसे—दृष्टिकोण आवश्यकता अनुयायियों की व्यक्तिगत विशेषताओं संगठन की विशेषताओं परिस्थितियों नेता के लक्षणों एवं विशेषताओं आदि का जटिल सम्बन्ध है।[1] परिस्थितियों एवं अनुयायियों के चरित्र का प्रभाव एक व्यक्ति के नेता बनने तथा बने रहने पर बहुत अधिक रहता है तथापि कई बार नेता के व्यक्तिगत गुण अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण और अनुयायियों के दिल में नेता के प्रति विश्वास तथा श्रद्धा उत्पन्न कर देते हैं। इस सम्बन्ध में डगलस मैक्ग्रेगर (Douglas McGregor) ने लिखा है कि एक पुराना तर्क कि नेता इतिहास को बनाता है या इतिहास नेता को बनाता है इस मान्यता द्वारा तय हो चुका है कि ये दोनों ही केवल अपनी अपनी सामाओं में सत्य हैं।[2]

नेतृत्व से सम्बन्धित उपयुक्त तीनों ही दृष्टिकोणों की उपयोगिता को ध्यान में रख कर नेता के स्वरूप एवं विशेषताओं का अध्ययन किया जाना चाहिए।

नेतृत्व की आवश्यकताएं
(The Requirements of Leadership)

नेतृत्व एक व्यक्ति को कुछ करने का सामर्थ्य प्रदान करता है। यह शक्ति के साथ आवश्यक रूप से सम्बन्धित है। अनुयायियों द्वारा नेता की आज्ञाओं का पालन इसलिए किया जाता है कि वे उसे एक समय शक्तिशाली योग्य एवं अपना सहायक मानते हैं। कई बार यह मान्यता तथ्यों पर आधारित रहती है किन्तु अनेक बार दूसरे तत्व प्रभावशाली रहते हैं उदाहरण के लिए अनुयायियों का गलत विश्वास स्वयं नेता की कुशलता एवं दिखावे की प्रकृति परिस्थितियों का दबाव आदि। जिन तथ्यों एवं अतिरिक्त तत्वों का किसी व्यक्ति को नेता बनाने बनाए रखने एवं अच्छा नेता बनाने में सहयोग होता है उन्हें नेतृत्व के आधार अथवा उसकी आवश्यकताएँ कहा जा सकता है। प्रशासकीय नेतृत्व का अस्तित्व और उसकी सफलता जिन तत्वों पर आधारित हैं उनको व्यक्तिगत राजनीतिक एवं संस्थागत—

1 H mann op c t p 446
2 Dougl s McG eg r The Hum n S d of Enterprise 1960 p 182

तो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एल उर्विक ने नेतृत्व के मनोवैज्ञानिक आधारों पर भी उल्लेख किया है।[1]

1 बाह्य राजनीतिक अभिकरण—प्रशासकीय नेतृत्व के व्यवहार को निर्देशित एवं नियन्त्रित करने वाले बाह्य राजनीतिक अभिकरण होते हैं। प्रशासन द्वारा उठाए जाने वाले कदम तथा अपनाई जाने वाली नीतियां उस देश की राजनीतिक स्थिति एवं परम्पराओं का प्रतिबिम्ब होती हैं। प्रो एपलबी के मतानुसार प्रशासकीय नेतृत्व तीन प्रकार से राजनीतिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है—प्रथम अधिकारी प्रशासकीय समस्याओं पर विचार करते समय उनको एक व्यापक रूप में देखता है। उसके अधिकांश निर्णय जनवादी नीति के अनुकूल होते हैं। दूसरे जब वह सार्वजनिक विषयों पर विचार करता है तो उसका दृष्टिकोण व्यक्तिगत न होकर जनवादी होता है। दलीय एवं व्यक्तिगत हितों के आधार पर निर्णय लेने की अपेक्षा वह जनता की आवश्यकताओं एवं हितों से प्रभावित होता है। तीसरे सार्वजनिक विषयों पर निर्णय लेते समय वह राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाता है अर्थात् उन्हें जनता के सम्मुख रखने में संकोच नहीं करता। प्रशासकीय नेता के कार्यों पर व्यवस्थापिका में राजनीतिक आधार पर किए गए वाद विवादों का भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहता है। राजनीतिक दृष्टि से प्रशासकीय नेतृत्व में परिवर्तन व संशोधन आवश्यक हो जाता है।

2 संस्थागत आवश्यकताएं—एक अच्छे नेतृत्व के लिए कुछ संस्थागत आवश्यकताओं की पूर्ति जरूरी होती है। इसके बिना कोई भी नेता अपने कार्यों को प्रभावी रूप में सम्पन्न नहीं कर सकता। प्रसिद्ध लेखक मिलेट (Millett) का कहना है कि "नेतृत्व के लिए आवश्यक परिस्थितियां दो हैं—राजनीतिक एवं संस्थागत। प्रशासकीय नेतृत्व की राजनीतिक परिस्थितियों से हमारा तात्पर्य बाह्य राजनीतिक निर्देशन तथा नियन्त्रण के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता से है।—नेतृत्व की संस्थागत परिस्थिति से हमारा आशय आन्तरिक व्यवहार की आवश्यकताओं के प्रति सचेत रहने तथा प्रशासनिक अभिकरण को गतिशील बनाए रखने की आवश्यकता से है।"[2]

3 अनुयायियों का सहयोग—नेता से यह अपेक्षित है कि वह अपने अनुयायियों का विश्वासपात्र बने और उनका मन्त्रणा उपयोग प्राप्त कर अपनी नीतियों तथा कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप दे। अनुयायियों एवं साथी कार्यकर्ताओं का सहयोग प्राप्त करने के लिए दो बातें आवश्यक हैं प्रथम उसे अनुयायियों में यह भावना विकसित करनी होगी कि उसके नेता में वे सभी गुण हैं जिनके आधार पर उनके हितों की रक्षा होनी है। दूसरे संस्थागत रूप से संगठन की व्यवस्था का एक

1 L Urwick Leadership in the 20th Century p 21 33
2 Millett op cit pp 37 38

विशेष रूप देना जरूरी है ताकि नेतृत्व सम्मानपूर्वक कार्य कर सके। सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि संगठन के सभी कार्यकर्ता एक सुरक्षापूर्ण वातावरण में कार्य करें अर्थात् कर्मचारी को अपना वेतन कम होने का भय न हो। दूसरे शब्दों में उस जहाँ अपना पद छूटने की आशंका रहती है तथा जहाँ उसका व्यक्तिगत सम्मान किसी भी समय कम किया जा सकता है वहाँ कर्मचारी अपने आपको असुरक्षित अनुभव करता है। इस प्रकार के वातावरण में उस कार्यकर्ता के व्यक्तित्व की सभी विशेषताएं पूर्णरूप से न तो निखर पाती हैं और न ही अभिव्यक्त हो पाती हैं। ऐसी स्थिति में उनका सक्रिय एवं रचनात्मक सहयोग नेतृत्व को प्राप्त नहीं हो सकता। भय, असुरक्षा, चुनौती एवं सन्देह के वातावरण में कर्मचारी अपने कार्यों में रुचि नहीं ले सकते। इसके फलस्वरूप अनुशासन की समस्या महत्त्वपूर्ण बन जाती है। दूसरे मनोवैज्ञानिक रूप से नेतृत्व को प्रभावशाली एवं सफल बनाने के लिए यह भी उपयोगी होगा कि नेता एक विशेषज्ञ न होकर समस्त संगठन के बारे में सामान्य ज्ञान रखने वाला अधिकारी हो। ऐसा न होने पर ही एक नेता अपने संगठन के प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाओं एवं आकांक्षाओं को जान सकता है और उसे तदनुकूल व्यवहार न करने में सुविधा रहती है।

मनोवैज्ञानिक विचारधारा यह मान कर चलती है कि एक सफल नेता वह होता है जो वही सोचे जो उसके अनुयायी सोचते हैं, वह वही करे जो उसके अनुयायी करते हैं तथा उसकी प्राथमिकताओं का रूप वही हो जो उसके अनुयायियों का है। अनुयायियों में व्यक्तित्व में एकाकार होने वाला नेता शीघ्र ही लोकप्रियता एवं प्रभाव प्राप्त कर लेता है। नेता एवं अनुयायी के बीच व्यक्तित्व की एकरूपता की स्थापना में स्वयं नेता द्वारा भी महत्त्वपूर्ण कदम उठाए जा सकते हैं। जनरल चार्ल्स पी समराल (General Charles P Summerall) के मतानुसार एक नेता को वह सब कुछ बन जाना चाहिए जो वह अपने अधीनस्थों को बनाना चाहता है। लोग उसी रूप में सोचते हैं जैसे कि उनका नेता सोचता है। व्यक्ति यह जान जाते हैं कि उनका नेता क्या सोचता है।

नेतृत्व एकमार्गी क्रिया नहीं है जिसमें केवल नेता को ही अपने संगठन की सामान्य जानकारी हो। संगठन के सदस्यों को भी नेता की नीतियों, नियमों एवं प्रक्रियाओं से परिचित रहना चाहिए। कर्मचारियों में सलग्नता की भावना रहनी चाहिए जिससे वे यह अनुभव कर कि संगठन उनके कार्यों का आदर करता है तथा अपनी इकाई अथवा संगठन की नीतियों के निर्माण में भाग लेते हैं। यह सुझाया जाता है कि नेता को नीति सम्बन्धी निर्णयों पर पहुँचने से पूर्व उस सम्बन्ध में अपने अधीनस्थों की राय एवं सुझावों को जान लेना चाहिए। इस प्रक्रिया द्वारा नेता उन प्रतिकूल नीतियों को अपनाने के खतरे से बच जाएगा। जिन्हें संगठन के सदस्य नहीं चाहते। साथ ही इस प्रकार निर्धारित नीतियों के प्रति कर्मचारियों में अपनत्व की

भावना विकसित हो जाएगी। सगठन म नेता के काय का सुलभ बनाने तथा कमचारियो का सक्रिय सहयोग प्राप्त करन के लिए एक ग्रन्य सस्थागत व्यवस्था यह की जा सकती ह कि कमचारियो को कुछ उत्तरदायित्व सौंपे जाए और उत्तरदायित्व के साथ ही कुछ सत्ता भी प्रत्यायोजित की जाए तभी हम यह आशा कर सकते हैं कि कमचारियो के नता का पूरा सहयाग प्राप्त हो सकेगा। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक रूप से कमचारियो क मन मे सुरक्षा काय के प्रति रुचि सगठन का एक अग वनने की प्रेरणा एव सगठन के कार्यक्रमो तथा नीतियो की सफलता के लिए प्रयास आदि बातें सस्थागत प्रयासो स सम्भव बनाई जा सकेंगी।

नेतृत्व के प्रकार

(Types of Leadership)

व्यवहारवादी अनुसधानो एव प्रयोगो के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि नतृत्व का विशष गुण एक समूह में बहुत उपयागी सिद्ध होता है किन्तु दूसरे समूह म उसकी उपयोगिता पूणत या आशिक रूप स घट जाती है। सगठन के परिवतन के अतिरिक्त एक ही सगठन म जब समस्याए बदल जाती हैं लागो की आकाक्षाओ मे परिवतन आ जाते हैं अथवा ग्रन्य नवीन स्थितिया पदा हो जाती हैं तो नतृत्व क पहले गुण उसी रूप म प्रभावशाली नही रहते। इस ग्रध्ययन के बाद यह निष्कष निकाला गया कि नेतृत्व क ग्रनक रूप अथवा प्रकार होते है। राजनीतिक नेतृत्व धार्मिक नतृत्व मानवीय नतृत्व आदि नतृत्व क ग्रनक रूपो म यहाँ हमारा सम्बन्ध नही ह। कवल प्रशासकीय एव प्रबन्धकीय नतृत्व ही हमार अध्ययन का केन्द्र है।

अल्फाड एव बीटी (Alford and Beaty) के अनुसार व्यावसायिक क्षेत्र म पाए जान वाल नतृत्व क प्रमख रूप य हैं—

1. बौद्धिक नता (Intellectual Leader)
2. सस्थात्मक नता (Institutional Leader)
3. जनतन्त्रीय नता (Democratic Leader)
4. तानाशाह नता (Autocratic Leader)
5. विश्वास प्रेरक नता (Persuasive Leader)
6. रचनात्मक नता (Creative Leader)

जाज ग्रार टेरी (George R Terry) न नतृत्व को इस प्रकार वर्गीकृत किया है—

1. व्यक्तिगत नतृत्व (Personal Leadership)
2. ग्रव्यक्तिगत नतृत्व (Impersonal Leadership)
3. निरकुश नतृत्व (Authoritarian Leadership)
4. जनतन्त्रीय नतृत्व (Democratic Leadership)

5 देशी नेतृत्व (Indigenous Leadership)
6 पैतृक नेतृत्व (Paternalistic Leadership)

ऑरेन यूरिस (Auren Uris) ने अधिशासी योग्यता के आधार पर नेतृत्व का वर्गीकरण किया है—

1 सभी तथ्यों को जानने वाला (Master of Details)
2 समन्वय स्थापित करने वाला (Co-ordinator)
3 समस्या सुलझाने वाला (Problem Solver)
4 मानवीय विचारधारा रखने वाला (People Minded)
5 लक्ष्य विचारधारा रखने वाला (Target Minded)

विभिन्न विद्वानों द्वारा नेतृत्व का विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। यहाँ हम प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय नेतृत्व को निम्नानुसार वर्गीकृत करते हुए उनका अध्ययन करेंगे—

1 औपचारिक नेतृत्व (Formal Leadership)
2 अनौपचारिक नेतृत्व (Informal Leadership)
3 सत्तावादी या निरंकुश नेतृत्व (Authoritarian Leadership)
4 प्रजातान्त्रिक नेतृत्व (Democratic Leadership)
5 बाहरी नेतृत्व (Leadership from outside)
6 आन्तरिक नेतृत्व (Internal Leadership)

1 औपचारिक नेतृत्व (Formal Leadership)

नेतृत्व का यह रूप व्यक्ति के गुणों के प्रभाव, अनुयायियों की इच्छा एवं स्थितियों की अनुकूलता का परिणाम नहीं है। औपचारिक नेतृत्व को उच्च अधिकारियों द्वारा निर्मित किया जाता है। जब एक अध्यक्ष अपने पद पर नियुक्त होता है तो उसको दिशा निर्देशन, निरीक्षण, पर्यवेक्षण आदि के वे सब कार्य सौंप दिए जाते हैं जो एक नेता को सम्पन्न करने होते हैं। जब एक पदाधिकारी को नेता के रूप में औपचारिक दृष्टि से नियुक्त कर दिया जाता है तो उसके सम्मुख अनेक समस्याएँ आती हैं। वह अपने अधीनस्थों को न समझने के कारण अनेक गलत निर्णय ले लेता है। इसके फलस्वरूप संगठन में उसके विरुद्ध असन्तोष का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। यदि अनेक व्यक्तिगत गुणों द्वारा वह इस वातावरण का प्रतिशोध न कर सका तो एक नेता के रूप में अधिक दिन तक नहीं रह सकता। औपचारिक रूप से नेता होते हुए भी वास्तविक रूप से वह नेता नहीं रहेगा। सम्भावना यह है कि ऐसी स्थिति में उसके किसी अधीनस्थ को संगठन के कर्मचारियों द्वारा नेता बना दिया जाएगा। औपचारिक नेता होने के लिए उच्च पद के अतिरिक्त उस व्यक्ति को समूह के सदस्यों की स्वीकृति भी प्राप्त करनी होती है। उच्च पद के कारण एक औपचारिक नेता को वास्तविक नेता बनने में अधिक कठिनाई का

कर देता है किन्तु जब सगठन में असाधारण स्थिति पैदा हो जाती है उस—कर्मचारी वर्ग के वेतन भत्ते में कटौती पदोन्नति तथा ऐसे ही अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर औपचारिक नेताओं की नीतियों एवं सगठन के कर्मचारियों की आकांक्षाओं के बीच सघर्ष उत्पन्न हो जाने पर औपचारिक नेता के नेतृत्व को चुनौती दी जाती है। इस प्रकार की चुनौतियों द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी मुख्य अधिकारी को नेता मानने से इन्कार कर देते हैं और पद सोपान में निम्न स्तर के किसी अधिकारी को जो उनकी शिकायतें दूर करने में सहायता दे सकता हो अपना नेता मान लेते हैं। इस प्रकार बना हुआ नेता अनौपचारिक नेता कहलाता है। इसे हम सुड्मन आदि के शब्दों में एक स्वाभाविक नेतृत्व (Natural Leadership) भी कह सकते हैं जो अपनी व्यक्तिगत योग्यताओं की मान्यता के आधार पर प्रभाव स्थापित करता है।[1]

इस प्रकार अनौपचारिक नेतृत्व का परिस्थितियोवश प्रादुर्भाव होता है। अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाने के बाद व्यक्ति के गुण भी उसे नेता बनने में सहायता प्रदान करते हैं। एक अनौपचारिक नेता के व्यक्तिगत गुणों का प्रभाव तभी हो सकता है जब अनुयायियों का विश्वास हो कि उसमें वे गुण मौजूद हैं। साधारण मनुष्य के मन में नेता प्रायः हमेशा एक प्रभाव मण्डल से घिरा रहता है। यह कथन तर्कसगत है क्योंकि व्यवहार में अनुयायी अपने नेता की योग्यताओं को देखने और जाँचने में समर्थ नहीं हो पाते और जब उन्हें यह मालूम होता है कि एक नेता के प्रति पूरे समूह की स्वामिभक्ति है तो वे उसे बहुत बुद्धिमान तथा गुण सम्पन्न मान लेते हैं।

कई बार सगठन के सदस्यों द्वारा किया गया अनौपचारिक नेता का चुनाव सही नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि सगठन के कर्मचारियों को बाद में यह पता चल जाता है कि जिस व्यक्ति को वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का सब अच्छा साधन मान रहे थे वह वास्तव में ऐसा नहीं है। इसका मूल कारण यह है कि नेतृत्व की स्वीकृति एक अचेतन (Unconscious) क्रिया है। यह एक चेतन (Conscious) क्रिया नहीं है। यहाँ बर्नार्ड का यह कथन बड़ा सार्थक प्रतीत होता है कि उन्हें कोई ऐसा नेता नहीं मिला जो यह बता सके कि वह नेता क्यों है और न ही उन्हें ऐसे अनुयायी मिल जो यह बता सके कि वे नेता का अनुगमन क्यों कर रहे हैं। स्पष्ट है कि नेता नेतृत्व करते समय जागरूक या सचेत नहीं होता इसी प्रकार अनुयायी भी अवचेतन रूप से उसके पीछे खिंचे चले जाते हैं। नेता एवं अनुयायियों के इस व्यवहार को अधिक स्पष्ट एवं निश्चित रूप में प्रकट करने के लिए यह कहा जा सकता है कि नेतृत्व (Leadership) एवं अनुगमन (Followership) की क्रियाएं विवेकपूर्ण नहीं होतीं। इनको सोचा विचारा नहीं जाता अपितु इनकी

1 Simon Smithburg and Thompson Public Administration p 104

प्रेरणा भावनाओं से प्राप्त होती है। हेमेन के कथनानुसार समूह के सदस्यों द्वारा नेता का चुनाव आवश्यक रूप में उसकी बौद्धिकता पर आधारित नहीं होता वरन् समूह के कुछ सदस्यों की भावनाओं और विश्वासों पर निर्भर रहता है।[1]

अनौपचारिक नेता की शक्ति का आधार पद या स्थिति नहीं होती, बल्कि उसके अनुयायियों का यह विश्वास एवं भावना होती है कि वह उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता दे सकता है। जब कभी संगठन के किसी सदस्य के सम्मुख कोई समस्या उपस्थित होती है तो वह निर्देशन एवं पथ प्रदर्शन के लिए अनौपचारिक नेता के पास जाता है। यह जरूरी नहीं है कि अनौपचारिक नेता द्वारा अपनाई जाने वाली नीतियाँ एवं प्रक्रियाएं औपचारिक नेता के समरूप हों। इसके विपरीत प्रायः इन दोनों में भिन्नता पाई जाती है। संगठन में अनौपचारिक नेता का वास्तविक प्रभाव होने के कारण औपचारिक नेता द्वारा उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कई बार वह अपनी शक्ति और पद के आधार पर अनौपचारिक नेतृत्व को समाप्त करने की चेष्टा करता है। फिर भी सामान्य रूप से एक बुद्धिमान उच्च अधिकारी वह समझा जाता है जो अनौपचारिक नेतृत्व का दमन करने की अपेक्षा संगठन के लक्ष्यों की दिशा में उसके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने का आश्वासन देता है।

3 सत्तावादी नेतृत्व (Authoritarian Leadership)

नेतृत्व का यह वह रूप है जिसमें निर्णय लेने तथा नीति निर्धारित करने में संगठन के सदस्यों की इच्छा को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। स्वयं नेता सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय अपनी इच्छानुसार लेता है। इस प्रकार के नेतृत्व में नेता और अनुयायी के बीच का सम्बन्ध सत्तापूर्ण प्रवृत्ति का होता है। नेता का कार्य केवल निर्देशन करना और अनुयायियों का कार्य उन निर्देशनों के अनुसार अपने व्यवहार को संचालित करना होता है। नेता संगठन के सदस्यों की समस्याओं को कोई महत्त्व नहीं देता। उसका मुख्य सम्बन्ध कार्य में रहता है। ऐसे नेता की दृष्टि में आराम हराम होता है। वह श्रम और आलस्य को सामने रखकर कार्य की सम्पन्नता के लिए संगठन के कार्यकर्ताओं का भाग्य दाँव में ? कर देता है। संगठन के कार्यकर्ता अपनी समस्याओं एवं कठिनाइयों को भूलकर केवल काम में लगे रहें यही इस प्रकार के नेतृत्व की सफलता का प्रतीक है। यदि कभी किसी सदस्य ने अपनी व्यक्तिगत समस्या को सामने रखा तो उसे संगठन विरोधी तथा कार्य से जी चुराने वाला समझा जाता है।

सत्तावादी नेतृत्व की प्रकृति आक्रामक होती है। वह दमनकारी साधन अपनाकर संगठन में कार्यकुशलता लाने का प्रयास करता है। यदि किसी सदस्य द्वारा इस नेतृत्व के विरुद्ध कोई बात कही जाती है तो उसे दण्डित किया जाता है। इस

1 H   na op. cit p 450

प्रकार तानाशाही सत्तावादी नेतृत्व संगठन के सदस्यों में असन्तोष की चिनगारियाँ उत्पन्न कर देता है जो ऊपर से दिखाई न देकर भी एक भयंकर ज्वाला का रूप धारण करने की सामर्थ्य रखती हैं। दमनकारी नेतृत्व के अधीन संगठन की क्रियाओं में व्यक्ति का व्यक्तित्व नहीं निखर पाता और नेतृत्व पर सदस्यों की निर्भरता बन जाती है। पद सोपान तथा आदेश की एकता आदि सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाली संगठन की परम्परावादी विचारधारा मूल रूप से सत्तावादी नेतृत्व का समर्थन करती है। नेतृत्व का यह सत्तावादी रूप बहुत कुछ अपने संगठन की रचना पर निर्भर करता है।

प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व (Democratic Leadership)

नेतृत्व का एक अन्य रूप प्रजातन्त्रात्मक है जिसमें संगठन के सभी सदस्यों को संगठन के कार्यों में योग देने का अवसर प्रदान किया जाता है। से सहभागी नेतृत्व (Participatory Leadership) या परामर्शात्मक नेतृत्व (Consultative Leadership) भी कहते हैं। इसमें जब एक नेता निर्णय लेता है तो वह अपने अधीनस्थों की राय जान लेता है। कई संगठनों में यह व्यवस्था होती है कि निर्णय लेने के पूर्व सदस्यों द्वारा अपने सुझाव अध्यक्ष के पास भेज दिए जाते हैं और वह इन सुझावों के आधार पर नीति एवं कार्यक्रम सम्बन्धी निर्णय लेता है। नेतृत्व का यह रूप कर्मचारियों के हित एवं उनके सक्रिय सहयोग पर बहुत अधिक बल देता है। प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व की सफलता इस बात से आँकी जाती है कि उसने अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को कार्य की ओर किस प्रकार प्रेरित किया। यह नेतृत्व तभी कार्यकुशल बन पाता है जब उसके सदस्य स्वेच्छा से अपना कार्य करें। प्रेरणा देना (To motivate) तथा चरित्र निर्माण करना इस नेतृत्व के मुख्य कार्य हैं। कुछ विचारकों के अनुसार प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व ही नेतृत्व का सही रूप है। जैसाकि हेमेन ने कहा है कि नेतृत्व एक प्रक्रिया है और अधीनस्थों के कार्यों का पथ प्रदर्शन निर्देशन एवं प्रभाव डालने वाली क्रिया है जिसमें वे स्वेच्छा से लक्ष्यों की ओर अग्रसर होते हैं। नेतृत्व का यह रूप सत्तावादी नेतृत्व की भाँति सत्ता और शक्ति के बल पर कार्य नहीं लेता। इसमें व्यक्ति को समझाया जाता है उसे आकर्षित किया जाता है और कार्य के प्रति उसके मन में रुचि पैदा की जाती है।

प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व में नेता एक बहुत अच्छा सहनशील श्रोता होता है। वह अधीनस्थों की राय को माने या न माने यह दूसरी बात है किन्तु महत्वपूर्ण यह है कि उनके मन में वह यह धारणा बना देता है कि उसके द्वारा लिए गए निर्णय अधीनस्थों की ही इच्छा की अभिव्यक्ति है। एक अच्छा तथा कुशल प्रजातन्त्रात्मक नेता वह है जो अपनी इच्छाओं एवं निर्णयों को संगठन में इस प्रकार प्रकट करता है कि वे सामान्य स्वीकृति प्राप्त कर लें। फिफनर तथा शरवुड (Pfiffner and Sherwood) के अनुसार प्रजातन्त्र में अधिक मन प्रवृत्ति और अधिक मैत्री रहती

है।[1] प्रजातन्त्रात्मक नेता व्यक्तिगत गुणों के प्रति सजग रहते हुए भी उनको अधिक महत्त्व नहीं देता अथवा अधिक महत्त्व देता हुआ सा नहीं लगता। इसके विपरीत वह सामूहिक एवं मैत्रीपूर्ण विचारों से अपने व्यवहारों का सचालित करता है। प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व प्राय मजदूर सघो एव अन्य स्वैच्छिक समुदायों में अधिक सम्भव होता है। जिन सगठनो में अन्तिम शक्ति भाग लेने वालों के हाथों में निहित रहती है वे प्राय इस प्रकार के नेतृत्व को अपनाते हैं। —

5 बाहरी नेतृत्व (Leadership from Outside)

सगठन में कई बार ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जब उसके सदस्य सगठन के ही किसी व्यक्ति को नेता मानना उचित नहीं समझते तथा सगठन के बाहर का व्यक्ति नेतृत्व करने के लिए नियुक्त किया जाता है। यह बाहरी व्यक्ति या तो किसी अन्य सगठन का उच्च अधिकारी होता है या राजनीतिक क्षेत्र का माना हुआ व्यक्ति। बाहरी नेतृत्व का रूप प्राय सामूहिक भी हो जाता है जबकि समूह की समिति या बोर्ड सगठन के नेतृत्व के कार्य को सम्पन्न करते हैं। बाहरी नेतृत्व का एक दूसरा रूप वह है जब सगठन की एक इकाई के सदस्य अपने में से किसी व्यक्ति को नेता न बनाकर सगठन की ही दूसरी इकाई के किसी व्यक्ति को नेतृत्व का कार्य सौंप देते हैं। इस व्यवस्था के अपने हानि और लाभ हैं। यह आशा की जाती है कि बाहरी नेतृत्व निष्पक्षतापूर्वक कार्य करेगा और सगठन के सदस्य उसे अधिक सम्मान और श्रद्धा प्रदान करेंगे। इसमें खतरा यह है कि सगठन के बाहर का सदस्य प्राय उसकी वास्तविक कठिनाइयों से अपरिचित रहता है और उसके द्वारा लिए जाने वाले निर्णय समस्याओं के वास्तविक धरातल को नहीं छू पाते।

पदसोपान की दृष्टि से बाहरी नेतृत्व का अर्थ उस व्यवस्था से भी लिया जा सकता है जहा किसी वरिष्ठ अधिकारी को एक समूह द्वारा अपना नेता मान लिया जाता है। किसी वरिष्ठ अधिकारी को नेतृत्व सौंपने से सगठन में नेतृत्व के प्रति अधिक विश्वास की सम्भावना मानी जाती है। अधिकांश कर्मचारी नेता को इसलिए मानते हैं क्योंकि वह अनुभव ज्ञान तथा उम्र की दृष्टि से एक वरिष्ठ अधिकारी है। वरिष्ठ अधिकारी की एक प्रमुख कमजोरी यह होती है कि वह सगठन के सदस्यों में पर्याप्त उत्साह (Enthusiasm) पैदा नहीं कर पाता और इस प्रकार उसका नेतृत्व सफलता की परिधि से बाहर रह जाता है।

6 आन्तरिक नेतृत्व (Internal Leadership)

नेतृत्व का यह रूप उपर्युक्त का बिल्कुल उल्टा है। इस व्यवस्था में एक नेता या तो सगठन के अन्दर का होता है या उसी इकाई का होता है अथवा उस समूह के लोगों में से ही होता है। आन्तरिक नेतृत्व के प्राय वे सभी लाभ हैं जो बाहरी

1 Pfiffner & Sherwood op cit p 363

नतृत्व की हानियाँ हैं। जब एक नेता नेतृत्व लिए जाने वाले व्यक्तियों से ही लिया जाता है तथा उन्हीं के स्तर का होता है तो यह आशा की जाती है कि वह संगठन के सदस्यों की समस्याओं को अच्छी प्रकार समझ सकेगा और उन्हें सुलझाने में अपना सक्रिय सहयोग देगा। लोगों के दिल में अपने समूह के व्यक्तियों के प्रति एक प्रेम भाव होता है। जिन परिस्थितियों में से व्यक्ति निकला हुआ होता है उन परिस्थितियों में उलझे हुए व्यक्ति के प्रति उसके मन में सहज प्रेम और सहानुभूति की भावनाएं विकसित हो जाती हैं।

इस सम्बन्ध में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि नेता महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति है तो वह दूसरों के अन्य सदस्यों के साथ एकरूपता कायम नहीं कर पाता। ऐसी परिस्थिति में समूहों के सदस्यों का कल्याण तथा उसके लक्ष्य नेता की भलाई तथा व्यक्तिगत लक्ष्यों से कम महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। महत्त्वाकांक्षी नेतृत्व के अधीन कार्य करने वालों को यह अनुभव होता रहता है कि उनके सुझाव इसलिए नहीं माने गए क्योंकि ऐसा करने से नेता का भविष्य (Career) खतरे में पड़ सकता था। इसके विपरीत जब नेता महत्त्वाकांक्षी नहीं होता और उसके सामने आगे बढ़ने के अवसर नहीं रहते तो वह अपने कार्य में पूरी रुचि लेता है। ऐसा नेता घनिष्ठ रूप से अपने अधीनस्थों के साथ एकाकार हो जाता है और उनके हित की रक्षा के लिए वह यथासम्भव सब कुछ करने को तैयार रहता है।

नेता के कार्य

(The Functions of a Leader)

प्रशासकीय संगठन में नेता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नेता के अभाव में एक समस्त मानवीय मतभेद एवं झगड़ों के बीच वह ही नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा जैसे राजा के बिना प्रजा और सेनापति के बिना एक सेना हो जाती है। यदि हम युद्ध स्थल में सेनापति के कार्यों पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात हो जाएगा कि संगठन में नेता द्वारा किए जाने वाले कार्यों के साथ उनकी समरूपता होती है। एक सेनापति अपनी सेना का मार्गदर्शन करता है उनके आगे बढ़ने की दिशा निश्चित करता है उनका कार्यक्रम तैयार करता है और क्या कदम कब उठाना चाहिए इसका निश्चय करता है। सेना के सदस्य अपने सेनापति के प्रति विश्वास रखते हैं वे उसकी बुद्धिमत्ता और शक्ति में निष्ठा रखते हैं। सेनापति अपनी सेना में चरित्र-बल एवं उत्साह लाने के लिए उनके सामने अपने लक्ष्यों को स्पष्ट करता है और प्रत्येक सैनिक के दिल में यह बैठा देता है कि शत्रु को जीतना उसका उद्देश्य है तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति किन कारणों से आवश्यक है। उद्देश्य निश्चित करने के बाद सेनापति दुश्मन को परास्त करने के लिए रणनीति (Strategy) एवं व्यूह रचना करता है। वह विभिन्न सैनिकों को उनकी योग्यता एवं गुणों के अनुसार पदों पर नियुक्त करता है। समय-समय पर उनके कार्यों की देखरेख करता रहता है और इस मूल्यांकन के

बाद आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता है। सेनापति को यह सब करने के बाद सेना के संचालन का कार्य सम्भालना होता है साथ ही वह अपने पक्ष की निरन्तर प्रगति का निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं निर्देशन करता रहता है। नियन्त्रण तथा समन्वय की क्रियाओं द्वारा सैनिकों के बीच उठने वाले मतभेदों को या तो उठने ही नहीं देता या उन्हें शान्त कर देता है।

सेना में एक सेनापति के ये समस्त कार्य संगठन के नेता के कर्त्तव्य बन जाते हैं। एक नेता को संगठन के गुटों के बीच सामञ्जस्य स्थापित करना होता है। जब तक वह संगठन के विरोधी समूहों के बीच मध्यस्थ का कार्य नहीं करता तथा अपना दोहरा व्यक्तित्व नहीं बना लेता तब तक उसे संगठन के सदस्यों का विश्वास, मैत्री और आदर प्राप्त नहीं हो पाता। दो विरोधी समूहों में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए वह संगठन के लक्ष्यों को मूलभूत बना देता है, उनको प्राथमिकता प्रदान करता है।

एल. उर्विक (L. Urwick) ने नेतृत्व के कार्यों को चार भागों में विभाजित किया है। उनके मतानुसार एक नेता को ये कार्य करने चाहिए—

1. प्रतिनिधित्व करना (To Represent)—नेता अपने संगठन का प्रतिनिधित्व करता है। संगठन के सदस्यों को उसमें संगठन का पूर्ण व्यक्तित्व दिखाई देता है। किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न होने पर वे उसी के पास विचार विमर्श एवं सुझाव के लिए जाते हैं। संगठन के बाहर भी नेता संगठन के हितों एवं विचारों का प्रवक्ता होता है। संगठन एक अमूर्त विचार (Abstract Idea) है और नेता के रूप में ही यह अमूर्त विचार अभिव्यक्त होता है। यदि किसी संगठन की प्रशंसा या उसके कार्यों की आलोचना करनी हो तो इसके लिए नेता की प्रशंसा या आलोचना करनी होगी। जब लोग संगठन का नाम लेते हैं तो वास्तव में वे नेता का उल्लेख कर रहे होते हैं।

2. पहल करना (To Initiate)—संगठन के कार्यों को स्वस्थ रूप में सम्पन्न करने तथा उसे प्रगति की ओर अग्रसर करने के लिए नेता को नए विचार एवं प्रक्रियाओं में पहल करनी होती है। ये सभी नवीन विचार उसके स्वयं के भी हो सकते हैं और दूसरों के भी। संगठन के अन्य सदस्य यदि कोई महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं तो नेता को चाहिए कि उन्हें अपनाकर अधिक से अधिक उपयोग में लाए। नेता के मुँह से कही गई बात प्रायः प्रभावशील होती है अन्यथा महत्त्वपूर्ण होते हुए भी वह प्रभावशील रूप में हो समाप्त हो जाती है। नेता का यह उत्तरदायित्व है कि वह ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करे जिनमें संगठन के सभी सदस्य रुचि पूर्वक पहल करने में भाग ले सकें।

3. उद्यम का प्रशासन करना (To Administer the Undertaking)—नेता का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि वह संगठन के कार्यों का सुचारु रूप से

प्रशासन सम्भव है। जहाँ तक अनौपचारिक नेतृत्व (Formal Leadership) का सम्बन्ध है उसका यह एक प्रमुख कार्य है जिसे सम्पन्न करने का उत्तरदायित्व वह निजी रूप में भी उसी के कन्धों पर रहता है। किन्तु अनौपचारिक नेतृत्व को यह कार्य करना चाहिए या नहीं इस सम्बन्ध में लेखकों ने अलग अलग विचार प्रस्तुत किए हैं। कुछ का कहना है कि नेता तब तक नेता नहीं माना जा सकता जब तक कि वह प्रशासकीय क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग न ले। अन्य कुछ लोगों का मत है कि नेता का कार्य प्रशासकीय क्षेत्र में केवल कुछ कार्यों तक ही सीमित रहना है। इन दोनों मतों में दूसरा मत सही है क्योंकि नेतृत्व और प्रशासन दोनों पर्यायवाची शब्दों के समान हैं और इनकी क्रियाओं में पर्याप्त एकरूपता पाई जाती है। (जब तक एक नेता भविष्यवाणी तथा नियोजन संगठन निर्देशन समन्वय नियन्त्रण आदि कार्यों से अपने आपको सम्बन्धित नहीं रखता तब तक वह नेता कहलाने का अधिकारी नहीं है। जब एक संगठन में प्रशासकीय स्तर निम्न कोटि का होता है तो उसे नेतृत्व की कमजोरी कहा जाता है।) व्यवस्था का नियम या शासन असफल हो जाने पर संगठन और नेतृत्व दोनों पृष्ठभूमि में चले जाते हैं।

6. व्याख्या करना (To Interpret)—नेता का यह भी एक कार्य है कि वह संगठन के कार्यों तथा प्रक्रियाओं को सभी सदस्यों के सामने स्पष्ट करे। जब संगठन में कोई नया कदम उठाया जाता है तो संगठन के सदस्यों में उससे सम्बन्धित अनेक अनुमान लगाए जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि संगठन का अध्यक्ष लेखा शाखा के अधिकारी की नियुक्ति शाखा का प्रभारी बना दे और किसी को यह न बताए कि वह ऐसा क्यों कर रहा है तो संगठन के सदस्य अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उसके अनुमान लगाएंगे। कुछ लोग सोचेंगे कि अधिकारी लेखा शाखा के अयोग्य था कुछ कहेंगे कि उसने लेखा शाखा से बहुत अधिक धन का गबन किया कुछ का अनुमान होगा कि यह अधिकारी ईमानदार था और अध्यक्ष का जब गबन होने में एक बाधक होता था कुछ लोग इस सम्बन्धित अधिकारी के प्रति अध्यक्ष का द्वेषभाव कहेंगे और अन्य लोग इसको अध्यक्ष की न्याय बुद्धि का प्रमाण मानेंगे।

इस प्रकार के प्रमाणहीन निराधार एवं भ्रमपूर्ण अनुमान कालान्तर में संगठन के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होते हैं। इसलिए नेता का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह अनुमानों की सम्भावनाओं को कम से कम कर दे तथा संगठन की व्यवस्था में किए जाने वाले प्रत्येक परिवर्तन या कारण कम से कम उन सभी को स्पष्ट कर दे जो प्रशासनिक क्रियाओं में उसकी सहायता करते हैं। संगठन के परिवर्तनों की सूचना मात्र देना ही पर्याप्त नहीं है क्योंकि केवल सूचना प्राप्त करने पर संगठन के अधिकारी उसका ऐसा अर्थ भी लगा सकते हैं जो संगठन के हित में न हो। इसलिए नेता को चाहिए कि वह सदस्यों के सम्मुख परिवर्तनों की व्याख्या इस रूप में करे कि अधिकांश सदस्यों का वह मत में हो सके तथा बहुत से लोग

अपना एच्छिक सहयोग प्रदान कर सकें। सगठन के मन्स्यो म काय क प्रति उत्साह पदा करना एक अच्छे नेता की विशेषता मानी जाती है जिस केवल निर्देशो एव आज्ञाओ के सहारे प्राप्त नही किया जा सकता। इसके लिए नेता को एक शिक्षक भी होना पडता है।

उविक महोदय द्वारा वताए गए इन कार्यों के अतिरिक्त नेतृत्व क अन्य काय भी होत हैं। इन्हे मुख्य रूप स निम्नाकित भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

(5) उद्देश्य निश्चित करना To Decide the Objectives)—नेता चाहे औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक, उसकी नीति का एक उद्देश्य होता है जो कभी कभी तो नेता को बना हुआ मिलता है और कभी वह उस स्वय बनाता है। गोवध विरोध के सम्बन्ध म पुरी के शकराचाय को जब नता माना गया तो एक उद्देश्य उनके सामने पहले से ही तयार था कि गोवध को रोका जाए। कई बार सगठन म अपनी प्रसिद्धि तथा गुणो के कारण एक व्यक्ति नेता बन जाता है। इसके पश्चात् अपने नेतृत्व को सायक बनान क लिए वह कुछ उद्देश्य निर्धारित कर लेता है ताकि जिनकी प्राप्ति कर वह अनुयायियो को अपने पक्ष म ले सके और नेतृत्व की जडो को गहरी जमा सके। उद्देश्य चाहे नेता द्वारा निर्धारित किया गया हो अथवा उसको बना हुआ प्राप्त हुआ हो वह तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि अनुयायियो का सक्रिय सहयोग उस न मिले। यह तभी सम्भव है जब नेता सगठन के लक्ष्यो अपनी नीतियो एव प्रक्रियाओ को अनुयायियो के सम्मुख स्पष्टत प्रस्तुत करे। उद्देश्य सामने रहने पर अनुयायियो का मनोबल बढ़ता है वे अपने प्रयास को कुछ सार्थक समझने लगते हैं। उद्देश्य स्पष्ट न होने की दशा म उनका व्यवहार एक भटके हुए राही की भाँति अनिश्चित तथा भविष्य एक कटी हुई पतग की तरह अकल्पनीय होता है। इस स्थिति म नेतृत्व का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है।

(6) सगठन म एकता (Unity Among Organization)—नेता को चाहिए कि वह सगठन क विभिन्न सदस्यो के बीच एकता स्थापित करे। किसी भी सगठन म प्राय अलग अलग दृष्टिकोणो और मनोदशाओ वाले कर्मचारी रहते हैं और उनके लक्ष्य आदर्श सामाजिक पृष्ठभूमि प्रशिक्षण व्यक्तिगत मूल्य आदि म मौलिक अन्तर रहता है। इस स्थिति म उनके बीच मनमुटाव और सघष पैदा होना स्वाभाविक है। नेता का व्यक्तित्व सगठन की इन समस्त भिन्नताओ को ध्यान म रखते हुए एक समायोजित व्यवहार की रचना करता है ताकि प्रत्येक व्यक्ति को अधिक से अधिक सन्तोष प्राप्त हो सके तथा कम से कम समस्याए अनसुलझी रहें। हेमफिल (Hemphill) के शब्दो म एक नेता का मूल काय यह होता है कि सगठन म एकता और सामजस्य की दिशा म काय करे तथा यह देखे कि उसके सदस्य प्रसन्नता एव सन्तोष अनुभव कर रहे हैं अथवा नहीं।[1]

1 *John K Hemphill* Situational Factors in Leadership p 79

7 अनुयायियों को समझना (To Understand the Followers)—अनुयायियो को समझना एक नेता का काय भी है और एक अच्छे नेता का गुण भी। काय क रूप म इसका महत्त्व अप्रत्यक्ष है क्योकि इसके द्वारा नेतृत्व के अन्य उत्तरदायित्वो का भाग सुगम बन जाता है। अनुयायियो को जानने अथवा समझने के लिए एक नेता को कई प्रकार के कदम उठाने पड़ते हैं। सयुक्तराज्य अमेरिका के ओहियो (Ohio) राज्य मे नेतृत्व सम्बन्धी कुछ प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध किया गया कि नेतृत्व के तीन प्रमुख काय होते हैं।[1] ये काय हैं—लक्ष्य की प्राप्ति (Objective Attainment) समूह के सम्ब धो को सुविधाजनक बनाना (Group Interactions Facilitations) तथा सदस्यता का अनुरक्षण (Maintenance of Membership)। इन तीनो कार्यों म स प्रथम का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। अन्य दो काय स्पष्ट रूप स वतमान शीषक के अन्तगत आते हैं। एक सगठन के नेता को एसा वातावरण बनाना होता है जिसम उसके सभी सदस्य प्रभावी रूप से क्रिया प्रतिक्रिया कर सकें। संचार साधनो द्वारा यह काय सम्भव बन जाता है। एक नेता को अपने समूह के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने होते हैं तथा इस प्रकार की व्यवस्था करना होनी है कि सगठन का प्रत्येक सदस्य जब चाहे उसस मिल सके और अपनी समस्याएँ उसके सम्मुख रख सके। थॉमस गोडन (Thomas Gordan) के अनुसार एक समूह के सम्भावित नेता को यह जानना चाहिए कि उसका समूह क्या चाहता है तथा उस समूह को लक्ष्य के निकट लाने के लिए कुछ योग देना चाहिए।

8 निर्णय लेना (Decision Making)—निणय लेने की क्षमता से नेता का महत्त्व आंका जा सकता है। नेता के निणयो की प्रक्रिया अनेक प्रकार की हो सकती है। निर्णय की प्रक्रिया के आधार पर ही नेतृत्व को सत्तावादी प्रजातन्त्रात्मक एव अन्य रूपो म वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रजात त्र के इस युग म प्राय वही निणय अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है जो अनुयायियो की राय जानकर लिया गया हो। निणय लेते समय नेता परिस्थिति का अध्ययन करता है अधीनस्थो की माँगो पर विचार करता है और उच्चाधिकारियो की प्रतिक्रिया का अनुमान लगाता है। अनौपचारिक नेता द्वारा लिए गए निणय प्राय प्रजातन्त्रात्मक प्रकृति के होते हैं जिनम निणय लने से पूव प्रभावित लोगो के सुझाव मांगे जाते हैं। नेता का निणय प्राय तभी प्रभावशाली होता है जब वह समूह की भावनाओ का प्रतिनिधित्व करे और उच्च अधिकारियो के दृष्टिकोण से अधिक विपरीत न हो। नेता द्वारा जो निणय लिए जाते हैं वे उसके व्यक्तिगत विचार मूल्य मान्यता एव लक्ष्यो स प्रभावित होने के साथ ही अन्य अनेक दृष्टियो एव मदृश्य तत्त्वो से प्रभावित होते हैं। सम्भवत

1 Shanti op cit p 117
2 Thomas Gordon Group Centred Leadership p 1955 p 51

इसी कारण निर्णय लेने के कार्य को किसी प्रक्रिया में एक क्षण (A Moment in a Process) कहते हैं। निर्णय की यह परिभाषा नेतृत्व के महत्त्व को कम नहीं करती क्योंकि इस क्षण को लाने में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

9 उचित स्थान पर उचित व्यक्ति (Appropriate Man at the Appropriate Place)—प्रशासकीय संगठनों की सफलता एवं असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि किसी पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति उस पद से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों को निभाने की योग्यता रखता है अथवा नहीं। कई बार किसी विशेष क्षेत्र में योग्यता प्राप्त व्यक्ति को उस पद के उत्तरदायित्व सौंप दिए जाते हैं जिनके लिए वह उपयुक्त नहीं होता। अपनी योग्यता के अनुरूप पद प्राप्त न होने पर व्यक्ति की मौलिक विशेषताएं कुण्ठित हो जाती हैं और उनका पूरी तरह उपयोग नहीं हो पाता। किसी संगठन का कोई व्यक्ति अपने प्रशिक्षण रुचि एवं पूर्व अनुभव के कारण संगठन की तकनीकी शाखा (Technical Branch) के लिए अधिक उपयुक्त है और उसे एक फोरमैन का काम सौंप दिया जाए तो इसके परिणामस्वरूप संगठन दो प्रकार से नुकसान में पहुँचता है। प्रथम वह उस व्यक्ति की तकनीकी योग्यताओं का लाभ उठाने से वंचित रह जाएगा और द्वितीय उस फोरमैन का कार्य सन्तोषजनक नहीं हो पाएगा। इसलिए उपयुक्त व्यक्ति को उपयुक्त स्थान पर नियुक्त करना एक नेता का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है।

10 कार्यों का मूल्यांकन (The Work Assessment)—संगठन के नेता को अपने विभिन्न सदस्यों के कार्यों का समय समय पर मूल्यांकन करते रहना चाहिए। मूल्यांकन से यह ज्ञात हो जाता है कि एक पदाधिकारी अपने पद के उपयुक्त है अथवा नहीं। यदि नेता यह अनुभव करे कि पदाधिकारी अपने वर्तमान पद की अपेक्षा किसी अन्य पद पर अच्छी तरह कार्य कर सकता तो उसे वहीं नियुक्त कर देना चाहिए। काम का मूल्यांकन करने के बाद यदि नेता द्वारा अच्छे कार्य की प्रशंसा तथा बुरे कार्य की आलोचना की जाए तो यह सम्भव है कि संगठन के कार्यकर्ताओं में एक विधेयात्मक उत्साह (Positive Enthusiasm) उत्पन्न हो। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसके कार्यों की प्रशंसा की जाए। सराहना के बिना योग्य एवं समर्थ व्यक्ति भी कार्य के प्रति उदासीन तथा निरुत्साहित हो जाता है। काम का मूल्यांकन संगठन के सदस्यों को उदासीन होने से रोकता है।

11 नैतिक भावनाओं का विकास (Encouragement of Moral Feelings)—एक नेता अपने अनुयायियों का पूरा सहयोग प्राप्त करने के लिए उनकी भावनाओं को उकसाता है। यद्यपि नेतृत्व को औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से कुछ सत्ता प्राप्त होती है। यह सत्ता उसे एक सफल तथा सर्वश्रेष्ठ नेतृत्व बनने में सहायता नहीं दे सकती। सत्ता एवं अधिकार के आधार पर किसी व्यक्ति को कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सकता है किन्तु उसके स्वेच्छापूर्ण व्यवहार को

प्रेरित नहीं किया जा सकता। नेतृत्व का वास्तविक रूप बाध्यकारी नहीं होता। एक सैनिक कमाण्डर तथा संगठन के नेता के बीच यही अन्तर है कि कमाण्डर अपनी शक्ति के आधार पर आज्ञा एवं निर्देश देता है जिसे अनुयायियों को बाध्य होकर स्वीकार करना पड़ता है। इसके विपरीत संगठन में एक सच्चा नेता वह माना जाता है जो सदस्यों में ऐसी भावना विकसित करे कि वे स्वेच्छा से संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपना योग दे सकें। संगठन के सदस्यों को कार्य की ओर प्रेरित करना (To Motivate) एक नेता का प्रमुख कार्य है। इसे वह कई प्रकार से सम्पन्न करता है। वह संगठन के सदस्यों में ऐसी भावनाएं विकसित कर देता है जिससे वे यह सोचने लग जाएं कि नेता का अनुगमन करना उसकी आज्ञाओं का पालन करना उसकी नीतियों एवं कार्यक्रमों को सफल बनाने में यथाशक्ति सहयोग देना उनका एक नैतिक कार्य है। इस नैतिक कार्य का निर्वाह उन्हें संगठन की भलाई, नेता की भलाई तथा स्वयं की भलाई की ओर प्रेरित करेगा।

अपने अनुयायियों में नेता द्वारा दो प्रकार से प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है—(i) निषेधात्मक (Negative) और (ii) विधेयात्मक (Positive)। डेविस कीथ (Davis Keith) के मतानुसार विधेयात्मक नेता लोगों को संतुष्ट कर प्रेरित (Motivate) करता है। निषेधात्मक नेता उनमें असंतोष असुरक्षा और भय उत्पन्न कर प्रेरित करता है।[1] विधेयात्मक नेता केवल आज्ञाएं ही प्रसारित नहीं करता बल्कि उनकी व्याख्या करता है कर्मचारियों में उनका पालन करने की सामर्थ्य विकसित करता है साथ ही आवश्यक सत्ता का प्रत्यायोजन करता है। जब कर्मचारियों को वह स्पष्ट कर देता है कि एक विशेष कार्य क्यों करना चाहिए तो कर्मचारी-वर्ग उत्साह तथा रुचि के साथ उस कार्य में लग जाते हैं। वह एक व्यक्ति को वही कार्य सौंपता है जिसे वह योग्यतापूर्वक सम्पन्न कर सकता हो।

उसका यह दृष्टिकोण रहता है कि यदि लोगों को अवसर और प्रेरणा प्राप्त हो तो वे स्वेच्छा से कार्य करना चाहेंगे। निषेधात्मक नेता अपनी शक्ति के प्रयोग द्वारा लोगों में डर की भावना पैदा करता है। वह काम लेने के लिए कर्मचारियों को पद से हटा देने दूसरों की उपस्थिति में धमकी देने तथा अन्य प्रकार के दण्ड देने की नीति अपनाता है। इस प्रकार का नेता यह विश्वास बना लेता है कि उसने सभी को मानसिक रूप से जीत लिया है। डेविस के शब्दों में वह एक बास (Boss) है नेता नहीं। वह निषेधात्मक दृष्टिकोण अपनाता है क्योंकि वह समझता है कि लोगों को सहयोगपूर्ण तथा उत्पादनशील बनाने के लिए विवश किए जाने की आवश्यकता है चूंकि वे स्वाभाविक रूप से ऐसा करना नहीं चाहते।

1 Davis Keith, Human Relations at Work, p. 112

इन दोना प्रकार के नतृत्व म कमचारिया का भी नेता के प्रति व्यव ार भिन्न होता है। निषधात्मक नतृत्व म कमचारी सगठन के कार्यों पर ध्यान देने की अपक्षा नेता को प्रस न करने म प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसा नेतृत्व ानो की शक्ति को अनावश्यक कार्यो म य करता है और उनम चि ता उत्प न कर रचनात्मक कार्यों की क्षमता को घटाते हैं। दूसरी ओर विधेयात्मक नतृत्व कमचारियो की शक्ति मे कई गुणा वृद्धि कर देता है। यह तो सच है कि दोनों ही प्रकार के नेतृत्व अपने क्ष्यो को प्राप्त करन म सफल हो जाते हैं कि तु कालान्तर म गुण और सख्या म विधेयात्मक नेतृत्व की प्राप्तिया निषधात्मक नतृत्व की अपेक्षा अधिक होती हैं। कभी कभी निषधात्मक नतृत्व आवश्यक भी बन जाता है कि तु आजकल प्रशिक्षण प्रक्रिया आदि म विकास क कारण विधेयात्मक नतृत्व की परिस्थितियो का अधिक विस्तार हो रहा है।

नेतृत्व के आवश्यक गुण
(The Essential Qualities of Leadership)

नतृत्व से सम्बन्धित व्यक्तिगत गुणो क बार म निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। चस्टर बनाड Chester Barnard) इन गुण का गतिशील (Dynamic) मानत हैं जो परिस्थिति आवश्यकता तथा समय क साथ बदलत रहते हैं। डेविस क शब्दो मे व्यक्तिगत विशेषताए बदलती हुई स्थितिया और नेतृत्व किए जाने वाल व्यक्तियो की सम्पूण प्रतिक्रियाओ का एक भाग होती हैं।

नतृत्व क आवश्यक गुणों का वणन वि ानो ने भिन्न भिन्न प्रकार से किया है। व्यापारिक नतृत्व (Business Lead rship) के लिए आवश्यक गुणो का वणन करते समय राबट वाल्ड (Robert Wald) तथा राय डोटी (Roy Doty) न बताया है कि नता को अपना वनमान पारिवारिक रेकार्ड स सम्बन्धित रखना चाहिए उसे औसत स कुछ अधिक शिक्षित होना चाहिए सामाजिक सगठना का नता होना चाहिए उच्च नतिक स्तर क विकास क लिए धम मे रुचि लनी चाहिए और उसका स्वास्थ्य अच्छा रहना चाहिए आदि।[1] इन विशेषताओ म स अधिकांश का तो कोई विशष महत्त्व नही है और सफल नतृत्व के लिए अनिवाय भी न ी हैं। डेविस कीथ (Davis Keith) न एक सफल व्यावहारिक नतृत्व म सम्बन्धित चार गुणो का वणन किया है—प्रथम बुद्धि ि तीय सामाजिक परिपक्वता तृतीय आ तरिक प्ररणा (Inner Motivation) चतुर मानवीय सम्ब ध दृष्टिकोण (Human Relations Attitude)।

सर विलियम स्लिम (Sir William Slim) के विचार

नतृत्व के लिए आवश्यक गुणो का वणन करते समय फी ड मार्शल सर

1 *Robert M Wald and R y A Doty* The Top Execut ve A Fi st Hand P ofile p 53

विलियम स्लिम (Sir William Slim) ने इस प्रकार के पाँच गुणों का उल्लेख किया है।[1]

1 साहस (Courage)—नेता में महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए साहस होना चाहिए। नेता को कई बार ऐसे कार्य करने होते हैं जिनकी प्रकृति क्रान्तिकारी होती है। नेतृत्व का अधिकांश व्यवहार पहल (Initiative) से प्रभावित रहता है। साहस को सभी सद्गुणों का आधार समझा जाता है। एक उच्च श्रेणी का नेता नैतिक साहस से सम्पन्न होना चाहिए।

2 इच्छा शक्ति (Will Power)—एक नेता का उत्तर दायित्व है कुछ कार्यों को सम्पन्न करना। नेता के कार्य कठिनाइयों तथा समस्याओं से पूर्ण होते हैं जिनमें बाधाओं और विरोधों पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रबल इच्छा शक्ति की आवश्यकता होती है।

3 मस्तिष्क की लोचशीलता (Flexibility of Mind)—यह विकास का एक सिद्धान्त है कि युग परिवर्तनशील है तथा उसकी परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। जो इन परिवर्तनों के साथ अपने आपको नहीं बदल पाता वह पिछड़ जाता है। इसी प्रकार जो संगठन समय की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने आपको नहीं ढाल पाता वह अपना महत्त्व एवं अस्तित्व खो देता है। परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको तथा संगठन को ढाल लेना एक नेता का विशिष्ट गुण है।

4 ज्ञान (Knowledge)—संगठन के सफल नेता को अपने संगठन की प्रत्येक गतिविधि का ज्ञान रहना चाहिए। उसे विभिन्न मजदूरों की समस्याओं एवं कठिनाइयों से परिचित रहना चाहिए तथा यह जानकारी होनी चाहिए कि किसी विशेष कार्य में कितना समय लगेगा और कार्यकर्त्ताओं को किस प्रकार की सहायता प्रदान करनी होगी।

5 ईमानदारी (Integrity)—ईमानदारी नेता का वह गुण है जो दूसरे गुणों की सिद्धि सम्भव बनाता है। ईमानदारी के व्यवहार के कारण नेता संगठन के सदस्यों का विश्वासपात्र बन जाता है।

हेनरी फयोल (Henry Fayol) के विचार

हेनरी फयोल के द्वारा उल्लिखित गुण भी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने एक सफल नेतृत्व के लिए व्यक्ति में जो विशेषताएँ आवश्यक मानी हैं वे निम्न प्रकार हैं—

(1) स्वास्थ्य और शारीरिक सामर्थ्य (Health and Physical Fitness)।

(2) मानसिक शक्ति (Mental Vigour)।

1 F ld M hall S r W l am Sl m L ade hip An Address to the Sydney D v sion of the Aust al a Inst t t of Ma gement N 1953

2 H F yol Ge e al d Industrial Ma agem nt

(3) नैतिक गुण (Moral Qualities) जैसे वस्तु य का ज्ञान सामान्य हित की भावना स्थिरता एकता व्यवहार विचारपूर्ण निर्णय एवं उत्तरदायित्व स्वीकार करने का साहस।

(4) सामान्य शिक्षा (General Education)।

(5) प्रबन्धात्मक योग्यता (Managerial Ability) अर्थात् दूरदर्शिता कार्य की योजना बनाने की सामर्थ्य संगठन की रचना का ज्ञान आदेश देने एवं व्यक्ति से काम लेने की कला समन्वय एवं सभी कार्यों के बीच सामंजस्य पैदा करना एवं नियन्त्रण।

चेस्टर बर्नार्ड (Chester Barnard) के विचार

चेस्टर बर्नार्ड ने एक सफल नेतृत्व के लिए निम्नलिखित आवश्यक गुणों का उल्लेख किया है[1]—

1. जीवन शक्ति एवं धैर्य (Vitality and Endurence)—नेतृत्व के ये गुण सामान्यत अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य से कुछ अधिक होते हैं। इनके द्वारा विशद् अनुभव प्राप्त किया जा सकता है जो अधिनियम आवश्यक तत्व हैं। कोई भी नेतृत्व संघर्ष के एक लम्बे समय के बाद उजागर होता है और लम्बे संघर्ष का मुकाबला करने के लिए पर्याप्त जीवन शक्ति एवं धैर्य की आवश्यकता होती है।

2. निर्णय लेने की क्षमता (Decisiveness—संगठन के नेता में तत्काल निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए। निर्णय लेने का अर्थ है उचित समय पर उचित कार्य सम्पन्न करना और अनावश्यक कार्यों को रोकना। निर्णय लेने की क्षमता का अभाव संगठन के कार्यों पर विध्वंसात्मक प्रभाव डालता है।

3. समझाने की क्षमता Persuasiveness—संगठन का लक्ष्य कुछ कार्य सम्पन्न करना होता है। नेता इन कार्यों की सम्पन्नता में संगठन का सहयोग प्रदान करता है। नेता प्रकार्य संगठन के न ा को प्राप्त करने में असमर्थ है। इसके लिए यह जरूरी है कि वह अन्य सदस्यों का सक्रिय रचनात्मक एवं स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करे। इसके लिए नेता संगठन के अन्य सदस्यों को समझाता है और उन्हें कार्य की ओर प्रेरित करता है।

4. उत्तरदायित्व (Responsibility)—नेता का व्यवहार उत्तरदायित्वपूर्ण होना चाहिए अर्थात् वह अपने गलत या सही कार्यों के लिए स्वयं ही उत्तरदायी होता है। एक उत्तरदायी व्यक्ति के रूप में नेता के व्यवहार की विशेषता स्थायित्व होता है। ऐसा होने पर ही संगठन के सदस्य लोग उन्हें समझ पाएंगे।

5. बौद्धिक सामर्थ्य (Intellectual Capacity)—एक नेता को बुद्धिमान होना चाहिए ताकि उसके निर्णय सही तथा बुद्धिपूर्ण हों। बौद्धिक सामर्थ्य का महत्व केवल इतना ही है कि वह नेता के अन्य गुणों को सार्थक बनाती है।

1 *Chester I Barnard* Organisation and Management pp 92 102

फील्ड मार्शल विसकाउट आर्चीबाल्ड वावेल के विचार

मि वावेल के अनुसार एक सफल नेता में निम्नलिखित गुण होने चाहिए[1]—

(1) कठोरता (Toughness)

(2) साहस (Courage) अर्थात् नेता में शारीरिक और नैतिक दोनों प्रकार का साहस होना चाहिए।

(3) स्वास्थ्य एवं युवापन (H alth and Youth)।

(4) नवीन कार्य करने का साहस Adventure)।

(5) साधारण ज्ञान (Common Sense) अर्थात् नेता को सामान्य रूप से यह जानना चाहिए कि किस कार्य को किया जा सकता है और किसको नहीं।

(6) वास्तविक गुण (The Real Qualities) अर्थात् नेता के व्यक्तित्व में वास्तविक गुण होने चाहिए। इनके अभाव में वह अधीनस्थों को कुछ दिनों के लिए भ्रम में रख सकता है कि वह एक अच्छा नेता है किन्तु अधिक समय तक वह ऐसा नहीं कर सकता।

एल एफ उर्विक (L F Urwick) के विचार

एल उर्विक के अनुसार नेतृत्व की छह प्रमुख योग्यताएं होती हैं

1. आत्म विश्वास (Self confidence)—संगठन के नेता को अपनी योग्यता एवं सामर्थ्य का वस्तुगत ज्ञान होना चाहिए और उसके आधार पर उसमें आत्म विश्वास की भावना रहनी चाहिए ताकि उसके निर्णयों में निश्चयता एवं संकोचहीनता हो। कभी-कभी आत्मविश्वास और मिथ्याभ्रम को एक मानने की गलती कर दी जाती है। मिथ्याभ्रम आत्मज्ञान पर आधारित नहीं होता। मिथ्या अभिमान से नेता संगठन में ही अपने अनेक विरोधी पैदा कर लेगा। वह एक सच्चे नेता के रूप में विश्वास पैदा नहीं कर सकता।

2. व्यक्तित्व (Personality)—नेता का व्यक्तित्व आकर्षक होना अत्यन्त आवश्यक है। संगठन के लोगों को प्रभावित करने के लिए नेता के व्यक्तित्व में कुछ असाधारण गुण होने चाहिए। इस दृष्टि से उसकी शारीरिक बनावट, पहनाव आदि प्रथम रूप से उल्लेखनीय है। किसी भी अपरिचित व्यक्ति पर सर्वप्रथम प्रभाव नेता की शारीरिक रचना एवं ऊपरी व्यवहार का पड़ता है। नेता के पास न तो इतना समय होता है और न ही इतने अवसर होते हैं कि वह संगठन के प्रत्येक लोग को अपने विचारों से प्रभावित कर सके। अधिकांश लोग तो नेता की चाल-ढाल एवं व्यवहार के अन्य तरीकों से ही प्रभावित होते हैं।[3]

1 F ld Mrsh ll V scount A ch bold W ll G ne als a d G neralship Knowle Lectu pp 148

2 L F Urw ck Leade h p in the 20th Ce tu y pp 49 52

3 L F Urwi k op cit p 49

एक अच्छा नता प्राय वह माना जाता है जो अपने गुणो एव विशेषताओ के प्रति सगठन का सम्मान प्राप्त कर सके और अपनी मानवीय कमजोरियो के प्रति उनकी सहानुभूति अर्जित कर सक। नेता म जन सामान्य के हृदय तक पहुचने की सामर्थ्य हानी चाहिए। समूह क सभी सदस्यो के प्रति यदि उसके दिल म सद्भाव है और वह उनके साथ मिलने म रुचि एव उत्साह प्रदर्शित करता है तो बहुत कम समय म ही वह उस समूह का एक लोकप्रिय एव प्रभावशाली नेता बन जाएगा।

3 जीवन शक्ति (Vitality)—नेता के व्यक्तित्व का बाहरी रूप प्रभावशाली होना चाहिए क्योकि इसी के माध्यम स वह अपन अनुयायियो को प्रथम साक्षात्कार म ही प्रभावित कर लता है। समूह के लोगो म उसके प्रति चर्चाए होती हैं जिसके परिणामस्वरूप उसका प्रतिरूप (Image) बनता है। एक नेता का यह प्रतिरूप अधिक दिनो तक प्रभावशाली नही रह सकेगा यदि वह अपने वास्तविक गुणो से इसको ठोस रूप न दे दे अथवा सशयशील लोगो को अपनी ओर आकर्षित न कर ले। नेता को आन्तरिक व्यक्तित्व की प्रतिभा स सम्पन्न होना चाहिए। उसमे एक जीवन शक्ति होनी चाहिए जिसके द्वारा वह सगठन के निराश लोगो म आशा निष्क्रिय लोगो म क्रियाशीलता उत्साहहीन लोगो म उत्साह पदा करन के अतिरिक्त सगठन क गुणवान लोगो का भी प्रोत्साहन प्रदान कर सके। नता की जीवन शक्ति एव आकर्षण कई बार सगठन क सदस्यों के जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड बन जात हैं। नेता के गुण समूह क सदस्यो के व्यवहार के आदर्श बन जाते हैं।

4 सामान्य बुद्धि (General Intelligence)—नेता का बुद्धिमान होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ताकि वह निर्णय लते समय उसके स्वरूप एव परिणामो पर सभी पहलुओ से विचार कर सके। उसकी बुद्धि का स्तर एकागी नही होना चाहिए। बुद्धि के एकागी होन क दो आशय हो सकत हैं। प्रथम ता इस प्रकार की बुद्धि का किसी क्षेत्र विशेष म तो छोटी स छोटी बात म भी प्रवेश होता है किन्तु दूसरे क्षेत्रो का ज्ञान नही होता। इस प्रकार की बुद्धि स नता अपन उत्तरदायित्वो को सफलता पूर्वक नही निभा पाएगा क्योकि उसका सम्बन्ध सगठन क किसी एक भाग से न होकर पूरे सगठन स हाता है। बौद्धिक एकागिता का दूसरा रूप वह है जिसम नता का बौद्धिक स्तर इतना ऊचा होता है कि समूह का सामान्य सदस्य उस ग्रहण करन म असमर्थ रहता है। एसी स्थिति म नता की बातें सामान्य रूप स प्रभावशाली नही होता।

5 सचारित करन की योग्यता (Ability to Communicate)—सचार व्यवस्था नता क शस्त्रागार का एक मुख्य शस्त्र है जिसक माध्यम स वह अपनी आज्ञा निर्देश सुझाव एव दृष्टिकोण आदि सगठन के अन्य लोगो तक सचालित कर सकता है। नता सगठन के सभी कार्यों को स्वय नही कर सकता। वह दूसरे लोगो मे काय को इस प्रकार विभाजित करता है कि व सभी स्वेच्छा से सहयोग प्रदान कर उसे

सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकें। यह सब सरल समय वह सचार व्यवस्था की सहायता लेता है ताकि लोगों में भ्रम न बढ़ने पाए एवं कुशलता बनी रहे।

(6) न्यायपूर्ण निर्णय (Judgement)—नेता संगठन का प्रभावशाली व्यक्ति होता है जिसकी सद्भावना पाने के लिए लोग मिथ्या प्रशंसा, असत्य सूचनाओं आदि का आश्रय ले सकते हैं, अतः नेता में सत्य असत्य की पहचान कर परिस्थितियों का सही मूल्यांकन करने की क्षमता होनी चाहिए। एल. उर्विक के मतानुसार नेता के इस गुण को निश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता। न्यायपूर्ण निर्णय देने की प्रक्रिया में व्यक्ति की अन्तरात्मा का महत्त्वपूर्ण योग रहता है।

नेतृत्व के लिए आवश्यक उपर्युक्त सभी गुणों अथवा विशेषताओं के अध्ययन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं—प्रथम, नेता के गुणों की कोई सर्वमान्य सूची निर्धारित करना कठिन है। द्वितीय, गुणों की प्राथमिकताओं का क्रम भी सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। इसलिए उर्विक ने लिखा है कि जब सभी गुण मौजूद हैं तो इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता कि कौनसा गुण अधिक प्रभावशाली है। तृतीय, नेता के गुणों का महत्त्व बहुत कुछ परिस्थितियों और समूह की आवश्यकताओं पर निर्भर रहता है। संक्षेप में यह कहना होगा कि नेता के समस्त गुणों की प्रकृति स्थिर न होकर परिवर्तनशील होती है।

भावी नेताओं का विकास
(Development of Future Leaders)

आज यह मान्य धारणा बदल चुकी है कि नेता पैदा होते हैं, बनाए नहीं जाते। आधुनिक अनुसंधानों से व्यावहारिक तौर पर यह सिद्ध हो चुका है कि समुचित प्रशिक्षण द्वारा नेतृत्व के गुण विकसित किए जा सकते हैं। पुरातन संगठनों में नेतृत्व के लिए व्यक्तिगत गुणों के बाहुल्य पर विशेष आग्रह था और व्यक्तिवादी विचारधारा विशेष प्रभावशाली थी। पर आज परिस्थितियों और संगठनों के रूपों आदि में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुके हैं। नेतृत्व से सम्बन्धित वर्तमान तकनीकें जन्म से नहीं बल्कि प्रशिक्षण से विकसित होती हैं। अवश्य ही बर्नार्ड का यह कथन सही है कि प्रशिक्षण के रूप के सम्बन्ध में हम अभी तक निश्चय नहीं कर पाए हैं और यही कारण है कि हम अपनी सामाजिक उलझनों को अच्छी तरह नहीं सुलझा पाते।

समुचित एवं आवश्यक नेतृत्व का अभाव आधुनिक लोक प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। नेतृत्व के इस अभाव की पूर्ति और भावी नेताओं के विकास की दृष्टि से जो कदम उठाए जाने चाहिए उनमें से कुछ मुख्य ये हो सकते हैं—

1. प्रवेश के समय उठाए जाने वाले कदम—लोक-सेवकों की भर्ती के समय ऐसे कदम उठाए जाने आवश्यक हैं जिनके आधार पर समय की माँग और आवश्यकता

के अनुरूप नतृत्व स्थापित किया जा सके । पहले प्रशासन अधिकारियों का अनुशासन नियन्त्रण सम वय आदि क सम्ब ध म जो प्रशिक्षण दिया जाता था उसका स्वरूप आधुनिक प्रजातन्त्रात्मक और लोक-कल्याणकारी राज्य क सन्दर्भ म बहुत कुछ बदल चुका है । आज यह अपेक्षित है कि अधिकारी सामान्य शिक्षा नीतिशास्त्र मनोविज्ञान समाजशास्त्र आदि का ज्ञाता हो ताकि वह अपने अधीनस्थो की भावनाओ क्रियाओ प्रेरणाओ आदर्शों आदि को समझ सके और सगठन क लक्ष्यो के साथ उनका सामजस्य कर सके । प्रवेश क समय प्रत्याशी की प्रशासकीय सामर्थ्य को जाँचने क अतिरिक्त यह भी देखा जाना चाहिए कि उसम समन्वयात्मक शक्ति कितनी प्रबल है । अत लक्षण परीक्षा के साथ ही मनोवैज्ञानिक परीक्षा भी होना चाहिए ताकि प्रत्याशी की समस्याओं पर निर्णय लेने की शक्ति का परखा जा सक । यह सुझाव भी दिया जाता है कि उच्च पदो पर भर्ती केवल पदोन्नति द्वारा ही की जाए तो उपयुक्त होगा क्योंकि इससे अनुभवी प्रशिक्षित और योग्य अधिकारी प्राप्त हो सकेंगे जिनम नतृत्व क दायित्व निभाने की क्षमता होगी ।

2 प्रशिक्षणकालीन कार्यवाही—समुचित प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति के जन्मजात गुणो का विकास और उसम नतृत्व क नवीन गुणो का सृजन किया जा सकता है अत प्रशिक्षण ऐसा होना चाहिए जो अधिकारियो को जीवन क हर क्षेत्र म अनुशासित कर गतिशील बनाए । निम्नतर स्तर क अधिकारियो को अपने से उच्चतर श्रेणी क अधिकारियो के कार्यों म पूर्ण रुचि लेनी चाहिए ताकि व अपने ज्ञान का विस्तार कर सकें । प्रशिक्षण इस रूप म होना चाहिए कि व्यक्ति की रुचियो का क्षेत्र विस्तृत हो उसकी कल्पना शक्ति तीव्र हो तथा उसम दूसरो को समझने की इच्छा और सामर्थ्य पैदा हो जाए । चेस्टर बर्नार्ड का मत है कि नेतृत्व क जिन गुणो को औपचारिक प्रक्रिया के लिए प्रशिक्षण द्वारा विकसित किया जा सकता है उनम बौद्धिक विकास का स्थान प्रमुख है । पर यह ध्यान रखना चाहिए कि बौद्धिक प्रशिक्षण की अति भी हानिकारक हो सकती है ।

प्रशिक्षण का पुराना तरीका केवल सैद्धान्तिक था जबकि आज यह प्रयास किया जाता है कि प्रशिक्षण को वास्तविक कार्य स्थितियो स अलग नहीं रखा जाना चाहिए । प्रशिक्षण को कार्य स्थितियो म लाकर सक्रिय बनाए रखना नतृत्व क विकास की अपरिहार्य आवश्यकता है । भावी नता को जब कभी यह सिखाया जाए कि मानव सम्ब ध स्थापित करने की प्रक्रिया क्या है तो सैद्धान्तिक रूप म प्रत्यय रहे को स्पष्ट करने क अलावा उस मानव सम्ब धो की रचना का व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए ।

3 विस्तृत ज्ञान—ज्ञान क्षेत्र जितना अधिक विस्तृत होगा नता समस्याओ के विभिन्न पहलुओ को समझकर उसका समाधान उतनी ही सफलता स कर सकेगा लकिन ज्ञान क्षेत्र का विस्तार केवल बाह्य प्रशिक्षण द्वारा नहीं किया जा सकता ।

उस — लिए स्वतः शिक्षा (Self Education) भी अनिवार्य है। स्वतः शिक्षा के माध्यम से नेता स्वयं अपने मानसिक और बौद्धिक स्तर की जाँच करता है और जहाँ कहीं उसे कुछ कमी महसूस होती है उसे दूर करने का प्रयास करता है। बहुत से आधुनिक संगठनों और कार्यालयों में स्वतः शिक्षा के विकास के लिए अधिकारियों को अवकाश प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है।

4 मानवीय सम्बन्धों का ज्ञान—संगठन एक मानवीय संस्था है अतः किसी भी नेता अथवा अधिकारी के लिए मानवीय प्रवृत्तियों को समझने की आवश्यकता का प्रथम महत्त्व है। टर्नर ने मानवीय समस्या पर तीन पहलुओं से विचार किया है। प्रथम मानवीय सम्बन्धों की दृष्टि से अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिए नेता को मानव व्यवहारों का मूल्यांकन करना चाहिए—विशेष रूप से ऐसे व्यवहारों का जिन्हें सम्पन्न करते समय किसी प्रकार के विवेक का सहारा न लिया गया हो। मानव व्यवहारों का अधिकांश क्षेत्र अबौद्धिक होता है यदि नेता उसे सही रूप में समझने की चेष्टा न कर केवल बौद्धिक आधार पर उसका मूल्यांकन करेगा तो परिणाम सन्तोषजनक नहीं होगा। दूसरे नेता को सामाजिक प्रणालियों की प्रकृति का सामान्य ज्ञान होना चाहिए। तीसरे संगठन के परिवर्तनशील और विकासशील स्वरूप के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए। संगठन का औपचारिक रूप व्यवहार धरातल की समस्याओं को छूता हुआ प्रायः परिवर्तनों के दौर से गुजरता है और नेता का व्यवहार भी इन परिवर्तनों के अनुरूप होना चाहिए।

5 अनुनय का महत्त्व—नेतृत्व की पुरातन धारणा शक्ति और आचार पर जोर देती थी। पर आज के प्रजातान्त्रिक युग में नेतृत्व की वास्तविक सफलता के लिए समझाने बुझाने की योग्यता और अनुनय विनय की सामर्थ्य पर अधिक बल दिया जाता है। नेतृत्व का अर्थ अधीनस्थों का स्वेच्छापूर्ण सक्रिय सहयोग है। अधीनस्थों का सहयोग तभी मिल सकता है जब नेता उनके सामने अपनी नीतियों और कार्यक्रमों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करे तथा उनमें उनके प्रति निष्ठा जाग्रत करे। नेता को अभिव्यक्ति की कला में निपुण होना चाहिए।

नेतृत्व के स्वरूप अथवा शैलियाँ
(Leadership Styles)

अध्याय के प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट किया जा चुका है कि एक संस्था उपक्रम या प्रतिष्ठान की सफलता असफलता नेतृत्व की किस्म पर बहुत कुछ निर्भर करती है। अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि एक प्रबन्धक को नेतृत्व के किस स्वरूप अथवा शैली (Style) को अपनाना चाहिए ताकि संस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति की ओर अग्रसर हो सके और संस्था को सफलता प्राप्त हो सके। प्रत्येक संस्था के लिए विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता है। व्यावसायिक

क्रियाओं का नेतृत्व किस प्रकार किया जाए उनका मार्गदर्शन कैसे किया जाए— यह प्रबन्धक (नेता) की इच्छा और कार्य की उपलब्ध परिस्थितियों पर निर्भर करता है। प्रबन्ध जगत् में अधिकांश विद्वान नेतृत्व के निम्नलिखित तीन स्वरूपों या शैलियों (Styles) को मान्यता देते हैं—

1. नेता केन्द्रित अथवा निरंकुश (Leader Centered or Autocratic)
2. समूह केन्द्रित अथवा प्रजातान्त्रिक (Group Centered or Democratic)
3. व्यक्ति केन्द्रित अथवा निर्बाध (Individual Centered or Free rein)

एक अन्य दृष्टिकोण से नेतृत्व के स्वरूप या शैलियों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. अभिप्रेरक (Motivational)
2. शक्ति (Power)
3. पर्यवेक्षकीय (Supervisory)

नेतृत्व की उपयुक्त तीनों शैलियों एवं उनके उप विभागों को चार्ट रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है —
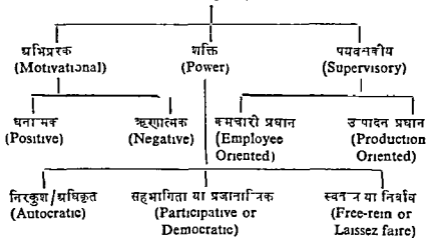
(1) अभिप्रेरक स्वरूप या शैली
(Motivational Style)

किसी संस्था या प्रतिष्ठान में नेता जिन विधियों द्वारा अपने कर्मचारियों का मार्गदर्शन करता है तथा उन्हें कार्य के लिए अभिप्रेरित करता है उनमें अभिप्रेरक विधियाँ प्रमुख हैं—ये अभिप्रेरक विधियाँ भी दो प्रकार की हो सकती हैं— धनात्मक

(Positive) और ऋणात्मक (Negative)। जब नेता कर्मचारियों को आर्थिक एवं अनार्थिक प्रेरणाएं देकर कार्य करने के लिए आवश्यक निर्देश देता है तो इसे धनात्मक अभिप्रेरण (Positive Motivation) कहा जाता है। अभिप्रेरण की यह विधि कर्मचारियों को कार्य के प्रति आकर्षित करती है वे अधिक लगन से कार्य करते हैं। नेता और कर्मचारियों के बीच मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं और इस प्रकार औद्योगिक शान्ति को बल मिलता है। दूसरी ओर जब नेता कर्मचारियों को डर धमका कर दण्ड का भय दिखाकर काम से हटा देने वेतन घटा देने या अधिक समय काम लेने आदि की धमकी देकर कार्य के लिए अभिप्रेरित करता है तो इसे ऋणात्मक अभिप्रेरण (Negative Motivation) कहा जाता है। अभिप्रेरणा का यह रूप भय एवं दण्ड विचारधारा (Fear and Punishment Theory) पर आधारित है। ऋणात्मक अभिप्रेरक-नेतृत्व शैली से औद्योगिक शान्ति तथा सामूहिक प्रसन्नता का वातावरण नहीं बना रह सकता। कर्मचारियों को कुछ समय के लिए तो अवश्य अभिप्रेरित किया जा सकता है लेकिन सम्बन्ध यह स्थिति नहीं चल सकती क्योंकि ऋणात्मक अभिप्रेरण अन्ततोगत्वा कर्मचारियों के सहयोग और विरोध का जनक होता है।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि नेतृत्व की धनात्मक शैली का ही प्रयोग किया जाए ऋणात्मक अभिप्रेरण शैली सर्वथा त्याज्य है। वास्तव में नेतृत्व के अभिप्रेरणा स्वरूप की धनात्मक और ऋणात्मक विधियों में से एक नेता कब कौनसी विधि अपनाए—इसका निश्चित प्रत्युत्तर देना कठिन है। किन्तु इतना अवश्य है कि परिस्थितियों के अनुसार इन दोनों में से किसी भी विधि का अथवा दोनों ही विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यत प्रत्येक कुशल नेता दोनों विधियों का मिला जुला रूप प्रयोग करते हैं। कितनी ही बार कर्मचारी धनात्मक कार्यवाही से प्रभावित नहीं हो पाते और तब ऋणात्मक कार्यवाही का सहारा लेना पड़ता है। लेकिन यह एक अस्थायी सहारा है क्योंकि अधिकांशत नेता को धनात्मक व्यवहार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ज्यों ज्यों कर्मचारी शिक्षित होते जा रहे हैं सरथाओं में लोकतान्त्रिक वातावरण पनपता जा रहा है और बाह्य घटकों का दबाव पड़ रहा है त्यों-त्यों प्रबन्धकों द्वारा ऋणात्मक विधि का प्रयोग कम होता जा रहा है।

(2) शक्ति शैली या स्वरूप
(Power Style)

शक्ति के आधार पर नेतृत्व की निम्न तीन शैलियाँ प्रचलन में है—

1 निरंकुश या अधिकृत नेतृत्व (Autocratic Leadership)—नेतृत्व के इस स्वरूप को नेता केन्द्रित (Leader Centered) भी कहते हैं। इस शैली में सभी अधिकार नेता के पास केन्द्रित होते हैं और सभी प्रकार के निर्णय वह स्वयं लेता है। निर्णयन प्रक्रिया में नेता अपने अनुयायियों को शामिल नहीं करता। वह केवल अपने निर्णयों का क्रियान्वयन करने के लिए उन्हें आवश्यक निर्देश देता है। ऐसा सर्वशक्तिमान

प्रबंधक या नेता कर्मचारियों के लिए कार्य प्रणाली या सम्पूर्ण ढाँचा तैयार करता है। नेतृत्व का यह स्वरूप धनात्मक भी हो सकता है और ऋणात्मक भी। प्रबन्धकीय क्रियाओं की सफलता असफलता का पूर्ण उत्तरदायित्व स्वयं नेता वहन करता है। उसे अधिकार लिप्सा रहती है सत्ताहीन हो जाने की आशंका से वह अधिकारों का प्रत्यायोजन या विकेन्द्रीकरण नहीं करता है। वह अनुयायियों को संस्था के लक्ष्यों तक ही जानकारी नहीं देता। वे पूर्णतया नेता द्वारा निर्देशित और नेता के इशारों पर आश्रित होते हैं। इस प्रकार का नेतृत्व अधिकांशतः ऋणात्मक होता है क्योंकि कर्मचारी अपने नेता या प्रबंधक से डरे डरे रहते हैं। वे स्वयं को असुरक्षित अनुभव करते हैं कार्य के प्रति कोई विशेष जानकारी नहीं रख पाते लक्ष्यों के प्रति प्रायः अन्धकार में रहते हैं और यदि कुछ जानकारी होती भी है तो वह अपर्याप्त होती है। नेता की प्रकृति और प्रवृत्ति ऐसी होती है कि वह अनुयायियों को आलसी अनुत्तरदायी और असहयोगी मानकर चलता है। इस प्रकार सभी कार्य नेता द्वारा निर्देशित होते है। शक्ति-स्वरूप नेतृत्व में कई बार नेता या प्रबन्धक का व्यवहार धनात्मक भी होता है। ऐसे नेता को हम हितैषी नेता (Benevolent Leader) कह सकते हैं। हितैषी नेता या प्रबन्धक औद्योगिक वातावरण को अच्छा बनाए रखने उत्पादन बढ़ाने तथा कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने में प्रायः सफल होता है।

सर्वशक्तिमान नेतृत्व या प्रबन्धकत्व (Autocratic Leadership) के कई लाभ हैं। नेता या प्रबन्धक को शीघ्र निर्णय लेने की सुविधा रहती है। कार्य के प्रति प्रेरणा उसका मुख्य गुण होता है। प्रबंध का उचित पुरस्कार उसे मिलता है। जो सहायक प्रबंधक तथा पर्यवेक्षकीय कर्मचारी अक्षम होते हैं वे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर पाते हैं। सर्वशक्तिमान नेतृत्व का मुख्य दोष यह है कि यह अप्रजातांत्रिक है जिसे अधिकांश व्यक्ति पसन्द नहीं करते हैं। ऋणात्मक रूप में यह प्रणाली कर्मचारियों में निराशा और निम्न नैतिक स्तर की भावना पैदा करती है जिससे उत्पादन घटता है। कर्मचारियों में स्वयं के कार्य के प्रति न कोई प्रेरणा रहती है और न ही पहल करने की कोई भावना। वे नेता द्वारा चालित रहते हैं।

2 सहभागिता या प्रजातांत्रिक नेतृत्व (Participative or Democratic Leadership)—नेतृत्व के इस स्वरूप को समूह केन्द्रित (Group Centered) भी कहते हैं। नेतृत्व का यह स्वरूप या शैली अधिक आधुनिक और अधिकांशतः मान्य है। आज के लोक कल्याणकारी युग में नेतृत्व का यह स्वरूप सर्वाधिक लोकप्रिय है क्योंकि इसमें नेता नीति का निर्धारण अकेले न करके अपने अनुयायियों से विचार विमर्श के बाद करता है। कितनी ही बार नेता अपने अनुयायियों के सुझावों और विचारों को सामान्य संशोधन के बाद ही स्वीकार करते हुए नीतियों तथा कार्य पद्धतियों का निर्धारण कर लेता है। प्रजातन्त्रात्मक या सहभागिता या समूह

(Positive) और ऋणात्मक (Negative)। जब नेता कर्मचारियों को आर्थिक एव अनार्थिक प्रेरणाएं देकर कार्य करने के लिए आवश्यक निर्देश देता है तो इसे धनात्मक अभिप्रेरण (Positive Motivation) कहा जाता है। अभिप्रेरणा की यह विधि कर्मचारियों को कार्य के प्रति आकर्षित करती है वे अधिक लगन से कार्य करते हैं। नेता और कर्मचारियों के बीच अच्छे सम्बन्ध बने रहते हैं और इस प्रकार औद्योगिक शान्ति को बल मिलता है। दूसरी ओर जब नेता कर्मचारियों को डरा धमका कर दण्ड का भय दिखाकर काम से हटा देने, वेतन घटा देने या अधिक समय काम लेने आदि की धमकी देकर कार्य के लिए अभिप्रेरित करता है तो इसे ऋणात्मक अभिप्रेरण (Negative Motivation) कहा जाता है। अभिप्रेरणा का यह रूप भय एव दण्ड विचारधारा (Fear and Punishment Theory) पर आधारित है। ऋणात्मक अभिप्रेरक-नेतृत्व शैली से औद्योगिक शान्ति तथा सामूहिक प्रसन्नता का वातावरण नहीं बना रह सकता। कर्मचारियों को कुछ समय के लिए तो अवश्य अभिप्रेरित किया जा सकता है लेकिन सदैव यह स्थिति नहीं चल सकती क्योंकि ऋणात्मक अभिप्रेरण अन्ततोगत्वा कर्मचारियों के सहयोग और विरोध का जनक होता है।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि नेतृत्व की धनात्मक शैली का ही प्रयोग किया जाए ऋणात्मक अभिप्रेरण शैली सर्वथा त्याज्य है। वास्तव में नेतृत्व के अभिप्रेरणा स्वरूप की धनात्मक और ऋणात्मक विधियों में से एक नेता कब कौनसी विधि अपनाए—इसका निश्चित प्रत्युत्तर देना कठिन है। किन्तु इतना अवश्य है कि परिस्थितियों के अनुसार इन दोनों में से किसी भी विधि का अथवा दोनों ही विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः प्रत्येक कुशल नेता दोनों विधियों का मिला जुला रूप प्रयोग करते हैं। कितनी ही बार कर्मचारी धनात्मक कार्यवाही से प्रभावित नहीं हो पाते और तब ऋणात्मक कार्यवाही का सहारा लेना पड़ता है। लेकिन यह एक अस्थायी सहारा है क्योंकि अधिकांशतः नेता को धनात्मक व्यवहार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ज्यों ज्यों कर्मचारी शिक्षित होते जा रहे हैं संस्थाओं में लोकतान्त्रिक वातावरण पनपता जा रहा है और बाह्य घटकों का दबाव पड़ रहा है त्यों-त्यों प्रबन्धकों द्वारा ऋणात्मक विधि का प्रयोग कम होता जा रहा है।

(2) शक्ति शैली या स्वरूप
(Power Style)

शक्ति के आधार पर नेतृत्व की निम्न तीन शैलियाँ प्रचलन में है—

1 निरकुश या अधिकृत नेतृत्व (Autocratic Leadership)—नेतृत्व के इस स्वरूप को नेता केन्द्रित (Leader Centered) भी कहते हैं। इस शैली में सभी अधिकार नेता के पास केन्द्रित होते हैं और सभी प्रकार के निर्णय वह स्वयं लेता है। निर्णयन प्रक्रिया में नेता अपने अनुयायियों को शामिल नहीं करता। वह केवल अपने निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए उन्हें आवश्यक निर्देश देता है। ऐसा सर्वशक्तिमान

प्रब धक या नेता कमचारियो के लिए काय प्रणाली या सम्पूरण ढाँचा तयार करता है। नेतृत्व का यह स्वरूप धनात्मक भी हो सकता है और ऋणात्मक भी। प्रब धकीय क्रियाओ की सफलता असफलता का पूर्ण उत्तरदायित्व स्वय नेता वहन करता है। उसे अधिकार लिप्सा रहती है सत्ताहीन हो जाने की आशका से वह अधिकारों का प्रत्यायोजन या विकेन्द्रीकरण नही करता है। वह अनुयायियो को सस्था के लक्ष्यो तक ही जानकारी नही देता। वे पूर्णतया नेता द्वारा निर्देशित और नेता के इशारो पर आश्रित होते हैं। इस प्रकार का नेतृत्व अधिकाशत ऋणात्मक होता है क्योंकि कमचारी अपने नेता या प्रब धक से डरे डरे रहते हैं। वे स्वय को असुरक्षित अनुभव करते हैं काय के प्रति कोई विशेष जानकारी नही रख पाते लक्ष्यो के प्रति प्राय अन्धकार मे रहते हैं और यदि कुछ जानकारी होती भी है तो वह अपर्याप्त होती है। नेता की प्रकृति और प्रवृत्ति ऐसी होती है कि वह अनुयायियो को आलसी अनुत्तरदायी और असहयोगी मानकर चलता है। इस प्रकार सभी काय नेता द्वारा निर्देशित होते है। शक्ति-स्वरूप नेतृत्व मे कभी कभी नेता या प्रबन्धक का व्यवहार धनात्मक भी होता है। ऐसे नेता को हम हितैषी नेता (Benevolent Leader) कह सकते है। हितैषी नेता या प्रबन्धक औद्योगिक वातावरण को अच्छा बनाए रखने उत्पादन बढाने तथा कमचारियो को अभिप्रेरित करने मे प्राय सफल होता है।

सवशक्तिमान नेतृत्व या प्रबन्धकत्व (Autocratic Leadership) के कई लाभ हैं। नेता या प्रबन्धक को शीघ्र निर्णय लेने की सुविधा रहती है। काय के प्रति प्रेरणा उसका मुख्य गुण होता है। प्रब ध का उचित पुरस्कार उसे मिलता है। जो सहायक प्रब धक तथा पयवेक्षकीय कमचारी अक्षम होते हैं वे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही कर पाते हैं। सवशक्तिमान नेतृत्व का मुख्य दोष यह है कि यह अप्रजातांत्रिक है जिसे अधिकाश व्यक्ति पसन्द नही करते हैं। ऋणात्मक रूप मे यह प्रणाली कमचारियो मे निराशा और निम्न नतिक स्तर की भावना पदा करती है जिससे उत्पादन घटता है। *कमचारियो मे स्वय के काय के प्रति न कोई प्रेरणा रहती* है और न ही पहल करने की कोइ भावना। वे नेता द्वारा चालित रहते हैं।

2 सहभागिता या प्रजातान्त्रिक नेतत्व (Participative or Democratic Leadership)—नेतृत्व के इस स्वरूप को समूह केन्द्रित (Group Centered) भी कहते हैं। नेतृत्व का यह स्वरूप या शैली अधिक आधुनिक और अधिकाशत मान्य है। आज के *लोक कल्याणकारी युग मे नेतृत्व का यह स्वरूप सवाधिक लोक* प्रिय है क्योंकि इसमे नेता नीति का निर्धारण अकेले न करके अपने अनुयायियो से विचार विमर्श के बाद करता है। कितनी ही बार नेता अपने अनुयायियो के सुझावो और विचारो का सामान्य सशोधन के बाद ही स्वीकार करते हुए नीतियो तथा काय पद्धतियो का निर्धारण कर लेता है। प्रजातन्त्रात्मक या सहभागिता या समूह

केन्द्रित नेतृत्व के अन्तर्गत प्रब धक या नेता अपनी शक्तियाँ विकेन्द्रित कर देता है। वह अधीनस्थो को अधिकारो का प्रत्यायोजन करने मे विश्वास करता है और अपने अनुयायियो को एक सामाजिक इकाई के रूप म काय करने तथा अपनी योग्यता का पूर्ण प्रदशन करने की प्रेरणा देता है। प्रजातान्त्रिक नेता अपने अनुयायियो की आवश्यकताओ और सुविधाओ का ध्यान रखता है। कमचारियो के प्रति उसमे मानवीय दृष्टिकोण प्रधान होता है। आज सावजनिक और [illegible] ही क्षेत्रो के उपक्रमो म प्रबन्ध म कमचारी भागिता Worker s Participation in Management) की धारणा ने नेतृत्व की इस शली को औद्योगिक प्रजात त्र के लिए अपरिहाय बना दिया है। प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व म सभी कमचारियो का प्राय सहयोग मिलता है कमचारियो म स्वाभिमान की अनुभूति रहती है। किन्तु अनेक अवसरो पर प्रजातान्त्रिक नेतृत्व को भी ऋणात्मक विधियो का आश्रय लेना पडता है। यह अवश्य है कि इन विधियो का प्रयोग अपवाद रूप म ही होता है।

3 स्वतन्त्र या निर्बाध नेतृत्व (Free rein or Laissez faire Leadership)—नेतृत्व के इस स्वरूप को व्यक्ति केन्द्रित (Individual Centered) भी कहते है। इस शली म नेता प्रशासन काय म कम से कम रुचि लेता है और अनुयायियो को प्राय उनके स्वय के भरोसे छोड देता है। नेता या प्रबन्धक स्वय शक्ति का उपभोग न करते हुए समूह को अपने लक्ष्य निर्धारण की दिशा म अभिप्रेरित करता है। अनुयायी स्वय सावधानीपूवक लक्ष्य निर्धारित करते हैं और उनकी प्राप्ति के लिए आवश्यक निणय लेते हैं। नेता या प्रब धक पुन इस सम्ब ध म आवश्यक अधिकार सौंप देता है। समूह का प्रत्येक सदस्य सस्था की समस्या के प्रति चि तन करता है और स्वत प्रेरित होता है। नेता या प्रबन्धक अपने अनुयायियो अथवा कमचारियो की क्रियाओ का सकारात्मक या ऋणात्मक किसी भी रूप मे मूल्यांकन नहीं करता है—वह केवल एक सम्पक कर्ता का काम करता है। निर्बाध या स्वतन्त्र नेतृत्व इस धारणा पर आधारित है कि यदि अनुयायियो को अपनी इच्छानुसार काय करने दिया जाए तो वे अधिकाधिक परिश्रम तथा लगन से काय करते हैं और अच्छे परिणामो की प्राप्ति होती है। स्वतन्त्र प्रब धन अथवा निर्बाध नेतृत्व मे शक्ति समूह के हाथ म उसी प्रकार निहित रहती है जिस प्रकार नेता अधिकृत प्रब ध प्रणाली म नेता या प्रब धक के हाथ मे।

शक्ति शली के नेतृत्व के उपरोक्त तीनो रूपो म मे एक नेता कौन सा रूप अपनाए यह बहुत कुछ नेता की इच्छा और परिस्थितियो पर निभर करता है। वसे अधिकाशत मान्य मत यह है कि एक नेता को प्रजातान्त्रिक रूप ही अपनाना चाहिए क्योंकि इससे सस्था म सौहार्दपूर्ण सम्ब धो का निर्माण होता है औद्योगिक प्रजातन्त्र को प्रोत्साहन मिलता है और फलस्वरूप औद्योगिक शान्ति बनी रहती है जिससे उत्पादकता म वृद्धि होती है।

(3) पर्यवेक्षकीय शैली या स्वरूप

(Supervisory Style)

नेतृत्व के इस स्वरूप में भी नेता या प्रबन्धक दो विचारधाराएं अपनाकर कर्मचारियों का मार्गदर्शन कर सकता है—

(i) कर्मचारी प्रधान (Employee Oriented)

(ii) उत्पादन प्रधान (Production Oriented)

कर्मचारी प्रधान विधि में नेता या प्रबन्धक व्यक्तियों को अधिक महत्त्व प्रदान करता है अर्थात् कर्मचारियों की रुचियों अभिवृत्तियों सुविधाओं कार्य-दशाओं कार्य वातावरण आदि पर पूरा ध्यान देता है और कर्मचारियों को सन्तुष्टि प्रदान करते हुए उन्हें कार्य हेतु अभिप्रेरित करता रहता है। नेता अनुयायियों की मुख्य आवश्यकताओं को समझने सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध विकसित करने शिकायतों का शीघ्र निवारण करने मानवीय भावनाओं का आदर करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। उत्पादन प्रधान विधि में नेता या प्रबन्धक इस विश्वास अथवा धारणा के साथ नीति निर्धारित करता है कि उत्पादन की उन्नत विधियाँ अपनाने कर्मचारियों को निरन्तर कार्य में लगाए रखने और कार्य हेतु प्रेरित करने में उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। जहाँ कर्मचारी प्रधान विधि में नेता या प्रबन्धक मानवीय दृष्टिकोण को प्रधानता देता है वहाँ उत्पादन प्रधान विधि में इस दृष्टिकोण का विशेष महत्त्व नहीं रहता।

पर्यवेक्षकीय शैली के नेतृत्व की उपरोक्त दोनों विधियाँ एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं क्योंकि यदि नेता या प्रबन्धक मानवीय दृष्टिकोण पर अधिक बल देता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह उत्पादन की ओर से उदासीन रहेगा।

नेतृत्व की उपरोक्त सभी शैलियाँ समय और परिस्थितियों के अनुसार अनुकरणीय हैं। कोई भी एक शैली अपने आप में पूर्ण नहीं है एक कुशल नेतृत्व की माँग है कि आवश्यकतानुसार वह विभिन्न विधियों से काम ले। यह अवश्य है कि नेतृत्व की धनात्मक अवधारणा को ही ध्यान में रखना चाहिए ऋणात्मक विधि का कम से कम प्रयोग किया जाना चाहिए।

12

पयवेक्षण एव नियन्त्रण
(Supervision and Control)

सगठन के आधुनिकतम सिद्धान्ता मे अधीक्षण (Supervision) का महत्वपूर्ण स्थान है। सगठन म समन्वय की स्थापना क लिए समन्वयकर्ता अनेक तरीके अपनाता है यथा–नियन्त्रण (Control) अधीक्षण (Supervision) सम्प्रेषण (Communication) और नेतृत्व (Leadership)। जब निणय निम्न अधिकारियो तक सम्प्रेषित कर दिए जाए तो पद-सोपान म उच्चाधिकारी का अगला काय यह देखना होता है कि उन निणया को समुचित ढग से क्रियान्वित किया जाए। उच्चाधिकारी को इस बारे म आश्वस्त होना पडता है कि सगठन सुचारू रूप से काम कर रहा है और निर्दिष्ट उद्देश्या की प्राप्ति के लिए प्रयास निरन्तर जारी है। प्रशासकीय सगठन की इसी आवश्यकता की दृष्टि स देखरेख अथवा अधीक्षण और नियन्त्रण को महत्त्वपूर्ण माना गया है। अधीक्षण की क्रिया निरन्तर चलती रहती है और प्रशासकीय कार्यों की सम्पन्नता को निश्चित बनाती है। प्रत्येक सगठन चाहे वह सावजनिक हो या निजी अधीक्षक की व्यवस्था अवश्य करता है। अमेरिका के वाणिज्यिक तथा औद्योगिक सगठनो म प्राय प्रति सात कमचारियो पर एक अधीक्षक होता है।

पयवेक्षण का अथ

पयवेक्षण दो शब्दा–अधि (Super)+वीक्षण (Vision) का योग है जिसका अर्थ होता है देखने की उच्च शक्ति अथवा दूसरो के कार्यों का अधीक्षण करना लोक प्रशासन क क्षेत्र म अधीक्षण का अथ स्पष्ट करते हुए रेनिंग ने लिखा है कि इस दूसरा के कार्यों क लिए सत्ता द्वारा किए गए निर्देशन के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है। अधीक्षण का सामान्य अथ है—उच्चाधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारियो का मागदशन करना उनकी गतिविधियो पर निगरानी रखना और उनके कार्यों क परिणामो का प्रयवेक्षण (Observation) करना। नकारात्मक दृष्टि से (Negatively) अधीक्षण अथवा देखरेख का अभिप्राय सगठन क सदस्यो की गतिविधियो का निर्देशन करना और उनकी जाँच करना है जबकि सकारात्मक दृष्टि से (Positively) इसका अथ सदस्यो को काम करने के सर्वोत्तम तरीके

सुझाना है। अधीक्षण का उद्देश्य होता है—सगठन के विभिन्न अगो म समन्वय स्थापित करना और यह देखना कि सभी अग अपना अपना काय उचित रूप से सम्पन्न कर रहे हैं। मार्गारेट विलियमसन (Margaret Williamson) ने अधीक्षण को एक ऐसी प्रक्रिया माना है जिसके अन्तगत कमचारियो को उनकी आवश्यकताओ के अनुसार सीखने अपने ज्ञान और कौशल का सर्वोत्तम प्रयोग करने तथा योग्यताओं का सुधार करने म किसी पदाधिकारी की सहायता प्राप्त होती है ताकि वे अपने काय को अधिक प्रभावी रूप म तथा स्वय वे एव अभिकरण के सन्तोष के साथ सम्पन्न कर सकें।[1] कभी कभी देखरेख या अधीक्षण बजट म निहित धाराओ और व्यवस्थाओ द्वारा भी होता है। उदाहरणाथ अधीनस्थ अधिकारियो को अपने कार्यों की प्रगति पर प्रतिवेदन कागजात फाइलें आदि उच्च अधिकारियो को भेजने पडते हैं और अधीक्षक अर्थात् देखरेख करने वाला उच्चाधिकारी इन कागजातो की सहायता से सगठन के कार्यों की तथा उनके परिणामो की आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकता है। उच्चाधिकारी लक्ष्य निर्धारित करता है और उसका यह दायित्व है कि वह लक्ष्य प्राप्ति के लिए सगठन की गतिविधियो की देखरेख करे। सक्षेप म अधीक्षण का अभिप्राय परिणामो का अवलोकन है।

पयवेक्षक के काय

पयवेक्षण अथवा अधीक्षण का एक शिक्षाप्रद रूप है। इसे स्पष्ट करते हुए डा अवस्थी एव महेश्वरी ने लिखा है कि— अधीक्षण, निरीक्षण तथा खोजबीन से कहीं अधिक होता है। निरीक्षण और खोजबीन तो अधीक्षण प्रक्रिया के केवल अग मात्र हैं। वस्तुत अधीक्षण किसी प्रशासकीय कृत्य के रूप म नियंत्रण से कहीं अधिक है। इसका एक शिक्षा प्रद रूप है। अधीक्षक से यह भी आशा की जाती है कि वह अपने अधीन काय करने वाले कमचारियो को सर्वोत्तम कायविधि सिखाए। इसके अतिरिक्त कमचारी अपने अधीक्षक से मन्त्रणा या मार्गदर्शन की आशा रखते हैं अत उसका काय परामर्श देना भी है। इस प्रकार अधीक्षक का काय नेता का काय है। सक्षेप म अधीक्षण के अनेक तत्त्व हैं जैसे प्रत्येक कृत्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चयन, प्रत्येक व्यक्ति म उसके काय के प्रति रुचि उत्पन्न करना तथा उसे उस काय करने के ढंग की शिक्षा देना काय सम्पन्न किए जाने की गति तथा काय क्षमता का मापन ताकि यह निश्चय हो जाए कि शिक्षण पूण रूप से प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। जहा गलती को सुधारने की आवश्यकता हो वहाँ गलती सुधारना तथा जिन पर इसका प्रभाव न हो उन्हें किसी अन्य अधिक उपयुक्त काय म लगा देना या उनको हटा देना। जब प्रशसा करने की आवश्यकता हो तो प्रशसा करना और अच्छे काय के लिए पुरस्कार देना और अन्त म प्रत्येक व्यक्ति को कायरत समूह म ठीक

1 *Halsey G D Supervising People p 6*

प्रकार नियत कर देना, ये सभी काय धैय तथा कौशल के साथ उचित ढंग से पूरे किए जाने चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपना काय चतुरता एव ठीक तरीके से बुद्धिमानी तथा उत्साह के साथ पूर्णरूपेण कर सके।

सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य काय सम्पादन है अत अधीक्षक को सगठन म ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिए जिसमे सब सम्बन्धित व्यक्ति यथ सम्भव अधिकाधिक सहयोग से काय करते हुए काय सम्पादन की दिशा म अग्रसर हो। अधीक्षक केवल निरीक्षण एव जाँच ही नही करता बल्कि सहयोगपूर्ण काय (Team Work) के लिए सबको प्रेरित और प्रोत्साहित भी करता है।[1] हेमन ने अधीक्षक के तीन मुख्य काय बताए हैं–(i) मौलिक अथवा तकनीकी काय (Substantive or Technical Job) (ii) सस्थापन काय (Institutional Job) एव (iii) व्यक्तिगत काय (Personal Job)। मिलट ने मौलिक अधीक्षण (Substantive Supervision) और प्राविधिक अधीक्षण (Technical Supervision) म अन्तर प्रकट करते हुए बताया है कि जहाँ प्रथम का सम्बन्ध किसी अभिकरण द्वारा किए गए वास्तविक काय से होता है वहाँ द्वितीय का सम्बन्ध उन तरीको से होता है जिनके द्वारा काय किया जाता है।

पयवेक्षक कौन हैं ?

हम उन सभी सत्ता प्राप्त व्यक्तियो को पयवेक्षक कह सकते है जो दूसरों के काय की देखरेख करते हैं और उन पर नियन्त्रण रखते हैं—चाहे पद सोपान म उनकी स्थिति ऊँची हो या नीची। इस प्रकार फोरमेन हवलदार मुख्य लिपिक प्रधानाध्यापक जिलाध्यक्ष आदि सभी अपने अपने क्षेत्र म पयवेक्षक हैं। पयवेक्षक पर उत्तरदायित्व और काय दोनो का ही भार होता है यद्यपि मुख्य काय उत्तरदायित्व है ही ढग का होता है। पयवेक्षक भी दो प्रकार के होते हैं—सूत्र पयवेक्षक और कार्यात्मक पयवेक्षक। सूत्र पयवेक्षको का सम्बन्ध उस नियन्त्रण से होता है जो आदेश की पक्ति के व्यक्तियों के नाया मे होता है। उदाहरणाथ हमारे देश मे राज्य पुलिस विभाग ने इन्सपेक्टर जनरल जिला पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट का पयवेक्षण करता है और बदले म जिला सुपरिटेन्डेन्ट अपने से नीचे के इस्पेक्टरो का पयवेक्षण करता है और यह पयवेक्षण का क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि हम हवलदार तक नहीं पहुच जाते जो सबसे नीचे पहली पक्ति का पयवेक्षक है। कार्यात्मक पयवेक्षण किन्ही विषयो के विशेषज्ञो साख्यिकीकारो आदि द्वारा किया जाता है। लेखा पयवेक्षक गणक सगठन और प्रबन्ध विशेषज्ञ आदि की गिनती कार्यात्मक पयवेक्षको म होती है। पयवेक्षक कोई भी हो यह आवश्यक है

1 *Pfiffner* The Supervision of Personnel Human Relations the Management of Men p 215

कि वह खुले मस्तिष्क का, निष्पक्ष, ईमानदार और न्यायी हो। यह भी आवश्यक है कि वह लोकसम्पर्क और समूह-व्यवहार में प्रशिक्षित हो जैसे पर्यवेक्षण के क्षेत्र भिन्न भिन्न हैं वैसे ही इसके स्वरूप भी भिन्न भिन्न हैं। क्षेत्र के कार्यकर्त्ता भी क्षेत्र के साथ बदलते रहते हैं और इसके फलस्वरूप पर्यवेक्षण के उत्तरदायित्व और विधि में अन्तर आता है। अकुशल कार्यों में पर्यवेक्षण की प्रायः कोई गम्भीर समस्या पैदा नहीं होती लेकिन उच्च कोटि के कार्यों का पर्यवेक्षण व्यापक होता है। इसके लिए पर्यवेक्षक में अधिक अनुभव, दक्षता और चतुरता की अपेक्षा की जाती है। एक अच्छे पर्यवेक्षक के कार्य के तीन मुख्य स्वरूप हैं—(क) उसमें विशेष कौशल हो अर्थात् उसमें यह निर्देश करने की शक्ति हो कि अमुक कार्य अमुक प्रकार से अधिक सुगम होगा (ख) उसमें संस्थानीय ज्ञान हो अर्थात् वह यह भली प्रकार जानता हो कि उस कार्यालय की सामान्य नीति क्या है उसका विशेष प्रयोजन क्या है और किस भांति यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता है एवं (ग) उसमें मानव प्रकृति की परख की योग्यता हो अर्थात् उसे यह ज्ञात हो कि कर्मचारियों का मानवीय स्तर क्या है और संगठन में उनके साथ कैसा व्यवहार उचित है।

पर्यवेक्षण कैसे करें ?

मिलेट ने पर्यवेक्षण के छः तरीके बताए हैं—

1. परियोजनाओं पर पूर्व स्वीकृति (Prior Approval of Individual Projects)
2. सेवा स्तर मानदण्ड की घोषणा (The Promulgation of Service Standard)
3. कार्यों की व्यापकता पर बजट सम्बन्धी सीमाएं Budgetary Limitation upon the Magnitude of Operations)
4. मुख्य अधीनस्थ कर्मचारी-वर्ग का अनुमोदन (Approval of Key Subordinate Personnel)
5. कार्य प्रगति सम्बन्धी प्रतिवेदन प्रणाली (A Reporting System on Work Progress)
6. परिणामों का निरीक्षण (Inspection of Results)

पूर्व स्वीकृति (Prior Approval)—मामले के किसी कार्य को क्रियान्वित करने से पहले पर्यवेक्षक को पूर्व स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए। जिन देशों में नियोजित अर्थ-व्यवस्था का मार्ग अपनाया गया है वहां अधिकांश सरकारी क्रियाओं पर पूर्व अनुमति की आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। भारत में अनेक मामलों में केवल विभागाध्यक्षों द्वारा पूर्वानुमोदन ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि वित्त मन्त्रालय या वित्त विभाग का अनुमोदन भी आवश्यक होता है। पूर्वानुमोदन व्यवस्था के अन्तर्गत एक तो सूक्ष्म नियन्त्रण सुनिश्चित हो जाता है दूसरे योजनाओं में

लचीलापन भी आ जाता है तथा त्रुटियों को ठीक करने की समुचित गुंजाइश भी रहती है लेकिन यह प्रक्रिया लालफीताशाही में वृद्धि करती है और इससे कार्यपूर्ति में विलम्ब होना है। पूर्वानुमोदन व्यवस्था कर्मचारियों में संशय और उदासीनता भी उत्पन्न करती है और यदि कर्मचारियों और उच्चाधिकारियों के बीच मनमुटाव पैदा हो जाय तो यह व्यवस्था संगठन के लिए घातक बन जाती है।

सेवा स्तर (Service Standard)—पर्यवेक्षक को चाहिए कि वह लक्ष्य अथवा कार्य के कुछ स्तर निश्चित कर दे ताकि अधीनस्थ कर्मचारियों को मार्ग दर्शन मिलने के साथ ही उनके कार्य की जाँच भी सुगमता से हो सके। सेवा स्तर प्रशासकीय कार्य का मापदण्ड निर्धारित कर देता है। उदाहरणार्थ किसी स्कूल के सेवा स्तर में छात्रों की संख्या, पास होने वाले छात्रों का प्रतिशत, छात्रों का सामान्य अनुशासन, अध्यापकों का नैतिक स्तर, खेल आदि में छात्रों की प्रवीणता, शिक्षा के घण्टों की संख्या—इनमें से कोई एक या कुछ या सबका समावेश हो जाता है। इस प्रकार के मापदण्ड निश्चय करना एक कठिन प्रक्रिया है तथापि पर्यवेक्षण का यह एक वैज्ञानिक ढंग है।

कार्य सम्बन्धी बजट (Working Budget)—बजट केवल अनुमानों का संकलन नहीं होता अपितु कार्य की एक योजना और प्रशासन पर नियन्त्रण का एक शक्तिशाली उपकरण भी है। पर्यवेक्षण का एक तरीका यह है कि पर्यवेक्षक कार्य के बजट का अवलोकन करता रहे। यदि हम एक स्कूल के बजट को लें तो उसमें यह निश्चय होता है कि अतिरिक्त अध्यापकों की भर्ती, स्कूल के विस्तार, छात्रों के जलपान आदि पर कितना धन व्यय किया जाना चाहिए। कार्य करने वाले अधिकारी बजट द्वारा निर्धारित धनराशि के भीतर ही कार्य करते हैं अर्थात् धन व्यय करने में उन पर बजटीय अंकुश लगा रहता है। पर्यवेक्षक यह देखता है कि बजट की व्यवस्थाओं का समुचित अनुपालन हुआ है या नहीं।

कर्मचारी का अनुमोदन (Approval of Personnel)—कोई भी सरकारी अभिकरण अपने कर्मचारियों की भर्ती में पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं होता। उच्चतर कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति सदैव ही मुख्य कार्यपालिका द्वारा की जाती है। अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग के सम्बन्ध में भी शीर्षस्थ अधिकारी कुछ गौण स्थानों को छोड़कर शेष पदों के पूर्वानुमोदन पर बल देते हैं। प्रायः सभी जगह ऐसी व्यवस्था है कि यह कार्य सम्बन्धित अभिकरण के केन्द्रीय सेवीवर्ग विभाग को सौंप दिया जाता है।

प्रतिवेदन (Reporting)—प्रतिवेदन व्यवस्था पर्यवेक्षकों को इस योग्य बनाती है कि वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन कर सकें उनकी परिस्थितियों को समझ सकें और संगठन में कार्य संचालन को नियन्त्रित कर सकें। इसीलिए प्रायः सभी जगह प्रशासन का यह एक सामान्य तरीका है कि कार्यरत इकाइयाँ अपने क्रिया कलापों का लेखा या प्रतिवेदन केन्द्रीय कार्यालय को प्रस्तुत

करती हैं। प्रतिवेदन साप्ताहिक भी हो सकत हैं और पाक्षिक मासिक त्रमासिक षटमासिक या वार्षिक भी हो सकते हैं। प्रतिवेदन विशिष्ट या एतदय (Adhoc) भी हो सकत हैं अर्थात् किसी विशष विषय के बारे म भी हो सकते हैं और वर्णात्मक तथा सांख्यिकी प्रकृति के भी हो सकते हैं। एक उत्तम प्रतिवेदन व्यवस्था के महत्वपूर्ण लाभ होते हैं। प्रतिवेदन के माध्यम से इकाइयो को आत्मनिरीक्षण का अवसर प्राप्त होता है वे अपनी सफलताओ असफलताओ का पर्यावलोकन ल सकती हैं।

निरीक्षण (Inspection)—चिर काल से निरीक्षण प्रशासन का अभिन्न अग रहा है। निरीक्षण के माध्यम म यह देखा जाता है कि विद्यमान नियमो और प्रक्रियाओं का सही रूप म पालन किया जा रहा है या नही काय का सचालन समुचित ढग से हो रहा है या नही कार्य-कुशलता म कौन से सुधार लाना आवश्यक है आदि। निरीक्षण क महत्त्व और उद्दश्य को स्पष्ट करते हुए मिलेट ने लिखा है— निरीक्षण का उद्देश्य या प्रयोजन सूचना प्राप्त करना है। यह प्रब ध के प्रयोजना और अभिप्रायो को स्पष्ट करन म सहायता देता है तथा प्रब ध म निम्न कमचारियो की काय सचालन सम्बधी समस्याओ से उच्चाधिकारियो को परिचित कराता है। निरीक्षण बौद्धिक परिचय और विश्वास को व्यक्तिगत सम्बधो म बदल सकता है। मिलट न निरीक्षण को अधीक्षण प्रक्रिया का ही एक अग माना है। अधीक्षण निरीक्षण की तुलना म अधिक व्यापक शब्द है यद्यपि कभी कभी दोनो शब्दो को एक ही अर्थ म प्रयुक्त किया जाता है। सगठन म प्रत्यक वरिष्ठ अधिकारी स यह आशा की जाती है कि वह अपन अधीनस्थ के काय का निरीक्षण करेगा। यह निरीक्षण की अन्तरचित प्रणाली है। निरीक्षण की दूसरी प्रणाली यह है कि प्रशासकीय अभिकरण क वरिष्ठ स्तर अपने अधीनस्थ कार्यालयो क काय का निरीक्षण करें। उदाहरणाथ एक डिवीजनल कमिश्नर का कत्तव्य है कि वह अपने अधीन जिलाधीशो क कार्यालयो का निरीक्षण करे और जिलाधीशो का कत्तव्य है कि व अपन अधीन तहसीलो का निरीक्षण कर। निरीक्षण की तीसरी प्रणाली वह है जिसम सरकारी तौर पर एक स्वतन्त्र और पृथक अभिकरण स्थापित किया जाता है और उस केवल निरीक्षण सम्बधी काम सौंपा जाता है। ऐस अभिकरण का एक अच्छा उदाहरण उत्तर प्रदेश म कार्यालयो का निरीक्षणालय (Inspectorate of Offices) है।

अच्छे पयवक्षक की विशेषताए

प्रत्येक व्यक्ति एक अच्छा अधीक्षक नहीं हो सकता। टिफनर न एक अधीक्षक के लिए आठ आवश्यक गुणो की सूची प्रस्तावित की है जिसे डा अवस्थी एव महेश्वरी न इस प्रकार प्रस्तुत किया है 1 काय की विषय वस्तु पर अधिकार अर्थात् किए जाने वाले काय का विशष ज्ञान, व्यक्तिगत योग्यताए जस दृढ चरित्र

3 शिक्षण योग्यता अर्थात् कर्मचारियो तक अपने विचार पहुँचाने तथा उन्हे प्रबन्ध का दृष्टिकोण समझाने की योग्यता 4 सामान्य दृष्टिकोण अर्थात् अधीक्षक का अपने काय से प्रेम होना चाहिए उसे उसम त मय रहना चाहिए और अधीनस्थ कर्मचारियो को प्ररणा देनी चाहिए 5 साहस और सहनशीलता अर्थात् निर्णय दने तथा उत्तरदायि व की योग्यता 6 नतिकता तथा आचार सम्ब धी बातो का ध्यान अर्थात् ऐसी बुराइयो से दूर रहना जिन्हे समाज निन्दनीय मानता है 7 प्रशासकीय तकनीक अर्थात् प्रबन्धकीय योग्यता तथा 8 जिज्ञासा और बौद्धिक योग्यता अर्थात् बौद्धिक सतकता और नवीन विचारो का ग्रहण करने की क्षमता।

हाल्से (Halsey) ने अधीक्षक म अग्रलिखित 6 गुणो का उचित एव सतुलित विकास आवश्यक माना है—1 परिपूर्णता (Thoroughness) अर्थात् अधीनस्थ विषय स सम्ब धित सभी सूचनाए एकत्र करे और सभी आवश्यक तथ्यो को ध्यान म रखे 2 औचित्य (Fairness) अर्थात् अधीक्षक कर्मचारियो के प्रति न्यायपूर्ण सहानुभूतिपूर्ण और सच्चा रहे 3 पहल (Initiative) अर्थात् अधीक्षक म साहस आत्मविश्वास तथा निर्णय क्षमता के गुण हो 4 चातुय (Tact) अर्थात् अधीक्षक अपनी बातचीत और अपने काय द्वारा दूसरे लोगो की निष्ठा और उनका समथन प्राप्त करन म सक्षम हो 5 उत्साह (Enthusiasm) अर्थात् अपने कत्तव्य सगठन के उद्देश्य और आदश के प्रति अधीक्षक म पूर्ण रुचि और उत्साह हो एव 6 भावात्मक नियन्त्रण (Emotional Control) अर्थात् पयवेक्षक भावनाओ को समुचित रूप म नियन्त्रित कर सकने और समझने म समथ हो।

लोक प्रशासन के विद्वानो ने अच्छे पयवेक्षक अथवा अधीक्षक म कुछ और भी गुणो की खोज की है यथा—उसे चाहिए कि वह कठिनाइयो के समय मागदशन करे उसे सन्देश प्रेषित करने म सक्षम हो जिज्ञासु मन वाला हो नतिक आदर्शो को समुचित महत्त्व देना हो एव विश्वासी प्रकृति का हो। कदाचित सर्वाधिक आवश्यक गुण है मानवीय सम्ब ध किसी भी अधीक्षक अथवा पयवेक्षक की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निभर करती है कि उसका कर्मचारियो के साथ कितना वयक्तिक सम्ब ध है। व कर्मचारियो को केवल कमचारी ही समझता है या मनुष्य भी समझता है। केवल यान्त्रिक सम्ब ध अधीक्षक को सफल नही बना सकते।

नियन्त्रण अर्थ
(Control Its Meaning)

सगठन के व्यवहार मे नियन्त्रण एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। यह एक प्रबन्धात्मक काय तथा लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। प्रो हेमेन के कथनानुसार नियन्त्रण देखभाल करने की एक प्रक्रिया है ताकि यह मालूम किया जा सके कि नियोजनो का अनुगमन किया जा रहा है अथवा नहीं, लक्ष्यो की दिशा म

प्रगति हो रही है या नही और यदि आवश्यक हो तो सुधार के लिए क्या प्रयास किया जाए।

नियन्त्रण स्टाफ का कार्य न होकर एक श्रेणी की प्रक्रिया (Line Function) है। यह कहा जाता है कि शीर्ष के पर्यवेक्षक को नियन्त्रण नही करना चाहिए उसे केवल पर्यवेक्षण करना चाहिए। यदि ऐसा नही किया गया तो उसके तथा अन्य कर्मचारियो के बीच गलतफहमी पैदा हो जाएगी वह अपनी शक्तियो का दुरुपयोग करने लगेगा और उसके कार्यों मे अनेक असगतिया उत्पन्न हो जाएगी। प्रो फयोल के मतानुसार नियन्त्रण का अर्थ यह प्रमाणित करना है कि प्रत्येक कार्य स्वीकृत योजना निर्देशन एव निरूपित सिद्धान्तो के अनुसार किया जा रहा है।

नियन्त्रण प्रबन्धात्मक प्रक्रिया का एक भाग है। यह दूरदर्शिता की एक प्रक्रिया है। नियन्त्रण पर ही प्रबन्धक की सफलता निर्भर है। यदि किसी भी सस्थान मे नियोजन सगठन निर्देशन अभिप्रेरणा एव समन्वय सम्बन्धी प्रबन्धकीय कार्य प्रभावी ढग से लागू है लेकिन किसी प्रकार का नियन्त्रण नही है तो दिए कुछ उद्देश्यो को पूरा नही किया जा सकता। नियन्त्रण नियोजन का एक पहलू एव भावी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रदान करता है।

नियन्त्रण को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है

1 प्रो कून्टज और प्रो ओ डोनल के शब्दो मे नियन्त्रण का प्रबन्धकीय कार्य यह निश्चित करने के लिए उपक्रम के उद्देश्यो तथा उनको प्राप्त करने के लिए निर्धारित योजनाओ को क्रियान्वित किया जा रहा है कर्मचारियो के निष्पादन (Performance) को मापना तथा उसमे सुधार करना होता है।[1]

प्रो ब्रेच के अनुसार निर्धारित प्रमापो अथवा योजनाओ से वास्तविक निष्पादन की तुलना करने की प्रक्रिया ही नियन्त्रण कहलाती है जिससे इस बात का पता लग जाए कि पर्याप्त प्रगति अथवा सतोषप्रद निष्पादन हो रहा है अथवा नही। इसके अतिरिक्त इस प्रकार से प्राप्त किए गए अनुभव का सम्भावित भावी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु योगदान के रूप मे अकित किया जा सके।

नियन्त्रण के पहले किसी भी सस्थान मे नियोजन एव सगठन का कार्य किया जाता है। फिर भी नियन्त्रण सम्बन्धित योजनाओ उद्देश्यो नीतियो कार्यक्रमो एव दिए हुए सगठन के अन्तर्गत लागू करना परमावश्यक है। नियोजन एव सगठन न केवल नियन्त्रण को प्रभावित करते हैं बल्कि वे स्वय भी प्रभावित होते हैं। इन सम्बन्धो को प्रो मैक्फारलैण्ड ने भली भाँति समझाया है।

1 *K ont & O Donnell* P inciple of Ma agement p 50
2 *Brech* Management Its Nature & S gn f an e p 29

प्रो मैकफारलेण्ड के अनुसार नियन्त्रण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अधिकारी अपने अधीनस्थों के निष्पादन निर्धारित योजनाओं आदेशों उद्देश्यों अथवा नीतियों के अनुसार अथवा इनके निकट करते हैं।[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नियन्त्रण प्रबन्ध का वह कार्य है जिसके अन्तर्गत इस बात का पता लगाया जाता है कि कार्य योजनाओं लक्ष्यों एवं नीतियों के अनुसार हो रहा है अथवा नहीं और यदि न हो रहा है तो उसके कारणों का पता लगाकर उन्हें किसी प्रकार दूर किया जाना चाहिए। इस प्रकार नियन्त्रण एक सुधारात्मक उपाय (Remedial Measure) है जिसे कि प्रबन्ध का नकारात्मक पहलू Negative aspect of Management) भी कहा जाता है।

नियन्त्रण प्रत्येक उद्योग अथवा उपक्रम के लिए आवश्यक महत्त्वपूर्ण प्रबन्धकीय कार्य है। इसके माध्यम से नियोजन एवं संगठन आदि की जाँच सम्भव हो जाती है। नियोजन व संगठन की कमियों को इसके माध्यम से दूर किया जा सकता है। नियन्त्रण संस्था के प्रयासों साधनों कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों में सन्तुलन स्थापित करके समन्वय सम्बन्धी कार्य को प्रभावपूर्ण बनाता है। नियन्त्रण से प्रबन्धकीय कमियों का पता ही नहीं लगाया जाता है बल्कि इन कमियों को कैसे दूर किया जाए का भी उपाय बताता है। इसके पीछे क्या कारण है? अच्छे श्रम सम्बन्धों के कारण उत्पादन में गिरावट आती है तो इसके लिए विभिन्न वित्तीय तथा अवित्तीय प्रेरणाएँ (Financial and Non financial Incentives) की व्यवस्था विभिन्न विभागों के कर्मचारियों द्वारा की जानी चाहिए। आधुनिक उत्पादन प्रणाली में बड़े पैमाने पर श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के माध्यम से उत्पादन किया जाता है। इसके अन्तर्गत संस्था के अधिकारों का विकेन्द्रीकरण किया जाता है और नियन्त्रण के माध्यम से इसे आसानी एवं प्रभावपूर्ण तरीके से चलाया जा सकता है। नियन्त्रण के कारण ही उद्योग अथवा व्यवसायों में पायी जाने वाली अनिश्चितताओं को कम किया जा सकता है तथा लाभ प्राप्त करके संस्थान को चलाया जाता है। नियन्त्रण होने से भ्रष्टाचार चोरी तथा अनैतिकता जैसे अवगुणों पर संस्थान में रोक लगा दी जाती है प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर नियन्त्रण के माध्यम से प्रभावपूर्ण प्रबन्ध किया जाता है।

नियन्त्रण व्यवस्था के आवश्यक तत्त्व
(Requirements of Control System)

नियन्त्रण की प्रक्रिया इस प्रकार होनी चाहिए कि जिससे उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। अतः आवश्यक है कि नियन्त्रण की प्रक्रिया इतनी सरल

1 M F l d M g m t P pl s & P ct e p 299

सुगम और समझ म आने योग्य हो कि जो नियन्त्रण कर रहा है और जिस पर निय त्रण किया जा रहा है वे दोनो उसे भली प्रकार जान लें। नियन्त्रण के लक्ष्यो के सम्बन्ध म स्पष्टता होनी चाहिए ताकि किसी प्रकार का भ्रम पदा न हो सके।

सगठन की प्रक्रिया को काय रूप देने के लिए सगठनात्मक स्वरूप (Organisational Pattern) अपनाना चाहिए। इसके बिना नियन्त्रण की प्रक्रिया प्रभावी नहीं हो सकती।

नियन्त्रण की प्रक्रिया म ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि नवीनताओं को शीघ्र अपनाया जा सके। वसे परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार इसके अपवाद भी हो सकते हैं किन्तु सामान्यत शीघ्र समायोजन की व्यवस्था होनी चाहिए।

नियन्त्रण की व्यवस्था उपयुक्त एव पर्याप्त होनी चाहिए। अनुचित नियन्त्रण सगठन के कमचारियो म असन्तोषपूर्ण और विद्रोही भावना तथा काय सचालन म असुविधा पदा करता है। यदि नियन्त्रण अपर्याप्त हुआ तो सगठन पर इसका प्रभाव नहीं होगा।

नियन्त्रण लचीला (Flexible) होना चाहिए ताकि इसम आवश्यकता के अनुसार परिवतन और सशोधन किया जा सके।

नियन्त्रण की प्रक्रिया मितव्ययतापूर्ण होनी चाहिए। केवल उचित और आवश्यक व्यय ही होने चाहिए। नियन्त्रण का उद्देश्य काय को त्रुटिरहित बनाना है और इसी उद्देश्य को ध्यान म रखकर इसका उपयोग होना चाहिए।

एक अच्छी नियन्त्रण-व्यवस्था म और भी अनेक महत्त्वपूर्ण बातो का ध्यान रखा जाना चाहिए। नियन्त्रण की प्रक्रिया म भविष्य को ध्यान मे रखकर आगे बढ़ा जाता है। (Forw rd Looking Control)। यह कायकर्त्ताओ का ध्यान रख कर चलती है (Workers Focu sed Control) नियन्त्रण काय सम्पन्नता के लिए एक निश्चित पथ प्रदान होना है।

नियन्त्रण सगठन के व्यक्तिगत एव सगठनात्मक लक्ष्यो को ध्यान म रख कर किया जाता है। डॉ ड्रकर (Dr Ducker) के शब्दो म नियन्त्रण का सवश्रेष्ठ तरीका साद्देश्य प्रबन्ध है जो नियन्त्रणकर्त्ता को अपनी काय सम्पन्नता नियन्त्रित करने को योग्य बनाता है।

नियन्त्रण प्रक्रिया
(Control Process)

नियन्त्रण प्रविधि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म आवश्यक है। व्यावसायिक क्षेत्र में भी नियन्त्रण परमावश्यक है। लेकिन इस प्रक्रिया म कुछ आवश्यक कदम उठाने पडते हैं जिनके अभाव म यह नियन्त्रण प्रक्रिया प्रभावपूर्ण ढंग से लागू नहीं की जा सकती है। ये आवश्यक कदम अग्रलिखित है—

1 प्रमापों का निर्धारण (Establishment of Standards)—नियन्त्रण के लिए यह आवश्यक है कि कुछ प्रमाप निर्धारित किए जाएं जिससे कि नियन्त्रण में इनका माप-दण्ड के रूप में प्रयोग किया जा सके। प्रो कून्टज एवं प्रो ओ डोनेल के अनुसार प्रमाप निर्धारित माप दण्ड होते हैं, जिनमें वास्तविक कार्य सम्पादन को नापा जाता है। वे उपक्रम अथवा विभाग के नियोजन लक्ष्यों की अभिव्यक्ति को इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं जिससे कि निर्धारित कर्त्तव्यों की पूर्ति को इन लक्ष्यों से नापा जा सके।[1] ये प्रमाप भौतिक रूप में जैसे—उत्पादन मात्रा कार्य के घण्टे आदि तथा मौद्रिक रूप में जैसे—लागत, आगम, विनियोग आदि में हो सकते हैं। इनके आधार पर ही नियन्त्रण किया जा सकता है।

2 *कार्य सम्पन्नता का मूल्यांकन* (*Evaluating Performance*)—मापदण्ड का निर्धारण नियन्त्रण का प्रथम सोपान है अन्तिम तथा पर्याप्त नहीं। जब तक सम्पन्न कार्य का मूल्यांकन इन निर्धारित मापदण्डों के प्रकाश में नहीं किया जाता तब तक नियन्त्रण की प्रक्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। क्रियान्विति का मूल्यांकन *करने के लिए रेखीय कार्यक्रम* (*Linear Programming*) *तथा अनुरूपण* (Simulation) की विधि को अपनाने की सिफारिशें की जाती हैं। मूल्यांकन उस समय किए गए वास्तविक व्यवहार का किया जा सकता है। यह इस व्यवहार के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में हो सकता है तथा उस नियोजन का भी मूल्यांकन *किया जा सकता है जिसके आधार पर कार्य सम्पन्न किया गया या किया जाएगा।* इस तरह मूल्यांकन में कार्य सम्पन्नता के अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों ही रूप सम्भावित होते हैं।

पर्ट (PERT=Programme Evaluation Review Technique) के रूप में नियन्त्रण की नई तकनीकों का विकास किया गया है। यह तकनीक जटिल विकास और उत्पादन कार्यक्रमों पर सशोधित नियन्त्रण मानी जाती है। यह बहुत सारे आँकड़ों को संक्षेप में तथा व्यवस्थित रूप में रख सकती है। पर्ट नियन्त्रण की ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रबन्ध सीमित लागत एवं निश्चित समय में निर्धारित *लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग कर सकता है।*

पर्ट से मिलती जुलती हो एक अन्य तकनीक सी पी एम (Critical Path Method) है। यह प्रणाली निर्माण उद्योग में विशेष रूप से सफल पाई गई है। अनेक अनुसन्धान किए जा रहे हैं ताकि पर्ट एवं सी पी एम के प्रसार से *जन शक्ति, लागत एवं पूँजीगत आवश्यकताओं को प्रभावित किया जा सके।*

कार्य की सम्पन्नता का मूल्यांकन दो प्रकार से किया जा सकता है—(1) उन तरीकों की दृष्टि से जो निर्धारित मापदण्ड को प्राप्त करने के लिए

1 K t &OD // Pi pl of M n gem t p 40

अपनाए जा रहे हैं और (2) उन अर्जित परिणामों की दृष्टि से। यह मूल्यांकन कार्य समाप्त हो जाने के बाद होना चाहिए अथवा कार्यकाल में होना चाहिए—इस सम्बन्ध में अलग अलग मत हैं। सामान्य धारणा के अनुसार दोनों ही अवसर नियन्त्रण के लिए उपयुक्त हैं।

3 विचलनों का सुधार (Correction of Deviations)—किसी भी उपक्रम में नियन्त्रण पद्धति द्वारा निष्पादन को आंकना एवं मूल्यांकन करना कमियां एवं विचलनों को ज्ञात करना और नियन्त्रण प्रतिवेदन तैयार करना तब तक व्यर्थ है जब तक कि इन सबके लिए कोई ठोस सुधारात्मक उपाय प्रबन्धकों द्वारा नहीं उठाए जाते हैं। सुधारात्मक कार्यवाही विभिन्न विचलनों के कारणों के आधार पर अलग अलग प्रकृति की होगी। कुछ विचलन प्रबन्धकों द्वारा स्वीकार्य हैं क्योंकि प्रमापों में असंगतता माप से अपूर्णता अथवा क्रियात्मक दशाओं में परिवर्तनों आदि के कारण उत्पन्न होते हैं। इन प्रकार विचलनों का सुधार कर व्यावसायिक उपक्रम के विभिन्न विभागों को पूर्व निर्धारित योजना उद्देश्यों निर्देशों एवं सिद्धान्तों के आधार पर चल कर अपेक्षित उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है।

नियन्त्रण की विशेषताएं
(Characteristics of Control)

नियन्त्रण प्रबन्धकीय कार्य है। इसकी कुछ विशेषताएं होती हैं। प्रो. बनर्जी के अनुसार नियन्त्रण की निम्न विशेषताएं हैं[1]—

1 एक अन्तिम क्रिया (An End Function)—नियन्त्रण प्रबन्ध का प्रारम्भिक कार्य न होकर एक अन्तिम कार्य है। इसके पहले समस्त प्रबन्धकीय कार्य जैसे—नियोजन संगठन निर्देशन, अभिप्रेरणा समन्वय किए जाते हैं। यह नियोजन पर आधारित होता है और फिर यह देखता है कि विभिन्न साधनों जैसे—मनुष्य सामग्री मशीन और मुद्रा आदि को किस प्रकार संगठित और समन्वित किया जाता है जिससे कि कार्य का निष्पादन अच्छी तरह हो सके। इसके पश्चात् नियन्त्रण का उपयोग किया जाता है।

2 आगे आने वाली प्रक्रिया (Forward looking Process)—प्रबन्धक भूतकालीन घटनाओं पर नियन्त्रण नहीं कर सकता है। वह भूतकालीन घटनाओं पर पुनर्विचार करता है और पिछले अनुभव के लाभों को भावी सुधारों में काम में लाते हैं। सबसे श्रेष्ठ नियन्त्रण वह माना जाता है जो कि भावी हानि अपव्यय, कमियों अथवा विचलनों को रोक कर रक्षा करने का कार्य करता है।

3 गतिशील प्रक्रिया (Dynamic Process)—समय परिवर्तनशील है। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ही उपक्रम की योजनाओं और उद्देश्यों में

1 M B n (j e Bus ness Adm ni t tion p 310–11

परिवर्तन करना आवश्यक है। यदि नियन्त्रण में भी इन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन नहीं किया जाता है तो प्रभावपूर्ण नियन्त्रण सम्भव नहीं होगा।

4 सतत् प्रक्रिया Continuous Process —नियोजन की भाँति नियन्त्रण भी एक निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। प्रो कुण्टज और प्रो ओ डोनल के अनुसार जिस प्रकार एक नाविक यह निश्चय करने के लिए कि वह नियोजित मार्ग के सन्दर्भ में कहाँ है निरन्तर अध्ययन करता रहता है उसी प्रकार यह निश्चय करने हेतु कि उसका उपक्रम अथवा विभाग निर्धारित मार्ग पर है व्यापार के प्रबन्धक को निरन्तर अध्ययन करते रहना चाहिए।[1]

5 प्रबन्ध के सभी स्तरों पर लागू (Exercised at all levels of Management) —नियन्त्रण प्रबन्ध के सभी स्तरों पर लागू किया जाता है। नियन्त्रण की मात्रा में जरूर अन्तर हो सकता है। उपक्रम का समस्त नियन्त्रण एव पर्यवेक्षण सचालक मण्डल के हाथों में होता है एक विभाग का नियन्त्रण विभागीय अध्यक्ष द्वारा तथा उप विभाग का नियन्त्रण उप विभागीय अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। इस प्रकार नियन्त्रण की यह शृंखला एक स्तर से सभी स्तरों तक चलती है।

6 व्यक्तियों से सम्बन्धित क्रिया (Identified with Individuals)—नियन्त्रण सम्बन्ध यों क्रिया प्रत्यक्ष रूप से सामग्री प्रक्रिया अथवा वित्त से सम्बन्ध रखता है। फिर भी इन सब का किसी न किसी रूप में मनुष्य से सम्बन्ध रहता है। किसी भी दोष हेतु मनुष्य ही उत्तरदायी होता है। नियन्त्रण विभिन्न विभागों में कार्यरत कर्मचारियों के निष्पादन का मूल्यांकन करता है। यह प्रक्रिया कुछ व्यक्तियों द्वारा दूसरे व्यक्तियों पर लागू की जाती है।

7 तथ्यों पर आधारित प्रक्रिया (Based on Facts)—आधुनिक प्रबन्ध के विकास के कारण नियन्त्रण तथ्यों तथा सांख्यिकी के ऊपर आधारित होता है। अब व्यक्तिगत मतों या अथवा भावनाओं पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है क्योंकि वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management) का विकास हो गया है।

नियन्त्रण का महत्व
(Importance of Control)

नियन्त्रण प्रबन्धक का एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रबन्धक के अन्य कार्य जैसे—नियोजन सगठन, निर्देशन अभिप्रेरणा और समन्वय को प्रभावपूर्ण ढंग से करके भी उपक्रम के वाछित उद्देश्यों को तब तक प्राप्त करने में सफलता नहीं मिलती है जब तक कि नियन्त्रण के कार्य को लागू नहीं किया जाए। उपक्रम कार्य कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। लेकिन उन पर नियन्त्रण प्रबन्धक द्वारा रखा जाता है। प्रो चटर्जी ने अग्रलिखित लाभों के रूप में नियन्त्रण के महत्व को स्वीकार किया है[2]—

1 K nt d O D nn ll Pr ple f M n gement p 640
2 S S Ch tt rj M nagem t p 22

1 नियन्त्रण का बीमा मूल्य (Insurance Value of Control)—वास्तविक निष्पादन पूर्वनियोजित उद्देश्यों और प्रमापों के अनुरूप हो रहा है अथवा नहीं यह नियन्त्रण प्रक्रिया के माध्यम से पता लगाया जाता है। इसी प्रक्रिया से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार कार्य का निष्पादन करवाने में सहायता मिलती है। विभिन्न कार्यों को इस प्रकार से नियन्त्रित किया जाता है कि पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव हो सके।

2 भावी कार्यवाही का आधार (Bases for Future Action)—कार्य के पूरा होने पर उसका मूल्यांकन किया जाता है और इसी मूल्यांकन से भावी नियोजन व संगठन का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी की सहायता से पुनर्नियोजन व पुनर्गठन का कार्य किया जाता है। अधीनस्थ कर्मचारियों को पुरस्कृत करना, दण्डित करना और अनुशासित करना इसी नियन्त्रण के आधार पर किया जाता है।

3 प्रबन्धकीय दुर्बलताओं का सूचक—उपक्रम के प्रभावपूर्ण प्रबन्ध हेतु नियन्त्रण अन्य कार्यों पर नियन्त्रण रखता है। प्रबन्धकों की कमियों का पता लगा कर उनको दूर करता है। विभिन्न विभागों तथा प्रबन्धकों की दुर्बलताओं के परिणाम स्वरूप ही नियन्त्रण का कार्य किया जाता है। यह नियन्त्रण ही प्रबन्धकीय कार्य है जिसके माध्यम से हमें प्रबन्धकीय दुर्बलताओं के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त होती है और इन दुर्बलताओं को दूर करने हेतु सुधारात्मक उपाय काम में लिए जाते हैं।

4 समन्वय की सुविधा (Facility of Co ordination)—समन्वय का कार्य नियन्त्रण से अधिक सुविधाजनक ढंग से निष्पादित करना सम्भव होता है। यह विविध क्रियाओं को एक सूत्र में बाँधता है। पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों के सन्दर्भ में नियन्त्रण सभी क्रियाओं और प्रयासों को उनकी निश्चित सीमा और अनुसूची में रखता है तथा इन सबको समन्वित निर्देशनों से सामान्य उद्देश्यों की ओर ले जाने का कार्य करता है। समय, धन एवं प्रयासों के सभी प्रकार के अपव्ययों को नियन्त्रण के माध्यम से ही रोका जा सकता है।

5 विकेन्द्रीकरण का विस्तार (Expansion of Decentralisation)—आधुनिक प्रबन्ध प्रणाली द्वारा उच्च प्रबन्ध समस्त उपक्रम पर नियन्त्रण रखने के साथ-साथ विकेन्द्रीयकरण की सीमाओं में वृद्धि करने को प्रोत्साहित होता है। दूसरे कर्मचारियों को कार्य हेतु उत्तरदायी बनाया जाता है तथा इसको पूरा करने हेतु उन्हें अधिकार सौंपे जाते हैं। इससे दूसरों को अधिकार एवं उत्तरदायित्व सौंप कर कार्य को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है और उनके प्रयासों का अधिकतम उपयोग नियन्त्रण के माध्यम से सम्भव होता है।

नियन्त्रण के प्रकार
(Types of Control)

उद्देश्य अथवा प्रमाप के आधार पर नियन्त्रण के दो प्रकार हैं—

1 भौतिक नियन्त्रण (Physical Control) इसके अन्तर्गत सामग्री मशीनें श्रमिक वस्तुओं का उत्पादन और बिक्री विभिन्न मुद्राएँ आदि के नियन्त्रण को शामिल किया जाता है। प्रत्येक उपक्रम में इन सबका उत्पादन में योग होता है। भौतिक नियन्त्रण भी दो प्रकार का होता है—

(अ) मात्रात्मक नियन्त्रण Quantitative Control)—इसके अन्तर्गत उत्पादन श्रम मशीन विद्युत कच्चा माल बिक्री की मात्रा आदि के मात्रात्मक नियन्त्रण का अध्ययन किया जाता है।

(ब) गुणात्मक नियन्त्रण (Qualitative Control) इसके अन्तर्गत उत्पादन के गुण या किस्म के नियन्त्रण का अध्ययन किया जाता है जैसे—इस्पात की कठोरता कार का टिकाऊपन रंग का गहरापन कपड़े की किस्म का अच्छा होना आदि।

2 वित्तीय नियन्त्रण (Financial Control)—यह नियन्त्रण मौद्रिक रूप में लागू किया जाता है। किसी उपक्रम की समस्त पूँजी परिसम्पत्तियाँ मशीनें औजार और दिन प्रतिदिन के भुगतान आदि को मौद्रिक रूप में व्यक्त किया जाता है। इनको दो दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है—एक ओर हम व्यय के दृष्टिकोण से देख सकते हैं जिसके अन्तर्गत लागत प्रमाप (Cost Standards) आते हैं उदाहरणार्थ प्रति इकाई श्रम अथवा सामग्री लागत प्रति इकाई विक्रय लागत आदि। दूसरी ओर आगम दृष्टिकोण आता है जिसका सम्बन्ध आगम प्रमापों (Revenue Standards) से है-उदाहरणार्थ—प्रति इकाई आगम प्रति इकाई बिक्री आदि।

विभिन्न क्रियाओं तथा क्षेत्रों पर अपनाए गए नियन्त्रण के आधार पर भी इसके कई प्रकार हैं। मुख्य प्रकार निम्न हैं —

1 नीतियों पर नियन्त्रण (Control over Policies)—नियन्त्रण द्वारा पहले यह देखा जाता है कि जो भी नीतियाँ किसी उपक्रम में निर्धारित की जाती हैं वे भावी कार्यक्रमों का कार्य प्रशस्त करती हैं और वे उपक्रम के हित में हैं। इन नीतियों का व्यवहार में भी लागू किया जा रहा है अथवा नहीं। सभी स्तरों पर संचालक मण्डल द्वारा निर्धारित नीतियों के अनुसार कार्य हो रहा है यह नियन्त्रण द्वारा ही देखा जाता है और किसी प्रकार की नीतियों के विचलनों पर नियन्त्रण किया जाता है।

2 संगठन पर नियन्त्रण (Control over Organisation)—प्रत्येक संस्थान के प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य करने हेतु एक सुदृढ़ एवं स्पष्ट संगठन संरचना की आवश्यकता होती है। प्रत्येक अधिकारी को अपने दायित्वों और अधिकारों का ज्ञान होने पर किसी प्रकार से कार्य का दोहराव भ्रम और संघर्ष का सन्देह नहीं होता है संगठन पर नियन्त्रण इसलिए आवश्यक है कि इसकी सहायता से कार्य उद्देश्यों तथा योजनानुसार होता रहता है।

3 कर्मचारियों पर नियन्त्रण (Control over Personnel)—यह

कमचारियो क गुण पर नियन्त्रण रखता है। यह कहना आसान है कि अच्छ कमचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए लेकिन व्यवहार म इसे लागू करना कठिन हो ता है। मानव शक्ति नियोजन म नियन्त्रण का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। नियन्त्रण के माध्यम से अच्छे कमचारियो का चयन उनका प्रशिक्षण काय हेतु मूल्यांकन पर्याप्त पुरस्कार उच्च पदो पर नियुक्ति आदि समस्त काय कमचारी विभाग (Personnel Department) की सहायता से करवाए जाते हैं।

4 उत्पाद पर नियन्त्रण (Control over Product)—प्रत्यक वस्तु का उत्पादन किसी उपक्रम द्वारा किया जाएगा इसकी प्रकृति विशेषताए उपयोग आदि सभी आधुनिक समय म अनुसन्धान और विकास से सम्बन्धित विषयो पर आधारित होते हैं। अनुसन्धानशालाओ का चयन उनकी प्रगति का मूल्यांकन अनुसन्धान हेतु आवण्टित कोष आदि सभी का नियन्त्रण से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

5 गुण नियन्त्रण (Control over Quality।

6 मजदूरी और वेतनो पर नियन्त्रण (Control over Wages and Salaries)।

7 बिक्री पर नियन्त्रण (Control over Sales)।

8 कीमतो पर नियन्त्रण (Control ov r Prices)।

9 बाह्य सम्बन्धो पर नियन्त्रण (Control over External Relations)

10 समस्त निष्पादन पर नियन्त्रण (Control over all Performance)।

नियन्त्रण का क्षेत्र
(Areas or Scope of Control)

पी ई होल्डन एल एम फिस और एच एल स्मिथ के अनुसार व्यावसायिक सस्थानो म प्रबन्धकीय नियन्त्रण के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित होते हैं—

1 **नीतियों पर नियन्त्रण**—सस्थान या उपक्रम की नीतियो पर नियन्त्रण के लिए प्राय एक नीति पुस्तिका (Policy Manual) का प्रयोग किया जाता है। उपक्रम क प्रत्येक कमचारी स इस पुस्तिका मे उल्लिखित नीतियो के अनुसार चलन की आशा की जाती है। यह नीति-पुस्तिका उच्च प्रबन्धक वग द्वारा तयार की जाती है।

2 **सगठन पर नियन्त्रण**—सगठन व्यवस्था को नियन्त्रण के लिए सगठन चाट या सगठन पुस्तिका (Organisation Chart or Organisation Manual) का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए दीघकालीन योजना निर्माण सगठन सरचना मे विवेकीकरण सगठन के प्रत्येक भाग की रूपरेखा के स्पष्टीकरण सगठन की प्रभावशीलता के पुनरावलोकन आदि काय ध्यान से रखे जात हैं। उपक्रम के अनुभवी तथा वरिष्ठ अधिकारियो द्वारा यह काय सम्पादित होता है।

3 **कमचारियो पर नियन्त्रण**—सस्थान के कमचारियो पर नियन्त्रण की

जिम्मेदारी सामान्यतया विभागाध्यक्ष रखते हैं तथापि इस कार्य के लिए कर्मचारी निदेशक की नियुक्ति भी की जा सकती है। कर्मचारी निदेशक प्राय एक कर्मचारी या सर्वोवर्गीय समिति की सहायता से अपनी जिम्मेदारी निभाता है।

4 **मजदूरी तथा वेतन पर नियन्त्रण**—इसके लिए कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है।

5 **लागतों पर नियन्त्रण**—इसके लिए प्रमाप लागतों तथा वास्तविक लागतों की तुलना कर लागत पर नियन्त्रण रखा जाता है। आजकल प्राय प्रत्येक वृहत् उद्योग में लागत लेखाकार (Cost Accountants) यह कार्य सम्पन्न करते हैं।

6 **कार्य प्रणाली तथा जनशक्ति पर नियन्त्रण**—इसके लिए समय समय पर उपक्रम के प्रत्येक विभाग तथा उपभाग की कार्य प्रणाली का विश्लेषण किया जाता है ताकि अनावश्यक तत्वों को दूर किया जा सके। इस प्रकार का नियन्त्रण कर्मचारियों को अपना कार्य ठीक ढंग से ठीक समय पर और परिश्रमपूर्वक करते रहने के लिए प्रेरित करता है।

7 **पूंजी व्ययों पर नियन्त्रण**—यह कार्य वित्त विभाग के विशेषज्ञ करते हैं। पूंजी की स्वीकृति देने से पूर्व प्रत्येक परियोजना की तथा उसकी लाभदायकता की पूरी जाँच की जाती है। परियोजना पूर्ण होने के बाद यह देखा जाता है कि अपेक्षित लाभ वास्तव में प्राप्त हो रहे हैं या नहीं।

8 **सेवा कार्यों पर नियन्त्रण**—इसके लिए कार्यकारी विभागों में बजट कन्ट्रोल की व्यवस्था अपनाई जाती है।

9 **उत्पादन पर नियन्त्रण**—किसी भी निर्माण व्यवसाय के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। इसमें बाजार की आवश्यकताओं का विश्लेषण करके सर्वोत्तम और सरलतम ढंग से उसकी पूर्ति के लिए उत्पादित वस्तुओं में समुचित समायोजन किया जाता है। प्राय शोध निर्माण तथा विक्रय विभागों के प्रतिनिधियों से निर्मित स्टाफ समिति द्वारा यह नियन्त्रण रखा जाता है।

10 **शोध एवं विकास पर नियन्त्रण**—आजकल औद्योगिक इकाई अथवा अनेक औद्योगिक इकाइयाँ मिलकर शोध कार्य सम्पादित करती हैं। शोध कार्य के लिए विशेषज्ञ नियुक्त किए जाते हैं जो बाजार का अध्ययन कर तदनुसार उत्पादन के सुझाव देते हैं।

11 **बाह्य सम्बन्धों पर नियन्त्रण**—इसके लिए औद्योगिक इकाई में एक जन सम्पर्क विभाग की स्थापना की जाती है। वृहद् आकार की संस्थाओं में ही यह व्यवस्था प्राय देखने को मिलती है।

12 **समग्र नियन्त्रण**—संस्था अथवा उपक्रम के सम्पूर्ण कार्यों के लिए नियोजन तथा बजट की कन्ट्रोल विधि का प्रयोग किया जाता है। एक केन्द्रीय

समिति वृहद् योजना (Master Plan) तैयार करती है जिसमें कि प्रत्येक विभाग या सभाग की योजनाएं सम्मिलित होती हैं और उपक्रम के सभी कर्मचारी इसे क्रियान्वित करने का प्रयास करते हैं।

नियन्त्रण का विस्तार
(Span of Control)

संगठन अथवा प्रशासन में नियन्त्रण की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। बिना नियन्त्रण के कोई भी संगठन अथवा कोई भी प्रशासन समुचित रूप में संचालित नहीं किया जा सकता। नियन्त्रण की व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन अथवा प्रशासन की इकाई के कर्मचारी दिए गए आदेशों निर्देशों और नियमों के अनुरूप काम कर रहे हैं अथवा नहीं। यदि इस प्रकार की देखभाल न की जाए तो स्वाभाविक है कि संगठन अथवा कार्यालय का काम अव्यवस्थित तथा शिथिल हो जाएगा।

नियन्त्रण के सन्दर्भ में स्वाभाविक रूप से नियन्त्रण के विस्तार (Span of Control) का प्रश्न उठता है। एक उच्च अधिकारी कितने अधीनस्थों अर्थात् अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य का क्षमतापूर्वक अधीक्षण कर सकता है। यह नियन्त्रण विस्तार की समस्या है। दूसरे शब्दों में नियन्त्रण विस्तार से हमारा अभिप्राय अधीनस्थ कर्मचारियों की उस संख्या से है जिसके कार्यों का अधीक्षण नियन्त्रण एक अधिकारी क्षमतापूर्वक कर सकता है। पारिभाषिक रूप में जैसा कि डिमॉक का कथन है नियन्त्रण का विस्तार किसी उद्यम के मुख्य निष्पादक तथा उसके मुख्य साथी कार्यालयों (Principal Fellow Offices) के बीच सीधे एवं स्वाभाविक संचार की संख्या एवं क्षेत्र है। नियन्त्रण के विस्तार को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है यथा— प्रबन्ध विस्तार (Span of Management) पर्यवेक्षण का विस्तार (Span of Supervision) अधिकार का विस्तार (Span of Authority) आदि।

नियन्त्रण विस्तार के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी अधिकारी के नियन्त्रण का क्षेत्र केवल उतना ही रखना चाहिए जितना वह कुशलतापूर्वक सम्भाल सकता है। अधिकारी की सामर्थ्य से अधिक या कम क्षेत्र का होना उचित नहीं है। 'ध्यान क्षेत्र (Span of Attention) सीमित होता है अतः कोई भी एक पदाधिकारी कर्मचारियों की असीमित संख्या का भली भांति निरीक्षण नहीं कर सकता। जॉन डी मिलेट ने ठीक ही लिखा है कि अनुभव और मनोवैज्ञानिक अनुसंधान दोनों इस बात का पुष्टि करते हैं कि किसी भी प्रशासकीय अधिकारी की पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा रहती है। यदि अधिकारी की सामर्थ्य से कम नियन्त्रण क्षेत्र रखा जाए तो वह भी अनुचित है क्योंकि इसका अर्थ है कि अधिकारी की क्षमताओं और सामर्थ्य का पूरा लाभ नहीं उठाया जा रहा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि नियन्त्रण विस्तार की सीमा कितनी होनी चाहिए। इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। जहां नियन्त्रण क्षेत्र का असन्तुलित विस्तार हानिकारक है वहां क्षेत्र का बहुत सीमित होना भी बुरा है। हेनरी फयाल (Henry Fayol) का मत है कि एक बड़े उद्यम के शिखर स्थित प्रबन्धक के नीचे पांच या छः से अधिक अधीनस्थ कर्मचारी नहीं होने चाहिए। एल उर्विक (L Urwick) का विचार है कि उच्च पदाधिकारियों के लिए आदर्श संख्या चार होगी और निम्न स्तर के कर्मचारियों के लिए आठ या बारह। ग्रेक्यूनस (Graicunas) ने लिखा है कि कोई उच्च अधिकारी पांच या छः अधीनस्थ कर्मचारियों से अधिक कार्य का उचित निरीक्षण नहीं कर सकता। सैनिक संगठन के सम्बन्ध में सर हैमिल्टन ने एक बार कहा था एक औसत मानव मस्तिष्क तीन से छः अन्य मस्तिष्कों का ही प्रभावशाली निरीक्षण कर सकता है।

स्पष्ट है कि नियन्त्रण विस्तार की सीमा के सम्बन्ध में कोई एक सुनिश्चित मत नहीं हो सकता है। कर्मचारियों की आदर्श संख्या की खोज करना जिस पर कि एक उच्च अधिकारी नियन्त्रण रखने में सक्षम हो निरर्थक है। प्रशासन की गतिशीलता ही प्रशासन की सफलता की परिचायक है। यह बहुत कुछ शीर्षस्थ अधिकारी की योग्यता, नेतृत्व कुशलता और प्रशासनिक क्षमता पर निर्भर करता है कि वह कितने अधीनस्थ कर्मचारियों को अपने नियन्त्रण में रख सकता है। फिर भी विद्वान् यह निश्चित करने के लिए अवश्य प्रयत्नशील हैं कि नियन्त्रण के विस्तार क्षेत्र की लम्बाई क्या होनी चाहिए। सामान्य सहमति इस बात पर पायी जाती है कि—

(क) प्रत्येक स्तर पर एक निश्चित नियन्त्रण क्षेत्र होता है और यदि इस का उल्लंघन किया जाए तो कार्य के अवरुद्ध होने की सम्भावना उत्पन्न हो सकती है।

(ख) नियन्त्रण विस्तार में चार तत्त्वों के कारण विविधता उत्पन्न होती है। कार्य (Function) व्यक्तित्व (Personality) काल या समय (Time) और स्थान (Place or Space)।

नियन्त्रण विस्तार को निर्धारित करने वाले तत्त्व
(Factors Affecting Span of Control)

नियन्त्रण को हम किसी कठोर विस्तार क्षेत्र की सीमा में नहीं बांध सकते। नियन्त्रण का विस्तार कितना होगा अर्थात् एक अधिकारी कितने कर्मचारियों पर प्रभावशाली नियन्त्रण रख सकेगा यह मुख्यतः चार तत्त्वों पर निर्भर करता है। अतः इन तत्त्वों का विवेचन आवश्यक है—

1 काय (Function)—इसका अर्थ है कि कार्य की प्रकृति अर्थात् किस प्रकार से कार्य का नियन्त्रण किया जाता है और अधिकारी जिन व्यक्तियों का नियन्त्रण कर रहा है उनके कार्यों की प्रकृति उसके अपने कार्यों की प्रकृति के समान

ही है अथवा नहीं। यदि कार्यों की प्रकृति समान है तो नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है क्योंकि अधिकारी की नियन्त्रण-क्षमता बढ जाती है।

2 व्यक्तित्व (Personality)—इसका अभिप्राय अधिकारी या अधीक्षक और सम्बन्धित सहायकों की क्षमता से है। किसी भी सगठन म व्यक्तित्व एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है। यदि अधीक्षक या नियन्त्रक का व्यक्तित्व बहुत ऊंचा है उसम नेतृत्व की असाधारण क्षमता है उसके काय करने की गति तीव्र होती है उसका प्रशासनिक ज्ञान बहुत बढा चढा है तो वह कमचारियो की काफी बडी सख्या पर नियन्त्रण रख सकता है। निजी प्रशासन म एसे उदाहरणो की कमी नही है।

3 काल या समय (Time)—इसका अभिप्राय सगठन की आयु से है। यदि सगठन पुराना और जमा हुआ है तो नियन्त्रण का क्षेत्र सरलता से विस्तृत किया जा सकता है। पुराने और सुव्यवस्थित सगठन की तुलना म नए सगठनो म परम्पराओ का अभाव होता है और उच्च अधिकारियो के सामने नई-नई समस्याए उत्पन्न होती रहती हैं। अत स्वभावत नए सगठन म नियन्त्रण का काय पुराने सुव्यवस्थित सगठन की अपेक्षा कम तीव्र होता है।

4 स्थान (Place or Space)—इसका आशय यह है कि अधीनस्थ कमचारियो के कार्यालय भौगोलिक दृष्टि से एक ही स्थान या भवन म केन्द्रित हैं अथवा दूर दूर तक फैले हुए हैं। यदि एक ही स्थान म केन्द्रित है तो नियन्त्रण क्षेत्र का विस्तार करना उचित होगा पर यदि दूर-दूर स्थित हैं तो नियन्त्रण का क्षेत्र छोटा रखना ही उपयोगी होगा। जहा सहायक अधिकारी मुख्य अधिकारी या अधीक्षक के स्थान पर ही काय करते हैं वहा अधीक्षण एव नियन्त्रण सरल और तीव्र होता है दूर होने पर एसा नहीं होता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नियन्त्रण का विस्तार परिवर्तित होता रहता है और इस विभिन्नता के मूल म उपयुक्त चारो तत्त्व महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामान्यतया नियन्त्रण विस्तार के सम्बन्ध म निम्नलिखित सिद्धान्तो पर सहमति पाई जाती है—

1 *योग्यतम व्यक्तियों म भी नियन्त्रण और निरीक्षण करने की शक्ति सीमित होती है और असीमित क्षमता कहीं नहीं पाई जाती।*

2 उत्तरदायित्व जितना बडा होता है सक्रिय नियन्त्रण का क्षेत्र उतना ही सकुचित होता है।

3 समान काय करने वाले कमचारियो के मामले म नियन्त्रण क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो जाता है।

नियन्त्रण विस्तार क्षेत्र निश्चित करने म बड़े विवेक से काम लेना चाहिए। सेकलर हडसन (Secklor Hudson) के अनुसार यदि नियन्त्रण का क्षेत्र अत्यन्त सीमित कर दिया तो उसम भी कई खतरे उत्पन्न हो सकते हैं। जितने भी

प्रतिवेदन प्राप्त उनका विस्तार से निरीक्षण किया जाएगा तथा अधीनस्थों को उनकी क्षमता का पूरा-पूरा उपभोग करने के लिए प्रोत्साहन दिया जा सकेगा इसके अतिरिक्त छोटे नियन्त्रण क्षेत्र का अर्थ होता है आज्ञा देने वालों की मात्रा बढ़ जाएगी। वास्तव में यह बहुत कठिन है कि नियन्त्रण के क्षेत्र में एक आदर्श संख्या तय की जाए।

कूमन एवं समर के अनुसार नियन्त्रण विस्तार को प्रभावित करने वाले घटक—कूमन एवं समर ने नियन्त्रण विस्तार को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित घटकों अथवा तत्वों पर बल दिया है—

1 यदि उच्चाधिकारी उच्च योग्यता-सम्पन्न हैं तो वे अधीनस्थों की एक बड़ी संख्या पर भी नियन्त्रण कर सकते हैं अन्यथा नियन्त्रण का विस्तार संकुचित हो जाएगा।

2 यदि अधीनस्थ प्रशिक्षित अनुभवी और योग्यता सम्पन्न हैं तो वे अपने अधिकारी की बिना अधिक सहायता लिए ही सन्तोषजनक ढंग से कार्य करते हैं और ऐसे अधीनस्थों की एक बड़ी संख्या पर भी सरलता से नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। किन्तु यदि अधीनस्थ अकुशल अप्रशिक्षित और अनुभवहीन हैं तो नियन्त्रण का विस्तार संकुचित हो जाएगा अर्थात् बहुत थोड़े से अधीनस्थों पर ही एक उच्चाधिकारी का नियन्त्रण स्थापित करना असम्भव हो सकेगा।

3 यदि उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थों के कार्य का पर्यवेक्षण करने के लिए अधिक समय निकाल सकेंगे तो नियन्त्रण का विस्तार अधिक होगा। प्रायः देखा जाता है कि अधिकांश प्रबन्धक तथा उच्चाधिकारी ग्राहकों से भेंट बाह्य सम्पर्क आदि में अपना अधिकांश समय निकाल देते हैं और पर्यवेक्षण के लिए उनके पास बहुत कम समय बचता है जिससे नियन्त्रण का विस्तार संकुचित होता है।

4 यदि उच्चाधिकारी स्थाई आदेशों निर्देशों का प्रयोग करते हैं तो उनका कार्यभार काफी हल्का हो जाता है और नियन्त्रण विस्तार अधिक हो पाता है क्योंकि अधीनस्थों को अपने उच्चाधिकारियों से बार बार निर्देश लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। विपरीत स्थिति में नियन्त्रण का विस्तार संकुचित हो जाएगा।

5 यदि अधीनस्थों द्वारा सम्पन्न होने वाला कार्य महत्त्वपूर्ण और जटिल प्रकृति का है तो नियन्त्रण विस्तार संकुचित हो जाएगा अर्थात् कम अधीनस्थों की क्रियाओं पर नियन्त्रण किया जा सकेगा। किन्तु यदि कार्य सामान्य महत्त्व और सरल प्रकृति का है तो एक उच्चाधिकारी अधिक संख्या में अधीनस्थों की क्रियाओं पर नियन्त्रण कर सकेगा।

6 यदि स्टाफ में आपसी सहयोग की भावना है और उच्चाधिकारी को स्टाफ से सहयोग मिलता रहता है तो नियन्त्रण विस्तार अधिक हो सकेगा। किन्तु यदि उच्चाधिकारी को स्टाफ से सहयोग नहीं मिलता हो कर्मचारी कार्य निष्पादन

के माग म कठिनाइया पदा करत ना तो नियन्त्रण का विस्तार क्षेत्र सकुचित हो जाएगा।

7 सगठन म विकेन्द्रीकरण की मात्रा क अनुसार नियन्त्रण विस्तार सम्भव होगा। यदि विकेन्द्रीकरण की मात्रा सीमित होगी और उच्चाधिकारी निणयन के मामला से उलझ रहेग तो अधिनस्थो की कम सख्या पर नियन्त्रण रखना सम्भव होगा।

ग्रेकुनाज का नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त
(Graicunas Span of Control Theory)

वी ए ग्रकुनाज (V A Graicunas) ने सन् 1933 म एक लेख प्रकाशित किया जिसका शीपक था सगठन म सम्बन्ध (Relationship in Organisation)। इस लख म उन्होन अधीनस्थ एव उच्च अधिकारिया क सम्बन्धो की समस्या पर विचार किया है। उन्होने एक गणितीय सूत्र (Mathematical Formula) विकसित करके यह प्रतिपादित किया कि जब अधीनस्थो की सख्या बढ जाती है ता गणितीय रूप मे सम्बन्धा (Relationship) की सख्या भी बढ जाती है। प्रोफसर हेमन के अनुसार उनका अध्ययन अनुभवयुक्त निरीक्षण पर आधारित नही है किन्तु शीप पर प्रबन्ध के क्षेत्र म परिवतन करन स एक सगठन की क्या स्थिति होगी इस बात का एक गणीतीय प्रस्तुतीकरण है। ग्रकुनाज न यह बताया है कि उच्च अधिकारिया को अपने अधीनस्थो के साथ सम्बन्ध कायम रखन म हमेशा यह ब त मस्तिष्क म रखनी चाहिए कि उसका न केवल प्रत्यक अधीनस्थ स प्रत्यक्ष रूप म व्यक्तिगत सम्बन्ध है बल्कि उसके सम्बन्ध अधीनस्था के विभिन्न समूहो से और अधीनस्थो क पारस्परिक सम्बन्धो स भी है।

इन सम्बन्धो की सख्या प्रबन्धाधीन समूह की सख्या के साथ-साथ बढती रहती है। ग्रकुनाज न मुख्यत इस तीन प्रकार क सम्बन्धो का वणन किया है। य है—1 प्रत्यक्ष एकाकी सम्बन्ध (Direct Single Relationships) 2 प्रत्यक्ष समूह सम्बन्ध (Direct Group Relationships) और 3 आर-पार सम्बन्ध (Cross Relationships)। प्रत्यक्ष एकहरे सम्बन्ध किसी सर्वोच्च अधिकारी और उसक तात्कालिक अधीनस्थो के मध्य व्यक्तिगत एव प्रत्यक्ष रूप से होत हैं। उदाहरण के लिए यदि क के तीन अधीनस्थ हैं—ख ग घ तो यहा तीन प्रत्यक्ष सम्बन्ध बन जाएगे। प्रत्यक्ष समूह सम्बन्ध का अथ है—सर्वोच्च अधिकारी और अधीनस्था के प्रत्यक सम्भावित समूह के मध्य सम्बन्ध। यदि इस दृष्टि स देखा जाए तो उक्त उदाहरण म प्रत्यक समूह-सम्बन्धो की सख्या नौ हो जाएगी। सम्भावित सम्बन्धो के तीसरे समूह को ग्रकुनाज न आड-खड सम्बन्ध का नाम दिया है। जब एक उच्च अधिकारी के विभिन्न अधीनस्थो को पारस्परिक सम्पक करन की आवश्यकता होती है तो इस प्रकार के सम्बन्धो का जन्म हो जाता है। जब अधीनस्थो की सख्या बढन

के कारण सर्वोच्च अधिकारी के प्रत्यक्ष सम्बन्ध अनुपात के अनुसार बढ़ जाते हैं तो समूह और अन्य खंड सम्बन्ध अनुपात से भी अधिक बढ़ जाते हैं। ग्रेकुनास का सूत्र इस प्रकार है—

यह सूत्र सभी सम्भव सम्बन्धों की संख्या बता देता है जिनमें प्रबन्धक की रुचि हो सकती है और जो उसे ध्यान में रखने चाहिए। यहाँ n का अर्थ है अधीनस्थ की संख्या और n को इस सूत्र में लगाने से सब प्रकार के सम्बन्धों की संख्या ज्ञात हो जाएगी। इस सूत्र के परिणामों को निम्नांकित सारणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

अधीनस्थों की विभिन्न संख्या से उत्पन्न सम्भावित सम्बन्धों का योग

अधीनस्थों की संख्या	सम्भावित सम्बन्धों की कुल संख्या
1	1
2	6
3	18
4	44
5	100
6	222
7	490
8	1 080
9	2 376
10	5 210

इस सूत्र के आधार पर हम यह देखते हैं कि अधीनस्थों की संख्या चार होने पर सम्बन्धों की कुल संख्या 44 हो जाती है। यदि एक और अधीनस्थ जोड़ दिया जाए तो नियन्त्रण कार्य क्षेत्र पाँच अधीनस्थों का हो जाएगा। सूत्र के अनुसार सम्भावित अन्त-खंड सम्बन्धों का योग 100 हो जाएगा। इस प्रकार एक अधीनस्थ जुड़ जाने मात्र से सम्भावित सम्बन्ध रेखागणितीय रूप में बढ़ जाते हैं। अधीनस्थों की संख्या में 15 प्रतिशत वृद्धि करने पर सम्बन्धों का कुल योग 127 प्रतिशत बढ़ जाता है। यह वृद्धि अत्यन्त चेतावनीपूर्ण है और प्रत्येक प्रबन्धक को जो अधीनस्थों की संख्या में वृद्धि कर रहा है इसका ध्यान रखना होता है।

यह सूत्र हमको केवल सम्भावनाओं का दिग्दर्शन कराता है। इसके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि जब एक उच्च अधिकारी को बहुत से अधीनस्थ प्रतिवेदन

देंगे तो स्थिति कितनी जटिल बन जाएगी। वास्तविक व्यवहार म यह तालिका जिन सम्बन्धो का वणन करती है वे साकार नही बन पाते। विलियम न्यूमन (William Newman) का कथन है कि जब एक उद्यम आकार म बढ़ता है तो कमचारी एक दूसरे के साथ वे सभी सम्बन्ध नही रख पाते जो सद्धान्तिक रूप से सम्भव हैं। यह सूत्र केवल सम्भावित सम्बन्धो का ही उल्लख करता है। यह सब जानत हुए भी उच्च अधिकारी अधीनस्थो की संख्या म वृद्धि करत समय पर्याप्त सोच विचार स काम लता है।

ग्रकुनाज न बताया कि आड़े-खड़े सम्बन्धो द्वारा अधिक जटिलताएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन जटिलताओ की मात्रा सगठन के कार्यों की प्रकृति के आधार पर बदलती रहती है। यदि किसी काय म अधीनस्थो का परस्पर कम सम्बन्ध रखन की आवश्यकता हो तो वहा जटिलता नहीं बनगी। इस दृष्टि स हमिल्टन का कथन पूर्णत सार्थक है कि समूह के सदस्य का उत्तरदायित्व जितना कम होगा समूह उतना ही बडा हो सकता है। एल उर्विक ने भी बताया है कि कोई भी सर्वोच्च अधिकारी परस्पर सम्बन्धित कार्यों वाले पाच अथवा छ अधीनस्थो से अधिक काय को प्रत्यक्ष रूप म पयवक्षित नहीं कर सकता।

नियन्त्रण के सिद्धान्त

(Principles of Control)

नियन्त्रण प्रणाली सुव्यवस्थित और प्रभावी बनी रह इसके लिए नियन्त्रण के कुछ आवश्यक सिद्धान्तो का प्रतिपादन प्रबन्ध विद्वानो ने किया है। हेरोल्ड कुण्टज तथा ओ डानल न निम्नलिखित 14 सिद्धान्तो के अनुपालन की आवश्यक माना है—

1 उद्देश्यो के आश्वासन का सिद्धान्त (Principle of Assurance of Objective)—नियन्त्रण ऐसा होना चाहिए जो समूह उद्देश्यो की प्राप्ति म योगदान दे सक। प्रमाप एव निष्पादन क विचलन का पता चलत ही उसे तुरन्त समाप्त करने या सुधार करन का प्रयत्न होना चाहिए।

2 नियन्त्रण की कुशलता का सिद्धान्त (Principle of Efficiency of Control)—इस सिद्धान्त की माँग है कि नियन्त्रण तभी प्रभावशाली हो सकता है जब वह विचलनो को न केवल शीघ्र बतलाता हो बल्कि उन्हें इस प्रकार समाप्त करता हो कि उपक्रम या प्रतिष्ठानो क कार्यों का कम स कम हो। कारक प्रभाव पड और साथ ही साथ व्यय भी न्यूनतम हो।

3 नियन्त्रण के दायित्व का सिद्धान्त (Principle of Responsibility of Control)—अधिकार या सत्ता का प्रत्योजन सम्भव है किन्तु दायित्व का नहीं। नियन्त्रण के दायित्व के सिद्धान्त क अनुसार नियन्त्रण का दायित्व योजनाओ को

कार्यान्वित करने वाले अधिकारी का होता है। उच्चाधिकारी अपने कार्यभार को अन्य किसी कर्मचारी अथवा विशेषज्ञ पर डाल सकता है किन्तु अन्तिम उत्तरदायित्व उसका ही रहता है।

4 भावी नियन्त्रण का सिद्धान्त (Principle of Future Control)—नियन्त्रण का उद्देश्य केवल वर्तमान योजनाओं के विचलनों का पता लगाना और सुधार करना ही नहीं है बल्कि भावी विचलनों का पता लगाकर तदनुसार सुधारात्मक कदम उठाना भी है।

5 प्रत्यक्ष नियन्त्रण का सिद्धान्त (Principle of Direct Control)—इस सिद्धान्त की माँग है कि नियन्त्रण स्थापित करने के लिए प्रत्यक्ष नियन्त्रण विधि अपनाई जानी चाहिए। इसके लिए अधीनस्थों तथा प्रबन्धकों को अधिकाधिक योग्य और कार्यक्षम बनाने पर बल दिया जाना चाहिए। इससे भविष्य में वे भी अच्छे नियन्त्रक बन सकेंगे तथा प्रत्यक्ष रूप से कार्यों पर नियन्त्रण की कार्यवाही कर सकेंगे।

6 योजनाओं के प्रतिबिम्ब का सिद्धान्त (Principle of Reflection of Plans)—नियन्त्रण प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिसमें नियोजन की प्रकृति और संरचना स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो सके। यह ध्यान रखना कि नियन्त्रण के पश्चात् भी मूल योजना यथावत रहे किन्तु त्रुटियों का समुचित सुधार हो सके।

7 संगठनात्मक उपयुक्तता का सिद्धान्त (Principle of Organisational Stability)—इस सिद्धान्त की माँग है कि नियन्त्रण व्यवस्था संगठन के ढाँचे के अनुरूप होनी चाहिए क्योंकि नियन्त्रण का कोई पृथक ढाँचा नहीं होता।

8 नियन्त्रण की वैयक्तिकता का सिद्धान्त (Principle of Individuality of Control)—ऐसी नियन्त्रण प्रक्रिया अपेक्षित है जो संगठन की आवश्यकताओं को भी पूरा कर सके और साथ ही सम्बन्धित नियन्त्रण करने वाले प्रबन्धक की आवश्यकताओं को भी पूरा करे। यदि नियन्त्रण व्यवस्था प्रत्येक स्तर पर नियुक्त अधिकारी (नियन्त्रक) के व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं होगी अर्थात् उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली नहीं होगी तो नियन्त्रण कार्य के मार्ग में अवरोध पैदा हो जाएगा।

9 प्रमापों का सिद्धान्त (Principle of Standards)—प्रभावी और कुशल नियन्त्रण के लिए आवश्यक है कि कार्य विषयक परिशुद्ध और उपयुक्त प्रमाप निर्धारित कर दिए जाएं। यदि प्रमाप शुद्ध निश्चित अथवा उपयुक्त नहीं होंगे तो नियन्त्रण क्रियाएं व्यर्थ हो जाएंगी। प्रमापों के परिप्रेक्ष्य में ही निष्पादन क्रियाओं का मापन तथा मूल्यांकन किया जाता है।

10 अपवाद का सिद्धान्त (Principle of Exception)—इस सिद्धान्त की माँग है कि प्रभावी नियन्त्रण के लिए अपवादजनक स्थितियों में ही प्रबन्धकों का ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में प्रबन्धक को अति महत्वपूर्ण

विचलनो पर भी अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। यदि सामान्य विचलनो के मामला म भी वह फसा रहता है तो प्रभावी नियन्त्रण नही हो सकेगा।

11 महत्त्वपूर्ण बिन्दु नियन्त्रण का सिद्धान्त (Principle of Strategic Point Control)—नियन्त्रण प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो महत्त्वपूर्ण बिन्दुओ पर समुचित ध्यान देकर उनको नियन्त्रित कर सके। सभी सामान्य प्रकृति के बिन्दुओ पर नियन्त्रण की उतनी आवश्यकता नही होती।

12 नियन्त्रण की लोच का सिद्धान्त (Principle of Flexibility of Control)—नियन्त्रण प्रणाली पर्याप्त लोचदार होनी चाहिए ताकि योजनाओ के परिवतन के साथ साथ नियन्त्रण विधि मे भी सरलता से समुचित परिवतन लाए जा सके।

13 पुनरावलोकन का सिद्धान्त (Principle of Review)—नियन्त्रण प्रभावी और सक्षम बना रहे इसके लिए यह आवश्यक है कि नियन्त्रण प्रणाली का समय समय पुनरावलोकन किया जाता रहे ताकि परिस्थितियो के अनुसार यथासमय समायोजन किया जा सके।

14 कार्यवाही का सिद्धान्त (Principle of Action)—प्रभावी और सक्षम नियन्त्रण प्रणाली वही मानी जावेगी जो उपयुक्त नियोजन सगठन निर्देशन आदि के द्वारा विचलना को अविलम्ब दूर करने वाली कार्यवाही का सम्भव बना सके। सुधारात्मक क्रियाओ के अभाव म नियन्त्रण प्रणाली का खोखलापन स्पष्ट हो जाएगा।

नियन्त्रण के उपयुक्त सिद्धान्तो के परिपालन से एक कुशल और प्रभावी नियन्त्रण प्रणाली स्थापित की जा सकती है। इन सिद्धान्तो की अनुपालना के साथ ही यह भी आवश्यक है कि नियन्त्रण प्रणाली सरल और सुविधा स बोधगम्य हो। नियन्त्रण प्रणाली ऐसी भी होनी चाहिए जो नियन्त्रक तथा नियन्त्रित मे सीधा सम्पर्क स्थापित कर सके। यथसाध्य स्वायत्तता के सिद्धान्त का भी समावेश किया जाना चाहिए।

नियन्त्रण की तकनीकें, विधिया साधन अथवा उपकरण
(Technique Methods Means or Tools of Control)

नियन्त्रण की विधिया तकनीकें साधना अथवा उपकरणो का अभिप्राय उन माध्यमो स है जिनके द्वारा किसी उपक्रम या प्रतिष्ठान म नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। हम नीचे उन कुछ प्रमुख नियन्त्रण विधिया या नियन्त्रण साधनो को लेंगे जिनका आधुनिक प्रबन्धका द्वारा काफी प्रयोग किया जाता है।

हम नियन्त्रण की विधियो या नियन्त्रण साधनो को प्रमुखत दो भागो म विभाजित कर सकते हैं—

(क) नियन्त्रण की विशिष्ट तकनीकें या विधिया

(ख) नियन्त्रण की सामान्य विधियाँ।

(क) नियन्त्रण की विशिष्ट विधिया
(Specific or Special Methods of Control)

नियन्त्रण की विशिष्ट तकनीका अथवा विधिया मे मुख्य हैं—

1 बजट नियन्त्रण (Budget Control)
2 लागत नियन्त्रण (Cost Control)
3 किस्म नियन्त्रण (Quality Control)
4 सामग्री नियन्त्रण (Inventory Control) एव
5 उत्पादन नियन्त्रण (Production Control)

1 **बजट नियन्त्रण** (Budget Control)— बजट एक निश्चित भावी समयावधि से सम्बन्धित वह प्रक्रिया है जो कि उपक्रम की समस्त अथवा कुछ क्रियाओं की आवश्यकताओं का सुव्यवस्थित अनुमान सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करती है। इसके विपरीत बजटरी नियन्त्रण प्रक्रिया बजट अनुमानो तथा वास्तविक परिणाम की तुलना मात्र है। इसके माध्यम से पव निर्धारित उद्देश्यो और वास्तविक निष्पादनो (Actual Performances) म पाए जाने वाले विचलनो का अध्ययन करके उनके कारणो को दूर किया जाता है। दूसरे शब्दो म हम यह कह सकते हैं कि वास्तव म बजट निर्माण का उद्देश्य ही बजटरी नियन्त्रण होता है। बिना बजट नियन्त्रण के बजट बनाना व्यर्थ है। कुछ विद्वानो द्वारा दी गई बजटरी नियन्त्रण की परिभाषाए निम्न प्रकार हैं—

1 टेरी के अनुसार बजटरी नियन्त्रण यह पता चलाने की ही प्रक्रिया है कि क्या किया जा रहा है तथा वास्तविक परिणामो की सम्बन्धित बजट आँकडो से तुलना करने की क्रिया है। इस क्रिया का उद्देश्य कार्य के निष्पादन का अनुमोदन करना अथवा बजट अनुमानो म समायोजन करना या अन्तरो के कारणो को ठीक करके अन्तरो को दूर करना।

2 मरी कुशक ना स के शब्दो म बजटरी नियन्त्रण प्रबन्ध की एक महत्वपूर्ण युक्ति है। वास्तव म यह एक नियोजन नियुक्ति है जो समन्वय के माध्यम से नियन्त्रण करती है तथा इन तीनो क्रियाओं को एक साथ एक सूत्र म बाँधती है। निश्चित नियोजन को आवश्यक बना कर तथा परिचालन की समस्याओं को पूर्वानुमान लगा कर यह पहले से विचार करने का प्रोत्साहन देती है।

3 रालफ और जी बरक के अनुसार बजट प्रबन्ध का एक साधन है जिसका प्रयोग व्यवसाय के कार्यों के नियोजन उनको करने और नियन्त्रण में किया जाता है— आगे के स्पष्टीकरण के रूप म यह पूव निर्धारित उद्देश्यो की स्थापना करता है और इन उद्देश्यो से निष्पादन की माप करने का आधार प्रदान करता है।

सामान्य रूप से जिन बजटो का प्रयोग किया जाता है वे हैं—व्यय बजट

(Expense Budget) आगम बजट (Revenue Budget) नकदी बजट (Cash Budget) पूजी बजट (Capital Budget) बिक्री बजट (Sales Budget) उत्पादन बजट (Production Budget) क्रय बजट (Purchase Budget) श्रम बजट (Labour Budget) एव कुल या सर्वांगीण बजट (Master Budget) ।

2 लागत अथवा परिव्यय नियन्त्रण (Cost Control)—लागत लेखा का लक्ष्य सम्बन्धित उपक्रम की किसी प्रक्रिया विभाग की प्रति इकाई उत्पादन लागत का पता लगाना मात्र है। लेकिन परिव्यय अथवा लागत नियन्त्रण का उद्देश्य अधिक व्यापक होता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं की लागत ज्ञात की जाती है और फिर उस लागत को नियन्त्रण करने का प्रयास किया जाता है। लागत कई प्रकार से कम की जा सकती है उदाहरणार्थ कच्चे माल की लागत म कमी सामग्री के क्रय भण्डार व्यवस्था तथा सामग्री के उपयोग पर नियन्त्रण करके आदि। कुशल पर्यवेक्षण उत्तम प्रशिक्षण उत्पादन के उन्नत साधनों तथा विधियों के प्रयोग तथा काम करने के तरीकों म सुधार करके श्रम लागत (Labour Cost) म कमी की जा सकती है। लागत नियन्त्रण के अन्तर्गत अपव्यय और फिजूलखर्ची म कमी करके लागत म कमी की जा सकती है। श्री चटर्जी ने लागत नियन्त्रण म महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है दूसरे शब्दों म लागत नियन्त्रण मनुष्यो सामग्री मशीनो और मुद्रा के अधिकतम उपयोग प्रमापीकरण का अनुकूलतम उपयोग और मात्रा तथा ऊपरी लागत (Overhead Cost) के बीच सम्बन्धो का बुद्धिमत्तापूर्ण चयन हेतु आवश्यक है।[1] श्री ब्वास हैमिंग के शब्दों म एक व्यवसाय का प्रबन्ध निश्चित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए उसके कार्यों का निर्देशन होता है। जिस प्रकार जहाज को बन्दरगाह तक लाने के लिए कप्तान को नेवीगेशन चार्ट तथा यन्त्रो की आवश्यकता होती है। ठीक उसी प्रकार प्रबन्ध द्वारा व्यवसाय के लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए लागत अथवा परिव्यय नियन्त्रण की प्रभावी व्यवस्था की आवश्यकता होती है।

लागत नियन्त्रण हेतु सर्वप्रथम लागत का पता लगाना पड़ता है। पर्याप्त परिव्यय अथवा लागत नियन्त्रण हेतु प्रबन्धक को लागत के विभिन्न अंगो अथवा तत्त्वो का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है जो कि लागत म पाए जाते है। प्रत्येक उपक्रम के वित्तीय लेखा द्वारा हम एक निश्चित अवधि म उसकी आर्थिक स्थिति का ज्ञान लाभ तथा हानि लेखों स प्राप्त होता है। यह उसके देनदारो (Liabilities) तथा परिसम्पत्तियो (Assets) स पता पड़ता है। लागत से भी हम विभिन्न गतिविधियों कार्यों प्रक्रियाओं विभाग इत्यादि का विस्तृत रूप म वित्तीय लेखा जोखा प्राप्त हो जाता है। इन्हीं आँकडो की सहायता स कुछ निर्धारित प्रमापो के

1 *S S Chatterjee* Man gement—It P cipl a d T h q es p 247
2 *D F E an H mm ng* Fl ble B dg tary C t l d Sta d d p 1

आधार पर नियन्त्रण लागू किया जाता है। लागत नियन्त्रण की प्रक्रिया में लागत की प्रत्येक मद (Item) के सम्बन्ध में प्रमापों का निर्धारण इन मदों की वास्तविक लागत को निश्चित करना वास्तविक और निर्धारित प्रमापों के बीच पाए जाने वाले विचलना (Deviation) का ज्ञान करना इन विचलनों के उत्तरदायित्व तथा कारण के निर्धारण हेतु विश्लेषण करना और फिर वास्तविक लागतों और प्रमापित लागतों में समानता लाने हेतु आवश्यक कार्यवाही करना आदि को शामिल किया जाता है।

लागत नियन्त्रण के तत्त्व (El ments of Cost Control) अनेक हैं। एक व्यावसायिक उपक्रम में लागत नियन्त्रण लागू करने हेतु प्राय निम्न आवश्यक कदम उठाने पड़ते हैं—

1 लागत विश्लेषण करना तथा इसकी प्रत्येक मद (Item) हेतु लागत के प्रमापों (Standards) की स्थापना करना।
2 उपरोक्त मदों में होने वाले वास्तविक व्ययों के लेखों को तैयार करना।
3 वास्तविक लागत (Actual Cost) और लागत प्रमापों (Cost Standard) की तुलना द्वारा दोनों में पाए जाने वाले अन्तर का विवरण तैयार करना।
4 दोनों के अन्तरों का विश्लेषण करना और अन्तरों के कारणों का पता लगाकर उनके उत्तरदायित्वों का निर्धारण करना।
5 भविष्य में इस प्रकार के अन्तर उत्पन्न न हों उसके लिए सुधारात्मक कार्यवाही (Corrective Action) करना।

प्रमापित लागतों द्वारा नियन्त्रण करने से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

(i) प्रमापित लागत भूतकालीन क्रियाओं और विद्यमान दशाओं पर आधारित होने के कारण अकुशलता वाले क्षेत्रों का पता लगाने में सहायक होती है जिससे कि प्रबन्धकों द्वारा सुधारात्मक कार्यवाही की जा सके।

(ii) प्रमापित लागत सामग्री श्रम मशीन आदि के भौतिक प्रमापों के आधार पर तैयार की जाती है। इस प्रकार यह भौतिक प्रमाप मात्रात्मक रूप में तथा लागत प्रमाप वित्तीय रूप में प्रकट करती है।

(iii) वास्तविक लागत प्रमापित लागत से कम हो इसके लिए सम्बन्धित लोगों को बार-बार निर्देशित करती है और उनकी कार्यकुशलता बढ़ाने हेतु जोर देती है। कार्यकुशलता पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(iv) निम्न स्तरीय प्रबन्धकों को व्यय के अधिकार सौंप कर नियन्त्रण में सफलता प्राप्त करने में भी प्रमापित लागत महत्त्वपूर्ण है। इससे वे लागत के प्रति उत्तरदायी हो जाएँगे तथा नियन्त्रण करने में आसानी रहेगी।

(v) प्रमापित लागत से प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान (Incentive Wage Payments) और बजटरी नियन्त्रण (Bud_etary Control) हेतु महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है।

(vi) प्रमापित लागत कार्य अध्ययन समय अध्ययन और गति अध्ययन के आधार पर तैयार की जाती है। इसके द्वारा कार्य सरलीकरण (Work Simplification) कार्यानुसार मजदूरी निर्धारण और प्रमापीकरण (Standardisation) आदि में सहायता मिलती है।

3 किस्म नियन्त्रण (Quality Control)—एक निर्माणकारी प्रक्रिया (Manufacturing Process) में कई परिवर्तनीय तत्त्व पाए जाते हैं जो कि उत्पाद को प्रभावित करते हैं। ये तत्त्व सामग्री मनुष्य मशीन और निर्माणकारी दशाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। सभी साधन कार्यकुशलता में समान नहीं होने के कारण वस्तु की किस्म भी भिन्न भिन्न प्रकार की होगी। वास्तविक किस्म की प्रमापित किस्म (Standard Quality) से तुलना की जाती है और इन पाए जाने वाले विचलनों (Deviations) को दूर करने हेतु सुधारात्मक कार्यवाही (Corrective Action) लेना पड़ता है। इस प्रकार किस्म नियन्त्रण प्रबन्धकीय नियन्त्रण का प्रमुख साधन है।

किस्म नियन्त्रण की भिन्न भिन्न विद्वानों ने परिभाषाएं दी हैं—

प्रो स्प्रीगल के अनुसार किसी उत्पादन की किस्म का अर्थ उसके आकार आकृति रचना मजबूती कारीगरी, समायोजन बाह्य रूप तथा रंग आदि सम्बन्धित गुणों का योग होता है।"[1]

प्रो बनर्जी के अनुसार किस्म नियन्त्रण का आशय किस्म के पूर्व निर्धारित प्रमापों से उत्पादों की किस्म की जाँच करना है।[2]

श्री रिसिक (H Rissik) के शब्दों में किस्म नियन्त्रण में निर्माण काल में उत्पाद (Produ t) का निरन्तर निरीक्षण सम्मिलित किया जाता है।[3]

इस प्रकार किस्म नियन्त्रण किसी भी उत्पाद (Product) की निर्माणकाल में उनके पूर्व निर्धारित प्रमापों से तुलना करना होता है और दोनों में किसी प्रकार का अन्तर होने पर उसके लिए सुधारात्मक कार्यवाही करनी पड़ता है। किस्म नियन्त्रण वस्तु के आकार आकृति, रचना मजबूती कारीगरी समायोजना बाह्य रूप तथा रंग किसी भी सन्दर्भ में हो सकता है।

4 सामग्री नियन्त्रण (Inventory Control)—नियन्त्रण की इस तकनीक के माध्यम से कच्चे माल आदि को आवश्यकतानुसार बनाए रखा जाता है।

1 *Spiegel* Indu tr al Man g ment p 101
2 *M Ban rj e* B ss Admi stratio p 371
3 *H R s k* Q lity Co trol P od ct p 13

यह अपेक्षित है कि सामग्री न तो कम रखी जाय और न ही अधिक क्योंकि ये दोनों ही स्थितियाँ हानिकारक हैं। अतः सामग्री नियन्त्रण विधि द्वारा स्टाक को इस तरह पर्याप्त मात्रा में रखा जाता है कि न तो पूंजी फँसी रहे और न स्टाक की कमी के कारण कार्य बन्द रह सके। नियन्त्रण की इस तकनीक या विधि के लिए बिन कार्ड, क्रयादेश बिन्दुओं का निर्धारण, स्टाक लेविल या निर्धारण तथा ए बी सी नियन्त्रण विधियों को अपनाया जाता है।

5 उत्पादन नियन्त्रण (Production Control)—इसका अभिप्राय उत्पादन क्रियाओं का प्रबन्ध और संचालन इस रूप में करने से लिया जाता है कि निर्धारित समय में और निर्धारित मात्रा में निर्धारित मूल्य पर निर्धारित किस्म का माल उत्पन्न किया जा सके। अल्फर्ड एवं बेटी के अनुसार उत्पादन नियन्त्रण में उत्पादन क्रियाओं के नियोजन, मार्ग निर्धारण, समय निर्धारण, निर्गमन और अनुगमन की क्रियाएं सम्मिलित की जाती हैं। मार्ग निर्धारण में उत्पादन प्रक्रिया का निर्धारण किया जाता है। निर्गमन में कार्य प्रारम्भ करने के आदेश, आवश्यक माल, औजार आदि निर्गमित किए जाते हैं। अनुगमन में यह देखना होता है कि कार्य योजनानुसार हो रहा है या नहीं और यदि कठिनाई है तो उसका निवारण किया जाता है।

(ख) नियन्त्रण की सामान्य विधियाँ
(General Methods of Control)

नियन्त्रण की सामान्य विधियों का अभिप्राय ऐसी विधियों से है जिनका उपयोग सामान्य रूप में प्रबन्धक उपक्रम की क्रियाओं पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए करते हैं। सामान्य नियन्त्रण विधियों में मुख्यतः निम्नलिखित प्रयोग में लाई जाती हैं—

1 अवलोकन द्वारा नियन्त्रण (Control by Observation)—उपक्रम में काम करने वालों के कार्यों का प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन कर उन पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। प्रत्यक्ष अवलोकन नियन्त्रण की एक सरल और पुरानी विधि है और आज भी कार्यकारी स्तर पर थोड़ा बहुत नियन्त्रण इस विधि द्वारा होता है। यद्यपि इस विधि में समय अधिक लगता है किन्तु अनेक परिस्थितियों में यह विधि बहुत उपयुक्त रहती है। सैनिक कार्यों के नियन्त्रण के लिए प्रायः यह विधि अपनाई जाती है। पुलिस में भी नियन्त्रण की इस विधि का अधिक उपयोग होता है।

2 नीतियों द्वारा नियन्त्रण (Control by Policies)—नीतियाँ जहाँ एक ओर निर्णयन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं वहाँ नियन्त्रण में भी महत्वपूर्ण योग देती हैं। यदि नीतियाँ स्पष्ट हैं तो शीघ्र और कुशल निर्णय लेने में सुगमता रहती है। निर्णयन की उपयुक्तता से नियन्त्रण कार्य सरल हो जाता है।

3 अभिप्रेरणा द्वारा नियन्त्रण (Control by Motivation)—कर्मचारियों को अभिप्रेरित करके उनकी क्रियाओं पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। हम हम एक प्रकार से स्व नियन्त्रण की संज्ञा दे सकते हैं। यदि कर्मचारियों का मनोवैज्ञानिक रूप से और सही ढंग से अभिप्रेरित किया जाए तो वांछित परिणाम अपेक्षित हैं क्योंकि कर्मचारी आपसी सहयोग से काम कर लें अर्थात् स्वतः नियन्त्रण का वातावरण बना रहता है।

4 अंकेक्षण द्वारा नियन्त्रण (Control by Audit)—अंकेक्षण से अभिप्राय लेखा पुस्तकों आदि की जांच से है। अंकेक्षण नियन्त्रण से यह पता चल जाता है कि लेखा पुस्तकें ठीक से रखी गई हैं या नहीं और उनसे व्यवसाय की सही स्थिति का पता चल रहा है या नहीं। प्रभावी अंकेक्षण द्वारा उपक्रम के कार्यकलापों में आने वाली भूल चूक, गबन आदि का तुरन्त पता चल जाता है। अंकेक्षण आन्तरिक भी हो सकता है और बाह्य भी अथवा दोनों प्रकार का। आन्तरिक अंकेक्षण उपक्रम में नियुक्त अंकेक्षकों द्वारा किया जाता है, जबकि बाह्य अंकेक्षकों द्वारा किया जाता है जिसमें कि निष्पक्षता की अधिक गुंजाइश रहती है।

5 अपवाद द्वारा नियन्त्रण (Control by Exception)—नियन्त्रण की इस विधि के अन्तर्गत अपवादपूर्ण स्थितियों को ही प्रबन्धकों के ध्यान में लाया जाता है, सामान्य बातें स्वतन्त्र छोड़ दी जाती हैं। दूसरे शब्दों में नियन्त्रण की दृष्टि से उन्हीं बातों की ओर उच्च प्रबन्धकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है जो योजनानुसार नहीं हो रही हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण विधि है जिसे उच्च स्तरीय तथा मध्य स्तरीय प्रबन्धकों के बहुमूल्य समय को बचाने के लिए काम में लिया जा सकता है। उच्च स्तरीय प्रबन्धक अपना ध्यान अपवादों अर्थात् महत्त्वपूर्ण विचलनों को समाप्त करने की ओर लगा देते हैं जिससे उनके श्रम और समय दोनों में बचत होती है। शेष कार्य नियमित रूप से स्वतः चलता रहता है।

6 चार्ट एवं नियम पुस्तिका द्वारा नियन्त्रण (Control by Charts and Manuals)—चार्टों द्वारा नियन्त्रण कार्य में इसलिए सुविधा रहती है कि क्योंकि कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। नियम पुस्तिका में अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र और दायित्व उल्लिखित रहते हैं जिससे अधिकारी स्व नियन्त्रण (Self-control) में रहते हैं।

7 अभिलेखों तथा प्रतिवेदनों द्वारा नियन्त्रण (Control by Records and Reports)—उपक्रम में अधीनस्थों के कार्यों के अभिलेखों तथा उनके द्वारा प्रस्तुत किये गए विभिन्न प्रतिवेदनों की जांच आदि से भी विभागों तथा कर्मचारियों के कार्य कलापों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। यह आवश्यक है कि प्रतिवेदन पर तुरन्त कार्यवाही की जाए। ऐसा न होने पर अधीनस्थ कर्मचारियों में शिथिलता आ जाना स्वाभाविक है। अभिलेखों और प्रतिवेदनों द्वारा नियन्त्रण प्रभावी तभी

हो सकता है जबकि वह श्रेष्ठ साधन के रूप में और निष्पक्ष रूप से प्रयुक्त किया जाए, इसमें अनावश्यक सामग्री का समावेश न हो।

8 अनुशासनात्मक कार्यवाही द्वारा नियन्त्रण (Control by Disciplinary Action)—नियन्त्रण की इस विधि के अन्तर्गत दोषी अधीनस्थों को दण्डित किया जाता है ताकि वे भविष्य में गलतियों की पुनरावृत्ति न करें।

9 लिखित निर्देशों द्वारा नियन्त्रण (Control by Written Instructions)—आज यह उचित समझा जाता है कि निर्देश एवं आदेश लिखित रूप में दिये जाएं। यदि लिखित निर्देश स्पष्ट और सरल हैं तो भ्रम की गुंजाइश नहीं रहेगी और उपक्रम के कर्मचारी उनका अच्छी तरह अनुपालन कर सकेंगे।

10 सम विच्छेद विश्लेषण द्वारा नियन्त्रण (Control by Break-even Analysis)—इस विधि के माध्यम से आगम और लागत की स्थिति ज्ञात की जाती है। इससे विक्रय की वह मात्रा निर्धारित की जाती है जिस पर लागत और आगम बराबर हो। जिस बिन्दु पर न लाभ हो और न हानि हो उसे सम विच्छेद बिन्दु कहते हैं। नियन्त्रण के क्षेत्र में इस विधि का प्रयोग अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है और इससे लाभ विक्रय सुरक्षा मात्रा आदि का समुचित निर्धारण किया जाता है।

11 स्थायी सीमाओं के निर्धारण द्वारा नियन्त्रण (Control by Determining Standing Limitations)—नियन्त्रण की यह विधि भी काफी महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत अधीनस्थों के अधिकार क्षेत्र की सीमाएं निश्चित कर दी जाती हैं और उनके कार्यकलापों का क्षेत्र भी निश्चित कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ क्रय विभाग के क्रय अधिकारी की क्रय सीमा यदि दो लाख रुपये निश्चित कर दी गई है तो वह अधिकारी इससे अधिक राशि का क्रय करने के लिए अपने उच्चाधिकारियों की अनिवार्य रूप से अनुमति लेगा।

12 नियन्त्रण विभाग द्वारा नियन्त्रण (Control by Control Department)—यदि कोई प्रतिष्ठान सुविशाल और सुविस्तृत है तो नियन्त्रण विभाग की स्थापना भी की जा सकती है जिसमें सभी विभागों की सूचनाएं एकत्रित कर उनका विश्लेषण कर समुचित तथ्यों को उपयुक्त अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ रेल्वे विभाग में नियन्त्रण कक्ष (Control Room) द्वारा रेलगाड़ियों के संचालन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया जाता है।

13 अन्य सामान्य विधियां (Other General Methods)—नियन्त्रण की उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त कुछ और भी सामान्य विधियों का उपयोग किया जा सकता है यथा—अनुपात विश्लेषण द्वारा नियन्त्रण (Control by Ratio Analysis) सी पी एम एवं पर्ट द्वारा नियन्त्रण (Control by C P M and PERT) परिसंचालन अनुसन्धान द्वारा नियन्त्रण (Control by Operation Research) आदि।

नियन्त्रण की सीमाएं
(Limitations of Control)

यद्यपि नियन्त्रण प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है क्योंकि इसमें पूर्व निर्धारित नियोजन एवं लक्ष्यों को आधार मानकर उपक्रम के विभिन्न कार्यों का निष्पादन किया जाता है फिर भी नियन्त्रण प्रक्रिया की अपनी सीमाएं हैं जिन पर प्रबन्ध का नियन्त्रण नहीं होता है। नियन्त्रण की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित हैं—

1 बाह्य परिस्थितियों अथवा तत्त्वों पर नियन्त्रण नहीं हो सकना— नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य उपक्रम के उन तत्त्वों पर लागू किया जाता है जिनका इसमें आन्तरिक सम्बन्ध है। नियन्त्रण एक आन्तरिक व्यवस्था है। लेकिन व्यावहारिकता यह है कि उपक्रम के बाह्य परिस्थितियों अथवा तत्त्वों से भी प्रभावित होना है जिन पर नियन्त्रण लागू नहीं किया जा सकता है जैसे—सरकारी नीति में परिवर्तन (20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने हेतु उठाए गए कदम) वस्तु की माग में उतार-चढ़ाव बाजार में परिवर्तन मुद्रा का अवमूल्यन आयात पर नियन्त्रण और निर्यात प्रोत्साहन आदि।

2 प्रमापों के निर्धारण में कठिनाई— नियन्त्रण के अन्तर्गत प्रमापों (Standards) का निर्धारण किया जाता है। उत्पादन प्रक्रिया गुण आदि ऐसी मदें हैं जिनके भौतिक अथवा मौद्रिक प्रमाप निर्धारित किए जा सकते हैं लेकिन कुछ ऐसी मदें हैं जिनका प्रमापीकरण करना असम्भव है जैसे—प्रबन्ध के प्रति कर्मचारियों और अधीनस्थों की वफादारी इमानदारी मानवीय सम्बन्ध आदि। ये सभी मदें नियन्त्रण के अन्तर्गत नहीं लाई जा सकती हैं।

3 व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Personal Responsibility) का निर्धारण कठिन— उपक्रम में प्रबन्धक कई बार एक कार्य को कई व्यक्तियों द्वारा करवाता है तथा सामूहिक रूप से किए गए कार्य में किसी प्रकार की त्रुटि अथवा विचलन हेतु किसी एक व्यक्ति को उत्तरदायी बनाना कठिन होता है क्योंकि यह पता लगाना आसान नहीं होता है। इन परिस्थितियों में नियन्त्रण निष्प्रभाव (Ineffective) हो जाता है। कई बार व्यक्तिगत उत्तरदायित्व निर्धारण होने पर भी सुधारात्मक उपायों का प्रयोग नहीं हो पाता है क्योंकि यह अधीनस्थ प्रबन्धकों के गुण पर निर्भर करता है कि किस प्रकार वे उत्तरदायित्व को पूरा करते हैं।

4 लागत की समस्या (Problem of cost involved)— नियन्त्रण की प्रक्रिया के अन्तर्गत पूर्व निर्धारित उद्देश्यों और नियोजन के विचलनों को जानने में भी कई कठिनाई उत्पन्न होती है। इसके साथ ही इन सब में व्यय अथवा लागत का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। खराब कच्चे माल अकुशल श्रम और दूषित मशीनों के परिणामस्वरूप उत्पादन की मात्रा और उसकी किस्म में कितना नुकसान हुआ है इसको जानने हेतु कुशल और अनुभवी कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। कई विचलन सामान्य होते हैं लेकिन कुछ विचलन ऐसे होते हैं जिनको सुधारने हेतु कार्य करना पड़ता है। इसमें समय लगता है। इस प्रकार नियन्त्रण प्रक्रिया व्ययपूर्ण है क्योंकि इसमें व्यय एवं समय के रूप में लागत वहन करनी पड़ती है।

13

समन्वय

(Co-ordination)

समन्वय और नियन्त्रण संगठन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। समन्वय के बिना संगठन के विभिन्न कार्य आपस में असंगठित हो जाते हैं और एक की प्राप्तियों का लाभ दूसरे को प्राप्त नहीं हो पाता। मूनी के अनुसार समन्वय संगठन का सर्वप्रथम सिद्धान्त है जिसके द्वारा संगठन के अन्य सिद्धान्तों को क्रियान्वित किया जाता है। समन्वय द्वारा संगठन के आन्तरिक उद्देश्यों को स्पष्ट किया जाता है। बड़े स्तर के संगठनों के विकास से समन्वय की प्रक्रिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गई है। समन्वय के आधार पर संगठन के विभिन्न सदस्यों के बीच यदि एकरूपता और सहायता स्थापित न की जाए तो वे अलग अलग दिशाओं में चलने लगेंगे जिसके परिणाम-स्वरूप संघर्ष पैदा हो जाएगा। समन्वय के अभाव में पैदा होने वाला संघर्ष मुख्यतः तीन कारणों से हो सकता है—

1. संगठन की इकाइयों का कर्मचारियों के कार्यों में दोहराव (Duplication) पैदा हो जाने से क्योंकि वे एक दूसरे की प्रक्रियाओं को नहीं समझते हैं। एक इकाई को यह पता नहीं रहता कि दूसरी इकाई द्वारा क्या कार्य किए जा रहे हैं, इसलिए वह स्वयं भी उन्हीं कार्यों को करने लग जाती है जिनको अन्य इकाई कर रही है इससे दोनों के निर्णयों में संघर्ष भी उत्पन्न हो सकता है।

2. किसी कार्य के लिए उत्तरदायी व्यक्ति द्वारा अपने कार्य विशेष को इतना अधिक महत्त्व देने के कारण जिसमें वह दूसरों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखे बिना ही उनके क्षेत्र में हस्तक्षेप करने लग जाए। ऐसी प्रकृति के व्यक्ति यह भूल जाते हैं कि उनका कार्य संगठन के कार्यों का ही एक भाग है और इसी रूप में उसका महत्त्व है।

3. संगठन के अध्यक्ष का शक्ति के लिए लालची बन जाने से जिसके वशीभूत होकर वे अनेक ऐसे कार्य करने लगते हैं जो वास्तव में दूसरों के कार्य क्षेत्र में आने चाहिए।

समन्वय को अपने आप में एक लक्ष्य नहीं कहा जा सकता। यह एक साधन है जिसके द्वारा संगठन के कार्यों में एकरूपता स्थापित कर दी जाती है। प्रो. न्यूमन

(Newman) के अनुसार समन्वय को एक पृथक क्रिया के रूप में नहीं लादना चाहिए क्योंकि वह प्रशासन के सभी पहलुओं का एक भाग है। नियोजन संगठन कार्यपालिका का विकास निर्देशन और नियन्त्रण इन सभी को समन्वय के लिए कुछ योगदान करना चाहिए।[1]

समन्वय का अर्थ
(The Meaning of Co-ordination)

समन्वय के निषेधात्मक तथा विधेयात्मक दोनों ही पहलू हैं। अपने निषेधात्मक रूप में समन्वय की क्रिया संगठन में कार्यों के दोहराव को रोकती है। अपने विधेयात्मक रूप में यह संगठन के कर्मचारियों में मिल जुल कर सहयोगपूर्वक कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास करती है। हेनरी फयोल (Henry Fayol) ने समन्वय को प्रबन्धक का एक कार्य माना है। उनके मतानुसार समन्वय करने का अर्थ है एक संगठन की क्रियाओं में एकरूपता लाना ताकि उसका कार्य सरल हो जाए और वह सफलता प्राप्त कर सके। एक सुसमन्वित उद्यम की पहचान कई विशेषताओं के आधार पर की जा सकती है। प्रथम जिस संगठन में अच्छा समन्वय किया जाता है उसका प्रत्येक विभाग दूसरों के साथ सहयोगपूर्वक कार्य करता है। दूसरे प्रत्येक विभाग सम्भाग और उपसम्भाग को अच्छी प्रकार सूचित होना चाहिए कि उसे संगठन के कार्यों में कौन-सा भाग अदा करना है। तीसरे विभिन्न विभागों और सम्भागों का काम निरन्तर परिस्थितियों के अनुसार होना चाहिए। इन तीनों विशेषताओं के होने पर यह कहा जा सकता है कि एक संगठन विशेष में उचित समन्वय स्थापित हो चुका है। जिस संगठन में समन्वय नहीं रहता उसमें मुख्य रूप से ये बातें देखने में आती हैं—प्रथम प्रत्येक विभाग दूसरे के बारे में न कुछ जानता है और न कुछ जानना चाहता है। दूसरे एक ही विभाग के विभिन्न कार्यालयों के बीच इतना अन्तर बना रहता है जितना विभिन्न विभागों के बीच होता है। तीसरे, कोई भी सामान्य हित की दृष्टि से नहीं सोचता। हेनरी फयोल (Henry Fayol) के शब्दों में कर्मचारियों का यह दृष्टिकोण एक उद्यम के लिए खतरनाक होता है। यह किसी पूर्व निर्धारित अभिप्राय का परिणाम नहीं है बल्कि समन्वय न रहने या अपर्याप्त रहने के कारण है।

समन्वय के सम्बन्ध में प्रशासन एवं प्रबन्ध के कुछ विचारकों ने अलग अलग दृष्टिकोण प्रकट किए हैं। प्रो. न्यूमन (Newman) के अनुसार प्रशासन में समन्वय व्यक्तियों के समूह के कार्यों का एकीकरण तथा सकालवर्तिन बनाता है। उनके शब्दों में एक समन्वित कार्य वह है जिसमें कर्मचारियों की क्रियाएँ एक सामान्य

1 Newman op cit p 390
Henry Fayol General and Industrial Management 1949 p 104

लक्ष्य की ओर सामंजस्यपूर्ण तथा एकीकृत होती हैं।[1] राल्फ डेविस के अनुसार समन्वय नियन्त्रण का एक मुख्य पहलू (Phase of Control) है।[2] एलिन (L Allen) के अनुसार समन्वय प्रबन्ध की क्रियाओं में से एक है तथा नियोजन संगठन नियन्त्रण आदि की भांति उसका एक भाग है। यदि एक संगठन के लक्ष्य नीतियाँ प्रक्रियाएं और संगठन सुव्यवस्थित हैं तो उसमें समन्वय अपने आप ही स्थापित हो जाएगा।[3] आर्डवे टीड (Ordway Tead) ने समन्वय को एक पृथक् क्रिया माना है। यद्यपि उनका विश्वास है कि उनकी मान्यता सर्वमान्य नहीं हो सकती। टीड का विचार है कि समन्वय अनिवार्यत रचनात्मक रूप में प्रशासन ही है।[4] यूमन के विचारकों की भांति हेमेन ने भी समन्वय को कोई पृथक क्रिया नहीं माना है। उसके कथनानुसार यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबन्धक सामान्य लक्ष्यों की खोज में एक व्यवस्थित समूह के कार्यों और क्रियाओं की एकता प्राप्त करता है।[5] हेमन का मत है कि इस प्रक्रिया को प्राप्त करने के लिए प्रबन्धक पांच प्रकार के प्रबन्धात्मक कार्य करता है ये हैं—नियोजन (Planning) संगठन (Organizing) स्टाफ (Staffing) निर्देशन (Directing) तथा नियन्त्रण (Controlling)।

इस प्रकार समन्वय द्वारा संगठन की क्रियाओं में वही कार्य किया जाता है जो फूलों के हार में एक धागे द्वारा किया जाता है। धागा न होने पर हार के फूलों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रहता और इस प्रकार हार भी नहीं बन पाता। यही कारण है कि संगठन के प्रत्येक प्रबन्धक का यह मुख्य उद्देश्य माना जाता है कि समन्वय स्थापित किया जाए। चेस्टर बर्नार्ड (Chester Bernard) ने तो यहाँ तक कहा है कि अधिकांश परिस्थितियों में समन्वय का गुण संगठन के अस्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है।[6] चार्ल्स वर्थ (Charles Worth) के अनुसार उद्यम के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समन्वय कुछ भागों का सामंजस्यपूर्ण एकीकरण है।[7] टेरी (Terry) ने लिखा है कि समन्वय विभिन्न भागों का एक दूसरे के साथ सामंजस्य है तथा उसकी गतिविधि एवं व्यवहार का समय के साथ ऐसा सामंजस्य है जिसमें प्रत्येक हिस्सा समग्र के उत्पादन के लिए अपना अधिक से अधिक योगदान कर सके। कुछ ऐसा ही मत सेक्लर हडसन (Seckler Hudson) द्वारा

1 N wm n Adm trat A t 19 1 p 190
2 R lph C D Th F d m t l f T p M g m nt 1951 p 19
3 L A All n M g m t a d O g zat p 43
4 O dw y T d Adm t t o It P p d P fo m nc 195 p 40
5 H m nn P f o l M g m t 1966 p 27
6 Ch t I B d Th F t o of th E c t p 256
7 Ch l s W rth G m tal Adm t t 195J p 242 52

प्रकट किया गया है। उनका कहना है कि समन्वय कार्य के विभिन्न भागों को आपस में सम्बन्धित करने का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

समन्वय और सहयोग

(Co ordination and Co-operation)

समन्वय और सहयोग व्यावहारिक दृष्टि से बहुत कुछ समानार्थक से प्रतीत होते हैं। दोनों में एक संगठन के कार्यों और उसके विभिन्न सदस्यों का सामूहिक प्रयत्न सम्मिलित होता है। फिर भी इन दोनों शब्दों के बीच पर्याप्त अन्तर है। हेमन (Haimann) के अनुसार सहयोग केवल व्यक्तियों की एक दूसरे की सहायता करने की इच्छा प्रकट करता है। यह लोगों के समूह के स्वेच्छापूर्ण दृष्टिकोण का परिणाम है। इसके विपरीत समन्वय में कई बातें आती हैं। सम्मिलित भाग लेने वालों की इच्छा एवं रुचि से कुछ अधिक की आवश्यकता होती है।[1] सहयोग और समन्वय के अन्तर को अनेक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। एक उदाहरण टेरी (Terry) द्वारा प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने एक ऐसे लड़के का उदाहरण दिया है जो एक दिन सवेरे ही रेलगाड़ी पकड़ना चाहता था। इसके लिए सोने से पूर्व उसने अपनी घड़ी को आधा घण्टे आगे कर दिया, ताकि वह जल्दी उठ सके। लड़के का पिता यह जानता था कि उसका लड़का सवेर रेलगाड़ी पकड़ेगा। उसने सोचा कि लड़के को सवेरे उठने और कपड़े पहनने में समय लगेगा इसलिए उसने घड़ी को आधा घण्टा और आगे कर दिया। इसके बाद लड़के की मां उसके शयन कक्ष में गई और यह सोचकर कि सुबह लड़के को अधिक जल्दबाजी न करनी पड़े उसने घड़ी को आधा घण्टा और आगे कर दिया। इस सबके परिणामस्वरूप लड़के को डेढ़ घण्टे पहले उठना पड़ा। टेरी के शब्दों में यहां माता पिता तथा बेटे के कार्यों में सहयोग था किन्तु समन्वय नहीं था।[2] इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण बरात की एक घटना में दिया जा सकता है। सभी बराती प्रस्थान के लिए तैयार खड़े थे। एक बस की आवश्यकता थी ताकि वे गन्तव्य स्थान पर पहुंच सकें। बरात का प्रत्येक व्यक्ति उद्देश्य को जानता था तथा बस लाने के लिए उत्सुक था। अतः बिना बताए हुए पांच व्यक्ति बस लाने के लिए अलग अलग दिशाओं में चल दिए और कुछ देर बाद बरात के सामने पांच बसें आकर खड़ी हो गई। इस घटना में भी बस लाने वाले व्यक्तियों में सहयोग की भावना थी किन्तु उनके कार्यों में समन्वय नहीं था।

समन्वय और सहयोग दोनों पूरक हैं। हम एक ऐसे व्यक्ति समूह की कल्पना कर सकते हैं जो एक बहुत बड़े लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है। इन लोगों की

1 Haimann op cit p 28
2 Terry op cit p 34

सख्या पर्याप्त है उनम एक दूसरे क साथ सहयोग करन की इच्छा भी है और लक्ष्य की आर अग्रसर होन के लिए सब कुछ करने के लिए तत्परता भी। यद्यपि ये सभी व्यक्ति अपन सामान्य लक्ष्य के प्रति जागरूक हैं तथापि वे कोई महत्त्वपूर्ण काय नही कर पाएँगे जब तक उन्ही म से कोई एक व्यक्ति उनके कार्यों को सही स्थान एव सही समय पर समायोजित करन तथा वे लक्ष्या को प्राप्त करने के लिए उनको नेतृत्व तथा आशाए प्रदान न करें। समन्वय एव सहयोग के बीच सम्बन्ध को हेमेन (Haimann) न इन सुन्दर शब्दा म व्यक्त किया है— यद्यपि सहयोग हमेशा सन्तायतापूर्ण रहता है और इसका अभाव समन्वय की प्रत्येक सम्भावना रोक सकता है पर इसका अस्तित्व मात्र ही समन्वय का होना साबित नहीं करता। महत्त्व की दृष्टि से समन्वय सहयोग की अपेक्षा अधिक उच्च है।[1] सहयोग के साथ जब जागरूकता चेतना एव ज्ञान रहता है तो वहा क्रियाओं के बीच समन्वय स्थापित हो जाता है।

समन्वय का महत्त्व
(Importance of Co ordination)
अथवा
समन्वय क्यो किया जाए ?
(Why to have the Co ordination ?)

समन्वय प्रत्येक सगठन की एक महती आवश्यकता है। सगठन का अस्तित्व उसकी सफलता साथकता एव प्रभावशीलता समन्वय क अभाव म खतरे म पड जाते है। सगठन के विभिन्न लोगों क बीच समन्वय एकरूपता स्थापित करता है। किसी भी सगठन म समन्वय की महती उपयोगिता निम्नलिखित कारणों स है—

1 **सघष और झगडों को दूर करना**—किसी भी सगठन म विभिन्न कमचारियो क बीच सघष उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार के सघष सगठन के सदस्यो की स्वाथ भावना उनके व्यक्तिगत विचारो एव उनके विशेष प्रशिक्षण पर आधारित हो सकते है। अधिकारियों म अहकार की भावना और शक्ति का प्रम भी उनक बीच प्राय झगडे उत्पन्न करने का कारण बन जाता है। जब तक किसी सगठन के इन अलग-अलग योग्यताओं, रुचियों एव प्राथमिकताओं वाले लोगों के बीच समन्वय स्थापित नही किया जाता तब तक सगठन अपन लक्ष्य की प्राप्ति से बहुत दूर रहेगा।

समन्वय क महत्त्व का उदाहरण हम किसी भी भवन निर्माण की प्रक्रिया म देख सकते हैं। उदाहरण क लिए जयपुर मे बनाया गया सहकारी बाजार का भवन उसका नक्शा बनाने वाले इजीनियर धन प्रदान करन वाले अधिकारियों आदि के

1 *H mann op* c*i* p 8

समन्वित प्रयत्न का परिणाम है। यदि भवन निर्माण से पूर्व नक्शा बनाने वाले द्वारा इस प्रकार का प्रारूप तैयार किया जाता जिसमें आवश्यक धन का प्रबन्ध तथा धन प्रदान करने वाले की सीमा का ध्यान न रखा जाता तो वह प्रारूप निरर्थक समझा जाता। इसी प्रकार यदि नक्शे बनाने वाले की राय का इन्जीनियरों द्वारा यह कह कर विरोध किया जाए कि भवन की मजबूती के लिए यह नक्शा उपयोगी नहीं है तो कार्य आगे नहीं बढ़ेगा। भवन निर्माण का कार्य तभी आगे बढ़ सकता है जब इन तीनों के बीच समन्वय स्थापित किया जाए।

2. सहयोग की भावना—सहयोग समन्वय की प्रक्रिया का अग्रसर करता है। जब कार्यों के बीच समन्वय स्थापित नहीं किया जाता तो सम्बन्धित अधिकारियों में सहयोगी भावना का विकास नहीं हो पाता। दो बैलों वाली बैलगाड़ी के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए दोनों बैलों का सहयोगपूर्ण सम्बन्ध अत्यन्त आवश्यक है। पर यह तब तक स्थापित नहीं हो सकता जब तक समन्वयकर्त्ता के रूप में गाड़ीवान उनकी रास अपने हाथ में न ले ले। कई बार मार्ग में चलते चलते दो में से एक बैल अड़ कर खड़ा हो जाता है तथा आगे बढ़ने में दूसरे का सहयोग नहीं करता। सहयोग का अभाव तब माना जाएगा जब कोई भी एक बैल दूसरे की सामर्थ्य का देखे बिना बढ़ता ता भागे। इन दोनों ही स्थितियों में सहयोग का अभाव गाड़ी की गति पर विपरीत प्रभाव डालेगा। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि गाड़ीवान पुचकार कर या मारकर दोनों के बीच समन्वय स्थापित करे। यही उदाहरण किसी भी संगठन के दो महत्त्वपूर्ण अधिकारियों पर लागू किया जा सकता है। यदि उनमें सहयोग की भावना नहीं है तो संगठन की गति रुक जाएगी और वह लक्ष्य प्राप्ति से हट जाएगा। यहाँ समन्वयकर्त्ता का यह कर्त्तव्य है कि वह इन अधिकारियों के बीच समन्वय स्थापित करे।

3. दोहराव को रोकना—समन्वय के अभाव में जब एक संगठन के विभिन्न अधिकारियों के बीच संघर्ष विवाद और असन्तोष पैदा होता है तो इसका कारण प्राय अधिकारियों का स्वार्थ अहंकार एवं मनमुटाव होता है। संगठन के ये दोष इन अधिकारियों द्वारा जानबूझ कर उत्पन्न किए जाते हैं। इनका पूरा उत्तरदायित्व उन्हीं पर होता है। लेकिन समन्वय के अभाव में संगठन कुछ ऐसे दोषों का शिकार भी हो जाता है जो उसके सदस्यों के जानबूझ कर किए गए प्रयासों के परिणाम नहीं होते। दोहराव (Duplication) एक ऐसा ही दोष है। जब संगठन के विभिन्न सदस्यों को यह ज्ञान नहीं रहता कि दूसरे क्या कर रहे हैं तो वे स्वयं ऐसे कार्य करने लग जाते हैं जो दूसरे अधिकारी पहले से ही सम्पन्न कर रहे हैं या कर चुके हैं। दोहराव का दोष प्राय तब पैदा होता है जब संगठन के सदस्यों के बीच सहयोग तो रहता है किन्तु समन्वय नहीं होता। परि एक अध्यापक यह चाहता था कि कक्षा के दस विद्यार्थियों से दस प्रश्न का उत्तर लिखाया जाए। उसने प्रश्न देने के बाद

यह निश्चित नहीं किया कि कौन किसका उत्तर लिखेगा। परिणामस्वरूप एक ही प्रश्न का उत्तर सभी छात्रों ने लिख कर दिखा दिया और बाकी नौ प्रश्न बिना उत्तर लिखे ही रह गए। सभी प्रश्नों का उत्तर लिखाने के लिए यह जरूरी था कि कोई समन्वयकर्ता के रूप में यह निश्चित करता कि कौन किस प्रश्न का उत्तर दे।

4. साधनों के दुरुपयोग एवं एकांगिता के कारण—जब संगठन के कार्यों में समन्वय स्थापित नहीं किया जाता तो साधनों का दुरुपयोग होता है और वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते। समन्वय के अभाव में अलग अलग विषयों को अलग अलग देखा जाता है उनके समग्र रूप की अवहेलना हो जाती है। संगठन के अधिकारी संगठन के लक्ष्य का पूरा चित्र अपने मस्तिष्क में नहीं रख पाते। एकांगी दृष्टि से किसी भी विषय का अध्ययन करने पर जो निर्णय लिए जाते हैं वे वास्तविकता से दूर होते हैं और इसलिए प्रायः उपयोगी भी नहीं होते अथवा तुलनात्मक रूप से कम उपयोगी होते हैं।

5. क्रमहीनता के कारण—संगठन की क्रियाओं में एक क्रम होता है। कुछ क्रियाओं का तभी सम्पन्न करना उपयोगी होता है जब उससे पूर्व की कुछ क्रियाएं पूरी कर ली जाएं। प्राथमिक क्रियाओं को सम्पन्न किए बिना यदि आगे की क्रियाओं को पहले ही सम्पन्न कर लिया जाए तो वे अनुपयोगी बन जाती हैं। उदाहरण के लिए एक नया पावर हाउस स्थापित करते समय तीन चीजों की आवश्यकता होती है—उसका भवन, यन्त्र एवं कर्मचारी वर्ग। सबसे पहले एक भवन का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें पावर हाउस की मशीनें रखी जा सकें और उसके पश्चात् उसके कर्मचारी काम कर सकें। उसके बाद मशीनों की आवश्यकता होती है और उन कर्मचारियों की जो इन मशीनों को चला सकें। यदि क्रियाओं के इस क्रम में हेरफेर कर दिया गया तो साधनों का दुरुपयोग होगा। संगठन के कार्यों में क्रमबद्धता लाने के लिए समन्वय बहुत आवश्यक है।

समन्वय की प्रकृति
(Nature of Co ordination)

समन्वय सम्बन्ध में जो पूर्व वर्णन किया गया है उससे इसकी प्रकृति पर प्रकाश पड़ता है। मुख्य बिन्दुओं में यह इस प्रकार है—

1. समन्वय एक सतत् प्रक्रिया है। कोई भी प्रतिष्ठान या संगठन इस प्रक्रिया के अभाव में चल नहीं सकता।

2. समन्वय की स्थापना करने का प्राथमिक कार्य प्रबन्धक का रहा है। यह शीर्ष प्रबन्ध का मूलभूत उत्तरदायित्व है। संगठन के नेतृत्व सम्बन्धी कार्य का अंग है। समन्वय के माध्यम से ही संगठन या उपक्रम के विभिन्न कार्यों में एकता लाई जाती है और उच्च प्रबन्ध द्वारा ही यह कार्य किया जा सकता है। समन्वय और सहयोगिता एक नहीं है। किसी संगठन के कर्मचारी परस्पर कितना ही

सहकारिता रखें किन्तु व स्वयं अपने में अथवा अपनी क्रियाओं में समन्वय नहीं ला सकते इसके लिए तो उच्च प्रबंध (Top Management) की आवश्यकता लगी ही।

(3) समन्वय स्थापित करने का सर्वोपरि उद्देश्य संस्था के उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि उपक्रम के सभी व्यक्ति मिलकर प्रयास करें और उनके प्रयासों के मध्य तनाव या टकराव न होकर समन्वय हो।

(4) समन्वय प्रयत्नों की एकता है अर्थात् प्रबन्धक संस्था में काम करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के अलग अलग प्रयत्नों को इस प्रकार व्यवस्थित करते हैं कि वे सब मिलकर एक और एक मस्तिष्क के रूप में कार्य करें।

(5) जैसा कि न्यूमैन एवं समर ने लिखा है कि—समन्वय प्रबन्ध की कोई पृथक क्रिया नहीं है, वरन् प्रबन्ध स्तर का ही एक अंग है।

समन्वय की तकनीक अथवा विधियाँ
(Techniques or Methods of Co-ordination)

समन्वय किस प्रकार किया जाए अथवा प्रबन्ध के कार्यों में समन्वय की स्थापना कैसे की जाए—इसके अनेक साधन हैं—

(1) नियोजन द्वारा—नियोजन समन्वय का एक आदर्श तरीका है जिसमें जन धन तथा सामग्री के सभी प्राप्य साधनों का अधिकतम उपयोग होना है। इसका उद्देश्य यह है कि नियोजित लक्ष्यों और उद्देश्यों को एक सीमित अवधि के भीतर प्राप्त किया जाए। प्रत्येक नियोजन का लक्ष्य उपक्रम के लक्ष्यों क्रियाओं और प्रयासों में समन्वय लाना होता है। नियोजन को समस्त व्यावसायिक क्रियाओं का उद्गम बिन्दु कहा जा सकता है।

(2) पर्यवेक्षण द्वारा—समन्वय स्थापित करने का सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण साधन पर्यवेक्षण माना जाता है। अपने अधिकारी के प्रति पर्यवेक्षक का मुख्य कर्त्तव्य यह देखना होता है कि उनके अधीनस्थ अपने बीच तथा अन्य समूहों के साथ समुचित समन्वयपूर्ण प्रयास करते रहें हैं अथवा नहीं। उनका काम होता है कि वे निर्देश देकर समन्वय के सिद्धान्तों को बल देकर और समन्वित प्रयासों को प्रोत्साहन देकर संगठन में समन्वय क्रियाओं को प्रोत्साहित करें।

3 अधिकार-सत्ता द्वारा ऊपर से नीचे आने वाले सन्देश सूचना के साथ अधिकार सत्ता भी रखते हैं। अधिकार-सत्ता अथवा अधिकार शक्ति के समर्थन के द्वारा असहयोग प्रदान करने वालों को अथवा नीति के विरुद्ध कार्य करने वालों के खिलाफ अनुशासन आदि की कार्यवाही के द्वारा सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। एक तरफ ऊपर से आने वाले सूचना संवार विभिन्न व्यक्तियों के कार्यों में सम्बद्धता लाने का कार्य करते हैं

दूसरी तरफ ये ही सूचना सचार दण्ड अथवा प्रलोभन के द्वारा सबके कार्यों म लक्ष्य के प्रति सामजस्य लाने का काय करते हैं। अधिकार शक्ति आन्तरिक रूप से कमचारियो के मनोबल को सशक्त करती है कमचारियो को सगठन के लक्ष्य के प्रति वफादार बनाती है तथा उन्हे अपने कार्यों से लगाव पदा करने का महत्वपूर्ण काय करती है—इस काय के द्वारा कमच रियो म स्वयमेव सामजस्य की प्रवृत्ति विकसित होती है। इसके अतिरिक्त असहयोग के आन्तरिक कारणो को दूर करने का महत्वपूर्ण काय करती है। प्राय आन्तरिक रूप से असहयोग के कारणो मे कमचारियो को उनके कार्यों क बदन सगठन से प्राप्त होन वाल लाभ क अनुपात मे असन्तुलन प्रमुखता रखता है—उनके काय और सहयोग क बदले उन्ह कितना वेतन मिलता है उनकी पदोन्नति क द्वारा ऊपर बढ सकने के किस प्रकार क अवसर हैं पदावनति आदि म कितनी निष्पक्षता का व्यवहार होता है आदि प्रश्न कमचारियो के कार्यों म सहयोग प्रदान करने या न करने के प्रमुख कारण होते हैं। अधिकार शक्ति क उपयोग के द्वारा एसी व्यवस्था की परिकल्पना की जाती है जिसस कमचारियो का अपने वातावरण म विश्वास तथा सन्तोष हो सके। सामजस्य के लिए अधिकार का प्रयोग किस रूप म होता है यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

4 सगठनात्मक तरीकों द्वारा—समन्वय की प्रविधियां के सगठनात्मक तरीके होते हैं। वे सम्मेलन समितियां सगोष्ठियां अन्तर्विभागीय समितियो कमचारी वग की इकाइयां समन्वय स्थापित करने वाले अधिकारियो आदि के रूप म हो सकते हैं। प्रशासन के क्षेत्र म समन्वय क इन सगठनात्मक तरीकों पर डा अवस्थी एव महेश्वरी ने जो प्रकाश डाला है वह न्यूनाधिक हेर-फेर के साथ किसी भी व्यावसायिक सगठन या प्रब ध के क्षेत्र म भी लागू होता है। लेखक द्वय ने लिखा है—

किसी भी सगठन म पद परम्परा (Hierar hy) एक समन्वयकारी अभिकरण है क्योंकि इसका मुख्य प्रयोजन अभिकरण म मतक्य उत्पन्न करना है। सत्य तो यह है कि सगठन स्वय ही एक समन्वय का साधन है। भारत मे समन्वयकारी अनेक सगठन हैं। केन्द्रीय सरकार स्वय ही सर्वोपरि समन्वयकारी अभिकरण है। केन्द्रीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल मन्त्रिमण्डलीय समितियां योजना आयोग क्षेत्रीय परिषदें राष्ट्रीय विकास परिषद तथा प्रधान मन्त्री सभी तो उसी प्रक्रिया में सलग्न हैं। जिला स्तर पर जिलाधीश शीर्ष स्तरीय समन्वय करता है। प्रजातान्त्रीय विकेन्द्रीयकरण के लागू होने पर उसकी प्रवृत्ति के साथ ही यह काय निश्चित रूप से बल पकड़ता ही जाएगा। फिर इसी तरह म सहायक मण्डल तथा आयोग भी हैं जसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अन्तर विश्वविद्यालय मण्डल तथा भारतीय ऐतिहासिक अभिलेख आयोग। समन्वय हेतु सम्मेलन का भी स्वतन्त्रता के साथ उपयोग किया जाता है। वे सम्मेलन योजनाओं के शीघ्र निपटाने तथा कठिनाइयों के व्यावहारिक समाधान के लिए केन्द्र तथा राज्यों के बीच समन्वय का

प्रयत्न करते हैं। वे वाद विवाद के प्रकरण में विचारों के आदान प्रदान तथा निश्चित नीति के समन्वय करने के लिए वाद विवाद वाले विवाद-सभाओं के रूप में भी काय करते हैं। वे सामान्य कार्यक्रमों के विकास में मदद देते हैं तथा इनके द्वारा ऐसे कार्यक्रमों के परिपालन एव उनकी प्रगति की समीक्षा सम्भव होती है। ऐसे सम्मेलन राजनीतिक सरकारी तथा व्यावसायिक स्तरों पर आयोजित किए जाते हैं। राज्यपालों मुख्य मन्त्रियों तथा विभिन्न विभागों के मन्त्रियों के सम्मेलन राजनीतिक स्तर पर समन्वयात्मक सम्मेलनों के ही उदाहरण हैं। सरकारी स्तर के सम्मेलनों के अन्तर्गत सरकारी सचिवों के सम्मेलन तथा विभागाध्यक्षों के सम्मेलन आते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट कार्यों से सम्बन्धित सम्मेलन भी हैं जैसे उपकुलपतियों के सम्मेलन तथा सिंचाई और शक्ति विमर्श संगोष्ठी (Irrigation and Power Seminar)। इस संगोष्ठी में विभिन्न राज्यों के मुख्य अभियन्ता तथा नदी घाटी परियोजनाओं के प्रधान सम्मिलित होते हैं।

यदि व्यावसायिक प्रबन्ध के क्षेत्र में लें तो सामूहिक बैठकें (Group Meetings) समन्वय स्थापित करने का श्रेष्ठ साधन हैं। इनके माध्यम से एक योग्य अधिकारी उपक्रम के विभिन्न विभागों उप विभागों और कर्मचारियों के कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। किसी भी प्रस्तावित नीति अथवा कदम का प्रभाव क्या होगा इसके लिए उपक्रम के विभिन्न विभागाध्यक्षों की बैठकें बुलाई जाती हैं विभागाध्यक्ष भी अपने अपने विभागों की बैठकें आयोजित करते हैं और इन सामूहिक बैठकों में स्वतन्त्र रूप से विचार विमर्श करके निर्णय लिए जाते हैं। कभी-कभी समान प्रकृति के विभिन्न उपक्रमों के शीर्ष अधिकारियों के सम्मेलन होते हैं जिनमें समन्वय-तकनीक पर विचार करके अपने अपने उपक्रमों में समुचित कदम उठाए जाते हैं। संगठन स्वयं स्थापित करने का एक उत्तम साधन होता है क्योंकि संगठन में समन्वय के सभी तत्त्व होते हैं। एक स्वस्थ संगठन विभिन्न विभागों तथा अधिकारियों तथा कर्मचारियों की अधिकारी रेखाओं की सीमाओं को निर्धारित करता है ताकि तनाव या टकराव के स्थान पर तालमेल बनाए रखा जा सके।

5 **व्यक्तिगत नेतृत्व द्वारा**—जैसा कि ब्रेच ने लिखा है कि समन्वय एक मानवीय क्रिया है और प्रबन्धक अपने व्यक्तिगत आचरण तथा प्रवृत्तियों द्वारा इसकी स्थापना करता है। यदि व्यक्तिगत नेतृत्व निष्पक्ष और स्वस्थ है तो उपक्रम के कर्मचारियों के कार्यों में प्रभावी समन्वय की स्थापना की जा सकती है क्योंकि कर्मचारी प्रबन्धक के विश्वास में रहते हैं और उसके प्रति पूरा सम्मान रखते हैं।

6 **व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा**—यह समन्वय स्थापित करने का सबसे श्रेष्ठ साधन माना जाता है। व्यक्तिगत सम्पर्क प्रत्येक कर्मचारी को अपने ढंग से प्रभावित करता है और इस प्रकार का सामूहिक प्रभाव संगठन में श्रेष्ठ समन्वय की स्थापना करता है।

7 सम्पर्क-व्यक्तियों द्वारा—कभी-कभी आवश्यकता होने पर सम्पर्क व्यक्तियों (Liason Men) भी उपक्रम की क्रियाओं में समन्वय लाने का प्रयास करते हैं। किन्तु समन्वय की यह तकनीक संगठन की शिथिलता की द्योतक है। इसका उपयोग नियमित रूप से नहीं किया जा सकता है नितान्त आवश्यकता पड़ने पर ही अस्थाई रूप में किया जाता है।

8 प्रमापीकरण द्वारा—अवस्थी एवं महेश्वरी के अनुसार प्रक्रियाओं तथा रीतियों का प्रमापीकरण समन्वय का एक श्रेष्ठ तरीका है। उन समस्त प्रक्रियाओं को जिनका सम्बन्ध बहुत से मनुष्यों से होता है और जो पुनरावृत्ति स्वभाव की होती हैं सामान्यत प्रमापीकृत कर लिया जाता है। कार्य प्रणालियों के प्रमापीकरण के अच्छे उदाहरण प्रपत्र (Forms) हैं। नियमावली विनियम तथा नियम एसे प्रमापीकरण के दो अन्य उदाहरण हैं।

9 बजट द्वारा—उच्चस्तरीय समन्वय लाने में बजट बनाने की प्रक्रिया विशेष सहायक है। अमरिका में बजट व्यवस्था के संगठित होने के पहले विभागों में होड़ की प्रवृत्ति अधिक थी किन्तु संगठित रूप से बजट की प्रक्रिया होड और दोहराव को दूर करती है। बजट के अन्तिम रूप में आने के पहले यह प्रयत्न किया जाता है कि विभिन्न विभागों के अनुदानों में समन्वय है या नहीं इसे देखा जाए। इसी प्रकार से किसी नई सेवा योजना के लिए अनुदान की सिफारिश में यह विशेष रूप से देखा जाता है कि यह कहीं किसी विभाग के ही कार्यों की प्रतिलिपि तो नहीं बन रही है।

10 सामूहिक निर्णय द्वारा—संगठन के विभिन्न सम्बन्धित व्यक्ति मिलकर अपने कार्यों के सम्बन्ध में अपनी समस्याओं के निदान के सम्बन्ध में सामूहिक निर्णय ले लेते हैं और इस प्रकार समन्वय स्थापित होता है। समूह द्वारा लिया गया निर्णय सरलता से कार्यान्वित किया जा सकता है।

11 लिखित सन्देशवाहन द्वारा—आधुनिक युग में व्यावसायिक उपक्रमों में लिखित सन्देशवाहन (पत्र तार बुलेटिन आदि) भी समन्वय स्थापित करने का महत्वपूर्ण साधन हैं। इसका उपयोग प्राय व्यक्तिगत सम्पर्क के पूरक साधन के रूप में होता है।

12 स्वत समन्वय द्वारा—व्यावसायिक संगठनों में सम्बन्धित विभागाध्यक्ष और अधिकारी अपने अपने क्षेत्रों में स्वयं समन्वय बनाए रखने का प्रयत्न करते रहते हैं। पर चूंकि केवल इससे उपक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति होना कठिन है अत यह भी देखते रहना चाहिए कि अन्य विभागाध्यक्षों या अधिकारियों की क्रियाओं पर उनके कार्य का विपरीत या बुरा प्रभाव न पड़े। ब्राऊन ने इसे स्वत समन्वय (Self Co-ordination) की संज्ञा दी है और समन्वय बनाए रखने की यह एक आधुनिक तकनीक है।

13 समन्वय के विभिन्न अन्य उल्लेखनीय साधन—डा अवस्थी एवं मन्हेश्वरी ने प्रशासन के क्षेत्र में समन्वय के कुछ अन्य साधनों की चर्चा की है जो प्रबन्ध के क्षेत्र में भी अथवा किसी उपक्रम में भी सरलता से लागू होते हैं

(i) केन्द्रीकृत गृह पालन (Centralised House keeping) समन्वय का एक तरीका है। प्रशासन में गृह पालन समस्या के अन्तर्गत प्राय अन्याय भण्डारागार भवनों की सफाई तथा मरम्मत छपाई तथा प्रतिलिपिकरण के उपकरणों का नियन्त्रण केन्द्रीय डाक परिवहन तथा खाद्य और टेलीफोन सेवा आते हैं। प्रथम हूवर आयोग ने 1949 में सिफारिश की कि एक सामान्य सेवाओं के कार्यालय की स्थापना की जानी चाहिए जिसे इस प्रकार की गृह पालन सेवाओं का कार्यभार सौंप दिया जाए। यह सिफारिश स्वीकार कर ली गई और उसी वर्ष संयुक्त राज्य अमरिका में सामान्य सेवा प्रशासन (General Services Administration) की स्थापना कर दी गई थी। भारत में केन्द्रीकृत गृह पालन के बहुत से अभिकरण हैं जैसे महालेखा परीक्षक के अधीन लेखाकन तथा लेखा परीक्षा, लोक निर्माण विभाग के अन्तर्गत भवनों का निर्माण मरम्मत तथा उनका जीर्णोद्धार प्रदाय महासंचालकालय के अधीन प्रदाय इत्यादि लोक-सेवाओं के चयन तथा भर्ती के लिए संघीय लोक सेवा आयोग इसी उद्देश्य से कार्य करता है।

(ii) वित्त मन्त्रालय (विभाग) एक बड़ा समन्वयकर्त्ता है। सम्बन्धित सरकार के कार्यक्रमों नीतियों तथा साधनों का समन्वय करने के बारे में वार्षिक बजट एक निबन्ध मात्र ही है। वित्त मन्त्रालय ही ऐसा तत्व है जो कार्य की एक सवमान्य योजना अर्थात् बजट बनाने के लिए विभिन्न मन्त्रालयों के कार्यक्रमों मांगों तथा दावों का समाधान तथा समन्वय करता है। वित्त मन्त्रालय का कार्य बजट स्वीकृत हो जाने तथा मन्त्रालयों में निधियों के बटवारे के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता है बल्कि कार्य करने वाले विभाग आदि। यदि किसी कार्यक्रम को कार्य रूप में परिणत करना चाहते हैं तो उसके लिए वित्त मन्त्रालय का अनुमोदन आवश्यक होता है।

(iii) समन्वय के अनेक अनौपचारिक माध्यम भी हैं। यह अनौपचारिक होने के कारण कुछ कम प्रभावशाली नहीं होते हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कदाचित् व्यक्तिगत सम्पर्क हैं। वे विचारों के स्वतन्त्र आदान प्रदान मुक्त वाद विवाद तथा समझौते द्वारा समस्या का सुलझाने में सहायता देते हैं। समितियाँ और सम्मेलन ऐसे अनौपचारिक परामर्शों के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करते हैं। भोज मध्याह्न भोज चाय पान और अनौपचारिक संचार के मान्य माध्यम हो गए हैं। कदाचित् अशासकीय समन्वय का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माध्यम अनुशासित दल प्रणाली है। हमारे देश में चूंकि कांग्रेस दल प्राय अधिकतर राज्यों तथा केन्द्र में सत्तारूढ़ है इसलिए सारे देश की नीतियों योजनाओं तथा कार्यक्रमों में समन्वय

का प्रभावशाली माध्यम है। अन्त मे समन्वय करने वाले तत्व के रूप मे अच्छा नेतृत्व भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही होता।

समन्वय की पूर्व शर्तें
(Pre conditions of Co ordination)

समन्वय का कार्य अत्यन्त जटिल है और ज्यों ज्यों किसी उद्यम का आकार विस्तृत होता जाता है उसके कार्यों मे एकरूपता लाना उतना ही कठिन हो जाता है। प्रशासन अथवा किसी भी उपक्रम या सगठन मे कार्य क्षेत्र की वृद्धि नई परिस्थितियाँ एव नई तकनीकें इस बात को इंगित करती है कि समन्वय के पुराने तरीकों को बदला जाए अन्यथा असन्तुलन की स्थिति पैदा हो सकती है। किसी भी उद्यम मे चाहे वह सरकारी हो या गैर सरकारी व्यापारिक हो या प्रशासनिक उसमे समन्वय स्थापित करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाने पड़ते हैं जिन्हें समन्वय की पूर्व शर्तें भी कहा जा सकता है। प्रो न्यूमेन (Newman) ने इन पूर्व शर्तों को निम्नलिखित पाच भागों मे विभाजित किया है—

1 सरलीकृत सगठन
2 सामजस्यपूर्ण कार्यक्रम और नीतियाँ
3 सचार के सुव्यवस्थित तरीके
4 ऐच्छिक समन्वय की सहायता
5 अधीक्षण द्वारा समन्वय

प्रथम बात—प्रत्येक सगठन मे कुछ क्रियाएँ ऐसी होती हैं जिनमे एकरूपता स्थापित करना जरूरी होता है, जैसे एक बीमा कम्पनी मे सदस्यों के दावे कानूनी कार्य आदि। यदि किसी विभाग की उन एकरूप क्रियाओं को एक ही प्रशासनिक इकाई से सम्मिलित कर लिया जाए तो समन्वय का कार्य सरल हो जाता है। उस इकाई से प्रभावित जनता अनौपचारिक सम्बन्ध बना लेती है। कार्य के आधार पर सगठन मे प्राय अनेक इकाइयो की स्थापना कर दी जाती है और ज्यों ज्यों एक उद्यम का विस्तार होता जाता है ये इकाइयाँ भी बढती चली जाती हैं और समन्वय की समस्या जटिल होती जाती है। समन्वय कार्य को सरल बनाने के लिए एक जैसे कई कार्यों को समान इकाई के अधीन कर लिया जाता है। जब कभी एक कार्यपालिका के सम्मुख समन्वय की समस्या गम्भीर हो जाए तो उसे विभाग के प्रबन्ध मे परिवर्तन करना चाहिए ताकि उसकी प्रक्रियाओं को सगठनात्मक रूप से एक दूसरे के निकट लाया जा सके। एक अच्छे सगठन मे समन्वय की दृष्टि से प्रबन्ध को बार बार देखने की आवश्यकता नहीं रहती।

सगठन मे जब स्पष्ट रूप से यही ज्ञात नहीं होता कि कौन क्या करता है तो समन्वय की प्रक्रिया अधिक सार्थक नहीं बन पाती। उदाहरण के लिए, गाँवो मे अच्छी खेती के साधनो के प्रसार मे कई बार इसलिए विलम्ब हो जाता है कि

निश्चित रूप से पचायतो और सामुदायिक विकास योजना की इकाइयों को यह पता नहीं होता कि यह काय किसे करना चाहिए। उत्तरदायित्व और सत्ता का रूप निश्चित न होने पर काय में विलम्ब होता है दूसरे लोगों में गलत फहमियाँ होती है सगठन की साख गिरती है और उसके लक्ष्यों पर इसका प्रभाव पडता है। सगठन की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना बहुत कठिन है। जब एक सगठन के दो अधिकारी यह सोचने लगते हैं कि एक ही काय का उत्तरदायित्व हम दोनों पर है तो भी परेशानी बढ जाती है। इससे काय का दोहराव होता है और सबधित व्यक्तियों को भ्रम पदा होता है। वास्तव में समन्वय की योजना बनाते समय सगठन के सरल और स्पष्ट रूप पर जोर दिया जाना चाहिए और अन्य उत्तरदायित्वों का भली प्रकार किन्तु उपयुक्त रूप में लचीला सीमाकन कर दिया जाना चाहिए।

दूसरी शत—एक अच्छा समन्वय तभी सम्भव है जब सगठन के कायक्रमों और नीतियों में एकरूपता स्थापित की जाए। जब सगठन की योजनाए परस्पर अनुरूप होती हैं तो समन्वय का माग सरल हो जाता है। मिस पारकर फालट और न्यूमन आदि की मान्यता है कि समन्वय के लिए आदश समय नियोजन के स्तर पर (At the planning stage) होता है।[1] जिस समय योजनाए बनाई जाती है उस समय समन्वय का ध्यान में रखते हुए स्थान-स्थान पर परिवतन किए जा सकते हैं। समन्वय प्राप्त करने के लिए नियोजन में दो बात ध्यान में रखनी होती है—प्रथम योजनाओं के बीच एकरूपता (Consistency) रहनी चाहिए और दूसरे क्रियाओं का उचित समय निर्धारण किया जाना चाहिए। जब विभिन्न व्यक्तियों और सम्भागों द्वारा योजना बनाई जाती है तो उनकी एकरूपता की दृष्टि से देखना आवश्यक होता है। न्यूमेन के शब्दों में योजनाओं के बीच एकरूपता स्थापित करने के लिए सवप्रथम यह जरूरी है कि उनकी एक दूसरे के विरुद्ध जाँच की जाए ताकि यह देखा जा सके कि वे सभी एक कायक्रम के सम्पादन के लिए प्रयत्नशील हैं अथवा नहीं। कई बार योजनाओं के बीच के अन्तर को दूर करना कठिन हो जाता है और दूसरे विकल्पों को स्वीकार करने में परेशानी अधिक बढ जाती है।

समन्वित क्रियाए न केवल एक दूसरे के एकरूप होनी चाहिए बल्कि उनको सही समय पर सम्पन्न किया जाना चाहिए। समय की दृष्टि से सगठन की सभी क्रियाओं की एक योजना तयार की जाए और उस योजना को क्रियान्वित करते समय समन्वय का ध्यान में रखा जाए। एक अच्छा समन्वय तभी स्थापित हो सकता है जब सगठन की क्रियाए निश्चित समय के अनुसार सम्पन्न की जा रही हो।

तीसरी शत—सगठन में जब सचार के अच्छे साधन अपनाए जाते हैं तो समन्वय सुगम हो जाता है। सचार-व्यवस्था से तुरन्त ही पता चल जाता है कि

1 *Newman op cit p 393*

सगठन के काय योजनाओं के अनुसार आगे बढ़ रहे हैं या नहीं। यदि ऐसा नहीं हो रहा हो तो आवश्यकतानुसार समायोजन किया जा सकता है। किए जाने वाले कार्यों और उनकी स्थितियों के सम्बन्ध में सूचना का प्रसार भविष्य के कार्यक्रम तैयार करने के लिए बहुत उपयोगी है। समन्वय के लिए जिन सूचनाओं की आवश्यकता होती है, सचार द्वारा वे सब सुलभ हो जाती हैं। सगठन में सचार-व्यवस्था को कई रूपों में अपनाया जा सकता है जैसे—वर्किंग पेपर (Working Papers) लिखित प्रतिवेदन (Written Report नियमित मौखिक प्रतिवेदन Regular Oral Report) आदि। सचार व्यवस्था के इन साधनों द्वारा सगठन को दिन प्रतिदिन की कार्यवाहियों एवं कार्यक्रमों से परिचित रखा जा सकता है।

चौथी शर्त—किसी भी सगठन में समन्वय को ऊपर से नहीं लादा जा सकता। इसके लिए सगठन के सदस्यों की सहमति एवं सहयोग परमावश्यक है। जब सभी सदस्य स्वेच्छा से सहयोग देने के लिए तैयार रहते हैं तो समन्वय का कार्य सरल हो जाता है। प्रत्येक विवेकशील कार्यपालिका इच्छित समन्वय की परम्पराओं का विकास करने का प्रयास करता है।

सगठन के सभी सदस्यों में एकतापूर्ण कार्यों के प्रति उत्साह पैदा करने के लिए कुछ और कदम उठाए जा सकते हैं जिनको प्रो न्यूमन (Newman) ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

1 प्रभावशाली उद्देश्य (Dominant Objective)—जिन लोगों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता है यदि वे सभी एक प्रभावशाली लक्ष्य को स्वीकार कर लें तो उनके बीच स्वेच्छापूर्ण सहयोग की स्थापना हो जाएगी। यह प्रवृत्ति प्राय युद्ध के समय दृष्टिगोचर होती है। भारत में चीनी एवं पाकिस्तानी आक्रमण के समय शासनिक तथा अन्य क्षेत्रों में जो एकता आई थी उसके पीछे एक प्रभावशाली लक्ष्य का आधार था। सभी लोग चाहते थे कि युद्ध में विजय हो अत उन्होंने एक होकर काय किया। जब यह प्रभावपूर्ण लक्ष्य धूमिल पड़ जाता है तो सदस्यों के बीच छोटे मोटे विवाद भी महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। भारत के राजनीतिक दलों की स्थिति को भी इस सदर्भ में एक उदाहरण माना जा सकता है। जब काग्रेस भारत से विदेशियों को निकालने के लिए प्रयत्नशील था तो उस पर एक प्रभावशाली लक्ष्य का प्रभाव था और उसके सभी सदस्य अद्भुत सहयोग से काय करते थे किन्तु ज्यों ही भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की काग्रेस दल में विभाजन गुटबन्दी फूट वैमनस्य आदि उत्पन्न हो गए और अनेक वर्ग बन गए जिसके परिणामस्वरूप काग्रेस में समन्वय की समस्या अत्यन्त गम्भीर हो गई।

2 सामान्य रूप से स्वीकृत परम्पराओं को विकसित करना (To develop general accepted Customs)—स्वेच्छापूर्ण समन्वय तब अधिक आसान होता

है जबकि लाग सरलता स एक दसरे के साथ काय कर सकें। यह तभी सम्भव है जब उस सगन्न म काय क लिए एसी परम्पराए स्थापित की जाए जिनको उसके सभी सदस्य स्वीकार करत हा। इस प्रकार की परम्परा प्राय अपन आप विकसित होती हैं। मुख्य कार्यपालिका का कार्य यह है कि वह इनके विकास को प्रोत्साहन दे। इन प रम्पराओं के आधार पर यह पता किया जा सकता है कि कोई व्यक्ति सगठन म काय करने योग्य है अथवा नहीं। यदि सदस्य इन परम्पराओं के अनुकूल स्वय को ढाल लें ता समन्वय का काय सरल हो जाता है।

3 अनौपचारिक सम्बन्धो को प्रोत्साहन देना (To encourage Informal Contacts)—औपचारिक रूप से जिस सचार व्यवस्था की स्थापना की जाती है उसको पूर्णत प्राप्त करने के लिए अनौपचारिक सम्बन्धो को महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। अनौपचारिक रूप स चाय के प्याले पीते हुए सगठन का अध्यक्ष यह उल्लेख कर सकता है कि दूसरे विभागों द्वारा उसके सामने क्या कठिनाइयाँ उत्पन्न की जा रही हैं। उसके य उल्लेख औपचारिक शिकायत क रूप म रिकार्ड नहीं रखे जात। इसी प्रकार सगठन या प्रक्रिया म सम्भव परिवतनो पर भी बिना निर्देश के अस्त व्यस्त किए ही विचार किया जा सकता है। अनौपचारिक सम्बन्धो द्वारा सचारित की गई यह सूचना स्वेच्छापूर्ण समन्वय के लिए आवश्यक जानकारी और पृष्ठभूमि प्रदान करती है। इसलिए जरूरी है कि प्रत्यक उद्यम क यत्रालिका या दूसरे कमचारी सामाजिक समूह अथवा अनौपचारिक सगठन बनाए। इस प्रकार के साधन द्वारा स्वेच्छापूर्ण समन्वय सरल एव सम्भव बनता है तथा सगठन के विभिन्न सदस्यों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध का विकास होता है। न्यूमन (Newman) क शब्दों म अनौपचारिक सम्बन्धो पर इस प्रकार का ध्यान स्वेच्छापूर्ण समन्वय के लिए एक महत्त्वपूर्ण सहायता समझी जानी चाहिए।[1]

4 मध्यस्थ व्यक्ति की नियुक्ति (To Provide Liaison M... विशेष परिस्थितियों म अध्यक्ष सगठन क अन्य सदस्यो के साथ प्रत्य... न के अध्यक्ष सम्बन्ध नहीं रख पाता और इस तरह अनौपचारिक रूप स आवश्य... नियुक्त करने मिल पाती। इस कठिनाई को दूर करने के लिए जो व्यक्ति नि... सथ ही नियुक्त उन्हें सचिवालय भाषा म बीच क अधिकारी (Liaison Officers) क... सम्भोगपूर्ण तथा अधिकारी अपनी इकाई क काय की स्थिति और आवश्यकताओं स... ध्यक्ष समन्वय के है तथा दूसरे सम्भाग के सामने उन्ह स्पष्ट करता है। इसक अतिरि... निर्देश समूह के काय की आवश्यकताओं का अवलोकन करता है और अपन... समन्वय करता उनकी रिपोर्ट देता है। इन व्यक्तियों के पास वायदे करने की कोई शक्ति... ारी का यह न्यूमैन के शब्दों म उनका मुख्य काय सूचनाओं के आदान प्रदान को सर... का प्रगति

1 *Newman op cit p* 401

होता है और व समन्वय क स्वेच्छापूर्ण साधना को सुभाव देते हैं।[1] इन मध्यवर्ती अधिकारियों को प्रयत्न व्यक्तिगत सम्बन्धों का एक विकल्प नहीं माना जा सकता।

5 **समितियों के प्रयोग द्वारा (By the use of Committees)**—समितियों के माध्यम से संगठन के विभिन्न सदस्य परस्पर सम्पर्क स्थापित करते हैं उनके बीच प्रत्यक्ष व्यक्तिगत सम्बन्धों का विकास होता है और वे अपने दृष्टिकोणों एव विचारों का अनौपचारिक रूप से आदान प्रदान करते हैं। जब समितियों में संगठन की समस्याओं पर विचार विमर्श किया जाता है तो प्रत्येक सदस्य को विचार अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होता है जिसे वह अन्य प्रकार से न ले कर सकता। समिति की प्रक्रियाओं की जानकारी प्राप्त करके सदस्यों की अनेक गलतफहमियाँ दूर जाती हैं। समितियों के माध्यम से सदस्यों का सहयोगपूर्ण व्यवहार विकसित होता है जिसके फलस्वरूप समन्वय की प्रक्रिया सरल हो जाती है।

पाचवीं शर्त—उपर्युक्त सभी साधनों को अपना लेने के बाद भी संगठन की क्रियाओं का एक ऐसा क्षेत्र बच जाता है जिसमें समन्वय केवल अधीक्षण (Supervision) द्वारा ही किया जा सकता है। संगठन के अध्यक्ष का यह दायित्व है कि वह विभिन्न अधीनस्थों के कार्यों का निरीक्षण करते रहे और यह ध्यान रखे कि वे अपने उत्तरदायित्वों एव कर्तव्यों का ठीक निर्वाह कर रहे हैं या नहीं। समन्वय की पूर्व शर्तें जितनी अधिक प्रभावशाली होती हैं संगठन में अधीक्षण की आवश्यकता उतनी ही कम हो जाती है किन्तु एस किसी भी संगठन की कल्पना नहीं की जा सकती जिसम किसी प्रकार के अधीक्षण की आवश्यकता ही न हो। संगठन के अध्यक्ष को नेन देने सकटकालीन आवश्यकताए पूरी करने अधीनस्थों के गम्भीर मतभेदों को दूर करने तथा संगठन के परिणामों में सन्तुलन स्थापित करने की आवश्यकता रहती है। अनेक बार एक संगठन के अध्यक्ष पर अधीक्षण करने का कार्यभार अधिक बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति मे वह अपने स्टाफ में से ही एक सहायक चुनकर प्रभावशाली सहयोग प्राप्त कर सकता है।

उन्होंने एक है सदस्यों के बीच दता की स्थिति

क्या समन्वय एक स्वाभाविक प्रक्रिया है?
(Is Co ordination a Natural Process)

भारत स वि[illegible] की प्रक्रिया के स्पष्ट रूप से दो पहलू हैं। अपने प्रथम पहलू म [illegible] लक्ष्य के [illegible] के द्वारा सचालित होती है। उच्च स्तर पर आसीन पदाधिकारी यों ही [illegible] के आधार पर अधीनस्थों को आदेश देते हैं उनके कार्यों में एकरूपता बनाए रखते हैं और इस प्रकार संगठन में समन्वय स्थापित करते हैं। कुछ विचारक म सम[illegible] के इस रूप को बाह्य अथवा आरोपित माना है जिसम सत्ता का प्रयोग किया जाता है और सदस्यों की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का बहुत कम। समन्वय

[1] Newman op cit p 402

की प्रक्रिया के इस पहलू का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। प्रत्येक संगठन में अधिकांश समन्वयात्मक कार्य संस्था द्वारा स्वतः ही किए जाते हैं। कुछ विचारकों का तो यहां तक कहना है कि समन्वय कार्य पृथक् किया नहीं होती। यह एक प्रबन्धक द्वारा किए जाने वाले प्रबन्धात्मक कार्यों में ही निहित रहती है। हेमन (Haimann) के शब्दों में यदि वह (Manager) अपने पांच प्रबन्धात्मक कार्यों को कुशलता और दिग्दर्शनपूर्वक करे तो उसके परिणामस्वरूप समन्वय की स्थापना अपने आप ही हो जायगी। विशेष समन्वय की आवश्यकता नहीं रहेगी।[1] प्रबन्ध सम्बन्धी पांच कार्य हैं—नियोजन, संगठन, कर्मचारी वर्ग (Staffing) निर्देशन एवं नियन्त्रण।

जब प्रबन्धक नियोजन करने लगता है तो समन्वय की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। योजना बनाते समय समन्वय अच्छी प्रकार से स्थापित किया जा सकता है। प्रबन्धक का यह देखना होता है कि क्या ये योजनायें एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। संगठन के विभिन्न भागों से सम्बन्धित योजनाओं के बारे में विचार विमर्श करने एवं सन्देह तथा सुझाव प्रस्तुत करने का कार्य समन्वय के मार्ग को सुगम बना देता है। कुशल योजना का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व यह है कि उसमें समन्वय की ओर लगातार विचार किया जाता है। नियोजन की भांति जब अध्यक्ष द्वारा संगठन की क्रिया संचालित की जाती है तो भी उसका समन्वय पर विशेष रूप से ध्यान रहता है। मूनी (Mooney) ने समन्वय को संगठन का मूल तत्त्व माना है। जब कभी प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को कार्य सौंपता है तथा विभागों की रचना करता है तो उसके मन पर समन्वय का सर्वाधिक प्रभाव रहता है। हेमन (Haimann) के शब्दों में समन्वय संगठन का मूल अंग है और जब तक प्रबन्धक यह ध्यान में न रखे कि ये समूह मिलकर कार्य करेंगे तब तक संगठन का अस्तित्व नहीं रह सकता। जिस संगठन में सत्ता एवं उत्तरदायित्व को स्पष्ट रूप से निश्चित कर दिया जाता है वह समन्वय के लिए अधिक उपयुक्त होता है।

कर्मचारी वर्ग (Staffing) की नियुक्ति करते समय भी संगठन के अध्यक्ष को समन्वय का ध्यान रखना चाहिए। उसको ऐसे ही कर्मचारी नियुक्त करने चाहिए जिनके बीच वह आसानी से समन्वय स्थापित कर सके। साथ ही नियुक्त किए गए व्यक्ति ऐसे होने चाहिए जो स्वेच्छा से अपने कार्यों को सहयोगपूर्ण तथा समन्वयपूर्ण बना सकें। निर्देशन का कार्य करते समय भी एक अध्यक्ष समन्वय के कार्य से सम्बन्धित रहता है। जब वह अपने अधीनस्थों को आज्ञा, अनुशासन निर्देश तथा प्रशिक्षण प्रदान करता है तो वह उनकी क्रियाओं का इस प्रकार समन्वय करता है कि उद्यम अपने लक्ष्य की ओर कुशलतापूर्वक बढ़ सके। उच्च अधिकारी का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह अपने निर्देशन में आने वाली विभिन्न क्रियाओं की प्रगति

1 2 *H n nn* op it p 3

निरीक्षण करता रहे और देखता रहे कि ये एक दूसरे के सहयोग द्वारा सम्पन्न की जा रही हैं अथवा नहीं।

अध्यक्ष का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है अपने अधीनस्थों पर नियन्त्रण रखना। नियन्त्रण का समन्वय की प्रक्रिया पर सीधा प्रभाव पड़ता है। आर सी डेविस (R C Davis) ने तो समन्वय को केवल नियन्त्रण का ही एक पहलू माना है। नियन्त्रण करते समय अध्यक्ष द्वारा यह देखा जाता है कि संगठन की विभिन्न क्रियायें नियोजित रूप से सम्पन्न की जा रही हैं अथवा नहीं। यदि ऐसा नहीं हो रहा हो तो तुरन्त ही उन्हें सुधारने का प्रयास करता है और इस प्रकार वह समन्वय की दिशा में अग्रसर होता है। हेमेन के शब्दों में नियन्त्रण की मूल प्रकृति समन्वय की स्थापना करती है।[1]

समन्वय के सिद्धान्त
(The Principles of Co ordination)

मेरी पार्कर फोलेट (Mary Parker Follet) ने समन्वय के चार सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। ये सिद्धान्त प्रो न्यूमन (Newman) के शब्दों में एक सम्पूर्ण परामर्श (Much sound advice) से परिपूर्ण है। इनके आधार पर समन्वय की प्रक्रिया को सफल, सार्थक एवं प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है—

1 समन्वय की स्थापना के लिए सम्बन्धित उत्तरदायी व्यक्तियों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, इनके बीच प्रत्यक्ष व्यक्तिगत संचार व्यवस्था रहनी चाहिए। उनको एक दूसरे की समस्या स्थिति एवं प्रगति से परिचित रहना चाहिए। जब दो अधिकारी अपने कार्यालयों में बैठ कर अपने पद की हैसियत से एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित करते हैं तो अनेक बार समस्याएं सुलझने की अपेक्षा अधिक दुरूह बन जाती है पर जब ये अधिकारी मैत्रीपूर्ण ढंग से आमने सामने वार्ता करते हैं तो कठिन समस्या का समाधान भी सहज ही हो जाता है।

2 समन्वय योजना एवं नीति का निर्माण करते समय उनके प्रारम्भिक स्तरों पर ही अधिक आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। जब प्रशासन में सम्बन्धित नीतियां निर्धारित की जा रही हों या नियोजन किया जा रहा हो उसी समय अधिकारियों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाना उपयोगी होता है। न्यूमन के शब्दों में जब योजनाएं बनाई जा रही हैं तथा कार्य को प्रारम्भ नहीं किया गया है तभी सामंजस्य लाना अधिक सरल होता है।[2] नीति एवं योजना सम्बन्धी निर्णयों को लेने के बाद एक दूसरे से सम्पर्क करने और अपनी समस्याओं को समायोजित करने की स्थिति में समन्वय का कार्य बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि तब उनमें से प्रत्येक यह चाहेगा कि वह स्वयं के निर्णयों पर स्थिर रहे तथा दूसरे

1 *H m n* p c t p 35
2 *Newm* op c t p 401

को नी अपनी नीतियाँ एवं योजनाओं के अनुसार भटका न। यह एक प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण स्थिति होगी जिसमें समन्वय स्थापित होने के स्थान पर मनमुटाव और दूरियाँ अधिक बढ़ जाएगी। मानव व्यवहार की यह मौलिक प्रकृति है कि कार्य के प्रारम्भ में एक छोटा-सा दिखने वाला भेद भी आगे चल कर बड़ा महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

3 समन्वय एक स्थिति विशेष में सभी तत्त्वों के आदान प्रदान का सम्बन्ध संगठन के सदस्यों में समन्वय की स्थिति वह मानी जा सकती है जब उनमें से प्रत्येक अपने साथी की व्यावहारिक समस्याओं को समझ कर सभी तत्त्वों का ध्यान में रखकर उन्हें सुलझाने का प्रयास करे। दूसरे शब्दों में संगठन के सदस्यों के बीच लेने देन (Give and Take) की प्रवृत्ति रहनी चाहिए।

4 समन्वय एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया (Continuing Process) है। ऐसा नहीं होता कि संगठन में एक बार समन्वय स्थापित कर दिया जाए जो सदैव या बहुत समय तक चलता रहे। समन्वय के कार्य का अवसरों पर नहीं छोड़ा जा सकता। संगठन के अध्यक्ष को लगातार इस दिशा में प्रयत्नशील रहना होता है अन्यथा संगठन में ऐसे विकार पैदा हो सकते हैं जिनकी वह कल्पना भी न कर सके और जिन पर वह नियन्त्रण न रख सके।

समन्वय के रूप
(The Forms of Co ordination)

समन्वय की प्रक्रिया लम्बरूप (Vertical) भी हो सकती है और समतल (Horizontal) भी।

(1) लम्बरूप समन्वय (Vertical Co ordination) से हमारा आशय समन्वय के उस रूप से है जो संगठन की इकाई के विभिन्न स्तरों के बीच स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिए एक संगठन के निर्देशक उपनिर्देशक नियोजक नियन्त्रक एवं ऐसे ही अन्य अधीनस्थों के मध्य स्थित समन्वय को ले सकते हैं। इस प्रकार के समन्वय में पद सोपान एवं सत्ता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उच्च पद पर स्थित अधिकारी अपने अधीनस्थ पर अपनी सत्ता लागू करता है। समन्वय के इस रूप को प्राप्त करने के लिए सत्ता का प्रयोग किया जाता है। मार्ग निर्देशन निरीक्षण एवं नियन्त्रण आदि तत्त्वों का भी सहारा लिया जाता है। यदि कोई अधीनस्थ अधिकारी लम्बरूप समन्वय की स्थापना के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है तो उसे शासन से दण्डित किया जा सकता है। जब एक अध्यक्ष अपने प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों को कुशलता एवं मितव्ययिता के साथ सम्पन्न करता है तो लम्बरूप समन्वय स्वतः ही स्थापित हो जाता है।

(2) समतल समन्वय (Horizontal Co-ordination) का अर्थ उस समन्वय से है जो प्रबन्धक के समान स्तरों पर किया जाता है। इस प्रकार के समन्वय में कर्मचारियों एवं अधिकारियों की स्वेच्छा को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यदि समन्वय

न किया जाए तो सगठन के कार्यों की गति अवरुद्ध हो जाती है। समान स्तर वाले अधिकारियो के बीच समन्वय स्थापित करने की कुछ अपनी समस्याएं हैं क्योंकि ये अधिकारी अपने विभागीय कार्य के प्रबन्धक होते हैं अत उनके बीच समन्वय की स्थापना के लिए निश्चित आज्ञाओं अथवा आदेशों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। ये अधिकारी एक स्तर पर सत्तावान् नहीं होते। सगठन के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से यह आशा की जाती है कि ये लोग अपने बीच समन्वय की स्थापना स्वय ही कर लेंगे।

उपर्युक्त दो रूपों के अतिरिक्त समन्वय के दो रूप और भी हैं। समन्वय आन्तरिक (Internal) भी हो सकता है और बाह्य (External) भी। आन्तरिक समन्वय तो एक सगठन द्वारा उसकी विभिन्न इकाइयों के बीच किया जाता है। यह सगठन का एक नाकप्रिय रूप है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सगठन अनेक बाह्य तत्वों से भी प्रभावित होता है जिन्हे दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। लोक प्रशासन के विभिन्न सगठनों पर जनमत, राजनीतिक दलों, सरकारी नीतियों एव व्यक्तिगत सस्थाओं का प्रभाव पड़ता है। इन सभी सस्थाओं एव सगठनों तथा प्रशासनिक सगठन के बीच समन्वय स्थापित करना आवश्यक है। सगठन तथा बाह्य प्रभाव डालने वाले तत्वों के बीच यदि समन्वय स्थापित न किया जाता तो यह सम्भव है कि सगठन अपने कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न न कर सके तथा उसके कार्यों में निरन्तर बाधाएं उपस्थित होती रहें।

समन्वय की बाधाएं
(Hinderances of Co-ordination)

सगठन के जीवन एव विकास में समन्वय का मौलिक स्थान रहने पर भी अनेक ऐसी बाधाएं हैं जो सगठन में समन्वय की स्थापना के मार्ग को अवरुद्ध करती हैं। हेमन (Haimann) के शब्दों में कहा जा सकता है कि समन्वय सरलतापूर्वक प्राप्त नहीं किया जा सकता।[1] एक उद्यम में कार्य के आधार पर स्थापित प्रत्येक सम्भाग उद्यम के लक्ष्यों की प्राप्ति अपने ढग से करता है तथा उसी रूप में उन्हें प्राप्त करना चाहता है। सगठन में सहयोगपूर्ण दृष्टिकोण रहे, उसका प्रत्येक सदस्य स्वय का समन्वय अथवा समायोजन करने को तैयार हो तो भी कार्यों के बीच दोहराव हो सकता है और उनमें सघर्ष पाया जा सकता है। समन्वय के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाओं का वर्णन करने से पूर्व यह उपयोगी होगा कि इससे सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख कर लिया जाए।

सगठन में कुछ लोग दूसरों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। अपने महत्त्व का दुरुपयोग करते हुए कई बार उसके प्रबन्धकों के मन में उच्चता की भावना घर कर जाती है। सगठन के अन्य अधिकारियों के मनोबल (Morale)

1 H m p t p 29

पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। समन्वयकर्ता द्वारा इस प्रकार के सहयोग की भावना को प्रोत्साहन न देकर उनका अन्य कार्यों के साथ उचित सामंजस्य स्थापित करने का उत्तरदायित्व पूर्णरूप से प्रबन्धक का है। इस कार्य को किसी विशेषज्ञ अथवा किसी विभाग को नहीं सौंपा जा सकता। प्रबन्धक के मस्तिष्क में पूरे संगठन का लक्ष्य एवं चित्र स्पष्ट रहता है अतः वह इस उत्तरदायित्व का निर्वाह सफलतापूर्वक कर सकता है।

अब लोक प्रशासन के क्षेत्र में समन्वय प्राप्त करने का मार्ग दिन प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। संगठनों का आशातीत विकास इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है। कार्य अधिक बढ़ जाने से समन्वय स्थापित करना भी कठिन बन गया है। संगठन बड़ा होने से अधीनस्थ कर्मचारियों की संख्या अधिक हो जाती है तथा संचार साधनों की समस्या जटिल बन जाती है अतः समन्वय का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है।

समन्वय के मार्ग को पचीदा बनाने वाली एक अन्य समस्या विशेषीकरण से सम्बन्धित है। वर्तमान संगठन में वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकासों के परिणामस्वरूप यह आवश्यक हो गया है कि कार्यों को विशेषता में विभाजित कर दिया जाए। ये विशेषज्ञ केवल अपने कार्य में ही संलग्न रहते हैं अतः उनके बीच समन्वय स्थापित करना एक प्रमुख समस्या है। मार्गन डिमाक ने तो यहां तक कहा है कि प्रशासन विशेषज्ञों के कार्यों का समन्वय है। विशेषीकरण की प्रकृति का प्रसार होने पर संगठन का कार्य छोटे छोटे भागों में विभाजित हो जाता है और उनमें से प्रत्येक भाग अपने कार्य को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानने लगता है।

समन्वय के कार्यों में मानव प्रकृति से अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। संगठन की प्रत्येक इकाई अपने आपको अपने कार्यों से ही सम्बन्धित रखती है और दूसरी इकाई के कार्यों में रुचि नहीं लेती। प्रत्येक इकाई का प्रबन्धक केवल अपनी इकाई के कल्याण के बारे में ही सोचता है वह सम्पूर्ण उद्यम से अपना सम्पर्क बनाए रखना नहीं चाहता।

समन्वय के सम्बन्ध में विशेषीकरण, मानव प्रकृति, संगठन के बड़े आकार आदि तत्वों द्वारा प्रस्तुत इन समस्याओं के अतिरिक्त समन्वय की क्रिया पर और भी अनेक सीमाएं होती हैं। समन्वय का मार्ग अनेक कठिनाइयों एवं बाधाओं से पूर्ण है। किसी भी संगठन में बाधाएं उत्पन्न होने के कारण होते हैं। प्रसिद्ध लेखक टेरी गुलिक के अनुसार ये कारण निम्नलिखित हैं—

(1) संगठन का भविष्य अनिश्चित रहता है। संगठन के नीतियां एवं जनता की क्रिया प्रतिक्रिया किसी भी अध्यक्ष की समझ तथा कल्पना के बाहर की चीज होती है। तत्सम्बन्धी अनुमानों का सही होना निश्चित नहीं रहता।

(2) एक अच्छे तथा प्रभावशाली समन्वय के लिए अच्छा नेतृत्व परम

आवश्यक है। जिस सगठन के नेताओं में ज्ञान अनुभव बुद्धि एवं चरित्र का अभाव होता है और जिनके विचार तथा उद्देश्य अस्पष्ट तथा भ्रमपूर्ण हैं वहां समन्वय की क्रिया अत्यन्त कठिन बन जाती है।

(3) प्रशासनिक योग्यता एक सगठन का प्राण है। यदि सगठन के अध्यक्ष में प्रशासन सम्बन्धी कुशलता एवं तकनीकी ज्ञान न हो तो प्रभावी समन्वय के कार्य में उसके सफल होने के अवसर धूमिल पड़ जाते हैं।

(4) समन्वयकर्त्ता चाहे कितना भी योग्य क्यों न हो वह भी आखिर एक व्यक्ति ही होता है तथा जीवन एवं मानव चरित्र के सम्बन्ध में उसके ज्ञान की सीमाएं होती हैं इसके अतिरिक्त सगठन की समस्याएँ विविध एवं बहुमुखी होती हैं अतः सगठन में समन्वय सुगम नहीं रह पाता।

(5) प्रायः सभी सगठनों में नवीन विचारों एवं कार्यक्रमों को स्वीकार करने विकसित करने उन पर विचार करने तथा उनका व्यवहार करने के व्यवस्थित तरीकों का अस्तित्व नहीं पाया जाता।

सेकलर हडसन (Seckler Hudson) द्वारा उल्लिखित कुछ अन्य कठिनाइयाँ भी विचारणीय हैं। आकार तथा प्रतिकार व्यक्तिवत तथा राजनैतिक तत्व, लोक प्रशासन के विषय में वृद्धि और ज्ञान रखने वाले नेताओं की कमी और अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज में लोक प्रशासन का शीघ्र विकास आदि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण समन्वय के मार्ग में अनेक बाधाएं उत्पन्न हो जाती हैं। समन्वय की बाधाओं का कुछ विचारकों ने वर्णन स्वागत किया है। इनमें रनसन बर्टीलण्ड का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके द्वारा प्रतिपादित तनाव सिद्धान्त (Tens on Theory) के अनुसार एक सरल और सुगम सगठन में किया जाने वाला समन्वय अधिक अच्छा नहीं होता। जिस सगठन के कार्य आसानी से सुचारु रूप से चलते रहते हैं वह सगठन कई बार लोकहित की उपेक्षा कर देता है इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक सगठन में समय-समय पर विभागों एवं अभिकरणों के बीच अधिकार क्षेत्र और कार्यक्रम के विषय में विवाद उत्पन्न होते रहें। यदि किसी सगठन में विवाद उत्पन्न नहीं होते तो वहां इस प्रकार के झगड़ों को योजनाबद्ध रूप में प्रारम्भ करना चाहिए। सगठन में झगड़े उत्पन्न होने से अनेक प्रशासनिक विषयों का रूप स्पष्ट होता है और अनेक समस्याओं पर महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए जाते हैं।

समन्वय और नियन्त्रण
(Co-ordination and Control)

नियन्त्रण समन्वय का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। लोक प्रशासन में जनता के हित, देश के विकास एवं प्रशासन की सुगमता की दृष्टि से प्रशासनिक सगठन के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखा जाता है। साइमन आदि लेखकों के अनुसार प्रशासन का

उत्तरदायी बनाने के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक नाना प्रकार के नियन्त्रण रखे जाते हैं। औपचारिक (Formal) नियन्त्रण न्यायपालिका एवं व्यवस्थापिका द्वारा स्थापित किया जाता है। पद-सोपान के नियन्त्रण भी प्रशासनिक संगठन के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पद-सोपान के नियन्त्रण (Hierarchical Control) के सम्बन्ध में परम्परावादी विचारधारा को स्पष्ट करते हुए हूवर आयोग (Hoover Commission) का कहना है कि निर्देशन की क्षमता के बिना उत्तरदायित्व एवं जवाबदेयता असम्भव है। सत्ता का प्रयोग ऊपर से नीचे तक अनुशासिता की स्पष्ट श्रेणी के अभाव में असम्भव है, साथ ही नीचे से ऊपर तक उत्तरदायित्व और जवाबदेयता का प्रावधान होना चाहिए।

प्रशासकीय संगठन के पद-सोपान में उच्च अधिकारी नीचे के अधिकारी पर नियन्त्रण रखता है। मुख्य के प्रश्नों पर अधीनस्थ कर्मचारियों की स्वेच्छा पद-सोपान के नियन्त्रण द्वारा बाधित रहती है। नियन्त्रण के ये सभी औपचारिक रूप जो न्यायपालिका, व्यवस्थापिका और पद-सोपान द्वारा लागू किए जाते हैं आंशिक एवं सीमित होना ही रूप ग्रहण करते हैं। किसी भी देश में प्रशासन पर मुख्य कार्यपालिका विभाग शीर्ष की स्वेच्छा आदि का नियन्त्रण रहता है। औपचारिक नियन्त्रण के साधनों पर हित समूह (Interest Group) का प्रभाव रहता है। औपचारिक रूप से उत्तरदायित्व को जिस प्रक्रिया को लागू किया जाता है वह मुख्य रूप से सम्बन्धित पूर्ण के शक्तिशाली राजनीतिक गुट से प्रभावित रहती है।

उक्त औपचारिक साधनों के अतिरिक्त नियन्त्रण का एक अनौपचारिक क्षेत्र भी होता है जिसमें अधिकारियों द्वारा स्वविवेक का प्रयोग किया जाता है। नियन्त्रण के अनेक साधन होने पर भी प्रशासकीय संगठन के व्यक्तियों को 'रोबोट' एक रूप नहीं बनाया जा सकता। जैसाकि साइमन आदि का कथन है कि कांस्टेबल एक बालक आपकी ओर मुस्करा सकता है या नाराजगी जाहिर कर सकता है या आराम कह सकता है कि घर जाइए और फार्म को ठीक तरह भरकर लाइए अथवा वह स्वयं आपका फार्म भरने में सहायता कर सकता है। हो सकता है कि वह आपकी परेशानियों का कारण स्पष्ट करे अथवा आपसे कह दे कि काम छोड़ दीजिए या ले जाइए। संगठन के सदस्यों के ये विभिन्न व्यवहार उनकी व्यक्तिगत रुचियों, अनुभवों एवं मूल्यों पर निर्भर करते हैं। इस क्षेत्र में किसी प्रकार का नियन्त्रण प्रभावशाली नहीं हो सकता। इस क्षेत्र को अनौपचारिक नियन्त्रण का क्षेत्र कहते हैं।

औपचारिक तथा अनौपचारिक नियन्त्रण के अन्तर संगठन की वास्तविकताओं के अध्ययन से जाना जा सकता है। प्रशासकीय उत्तरदायित्व की वास्तविकताएँ संगठन के अस्तित्व के संघर्ष से घनिष्ट रूप में सम्बन्धित रहता हैं। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका या हित समूह (Interest Groups) अवसरों और अस्तित्व की शर्तों को प्रभावित करने वाले समूह नहीं हैं। जब तक कर्मचारियों

की आकांक्षाओं को कुछ मान्यता और सन्तोष नहीं दिया जाता तब तक प्रबन्ध की योजनाओं का विरोध होगा और वे नियन्त्रण की परिधियों को स्वीकार नहीं करेंगे। एक संगठन के कर्मचारियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाए यह बहुत कुछ उस समाज की परम्पराओं द्वारा निश्चित होता है। इस प्रकार समाज के संस्थागत रूपों द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि प्रशासकीय निर्णयों में सही और उचित क्या है।

समाज की परम्पराओं के अतिरिक्त संगठन के सदस्यों का स्वयं का व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण रूप से उनके व्यवहार को प्रभावित करता है। परिस्थितिजन्य आवश्यकताएं भी व्यक्ति के व्यवहार परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। नियन्त्रण के स्वरूप के सम्बन्ध में रॉबर्ट ड्यूबिन (Robert Dubin) ने लिखा है कि संगठन में नियन्त्रण के दो प्रमुख क्षितिज (Dimensions) होते हैं। प्रथम हम नियन्त्रण को स्तर सम्बन्धी (Standards विकासशील व्यवस्था की ऐसी प्रक्रिया मान सकते हैं जो संगठन के व्यवहार का निर्देशन करती है। दूसरे नियन्त्रण को हम ऐसी व्यवस्था मान सकते हैं जो संगठन के व्यवहार के स्तरों को नियमित करती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नियन्त्रण के स्वरूप के मुख्य रूप से दो पहलू हैं—प्रथम यह एक साधन है जिसके द्वारा सदस्यों से यह कहा जाता है कि उनसे क्या आशा की जा रही है। द्वितीय यह एक साधन है जिसके द्वारा सदस्यों से यह कराया जाता है जिसकी उनसे आशा की जा रही है। नियन्त्रण द्वारा संगठन में समन्वय स्थापित किया जाता है उसके कार्यों में एकरूपता लाई जाती है तथा समस्त प्रक्रियाओं को लक्ष्य की ओर संचारित किया जाता है। एक प्रभावशाली नियन्त्रण की व्यवस्था संगठन के कार्यों को सार्थक एवं सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान करती है। नियन्त्रण का अभाव संगठन के सदस्यों में स्वेच्छाचारिता की भावना का विकास कर उनको पथभ्रष्ट बना देता है। किसी भी संगठन में नियन्त्रण की स्थापना के लिए संचार व्यवस्था, आदेश की एकता, सत्ता और उत्तरदायित्व का निश्चित रूप आदि बातें अनिवार्य होती हैं।

समन्वय की सम्पूर्ण विवेचना से प्रकट है कि प्रबन्ध की सफलता के लिए प्रभावपूर्ण समन्वय का होना आवश्यक है—तभी उपक्रम की कुशलता में वृद्धि होगी कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा उठेगा, सम्बन्धित जनता के प्रति अधिकारी और कर्मचारी सम्मान प्रदर्शित करेंगे, अधिकारियों को अपने अपने कार्यक्षेत्र का ज्ञान होगा और वे दूसरों के कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप से बचेंगे, कर्मचारी अपनी कार्यक्षमताओं से सन्तुष्ट रहेंगे, कार्य निष्पादन में शीघ्रता संभव होगी, उपक्रम के प्रति कर्मचारियों में निष्ठाभाव बना रहेगा तथा आकस्मिक कठिनाइयों और समस्याओं का तत्परता से समाधान किया जा सकेगा। अध्याय का समापन हम लक्ष्मीदत्त ठाकुर के शब्दों में करना चाहेंगे कि—

'सामजस्य (समन्वय) की विवेचना इस बात को बतलाती है कि समस्त संगठन अपने कार्यों में लक्ष्य की दृष्टि से सम्बद्ध होकर कार्य करें दूसरे शब्दों में सामजस्य के द्वारा यह प्रयत्न किया जाता है कि संगठन अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ बिना किसी बर्बादी के लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकें। सामजस्य (समन्वय) की विवेचना में यह आवश्यक है कि हम सामजस्य को ही लक्ष्य न मान लें सामजस्य हमेशा ही एक साधन है यह लक्ष्य नहीं हो सकता किन्तु व्यावहारिक प्रशासन में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें सामजस्य ही लक्ष्य हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि वह सेवा अपने सेवा के कार्यों में कम योगदान देती है सामजस्य के कार्यों में ही अधिक समय लगाती है दफ्तरों में व्यवहार की ऐसी प्रक्रिया और कागजी कार्यवाही का तरीका विकसित हो जाता है कि यदि वे चाहें तो सारा समय व्यवहार पद्धति और कागजी कार्यवाही में ही लगा सकते हैं। इस ही प्रसंग में यह कहा जाता है कि लक्ष्य सदा ही होना चाहिए न कि सामजस्य लक्ष्य हो और उसके लिए दौड़ती हुई फाइलें और व्यवहार पद्धति की जटिलता।

14

सम्प्रेषण अथवा संदेशवाहन
(Communication)

सम्प्रेषण अथवा संचार की उचित व्यवस्थाओं के अभाव में कोई भी संगठन कार्य नहीं कर सकता और यदि संगठन अपने स्वरूप में अत्यधिक विस्तृत हो तब तो यह अनिवार्य हो जाता है कि उसके संचालन अथवा नियन्त्रण के स्तर पर कार्य की प्रगति से सम्बन्धित पर्याप्त सूचनाएँ निश्चित समय पर मिलती रहें। सम्प्रेषण व्यवस्था को प्रशासन का प्रथम सिद्धान्त माना जाता है। मिलेट (Millet) ने इसे प्रशासकीय संगठन की रक्तधारा और फिफनर (Pfiffner) ने प्रबन्ध का हृदय कहा है। संगठन में आन्तरिक संयोग और समन्वय या सम-योजन (Co ordination) की प्राप्ति के लिए सम्प्रेषण व्यवस्था का होना नितान्त आवश्यक है। प्रभावशाली सम्प्रेषण व्यवस्था के बिना किसी भी संगठन या अधिकरण के उद्देश्यों की सफलता संदिग्ध रहती है। मोटे रूप में सम्प्रेषण व्यवस्था से अभिप्राय है—प्रशासन के विभिन्न स्तरों के बीच सम्पर्क और प्रशासन तथा जनता के बीच सम्पर्क। यह एक जानी मानी बात है कि यदि सरकारी कर्मचारी सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों और उद्देश्यों से भली भाँति परिचित होंगे तो वे न केवल अपने कार्य की सार्थकता अधिक समझ सकेंगे बल्कि कार्य का सम्पादन भी अधिक निष्ठा के साथ करेंगे। इसके अतिरिक्त यदि अधिकारियों को कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त होगा तो वे उनके सहयोग के बल पर अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन अधिक अच्छे ढंग से कर सकेंगे। आज के लोकतान्त्रिक युग में प्रशासन और जनता के बीच सम्पर्क रहना भी आवश्यक है। यदि प्रशासन जनता से अलग थलग रहता है तो लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में सरकारी विभागों में सूचना प्रचार व जन सम्पर्क अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। आज लगभग सभी सभ्य सरकारों ने सूचना प्रकाशन और लोक सम्पर्क विभाग स्थापित कर लिए हैं। प्रबन्ध सम्बन्धी साहित्य सम्प्रेषण विषयक लेखों से परिपूर्ण हैं। वस्तुतः आज का युग सम्प्रेषण या संचार व्यवस्था का युग है। संचार व्यवस्था के कारण ही आज औसत दर्जे का आदमी भी अपनी सरकार और अपने पड़ोसियों के अधिक निकट है तथा वह अपने चारों ओर के जीवन से अधिक

एकरूपता अनुभव करता है। सचार साधनो के बल पर ही अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र म हम एक विश्व (One World) की दिशा म ही अग्रसर हो रहे है। सचार को आज अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हो चुका है और सचार-कौशल के विकास के लिए विशिष्ट सभाओ कार्यशालाओ तथा विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन किया ज ता है। सयुक्तराज्य अमरिका इस दिशा म अग्रणी है।

सम्प्रपण का अर्थ

(The Meaning of Communication)

सम्प्रपण-व्यवस्था का आशय सूचना या सन्देश भेजन की व्यवस्था मात्र नहीं है। लोक प्रशासन के सम्बन्ध म इसका अर्थ अधिक व्यापक है तथा प्रशासन के विभिन्न स्तरो के बीच विचार विमर्श एव मिल जुलकर काम करना इसका परिधि म समाविष्ट है। सम्प्रपण के मूल म यह विचार निहित है कि व्यक्ति समस्याओ पर परस्पर मिल जुलकर विचार करें और एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझकर सामजस्यपूर्ण ढग स अपन कर्त्तव्यो का निर्वहन करें ताकि व लक्ष्य प्राप्ति की दिशा म सुगमतापूर्वक बढ सकें। इसलिए सम्प्रपण की परिभाषा समझ-बूझ (Understanding) के रूप म दी जा सकती है। मिलट (Millet) न सम्प्रपण को किसी साझे के प्रयोजन की साझा समझ[1] (Shared understanding of a shared purpose) के रूप म परिभाषित किया है और टीड (Teed) न भी इसी प्रकार का विचार प्रकट करत हुए लिखा है कि सम्प्रपण का मूल लक्ष्य समान विषयो पर मस्तिष्को म मल स्थापित करना (A Meeting of mind on common issue) है।[2] साइमन न लिखा है कि प्रचार के रूप म सम्प्रपण को किसी भी एसी प्रक्रिया के रूप म परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा निर्णयो को सगठन के एक सदस्य से दूसरे सदस्य तक पहुचाया जा सके।

प्रत्येक सगठन म सम्प्रपण व्यवस्था एक दुतरफा यातायात (Two way Traffic) के समान होती है अर्थात् उच्च अधिकारी अपन निर्णयो का अधीनस्थ कर्मचारियो तक आदेशो निर्देशो आदि द्वारा पहुचाते हैं और इसी प्रकार अधीनस्थ कर्मचारियो से उन्हें प्रत्येक परिस्थिति तथ्य और सूचना की प्राप्ति होती रहती[3]। बिना तथ्यो आँकडो और सूचनाओ की समुचित जानकारी के उच्चाधिकारी प्रभावी निर्णय नही ल सकत। इस प्रकार सम्प्रपण ऊपर स नीचे तथा नीचे स ऊपर दोनो दिशाओ म होता है—अर्थात् आदेश और निर्देश ऊपर स नीचे आते ह जबकि तथ्य और आकडे नीचे से ऊपर जाते हैं। सम्प्रक्षण समवर्ती धरातल पर भी होता रहता है। सम्प्रपण अथवा सचार के इस प्रकार के वर्गीकरण को डा अवस्थी एव माहेश्वरी ने निम्न प्रकार स्पष्ट किया है—

1 Millet op cit p 84
2 Tead Ordway The Art of Administration pp 185 86

किसी सगठन म सचार आतरिक, बाह्य तथा अन्तर्वैयक्तिक (Inter personal) होता है। प्रथम अर्थात् आतरिक सचार का सम्ब ध सगठन तथा कर्मचारियो के मध्य के सम्ब धो से होता है। द्वितीय अर्थात् बाह्य सचार का सम्बन्ध जनता और सगठन के अभिकरणो के सम्ब धो से होता है और इसे लोक सम्ब ध कहते हैं। ततीय अर्थात् अन्त वयक्तिक सच र का सम्ब ध अधिकरण के कमचारियो के अपने आपस के ही अन्तसम्ब धो से होना है। सचार का तीनो वर्गों उच्च (Up) अधो (Down) तथा अधोपार्श्व (Across) म भी व र्गीकृत किया गया है। उच्च सचार पालन तथा प्रगति के विषय म लिखित मौखिक तथा व्यवस्थित प्रतिवेदन की रीतियो स प्राप्त होना है, काय के सम्ब ध म सास्यिकी तथा गणना सम्ब धी प्रतिवेदन मागदशन सुझावो तथा चर्चाओ सम्ब धी लिखित तथा मौखिक निवदन किय जात हैं। इस प्रकार काय की समस्याओ के विषय म स क्ष्य प्राप्त करने क लिय उच्चस्तरीय अधिकारियो को साधन प्र प्त हो जात हैं। अधो सचार निर्देश पुस्तिका लिखित या मौखिक विशिष्ट आदश या अनुदेश कमचारी वग के सम्मलन बजट अनुमोदन तथा स्थापना प्राधिकरण जस साधनो स सम्भव होना है। उच्चतम तल पर इन उपायो का प्रयोग कवल समादेश तथा नियन्त्रण के लिए ही नहीं किया जाता बल्कि नीचे के सभी स्तरो एव कमचारियो को अपन कक्ष तथा विचारो की सूचना दन तथा मन्त्रणा माग दशन एव निर्देशन देन के लिए भी होता है। पार्श्व सचार (Across) लिखित या मौखिक सूचना तथा प्रतिवेदन के आदान प्रदान औपचारिक तथा अनौपचारिक व्यक्तिगत सम्पर्कों कमचारी वग की बठको तथा समन्वय करन वाली समितियो द्वारा सम्भव होता है। सगठन क अलग अलग किन्तु सम्बन्धित भागो को एक जगह लाना सचार का लक्ष्य होता है।

परम्परागत विचार-सम्प्रेषण का सगठन का गौण कार्य समझा जाता था जबकि वतमान म सम्प्रेषण सगठन का सार हो गया है। सगठन को सम्प्रेषण व्यवस्था के रूप म देखने के अनेक कारण हैं यथा—

प्रथम इसके अनुसार सगठन का स्वरूप सक्रिय तथा परिवतनशील रहता है।

दूसरे इस विचारधारा से यह पुष्ट होता है कि हम किसी समस्या को बुद्धिपवक हल तब कर सकत हैं जब हमारे पास उससे सम्बन्धित सूचनाए हो अर्थात् सूचना क अभाव म हम विवेकपूवक काय करने म असमर्थ रहग।

तीसरे इसके द्वारा ही हम सगठन म सन्तुलन दृष्टिगोचर होता है। सगठन कितना ग्रहण करता है तथा कितना उत्पादन करता है आदि के सन्तुलन का आधार सचार ही है—जिस प्रकार का सचार होगा उसी प्रकार का यह सन्तुलन भी होगा और उसी के द्वारा उस सगठन की गरिमा भी बनेगी।

चौथे इस दृष्टिकोण से देखन पर ही हम सगठन म शक्ति-सरचना तथा अन्तर्वैयक्तिक सम्ब धो को समझन का अवसर मिलता है।

सम्प्रेषण-व्यवस्था के विषय म साइमन आदि न एक अच्छा उदाहरण[1] दिया है—द्वितीय विश्वयुद्ध मे जापान ने पल हारबर के अमरिका व मानक अड्डे पर अचानक आक्रमण कर बहुत अधिक क्षति पहुचाई थी। यह क्षति रोकी ना सकती थी अथवा कम की जा सकती थी क्योकि एक समाचार एसा प्राप्त हुआ था जिसम सम्भावित आक्रमण की चेतावनी दी गई थी किन्तु इस चेतावनी का उच्च स्तर पर नही पहुचाया जा सका। दूसरे आक्रमण के पहले राडार के माध्यम स एक व्यक्ति ने अपरिचित वायुयानो को पल हारबर की ओर चलते देखा था किन्तु अचानक प्राप्त इस सूचना को हवाई सूचना निर्देशक के पास तक नही पहुचाया जा सका। ये दोनो ही उदाहरण सन्य वस्तु का सचार (सम्प्रषण) व्यवस्था क उचित न होने की ओर सकेत करते ह यदि सम्प्रषण (सचार व्यवस्था) ठीक होती और आक्रमण की पूव सूचना व अनुसार कार्य किया जाता तो पल हारबर की घटना कुछ दूसरे प्रकार की होती। सन्य प्रशासन म सचार की विस्तृत व्यवस्था को विशेष रूप स विकसित किया गया है तथा किस प्रकार सूचनाए प्राप्त हो गी और उन्ह किस प्रकार भेजा जाएगा आदि तकनीको का अधिक विस्तार के साथ विकास किया गया है। इस व्यवस्था द्वारा ही शत्रु की गतिविधि उनकी तयारी तथा उनक कमजोर भाग का पता लगाते हैं तथा इसी क अनुरूप स य सचालन म महत्वपूर्ण निणय लिए जाते हैं। दूसरे शब्दो म सगठन का समस्त व्यवस्था और उसके काय बिना उचित सचार साधन और व्यवस्था के अव्यावहारिक और महत्त्वहीन हो जाएँगे। इसी दृष्टि म साइमन न कहा है कि उस व्यक्ति के लिए जो स्वय ही निणय लेता है और स्वय ही उस निणय को कार्यान्वित करता है सम्प्रषण की कोई समस्या नही परन्तु हम उस सगठन भी नही कह सकते।[2]

सम्प्रषण अथवा सचार या सन्देशवाहन की कुछ प्रमुख परिभाषाओं पर दृष्टिपात करन से हम इसका अथ और अधिक स्पष्ट हो जाएगा—

ब्राउन— सम्प्रषण विचारो तथा भावनाओ का एक व्यक्ति स दूसरे व्यक्ति को स्थानान्तरित करने की प्रक्रिया है—इसका उद्देश्य सूचना पाने वाल व्यक्ति स समझ पदा करना है।

एलन यू स ए— सम्प्रषण उन सब बातो का योग है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क म समझ उत्पन्न करने की दृष्टि से चाहता है। इसम बात कहन सुनने एव समझने की एक विधिवत् तथा निरन्तर प्रक्रिया सम्मिलित की जाती है।

कीटियर एण्ड हारवुड— सम्प्रषण वह प्रक्रिया है जिसस एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का ध्यान किसी याददाश्त का भार आकर्षित करता है।

1 S mon & others op t p 218
2 S mon Adm st t B h r p 150.

न्यूमन एवं समर के अनुसार— सन्देशवाहन दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य तथ्यों, विचारों, सम्मतियों अथवा भावनाओं का विनिमय है।

केनाज एवं गिलसन— सन्देशवाहन शब्दों, पत्रों, चिह्नों अथवा समाचारों का आदान प्रदान करने का समागमन है और एक प्रकार से यह संगठन के एक सदस्य द्वारा दूसरे व्यक्ति से अर्थ एवं समझदारी में हिस्सा बटाना है।

फ्रेड जी मायर— सन्देशवाहन शब्दों, पत्रों अथवा सूचना विचारों, सम्मतियों का आदान-प्रदान करने का समागमन है।

कीथ डेविस— सन्देशवाहन वह प्रक्रिया है जिसमें सन्देश और समझ को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाया जाता है।

पीटरसन एवं प्लीमन— सन्देशवाहन वह प्रक्रिया है जिसमें प्रसारण के वे समस्त साधन सम्मिलित होते हैं जिनके द्वारा विचारों और सूचना या अनुप्रेरणाएं भेजी पहुंचाया जाता है तथा उनकी जानकारी व्यक्तियों एवं व्यक्तियों के समूह को दी जाती है।

हैलियट एवं विलियम— प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में ज्ञान और अनजान में व्यक्त की गई भावनाएं, प्रवृत्तियाँ और इच्छाएँ सम्मिलित रूप में सन्देशवाहन हैं।

सभी परिभाषाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि सम्प्रेषण या संचार या सन्देशवाहन एक सतत् प्रक्रिया है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति अपने सन्देशों, विचारों, तर्कों अपनी भावनाओं और सम्मतियों आदि का परस्पर विनिमय करते हैं। इसका उद्देश्य विचारों का प्रसार करना है। यह एक ऐसी युक्ति है, एक ऐसी कला है जिसके माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। इसके लिए शब्दों, पत्रों, चिह्नों अथवा अन्य उपलब्ध साधनों का प्रयोग किया जा सकता है।

सम्प्रेषण के उद्देश्य
(Objectives of Communication)

सम्प्रेषण का प्रधान उद्देश्य किसी व्यक्ति, समूह या तथ्य में परिवर्तन करना या प्रतिकूल प्रवृत्तियों को समाप्त करना है। सम्प्रेषण के विभिन्न उद्देश्यों को हम इस प्रकार रख सकते हैं—

(1) आदेशों और निर्देशों का सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को सही तथा स्पष्ट हस्तान्तरण करना।
(2) कर्मचारियों को संस्था की प्रगति से अवगत रखना।
(3) विचारों तथा सूचनाओं का स्वतन्त्र आदान प्रदान करना।
(4) संस्था की नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों से कर्मचारियों को भली प्रकार अवगत कराना ताकि किसी भी कठिनाई के समय सम्बन्धित अधिकारी से तुरन्त सम्पर्क किया जा सके।
(5) संगठन के कर्मचारियों की विकास सम्बन्धी जानकारी प्रेषित करना।

(६) संस्था के प्रबन्ध में कर्मचारियों से आवश्यक सूचनाएँ और सुझाव प्राप्त करना।

(७) समुचित संचार या सम्प्रेषण व्यवस्था के माध्यम से मधुर मानवीय सम्बन्धों का निर्माण करना ताकि औद्योगिक शान्ति बनी रहे।

(८) एक निश्चित विचार प्रवाह का ढाँचा तैयार करना ताकि गलत धारणाएँ नहीं पनप पाएँ।

(९) कर्मचारियों के आवागमन को कम करना और बन्द करने का प्रयत्न करना।

(10) कर्मचारियों की कार्य के प्रति इच्छा जागृत करना और उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि के प्रयास करना।

(11) संस्था में नवीनीकरण को स्वीकार करने के लिए कर्मचारियों को तैयार करना।

हाज एवं जानसन ने लिखा है कि सम्प्रेषण का मुख्य कार्य सामाजिक सम्बन्धों को सुगम बनाना है। प्रभावी सम्प्रेषण औद्योगिक सम्बन्ध के क्षेत्र में मुख्य भूमिका का निर्वाह करता है। चार्ल्स ई. रेडफील्ड ने ठीक ही लिखा है कि सम्प्रेषण में ऐसी शक्ति है कि वह एक संगठन को या तो सुदृढ़ कर सकता है या प्रायः नष्ट कर सकता है। पाश्चात्य विकसित देशों में तो सम्प्रेषण किसी भी संगठन या उद्योग के लिए उपस्नेहक तेल (Lubricating oil) का काम करता है।

सम्प्रेषण का संगठन एवं क्षेत्र
(Organisation and Scope of Communication)

सम्प्रेषण प्रबन्ध के हाथों में एक अत्यन्त प्रभावशाली अस्त्र है जिसके माध्यम से वह प्रबन्ध का कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न करता है और व्यावसायिक तथा औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। सम्प्रेषण के माध्यम से ही संस्थान नियोजन संगठन समन्वय निर्देशन निर्णयन नेतृत्व नियन्त्रण आदि की क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। औद्योगिक विकास के प्रारम्भिक चरणों में चाहे सम्प्रेषण का महत्त्व न रहा हो लेकिन आधुनिक समय में इस उपकरण की उपेक्षा करने वाले अब संस्था को—विशेषकर एक बड़ी संस्था को—असम्भव माना जाने लगा है। आज औद्योगिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में अधिक तथा अनौपचारिक क्रियाओं में सम्प्रेषण का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है और फलस्वरूप इसके क्षेत्र का पर्याप्त विकास हुआ है। सम्प्रेषण के विकास का जिससे हमें इसके क्षेत्र का बोध होता है अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों में कर सकते हैं—

(क) एकमार्गीय सम्प्रेषण (One way Communication)

(ख) द्विमार्गीय सम्प्रेषण (Two-way Communication)

(ग) त्रि दशा सम्प्रेषण (Three dimensional Communication)

(क) एकल मार्गीय सम्प्रेषण
(One way Communication)

सुदूर प्राचीन काल में सम्प्रेषण का क्षेत्र बहुत सकुचित था। उस समय औद्योगिक तथा व्यावसायिक क्षेत्र में सम्प्रेषण का स्वरूप केवल उच्च अधिकारियों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को निर्देश देना मात्र था। अधीनस्थों को यह अधिकार नहीं था कि वे अपने सुझाव, शिकायतें, परिवेदनाएं आदि उच्चाधिकारियों तक पहुंचाए। दूसरे शब्दों में अधीनस्थों का कार्य—"यह प्रश्न मत करो वरन् करो अथवा मरो" उक्ति का अर्थात् असैनिक नियन्त्रण पूर्ण पालन करना प्रमुख था। यह एकल मार्गीय सदेशवाहन था। यदि हम सन्देशवाहन के या सम्प्रेषण के इस रूप की प्रमुख विशेषताओं को देखें तो हमें इसका स्वरूप और क्षेत्र भली प्रकार स्पष्ट हो जाए।—

1. एकल मार्गीय सम्प्रेषण अधिकारियों से अधीनस्थों को प्रेषित किए जाते हैं अर्थात् सन्देशों और निर्देशों का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है।

2. चूंकि सन्देशों, निर्देशों आदि का प्रवाह एकतरफा है अर्थात् अधिकारियों से अधीनस्थों की ओर ही होता है अतः अधीनस्थों को अपने सुझाव, विचार, शिकायत आदि अधिकारियों तक भेजने का अधिकार नहीं होता।

3. सम्प्रेषण के इस स्वरूप में अधिकारियों द्वारा दिए गए आदेशों का विशेष महत्त्व होता है और अधीनस्थों का उनका अक्षरशः पालन करना होता है।

4. चूंकि अधीनस्थों के साथ अधिकारी अथवा प्रबन्धक का दृष्टिकोण न अपनाते अतः कर्मचारियों में भय का वातावरण बना रहता है। संस्था में कर्मचारी मनुष्य की भाँति नहीं वरन् मशीन की तरह काम करते हैं।

5. ऐसी सम्प्रेषण प्रणाली वाली संस्था में कर्मचारियों में कार्य के प्रति रुचि, उत्साह और निष्ठा का अभाव पाया जाता है।

चूंकि औद्योगिक विकास के प्रारम्भिक चरणों में उत्पादन का कार्य छोटे पैमाने पर किया जाता था और कार्य प्रायः भिन्न भिन्न स्थानों पर एक परिवार के मुखिया की देखरेख में परिवार के ही विभिन्न सदस्यों द्वारा कर लिया जाता था अतः एकल मार्गीय सम्प्रेषण ही प्रभावी था। कार्य के सम्बन्ध में परिवार के सदस्यों को मुखिया से ही आदेश मिलते थे लेकिन ज्यों ज्यों औद्योगिक विकास होता गया एक ही संस्था में विभिन्न परिवारों और क्षेत्रों के सैकड़ों लोग काम करने लगे सम्प्रेषण का एकल मार्गीय प्रणाली का महत्त्व कम हो गया।

(ख) द्वि मार्गीय सम्प्रेषण
(Two-way Communication)

औद्योगिक विकास के साथ-साथ उत्पादन के पैमाने में वृद्धि होने से सम्प्रेषण के क्षेत्र का भी विकास हुआ। यह अनुभव किया जाने लगा कि बड़े उद्योगों में कार्य

यही पर्याप्त नहीं है कि उच्चाधिकारी ही अधीनस्थों को आदेश या निर्देश प्रेषित करें वरन् यह भी आवश्यक है कि वे अधीनस्थों से आवश्यक सुझावों का स्वागत करें और उनकी शिकायतों, परिवेदनाओं, प्रतिक्रियाओं आदि से परिचित हों। दूसरे शब्दों में दुतरफा सम्प्रेषण व्यवस्था जरूरी समझी जाने लगी है। फलस्वरूप दुतरफा या द्विमार्गीय सम्प्रेषण का विकास हुआ। सम्प्रेषण का यह रूप ही वर्तमान समय में अधिक प्रचलित है।

द्विमार्गीय सम्प्रेषण की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. आदेश और निर्देश अधिकारियों को अधीनस्थों को प्रेषित किए जाते हैं अर्थात् इनका प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है।

2. साथ ही अधीनस्थ भी अपने सुझाव, शिकायतें, प्रतिक्रियाएं आदि उच्चाधिकारियों को भेजते हैं।

3. यद्यपि इस व्यवस्था में भी एकल मार्गीय सम्प्रेषण की भांति आदेशों और निर्देशों का स्थान महत्वपूर्ण होता है लेकिन अधीनस्थों द्वारा उनका अक्षरशः पालन उतना बाध्यकारी नहीं होता है क्योंकि अधीनस्थ अपने रचनात्मक सुझाव भेज सकते हैं अतः आदेशों और निर्देशों में परिवर्तन सम्भव होता है।

4. अधीनस्थों के सुझावों और विचारों पर ध्यान दिया जाता है और कार्य के प्रति इच्छा जाग्रत कर उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि के प्रयास किये जाते हैं।

5. द्विमार्गीय सम्प्रेषण व्यवस्था में अधीनस्थों के साथ मानवीय दृष्टिकोण अपनाया जाता है। उनकी शिकायतों और कठिनाइयों पर ध्यान दिया जाता है तथा उनका निराकरण किया जाता है। इस प्रकार मानव सम्बन्ध दृष्टिकोण पर समुचित बल दिया जाता है तथा उनका निराकरण किया जाता है। कर्मचारी संस्था में केवल मशीनों के पुर्जे की तरह नहीं बल्कि मनुष्य की तरह काम करते हैं।

6. कर्मचारियों में भय का वातावरण नहीं रहता। वे एक स्वतंत्र वातावरण में काम करते हैं जहाँ अधिकारी उनके सुझावों और शिकायतों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और वे अधिकारियों के उचित आदेश निर्देशों का मानने को तत्पर रहते हैं।

7. यह सम्प्रेषण व्यवस्था प्रजातन्त्रीय है जिससे कर्मचारियों में कार्य के प्रति रुचि, उत्साह और निष्ठा का भाव बना रहता है।

(ग) त्रि-दिशा सम्प्रेषण

(Three-dimensional Communication)

आज के लोक-कल्याणकारी तथा औद्योगिक युग में द्विमार्गीय सम्प्रेषण तो लगभग अनिवार्य हो गया है पर साथ ही त्रि-दिशा सम्प्रेषण का अभी विकास हो रहा है। प्रबन्ध के क्षेत्र में नए अनुसन्धान हुए हैं और अब धन्धाय तकनीकी में आमूल चूल परिवर्तन आ गये हैं। आज यह स्वीकार किया जाने लगा है कि केवल

अधिकारियों और अधीनस्थों के मध्य सम्प्रेषण भी पर्याप्त नहीं है। किसी संस्था में विभिन्न विभागों में कार्यरत व्यक्तियों के बीच विचारों के समागमन के साथ साथ संस्था के बाहर के विभिन्न वर्गों तथा सरकार से भी सम्प्रेषण का आदान प्रदान आवश्यक है। इस प्रकार त्रिदिशा सम्प्रेषण प्रक्रिया में निम्नलिखित सम्प्रेषण सम्मिलित हैं—

(i) इण्टर-स्केलर सम्प्रेषण (Inter-scaler Communication)

(ii) इण्ट्रा स्केलर सम्प्रेषण (Intra-scaler Communication)

(iii) सगठनेत्तर सम्प्रेषण (Extra organisational Communication)

(i) इण्टर स्केलर सम्प्रेषण—सम्प्रेषण की प्रक्रिया में एक संस्था के अलग अलग स्तर के अधिकारियों के बीच संदेशों का आवागमन या आदान प्रदान होता है। उदाहरणार्थ जनरल मनेजर विभागीय मनेजर और सुपरवाइजर तक आदेश निर्देश सूचनाएं आदि का सम्प्रेषण होता है और सुपरवाइजर से क्रमश विभागीय मनेजर तथा जनरल मनेजर तक सुझाव शिकायतें विचार आदि भेजे जाते हैं। इसी प्रकार यदि किसी प्रतिष्ठान के प्रमुख कार्यकारी अधिकारी और श्रमिकों के बीच सन्देशवाहन या सम्प्रेषण होता है तो यह भी इण्टर स्केलर सम्प्रेषण कहलाएगा। वास्तव में इस व्यवस्था में दो भिन्न स्तर के अधिकारियों में अथवा कर्मचारियों के मध्य विचारों का आदान प्रदान होता है।

(ii) इण्ट्रा स्केलर सम्प्रेषण—सम्प्रेषण की इस प्रक्रिया में सन्देशों का आदान प्रदान समान स्तर के अधिकारियों अथवा कर्मचारियों के मध्य होता है। इसे 'क्रास कॉन्टेक्ट सम्प्रेषण' (Cross Contact Communication) भी कहते हैं। दैनिक कार्यकलापों में प्रायः इस प्रकार का सम्प्रेषण बहुत प्रचलित है। निरन्तर एक विभाग के अधिकारी द्वारा अपने ही समकक्ष दूसरे विभाग के अधिकारी से परामर्श चलता रहता है जिससे अनेक समस्याएं तुरन्त समय समय पर सुलझती रहती हैं और विभिन्न विभागों के बीच कटुता उत्पन्न नहीं हो पाती या प्रतिगामी वातावरण नहीं बन पाता। इण्ट्रास्केलर सम्प्रेषण से प्रबन्धकीय क्षमता का विकास होता है। यह प्रणाली आपसी समझ में वृद्धि करती है समूह एकता को प्रभावित करती है मनोबल बढ़ाती है और अनुपूरक सूचनाएं उपलब्ध कराती है। किन्तु इसमें एक खतरा भी है। यदि इण्ट्रा-स्केलर सम्प्रेषण प्रक्रिया को अत्यधिक महत्त्व दिया गया और सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा एक विशिष्ट स्तर के प्रबन्धक वर्ग के हित के लिए प्रयुक्त किया गया तो यह संस्था को कमजोर बना देती है।

(iii) सगठनेत्तर सम्प्रेषण—सम्प्रेषण की इस प्रक्रिया में संस्था के अधिकारियों और बाहर के व्यक्तियों के मध्य सन्देशों विचारों का आदान प्रदान होता है। एक संस्था के अधिकारी सरकार उपभोक्ता श्रम-संघ आदि को अपने सन्देश सम्वाद या विचार प्रेषित करते हैं और दूसरी ओर से भी ऐसा ही किया

जाता है। इस प्रकार के सम्प्रेषण में अधिकारियों को संस्था के सम्बन्ध में बाहरी व्यक्तियों या संस्थाओं से महत्त्वपूर्ण सूचनाएं मिलती रहती हैं।

स्पष्ट है कि सम्प्रेषण का क्षेत्र अधिकाधिक व्यापक होता जा रहा है। यह संस्था के उच्चाधिकारियों और कर्मचारियों के बीच या संस्था के विभिन्न समकक्ष अधिकारियों के बीच या अधिकारियों या कर्मचारियों के बीच ही नहीं रहा है बल्कि संस्था के अधिकारियों और संस्था के बाहर के व्यक्तियों के बीच होने लग गया है। वास्तव में उद्योग अथवा व्यवसाय के प्रत्येक क्षेत्र में विकसित होने रहने पर स्वाभाविक है कि औद्योगिक या व्यावसायिक सम्प्रेषण का क्षेत्र भी बढ़ता। यह अवश्य है कि इसकी उपयोगिता और सार्थकता इस बात पर निर्भर है कि यह कहाँ तक प्रभावी रूप में सम्पन्न होता है।

सम्प्रेषण के माध्यम
(Media of Communication)

सम्प्रेषण अनेक माध्यमों द्वारा सम्भव है जिन्हें तीन मुख्य वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(क) श्रव्य (Audial) अर्थात सुनना—इस माध्यम के उदाहरण हैं—सम्मेलन, समितियां, साक्षात्कार, टेलीफोन, रेडियो प्रसार, जनसभाएं आदि।

(ख) दृश्य (Visual) अर्थात देखना—इस माध्यम के अन्तर्गत लिखित सम्प्रेषण यथा—परिपत्र, पुस्तिकाएं, प्रतिवेदन, विवरणिका, ज्ञापन, आदि तथा चित्रण (फोटो, पोस्टर, रंगचित्र, झण्डे, स्टान्ड्स आदि) सम्मिलित हैं।

(ग) दृश्य-श्रव्य (Audio visuals) अर्थात देखना और सुनना दोनों—इस माध्यम के उदाहरण बोलते चलते चित्र, दूरदर्शन, यन्त्रिगत प्रदर्शन आदि हैं।

उपर्युक्त तीनों में से प्रत्येक माध्यम के अपने-अपने गुण हैं तथा अपनी अपनी सीमाएं हैं। यह प्रबन्ध अथवा निष्पादन पर निर्भर है कि वह इस बात का निर्णय करे कि कब कौनसा सम्प्रेषण माध्यम उपयुक्त होगा। आजकल व्यापारिक और प्रशासकीय दोनों ही प्रकार के संगठनों में सम्प्रेषण को प्राथमिकता करने के लिए सम्मेलन प्रणाली (Conference Method) का प्रयोग बढ़ रहा है। यह प्रयोग अधिक लोकप्रिय इसलिए हो रहा है क्योंकि इसमें विलम्ब नहीं होता, पत्र व्यवहार भी कम होता है और लालफीताशाही नहीं पनप पाती। मिलट ने सम्मेलन प्रणाली के महत्त्वपूर्ण उपयोगों का उल्लेख किया है यथा—(i) समस्या सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होना (ii) समस्या के समाधान में सहायता मिलना (iii) निर्णय की स्वीकृति और निष्पादन की सुगमता (iv) संगठन में काम करने वाले अधिकारियों में एकता की भावना का प्रोत्साहन (v) कर्मचारी वर्ग के मूल्यांकन में सुविधा एवं (vi) प्रशासकीय कर्मचारियों में सूचना का आदान प्रदान को सुगमतापूर्वक प्रोत्साहन देना। सम्मेलन प्रणाली का एक मुख्य लाभ यह है कि इसमें लोगों में

काफी रुचि बन जाती है समूह के सदस्य सम्मेलन म परी तरह और सामान्य रूप से भाग ले सकते हैं जिससे उनको पारस्परिक सफलता के प्रति समुचित सन्तोष होता है और परिणामो का सगठन के सभी सदस्य सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। सम्मेलन प्रणाली के फलस्वरूप सामूहिक साहस का विकास होता है और अनौपचारिक सम्बन्धो का विस्तार होता है किन्तु सम्मेलन प्रणाली की अपनी सीमाए भी हैं। अनुमान समिति (नौवा प्रतिवेदन) के मतानुसार सम्मेलनो म काफी वृद्धि हुई है। कभी कभी तो वे कितने दुरूह हो जाते हैं कि उनम भाग लेने वाले अधिकारियो के लिए सम्बन्धित विषय वस्तु के साथ पूरा न्याय करना असम्भव हो जाता है और व्यवहार म चलो तथा टिप्पणी लिखने के कार्यों म कमी होने के साथ ही कभी कभी तो पत्र व्यवहार काफी लम्बे समय तक चलते रहते हैं क्योंकि सम्बन्धित विषय पर प्रकट विभिन्न दृष्टिकोणो की टिप्पणी करनी पडती है उन्हे सुधारना पडता है तथा उनका समाधान करना पडता है। इसीलिए सवसम्मत विवरण तयार करने म विलम्ब हो जाता है तथा कभी कभी तो चर्चाए अधूरी रह जाने के कारण उन्हे फिर सम्मेलन बुलाना आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी एक ही अधिकारी को एक ही दिन म एक स अधिक सम्मेलनो मे भाग लेना पडता है और ऐसी दशा म वह प्रत्येक सभा के लिए परी तयारी नही कर पाता। परिणाम यह होता है कि वह चर्चाओ म पूरा योग नही दे पाता। सक्षेप म सम्मेलन प्रणाली नस्तियो (मिसिलो) पर नोट लिखने की मन्द प्रक्रिया की अपेक्षा अधिक व्यापक सिद्ध हो रही है।[1]

सम्प्रेषण की प्रभावशीलता को बढाने वाले तत्त्व

किसी भी विशाल सगठन म सम्प्रेषण की प्रभावशीलता बढाना एक कठिन काम है। इस दृष्टि से निम्नलिखित तत्त्वो की उपस्थिति आवश्यक है—

1. सम्प्रेषण यथासम्भव स्पष्ट और सभी आवश्यक बातो स युक्त होना चाहिए—सम्प्रेषण अथवा सचार की शब्दावली का विस्तृत होना आवश्यक है। महत्त्वपूर्ण शब्दो को बार बार दोहरा देना तथा महत्त्वपूर्ण आदेशो और निर्देशो पर विशेष बल देकर उन्हे व्यक्त करना भी सम्प्रेषण की सफलता का द्योतक है।

2. सम्प्रेषण की प्रभावशीलता के लिए आवश्यक है कि उच्चाधिकारियो और अधीनस्थ अधिकारियो के बीच विचारो की एकरूपता कायम रहे ताकि अधिकारियो का कर्मचारियो पर विश्वास रहे और कर्मचारी अपने कार्यों म रुचि लें।

3. सूचना पर्याप्त हो, अधूरी नही अर्थात् उसे इस ढग स प्रेषित किया जाए कि उसका अभिप्राय एकदम स्पष्ट हो जाए। सूचना का कोई अश ऐसा नही होना चाहिए जिसे पढकर कर्मचारियो के मन म प्रश्न उठते रहे और उनका

1 अवस्थी एव माहेश्वरी से उद्धृत वही पृष्ठ 28?

समाधान न हो पाए। बात स्पष्ट, विस्तारपूर्वक और आवश्यकतानुसार नपे-तुले शब्दों में ही कही जानी चाहिए।

4. सूचना यथासमय अर्थात् सही समय पर दी जानी चाहिए। अधिकारियों को पूरा ध्यान रखना चाहिए कि किस मौके पर क्या आदेश देना उपयुक्त है। प्रत्येक संगठन का कर्त्तव्य है कि वह कार्यकुशलता बढ़ाने के आशय से जो भी निर्देश दे उन्हें कर्मचारियों तक पहुँचाने में विलम्ब न हो।

5. सम्प्रेषण देने से पूर्व संचार या सम्प्रेषण प्राप्तकर्त्ता को यदि अधिकारी पहले से ही अपने विश्वास में ले तो सम्प्रेषण की प्रभावशीलता बढ़ जाना सम्भव है।

6. सम्प्रेषण की स्वाभाविकता इस बात पर भी निर्भर है कि समय समय पर यह पता लगाया जाए कि अधीनस्थ कर्मचारियों पर संचार का कितना प्रभाव पड़ा है अथवा वे संचार को किस सीमा तक समझ सके हैं।

मिलेट ने सम्प्रेषण को प्रभावशाली बनाने वाले सात तत्वों का उल्लेख किया है—(1) संचार स्पष्ट हो (2) प्राप्तकर्त्ता की प्रत्याशा के अनुरूप हो (3) समुचित हो, (4) समयानुसार हो (5) एक जैसा हो (6) लोचदार हो एवं (7) स्वीकार्य हो। टैरी ने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जिन आठ बातों की सिफारिश की है उन्हें डा. अवस्थी एवं महेश्वरी ने इन शब्दों में गिनाया है—

(i) स्वयं पूरी जानकारी हासिल कर लीजिए
(ii) परस्पर विश्वास स्थापित कीजिए
(iii) अनुभव का कोई एक समान आधार खोज लीजिए
(iv) श्रोता का ध्यान रखिए
(v) उदाहरणों तथा दृश्य साधनों को काम में लाइए एवं
(vi) विलम्बकारी प्रतिक्रियाओं को व्यवहार में न लाइए।

सम्प्रेषण की कठिनाइयाँ या उसकी प्रभावशीलता को घटाने वाले तत्त्व

सम्प्रेषण के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ और अवरोध हैं। वास्तव में जो तत्त्व सम्प्रेषण के प्रभाव में वृद्धि करते हैं यदि उनका प्रयोग न किया जाए तो सम्प्रेषण का प्रभाव घटने लगता है। सम्प्रेषण के प्रभाव को घटाने वाले तत्त्व मुख्यतः इस प्रकार हैं—

(1) भाषा की अस्पष्टता असंगति और जटिलता हानिकारक है। शब्दों के बाहुल्य से सम्प्रेषण अर्थात् संचार कठिन हो जाता है। कितनी बार अच्छे से अच्छे शब्द भी विचारों को समुचित रूप में अभिव्यक्त नहीं कर पाते। डा. अवस्थी एवं महेश्वरी के अनुसार विशिष्टीकरण ने, जो आधुनिक शासन की विशेषता है

अपनी एक अलग निरर्थक शब्दावली विकसित करती है जो सचार का निरोधन करती है।

2. विफनर ने सैद्धान्तिक बाधाओं का उल्लेख किया है। उनके ही शब्दों मे—पृष्ठभूमि शिक्षा और प्रत्याशा मे अन्तर होने के कारण सामाजिक एवं राजनीतिक विचारो मे भी अन्तर आ जाता है। सम्भवत प्रभावशाली सम्प्रेषण मे यह सबसे बडी बाधाए हैं जिन्हे पार करना सबसे कठिन है।

3. सगठन मे विभिन्न व्यक्तियो की पद प्रतिष्ठा तथा उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि भी सम्प्रेषण मे अवरोध उत्पन्न करती है। प्राय देखा गया है कि उच्चाधिकारी अपनी प्रतिष्ठा का अर्थ जिस रूप मे लेते हैं वह सम्प्रेषण व्यवस्था के लिए कई बार विनिकारक सिद्ध होती है। जो अधिकारी जरा सी बात पर नाराज होकर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने के अभ्यस्त होते हैं उनसे अधीनस्थ प्राय डरते रहते हैं और ऐसा प्रयत्न करते है कि वे उन अधिकारियो के सामने जितना कम आए उतना ही अच्छा है। ऐसे अधिकारियो का व्यक्तित्व सगठन मे सामान्य पारस्परिक सम्बन्धो को विकसित नही होने देता।

4. सम्प्रेषण की प्रभावशीलता के मार्ग मे एक अन्य बाधा पद सोपान सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न स्तरो की है। अध्यक्ष अधिकारियो और अधीनस्थ कर्मचारियो के बीच सम्प्रेषण व्यवस्था अनेक स्तरो मे से होकर गुजरती है। इन विभिन्न स्तरो पर सचार सम्प्रेषण भाषा के विभिन्न अर्थ लगाए जा सकते हैं जिससे सम्प्रेषण के सन्देश के बारे मे भ्रम उत्पन्न होते हैं और कभी कभी कर्मचारी वर्ग अपने उच्चाधिकारियो को प्रसन्न करने के लिए उन्हे अनुकूल अर्थ लगा देते हैं। साइमन आदि का कहना है कि—सम्प्रेषण को अनेक कारणो से प्रसन्न करने वाली बातो की ओर सचालित कर दिया जाता है गलतियो से सम्बन्धित सूचनाओ को नही भेजा जाता।

5. सगठन का आकार और विशिष्टीकरण भी सम्प्रेषण के सामान्य प्रवाह मे रुकावट डालते हैं। सगठन का आकार जितना अधिक विस्तृत होगा उतनी ही अधिक कर्मचारियो को सम्बद्ध करने की आवश्यकता होगी। इसके फलस्वरूप सम्प्रेषण व्यवस्था का जाल और अधिक जटिल हो जाएगा। विशिष्टीकरण की बाधा भी कम नहीं है। यह बाधा किस प्रकार सम्प्रेषण व्यवस्था को प्रभावित करती है इसे स्पष्ट करते हुए लोक प्रशासन के एक विद्वान ने लिखा है कि सगठन की विभिन्न इकाइयो के आपसी सम्बन्ध और उनमे सूचना सचार उनकी अपनी विशिष्टता के कारण प्राय समुचित रूप से नही हो पाता है लाइन की कार्य प्राय सगठन के कार्यक्रम के क्रियान्वयन से सम्बन्ध रखती है। इसी प्रकार स्टाफ की इकाई तथा स्टाफ के व्यक्ति विशेष कार्य के लिए रहते हैं। प्राय स्टाफ की इकाई को जो अपने विशिष्ट ज्ञान के कारण ही स्टाफ की सज्ञा प्राप्त करता है उनके विशिष्ट ज्ञान के

स दभ म ही समझा जा सकता है। इस प्रकार का विशिष्ट नान तान के पास रहना आवश्यक नही है अत स्टाफ की शाब्दिक अभिव्यक्तिया को उसी अथ म ग्रहण किया जा सकगा यह सदिग्ध रहता है। इसक अतिरिक्त विशिष्ट ज्ञान जहा भी हो वह समझदारी क दायर को सीमित करता है क्योकि उसे समझने म अपन विशिष्ट ज्ञान का ही आधार माना जाता है विशिष्ट नान के दायरे स बाहर निकलकर समझने की योग्यता और प्रवृत्ति बहुत कम नागा म होती है। इसा का परिणाम है कि एक ही तथ्य को विभिन्न अर्थो म ग्रहण किया जाता है। साइमन आदि ने इस प्रसग म एक अच्छा उदाहरण दिया है— यदि कही पर किशोर अपराध की सख्या अधिक हो जाती है तो पुलिस के अधिकारी का निष्कष होगा कि निरीक्षण के काय म पुलिस की सख्या और अधिक बढानी चाहिए मनोरजन विभाग का निष्कष होगा कि यह तथ्य किशारा क लिए अधिक विस्तृत कायक्रम रखन की आवश्यकता का सूचक है समाज कल्याण विभाग का निष्कष होगा कि अव्यवस्थित घर क बालको की अधिक देख रेख की आवश्यकता है इसक अतिरिक्त पुलिस विभाग जब तक इस समस्या के प्रति अधिक जागरूक होकर नही सोचगा तब तक यह भी सभव है कि वह इसकी सूचना अन्य विभागो को न भेज।

6 सम्प्रपण मे एक अवरोध सम्प्रपण अर्थात् सचार करन की इच्छा की कमी है। कुछ प्रब धक ता विश्वास ही नही करन कि प्रशासन भी कोई सरकारी प्रयत्न और सामूहिक प्रयास है। वे अपन अधीनस्थों क साथ विचार विमश करना आवश्यक नही समझते। नाच की ओर मे आन वाल सचार का न वे पसन्द करते हैं और न प्रात्साहित करते है। भागीदारी प्रब ध उनके योग्य वस्तु नही है।

7 सम्प्रपण क माग म एक बडी बाधा स्थाना की दूरी है। यद्यपि तार फोन आदि द्वारा सैंचार भजा जा सकता है तथापि कुछ भौगोलिक दूरियाँ हैं जहाँ सम्प्रपण (सचार यवस्था) स घन पयाप्त नही है।

8 यदि उच्च प्रशासक समय समय पर अपनी सम्प्रपण यवस्था की जाच न करे और उसम आवश्यक सुधारा क प्रति उदासीन रहें ता भी सम्प्रपण (सचार) को प्रभावशाली बनाए रखना कठिन है। सम्प्रपण-व्यवस्था क अच्छे परिणाम प्राय इसलिए नही निकलत कि उच्चाधिकारी यह सोचत हैं कि अधीनस्थ कमचारियो का आदेश प्रसारित करन मात्र म ही उसका काम पूरा हो जाएगा। आदेशा क क्रिया वयन क प्रति व जागरूक नही रहते और न ही उनक लिए अपन अधीनस्थ कमचारियो को प्रोत्साहित करन म रुचि लेते है। काम कम बात अधिक —यह उनका सिद्धान्त होता है।

सम्प्रपण यवस्था की इन बाधाओ को समुचित सुविधा और प्रयासो द्वारा मिटाया अथवा बहुत कुछ कम किया जा सकता है। सम्प्रपण-व्यवस्था का

प्रभावशाली होना इसके परिणामा पर निभर करता है। यदि निर्दिष्ट उद्देश्य प्राप्त हो जाता है तो सम्प्रपण व्यवस्था को सफल समझना चाहिए अ यथा नहीं।

सम्प्र पण के प्रकार
(Types of Communication)

अध्ययन की सुविधा की दृि से हम सम्प्रपण का निम्नलिखित तीन वर्गों म विभाजित कर सकत है—

(क) मौखिक लिखित एव सांकेतिक सम्प्रपण (Verbal Written and G stural Communication)

(ख) औपचारिक एव अनौपचारिक सम्प्रपण (Formal and Informal Commun cation)

(ग) नीच की ओर ऊपर की ओर तथा समतन सम्प्रपण (Downward Upward and Horizontal Communication)

सम्प्रपण क इन विभिन रूपा पर तनिक विस्तार स विवचन अपेक्षित है।

(क) मौखिक लिखित एव साकतिक सम्प्रेपण
(Verbal Written and Gestural Communication)

सम्प्रपण क वर्गीकरण का प्रथम आधार यह है कि स देश या निर्देश या तो मौखिक रूप म दिए जाए या लेखनी से लिख कर। कुछ अवसरा पर सवा । का सम्प्रपण सक्ता ावे भाव द्वारा भी ो सकता है।

(अ) मौखिक सम्प्रपण-
(Verbal Communication)

मौखिक सम्प्रपण से आशय यह है कि सवाद ाता द्वारा कोई सवाद अथवा सूचना मुख से उ चारण करके सवाद प्राप्तकर्त्ता को प्रषित की जाए। स प्रपण की यह विधि आज भा सर्वाधिक प्रचलित है। मौखिक स प्रपण दोनो पक्षो के मध्य प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा, टेलीफोन पर बात करके, विचार गोष्ठियो म भाग लेकर अथवा सम्मेलनों म उपस्थित होकर सूचना प्रसारण य त्रो के माध्यम से दिया जाता है। नारॅस ए पप्पल की मा यता है कि मौखिक श दो द्वारा पारस्परिक स प्रपण सम्प्रपण की सव श्रेष्ठ कला है। विभिन्न अनुस धानो म यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रब धक वग ा सम्प्रपणा म जितना समय व्यतीत होता है उसका कम से कम ~5/ भाग मौखिक सम्प्रपण म ही बीतता है।

मौखिक सम्प्रपण के लाभ सम्प्रपण के सभी साधनो म मौखिक सम्प्रपण अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसके निम्नलिखित मुख्य लाभो से हम इसका महत्त्व स्पष्ट होता है—

1 श्रेष्ठ न ा व प्रदान करने के लिए मौखिक सम्प्रपण अधिक उपयोगी है।

2 मौखिक सम्प्रपण मे कागज स्याही आदि का कोई व्यय नही होता और समय की भी काफी बचत होती है।

3 मौखिक सम्प्रपण प्रबन्धको के मानवीय दृष्टिकोण का प्रतीक है। प्रत्येक व्यक्ति म मान्यता प्राप्त करने की आकांक्षा होती है और जब प्रबन्धक मौखिक शब्दो द्वारा कर्मचारी की प्रशसा करते हैं उस गुण सम्मान देते हैं तो उसकी इस आकांक्षा की पूर्ति हो जाती है।

4 मौखिक सम्प्रेषण प्रबन्धक के क्षेत्र मे भागीदारी व्यवस्था को सरल बनाता है। प्रबन्धक किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर निर्णय लेने के लिए स था के अधिकारियो और कर्मचारियो को बुलाकर मौखिक रूप से विचार विमर्श करते हैं जिससे अनेक समस्याओ का समाधान भी हो जाता है अ वश्यक निर्णय भी ले लिए जाते हैं और सस्था के उद्देश्यो की प्राप्ति का माग अधिक सरल हो जाता है।

5 मौखिक सम्प्रेषण अधिकार प्रत्यायोजन को भी सरल बनाता है। अधिकारियो द्वारा अपने अधीनस्थो को अनेक अधिकार मौखिक रूप मे दे दिए जाते हैं। काय निष्पादन के बारे म आदेशो और निर्देशो को बार बार लिखित रूप म न देकर मौखिक रूप मे समझाने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार अधीनस्थो स मौखिक रूप म ही अधिकांश सूचनाए प्राप्त की जाती हैं।

6 मौखिक रूप से दिया गया स देश श्रोता पर तुरन्त प्रभाव डालता है।

7 मौखिक सम्प्रेषण म भावाभिव्यक्ति अधिक प्रभावोत्पादक और सरलता से समझने योग्य होती है, अत स देहो का तुरन्त निवारण हो जाता है।

8 सस्था म समूह भावना या टीम भावना के विकास म मौखिक सम्प्रेषण मुख्य भूमिका अदा करता है।

9 व्यवसाय की सफलता सस्था के अच्छ वातावरण पर निभर करती हैं और प्रबन्धक कर्मचारियो से व्यक्तिगत एव सामूहिक भेंट करके मौखिक वार्तालाप द्वारा उपयुक्त तथा लोकतान्त्रिक वातावरण तयार करते हैं।

10 मौखिक सम्प्रेषण द्वारा सन्देश तुरन्त प्रसारित होता है और फलस्वरूप किसी भी काम का क्रियान्वयन तुरन्त प्रारम्भ हो सकता है जिसस उत्पादन की गति मे भी वृद्धि होती है।

11 मौखिक सम्प्रेषण मे सवाद प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया की जानकारी सवाददाता को तुरन्त हो जाती है। सवाद प्राप्तकर्ता की मुख मुद्रा उत्साहपूर्ण या उदासीन हां (स्वीकृत) आदि स उसकी प्रतिक्रिया का तुरन्त अनुमान लगा लिया जाता है।

12 मौखिक सम्प्रेषण लिखित सम्प्रेषण की तुलना मे अधिक लचीला होता है क्योकि मौखिक सवाद म सुगमता से आवश्यकतानुसार परिवर्तन और सशोधन किया जा सकता है। साथ ही विस्तार स सवादो का स्पष्टीकरण भी हो सकता है।

13 मौखिक सम्प्रेषण से सवाददाता और सवाद प्राप्तकर्त्ता के मध्य पारस्परिक सद्विश्वास में वृद्धि होती है।

मौखिक सम्प्रेषण के दोष—यद्यपि मौखिक सम्प्रेषण अत्यधिक लोकप्रिय है और यह व्यवसाय की क्रियाओं में सुगमता लाता है तथापि व्यवसाय में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जिनमें मौखिक सम्प्रेषण प्राय अनुपयोगी सिद्ध होता है। मौखिक सम्प्रेषण के मुख्य दोष अथवा इसकी मुख्य कमियाँ निम्नलिखित हैं—

1 मौखिक सम्प्रेषण के लिए दोनों पक्षों (सवाददाता और सवाद प्राप्तकर्त्ता) का सवाद के प्रेषण के समय उपस्थित होना आवश्यक है। अत यदि कभी सवाद प्राप्तकर्त्ता उपलब्ध न हो तो मौखिक सम्प्रेषण नहीं किया जा सकता। इस प्रकार प्रत्यक्ष सम्पर्क के अभाव में सम्प्रेषण की यह विधि अनुपयुक्त है।

2 यदि दोनों पक्षों के बीच काफी दूरी होती है और सन्देश का प्रेषण टेलीफोन आदि द्वारा किया जाता है तो टेलीफोन करने पर काफी व्यय हो जाता है।

3 यदि मौखिक सन्देश काफी विस्तृत हो तो उसमें अस्पष्टता आ जाती है क्योंकि सन्देश प्राप्तकर्त्ता को सभी बातें एक साथ समझने में कठिनाई हो सकती है। यदि सन्देश प्रेषक और सन्देश प्राप्तकर्त्ता के बौद्धिक स्तर में अधिक अन्तर है तो सन्देश प्रेषक को अपना सन्देश बार बार समझाना पड़ेगा जिससे समय का भी अपव्यय होगा और फिर भी अस्पष्टता बनी रहेगी।

4 मौखिक सम्प्रेषण में लिखित साक्ष्य का अभाव होता है अत यदि दोनों पक्षों में से कोई भी पक्ष अपनी स्थिति से विमुख हो जाए तो कोई वैधानिक या अन्य कार्यवाही करने में कठिनाई उत्पन्न हो जाएगी। इसलिए अधिकारी महत्त्वपूर्ण आदेशों को अपने अधीनस्थों को प्राय लिखित रूप में देना अधिक उपयुक्त समझते हैं ताकि आदेश का अनुपालन न होने पर उनके विरुद्ध बिना किसी कठिनाई के अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सके।

5 मौखिक सम्प्रेषण भविष्य में सन्दर्भ के लिए अनुपयुक्त है। जिन सूचनाओं का सामयिक महत्त्व है उनके लिए तो मौखिक सम्प्रेषण ठीक है लेकिन जो सूचनाएँ व्यवसाय के भावी सन्दर्भ के लिए जरूरी हैं उनके लिए मौखिक सम्प्रेषण ठीक नहीं माना जा सकता। प्रबन्धक भविष्य के लिए जो निर्णय लेते हैं जो नीतियाँ निर्धारित करते हैं उनसे प्रबन्धकों और कर्मचारियों का मार्गदर्शन होता है अत इनका सम्प्रेषण मौखिक रूप में नहीं किया जा सकता।

6 मौखिक सम्प्रेषण में सवाददाता को सवाद के प्रेषण में प्राय सोचने के लिए कम समय मिलता है जिसके कभी कभी जल्दी में या तो सवाददाता द्वारा कठोर शब्द निकल जाते हैं या आवेश का सन्तुलन बिगड़ जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों पक्षों के बीच तनाव या अन्त मुटाव के बिन्दु उठ खड़े होते हैं।

मौखिक सम्प्रपण के साधन— मौखिक सम्प्रपण के साधनो म मुख्य ये है—

(1) प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (2) साक्षात्कार, (3) सयुक्त विचार विमर्श (4) भाषण (5) रेडियो (6) टलीफोन (7) टेलीविजन (8) श्रम सघ जो कि नियोजको और कमचारियो के मध्य सम्प्रपण म महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं (9) यात्री जो कि प्राय विक्रय प्रतिनिधि या इसी तरह के प्रतिनिधि होते हैं और जिनके माध्यम से ग्राहको और सस्था के मध्य सम्प्रपण की शृखला का निर्माण होता है और विपणन अनुसधान किया जाता है तथा उत्पादन-वृद्धि का प्रयास किया जाता है (10) सभाए तथा सम्मेलन एव (11) सेवीवर्गीय विभाग जिसकी स्थापना म जहाँ एक ओर कमचारी अपनी समस्याए सवीवर्गीय प्रबधक के सामने प्रस्तुत करते हैं वहाँ दूसरी ओर उन्हे इनके निदान के बारे म आवश्यक सहायता और सलाह प्राप्त होती रहती है।

(आ) लिखित सम्प्रपण

(Written Communication)

लिखित सम्प्रेषण का अभिप्राय सवाददाता द्वारा किसी सवाद को लिखित रूप से प्रेषित करने से है। लिखित सम्प्रपण के लिए पत्र पत्रिकाए, बुलटिन रिपोट पम्फलेट डायरियाँ हैण्डबुक मनुअल सुझाव पुस्तको आदि का प्रयोग किया जाता है। मौखिक और लिखित सम्प्रपण वास्तव म सम्प्रपण प्रक्रिया की दो धाराए हैं एक सिक्के के दो पहलू हैं।

लिखित सम्प्रपण के सम्बन्ध मे ध्यान रखने योग्य बातें— लिखित सम्प्रपण के सम्बन्ध म बडी सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। किसी सवाद को लिखते समय प्राय निम्न बातो पर ध्यान रखना आवश्यक है—

1 लिखित सवाद म सक्षिप्त और प्रचलित शब्दो का प्रयोग करना चाहिए।

2 सन्देश स्पष्ट सुन्दर और आकषक ढग स लिखा होना चाहिए।

3 सरल शब्दो और मुहावरो का प्रयोग करना चाहिए।

4 सन्देश की भाषा स्पष्ट और सुलझी हुई होनी चाहिए ताकि उसके अनेक अथ न निकलते हो।

5 व्यक्तिगत सवनामो यथा—तुम और वह—का प्रयोग करना चाहिए।

6 सवाद को छोटे छोटे वाक्यो तथा पराग्राफो म विभक्त करके लिखना चाहिए।

7 चार्टो उदाहरणो आदि का प्रयोग करना चाहिए ताकि सदेश का भली प्रकार स्पष्टीकरण हो सके।

8 वाक्य सरचना म एक्टिव वाइस (Active Voice) का प्रयोग होना चाहिए पसिव वाइस (Passive Voice) का नही।

9 सदेश का प्रत्येक शब्द उपयोगी होना चाहिए और अलकारो तथा विशेषणो का प्रयोग कम से कम करना चाहिए।

10 सदा तत्पूर्ण और साधारण शैली मे लिखा जाना चाहिए।

11 सवाद की भाषा शुद्ध भी हो ी चाहिए और नम्र भी।

12 संवाद म प्रस्तुत की गई सामग्री मे क्रमबद्धता और धारावाहिता होनी चाहिए।

13 यथासम्भव सवाद को टा प करवाकर ही प्रेषित करना चाहिए।

लिखित सदेश तैयार करन म उपरोक्त बातो का ध्यान रखना बहुत ही जरूरी है। यदि श्रा म सम्मान को ठेस पहुंचाने वाली भाषा का प्र ोग किया गया तो सम्ब ध कटु बन जाने और सदेश के निरर्थक हो जाने की आशका बनी रहगी। इन सभी बातो पर ध्यान अपेक्षित है जिससे कि लिखित सन्देश अधिक प्रभावी हो सकता है।

लिखित सम्प्रेषण के लाभ—मौखिक सम्प्रेषण व्यवस्था की कमियो को दूर करने के लिए लिखित सम्प्रेषण व्यवस्था अपनाई जाती है। लिखित सम्प्रेषण के मुख्य लाभ य हैं—

1 लिखित सम्प्रेषण मे दोनो पक्षो की प्रत्यक्ष उपस्थिति आवश्यक न हीं है

2 यदि दोनो पक्ष भिन्न भिन्न नगरो मे रहते हो अर्थात् एक दूसरे से बहुत दूर हो तो स न्देश लिखित रूप म डाक से भेजने पर कोई विशेष व्यय नहीं आता है। इस प्रकार दूर की स्थिति म सम्प्रेषण की यह विधि मौखिक सम्प्रेषण की तुलना म कम खर्चीली है।

3 लिखित सम्प्रेषण विस्तृत और जटिल सूचनाओ के लिए अधिक उपयुक्त है। ऐसी सूचनाओ को धीरे धीरे शांति के साथ समझा जा सकता है।

4 लिखित सदेश म स्पष्टता आ जाती है जिससे वह अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है। किसी बात के अनेक अर्थ निकाले जाने की सम्भावना कम रहती है।

5 लिखित सदेश भविष्य मे विवाद उठाने की सूरत म लिखित प्रमाण के रूप म प्रस्तुत किया जा सकता है।

6 लिखित स देश द्वारा कई व्यक्तियो को एक साथ सूचना दी जा सकती है। अलग अलग स्थानो पर रहने वाले लोगो को एक ही सूचना एक समय पर देने क लिए लिखित विधि सर्वोत्तम है।

लिखित सम्प्रेषण के दोष—लिखित सम्प्रेषण के भी अपने कुछ दोष हैं—

1 इसमे श्रम समय और धन का व्यय होता है। यदि सदेश छोटा है और प्रत्यक्ष रूप से दूसरे पक्ष को दिया जा सकता है तो ऐसे स देश को लिखकर भजने म श्रम, समय और धन का अपव्यय होगा।

2 कुछ अवसरो पर स देश विधि काफी विलम्बकारी बन जाती है। यदि किसी लिखित स देश म कोई भूल बन जाए तो एक छोटी सी बात को सूचित करने के लिए सन्देश नम्बर और सम्प्रेषण की पूरी प्रक्रिया को पुन दोहराना होगा जिससे सदेश सम्प्रेषण म अनुचित विलम्ब हो जाएगा।

3 लिखित सम्प्रेपण मे प्रत्यक्ष सम्पर्क का अभाव होने के कारण स देश के सम्ब ध म प्राप्तकर्त्ता की प्रतिक्रियाओ का ज्ञान प्र पक को शीघ्र नहीं मिल पाता।

4 लिखित सम्प्र पण म सवाद को गोपनीय रखना कठिन है जबकि मौखिक सम्प्र पण दोनो पक्षो तक ही सीमित रहता है जिससे उसम गोपनीयता ब नी रहती है।

5 लिखित सम्प्र पण से सवाद प्राप्तकर्त्ता को सवाददाता की भावनाओ की जानकारी नही हो पाती।

6 लिखित सम्प्र पण विधि विलम्बकारी है क्योकि सन्देश का आलेख तैयार करने, टाइप कराने, अधिकारी के हस्ताक्षर कराने प्र पण कराने आदि म काफी समय लग जाता है।

(इ) साकेतिक सम्प्रेपण

(Gestural Communication)

सम्प्रेपण की इस विधि म न बोलना पडता है और न लिखना पडता है बल्कि सवादो का सम्प्र पण सकेतो हावभावो आदि के द्वारा होता है। वतमान की आधुनिक प्रकृति कुछ ऐसी है कि अनेक सवाद ऐसे होते हैं जिन्हे बोलना या लिखना सम्भव नही होता और साकेतिक भाषा म ही सवादो को प्र पित किया जाता है। साकेतिक सम्प्र पण म पीठ थपथपाना कमचारी से हसकर हाथ मिलाना कमचारी के काय पर हसकर या सिर हिलाकर प्रशसा करना आख से इशारा करना मस्तिष्क पर तरह तरह की सलवटें डालना आदि को सम्मिलित किया जाता है। उल्लखनीय है कि अनेक प्रब धशास्त्री साकेतिक सम्प्रपण को मौखिक सम्प्र पण म ही सम्मिलित करना पस द करते हैं।

मौखिक बनाम लिखित सम्प्र पण

(Verbal Vs Written Communication)

यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि मौखिक और लिखित सम्प्र पण विधियो म स कौनसी विधि अपनाई जानी चाहिए। वास्तव म दोनो ही विधियो के अपने अपने गुण तथा दोष हैं और यह नही कहा जा सकता कि किस परिस्थिति म कौनसी विधि अधिक सफल होगी। इसके लिए प्रत्येक सगठन या सस्था म परिस्थितियो के अनुसार दोनो ही प्रकार की सम्प्र पण विधियो का प्रयोग किया जाता है। हमन न लिखा है कि— यदि प्रब धक केवल एक विधि को चुनता है तो उसे गम्भीर असफलता का सामना करना होगा।

(ख) औपचारिक एव अनौपचारिक सम्प्रेपण

(Formal and Informal Communication)

सम्प्र पण के दूसरे वग म औपचारिक एव अनौपचारिक सम्प्र पण को लिया जाता है।

औपचारिक सम्प्रषण
(Formal Communication)

जब संवाददाता और संवाद प्राप्तकर्त्ता के मध्य औपचारिक सम्बन्ध हों तो उनके बीच संवादों के आदान-प्रदान को औपचारिक सम्प्रेषण कहा जाता है। दोनों पक्षों के मध्य औपचारिक सम्बन्धों का निर्माण संगठन-चार्ट द्वारा होता है। इसी चार्ट के आधार पर अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का निर्धारण होता है और इन्हीं अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों द्वारा औपचारिक सम्प्रेषण के मार्ग निश्चित किए जाते हैं। सन्देश औपचारिक ढंग से लिखित रूप में ही प्रेषित किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि एक कार्यालय का व्यवस्थापक अपने अधीनस्थ कर्मचारी को विलम्ब से आने या धीमी गति से काम करने के कारण अनुशासनात्मक कार्यवाही की चेतावनी देता है तो ऐसी चेतावनी लिखित रूप में औपचारिक रीति से प्रेषित की जाएगी। कर्मचारी द्वारा यह लिखित चेतावनी प्राप्त कर लेने की रसीद भी चपरासी पुस्तिका (Peon Book) में ली जाएगी। अन्य प्रकार की सामान्य परिस्थितियों में उच्चाधिकारियों से निम्न अधिकारियों तक अधिकारों के प्रत्यायोजन या अन्तरण से ही औपचारिक सम्प्रेषण का जन्म होता है। संस्था का संगठन चार्ट यह भी बताता है कि किसी संवाद अथवा सन्देश को किन-किन अधिकारियों के मध्य से गुजरना पड़ेगा। ये सभी मार्ग औपचारिक मार्ग कहे जाते हैं और इन मार्गों से गुजरने वाले सम्प्रेषण को औपचारिक सम्प्रेषण कहा जाता है। औपचारिक सम्प्रेषण के मार्ग पूर्व निश्चित होते हैं। ये मार्ग स्पष्ट हों इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। कौन किससे आदेश और निर्देश प्राप्त करेगा, कर्मचारी अपनी समस्या के समाधान के लिए किसके पास जाएगा आदि का निर्धारण स्पष्ट रूप से कर दिया जाना आवश्यक है। औपचारिक सम्प्रेषण जो प्रायः लिखित में ही होते हैं, स्थायी आदेश, वार्षिक प्रतिवेदन, पत्रिकाओं आदि के माध्यम से भेजे जाते हैं।

अनौपचारिक सम्प्रेषण
(Informal Communication)

जब संवाददाता और संवाद प्राप्तकर्त्ता के बीच सम्बन्ध अनौपचारिक होते हैं तो इनके मध्य संवादों का आदान-प्रदान अनौपचारिक सम्प्रेषण कहलाता है। कुछ समय पूर्व तक अधिकांश प्रबन्धक औपचारिक सम्प्रेषण को ही अधिक महत्त्व देते थे किन्तु अब अनौपचारिक सम्प्रेषण को भी मान्यता मिलने लगी है। आज व्यावसायिक क्षेत्र जो रूप लेता जा रहा है उसमें संवाददाता और संवाद प्राप्तकर्त्ता के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों का महत्त्व बढ़ गया है। अनौपचारिक सम्प्रेषण का लिखित रूप में होना आवश्यक नहीं है। यदि एक टाइपिस्ट किसी अधिकारी के निजी सहायक को कोई टाइप किया हुआ आलेख अनुमोदनार्थ प्रस्तुत करता है और कार्य-व्यस्तता के कारण निजी सहायक केवल हाव भाव से अपना अनुमोदन सूचित

कर देता है तो यह अनौपचारिक सम्प्रेषण होगा। अनौपचारिक सम्प्रेषण को अपवाहन (Grapevine) अथवा बुश टेलीग्राफ (Bush Telegraph) भी कहा जाता है। अनौपचारिक सम्प्रेषण में सवादो का आदान प्रदान सगठन चार्ट द्वारा निर्धारित मार्गों के अनुसार न होकर सवादप्रेषक और सवाद प्राप्तकर्ता के मध्य पारस्परिक सम्बन्धो के आधार पर होता है।

(ग) नीचे की ओर ऊपर की ओर एव समतल सम्प्रेषण

(Downward Upward and Horizontal Communication)

नीचे की ओर सम्प्रेषण (Downward Communication)—यदि आदेशों अथवा सवादो का प्रवाह उच्चाधिकारियों से सहायकों तथा सहायकों से अधीनस्थ अधिकारियों की ओर अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर होता है इसे नीचे की ओर सम्प्रेषण कहा जाता है। इसे कर्मचारी सम्प्रेषण (Employee Communication) की सज्ञा भी दी गई है। एक औद्योगिक प्रतिष्ठान में नीचे की ओर सम्प्रेषण की जो स्थिति हो सकती है उसका उदाहरण इस प्रकार है—

अध्यक्ष
↓
जनरल मैनेजर
↓
विभागीय मैनेजर
↓
फोरमैन
↓
श्रमिक
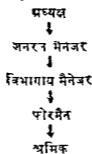
नीचे की ओर सम्प्रेषण यद्यपि मौखिक अथवा लिखित किसी भी प्रकार का हो सकता है, तथापि यह प्रायः लिखित रूप में ही अधिक उपयुक्त समझा जाता है। लिखित रूप में होने से कार्य का निष्पादन सरलता से हो जाता है और साथ ही कर्मचारियों के पास इनका स्थायी रिकार्ड भी तैयार हो जाता है। वैयक्तिक निर्देश सभा-सम्मेलनो में भाषण टेलीफोन पर सदेश सीटी या घंटी बजाकर सूचित करना स्लाइडस का प्रदर्शन आदि नीचे की ओर सम्प्रेषण की मौखिक विधियां हैं जबकि अधीनस्थ कर्मचारियो को लिपिबद्ध आदेश पत्र मीमो बुलेटिन सूचना-पट्ट पर प्रसारण आदि नीचे की ओर सम्प्रेषण के लिखित रूप हैं।

ऊपर की ओर सम्प्रेषण (Upward Communication)—जब आदेश या सवाद का प्रवाह अधीनस्थ कर्मचारियों से सहायकों और सहायकों से उच्चाधिकारियों की ओर अर्थात् नीचे से ऊपर की ओर होता है तो इसे ऊपर की ओर सम्प्रेषण कहा जाता है। आजकल ऊपर की ओर सम्प्रेषण काफी प्रचलित है। यह सम्प्रेषण भी मौखिक या लिखित किसी भी प्रकार का हो सकता है। यह औपचारिक तथा

अनौपचारिक दोनों ही प्रकार का होता है। किसी संस्था या उपक्रम में ऊपर की ओर सम्प्रेषण की स्थिति का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

अध्यक्ष
↑
जनरल मैनेजर
↑
विभागीय मैनेजर
↑
फोरमैन
↑
श्रमिक
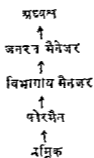
प्रत्यक्ष रूप से सूचना देना, सभा सम्मेलन तथा आपसी परामर्श साक्षात्कार आदि ऊपर की ओर सम्प्रेषण के मौखिक रूप हैं जबकि लिखित प्रतिवेदन देना आपत्तियाँ प्रकट करना सुझाव देना आदि इसके लिखित रूप हैं।

समतल सम्प्रेषण (Horizontal Communication)— जब समान स्तर के विभिन्न व्यक्तियों के मध्य सम्प्रेषण होता है तो यह समतल सम्प्रेषण कहा जाता है। उदाहरणार्थ एक संस्था में विभिन्न विभागों के अध्यक्ष प्रायः एक ही स्तर के अधिकारी होते हैं और जब उनके मध्य मर्यादा का आदान प्रदान होता है तो यह समतल सम्प्रेषण है। इस सम्प्रेषण से विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित होता है और संस्था का कार्य सुगमता से चलता है। समतल सम्प्रेषण भी मौखिक या लिखित किसी भी प्रकार का हो सकता है और अवसरानुसार प्रत्येक व्यवसाय में दोनों ही प्रकार का सम्प्रेषण प्रयुक्त किया जाता है। टेलीफोन, सभाएं एवं सम्मेलन भाषण सामाजिक क्रियाएं आदि समतल सम्प्रेषण के मौखिक रूप हैं जबकि पत्र मीमो वार्षिक प्रतिवेदन पोस्टर हैण्डबुक आदि इसके लिखित रूप हैं।

सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि कुशल तथा प्रभावी सम्प्रेषण अपने आप में एक विशिष्ट कार्य है। इस विशेष योग्यता सम्पन्न व्यक्ति ही सम्पन्न कर सकता है।

औद्योगिक सम्प्रेषण की प्रासंगिकता

सम्प्रेषण के इस अध्याय की समाप्ति हम जनवरी 1981 की योजना में प्रकाशित एक लेख औद्योगिक सम्प्रेषण की प्रासंगिकता के साथ करेंगे। इस लेख में श्री दीनानाथ दुबे ने औद्योगिक सम्प्रेषण के विभिन्न पहलुओं पर भारतीय परिवेश को ध्यान में रखते हुए जो प्रकाश डाला है वह पढ़ने योग्य है—

इस पृथ्वी पर प्रारम्भ में जब दो व्यक्ति आमने सामने हुए तभी से एक दूसरे के भावों को समझने के लिए सम्प्रेषण, संचार अथवा सन्देश के आदान प्रदान की विधा का प्रचलन हुआ और तब से लेकर आज तक इस विधा के नए-नए आयाम विकसित होते रहे हैं। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि हम जिस भाषा को जानते हैं यदि उसमें

हम अक्सर सम्प्रेषण रिक्तता (कम्यूनिकेशन गैप) सम्प्रेषण विस्फोट (कम्यूनिकेशन एक्सप्लोजन) सरल सम्प्रेषण और औद्योगिक सम्प्रेषण की बात सुनते हैं और यह जानते हैं कि सम्प्रेषण की रिक्तता के कारण हमारी विकास योजनाओं को जिन पर करोड़ो रुपया खर्च किया गया है मनोवांछित सफलता नहीं मिली है।

देश में गरीबी निरक्षरता अज्ञान कूपमण्डकता तथा काम के प्रति विरक्ति की भावना अपनी प्रच्छन्न जड़ें जमाए है जिसका प्रतिकूल प्रभाव राष्ट्र के विकास पर पड़ रहा है। स्थिति यह है कि हमारी मनोवृत्ति में अभी भी गुलामी बनी हुई है। हम औद्योगिक कामगारों और ग्रामीण किसानों का संदेश उनकी भाषा में न पहुंचा कर अंग्रेजी में या उसके भाषाई अनुवाद के माध्यम से पहुंचाना चाहते हैं। औद्योगिक कारखानों में सम्प्रेषण विद्या के रूप में गृह-पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं। ज्यादातर ये पत्रिकाएं अंग्रेजी में हैं। ये पत्रिकाएं कर्मचारी वर्ग के लिए होती हैं। यह विडम्बना ही है कि उत्पादकता सुरक्षा लागत में कमी आदि का संदेश दिया जाता है पर इन सन्देशों का जिनके लिए महत्त्व है वह वर्ग अंग्रेजी भाषा जानता है या नहीं इस तथ्य को जानने का प्रयास मैनेजमेन्ट द्वारा नहीं किया जाता।

निजी क्षेत्र में यह स्थिति अभी भी विद्यमान है किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र में इसमें पर्याप्त सुधार हुआ है। इस क्षेत्र के कारखानों में भाषायी सम्प्रेषण को काफी प्रमुखता मिलने लगी है। भोपाल स्थित हैवी इलेक्ट्रिकल कारखाने की साप्ताहिक गृह पत्रिका भेल सन्देश का उदाहरण सामने है। हमारे देश में शायद यही एक मात्र साप्ताहिक हिन्दी गृह-पत्रिका है जो दस हजार की संख्या में गागर में सागर जैसा प्रेरक सन्देश अपने पाठकों को देती है। निजी क्षेत्र में एकाध पत्रिकाएं और हैं जैसे— टिस्को समाचार, डी सी एम परिवार आदि जो भाषायी सम्प्रेषण की दिशा में प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रही हैं। मैं यहां अंग्रेजी या हिन्दी अथवा भाषायी विवाद में नहीं जाता। हमारा मन्तव्य तो यह बताना है कि सफल सम्प्रेषण वही है जिसे लोग समझ सकें। आज देश में औद्योगीकरण का जो सैलाब है उसमें प्रायः कई करोड़ से ऊपर श्रमजीवी कार्यरत हैं। इन तक संदेश पहुंचाने की मुख्य समस्या आज भी है। ये श्रमजीवी हैं हमारे देश के युवा कर्मी जिनमें मैकेनिक वेन्डर मिस्त्री इलेक्ट्रिशियन आपरेटर फिटर हैं पर आदि हैं। इनकी मेहनत और होशियारी पर ही उत्पादन की उत्पादकता का दारोमदार है। इनमें से अधिकांश श्रमजीवी अनपढ़ हैं कुछ पढ़े हैं। देश की उन्नति और अधिकाधिक उत्पादन के लिए सम्प्रेषण के प्रभावी माध्यम के विकास की आज अनिवार्य आवश्यकता है। यदि हम उत्पादन और उत्पादकता को गति देना चाहते हैं उत्पादन का वातावरण बनाना चाहते हैं तो हमें संदेश उसी भाषा में देना होगा जिसे श्रमजीवी समझते हैं।

औद्योगिक परिवेश से सम्प्रेषण के कई माध्यम हैं। इन माध्यमों से ज्यादा प्रभाव गृह पत्रिकाओं का पड़ता है। ये पत्रिकाएं उभयपक्षों को (1) सूचना (2) सौहाद्र (3) समन्वय और (4) सन्देश के चार सूत्रों में बाँधती हैं। गतिशील औद्योगिक समाज बनाने में इन पत्रिकाओं के सम्पादकों की क्या भूमिका हो सकती है यह एक चुनौतीपूर्ण सवाल है क्योंकि सम्प्रेषण दोतरफा कार्य है न तो प्रबन्धक इसके बिना अपने कामों को अंजाम दे सकते हैं और न कर्मी ही। वैसे आज बहुत से लोग हैं जो इस कार्य को अलाभकारी मानते हैं। ऐसे लोग केवल संकुचित स्वार्थों के पक्षधर हैं। उनका उद्योगों के भविष्य के बारे में सोच व चिन्तन दकियानूसी है।

आज औद्योगिक अशान्ति का जो वातावरण सारे देश में व्याप्त है उसका मूल कारण औद्योगिक जीवन के विविध स्तरों पर पारस्परिक सम्प्रेषण का अभाव है। हड़ताल और तालाबन्दी की स्थिति में तो यह सम्बन्ध पूर्णतया टूट जाता है और इससे उद्योग व राष्ट्र को हानि उठानी पड़ती है। हमें इस प्रक्रिया को हर स्तर पर जारी रखने का प्रयास करना चाहिए। गृह-पत्रिकाएं यदि ठीक से प्रकाशित की जाएं तो वे उद्योग में परस्पर सौहाद्र व सद्भावना का वातावरण तैयार कर सकती हैं। उत्पादकता बढ़ाने, समय व सामग्री की बचत, दुर्घटना निवारण, बरबादी की रोकथाम, गैरहाजिरी में कमी, अच्छी गृह व्यवस्था और अन्ततः कर्मचारियों का एक अच्छा नागरिक बनाने, जन जागृति व जन-सेवा की भावना को वेग देने के दायित्व का बोध कराकर देश व समाज के निर्माण में यशस्वी भूमिका निभा सकती हैं। आज औद्योगिक गृह पत्रिकाएं ज्यादातर मैनेजमेंट के गुण गाती हैं जिससे श्रमिक समुदाय और श्रम संघ गृह पत्रिका को मैनेजमेंट का भोंपू मानते हैं। ऐसी स्थिति में गृह पत्रिका की विश्वसनीयता पर आँच आती है।

औद्योगीकरण की तरह औद्योगिक पत्रकारिता भी पश्चिमी देशों की ही देन है। राजनीतिक पत्रकारिता में जो ग्लैमर है वह औद्योगिक पत्रकारिता में तो नहीं हो सकता क्योंकि दोनों के विषय ही भिन्न भिन्न हैं किन्तु औद्योगिक समाज के बीच विचारों के आदान प्रदान में निःसन्देह ऐसी पत्रिकाएं कारगर माध्यम बन सकती हैं। हमारे कामगार जितने बुद्धिमान और सजग होंगे उतना ही लाभ उद्योगों को होगा। इस समय देश में 850 गृह पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। इनमें से 186 भाषायी और हिन्दी में हैं। इनका सम्भावित प्रसार 30 लाख से ऊपर है और प्रायः एक करोड़ रुपये से अधिक धन इन पर खर्च किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि देश में इस सम्पर्क माध्यम की कितनी महत्ता है। *औद्योगिक सम्प्रेषण के माध्यम के रूप* में हर कारखाने में इस विधा जितना स्वस्थ प्रसार होगा उतना ही श्रेयस्कर होगा।

———

15

लोक सम्पर्क
(Public Relations)

आज के युग में पुलिस राज्य का स्थान लोक कल्याणकारी राज्य ने ले लिया है अतः लोक सम्पर्क के महत्त्व को अन्य किसी भी काल की तुलना में आज अधिक व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है। राज्य के कार्य क्षेत्र में अत्यधिक वृद्धि हो गई है और प्रशासन जन कल्याण के लिए अनेकानेक अल्प एवं दीर्घकालीन योजनाएं बनाता है। प्रशासन की सफलता जन सहयोग पर निर्भर है क्योंकि आज प्रशासन का स्वरूप लोकतान्त्रिक है निरंकुश नहीं। अधिनायकवादी व्यवस्थाओं में भी प्रशासन जनमत की अवहेलना करने का साहस लम्बे समय तक नहीं कर पाता। प्रशासन और जनता के बीच सहयोग की कड़ी मजबूत बनाने का शक्तिशाली साधन लोक सम्पर्क है जिसका मोटे रूप में अर्थ है—सूचनाओं विचारों प्रत्यक्ष सम्पर्कों और संचार माध्यमों द्वारा व्यापक प्रसार। आज का युग प्रचार का युग है पब्लिसिटी पग पग पर हम प्रभावित करती है और मोटे तौर पर इसी का परिमार्जित परिष्कृत एवं सुसंस्कृत रूप ही लोक सम्पर्क है। किसी भी परियोजना कार्यक्रम या अभियान की सफलता के लिए अनुकूल वातावरण या लोकमत का होना नितान्त आवश्यक है और लोक-सम्पर्क का प्रधान उद्देश्य है—अपेक्षित दिशा में लोकमत का निर्माण। लोक-सम्पर्क एक द्विपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें एक पक्ष तो पब्लिसिटी या प्रचार द्वारा जनता का समर्थन चाहने वाला का होता है दूसरा जनता का। पब्लिसिटी चाहने वाला पक्ष अपने प्रचार विषय को गुण लोभ से ढाल कर जनता के सम्मुख अपना सन्देश रखता है और फिर देखता है कि जनता ने उस सदेश को स्वीकारा या नहीं या स्वीकारा तो कहाँ तक और नहीं स्वीकारा तो क्यों? इस प्रकार जनता की प्रतिक्रिया ज्ञात करके प्रचार प्रक्रिया या संदेश या कार्यक्रम में संशोधन किया जाता है और जनता को विश्वास में लिया जाता है। प्रत्येक संस्था चाहे वह सरकारी हो या निजी अपने प्रभाव क्षेत्र की जनता से सम्पर्क स्थापित करती है। लोकमत निर्माण के लिए किए गए इस पारस्परिक आदान प्रदान से जो प्रचार या सूचना प्रक्रिया प्रारम्भ होती है उसके परिमार्जित एवं परिष्कृत स्वरूप को विज्ञापन न लोक-सम्पर्क कहा है। लोक प्रशासन के सन्दर्भ में प्रशासनिक संस्थाओं का यह कर्त्तव्य है कि वे कार्य संचालन के सम्बन्ध में जनता की राय ज्ञात करें जनता के मन में प्रशासन के बारे में यदि कोई गलतफहमी हो तो उसे दूर करें। कोई भी

प्रशासन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि जनमत (Public Opinion) उसके विरोध में है। कितनी ही बार ऐसा होता है कि भ्रान्तियां और निराधार अफवाहों के कारण प्रशासन तथा जनता के बीच एक खाई सी पैदा हो जाती है और जनमत शासन के विरुद्ध हो जाता है। अतः लोक प्रशासन को चाहिए कि वह उचित लोक-सम्पर्क स्थापित करे और भ्रान्तियों का निवारण कर जनता को विश्वास में ले। लोक सम्पर्क कार्यों द्वारा अपनाई गई नीतियों को प्राय Moo Cow Sociology कहा जाता है, जिसके अनुसार गाय को प्रसन्न रखने की चेष्टा की जाती है ताकि वह अधिक दूध दे सके। प्रशासन जनता को प्रसन्न करने की चेष्टा करता है ताकि उसकी योजनाएं अधिकाधिक सफल हों। लोक सम्पर्क द्वारा प्रशासन यह जानकारी प्राप्त करता है कि जनता की कामनाएं तथा हौंसले क्या हैं और जनता प्रशासन से क्या उम्मीद करती है। दूसरी ओर वह जनता को यह सूचित करता है कि उसे प्रशासन से क्या आकांक्षाएं करनी चाहिए, प्रशासन क्या कार्य कर रहा है तथा प्रशासन के विभिन्न संगठनों द्वारा क्या क्या सेवाएं प्रदान की जा रही हैं।

लोक सम्पर्क की व्याख्या

लोक सम्पर्क की कोई निश्चित एवं सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। निश्चित शब्दों की परिधि में इस बाँधने की दृष्टि से विद्वानों में मतैक्य नहीं है, हां लोक-सम्पर्क के मन्तव्य के विषय में प्राय सहमति है। पहले हम विभिन्न परिभाषाओं को देखें—

प्रशासन में लोक सम्पर्क अधिकारी वर्ग तथा नागरिकों के बीच पाए जाने वाले प्रधान एवं गौण सम्बन्धों तथा इन सम्बन्धों द्वारा स्थापित प्रभावों एवं दृष्टिकोणों की परस्पर क्रियाओं का मिश्रण है। —जे एल मैकनी

विभिन्न जन समूहों के मत को प्रभावित करने के लिए एक संगठन जो भी कार्य करता है वह सब लोक सम्पर्क है। —चार्ल्स

विभिन्न जन समूहों के मत को प्रभावित करने के लिए एक संगठन जो भी कार्य करता है वह सब लोक सम्पर्क है। —एपलबी

लोक सम्पर्क एक विज्ञान है जिसके द्वारा एक संगठन यथार्थ रूप में अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने को तथा सफलता के लिए आवश्यक जन स्वीकृति तथा अनुमोदन प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। —रेक्स हार्लो

कोई उद्योग यूनियन कार्पोरेशन व्यवसाय सरकार या अन्य संस्था जब अपने ग्राहकों, कर्मचारियों, हिस्सेदारों या जन साधारण के साथ स्वस्थ और उत्पादक सम्बन्ध स्थापित करने या उन्हें स्थायी बनाने के लिए प्रयत्न करे जिससे वह अपने आपको समाज के अनुकूल बना सके अथवा अपना उद्देश्य समाज पर व्यक्त कर सके, उसके उन प्रयत्नों को लोक सम्पर्क कहते हैं।

—वेबस्टर की न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी

हरियाणा के लोक सम्पर्क विभाग के संयुक्त निदेशक श्री राजेन्द्र ने लिखा है कि स्वपक्ष के गुण-दोष और जनता से परस्पर के सम्बन्धों के आधार पर अनुकूल लोकमत निर्माण के लिए सुव्यवस्थित प्रयत्नों को लोक सम्पर्क कहते हैं। लोक प्रशासन के एक प्रमुख विद्वान् मिलट ने लोक-सम्पर्क के उन मुख्य चार तत्वों को गिनाया है जिन पर प्रायः आम सहमती पाई जाती है—(1) जनता की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना (2) जनता को बतलाना कि उचित विचारधारा क्या है उचित कार्य और आकांक्षाएं क्या हैं (3) अधिकारियों और जनसाधारण के बीच अच्छे सम्बन्ध बनाए रखना एवं (4) जन साधारण को यह अवगत कराना कि शासन लोक हित के लिए कौन कौन से सम्पर्क कार्य कर रहे हैं। बर्नेज ने माना है कि लोक सम्पर्क के तीन मुख्य पहलू हैं—(क) जनता को दी गई सूचना (ख) जनता के दृष्टिकोण तथा कार्य को बदलने का प्रयास और (ग) संस्था के दृष्टिकोण तथा कार्यों को जनता के साथ और जनता के दृष्टिकोण एवं कार्यों को संस्था के साथ एकीकृत करने की चेष्टा करना।

लोक सम्पर्क प्रक्रिया का सम्बन्ध जनता के किसी विशिष्ट वर्ग से नहीं वरन् सभी वर्गों से होता है क्योंकि सभी वर्ग किसी न किसी रूप में विभिन्न प्रशासकीय कार्यवाहियों से प्रभावित होते हैं। जिस प्रकार एक कुशल डाक्टर रोगी की नाड़ी देख कर उसकी गति और रोगी का रोग पहचानने की कोशिश करता है उसी प्रकार एक कुशल प्रशासक जनता की नाड़ी अर्थात् उसकी भावनाओं और आवश्यकताओं को पहिचानने समझने की कोशिश करता है। जो प्रशासक जितनी अच्छी तरह जनता को समझ पाएगा वह उतना ही सफल प्रशासक सिद्ध होगा। लोक-सम्पर्क द्वारा लोकमत के मूल्यांकन का विश्लेषण किया जाता है विपक्ष और विरोध का खंडन तथा स्वपक्ष के अनुकूल लोकमत का निर्माण किया जाता है इसीलिए लोक सम्पर्क को लोकमत की इंजीनियरिंग (Engineering of Public Opinion) भी कहते हैं। आज की दुनिया में कोई संस्था लोकमत की शक्ति या प्रभाव की अवहेलना करके अपना काम नहीं चला सकती। वह जमाना गया जब सत्ताधारी लोग कह सकते थे— जनता जाए भाड़ में या स्वेच्छाचारी राजा बोल उठता था— मेरी आज्ञा ही सर्वोपरि है जो कुछ है मैं ही हूं।

सूचना प्रचार और लोक सम्पर्क

(Publicity Information Propaganda and Public Relations)

लोक-सम्पर्क को प्रायः लोग सूचना और प्रचार का समानार्थक समझने की भूल कर देते हैं। अतः आवश्यक है कि सूचना (Publicity or Information) प्रचार (Propaganda) और लोक सम्पर्क (Public Relations) की अलग अलग धारणाएं स्थिर कर ली जाएं—लोक सम्पर्क का उद्देश्य केवल किसी तथ्य का प्रकाशन अथवा प्रचार मात्र नहीं होता वरन् इसका क्षेत्र तो प्रकाशन या सूचना

(Publicity or Information) का है। किसी भी जानकारी को अधिकाधिक प्रसारित करने के साथ-साथ जब यह प्रयत्न भी किया जाए कि जनता प्रसारित सन्देश को केवल स्वीकार ही न करे बल्कि उसके अनुरूप कोई कदम भी उठाए तो यह प्रक्रिया सूचना या प्रकाशन से एक कदम आगे 'प्रचार' (Propaganda) कहलाती है। प्रकाशन या सूचना (Publicity) और प्रसार या प्रचार (Pro paganda) के सुव्यवस्थित परिमार्जित एवं सर्वाद्धित रूप को ही लोक सम्पर्क (Public Relations) कहा जाता है।[1]

एक उदाहरण से इन तीनों ही धारणाओं का पारस्परिक अन्तर भली प्रकार स्पष्ट हो जाएगा—

सेना की भर्ती चल रही है। आपके पास सूचना आई कि अमुक स्थान पर अमुक आयु के लोग भर्ती हो सकते हैं। भर्ती होने के नियम भी आपको मिल गए हैं। आपने इस सूचना को प्रेस रेडियो मुद्रित साहित्य मुनादी अथवा दूसरे साधनों से जनता तक पहुंचा दिया भर्ती के नियमों को भी प्रचारित कर दिया। आपने ऐसा किया है तो आपने केवल पब्लिसिटी की है।

भर्ती के लिए वांछित संख्या में आदमी नहीं मिल रहे इसलिए केवल सूचना देने से काम नहीं चलेगा जनता को बताना पड़ेगा कि उन्हें भर्ती क्यों होना चाहिए। देश पर संकट है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को सुरक्षित करना है। भर्ती होने से आर्थिक लाभ होते हैं। बुढ़ापे में पेन्शन (निवृत्ति वेतन) मिलने का लाभ है। ऐसा प्रचार करके आप पब्लिसिटी से एक कदम आगे बढ़े हैं। आपने न केवल सूचना दी है आपने लोगों को सेना में भर्ती होने के लिए प्रेरित भी किया है। आपने प्रचार कार्य या प्रापगण्डा किया है।

इससे आगे बढ़िए। सेना में भर्ती होने के समय स्थान तारीख नियम आदि की सूचना सबको मिल गई। भर्ती क्यों होना चाहिए अर्थात् प्रचार या प्रोपेगण्डा सम्बन्धी लेख, पुस्तिकाएं विज्ञापन अथवा अन्य सामग्री भी जनता तक पहुंच गई किन्तु जन-साधारण के मन में कई शंकाएं हैं। इसी कारण प्रकाशन या प्रचार का सन्तोषजनक प्रभाव नहीं हुआ। लोग वांछित संख्या में भर्ती होने नहीं आ रहे। कदाचित् कुछ लोगों को सरकार की नीति पर विश्वास नहीं। कुछ लोगों की शिकायत है कि साधारण सैनिकों के साथ सेना के उच्च अधिकारी अनुचित व्यवहार करते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि सेना में भर्ती होकर व्यक्ति निजी स्वतन्त्रता से वंचित हो जाता है। ऐसी दशा में लोक सम्पर्ककर्त्ता (Public Relations Man) जनता की शंकाओं बाधाओं और कठिनाइयों को सरकार तक पहुंचाता है और सरकारी नीति में यथासम्भव सुधार करवा कर भर्ती के प्रोग्राम को एक बार फिर जनता के सामने रखता है। इस प्रकार सरकार और जनता

1 राजेन्द्र लोक सम्पर्क पृष्ठ 4

दोनों पक्षों में तालमेल स्थापित करके किसी भी नीति या कार्यक्रम का मार्ग प्रशस्त करने के कार्य को लोक सम्पर्क कहते हैं।

प्रकाशन हो या प्रचार कार्य उद्देश्य यही होता है कि जनता को कुछ तथ्यों से अवगत कराया जाए और समाज के सामने कोई विशेष सिद्धान्त या कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाए। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया में ध्यान केवल इस बात पर केन्द्रित होता है कि जनता में क्या प्रकाशित या प्रचारित किया जा रहा है। जनता की इस सम्बन्ध में क्या प्रतिक्रिया है उसे सरकार या नियोक्ताओं तक पहुंचाना यह काम लोक सम्पर्क का है विशुद्ध प्रकाशन या प्रचार का नहीं। लोक सम्पर्क के काम में सफलता के लिए आवश्यक है कि जनमत की विभिन्न प्रवृत्तियों का विधिपूर्वक और अनवरत अध्ययन किया जाए और उन्हीं के अनुरूप प्रचार को अपेक्षित दिशा गति मोड या रूप दिया जाए।

वास्तव में लोक सम्पर्क न केवल एक विज्ञान ही है अपितु एक कला भी है। अमरिकन शैली में यदि कहा जाए तो लोक सम्पर्क एक बेचने की कला (Salesmanship) है अर्थात् जिस तरह कोई विक्रेता अपनी चीजों का प्रचार करके उन्हें बेचता है उसी तरह आधुनिक काल में प्रकाशकों को सरकारी नीतियों और कार्यक्रम जनता को बेचने पड़ते हैं—यानी वे उन्हें जनता के सामने इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि जनता उन्हें स्वीकार कर ले और अपना समर्थन न करे।

प्रशासन और लोक सम्पर्क

अच्छा लोक सम्पर्क निजी और सरकारी दोनों ही प्रशासनों की सफलता के लिए आवश्यक है। लोक प्रशासन में लोक सम्पर्क कार्यक्रम के दो सर्वप्रधान उद्देश्य हैं—प्रथम जनता को उपलब्ध सरकारी सेवाओं की प्रकृति और क्षेत्र से सूचित करना द्वितीय प्रशासनिक अभिकरण के प्रति जनमानस में विश्वास पैदा करना। प्रशासन का जो कार्य जितना अधिक अलोकप्रिय होता है उसमें लोक सम्पर्क की आवश्यकता उतनी ही बढ़ जाती है क्योंकि भ्रान्तियों और विरोध के वातावरण को मिटाकर लोगों को प्रशासन के अनुकूल बनाता है। हमारे देश में प्रशासन और जन साधारण के बीच खाई अभी चौड़ी है। विदेशी शासन के दिनों में सरकारी विभाग हमारे शोषण और दमन के उपकरण थे और स्वतन्त्र भारत में भी जब कभी नागरिकों को राशन-कार्ड समय पर नहीं मिलता या दूध के डिपो से निराश लौटना पड़ता है या उनके शिकायती पत्रों पर समुचित कार्यवाही नहीं होती या उन्हें समुचित न्याय नहीं मिल पाता तो वे मन ही मन नौकरशाही की निरंकुशता अनियमितता और भ्रष्टाचार के न जाने क्या क्या चित्र खींचते हैं। इसके विपरीत सरकारी कर्मचारी और अधिकारी समझते हैं कि नागरिक सरकार के प्रति समुचित उत्तरदायित्व का परिचय नहीं देते जो कानून जनता ने स्वयं ही अपने प्रतिनिधियों द्वारा पारित करके लागू किए गए हैं उनका उल्लंघन वह स्वयं करती है। दोनों पक्षों की भ्रान्तियां

गलतफहमियाँ और शिकायतें का लोक सम्पर्क की प्रभावशाली व्यवस्था द्वारा बहुत कुछ दूर किया जा सकता है। लोक सम्पर्क की मशीनरी जन साधारण को यह बड़ी भली प्रकार समझा सकता है कि सरकारी प्रशासन का सारा काम लिखित कार्यवाही से किया जाता है और जो भी काम होना है वह सम्बन्धित अधिकारियों की लिखित स्वीकृति के बिना पूरा नहीं हो सकता अतः कार्यवाही में विलम्ब भी हो सकता है और रुकावट भी हो सकती है।

वास्तव में सरकारी प्रशासन में लोक सम्पर्क को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। सरकारी विभाग के रूप में लोक सम्पर्क के मुख्य उद्देश्य ये अवश्य ही होने चाहिए—(i) सरकार द्वारा सचालित अभियानों (उदाहरणार्थ—छोटी बचतों या परिवार नियोजन) में जनता का सहयोग के लिए प्रेरित करना (ii) सरकार द्वारा निर्धारित नियमों और कानूनों (उदाहरणार्थ बगला देश की समस्या या राजाओं के सालियाना की समाप्ति) के समर्थन के लिए जनता में प्रचार जनतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में सरकार के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह समय समय पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं सम्बन्धी अपनी नीतियों से जनता को अवगत कराती रहे क्योंकि जनता के सतर्क और सक्रिय समर्थन के बिना इन नीतियों का परिपालन भी कठिन है। कई बार सरकार के आन्तरिक या बाह्य विरोधियों के जवाब में जवाबी प्रोपेगण्डा भी करना पड़ता है। यद्दी दोनों भूमिकाएं लोक-सम्पर्क को निभानी पड़ती हैं तथापि हमें स्मरण रखना चाहिए कि इन दोनों कामों की कुछ सीमाएं निर्धारित हैं। ब्रिटिश ससदीय ढग की शासन प्रणाली (जो भारत में प्रचलित है) के अन्तर्गत सत्तारूढ राजनीतिक दल और सरकार को पृथक माना जाता है अतः सरकारी प्रचार मशीनरी को राजनीतिक दलों के प्रोपगण्डा के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। सोवियत रूस आदि देशों की अधिनायकवादी व्यवस्थाओं में दल और सरकार में इस प्रकार का अन्तर नहीं माना जाता अतः वहां प्रचार में कोई भेद या प्रतिबन्ध नहीं है। संयुक्तराज्य अमरिका में भी सरकारी प्रचार या पब्लिसिटी को कई मौकों पर राजनीति एव दलगत प्रचार के लिए प्रयुक्त करने की गुंजाइश रहती है।

सरकारी प्रचार और लोक सम्पर्क पर सन्देह भी किया जाता है। कई लोग सरकारी प्रचार की समस्त गतिविधियों का विरोध भी करते हैं। जन साधारण सरकार और दूसरी पब्लिसिटी करने वाली अन्य सस्थाओं को दो परस्पर विरोधी मापदण्डों से आंकते हैं। कोई बड़ी पेटोल कम्पनी जब अपने माल की पब्लिसिटी के लिए करोड़ो रुपए खर्च करती है और यह रुपया भी ग्राहकों से वसूल करती है तो लोग इसको बुरा नहीं मानते। किन्तु यदि सरकार अपनी सेवाओं के बारे में जनता को अवगत कराए तो आपत्ति उठाई जाती है और कहा जाता है कि करदाता के रुपए को बर्बाद किया जा रहा है।

सरकारी लोक सम्पर्क का विरोध उन राजनीतिक दलों द्वारा भी किया जाता है जो शासनारूढ़ पार्टी का विरोध करते हैं। उन्हें सदा यह सन्देह रहता है कि सरकारी पब्लिसिटी को शासक पार्टी के प्रोपेगण्डा के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है।

लोक सम्पर्क का विरोध प्रेस प्रतिनिधियों और संवाददाताओं की ओर से भी होता है। वे समझते हैं कि समाचार संकलन के पेशेवराना काम में लोक सम्पर्ककर्त्ता उनके प्रतिस्पर्धी हैं। इसकी चर्चा हम पीछे कर चुके हैं और स्पष्ट कर चुके हैं कि राष्ट्रपति और लोक-सेवा के सन्दर्भ में लोक सम्पर्क का योगदान क्या है।

लोक सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम

प्रचार के जो भी माध्यम होते हैं वे सभी जन सम्पर्क के माध्यम हैं। प्रचार के मुख्यतः तीन माध्यम हैं—दृष्टि मूलक, श्रवण मूलक तथा दोनों का योग। प्रथम श्रेणी में पोस्टर, प्रदर्शनी, मूक चित्रपट आदि आते हैं। द्वितीय श्रेणी में आकाशवाणी के प्रसारण, गोष्ठी, भाषण आदि शामिल हैं तथा तृतीय श्रेणी में बोलते हुए चित्रपटों को लिया जा सकता है। इन सभी माध्यमों का प्रयोग करके प्रशासन जनता तक अपनी बात पहुँचाता है। लोक सम्पर्क स्थापित करने का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम स्वयं कर्मचारी है। यह आवश्यक है कि सरकारी कर्मचारी विनीत और शिष्ट हों तथा अभिकरण कार्य संचालन की प्रकृति से सुपरिचित हों। व्यक्तिगत साक्षात्कार जितना अधिक प्रभावशाली होगा प्रशासन की सफलता उतनी ही अधिक सुरक्षित होगी। एक अभिकरण द्वारा जिस रूप में रिकार्ड्स रखे जाते हैं उनका भी जन सम्पर्क पर प्रभाव रहता है। व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध तरीके से रखे गए रिकार्ड्स जनता के लिए सुविधाजनक रहते हैं और इसलिए अधिक लोक सम्पर्क हो पाता है अन्यथा जनता प्रशासन के बारे में भ्रामक धारणाएँ बना लेती है। सरकारी अभिकरणों को अपने ऐसे विशिष्ट लेख प्रकाशित करने चाहिए जिनमें उनके उद्देश्य लक्ष्यों कार्यों आदि का वर्णन हो। लोक प्रतिवेदन (Public Reportings) के साधनों का भी समुचित विकास किया जाना चाहिए और ऐसे नियतकालीन प्रगति विवरण (Periodic Progress Reports) प्रकाशित किए जाने चाहिए जिनमें सरकारी अभिकरणों की उपलब्धियों का संक्षिप्त वर्णन हो। लोक-सम्पर्क के इन सभी आधुनिक साधनों के साथ साथ महत्त्वपूर्ण परम्परागत माध्यमों जैसे—लोक नृत्य नाटक और कठपुतलियों का भी उपयोग किया जा सकता है। सरकार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर व्यापार मेले आयोजित करके जनता को अपनी उपलब्धियों से परिचित कराती है।

भारत में लोक-सम्पर्क मशीनरी

भारत में सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के पास लोक सम्पर्क की विशाल व्यवस्था है जिसके क्षेत्रीय तथा शाखा कार्यालय और चलते फिरते केन्द्र सारे देश में फैले हुए हैं। ये माध्यम एजेन्सी अथवा लोक-सम्पर्क के यन्त्र हैं—आकाशवाणी, पत्र

सूचना कार्यालय फिल्म विभाग विज्ञापन तथा दृश्य प्रचार निदेशालय प्रकाशन विभाग गीत और नाटक विभाग भारत के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार का कार्यालय केन्द्रीय फिल्म सेंसर बोर्ड भारतीय फिल्म तथा दूरदर्शन संस्थान राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय, गवेषणा तथा संदर्भ विभाग क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय फिल्म समारोह निदेशालय फोटो विभाग का मुख्य सेंसर का कार्यालय। ये एकक समूचे देश के लोगों को सरकार की नीतियों योजनाओं और कार्यक्रमों की जानकारी कराते हैं। ये सरकार की नीतियों और गतिविधियों के प्रति जन साधारण में हुई प्रतिक्रियाओं को सरकार तक भी पहुँचाते हैं। इसके अलावा ये राज्य सरकारों तथा संचार से सम्बन्धित उनके विभिन्न संगठनों से भी सम्पर्क रखते हैं। मन्त्रालय इन माध्यम एककों के कार्यों में समन्वय करता है और नीति सम्बन्धी मामलों में इनका मार्गदर्शन करता है। 1975-76 के दौरान मन्त्रालय और इनके माध्यम एककों ने 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम तथा सरकार द्वारा लिए गए अन्य मुख्य नीति सम्बन्धी निर्णयों को व्यापक प्रचार समर्थन देने के लिए कार्यक्रम बनाए। केन्द्रीय माध्यम एककों के कार्यक्रमों को सूचना और प्रसारण मन्त्री द्वारा सप्ताह में दो बार बैठक करके केन्द्रीय निर्देशन दिया गया। बैठकों के पश्चात् कार्यक्रमों की विस्तृत योजना बनाकर उनको कार्यान्वित किया गया। इन कार्यक्रमों का पुनर्विलोकन और मूल्यांकन करने तथा समीक्षाओं और नई आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इनका पुनर्विन्यास करने की नियमित पद्धति भी चालू की गई है।

विदेश में मन्त्रालय का विदेश प्रचार विभाग विदेशियों को भारत सरकार की नीतियों की विस्तृत जानकारी देता है और उनकी व्याख्या करता है। यह विदेशों में स्थित भारत के मिशनों को वितरण के लिए प्रचार सामग्री देता है और उनसे प्राप्त सामग्री भारतीय समाचार पत्रों को दी जाती है। सांस्कृतिक आदान प्रदान कार्यक्रमों के अन्तर्गत भारतीय पत्रकारों को विदेश भेजा जाता है और विदेशी पत्रकारों को भारत में सुविधाएं दी जाती हैं।

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के अधीन मूल्यांकन निदेशालय की स्थापना की गई है ताकि विभिन्न प्रचार माध्यमों की पहुंच के अनुपात व्यय तथा प्रभाव का अध्ययन किया जा सके। विभाग कार्यक्रमों के सुधार नीति आयोजन तथा लागत के अधिक अच्छे उपयोग निमित्त आवश्यक सूचना प्रदान करने के लिए सर्वेक्षण भी करता है। सूचना और प्रसारण मन्त्रालय तथा भारत सरकार के अन्य मन्त्रालयों के लिए तत्कालीन परिणाम और दीर्घकालीन लाभ पर मूल्यांकन अध्ययन आरम्भ करने तथा समन्वय करने के लिए भारतीय जन सम्पर्क संस्थान का मूल्यांकन अध्ययन विभाग आधार का काम देता है। इस विभाग के अध्यक्ष संस्थान के बाहर से आमन्त्रित एक अध्यापक है।

भारत सरकार की लोक-सम्पर्क मशीनरी भारतीय लोक सम्पर्क या जन

सम्पर्क संस्थान ... में ...त्वपूर्ण स्थान है। यह संस्थान अगस्त 1965 में स्थापित किया गया था। 22 जनवरी 1966 से यह एक स्वायत्तशासी निकाय के रूप में काय कर रहा है। संस्थान का मुख्य उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए जन सम्पर्क के माध्यमों के उपयोग और उनके विकास में प्रशिक्षण देना और उनका अनुसंधान और मूल्यांकन अध्ययन करना है। संस्थान के कार्य का मोटे तौर पर विभाजन इस प्रकार है—प्रशिक्षण अनुसंधान मूल्यांकन और परामर्श देने का काय तथा विचार गोष्ठियों या क्षेत्रीय गतिविधियाँ। ये सभी एक दूसरे पर आश्रित हैं और इनका सामान्य उद्देश्य तकनीकी और व्यावसायिक निपुणता प्रदान करना या ऐसे मामलों पर विचार विमर्श करना है जो विकासशील और लोकतांत्रिक समाज की समस्याओं से सम्बन्धित जन सम्पर्क के माध्यमों के कार्यकरण में सहायक है।

सरकारी लोक सम्पर्क में सामान्य विचारणीय बातें

लोक सम्पर्क का काय उतना सरल नहीं है जितना प्रायः समझा जाता है। लोक सम्पर्क की प्रभावशाली व्यवस्था अनेक बातों की माँग करती है अनेक बाधाओं का निराकरण चाहती है—

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक सम्पर्क व्यवस्था के जनक एडवर्ड बर्नेज ने अपनी सुविख्यात कृति ... में लिखा है— लोक सम्पर्क में सफलता का ... आधार चरित्र और आचरण की पवित्रता है। इस क्षेत्र में आदर्श कार्यकर्त्ता वही है जो प्रत्येक परिस्थिति में तटस्थ और निष्पक्ष रह कर तकसगत विचार करने की क्षमता रखता है किन्तु यह आवश्यक है कि तटस्थता के बावजूद उसकी सहृदयता और संवेदनशीलता अक्षुण्ण रहे तथा उसके अन्दर कलाकार की सी कल्पना और अभिव्यक्ति बनी रहे।

2. लोक सम्पर्क मशीनरी के जनता से मिलने जुलने ... को प्रेरणा और जनता का विश्वास के सिद्धान्तों के अनुसार काम करना चाहिए।

3. एडवर्ड बर्नेज ने लोक सम्पर्क के एक आदर्श कार्यकर्त्ता का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह सरकारी लोक-सम्पर्क कर्मियों के लिए अनुकरणीय है— सच्चाई और ईमानदारी के ... साथ लोक सम्पर्क कर्त्ता में बुद्धि और विवेक के गुण भी होने चाहिए। तटस्थ होने के कारण वह प्रत्येक दिशा में अपना पूरा-पूरा ध्यान दे सकेगा किन्तु उसकी ... उसे उत्साह शून्य नहीं बनाएगी क्योंकि निष्ठा और भावना उसे निरन्तर प्रयत्न करते रहने को प्रेरित करेंगी। समस्या को समझने की जिज्ञासा, जीवन का सर्वतोमुखी रूप में अध्ययन करने की लालसा उसके सांस्कृतिक मूल्यों को सुदृढ़ और विस्तृत बनाएगी विश्लेषण और समन्वय दोनों प्रकार से वह एक परिस्थिति की गहराई तक पहुँचेगा और उसकी प्रखर ... बुद्धि उसकी सहायता करेगी किन्तु तटस्थता उत्साह विवेक और ईमानदारी इन सब गुणों के

होते हुए भी वह सफल नहीं हो सकता जब तक उस सामाजिक विज्ञान और लोक सम्पर्क का तकनीकी ज्ञान न हो।

4 लोक सम्पर्क अधिकारी का लोक सम्पर्क के साथ 1 पर अधिकार होना चाहिए। यह बहुत ही अच्छी बात होगी कि लोक सम्पर्क अधिकारी एक सफल पत्रकार और समाचार लेखक भी हो। भाषण करने की और कला सगान प्राप्ति अन्य माध्यमों का अपने काम के लिए प्रयोग में लाने की योग्यता भी उसमें होनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति बहुत मुश्किल से मिलते हैं जो पत्रकार हो अच्छा लेखक हो भाषण करना भी जानते हो और दूसरे माध्यमों का सयोजन करने में भी सफल हो।

5 लोक सम्पर्क अधिकारियों को आत्माभिव्यक्ति में कुशल और आत्म विश्वास से परिपूर्ण होना चाहिए। लोक सम्पर्ककर्ता को कई बार एक ही समय में राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री से लेकर सभा में दरी बिछाने वाले मजदूर तक के सम्पर्क में आना पड़ता है। इसलिए उसे न तो किसी बड़े अधिकारी के सामने किसी मिथ्या सकोच का अनुभव करना चाहिए और न ही अपने से छोटे कर्मचारी के सामने झूठे अहंकार को मन में स्थान देना चाहिए।

6 लोक सम्पर्क हेतु किए गए पत्र व्यवहार की भाषा सरल, शिष्ट और प्रामाणिक होनी चाहिए। निषेधात्मक वाक्यों का प्रयोग कम से कम किया जाना चाहिए। पत्र में सच्ची सहानुभूति और हार्दिक अपनत्व टपकना चाहिए। अधिकारी या दुकानों पत्रों की भाषा को ऐसा रूप दिया जाना चाहिए ताकि वह किसी अप्रत्याशित दुर्घटना का कारण न बन जाए।

7 लोक सम्पर्क के मार्ग में मुख्य बाधाएँ हैं—निरक्षरता आधुनिक सरकार की जटिलता जनता की उदासीनता सरकारी कर्मचारियों द्वारा अपने उत्तरदायित्वों का महत्ता को न समझना लोक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उपलब्ध धन की अपर्याप्तता जनता का गलत दृष्टिकोण तथा लोक-सम्पर्क के उत्तम तरीकों का अभाव। सरकार को इन सब बाधाओं के निराकरण के लिए समुचित कदम उठाने चाहिए ताकि लोक सम्पर्क की मशीनरी कुशलतापूर्वक काम कर सके।

8 लोक सम्पर्क जनता के किसी एक वर्ग से नहीं बल्कि सभी वर्गों से स्थापित करना चाहिए। यह आवश्यक है कि व्यापक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले जन वर्गों को विश्वास में लिया जाए।

लोक सम्पर्क कैसा होना चाहिए लोक-सम्पर्ककर्ता को किन गुणों से विभूषित होना चाहिए आदि बातों का अनुकरणीय सकेत हम अमेरिकन पब्लिक रिलेशंस एसोसिएशन द्वारा स्वीकृत नियमों और प्रतिज्ञाओं तथा पब्लिक रिलेशंस सोसाइटी अमेरिका के प्रतिज्ञा पत्र से मिलता है। ये इस प्रकार हैं—

(क) अमेरिकन पब्लिक रिलेशंस एसोसिएशन द्वारा स्वीकृत नियम और प्रतिज्ञाएं—1 मैं मानता हूं कि सरकार और सरकार सरकार और जनता जनता

और दल, व्यक्ति और जनता में परस्पर सहयोग और तालमेल उत्पन्न करने का एक मुख्य और प्रभावोत्पादक साधन लोक-सम्पर्क है।

2. मैं मानता हूँ कि लोक सम्पर्क का काम सम्पन्न करने के लिए विशाल जानकारी, तर्कसंगत और निष्पक्ष विचार करने की क्षमता, सूझबूझ, कौशल, कल्पना शक्ति, आत्माभिव्यक्ति, जनता से प्रेम और सहानुभूति की भावना और इन सबसे अधिक सच्चाई और ईमानदारी की आवश्यकता है।

3. मैं समझता हूँ कि लोक सम्पर्क में जनता तक पहुँचने के विभिन्न माध्यमों की जानकारी बहुत आवश्यक है। इन माध्यमों में पुस्तक-पुस्तिकाएं, समाचारपत्र पत्रिकाएं, व्यापार सम्बन्धी प्रकाशन, कर्मचारियों की पत्रिकाएं, संस्था पत्रिकाएं, वार्षिक रिपोर्ट, पम्फलिट, पोस्टर, भाषण, चलचित्र, फोटोग्राफ, रेडियो, टेलीविजन, नाटक इत्यादि प्रमुख हैं। इनमें प्रदर्शनियों आदि के आयोजन भी शामिल हैं जो लोक सम्पर्क के काम में सहायता दें।

4. मैं जिन व्यक्तियों और व्यवसायों की ओर से लोक सम्पर्क का काम करूँगा उनके विश्वास का पूरा निभाऊँगा। इसी प्रकार लोक सम्पर्क माध्यमों और जनता के प्रति भी कभी विश्वासघात नहीं करूँगा। मैं कभी दो विरोधी पक्षों की पब्लिसिटी का उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करूँगा और न ही किसी ऐसे व्यापार की पब्लिसिटी करूँगा जो समाज और राष्ट्र हित के अनुकूल न हो। मैं कभी ऐसा काम नहीं करूँगा जो नैतिक दृष्टिकोण से उच्चतम स्तर पर पूरा न उतरता हो।

5. मैं एक सच्चे नागरिक के सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों को पूरा करूँगा। मैं लोकमत के रुझानों, लोकमत के निर्माण और लोकमत में परिवर्तन करने वाली शक्तियों के प्रति सतर्क और सचेत रहूँगा और अपनी पब्लिसिटी के काम में झूठ प्रोपेगण्डा का प्रयोग कभी नहीं करूँगा।

6. मैं लोक-सम्पर्क के काम में नए सुअवसर प्राप्त करने के लिए न तो किसी धोखाधड़ी से काम लूँगा और न ही कोई ऐसा दावा करूँगा जो निराधार हो और अपने काम से मैं उन तमाम नियमों उपनियमों का ईमानदारी से पालन करूँगा जो सरकार या कानून द्वारा जनता की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण के लिए लागू किए गए हों। मैं कोई ऐसा काम भी न तो करूँगा और न ही होने दूँगा जिससे लोक-सम्पर्क की प्रतिष्ठा को आँच आए या तो इस व्यवस्था की बदनामी का कारण बने।

7. मैं लोक सम्पर्क में विश्वास रखता हूँ क्योंकि लोक सम्पर्क राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक सन्तुलन को स्थिर रखने का महत्वपूर्ण उपकरण है।

8. मैं लोक सम्पर्क का इन प्रतिज्ञाओं में विश्वास रखता हूँ।

(छ) पब्लिक रिलेशन्स सोसाइटी अमेरिका का प्रतिज्ञा पत्र—1. अमेरिका की पब्लिक रिलेशन्स सोसाइटी के सदस्य और सह सदस्य होने के नाते हम लोक-

सम्पर्क व्यवसाय की प्रतिष्ठा और गौरव गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखना अपना कर्त्तव्य मानते हैं और इसलिए प्रतिज्ञा करते हैं कि हम अपने मुवक्किलों और मालिकों के हितों और जन साधारण के सामूहिक लाभ को दृष्टि में रखते हुए ही अपना सारा कामकाज करेंगे।

12 ईमानदारी सच्चाई और शालीनता को हम लोक सम्पर्क के मापदण्ड स्वीकार करते हैं।

13 हम अपने मुवक्किलों और मालिकों द्वारा प्रतिष्ठापित विश्वास का सम्मान करते हैं और उसे सदा बनाए रखेंगे।

14 हम अपने मुवक्किलों या मालिकों के मुकाबले में उनकी जानकारी या स्वीकृति के बिना कोई केस नहीं लेंगे।

15 हम लोक-सम्पर्क के अपने सहयोगियों के साथ मिलकर इस व्यवसाय से भ्रष्टाचार का उन्मूलन करेंगे।

16 हम लोक सम्पर्क के व्यावसायिक अनुसंधान को प्रोत्साहन देंगे और लोक सम्पर्क में शिक्षण देने वाली संस्थाओं की स्थापना में सहायता करेंगे।

17 लोक सम्पर्क में जनता का विश्वास बनाने और बनाए रखने का एकमात्र उपाय यही है कि हम उपर्युक्त सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप से अपनाएँ।

16

केन्द्रीकरण विकेन्द्रीकरण
(Centralization Decentralization)

कुछ विचारकों का मत है कि संगठन की अनेक समस्याओं में एक अन्य समस्या भी महत्वपूर्ण है कि प्रशासन की पूर्ण नियन्त्रण एकता एवं निश्चितता की स्वाभाविक इच्छा का जनता की इस माँग से किस प्रकार सामंजस्य बैठाया जाए कि सरकारी प्रशासन को स्थानीय भावनाओं के अनुरूप होना चाहिए।[1] दूसरे शब्दों में संगठन के सम्बन्ध में एक मुख्य समस्या यह उठती है कि सरकारी प्रशासन को केन्द्रीकृत रखा जाए अथवा उसका विकेन्द्रीकरण किया जाए। जहाँ नियोजित अर्थव्यवस्था, सशक्त एवं प्रभावशाली प्रतिरक्षा तथा राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता केन्द्रीयकरण पर बल देती है वहाँ सामान्य जन-सहयोग से लोकतन्त्र की स्थापना का आश्वासन और क्षेत्रीय स्वायत्तता की बढ़ती हुई माँग विकेन्द्रीकरण का समर्थन करती है। भारत में योजना आयोग केन्द्रीकरण का प्रतीक है तो पंचायत राज विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का।

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण का अर्थ

केन्द्रीकरण का अभिप्राय है कि सत्ता शीर्ष अथवा उसके आस पास एकत्र होनी चाहिए जबकि विकेन्द्रीकरण का अर्थ है—अनेक व्यक्तियों या इकाइयों के मध्य सत्ता के विभाजन की व्यवस्था। ह्वाइट के शब्दों में प्रशासन के निम्न तल से उच्च तल की ओर प्रशासकीय सत्ता के हस्तान्तरण की प्रक्रिया को केन्द्रीकरण कहते हैं जबकि इसके ठीक विपरीत व्यवस्था को विकेन्द्रीकरण कहा जाता है।[2]

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के अर्थ को हम एक अन्य प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं। विकेन्द्रीकरण के निम्नलिखित पाँच पक्ष हैं और इनके विपरीत जो व्यवस्था या प्रबन्ध होता है उसको केन्द्रीकरण की व्यवस्था कहा जाता है—

सत्ता का हस्तान्तरण इस प्रकार किया जाए कि स्वेच्छा से कार्य करने का विशाल क्षेत्र अधीनस्थ अधिकारियों को सौंपा जाए तथा शीर्षस्थ मुख्य अधिकारी को कम से कम प्रश्न सम्बोधित किए जाए। (प्रशासकीय पहलू)

1 *J C Charlesworth* Governmental Administration p 207
2 *White* op cit p 37

2. सगठन की व्यक्तिगत इकाइयों को अधिक शक्ति सौंपी जाए तथा मुख्य कार्यालय में नियन्त्रण का कुछ मूल शक्तियों को ही रखा जाए। (प्रशासकीय पहलू)

3. निर्वाचित निकायों के हाथों में अधिक शक्ति सौंपी जाए और प्रशासन के कार्यों में जनता का पूरा पूरा सहयोग रहे। (राजनीतिक पहलू)

4. जनता के निकट की तथा मुख्य कार्यालय के दूर की क्षेत्रीय इकाइयों को स्वतन्त्रता दी जाए। (भौगोलिक पहलू)

5. "विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विभिन्न विभागों को कार्य की स्वतन्त्रता दी जाए। (कार्यात्मक पहलू)

विकेन्द्रित व्यवस्था का सार स्थानीय संस्थाओं को पर्याप्त शक्तियों के समर्पण या हस्तान्तरण में है और इन लक्षणों के विपरीत सगठन की जो व्यवस्था होती है वह केन्द्रीकरण की है। इस सम्बन्ध में कोई विभाजन रेखा निश्चित तथा अन्तिम रूप से नहीं खींची जा सकती। अधिक सरल रूप में हम यह कह सकते हैं कि यदि केन्द्रीय कार्यालय को अधिक शक्तियाँ दी गई हैं तो वह व्यवस्था केन्द्रित अथवा केन्द्रीयकरण के निकट है और यदि क्षेत्रीय कर्मचारियों को पर्याप्त शक्तियाँ हस्तान्तरित की गई हैं तो वह विकेन्द्रित सगठन या विकेन्द्रित कहलाता है। और भी स्पष्ट शब्दों में जिस प्रशासकीय पद्धति में केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों के हाथों में अत्यधिक शक्ति निहित हो जिसके परिणामस्वरूप निम्नतर प्रशासकीय स्तरों के कर्मचारियों की शक्ति और विवेक में कमी होना हो उसे केन्द्रीकृत व्यवस्था (Centralized System) कहते हैं। इसके विपरीत जिस प्रशासनिक प्रणाली में कानून या संविधान के द्वारा स्थानीय प्रबन्धकारी निकायों (Bodies) में काफी अधिक शक्ति रखी गई हो उसे विकेन्द्रीकृत व्यवस्था (Decentralized System) कहते हैं।

विलोबी के शब्दों में "अत्यधिक केन्द्रित व्यवस्था में स्थानीय इकाइयाँ केवल कार्यवाहक अभिकरणों (Executive Agencies) के रूप में कार्य करती हैं। उन्हें अपनी पहल (Initiative) से कार्य करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती प्रत्येक कार्य केन्द्रीय कार्यालय की ओर से किया जाता है यहाँ तक कि आन्तरिक प्रबन्ध (Internal Administration) के मामलों—जैसे कि कर्मचारियों की पदोन्नति, प्रशासन के साधनों को जुटाना (The Purchase of Supplies) इत्यादि में भी क्षेत्रीय कार्यालयों को मुख्य कार्यालय की पूर्व अनुमति लेनी पड़ती है।"[1] इसके विपरीत जिस व्यवस्था में क्षेत्रीय इकाइयों को इस बात की पर्याप्त छूट प्राप्त होती है कि वे मुख्य कार्यालय की पूर्व अनुमति के बिना स्वयं ही विभिन्न मामलों के सम्बन्ध में निर्णय ले लें उसे विकेन्द्रित व्यवस्था कहते हैं। इस पद्धति में

1 Willoughby Principles of Public Administration p 124

प्रशासकीय सत्ता विकेन्द्रित कर दी जाती है। स्थानीय कर्मचारियों को अपनी इच्छा सूझबूझ और विवेक के अनुसार कार्य करने की काफी शक्ति प्राप्त रहती है। वे स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अनेक प्रश्नों को केन्द्रीय कार्यालय को सूचित किए बिना ही हल कर सकते हैं। स्थानीय इकाइयों की अपनी सत्ता रहती है वे प्रधान कार्यालय के कार्यवाहक-मात्र के रूप में कार्य नहीं करती।

उल्लेखनीय है कि केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के बीच का अंतर बहुत कुछ मात्रा का है, गुण का नहीं। यदि पूरी तरह से केन्द्रीकृत व्यवस्था होनी है तो संगठन का प्रत्यक्ष कार्य भार संदर्भ जाता है और पूरी तरह से विकेन्द्रित व्यवस्था को अपनाया जाता है तो अराजकता फैल जाती है। फेस्लर (Fesler) ने इन दोनों अवधारणाओं के बीच अंतर इन शब्दों में स्पष्ट किया है—

कोई सत्ता केन्द्रीकरण की ओर उन्मुख हो रही है अथवा विकेन्द्रीकरण की ओर इसका अनुमान मुख्यालय द्वारा निर्णीत मामलों की तुलना में उन मामलों के महत्त्व का अवलोकन कर जिन पर अधिकारियों को निर्णय देने की सत्ता प्राप्त है मुख्यालय में उठने वाले और वहीं निर्णीत होने वाले मामलों में क्षेत्रीय अधिकारियों (Field Officers) से केन्द्र के परामर्श की सीमा और ऐसे क्षेत्रीय अभिमत (Field Opinion) के महत्त्व की सीमा से लगाया जा सकता है। कोई मामला चाहे कार्यक्षेत्र (Field) में ही क्यों न उत्पन्न हो और कुछ सीमा तक नहीं उस पर कार्यवाही ही क्यों न की जाए केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण की स्थिति जानने के लिए यह देखना होगा कि वह कितनी बार क्षेत्रीय अधिकारियों द्वारा मुख्यालय को भेजा जाता है उस क्षेत्र के निर्णय को निर्यंत्रित करने वाले आदेश तथा केन्द्रीय विनियमों की संख्या क्या है उसमें क्षेत्रीय निर्णयों का निरस्त करने के बारे में जनता की अपील की क्या गुंजाइश है प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में अभिकरण के कार्य किस सीमा तक एक ही क्षेत्राधिकारी द्वारा संचालित होते है तथा क्षेत्रीय अधिकारियों की योग्यता क्या है। केवल क्षेत्रीय सत्ता का अस्तित्व और उस पर अधिक कार्यभार तथा उसमें अभिकरण के कर्मचारियों का ।/10 हिस्सा होना ही विकेन्द्रीकरण का द्योतक नहीं होता।[1]

निष्कर्ष रूप में डॉ. एम. पी. शर्मा के शब्दों में केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण का प्रश्न एक ही संगठन के भीतर उच्चतर और निम्नतर अधिकारियों के बीच, संगठन के प्रधान कार्यालय और अधीन इकाइयों के बीच, सरकारी और सार्वजनिक या गैर सरकारी तत्वों के बीच प्रधान कार्यालय और क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच, तथा प्रधान कार्यकारी अधिकारी और कृत्यमूलक विभागों तथा अभिकरणों के बीच उठता है। मोटे तौर पर यदि निर्णय करने की अधिकांश शक्ति उच्चतम

1 M F M op cit p 252

स्तरो पर इस प्रकार एकत्र हो जाए कि निम्नतर स्तरो के अधिकारी लगभग प्रत्येक प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए अपने से ऊँचे अधिकारी के अथवा उच्चतम अधिकारी के पास दौडते रहते हो, तो यह माना जाएगा कि सगठन का स्वरूप केन्द्रित है। इसके विपरीत विकेन्द्रित सगठन के भीतर अधिकाश मामलो मे निर्णय करने की शक्ति निम्न अधिकारियो के हाथो मे रहती है तथा अपेक्षाकृत कम मामले उच्चतर अधिकारियो के पास भेजे जाते हैं। उच्चतर अधिकारियो के पास केवल वे ही मामले भेजे हैं जो बडे अथवा बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण का सार निर्णय की शक्ति के वितरण मे निहित है। किसी भी सगठन मे निर्णय के केन्द्र जितने कम होते हैं, वह उतना ही अधिक केन्द्रित माना जाता है। इसके विपरीत निर्णय के जितने अधिक केन्द्र किसी सगठन मे होते हैं वह उतना ही अधिक विकेन्द्रित माना जाता है। यहा यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के बीच केवल मात्रा का अन्तर है। कोई मौलिक या प्रकारान्तरगत अन्तर नही है क्योकि न तो कोई सगठन पूर्णतया केन्द्रित हो सकता है और न पूर्णतया विकेन्द्रित। यदि वह पूर्णतया केन्द्रित होगा तो प्रत्येक मामले मे निर्णय करने की शक्ति प्रमुख कार्यकारी अधिकारी के हाथो मे केन्द्रित हो जाएगी जिसका परिणाम यह होगा कि उसके पास काम का ढेर लग जाएगा और वह किसी भी स्थिति मे उसे निपटा नही सकेगा। दूसरी ओर पूर्ण विकेन्द्रीकरण का अर्थ होगा अराजकता—प्रत्येक इकाई अपने क्षेत्र मे एकदम स्वच्छन्द होकर निर्णय करेगा। वास्तव मे केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण का प्रश्न दोनो के सतुलन का प्रश्न है।

भारतीय लोक प्रशासन मे यह समस्या गम्भीर विचार विमर्श का विषय बना हुआ है कि सरकार की शक्ति को केन्द्रीकृत रखा जाए अथवा उसका विकेन्द्रीकरण किया जाए। दोनो ही मार्गों को अपनाने के लिए नीति निर्माताओ पर दबाव डाले जाते हैं। नियोजित अर्थ व्यवस्था मजबूत एव शक्तिशाली प्रतिरक्षा की आवश्यकता तथा राष्ट्रीय एकीकरण आदि कुछ बातें ऐसी है जो केन्द्रीकरण की ओर दबाव डालती हैं किन्तु दूसरी ओर प्रजातन्त्र को गाव गाँव तक पहुचाने की माग तथा विभागो को कुछ स्वायत्तता देने का प्रश्न विकेन्द्रीकरण की ओर सकेत करता है। भारत मे इस प्रकार का सामजस्य करना आवश्यक है कि बिना एक के अभाव के दुष्परिणामो को भुगते हुए दोनो के लाभो को प्राप्त कर लिया जाए।

विकेन्द्रीकरण और प्रत्यायोजन (Delegation) मे अन्तर

विकेन्द्रीकरण की योजना प्रत्यायोजन (Delegation) की योजना से भिन्न है। दोनो के बीच मौलिक अन्तर यह है कि विकेन्द्रीकरण की अवस्था मे स्थानीय निकायो को जो शक्तियाँ सौंपी जाती हैं वे प्राय स्वायत्त होती हैं और उस क्षेत्र मे किए गए कार्यों का उत्तरदायित्व पूरी तरह से उनके स्वय के ऊपर ही रहता है प्रत्यायोजन मे यह स्थिति नही रहती। उनमे क्षेत्रीय अभिकरणो को जो कार्य सौंपे

जाते हैं उन्हे करने के लिए न तो वे स्वायत्त होती हैं और न ही उनको उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अमल में वे मुख्य कार्यालय के नाम पर उन शक्तियो का उपभोग करती हैं। इस सम्ब ध म मुख्य अधिकारी समय समय पर आदेश जारी कर सकता है अथवा अधीनस्थ कार्यालय द्वारा किए गए निर्णयो को निस्सकोच ब ल सकता है। विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था का निश्चय स तथ्य से किया जा सकता है कि नि य त्रण की शक्ति कहाँ निहित है।

विकेन्द्रीकरण के रूप या प्रकार

विकेन्द्रीकरण के दो मुख्य रूप या प्रकार हैं—राजनीतिक और प्रशासकीय राजनीतिक विकेन्द्रीकरण म शासन के नवीन सत्ता की स्थापना की जाती है। भारत सघ के अन्तगत स्वायत्तता प्राप्त राज्यों की स्थापना और इसके अन्तगत पचायत राज की स्थापना राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के अच्छे उदाहरण हैं। प्रशासकीय वितरण राजनीतिक एव प्रशासकीय सत्ता के विघटन से ही सम्भव होता है। इसम प्रशासन के साथ जनता को सयुक्त किया जाता है। प्रशासकीय विके न्द्रीकरण उध्वाकार (Vertical) क्षेत्रीय (Territorial) क्षतिज (Horizontal) और कार्यात्मक (Functional) होते हैं। प हले का तात्पय उच्च सत्ता स है जो क्षेत्रीय प्रशासन का सगठन करती है और उसे कुछ स्वत त्र शक्तियाँ तथा काय सौंपती है। क्षेत्रीय प्रशासन के अच्छे उदाहरण जिले और सम्भाग हैं। केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर विभिन्न प्रशासकीय विभागो के अपने प्रशासकीय क्षेत्र होते हैं जिन्हे मण्डल (Circles) क्षेत्र (Zones) जिला (District) आदि कहा जाता है और इनको अपनी अपनी सीमा के अन्तगत निणय शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रादेशिक विके न्द्रीकरण म मुख्य कार्यालय तथा क्षेत्रीय अभिकरणो के म य सम्ब धो की समस्या महत्त्वपूर्ण होती है। कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण मे के न्द्रीय सत्ता द्वारा निणय करने के कुछ क्षेत्र तकनीकी अथवा व्यवसायिक विशेषज्ञो के निकायो को सौंप दिए जाते हैं। केन्द्रीय समाज कल्याण म डल विश्वविद्यालय, अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद् बार एसोसिएशन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ऐसी सस्थाओ के कुछ अच्छे उदाहरण हैं।

आज के युग म लोकतान्त्रिक शासन त्र स्थानीय के अन्तगत प्रशासन मे जनता द्वारा प्रत्यक्ष भाग लेने के रूप म विकेन्द्रीकरण का महत्त्व और प्रचलन बढ़ता जा रहा है। ह्वाइट का मत है कि यदि प्रशासन की अधिक शक्ति लोक निर्वाचित तथा स्थानीय सस्थाओं के हाथ म है तो वह अवश्य विकेन्द्रित हो जाती है अन्यथा केन्द्रीय सत्ता के हाथो म प्रशासन की अधिक शक्ति बनी रहने पर केन्द्रीयकरण की स्थिति होती है। टेनेसी घाटी अधिसत्ता के अध्यक्ष लिलीयन्थल के अनुसार विकेन्द्रित प्रशासन के अनिवाय लक्षण इस प्रकार हैं—

1 अधिकतम निर्णय क्षेत्र में ही किए जाने चाहिए। इस ध्येय को दृष्टि में रखकर क्षेत्र अधिकारियों का चयन तथा प्रशिक्षण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वे मौके पर ही समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो सकें।

2 *विकेन्द्रित प्रशासन में जहां तक सम्भव हो जनता को प्रशासन में प्रत्यक्ष* भाग लेने का अधिकतम अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि जनता केवल आज्ञा का पालन ही न करे वरन् सक्रिय सहयोग भी करे। राज्यों और स्थानीय निकायों की सेवाएं परस्पर पूरक और सहकारपूर्ण होनी चाहिए न कि कार्मिक और उपकरणों की आवृत्ति मात्र। यही नहीं उनका पूरा तरह लाभ भी उठाया जाना चाहिए।

3 क्षेत्र में कार्य करने वाले विविध अभिकरणों के कार्य के मध्य संयोजन क्षेत्र में ही किया जाना चाहिए क्योंकि केन्द्रीय अधिकारियों द्वारा संयोजन का अर्थ देरी, ईर्ष्या तथा क्षेत्राधिकार सम्बन्धी विवादों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।

अधिकार सत्ता के विकेन्द्रीयकरण की मात्रा के निर्धारक तत्त्व
(Determinants of the Degree of Decentralisation of Authority)

यद्यपि अधिकार सत्ता के भारार्पण को व्यक्तिगत प्रबन्धकों की भारार्पण क्षमता प्रभावित करती है फिर भी विकेन्द्रीयकरण की मात्रा कई तत्त्वों द्वारा प्रभावित होती है। प्रो कून्ज एवं प्रो ओ डोनल के अनुसार विकेन्द्रीयकरण के निम्न तत्त्व हैं[1]—

1 निर्णय का मूल्यवान होना (Costliness of the Decision)—प्रबन्धकीय विकेन्द्रीयकरण (Managerial Decentralisation) की सीमा को निर्धारित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व निर्णय की प्रकृति है। ऐसे समस्त निर्णय जो सम्बन्धित *संगठन हेतु महत्त्वपूर्ण एवं महंगे होते हैं उनको उच्च स्तर पर ही रखा जाएगा।* कोई भी निर्णय महत्त्वपूर्ण उस समय माना जाता है जब वह संगठन की स्थिति प्रतियोगिता, कर्मचारियों के मनोबल आदि को प्रभावित करता है। इस प्रकार के निर्णय उच्च स्तरीय अध्यक्षों द्वारा लिए जाएंगे और ऐसे निर्णय जो कि संगठन पर प्रत्यक्ष प्रभाव न डालते हैं निम्न स्तरीय प्रबन्धकों को सौंपे जा सकते हैं।

2 नीति की एकरूपता (Uniformity of Policy) —जब किसी संगठन में नीति को समान रूप से लागू करना हो तो उसका अधिकार सत्ता एक ही अधिकारी के हाथों में केन्द्रित होगी और जब नीति में एकरूपता की आवश्यकता नहीं है तो उसका विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है। विभिन्न कर्मचारियों को उस नीति को लागू करने के अधिकार होंगे। उदाहरणार्थ किसी वस्तु की कीमत किस्म साख

1 Koontz & O Donnell Principles of Management p 350

आदि में सभी शाखों को समान माना जाएगा तब अधिकार सत्ता का केन्द्रीयकरण होगा। लेकिन विभिन्न शाखाओं के साथ में यह नीति अलग अलग लागू की जाती है तो वह नीति में एकरूपता का अभाव उत्पन्न करेगी और इसके परिणामस्वरूप अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण किया जाएगा।

यद्यपि एकरूपता वाली नीति से प्रमापित लेखांकन सौन्यिकी और वित्तीय लेखे तथा करने में आसानी रहती है और मजदूरी पदोन्नति छुट्टियाँ बर्खास्तगी आदि विषयों पर श्रम संघों से समझौता करने में आसानी रहती है फिर भी नीति में विभिन्नता के भी कई लाभ प्राप्त होते हैं जैसे प्रबन्धकीय नव प्रवर्तन (Managerial Innovation) प्रगति संगठना में प्रतियोगिता मनोबल और कार्यकुशलता में वृद्धि और प्रबन्धकीय श्रम शक्ति की पूर्ति को प्रोत्साहन।

इस प्रकार एकरूपता वाली नीति के अन्तर्गत संगठन में केन्द्रीयकरण की अधिक मात्रा होगी और इसके विपरीत नीति में असमानता होने पर विकेन्द्रीयकरण की मात्रा अधिक होगी।

3 आर्थिक आकार (Economic Size)—एक बड़े आकार वाले संस्थान में कई निर्णय कई स्थानों पर लेने पड़ते हैं और उन सभी का समन्वय करना कठिन हो जाता है। इसके साथ ही कई विभाग और स्तर होते हैं। कई विशेषज्ञों तथा प्रबन्धकों को मिलकर निर्णय लेने पड़ते हैं। इससे निर्णय लेने में देरी होती है और यह एक बड़े संगठन के लिए महंगा पड़ता है। इस लागत को कम करने हेतु जहाँ तक सम्भव हो अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण किया जाना चाहिए। बड़े उपक्रमों की सफलता हेतु अधिकार सत्ता विकेन्द्रित की जानी चाहिए यद्यपि विकेन्द्रीयकरण सीमा और फैलाव विभिन्न संगठनों में उनके प्रबन्धकों के गुण के कारण अलग अलग हो सकता है।

एक बड़े उपक्रम की अमित उचित अधिकार-सत्ता के विकेन्द्रीयकरण से एक सीमा तक कम की जा सकती है। इससे प्रत्येक विभाग की कार्यकुशलता में वृद्धि हो सकेगी। निर्णय लेने में शीघ्रता दूसरों के निर्णयों से समन्वय करना कागजी कार्यवाही में कमी और निर्णय की किस्म में सुधार आदि भी विकेन्द्रीयकरण से ही सम्भव हो सकते हैं।

छोटे आकार के संस्थान में अधिकार सत्ता का केन्द्रीयकरण पाया जाता है क्योंकि कर्मचारियों की संख्या कम होती है और निर्णय उच्च स्तरीय प्रबन्धकों द्वारा लेकर उनका क्रियान्वयन भी उन्हीं के द्वारा किया जाता है।

4 उपक्रम का इतिहास (History of the Enterprise)—अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण करना इस बात पर भी निर्भर करता है कि सम्बन्धित उपक्रम का विकास किस प्रकार हुआ है। जहाँ पर एक ही मालिक द्वारा उपक्रम चलाया जाता है वहाँ पर अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण नहीं होगा जबकि जहाँ निगम

के रूप में अथवा शेयरधारियों द्वारा संस्थान चलाया जाता है वहाँ अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण पाया जाता है। इसके साथ ही जिन उद्योगों में अकुशल इकाइयों को कुशल इकाइयों में मिलाकर अथवा सम्मेलन (Amalgamation) द्वारा एक बड़े उपक्रम को जन्म दिया है वहाँ पर प्रारम्भ में अधिकार-सत्ता का केन्द्रीयकरण होगा लेकिन धीरे धीरे बाद में वहाँ विकेन्द्रीयकरण की नीति अपनाई जाएगी।

5 प्रबन्ध दर्शन (Management Philosophy)—किसी भी उपक्रम के उच्च स्तरीय प्रबन्धकों के चरित्र एवं दर्शन का भी अधिकार सत्ता के विकेन्द्रीयकरण पर प्रभाव पड़ता है। जहाँ पर प्रबन्धक यह चाहते हैं कि अधिकारी-सत्ता उन्हीं के हाथों में केन्द्रित रहे और किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं चाहते हैं वहाँ अधिकार सत्ता का केन्द्रीयकरण (Centralisation) होता है। इसके विपरीत जहाँ प्रबन्धक यह समझते हैं कि अधिकार सत्ता के विकेन्द्रीयकरण से व्यवसाय में वृद्धि होती है आर्थिक कुशलता में वृद्धि होती है और यह देश के औद्योगिक विकास में सहायक है वहाँ अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण पाया जाता है।

6 स्वतन्त्रता की इच्छा (Desire for Independence)—कई व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह स्वतन्त्रता की मात्रा की इच्छा रखते हैं। निर्णय में देरी, सूचना प्राप्त करने में लम्बी देरी और कार्य की जिम्मेदारी दूसरे पर डालना आदि से बचने हेतु व्यक्तिगत समूह स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने के इच्छुक होते हैं। ऐसी स्थिति में अधिकार-सत्ता का विकेन्द्रीयकरण होगा। इसके विपरीत स्थिति में केन्द्रीयकरण की व्यवस्था होगी।

7 प्रबन्धकों की प्राप्यता (Availability of Managers)—अधिकार सत्ता के विकेन्द्रीयकरण हेतु प्रबन्धकीय मानव शक्ति (Managerial Manpower) की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि निर्णय विभिन्न प्रबन्धकों द्वारा लिए जाते हैं। यदि प्रबन्धकों की कमी है तो वहाँ अधिकार सत्ता का केन्द्रीयकरण ही सम्भव हो सकेगा। इसके लिए अच्छे प्रबन्धकों की आवश्यकता होगी और बचत होगी। लेकिन प्रशिक्षण हेतु बाह्य स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ेगा। इससे प्रबन्धकों की पूर्ति भविष्य में कम हो जाएगी और उच्च स्तरीय प्रबन्धकों का स्थान दूसरे योग्य प्रबन्धकों के अभाव में भरा नहीं जा सकेगा।

अधिकार सत्ता के विकेन्द्रीयकरण से प्रबन्धकीय प्रशिक्षण (Managerial Training) की समुचित व्यवस्था हो सकती। इससे निम्न स्तर के प्रबन्धकों को निर्णय लेने का प्रशिक्षण भी दिया जा सकेगा और अधिकार-सत्ता का विकेन्द्रीयकरण हो जाएगा। प्रबन्धकीय मानव शक्ति के विकास हेतु विकेन्द्रीयकरण आवश्यक है।

8 नियन्त्रण तकनीक (Control Techniques)—उपक्रम के नियन्त्रण करने की कौनसी विधियाँ या तकनीकें अपनाई जाती हैं ये भी अधिकार सत्ता के विकेन्द्रीयकरण की मात्रा को प्रभावित करती हैं। बिना नियन्त्रण की प्रविधियों के

जाने अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जाए। नियन्त्रण में प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न विधियां जैसे—सांख्यिकी उपकरण, लेखांकन, नियन्त्रण और अन्य प्रविधियों के विकास ने अधिकार सत्ता के विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन दिया है। विकेन्द्रीकरण से न तो नियन्त्रण में कमी आती है और न निम्न स्तरीय निर्णय के अधिकार में दायित्व समाप्त होता है।

9 विकेन्द्रित निष्पादन (Decentralized Performance)—यह एक तकनीकी विषय है जो श्रम विभाजन की बचत (Economies of division of Labour), मशीनों के उपयोग के अवसर, कार्य निष्पादन की प्रकृति (Nature of the work to be performed), कच्चे माल की स्थिति (Location of raw meterial), श्रम पूर्ति और उपभोक्ता आदि तत्वों पर निर्भर करता है। इस प्रकार का विकेन्द्रीयकरण चाहे वह भौगोलिक (Geographical) अथवा भौतिक (Physical) ही क्यों न हो, लेकिन यह अधिकार सत्ता के केन्द्रीयकरण को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता है।

जब निष्पादन विकेन्द्रित होता है तो अधिकार सत्ता भी विकेन्द्रित हो जाती हैं क्योंकि अनुपस्थित प्रबन्धक प्रबन्ध करने में असमर्थ हो जाता है। एक बड़े उद्यम में राष्ट्रीय स्तर पर प्रबन्धक प्रबन्ध के कार्य का निष्पादन सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है और इसी सीमा के कारण विकेन्द्रीयकरण आवश्यक होते हैं।

10 व्यावसायिक गतिशीलता (Business Dynamics)—किसी भी उपक्रम में अधिकार सत्ता विकेन्द्रित हो यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस व्यवसाय की प्रकृति क्या है। एक व्यवसाय जो गतिशील है अर्थात् उसका विकास तेजी से हो रहा है तथा उसमें कई जटिल समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं तो इसके प्रबन्धक जो कि निर्णय लेने का कार्य करते हैं वे अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण करने हेतु तैयार हो जाएंगे। लेकिन इस प्रकार के विकेन्द्रीयकरण में अधिकार सत्ता केवल प्रशिक्षित एवं अनुभवी प्रबन्धकों को दी जानी चाहिए। इसके विपरीत एक स्थैतिक व्यवसाय (Static Business) में अधिकार सत्ता के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है। जहां पर कुछ मजबूत नियम हैं तथा समरूप नीति (Uniform Policy) के लाभ प्राप्त करने होते हैं वहां पर अधिकार सत्ता का केन्द्रीयकरण होता है। यही कारण है कि बैंक तथा बीमा कम्पनियों में विकेन्द्रीयकरण की मात्रा सीमित होती है। नई खोज, कठोर प्रतियोगिता और राजनीतिक परिवर्तनों से व्यवसाय में गतिशीलता उत्पन्न होती है और इसके परिणामस्वरूप अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण पाया जाता है।

11 वातावरण सम्बन्धी प्रभाव (Environmental Influences)—विकेन्द्रीयकरण की सीमा को प्रभावित करने में केवल आन्तरिक तत्वों का ही महत्व नहीं है बल्कि कुछ बाह्य तत्व जैसे निष्पादन का विकेन्द्रीयकरण

(Decentralization of Performance) व्यावसायिक गतिशीलता (Business Dynamics) और वातावरण सम्बन्धी प्रभाव आदि भी इसे प्रभावित करते हैं। वातावरण सम्बन्धी प्रभाव विकेन्द्रीयकरण को निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं। इनके अन्तर्गत सरकारी नियन्त्रण (Govt Controls) राष्ट्रीय श्रम सघवाद (National Unionism) और कर नीतियाँ (Tax Policies) अधिकतर महत्त्वपूर्ण तत्त्व आते हैं।

कई बार व्यावसायिक नीति के विभिन्न भागों पर सरकारी नियमन के कारण अधिकार के विकेन्द्रीयकरण को अपनाना न केवल कठिन ही हो जाता है बल्कि कभी कभी यह असम्भव भी हो जाता है। उदाहरण के तौर पर किसी उपक्रम द्वारा उत्पादित वस्तु के मूल्य को नियन्त्रित करने हेतु उसके निर्धारण में विक्रय प्रबन्धक (Sales Manager) को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती है। इसी प्रकार यदि श्रमिक कुछ घण्टे कार्य निश्चित मजदूरी दर पर करता है तो उसके कार्य के घण्टे व मजदूरी निर्धारण का कार्य स्थानीय मण्डल प्रबन्धक (Local Division Manager) नहीं कर सकता है।

इसी प्रकार से उच्च प्रबन्धक भी एक नीति के नियन्त्रित पहलू (Controlled aspect of Policy) पर कोई अधिकार सत्ता नहीं रखता है। अतः वह इस पर की अधिकार सत्ता जो कि उसके पास नहीं है का भारार्पण नहीं कर सकता है। सरकारी नियमन का अधीनस्थों की क्रियाओं पर उच्च प्रबन्धकों का विश्वास न होने से भी अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीयकरण नहीं किया जा सकता है।

राष्ट्रीय श्रम सघवाद (National Unionisn) के विकास से व्यवसाय पर एक केन्द्रित प्रभाव ही पड़ा है। एक कम्पनी के श्रम सघ से समझौता करने हेतु अधीनस्थों को उच्च प्रबन्धक से अधिकार सत्ता प्राप्त हो जाता है और इससे विकेन्द्रीयकरण सम्भव हो जाता है लेकिन जहाँ पर राष्ट्रीय स्तर पर श्रम सघ मुख्यालयों के प्रबन्ध से सामूहिक सौदा प्रसंविदा (Collective Bargaining Contract) किया जाता है तब एक कम्पनी निर्णय लेने में विकेन्द्रीयकरण का सहारा नहीं ले सकती है।

सरकारी आगम (Govt Revenue) के उद्देश्य से लगाए गए कर चाहे वे केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार से लगाए गए हों अथवा स्थानीय सरकार के द्वारा लगाए गए हों व्यवसाय को नियमित करने में बड़ा प्रभाव डालते हैं। एक कम्पनी के प्रबन्धक हेतु समरूप कर नीति (Uniform Tax Policy) महत्त्वपूर्ण होती है और इसके अन्तर्गत अधिकार सत्ता का केन्द्रीयकरण ही पाया जाएगा।

इस प्रकार किसी भी सगठन अथवा उपक्रम मे अधिकार सत्ता के विकेन्द्रीयकरण की मात्रा कितनी होगी यह इन उपरोक्त तत्त्वों पर निर्भर करती है। ये सभी तत्त्व उपक्रम के आन्तरिक तथा बाह्य वातावरण से प्रभावित होते हैं।

विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त

(Principles of Decentralisation)

संयुक्त राज्य अमेरिका की जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के अध्यक्ष राल्फ जे कार्डिनर ने विकेन्द्रीयकरण के जिन प्रमुख सिद्धान्तों को बताया है उन्हें संक्षेप में आर सी अग्रवाल ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

(1) विकेन्द्रीयकरण निर्णय लेने का अधिकार ऐसे बिन्दुओं के निकटतम प्रदान करता है जहाँ पर कि वास्तव में क्रियाओं को किया जाना है।

(2) विकेन्द्रीयकरण तभी क्रियान्वित होगा जबकि वास्तव में अधिकार प्रदान किए गए हों।

(3) विकेन्द्रीयकरण इस विश्वास पर आधारित है कि जिन अधीनस्थों को अधिकार सौंपा गया है उनमें उचित निर्णय लेने की क्षमता विद्यमान है।

(4) विकेन्द्रीयकरण के लिए इस प्रकार की आपसी समझदारी का होना आवश्यक है कि स्टाफ का प्रमुख योगदान कुछ अनुभवी लोगों के माध्यम से रेखा कर्मचारियों को सहायता एवं परामर्श प्रदान करता है ताकि निर्णय ले सकें एवं उसमें स्वयं सुधार कर सकें।

(5) विकेन्द्रीयकरण इस मान्यता पर आधारित है कि किसी एक व्यक्ति द्वारा लिए निर्णयों की तुलना में अधिक व्यक्तियों द्वारा लिए गए निर्णय व्यवसाय के लिए अधिक लाभदायक होते हैं।

(6) विकेन्द्रीयकरण तभी सम्भव है जबकि उच्च अधिकारी सच्चे हृदय से निम्न स्तरों के अधिकारियों को अधिकार प्रदान करें तथा इस बात को सदा के लिए मन से निकाल दें कि उन्हें अधिकारों को वे अपने पास भी रख सकते हैं।

(7) विकेन्द्रीयकरण तभी प्रभावशाली होगा जबकि निर्णय लेने के अधिकार के साथ उत्तरदायित्व की भावना भी उत्पन्न हो अर्थात् इसमें अधिकार और उत्तरदायित्व दोनों एक साथ सौंपे जाते हैं।

(8) विकेन्द्रीयकरण का लाभ तभी होगा जबकि सभी अथवा अधिकांश निर्णयों में अधिकतम ज्ञान तथा समयानुकूल समझदारी से काम लिया जाए।

(9) विकेन्द्रीयकरण के लिए सर्वाङ्गीय नीतियों में आवश्यक संशोधन करना होगा। इन नीतियों का प्रमाणित आधार होना चाहिए तथा जो व्यक्ति अच्छा कार्य कर उसके लिए पारितोषण दिए जाने की व्यवस्था हो और इसके विपरीत अयोग्यता अथवा खराब कार्य के लिए हटाए जाने की व्यवस्था हो।

(10) विकेन्द्रीयकरण सामान्य व्यावसायिक उद्देश्य, संगठन संरचना सम्बन्धी नीतियों मापों के मानने समझने एवं जानने की आवश्यकता पर निर्भर करता है।

विकेन्द्रीयकरण के लाभ

(Advantages of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण के महत्त्वपूर्ण लाभ निम्नलिखित हैं—

1 उच्च अधिकारियों के कार्यभार में कमी करता है (Reduces the burden of top executives)—एक बड़े आकार वाले उपक्रम हेतु विकेन्द्रीयकरण आवश्यक है। विकेन्द्रीयकरण के माध्यम से उच्च अधिकारी बड़े संस्थान पर अपना नेतृत्व रख सकते हैं और वे अपने को कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर केन्द्रित रखते हैं। इससे उच्च अधिकारी विभिन्न क्रियात्मक निर्णयों (Operating decisions) से मुक्त रहते हैं और संस्थान की नीति तथा प्रशासन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कार्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

2 अधीनस्थों को उच्च निष्पादन हेतु प्रेरित करता है (Motivates subordinates for high performance)—इसके अन्तर्गत समुचित प्रबन्धकीय कार्य के भारार्पण से संगठनात्मक संरचना अधीनस्थों के मनोबल, दायित्व एवं अपने आप कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास होता है। अधीनस्थ कर्मचारियों को भी कार्य करने के अधिकार एवं दायित्व का भारार्पण किए जाने से उनके आपस में विचार विमर्श करने तथा निर्णय लेने से कार्य सम्पादन का उच्च स्तर प्राप्त किया जाता है।

3 प्रबन्धकीय कर्मचारियों के गुण का विकास करता है (Develops the quality of managerial personnel)—विकेन्द्रीयकरण से विभिन्न कर्मचारियों को प्रशिक्षण एवं उनकी जाँच का अवसर मिलता है इसी से उच्च प्रबन्धकीय पदों हेतु उच्च अधिकारियों का विकास होता है। विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत विभागीय प्रबन्धक अपने क्षेत्र में एक संकीर्ण विशेषज्ञ बन जाते हैं जो कि संगठन की समस्त प्रबन्धकीय जिम्मेदारियों को पूर्ण रूप से निभा नहीं सकते हैं। लेकिन विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत कनिष्ठ प्रबन्धकों (Junior Managers) को प्रशिक्षण एवं कार्य की जिम्मेदारियाँ सौंपकर उनको उच्च प्रबन्धकीय पदों हेतु तैयार किया जा सकता है।

4 उत्पादों में विभिन्नता आती है (Facilitates diversification of products)—विकेन्द्रीयकरण से उत्पादों का विकास होता है और इनमें विभिन्नता आती है। अलग अलग उत्पादों के लिए अलग अलग विभाग स्थापित किए जाते हैं। इन उत्पादों की वर्तमान स्थिति, भावी स्थिति एवं विकास आदि पर विचार किया जाता है और योजनाएं तैयार की जाती हैं। इससे विभिन्न अधिकारियों के व्यक्तिगत विचार तथा क्षमताओं के उपयोग से नए नए उत्पादों का निर्माण सम्भव होता है। जबकि केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत विभिन्न उत्पादों को एक विक्रय विभाग ही बेचता है और इस विभाग द्वारा कुल विक्रय पर अधिक ध्यान दिया जाता है जबकि प्रत्येक उत्पाद के बारे में अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है।

5 क्रियाओं का अच्छा समन्वय होता है (Secures better co ordination of operations) – विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत प्रत्येक स्तर पर अधिकारियों को अधिक अधिकार देकर व दायित्व सौंपा जाता है। प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने अधिकारों व दायित्वों से सम्पूर्ण विभाग की क्रियाओं का समन्वय करता है। इस प्रकार प्रत्येक विभाग अपने विभाग की क्रियाओं का समन्वय करता है तथा सभी एक साथ मिलकर कार्य करते हैं जिससे विभिन्न क्रियाओं का समन्वय अच्छा हो जाता है।

6 प्रभावपूर्ण नियन्त्रण (Effective control)—लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रमापों की स्थापना और निष्पादन का माप किया जाता है और इन दोनों से विभिन्न विभागों के कार्यों को निर्यन्त्रन किया जाता है। विभिन्न प्रबन्धकों की कार्यकुशलता को ज्ञात करने हेतु लाभ की मात्रा और विनियोग पर प्राप्त प्रतिफल दर को ध्यान में रखा जाता है। इसमें विभिन्न विभागों के निर्धारित लक्ष्यों व परिणामों का अध्ययन आसानी से करके प्रभावपूर्ण नियन्त्रण किया जा सकता है।

विकेन्द्रीयकरण की सीमाएं एवं कठिनाइयाँ
(Limitations and Difficulties of Decentralisation)

विकेन्द्रीयकरण की भी अपनी कमियाँ तथा कठिनाइयाँ हैं जिन्हें दूर करने हेतु हमें केन्द्रीयकरण अपनाना होगा। विकेन्द्रीयकरण की सीमाएं तथा कठिनाइयाँ निम्न प्रकार हैं—

1 उच्च कार्यशील लागत (High cost of operation)—विकेन्द्रीयकरण की उच्च लागत का वहन करने हेतु उपक्रम का बड़ा आकार होना आवश्यक है। प्रत्येक विभाग को पूर्ण रूप से कार्य करने हेतु केन्द्रीय कर्मचारियों के अतिरिक्त सेवा कार्यों (Service Function) हेतु भी कर्मचारियों की नियुक्ति करनी पड़ती है। प्रत्येक विभाग हेतु अलग उत्पादन और विपणन सुविधाओं का प्रबन्ध करना पड़ेगा। इस व्यवस्था से कार्यों का दोहराव तथा साधनों का अपव्यय होता है। इन सबके परिणामस्वरूप उपक्रम में उच्च कार्यशील लागत आती है।

2 सभी कार्यों का अविभाज्य होना (Indivisibility of all operations)—उपक्रम की एक शाखा जो कि एक प्रदेश में कार्य कर रही है वह अपने कार्यों को फिर विभाजित नहीं कर सकती है। तकनीकी अविभाज्यता के कारण अधिक विकेन्द्रीयकरण सम्भव नहीं होता है।

3 बहुमुखी अधिकारियों का अभाव (Absence of well rounded executives)—विभिन्न विभागों वाली कम्पनी विभागीय प्रबन्धकों की कार्यकुशलता पर अधिक आश्रित होती है। जब कोई भी फर्म या कम्पनी अपने संगठन को क्रियात्मक के स्थान पर विभागीय संरचना पर चलाती है तो ऐसे प्रबन्धकों की कमी का अनुभव होता है जो कि अधिक दायित्व का वहन करते हुए मुख्यालय से नियन्त्रित हों।

4 नीति नियन्त्रण की समस्या (Problem of policy control)—एक उपक्रम में विकेन्द्रीयकरण के परिणामस्वरूप विभिन्न इकाइयों एवं विभागों को अधिकार और दायित्व सौंपकर स्वतन्त्र कर दिया जाता है। लेकिन श्रम सघवाद सरकारी नियम और व्यावसायिक परिवर्तनों के कारण एक उपक्रम पर नीति नियन्त्रण स्थापित करना परमावश्यक है। नीति नियन्त्रण करने से विभिन्न विभागों की स्वायत्तता समाप्त होती है जो कि विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत सम्भव नहीं होता है।

5 सकटकाल मे बाधक (Handicap in emergency)—विकेन्द्रीयकरण सकटकालीन निर्णयों को लागू करने में बाधक है। यदि एक उपक्रम मे विभिन्न निर्णयों—जैसे उत्पादन वित्त विक्रय सरकारी नीति आदि को लागू करना है तो वे निर्णय शीघ्रता और आसानी से लागू नहीं कर सकते हैं। केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत किसी भी प्रकार के निर्णय शीघ्रता और आसानी से लागू किए जा सकते हैं।

उद्योगो का केन्द्रीयकरण
(Centralisation of Industries)

विकेन्द्रीयकरण के साथ प्रासगिक रूप में हम केन्द्रीयकरण के व्यावहारिक वस्तुओं को भी जान लेना चाहिए। जब कोई उद्योग विशेष सुविधाओं के कारण देश के एक ही भाग अथवा स्थान पर केन्द्रित हो जाता है तो इस प्रवृत्ति को स्थानीयकरण (Localisation) अथवा केन्द्रीयकरण (Centralisation) कहा जाता है। इसका दूसरा नाम प्रादेशिक श्रम विभाजन (Regional Division of Labour) अथवा भौगोलिक विशिष्टीकरण (Geographical Specialisation) भी है। उदाहरणार्थ प बगाल में जूट उद्योग बम्बई में कपड़ा उद्योग आदि इस प्रवृत्ति के द्योतक हैं। उद्योगों के केन्द्रीयकरण के कुछ लाभ तथा दोष हैं जिनका वर्णन करना उपयुक्त होगा।

केन्द्रीयकरण के लाभ
(Advantages of Centralisation)

उद्योगो के एक ही प्रदेश अथवा क्षेत्र में केन्द्रित होने से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

1 स्थान तथा वस्तु की प्रसिद्धि (Reputation of the Place & the Commodity)—जब कोई उद्योग एक स्थान विशेष पर केन्द्रित हो जाता है तो वह स्थान और उद्योग दोनों प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार के उद्योग द्वारा निर्मित वस्तु सुगमता से देश तथा विदेशों मे बिकने लग जाती है। उदाहरणार्थ अलीगढ के ताले, स्विटजरलैण्ड की हाथ की घड़ियाँ और सॉगानेरी प्रिन्ट ससार के प्रत्येक देश मे बिकती हैं।

2 श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि (Increase in Workers Efficiency)—उद्योगों के एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाने से श्रमिक एक ही प्रकार का कार्य निरन्तर करते रहते हैं और इसी कार्य को निरन्तरता से उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि हो जाती है। यहाँ तक कि श्रमिकों के बच्चे भी बिना शिक्षा एवं प्रशिक्षण के कार्य सीखने लग जाते हैं। इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती जाती है।

3 कुशल श्रमिकों की नियमित पूर्ति (Regular Supply of Skilled Workers)—उद्योगों के केन्द्रीयकरण से इन उद्योगों में कार्यरत श्रमिक एक ही कार्य करते रहने से कार्य में कुशलता प्राप्त कर लेते हैं। इस स्थान पर रोजगार की तलाश में अन्य स्थानों से श्रमिक आते हैं और इससे श्रमिकों की नियमित पूर्ति होती रहती है। यह स्थान विशेष एक प्रकार से श्रम बाजार बन जाता है।

4 पर्याप्त बैंकिंग एवं साख सुविधाएँ (Adequate Banking & Credit Facilities)—एक स्थान पर विभिन्न उद्योगों के केन्द्रित हो जाने से वहाँ पर्याप्त संख्या में बैंकिंग साख वित्तीय एवं बीमा कम्पनियों की स्थापना की जाती है। इन संस्थाओं से उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में और उचित दर पर पूँजी उपलब्ध हो जाती है।

5 आधुनिकतम एवं नवीनतम मशीनों का प्रयोग (Use of Modern & Latest Machinery)—एक ही स्थान पर उद्योगों का केन्द्रीयकरण होने से उनमें आपस में प्रतिस्पर्द्धा होने लगती है। इस प्रतिस्पर्द्धा में विजय प्राप्त करने हेतु न्यूनतम लागत पर उत्पादन करने का प्रयास किया जाता है और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रत्येक उद्योग को आधुनिक एवं नवीनतम मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है। इससे नवीनतम मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलता है।

6 अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण को प्रोत्साहन (Encouragement to Research & Training)—एक स्थान पर उद्योगों के केन्द्रीयकरण के परिणामस्वरूप एक ही मालिक अथवा उद्योगों के सभी मालिकों द्वारा मिलकर अनुसंधान एवं प्रशिक्षण हेतु संस्थाओं की स्थापना की जाती है। इन संस्थाओं द्वारा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण पर पत्र पत्रिकाएँ भी प्रकाशित की जाती हैं। इनसे उत्पादन के नए तरीकों की खोज होती है।

7 पूरक तथा सहायक उद्योगों का विकास (Growth of Supplementary & Subsidiary Industries)—उद्योगों के केन्द्रीयकरण से विभिन्न उद्योगों के पूरक एवं सहायक उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरणार्थ जहाँ वस्त्र उद्योग का केन्द्रीयकरण हो जाता है वहाँ पर कपड़ा रंगने की अनेक इकाइयाँ खुल जाती हैं ये रंगाई इकाइयाँ कपड़े उद्योग की पूरक होंगी। इसी प्रकार कपड़ा उद्योग की मशीनों की मरम्मत हेतु स्थापित मरम्मत वर्कशाप सहायक उद्योग के रूप में प्रोत्साहित होती है।

8 गौण पदार्थों का पूर्ण उपयोग (Full Utilization of by products — किसी एक उद्योग की बहुत सी इकाइयाँ एक ही स्थान पर केन्द्रित होने से बड़ी मात्रा में गौण पदार्थ प्राप्त होते हैं। इन पदार्थों का अधिकतम उपयोग सम्भव हो जाता है। उदाहरण के तौर पर जिन स्थानों पर चीनी उद्योग का केन्द्रीयकरण होता है वहाँ पर चीनी के गौण-पदार्थ शीरा से अलकोहल (Alchohol) बनाने हेतु कारखाने खोले जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप न केवल गौण पदार्थ का ही पूर्ण उपयोग हो जाता है, बल्कि चीनी मिल मालिकों को दो रूपों में लाभ प्राप्त होता है—एक इस गौण पदार्थ (शीरा) के दाम मिल जाते हैं तथा दूसरी ओर शीरे को उठवाकर दूर डलवाने में यातायात पर होने वाले व्यय में बचत होती है।

9 यातायात एवं सन्देशवाहन के साधनों का विकास—एक स्थान पर उद्योग की अनेक इकाइयों की स्थापना होने पर उद्योग हेतु कच्चा माल लाने तथा इनके निर्मित माल को बाजार तक पहुंचाने हेतु यातायात के साधनों का पूर्ण विकास किया जाता है। इसी प्रकार कच्चे माल के खरीदने और निर्मित माल के बेचने हेतु टेलीफोन, तार आदि सन्देशवाहन के साधनों का विकास हो जाता है।

10 लागत में कमी (Reduction in cost)—उद्योगों के केन्द्रीयकरण के उपयुक्त लाभों के कारण वस्तु विशेष की लागत कम होती है। श्रम, कच्चामाल पूँजी तथा अन्य साधन पर्याप्त मात्रा में और उचित कीमत पर प्राप्त होने लगते हैं। गौण-पदार्थों के उपयोग, सहायक एवं पूरक उद्योगों की स्थापना, यातायात एवं सन्देशवाहन के साधनों का पर्याप्त विकास आदि सभी तत्व वस्तु की उत्पादन लागत में कमी करते हैं।

केन्द्रीयकरण के दोष हानियाँ
(Evils of Centralisation)

केन्द्रीयकरण एक अमिश्रित वरदान (Unmixed blessing) नहीं है। इसकी भी कुछ कमियाँ अथवा हानियाँ हैं जो निम्नांकित हैं—

1 श्रमिकों की कार्यकुशलता का एकांगी विकास (One sided Development of Workers Efficiency)—उद्योगों के स्थानीयकरण अथवा केन्द्रीयकरण के कारण इन उद्योगों में कार्यरत श्रमिक निरन्तर एक ही कार्य करते रहने से कार्य कुशलता प्राप्त कर लेते हैं लेकिन वे अन्य उद्योगों में कार्य करने के अयोग्य हो जाते हैं। उदाहरणार्थ पं बंगाल में कलकत्ता के जूट उद्योग में श्रमिक बम्बई की कपड़े की मिलों में कार्य नहीं कर सकते हैं

2 देश का असन्तुलित आर्थिक विकास (Unbalanced Economic Development of the Country)—देश के एक क्षेत्र अथवा प्रदेश में उद्योगों का केन्द्रीयकरण होने से उस क्षेत्र का तीव्र गति से विकास होने लगता है लेकिन देश के अन्य भागों में उद्योगों की स्थापना न होने के कारण वे क्षेत्र पिछड़े हुए रह जाते हैं।

इस प्रकार देश के एक भाग मे अधिक औद्योगीकरण से तीव्र आर्थिक विकास तथा दूसरी ओर उद्योगो की स्थापना न होने से क्षेत्र पिछड़ा हुआ रह जाता है। इसमे असन्तुलित आर्थिक विकास और धन का क्षेत्रीय वितरण असमान हो जाता है। पिछड़े और विकसित क्षेत्रो के निवासियो म एकता के स्थान पर ईर्ष्या के भाव उत्पन्न होने लगते हैं।

3 श्रमिकों की गतिशीलता मे कमी (Lack of Mobility Workers)—उद्योगो के केन्द्रीयकरण के कारण श्रमिक उद्योग विशेष म निरन्तर काय करते रहने स दूसरे काय से अनभिज्ञ रहते हैं। वे दूसरे उद्योग मे नही जा सकते हैं और इस प्रकार उनकी एक उद्योग को छोडकर दूसरे उद्योग म प्रवेश करने सम्बन्धी गतिशीलता म कमी आ जाती है।

4 आर्थिक सकट तथा बेरोजगारी (Economic Crisis and Unemployment)—उद्योग के स्थान विशेष पर केन्द्रित हो जाने से वह आर्थिक दृष्टि से असुरक्षित होता है। यदि किसी कारणवश उद्योग मे मदी आ जाती है तो श्रमिक बेकार हो जाते हैं और उन्हे आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। श्रमिको म बेरोजगारी फैलने से उनके द्वारा क्रय की जाने वाली वस्तुओ की माग कम हो जाती है। इसका प्रभाव यह होता है कि समस्त अर्थ व्यवस्था मे मन्दी आ जाती है।

5 सुरक्षा की दृष्टि से अनुपयुक्त (Undesirable from the Security point of view)—उद्योगो का केन्द्रीयकरण युद्ध तथा सुरक्षा की दृष्टि से अनुपयुक्त है क्योकि युद्धकाल मे शत्रु बम वर्षा औद्योगिक क्षेत्रो पर ही करता है। उद्योगो के नष्ट हो जाने स अर्थव्यवस्था पगु हो जाती है। अत यह कहना ठीक है कि सभी अण्डो को एक टोकरी म रखना बुद्धिमानी नही। यदि उद्योग विकेन्द्रित होते हैं तो सभी उद्योगो को खतरा उत्पन्न नहीं हो सकता है।

6 औद्योगिक दोष (Industrial Evils) – केन्द्रीयकरण के परिणामस्वरूप बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो जाते हैं जिनमे कारखाना प्रणाली के सभी दोष उत्पन्न हो जाते हैं। श्रमिको की सख्या अधिक होने से आवासीय समस्या (Housing Problems) उत्पन्न हो जाती है। श्रमिक अपने परिवार को साथ नही रखता है। वह कई सामाजिक बुराइयो जैसे—शराब पीना जुआ खेलना वेश्यावृत्ति आदि का शिकार हो जाता है। इससे उसका नैतिक पतन हो जाता है। अनेक कारखानो के कारण वातावरण दूषित हो जाता है। इन सब का श्रमिको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे श्रमिको म श्रमिकावर्तन श्रम अनुपस्थिति तथा श्रमिक प्रवासिता का प्रवृत्ति पायी जाती है। इन सबका प्रभाव उसकी कार्यकुशलता पर पड़ता है जो कि औद्योगिक उत्पादन मे कमी लाते हैं।

7 बाह्य अबचतें (External Diseconomies)—उद्योगो के केन्द्रीयकरण के कारण बाह्य बचता (External Economies) के स्थान पर बाह्य अबचतें

प्राप्त होने से उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। उदाहरण के तौर पर अधिक उद्योगों के कारण यातायात की सुविधाएं कम पड़ने लगती हैं। भूमि की कमी होने लगती है। भूमि के किराए और कीमत में वृद्धि होने लगती है। उस स्थान के सभी बैंक मिलकर भी पूंजी की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। इसी प्रकार से प्रत्येक उद्योग को आने वाली कठिनाई का उसके पूरक और सहायक उद्योगों को भी सामना करना पड़ता है।

औद्योगिक केन्द्रीयकरण के इन उपर्युक्त दोषों के कारण विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। आधुनिक औद्योगीकरण की प्रवृत्ति के अन्तर्गत देश के सभी क्षेत्रों का सन्तुलित विकास करना मुख्य उद्देश्य होने के कारण उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण किया जाता है। उद्योगों के केन्द्रीयकरण के दोषों को दूर करने हेतु नए उद्योगों की स्थापना देश के विभिन्न भागों में की जानी चाहिए तथा इस प्रकार के उद्योग वहाँ नहीं स्थापित किए जाए जहां पर पहले ही केन्द्रीयकरण है। इसके साथ ही जहाँ पर उद्योगों का केन्द्रीयकरण है वहाँ पाए जाने वाली सभी बुराइयों को दूर करने हेतु निम्न कदम उठाए जाने आवश्यक हैं—

1 घने बसे औद्योगिक केन्द्रों पर आवासीय समस्या के दोषों को दूर करने हेतु श्रमिकों की स्वच्छ बस्तियों का निर्माण किया जाना चाहिए। इसके निवारण हेतु केन्द्रीय प्रान्तीय एवं स्थानीय सरकारों को श्रमिक संघों के साथ प्रभावपूर्ण कदम उठाने होंगे।

2 केन्द्रीयकरण के दोषों को दूर करने हेतु सरकार द्वारा बनाए गए श्रम कानूनों जैसे—कारखाना अधिनियम 1948 का पूर्णरूपेण पालन करना चाहिए। इससे आवश्यक उत्पादन इकाइयों की स्थापना नहीं हो सकेगी।

3 इन केन्द्रों में श्रम हितकारी कार्यों (Labour Welfare Activities) जैसे वाचनालय पुस्तकालय आन्तरिक एवं वाह्य खेलकूद की व्यवस्था मनोरंजन के साधन आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए। विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने औद्योगिक श्रमिकों के हिताथ श्रम कल्याण केन्द्र (Labour Welfare Centres) स्थापित किए गए हैं। इन केन्द्रों की संख्या और इनकी गतिविधियों में वृद्धि करके श्रमिकों का मानसिक शारीरिक एवं शैक्षणिक विकास किया जा सकता है।

4 उद्योगों के केन्द्रीयकरण के दोषों को दूर करने हेतु श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा (Social Security) भी प्रदान की जानी चाहिए। श्रमिकों को रोजगार की सुरक्षा प्राप्त होनी चाहिए। आकस्मिक दुर्घटना होने पर उचित क्षतिपूर्ति बीमार होने पर बीमा, मृत्यु होने पर आश्रितों की सहायता और वृद्धावस्था में पेंशन आदि के रूप में श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। विश्व में ब्रिटेन ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ पर एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना (Comprehensive Social Security Scheme) पाई जाती है। इसमें जन्म से

लेकर मृ यु तक श्रमिकों की सुरक्षा की जाती है। भारत जसे विकासशील देश म घनी आबादी स्थायी औद्योगिक श्रम सख्या के अभाव मे और वित्तीय कठिनाई से इस क्षेत्र म व्यापक प्रगति न ी हुई है। फिर भी श्रम पूर्ति अधिनियम 1923 कमचारी रा य बीमा अधिनियम 1948 और कमचारी प्रोविन्ट फण्ड अधिनियम 1952 मातृ व लाभ अधिनियम 1961 आदि अधिनियमो से श्रमिको की एक सीमा तक सामाजिक सुरक्षा की पूर्ति की जाती है।

उद्योगा का फलाव और विक द्रीयकरण

(Disposal and Decentralisation of Industries)

उद्योगा का विके द्रीयकरण केन्द्रीयकरण की विपरीत स्थिति को बताता है। विके द्रीयकरण के अ तगत उद्योग एक स्थान पर के द्रित न होकर देश के विभिन्न भागो म दूर दूर तक स्थापित किए जाते हैं।

प्रो स्प्रीगल तथा प्रो ने मबग के अनुसार विके द्रीयकरण म बाहरी सय त्रा को उ पादन का स्थाना तरण करके केन्द्रीय सय त्र मे सापेक्षिक रूप से न केवल उत्पादन ब कि वास्तविक रूप म उत्पादन को घटाना शामिल किया जाता है।[1]

अब उद्योगा के एक स्थान पर केन्द्रित होने के कारको (Factors) का उतना मह व नहीं है जितना कि औद्योगीकरण के प्रारम्भिक काल म था। इन तत्वो का न केवल मानवीय आविष्कारो द्वारा मह व कम कर दिया गया है ब कि कई प्राकृतिक घटनाओ के कारण समाप्त भी हो गए हैं। उदाहरणाथ वस्त्र उद्योग मे आद्रता के य त्र से स्थानीयकरण क माग म जलवायु सम्ब धी बाधा को समाप्त कर दिया गया है। इसकी सहायता से पजाब दिल्ली और उत्तर प्रदेश म भी वस्त्र उद्योग चलाए जा सकते हैं। अब एक उद्योग एक स्थान पर स्थापित कर दिया जाता है और इसकी विभिन्न इकाइया देश के विभिन्न क्षेत्रो म चलाई जाती हैं। इन सब पर विके द्रीयकरण के अनुसार काय किया जाता है लेकिन निर्देशन समरूप प्रब ध से प्राप्त होगा।

हाल ही क वर्षों मे कुछ बड उद्योगा म अपनी क्रियाओ म विके द्रीयकरण की प्रवृत्ति देखन को मिलती है। कभी कभी सहायक सय त्रा को मुख्य सय त्र से एक सम्बद्ध एकीकरण योजना क एक भाग के रूप म बहुत दूर रखते हैं। कई बार लटरल एकीकरण हेतु समान उ पाद करने वाले सहायक निर्माणकारी सय त्रा को भीडभाड (Congestion) का दूर करने हेतु दूर दूर स्थापित कर दिए जाते हैं। सय त्रो के फलाव (Disposal of Plants) क कारण माल की पूर्ति श्रम और उत्पादन के वितरण आदि म कई लाभ प्राप्त होते हैं। अब उद्योगो के फलाव हेतु ससार क सभी देश एकमत पाए जाते हैं। भारत म स तुलित प्रादेशिक विकास की

1 S / dL b gh 1 d t IM g m t p 11

भाग के कारण इस विचार को मान्यता मिली है। सरकार को उद्योगों के स्थानीयकरण का नियमित व नियन्त्रित करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से काय करना चाहिए।

अब कुछ वस्तु निर्माताओं (Manufacturers) का विचार है कि उद्योग का व्यापक फैलाव कई दीर्घकालीन सामाजिक और आर्थिक लाभ प्रदान करता है। एक प्रदेश में स्थित संयन्त्र की निर्माणकारी प्रक्रिया को कई स्थानों पर सहायक संयन्त्र स्थापित करके फैलाया जा सकता है और उन सब पर एकीकृत नियन्त्रण एवं निर्देशन एक ही प्रबन्धक द्वारा हो सकता है। प्रो स्प्रीगल तथा प्रो लेन्सबर्ग के अनुसार विकेन्द्रीयकरण के सामाजिक और आर्थिक लाभों के अतिरिक्त निम्न लाभ और हैं।[1] इन्हें विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करने वाले तत्व भी कह सकते हैं। ये हैं—

(1) अनुकूल श्रम विधान (Favourable Labour Legislation)
(2) निम्न श्रम लागतें (Lower Labour Costs)
(3) कच्चे माल का स्रोत अथवा बाजार की समीपता (Nearness to the source of raw materials or the market)
(4) सस्ती बिजली शक्ति (Cheap Electric Power)
(5) निम्न कर (Lower Taxes)
(6) मुफ्त भूमि के रूप में विशेष प्रोत्साहन (Special Inducement in the form of free landsites)
(7) युद्धकालीन आक्रमण से सुरक्षा (Security from attack in time of war)

किसी भी संयन्त्र के स्थान निर्धारण में उद्योगपति अपनी स्वयं और कर्मचारियों की सुविधाओं तथा आर्थिक तत्वों का ध्यान में रखता है। अल्पकाल में सुरक्षा की दृष्टि से उद्योगों का फैलाव (Dispersion of Industries) इन सभी उद्देश्यों के प्रतिकूल होता है। सरकारी नियम एवं हस्तक्षेप से ही उद्योगों का सुरक्षा की दृष्टि से फैलाव हो पाता है।

विकेन्द्रीयकरण के कारण
(Causes of Decentralisation)

उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण का मुख्य कारण केन्द्रीयकरण के दोषों को दूर करके देश में सन्तुलित आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य तत्वों अथवा कारणों से भी विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिलता है। ये कारण अग्रांकित हैं—

1 *Spriegal and Lansburgh* Industrial Management p 11

1 देश का स तुलित आर्थिक विकास (Balanced Economic Development of the Country)— उद्योगो के के द्रीयकरण से उत्पन्न दोषो को दूर करने तथा देश का तीव्र एव स तुलित आर्थिक विकास करने हेतु प्र येक देश की सरकार औद्योगिक नीति के अ तगत विके द्रीयकरण पर अधिक जोर देती है। उद्योगो के देश के विभिन्न भागा तथा स्थानो म फला देने से न केवल के द्रीयकरण के दोषो को दूर किया जा सकता है बल्कि इस देश के स तुलित आर्थिक विकास और लोगो म एकता एव सहयोग की भावना भी उ पन्न होती है।

2 यातायात एव सदेशवाहन के साधनो का विकास (Development of Means of Transport and Communication)—आधुनिक युग म प्रत्येक देश मे यातायात एव स देशवाहन क साधना का इतना विकास हो गया है कि उद्योगो के लिए आवश्यक क चा माल मशीनो तथा श्रमिको की पूर्ति की जा सकती है। निर्मित माल को बाजारो मे आसानी स पहुँचाया जा सकता है। परिवहन एव सचार यवस्था के विकास से कई विदेशी उद्योगपति भी भारत म कई उद्योग खोल सक हैं।

3 विद्यु त शक्ति का विकास (Development of Electric Power)—बिजली क आविष्कार के पूव अधिकाश उद्योग प्राय कोयले की खानो वाले क्षेत्रो के आस पास ही स्थापित किए जाते थे। लेकिन बिजली के विकास क कारण आसानी से कहीं भी उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं और उ ह सस्ती बिजली की पूर्ति की जा सकती है।

4 सामरिक कारण (Strategic and Military Reasons)—आधुनिक युद्ध प्रणाली मे बमबारी द्वारा थाड ही समय म काफी विनाश किया जा सकता है। युद्धकाल मे शत्रु महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्रो म ही बम फकते हैं। अत उद्योगो के के द्रीयकरण के स्थान पर इनका विके द्रीयकरण इस प्रकार के विनाश से बचा सकता है। प्र येक देश की सरकार उद्योगो की स्थापना करने के पूव इस प्रकार के सुरक्षा उपाय हेतु कदम उठा लेती है।

5 पुराने औद्योगिक क द्रों की असुविधाए (Inconveniences of old Industrial Centres —पुराने औद्योगिक के द्रो म भूमि की कमी के कारण इसके मू य म काफी वृद्धि हो गई है। श्रमिको की आवास समस्या भी बनी है। उद्यो ो क विस्तार की गु जाइश भी नही है। ग दी बस्तियों में श्रमिकों के रहने के कारण कई सामाजिक बुराइयाँ जस–जुआ शराब और वेश्यावृत्ति आदि उ ह घर लेती है और उनकी कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। श्रम सघो की सुदृढता के कारण औद्योगिक अशान्ति भी रहती है। ऐसी स्थिति म इन असुविधाओ से बचने के लिए उद्योगपति प्राचीन औद्योगिक के द्रो म नए उद्योग स्थापित नही करते हैं। इन सब असुविधाओ के कारण उद्योगो के विके द्रीयकरण की प्रवृत्ति का बढावा मिलता है।

6 मशीनों का प्रयोग (Use of Machines)—विभिन्न प्रकार की मशीनों और यन्त्रों के प्रयोग से उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिला है। इनके प्रयोग से उद्योगों को कुशल श्रमिकों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। जहाँ पर श्रम पूर्ति सुलभ नहीं होती है वहाँ पर उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं क्योंकि श्रमिकों के स्थान पर मशीनों और यन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है।

7 आर्थिक सुरक्षा (Economic Security)—बड़े उद्योगों, कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योगों को देश के विभिन्न भागों में स्थापित करने से लोगों को रोजगार मिलता है। उनकी आर्थिक स्थिति सुधरती है। इस आर्थिक सुरक्षा की भावना के कारण ही उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिला है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक समय में प्रत्येक देश चाहे विकसित हो अथवा विकासशील, यह दायित्व हो गया है कि देश में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण न हो, देश का सन्तुलित आर्थिक विकास हो और लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण के विचार पर अधिक बल दिया गया है।

17

प्रत्यायोजन या भारापण
(Delegation)

सत्ता के प्र यायोजन अथवा भारापण की व्याख्या करते हुए जा मत टरी (Terry) द्वारा यक्त किया गया है वह सामा य धारणा से कुछ भिन्न है। उनकी परिभाषा के अनुसार यह आवश्यक नही है कि सत्ता का प्रत्यायोजन उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारियो का किया जाए। नाच क पदाधिकारी भी ऊचे पदाधिकारियो को सत्ता का प्रत्यायोजन कर सकते है। सगठन म सत्ता का प्र यायोजन नीच स ऊपर ऊपर स नीच तथा बराबर वालो के बीच भी हो सकता है। टरी ता केवल यह कह कर छोड देते हैं कि हस्ता तरण का अथ है एक कायपालिका अथवा सगठन की किसी इकाई से दूसरे को सत्ता प्रदान किया जाना।[1] अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए टरी ने आगे कहा है कि जब किसी सगठन का प्रब धक विक्र ता को अपनी सत्ता सौंप देता है तो वह ऊपर से नीचे की ओर प्रत्यायोजन कहलाता है और जब कुछ हिस्सेदार अपनी शक्ति किसी सचालक मण्डल को सौंप देते है ता वह नीचे से ऊपर की ओर प्रत्यायोजन माना जाएगा। बराबर के स्तरो पर प्र यायोजन क उदाहरण क रूप म कुछ अफ्रीकी कबीलो क सरदारो तथा उनक कबीले की क द्रीय सत्ता क मध्य स्थित प्रत्यायोजन को लिया जा सकता है। लोक शासन क अ य विचारक मिलेट (Mielet) के अनुसार सत्ता क प्र यायोजन का अथ दूसरे को कत्त य सौंप देने स कुछ अधिक है। (प्रत्यायोजन का सार है दूसरा को स्वविवेक सौंपना ताकि वे अपन कत्त यो से सम्ब धित विशि ट समस्याओ को सुलझान मे अपन निर्णयो का प्रयोग कर सकें।) (सत्ता क हस्ता तरण को लोक प्रशासन क अनेक विचारको ने प्रत्येक प्रकार के सगठन की एक सव यापी विशेषता माना है जा यापारिक औद्योगिक सैनिक आदि सभी सगठनो म दृष्टिगोचर होती है।)

कुछ विचारको के मत में प्रत्यायोजन या भारापण लोक प्रशासन की विचारधारा का एक मि या कल्पना है जो केवल श द जाल होने क

1 Terry op cit p 271

अतिरिक्त कुछ भी नही है। इस धारणा के पीछे शायद यह मान्य हो सकती है कि प्रत्यायोजित सत्ता देने वाले द्वारा वापस ली जा सकती है। एक अध्यक्ष द्वारा जो भी सत्ता प्रत्यायोजित की जाती है उससे वह स्वय को पूरी तरह से पृथक नही कर सकता। अध्यक्ष का उसे वापस लेने की शक्ति होती है। प्रत्यायोजित शक्ति को वापस ले लेने पर अध्यक्ष चाहे तो स्वय उसका उपयोग कर सकता है। इस सम्बन्ध में अध्यक्ष की शक्ति पर यह सीमा लगी रहती है कि वह प्रत्यायोजित सत्ता छीनते समय अथवा पुन वितरित करते समय इस बात का ध्यान रखे कि इससे अधीनस्थ अधिकारियो का मनोबल तो नही गिरता।

सत्ता के प्रत्यायोजन के सम्बन्ध मे प्रो न्यूमन (Newman) ने बताया है कि सामान्यत सत्ता के हस्तान्तरण का अर्थ है किसी को कुछ करने की आज्ञा देना।[1] हमेन (Haimann) का कहना है कि सत्ता के हस्तान्तरण का अर्थ केवल यह है कि अधीनस्थ को एक निर्धारित सीमा में कुछ करने की सत्ता सौंप दी जाए। प्रत्यायोजन की इस प्रक्रिया के कारण अधीनस्थ अधिकारी अपने उच्च अधिकारी से सत्ता प्राप्त करता है किन्तु उच्च अधिकारी के पास सत्ता अब भी मौलिक रूप से बनी रहती है वह उसे पूरी तरह से नही त्याग देता। सत्ता के प्रत्यायोजन की स्थिति की तुलना शिक्षण व्यवसाय से करते हुए हमन ने कहा है कि जिस प्रकार एक अध्यापक अपने विद्यार्थियो को शिक्षा दान करता है और फिर भी वह उस विद्या से युक्त बना रहता है उसी प्रकार एक सगठन का अध्यक्ष या प्रबन्धक अपने अधीनस्थो को सत्ता सौंपने के बाद भी उस सत्ता से युक्त बना रहता है।

प्रत्यायोजन अथवा भारापण की प्रक्रिया
(The Process of Delegation)

सत्ता का हस्तान्तरण ही अधीनस्थ अधिकारियो के पद की रचना करता है और इस प्रकार सगठन का एक निर्माण होता है। पर हस्तान्तरण किस प्रकार किया जाए यह एक मुख्य समस्या है जिसका समुचित समाधान जाने बिना कोई भी अध्यक्ष अपने पद के उत्तरदायित्व का पालन सफलतापूर्वक नही कर सकता। हस्तान्तरण की प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओ की अच्छी जानकारी अध्यक्ष की एक विशेष योग्यता होने के साथ ही सगठन की सफलता का भी प्रतीक है।

प्रो न्यूमेन (Newman) के मतानुसार प्रत्यायोजन की प्रक्रिया के तीन पहलू होते हैं—(i) एक कार्यपालिका अपने तुरन्त के अधीनस्थो को कर्त्तव्य सौंप देती है (ii) इन कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिए वायदे करने साधनो का प्रयोग

1 *Newman* Administrative Action p 163
2 *H m* op cit p 46

करना तथा अन्य कार्य करने की आज्ञा (सत्ता) प्रदान कर दी जाती है तथा (iii) इन वस्तुओं की सन्तोषजनक सम्पन्नता के लिए प्रत्येक अधीनस्थ को कार्यपालिका के प्रति सत्ता प्रदान करना और उत्तरदायित्व निर्धारित करना। एक सफल प्रत्यायोजन में इन तीनों ही पहलुओं के बीच एक प्रकार का सन्तुलन जितना अधिक कुशल और निश्चित होता है संगठन भी उतना ही अधिक कुशलता एवं सफलतापूर्वक कार्य करता है।

प्रत्यायोजन अथवा भारार्पण का महत्त्व
(Importance of Delegation)

किसी भी व्यावसायिक संगठन में अधिकार एवं दायित्व के भारार्पण के महत्त्व एवं आवश्यकता को निम्न रूपों में देखा जा सकता है—

1 मानवीय सीमाएं (Limitations of Human Being)—भारार्पण की आवश्यकता एवं महत्त्व का प्रमुख कारण मानव की प्राकृतिक सीमाएं हैं। एक व्यक्ति कितना ही कुशल क्यों न हो फिर भी वह समस्त क्रियाओं का सम्पादन नहीं कर सकता है। प्रो ब्रेच (E F L Brech) ने सही लिखा है कि "किसी उपक्रम अथवा उपविभाग की प्रबन्ध प्रक्रिया में इतने कार्य सम्मिलित होते हैं कि एक अकेला व्यक्ति इन सब कार्यों का उत्तरदायित्व की मात्रा, मानसिक शक्ति अथवा समय प्राप्ति के कारण नहीं कर सकता है। अतः इन समस्याओं का एक मात्र महत्त्वपूर्ण उपाय यह है कि उस अन्य व्यक्तियों को अधिकार एव दायित्व का भारार्पण करना चाहिए जिससे बिना समय के अपव्यय के कार्य सही और उचित समय हो सके।

2 विशिष्टीकरण (Specialisation)—एक संगठन में विभिन्न क्रियाएं होती हैं और उनमें अलग अलग प्रकार की कुशलता ज्ञान आदि की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक व्यक्ति में ये गुण नहीं मिल सकते हैं। आधुनिक व्यवसाय की जटिल समस्याओं का एक मात्र उपाय श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण को अपनाना है। यह बिना दायित्व एवं अधिकार के भारार्पण के सम्भव नहीं होता है। कर्मचारियों सम्बन्धी मामले कर्मचारी प्रबन्धक (Personnel Manager) तथा वित्त सम्बन्धी वित्त प्रबन्धक (Finance Manager) को सौंपकर विशिष्टीकरण के लाभ आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

3 व्यावसायिक विस्तार (Business Expansion)—आधुनिक बड़े आकार वाले व्यवसाय केवल एक स्थान पर केन्द्रित नहीं होते हैं। उनकी शाखाएं देश तथा विदेशों में भी स्थापित की जाती हैं। इन शाखाओं को चलाने हेतु शाखा प्रबन्धकों (Branch Managers) को अधिकार एवं दायित्व सौंपने आवश्यक हैं।

4 प्रबन्धकीय विकास (Managerial Development)—भारार्पण की प्रक्रिया से निम्न स्तरीय प्रबन्धकों को विभिन्न प्रबन्धकीय कार्यों–नियोजन संगठन

निर्देशन एव नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य का ज्ञान होता है तथा विभिन्न निर्णय लेने से उनके विकास का मार्ग खुलता है। दायित्व तथा अधिकारो के भारार्पण से विभिन्न समस्याओं के विषय में निर्णय लेने से उनके प्रबन्धकीय गुणों का विकास सम्भव होता है।

प्रत्यायोजन अथवा भारार्पण के सिद्धान्त
(Principles of Delegation)

यदि विभिन्न क्रियाओं को एकीकृत करना (Integration) है तथा उपक्रम के परिणामो में समन्वय तथा एकता करनी है तो भारार्पण के कार्य को प्रभावपूर्ण बनाना होगा। प्रभावपूर्ण भारार्पण के अभाव में उपक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त नही किया जा सकेगा। प्रभावपूर्ण भारार्पण हेतु कुछ मूल सिद्धान्तो को आधार चुनना होगा। ये आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

1 निश्चित दायित्व एव अधिकार (Definite Responsibility and Authority)—किसी भी उपक्रम में प्रभावपूर्ण भारार्पण हेतु यह आवश्यक है कि दायित्व एव अधिकार निश्चित होने चाहिए। उच्च स्तरीय प्रबन्ध मध्यम स्तरीय प्रबन्ध एव निम्न स्तरीय प्रबन्ध मे कार्यरत अधिकारी एव उनके अधीनस्थो के बीच कार्य, अधिकार एव दायित्व निश्चित होने चाहिए। किसी भी निर्णय अथवा स्पष्टीकरण हेतु अधीनस्थ का अपने उच्च अधिकारी से बार बार सलाह एव विचार विमर्श करने की प्रक्रिया भारार्पण के मूल उद्देश्य को पराजित कर देता है। यही कारण है कि बड़े बड़े सगठनों में कार्यों, दायित्वों, शक्तियों, अधिकार एव प्रत्येक प्रबन्धक के सम्बन्धो पर लिखित में सगठन विवरण पुस्तिका (Organisation Manual) रखी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को यह स्पष्ट होना चाहिए कि उसके क्या अधिकार हैं तथा वह किसके प्रति दायी है तथा कौन व्यक्ति उसके प्रति उत्तरदायी है।

2 अधिकार और उत्तरदायित्व की समानता (Parity of Authority & Responsibility)—इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार और उत्तरदायित्व दोनो में समानता होनी चाहिए। यह इस मान्यता पर आधारित है कि यदि अधीनस्थो को कार्य सौंपा जाता है और उसको पूरा करने हेतु अधिकार भी प्रदान किए जाते है तो उनका यह दायित्व हो जाता है कि वे उनका प्रयोग करने हेतु उत्तरदायी है। उदाहरणार्थ विक्रय प्रबन्धक को विक्रय प्रोत्साहन (Sales Promotion) हेतु दायित्व सौंपा जाता है तो उसे विक्रय कार्यालय खोलने विक्रेता नियुक्त करने उन को मजदूरी व छूट देने विज्ञापन करने आदि का अधिकार भी होना चाहिए। बिना पर्याप्त अधिकारो के किसी भी कार्य को पूरा करने का दायित्व पूर्ण रूप से नही निभाया जा सकता है। अधिकार हमेशा उत्तरदायित्व से कम होते हैं क्योकि सभी प्रबन्धको को कुछ आन्तरिक तथा बाह्य सीमाओ में कार्य करना पड़ता है। एक प्रबन्धक को अपने कार्य को करने हेतु तकनीकी ज्ञान का अधिकार स्थिति का अधिकार तथा व्यक्तिगत

अधिकार प्राप्त होने चाहिए (किसी भी कार्य के सम्पादन हेतु अधिकार एवं दायित्व दोनों साथ साथ चलते हैं। ये एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं।)

3 उद्देश्यों पर आधारित (Objectives as Basis)—प्रभावपूर्ण भारार्पण हेतु यह भी आवश्यक है कि कौन कौन से उद्देश्यों हेतु इस प्रक्रिया को काम में लेना है। कितना भारार्पण किया जाए यह उपक्रम के उद्देश्यों पर निर्भर करता है। भारार्पण इतना किया जाए कि व्यक्तियों के सामने रखे गए उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सके। यदि उद्देश्य बहुत ऊँचे रखे गए हैं लेकिन अधिकार एवं दायित्व का भारार्पण पर्याप्त नहीं किया गया है तो वह प्रभावपूर्ण संगठन को प्रोत्साहित नहीं कर सकेगा। अतः भारार्पण की प्रक्रिया का विभिन्न अधिकारियों के समक्ष रखे गए उद्देश्यों को ध्यान में रखकर उपयोग में लाना होगा।

4 आदेश की एकता (Unity of Command)—प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि आदेशों में एकरूपता होनी चाहिए। यदि एक व्यक्ति को कई उच्च अधिकारियों से आदेश प्राप्त होते हैं तो वह स्वयं निश्चित नहीं कर सकेगा कि किस अधिकारी की अनुपालना की जाए। इस प्रकार के भ्रम के निवारण हेतु यह आवश्यक है कि उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थों को काम सौंपना चाहिए तथा उसे उचित अधिकार भी दिए जाने चाहिए। अधिकार एवं दायित्व केवल एक ही स्रोत से मिलने चाहिए। यदि एक स्रोत से अधिकार एवं दायित्व प्राप्त नहीं होंगे तो इससे काम से जी चुराना, अधिकारों का दुरुपयोग तथा दायित्व का अपवंचन होगा।

प्रत्यायोजन अथवा भारार्पण के दोष
(Defects of Delegation)

अधिकार एवं दायित्व के भारार्पण से प्रबन्धकीय विकास होता है, विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन सम्बन्धी लाभ प्राप्त होते हैं, व्यवसाय के विस्तार में सहायता मिलती है और अधीनस्थ कर्मचारियों का नैतिक एवं व्यक्तिगत उत्थान होता है। इन विभिन्न गुणों के बावजूद भी भारार्पण की अपनी सीमाएं हैं। भारार्पण में पाए जाने वाले दोष निम्नलिखित हैं—

1 समन्वय की समस्या (Problem of Co ordination)—भारार्पण की अधिक मात्रा के साथ साथ विभिन्न विभागों, उप विभागों और प्रबन्धकीय स्तरों की विभिन्न क्रियाओं में समन्वय करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। सामान्य व्यवहार में भारार्पण की प्रक्रिया की दुर्बलता, अस्पष्ट तथा आंशिक अधिकार सौंपने के कारण से उत्पन्न होती है। कुछ कार्यों को फिर से करने अथवा उपेक्षा करने के कारण भी समन्वय में अकुशलता पाई जाती है।

इस कमी को दूर करने हेतु उत्तरदायित्वों को स्पष्ट परिभाषित कर देना चाहिए और उच्च अधिकारियों को भारार्पण करने से पूर्व सतर्कता बरतनी चाहिए।

2 धनात्मक प्रेरणा की अपर्याप्तता (Inadequacy of Positive Incentives)—एक उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को अधिकार एवं उत्तरदायित्व का भारापण किया जाता है लेकिन पर्याप्त प्रेरणाओं के अभाव में कोई भी अधीनस्थ कर्मचारी स्वीकार करने में हिचकिचायेगा। यदि उसको समुचित प्रेरणा एवं साख मिलती है तो वह निःसंकोच अधिकार एवं दायित्व के भारापण को स्वीकार करेगा और रुचि से अपने दायित्वों को पूरा करेगा।

3 निर्णय हेतु अधिकारी पर निर्भर होना (Dependence on the Boss for Decision)—यदि अधीनस्थ कर्मचारियों को किसी समस्या हेतु उसके निर्णय के लिए अधिकारी पर निर्भर रहना पड़ता है तो कोई भी अधीनस्थ अधिकार स्वीकार नहीं करेगा चाहे उसका अधिकारी भारापण करने हेतु तैयार नहीं तत्पर होता है।

4 अधीनस्थों में विश्वास का अभाव (Lack of Confidence in Subordinates)—एक उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों में पूर्ण विश्वास न रखने के कारण भारापण के सिद्धान्त के विषय में बातें तो करता है लेकिन अधिकार सौंपने में हिचकिचाता है।

5 निर्देशन करने की योग्यता का अभाव (Lack of ability to Direction)—कभी कभी उच्च अधिकारी भारापण करना चाहता है लेकिन वह प्रभावपूर्ण ढंग से ऐसा नहीं कर सकता है क्योंकि उसकी योजना की विशेषताओं के बारे में उसे पूर्ण ध्यान नहीं रहता है कि किस प्रकार से योजना बनाई जाए।

सत्ता के प्रत्यायोजन के रूप
(The Forms of Delegation of Authority)

सत्ता के प्रत्यायोजन के दो पहलू होते हैं—एक वह जो अपनी सत्ता में से कुछ अंश दूसरे को प्रदान करता है तथा दूसरा वह जो अपने कार्यों की सम्पन्नता के लिए कुछ सत्ता प्राप्त करता है। इन दोनों ही पहलुओं की प्रकृति सामर्थ्य एवं दृष्टिकोण के आधार पर यह निश्चित होता है कि कितनी सत्ता सौंपी जाए और किसी रूप में सौंपी जाए। दूसरे शब्दों में कोई संगठन जब सत्ता का प्रत्यायोजन करता है तो इस प्रत्यायोजन के कई रूप हो सकते हैं—

1 सरल प्रत्यायोजन (Simple Delegation)—प्राय छोटे से छोटे प्रशासकीय संगठन में भी प्रत्यायोजन किया जाता है। जब एक संगठन में किसी अधिकारी के पास इतने कार्य हो जाएं जिनको वह स्वयं न कर सके तो वह अपनी शक्तियों को संगठन के अन्य व्यक्तियों में विभाजित कर देता है। जब संगठन का रूप बड़ा होता है तो उसमें प्रत्यायोजन केवल उच्च अधिकारी द्वारा निम्न अधिकारी को ही नहीं किया जाता वरन् निम्न अधिकारी भी प्रत्यायोजन स्वरूप प्राप्त शक्ति में से कुछ अपने अधीनस्थों में बाँट देते हैं। इस प्रकार बड़े संगठनों में बहुत से

प्रत्यायोजन होते है। सरल प्रत्यायोजन म दी जाने वाली सत्ता का रूप जटिल नही होता और सगठन का प्रत्येक सदस्य स्पष्ट रूप से सत्ता के क्षेत्र एव सत्ता की सीमाओ से परिचित रहता है।

2 **विशिष्ट या सामान्य प्रत्यायोजन** (Specific or General Delegation)—प्रत्यायोजन का रूप विशिष्ट भी हो सकता है और सामान्य भी। प्राय प्रत्येक सगठन म प्रत्यायोजन का विशिष्ट (Specific) होना एक अच्छी बात समझी जाती है तथापि अनेक बार प्रत्यायोजक अधिकारी यह स्पष्ट रूप से नही बताता कि वह कौन कौन सी शक्तियाँ किस रूप म अपने अधीनस्थो को सौंप रहा है। वह उनस केवल यह कह देता है कि वे उत्तरदायित्व सम्भाल लें और जो चाहे वह करें। सत्ता क प्रत्यायोजन का यह रूप स तोषजनक न ी समझा जा सकता और यह कहा जाता है कि सक्षिप्त और स्पष्ट होना अधिक अच्छा है बजाय इसके कि सगठन के सदस्य यह अनुमान लगाते रहे कि कितनी सत्ता किसके हाथ म है।

3 **पूर्ण अथवा आशिक प्रत्यायोजन** (Full or Partial Delegation)—प्रत्यायोजन के दोनो ही रूप हो सकते हैं—यह पूर्ण भी हो सकता है और आशिक भी। पूर्ण प्रत्यायोजन का अर्थ है—सगठन का सत्ताधारी अपनी शक्तिया को एजेंट के हाथो म सौप दे। इस प्रकार के प्रत्यायोजन का उदाहरण देते हुए कूटनीतिक प्रतिनिधियो (Diplomatic Representatives) का उल्लेख किया जाता है। जब एक देश दूसरे देश म अपना कूटनीतिक प्रतिनिधि भेजता है तो वह उसे अपनी पूरी शक्तिया प्रत्यायोजित कर देता है। इस प्रकार प्रत्यायोजन मे अध्यक्ष की स्थिति एक नाम मात्र की रह जाती है और उसकी सत्ता का प्रयोग पूरी तरह स उसक अधीनस्थ द्वारा किया जाता है। प्रत्यायोजन का यह रूप प्रशासकीय सगठनो म अधिक प्रचलित नही है। इन सगठनो म जिस प्रकार का प्रत्यायोजन पाया जाता है वह प्राय आंशिक होता है और उसम अध्यक्ष अपनी कुछ शक्तिया अधीनस्थो को सौंप देता है तथा शेष का प्रयोग वह स्वय करता है।

4 **औपचारिक या अनौपचारिक प्रत्यायोजन** (Formal or Informal Delegation)—किसी भी सगठन मे किया जाने वाला प्रत्यायोजन औपचारिक भी हो सकता है और अनौपचारिक भी। औपचारिक (Formal) प्रत्यायोजन वह कहलाता है जो किसी लिखित नियम कानून या आदेश द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के प्रत्यायोजन म अध्यक्ष का योगदान बहुत कम होता है तथा सगठन के रचनाकारो और योजनाकारो द्वारा पहले मे ही इसकी व्यवस्था कर दी जाती है। सगठन के परम्परावादी विचारक प्रत्यायोजन के औपचारिक रूप मे बहुत विश्वास करते हैं। इसके विपरीत सगठन से सम्बन्धित वर्तमान प्रयोगो अनुसधानो एव अध्ययनो के आधार पर यह कहा जाता है कि औपचारिक प्रत्यायोजन व्यवहार म अधिक महत्व नही रखता। प्रत्येक सगठन जब अपनी औपचारिकताओ को क्रियान्वित

करने लगता है तो उस पर अनेक सामाजिक आर्थिक राजनीतिक तथा व्यक्तिगत प्रभाव पड़ते हैं और वह उन प्रभावों की अवहेलना नहीं कर पाता।

इस प्रकार संगठन में प्रत्यायोजन का अनौपचारिक रूप विकसित हो जाता है। कई बार यह देखा जाता है कि अधीनस्थ अधिकारी अपने उच्च अधिकारी की उन शक्तियों का प्रयोग कर रहा होता है जो वास्तव में उसे प्रत्यायोजित नहीं की गई हैं। औपचारिक रूप से प्राप्त न होते हुए भी जब एक अधिकारी कुछ शक्तियों का प्रयोग करता है तो वह ऐसा केवल उन्हीं स्थितियों में कर सकता है जबकि उच्च अधिकारी के साथ उनके सम्बन्ध अनौपचारिक हों। संगठन की परम्पराएँ रीति रिवाज तथा व्यवहार इस प्रकार के अनेक अनौपचारिक प्रत्यायोजनों (Informal Delegations) की रचना कर देते हैं। जिस प्रकार एक देश के प्रशासन में लिखित संविधान के अतिरिक्त अभिसमयों (Conventions) का प्रभाव रहता है उसी प्रकार एक संगठन में औपचारिक प्रत्यायोजन के साथ साथ अनौपचारिक प्रत्यायोजन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह इसलिए होता है क्योंकि आने वाली समस्याओं एवं परिस्थितियों का पहले से ही अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

5 सशर्त अथवा अशर्त प्रत्यायोजन (Conditional or Unconditional Delegation)—प्रत्यायोजन का एक अन्य रूप यह भी होता है कि उसके साथ या तो कुछ शर्तें लगाई जाती हैं अथवा नहीं लगाई जाती हैं। जिस प्रत्यायोजन के साथ कुछ शर्तें लगा दी जाती हैं उसे हम सशर्त प्रत्यायोजन (Conditional Delegation) कहते हैं। सशर्त प्रत्यायोजन में सत्ता प्रदान करने वाले को यह अधिकार रहता है कि वह सत्ता पाने वाले के कार्यों को समय समय पर देखता रहे उसमें परिवर्तन के लिए सुझाव देता रहे तथा कार्यों को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सके। अशर्त प्रत्यायोजन (Unconditional Delegation) में उच्च अधिकारी के पास यह शक्ति नहीं होती कि वह अधीनस्थों के कार्यों को प्रत्येक स्तर पर देखता रहे। इस प्रकार के प्रत्यायोजन में उच्च अधिकारी के पास केवल यह अधिकार रहता है कि यदि वह चाहे तो प्रत्यायोजित की गई सत्ता को समाप्त कर दे या वापस ले ले किन्तु वह उस समय हस्तक्षेप नहीं कर सकता जबकि अधीनस्थ अधिकारी द्वारा उसका प्रयोग किया जा रहा है।

6 प्रत्यायोजन के दिशा भेद (Difference in Directions of Delegation)—प्रत्यायोजन कौन करता है तथा किसके लिए करता है इस आधार पर हम उसे कई रूपों में विभाजित कर सकते हैं। जब प्रत्यायोजन करने वाला उच्च अधिकारी अपनी शक्तियाँ अधीनस्थों को सौंपता है तो वह नीचे की ओर का प्रत्यायोजन (Downward Delegation) कहलाता है। अधिकांश संगठनों में प्रत्यायोजन की दिशा प्रायः ऊपर से नीचे की ओर ही होती है अर्थात् वहाँ उच्च

अधिकारियों द्वारा नीचे के पदाधिकारियों को शक्ति हस्तांतरित की जाती है। जब कभी प्रत्यायोजन नीचे के अधिकारियों द्वारा उच्च अधिकारी को किया जाता है तो उसे ऊपर की ओर का प्रत्यायोजन (Upward Delegation) कहते हैं। सत्ता के प्रत्यायोजन का यह रूप अधिक प्रचलित नहीं है फिर भी जहाँ तहाँ इसके उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं। जब एक देश की जनता अपनी सम्प्रभुता शक्ति में से संसद् अथवा कार्यकारिणी को सत्ता सौंपती है तो वह इसी प्रकार का हस्तांतरण होता है। कई बार सत्ता उन लोगों को सौंपी जाती है जो संगठन के सदस्य नहीं होते संगठन के बाहर रहते हैं। यह प्रत्यायोजन बाहर का प्रत्यायोजन (Outward Delegation) कहलाता है। दिशाओं के आधार पर प्रत्यायोजन का एक अन्य रूप वह भी होता है जब बराबर के पदाधिकारियों में प्रत्यायोजन किया जाता है। इस प्रकार के प्रत्यायोजन को टैरी (Terry) ने पार्श्व का प्रत्यायोजन (Sidewise Delegation) कहा है।

7 **प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन** (Direct or Indirect Delegation) – प्रत्यायोजन कई बार तो प्रत्यक्ष रूप से कर दिया जाता है और कई बार उसके लिए अप्रत्यक्ष साधन अपनाने पड़ते हैं। लोक प्रशासन के प्रसिद्ध लेखक मूनी (Mooney) के मतानुसार इस आधार पर हम प्रत्यायोजन को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—पहला भाग वह है जिसमें उच्च अधिकारी अपनी सत्ता के कुछ भाग को सीधे रूप में अपने अधीनस्थ को सौंप देता है। उन दोनों के बीच कोई जोड़ने वाली कड़ी नहीं होगी। प्रत्यायोजन की इस प्रक्रिया को प्रत्यक्ष (Direct or Immediate) प्रत्यायोजन कहा जाता है। प्रत्यायोजन के दूसरे प्रकार में सत्ता देने वाले और लेने वाले के बीच एक अथवा एक से अधिक मध्यस्थ आ जाते हैं और उच्च अधिकारी अपनी सत्ता को उन मध्यस्थों के माध्यम से ही सत्ता पाने वाले तक पहुँचाता है। यह सत्ता का अप्रत्यक्ष (Indirect or Mediate) प्रत्यायोजन कहलाता है।

प्रत्यायोजन की सीमाएं

(The Limits of Delegation)

सत्ता का प्रत्यायोजन यद्यपि प्रत्येक संगठन की विशेषता होती है तथापि कोई अधिकारी अपनी प्रत्येक शक्ति किसी को भी हर समय के लिए नहीं सौंप सकता। हेमन (Haimann) के अनुसार समस्या यह नहीं है कि एक प्रबन्धक सत्ता को प्रत्यायोजित करता है या नहीं करता अपितु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सत्ता कितनी हस्तांतरित की जाती है।[1] प्रत्यायोजित की जाने वाली सत्ता की मात्रा का निश्चय करने में अनेक तत्वों का हाथ रहता है। सत्ता देने का दृष्टिकोण

1 H im n p t p 51

लने वाले की योग्यता एव सामर्थ्य सगठन का आकार सगठन की आर्थिक स्थि त एव उसके लक्ष्य आदि द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि कितनी सत्ता किसको और किस रूप म सौंपी जाय। इन सब तत्वो क अतिरिक्त सत्ता क प्रत्यायोजन की कुछ अ य सीमाए भी होती हैं जो इस बात का निश्चय करती हैं कि प्रत्यायोजन किया जाना चाहिए अथवा नही। न सीमाओ का ध्यान रख बिना यदि सत्ता को प्रत्याय जित किया तो सगठन म अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी और वह अपने लक्ष्यो की प्राप्ति क माग स भ्रष्ट हो जायगा। सत्ता के प्रत्यायोजन की ऐसी अनेक सामाए हैं जो उस किसी क्षेत्र म लागू होन से आंशिक अथवा पूण रूप से रोक देती हैं।

(1) वधानिक सीमा जब किसी सगठन की स्थापना की जाती है तो उसके सस्थापको द्वारा यह निश्चित कर लिया जाता है कि कौन अधिकारी अपनी कितनी सत्ता किस अधिकारी को प्रत्यायोजित करगा। प्रशासनिक सगठनो म देश का सविधान या कानून अथवा स्वय उन सगठनो क नियम स्पष्ट रूप स प्रत्यायोजन का क्षेत्र निर्धारित कर देत हैं। सगठन क अधिकारियो की प्र यायोजन करने की सामर्थ्य पर सीमाए लगा दी जाती हैं। इन सीमाओ क उल्लघन का अवधानिक या गर कानूनी माना जाता है। सगठन का एक योग्य एव दूर र्शी अधिकारी प्रत्यायोजन करत समय इन औपचारिक सीमाओ का ध्यान रखता है।

(2) विषयों की प्रकृति—अनेक शक्तिया ऐसी होती हैं जिनका प्र यायोजन नहा किया जा सकता। उदाहरण के लिए उच्च अधिकारी को यह अधिकार है कि वह अपने तु न क अधीन थ के कार्यों का अधीक्षण (Supervision) करें। वह अपने इस अधिकार का प्रयोग स्वय ही करेगा और किसी भी हालत म किसी अन्य को यह अधिकार नही सौंप सकता। अ य विषय जिनका प्रत्यायोजन नही किया जा सकता कई भागों मे विभाजित किए जा सकते है। प्रथम कुछ नीति सम्ब धी नियम होत हैं जिनम उच्च अधिकारी को नई नीतिया और योजनाओ का स्वीकृति देन तथा पुरानी नीतिया और परम्पराओ को ठकरान की शक्ति होती है। वह अप ी इस शक्ति का कभी प्रत्यायोजित नही करेगा। दूसरे सगठन क आर्थिक अधीक्षण की शक्तियाँ तथा व्यय को मा यता देने का अधिकार अध्यक्ष की प्रमुख शक्तिया म गिना जाता है। वह अपनी इस शक्ति का प्राय प्रत्यायोजित नही करता। तीसरे प्रत्यायोजन करने वाले अधिकारी क हाथ म जब सगठन स सम्बा धत नियम बनान की शक्ति सौंपी जाती है तो यह आशा की जाती है कि शक्ति का प्रयोग वह स्वय करेगा और प्राय यह देखा जाता है कि वह अपनी इस शक्ति को प्रत्यायोजित नही करता। चौथ अध्यक्ष को उच्च पदाधिकारियो की नियुक्ति व कुछ अधिकार प्राप्त होत हैं। इन अधिकारो का प्रयोग भी वह स्वय ही करता है। इन विषयो क अतिरिक्त अधीनस्थ अधिकारियो की शिकायतें सुनने

तथा उन पर निर्णय देने आदि के अधिकारा का भी अ यक्ष ारा स्वयं ही पयाग िया जाता है। ये सभी विषय अध्यक्ष की प्रत्यायोजन करने की प्रवृत्ति को सीमित करते हैं।

(3) अधानस्था की योग्यता—सत्ता का प्र यायोजन प्राय तभी किया जाता है जब निम्न अधिकारी हस्ता तरित सत्ता का प्रयाग करने की योग्यता एव सामर्थ्य रखते हा। कोई भी योग्य अध्यक्ष ऐसे यक्ति को अपनी सत्ता नहा सौंपेगा जो सका ठाक प्रयोग न कर सके क्योंकि अयोग्य व्यक्तियों को सौंपी जाने वाली सत्ता का दुष्परिणाम सगठन को भुगतना होता है। भारतीय प्रशासन के प्रसग म प्रत्यायोजन की य सीमा अ य त महत्वपूण है। उच्च अधिकारी अपनी शक्ति को अ य अधिकारियों को न सौंपने का कारण यह बताते हैं कि अधानस्थ अधिकारी इतने योग्य नहा कि वे सत्ता का प्रयाग कर सकें। भारतीय प्रशासन के नवनियुक्त अधिकारिया के सम्ब ध मे एम एस ख ा(S S Khera) ने लिखा है कि वे नए अधिकारी इतने अनुभव ीन इतने अल्पायु और इतने नए होते हैं कि उनका पर्याप्त अनुभव और प्रशिक्ष ण प्राप्त नहा होता। इस अनुभवहीनता और प्रशिक्षणहीनता से युक्त अधिकारिया को सत्ता का प्र यायोजित करना खतरे से खाली न ा है।

(4) अध्यक्ष का दायित्व—नए सगठना मे यह आवश्यक है कि प्रतिदिन के कार्यों स सम्ब धित निणय उसा व्यक्ति द्वारा िए जाए जा सगठन के समूचे चित्र का ज्ञान रखता है तथा जिसके मस्तिष्क म सगठन का भावी रूप स्पष्ट है। सगठन के अध्यक्ष के अतिरिक्त कोई व्यक्ति इस प्रक र का ाहीं हो सकता और न ही प्रतिदिन की समस्याओं से सम्ब धित उचित निर्णय ही ले पाता है। अधीनस्थ अधिकारी न समस्याओं पर निणय तभी ले सकते हैं जब तत्सम्ब धी अनेक परम्पराए विकसित हो चुकी हा तथा सगठन व्यवस्थित हो चुका ो। नए सगठन मे ये दोनो ही विशेषताए नहीं पाई जाता अत इन सगठनो म प्राय सभी महत्वपूण निणय स्वय अध्य र द्वारा लिए जाते हैं और वह सत्ताओं का हस्तान्तरण नहीं करता।

(5) सचार साधन एव नियन्त्रण की प्रक्रियाए—प्र यायोजन की एक अन्य सीमा सचार-साधना तथा नियन्त्रण की प्रक्रियाओं द्वारा लगाई जाती है। पूववर्ती सगठनो मे सचार तथा निय त्रण के परम्परागत साधनों का प्रयोग किया जाता था इसलिए प्रत्यायोजन की व्यवस्था प्रभावी रूप से काय नहा कर सकती थी। सम्भवत यही कारण है कि उस समय प्रत्यायोजन करते समय एक अधिकारी पूरी तरह सोच विचार करता था। आज भी सचार साधनों द्वारा प्रत्यायोजन की प्रक्रिया पर सीमा लगाने का काय किया जाता है। इसका अथ यह है कि जो सगठन सचार साधनो की दृष्टि से अधिक समृद्ध नहीं होता उसमे प्रत्यायोजन नहा किया जा सकता।

(6) संगठन की प्रक्रिया—प्रत्यायोजन केवल उसी बिन्दु तक किया जा सकता है जहाँ तक संगठन की प्रक्रिया पर कोई घातक प्रभाव न डाले। जिस संगठन में प्रत्यायोजन इतना कर दिया जाता है कि उसके विभिन्न सदस्यों के कार्यों के बीच समन्वय करना भी कठिन हो जाए तो स्वभावतः कुछ समय बाद वह संगठन में अपना अस्तित्व खो देगा।

(7) संगठन का आकार—छोटे आकार के संगठन में अधिक प्रत्यायोजन की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि संगठन के अध्यक्ष के पास रहने वाली सत्ता की मात्रा बहुत कम होती है। वह स्वयं ही इस सत्ता का प्रयोग कुशलतापूर्वक कर सकता है। संगठन जितना अधिक छोटा होगा उसमें किया जाने वाला प्रत्यायोजन भी उतना ही कम हो जाएगा। इसके विपरीत जो संगठन आकार में बड़े होते हैं तथा जिनकी भौगोलिक सीमाएँ पर्याप्त होती हैं उनमें प्रत्यायोजन उतना ही अधिक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

सत्ता का प्रत्यायोजन कैसे किया जाए ?—उपाय
(How to Delegate the Authority ? Devices)

सत्ता के प्रत्यायोजन के सम्बन्ध में मुख्य रूप से तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं—कितनी सत्ता हस्तान्तरित की जाए, सत्ता किसे हस्तान्तरित की जाए और सत्ता कैसे हस्तान्तरित की जाए ? प्रथम प्रश्न का समाधान तो बहुत कुछ उन सीमाओं द्वारा हो जाता है जिनका अध्ययन अभी किया जा चुका है। अन्तिम दो प्रश्नों के उत्तर के लिए जरूरी है कि प्रत्यायोजन की समस्याओं को सुलझाने के कुछ उपाय खोजे जाएँ और साथ ही प्रत्यायोजन के मान्य सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त की जाए।

प्रत्यायोजन की प्रक्रिया द्वारा अधीनस्थों को कुछ कर्त्तव्य, अधिकार एवं उत्तरदायित्व सौंप देने से ही निश्चित नहीं हो जाता कि सत्ता का हस्तान्तरण सफल हो ही जाएगा। इसके लिए कुछ निश्चित कदम उठाने होते हैं। प्रत्यायोजन को सफल बनाने के लिए उठाए जाने वाले इन कदमों को हस्तान्तरण का ही विशेष अंग माना जाना चाहिए क्योंकि उसके बिना शेष प्रक्रिया निरर्थक बन जाती है। प्रत्यायोजन कैसे किया जाए—इस समस्या के अध्ययन को हम सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। पहले भाग में यह अध्ययन किया जाएगा कि प्रत्यायोजन की सफलता के उपाय क्या हैं तथा दूसरे भाग में हम उन सिद्धान्तों का उल्लेख करेंगे जो प्रत्यायोजन के सम्बन्ध में अनेक विचारकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं।

एक सफल प्रत्यायोजन के उपाय
(Devices of a Successful Delegation)

1 उच्च अधिकारियों को कर्मचारी वर्ग के साथ नियमित रूप से सम्बन्ध स्थापित रखने चाहिए कि सत्ता का प्रयोग किस प्रकार किया जा रहा है। प्रत्यायोजन के सम्बन्ध में समय समय पर अनेक समस्याएं उठती रहती हैं। उच्च अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह सम्बन्धित व्यक्तियों से समस्याओं पर विचार विमर्श करें और यदि उनके मस्तिष्क में संगठन की प्रक्रिया से सम्बन्धित कोई सन्देह हो तो उसे दूर कर दें।

2 प्रत्यायोजित सत्ता की सीमाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए। यह उचित है कि सत्ता के क्षेत्र को लिखित रूप में निर्धारित कर दिया जाए ताकि अधीनस्थ अधिकारियों को मार्ग दर्शन प्राप्त होता रहे। प्रत्येक पदाधिकारी के सत्ता क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए व्याख्याएं लेखे तथा चार्ट तयार किए जाने चाहिए। हेमैन (Haimann) का विचार है कि यद्यपि प्रत्यायोजन करने वाले प्रबन्धक द्वारा सत्ता के क्षेत्र को स्पष्ट रूप से निश्चित रूप दे देने के पश्चात् भी उसका कर्त्तव्य है कि समय समय पर वह देखता रहे कि अधीनस्थ अधिकारी प्रत्यायोजित सीमाओं में कार्य कर रहा है अथवा नहीं।[1] जब कार्य के सचालन से सम्बन्धित अभिलेखों और कागजातों का व्यवस्थित योजनानुसार अवलोकन किया जाता है तो संगठन में नियन्त्रण रखना सुविधाजनक बन जाता है।

3 अधीनस्थ अधिकारियों का जिन्हें सत्ता प्रत्यायोजित की जाती है कर्त्तव्य है कि वे अपने कार्यों की प्रगति परिणाम और समस्याओं के सम्बन्ध में उच्च अधिकारियों को सूचित करते रहें। उच्च अधिकारी का भी कर्त्तव्य है कि वह इन सूचनाओं की समीक्षा करता रहे ताकि संगठन की प्रगति एवं समस्याओं का एक स्पष्ट चित्र उसके सामने प्रस्तुत रहे। अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा भेजे जाने वाले प्रतिवेदन सरल और संक्षिप्त होने चाहिए।

4 सत्ता का प्रत्यायोजन संगठन के उच्चस्थ और अधीनस्थों के बीच स्थित एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध है। कुछ व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रत्यायोजन की कला में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। कई अधिकारी दूसरों द्वारा की गई गलतियों को सामान्य नियम अथवा रूटीन (Routine) मानते हैं। कभी कभी गलतियों को वे अधिक गम्भीरता से नहीं देखते और यदि गलतियाँ बार बार की जाती हैं तो वे अधीनस्थ अधिकारियों का मार्गदर्शन करते हैं। प्रत्यायोजन की सफलता के लिए आवश्यक है कि उच्च अधिकारी अधीनस्थों की गलतियों के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण अपनाएं और यह मानकर चलें कि प्रत्येक व्यक्ति भूलें करके ही सीखता है।

1 Haimann op cit p 49

5 एक अच्छे प्रत्यायोजन के लिए अधीनस्थ अधिकारियों के प्रति अध्यक्ष के मन में विश्वास होना अत्यन्त आवश्यक है। कई संगठनों में यह देखने में आता है कि उच्च अधिकारी अधीनस्थों के सम्भावित विकास के प्रति भयभीत रहते हैं। वे यह सोचते हैं कि प्रत्यायोजन द्वारा अधीनस्थ इतने योग्य बन जाएंगे कि उनका स्वयं का कोई महत्त्व नहीं रहेगा। अच्छे प्रत्यायोजन में इस प्रकार का भय नहीं होना चाहिए।

6 एक संगठन में प्रत्यायोजन को सफल और प्रभावी बनाने के लिए जरूरी है कि अध्यक्ष की सहायतार्थ कुछ कर्मचारी नियुक्त किए जाएँ जिनका यह दायित्व हो कि प्रत्यायोजित की गई शक्तियों के व्यवहार का निरीक्षण कर यह देखें कि कार्य कैसा हो रहा है। इस प्रकार के निरीक्षण एवं सर्वेक्षण से अनेक प्रक्रिया सम्बन्धी दोष सामने आते हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए उपाय ढूँढना संगठन की प्रगति के लिए आवश्यक है।

प्रत्यायोजन की बाधाएं
(Hinderances of Delegation)

एक सफल प्रशासन के लिए प्रत्यायोजन की उचित व्यवस्था अनिवार्य है। प्रत्येक संगठन इस बात का प्रयास करता है कि वह प्रत्यायोजन की व्यवस्था का एक स्पष्ट रूप अपना सके और साथ ही संगठन में नियन्त्रण समन्वय, अधीक्षण तथा निरीक्षण की व्यवस्था कर सके। प्रत्यायोजन संगठन के जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी होने पर भी अनेक ऐसी परिस्थितियों से प्रभावित रहता है जो उसके मार्ग में बाधाएं उपस्थित करती हैं। प्रो. फिफनर (J M Pfiffner) ने कुछ मानव कमजोरियों का वर्णन किया है जिनके कारण संगठन में प्रत्यायोजन सफल नहीं हो पाता—

1 जो व्यक्ति पद-सोपान के नेतृत्व में अग्रसर होना चाहता है उसमें सामान्य से अधिक अहंकार होता है।

2 उसको यह डर रहता है कि उसके लोग ठीक तरह से सही निर्णय नहीं ले सकते तथा उनको सही तरीके से क्रियान्वित नहीं कर सकते।

3 उसको यह भी भय रहता है कि प्रभावशाली अधीनस्थों का एक शक्तिशाली वर्ग बन जाएगा जो उसके प्रति स्वामिभक्ति नहीं रखेगा।

4 जो व्यक्ति दृढ़ शक्तिशाली और ऊँच स्थिति वाले होते हैं वे अधीनस्थों के कार्यों में तीव्र गति नहीं देखना चाहते अतः सत्ता के प्रत्यायोजन की स्थिति चाहते हैं।

5 लोक प्रशासन में अनेक राजनीतिक कारण ऐसे उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे प्रत्यायोजन कठिन बन जाता है।

6 प्रत्यायोजन देश की सांस्कृतिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है। जिस देश की सांस्कृतिक परम्परा सत्तावादी और पतृक नेतृत्व की होती है उसमें प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता या बहुत कम किया जा सकता है। इसलिए जब कभी प्रत्यायोजन की व्यवस्था को अधिक लोकप्रिय बनाना हो तो कुछ सांस्कृतिक परिवर्तन करना जरूरी हो जाता है।

7 प्रत्यायोजन के साथ में कुछ भावनात्मक परिपक्वता (Emotional Maturity) की आवश्यकता होती है जो प्राय सफल व्यक्तियों में भी कठिनता से ही मिल पाती है।

8 नेतृत्व के प्रतीक (Symbols) प्राय प्रत्यायोजन के स्थान से मेल नहीं खाते। जो लोग सफल होना चाहते हैं उनको प्रभावशाली होना चाहिए और प्रभावशाली व्यक्ति अपनी सत्ता प्रत्यायोजित नहीं करता।

9 इस सम्बन्ध में एक विरोधाभास यह है कि जो व्यक्ति प्रत्यायोजन करना चाहता है वह यह नहीं जानता कि उसे किस प्रकार किया जाए।

10 प्रत्यायोजन की प्रक्रिया का ज्ञान प्राय दो कारणों से नहीं हो पाता। प्रथम संगठन और प्रबन्ध का विज्ञान अभी अपरिपक्व है और दूसरे अनुभव ने अधिकारियों को यह नहीं सिखाया है कि प्रत्यायोजन कैसे करें।

प्रत्यायोजन की फिफनर द्वारा वर्णित इन बाधाओं को कई विचारों ने कई प्रकार से व्यक्त किया है। उदाहरण के लिए प्रो हेमन का विचार है कि प्रत्यायोजन की सबसे प्रमुख बाधा स्वयं सत्ताधिकारी अधिकारी का दृष्टिकोण होता है। कई संगठनों के अध्यक्ष ऐसी प्रकृति के होते हैं जो अपने कर्त्तव्यों पर कड़ा नियन्त्रण रखना चाहते हैं। यह हो सकता है कि उनकी इस प्रवृत्ति से आगे चल कर कार्य में बाधा आए और स्वयं संगठन का नुकसान हो लेकिन प्रत्यायोजन की दृष्टि से यह हमेशा हानिकारक सिद्ध होता है। प्रत्यायोजन की दिशा की एक अन्य बाधा यह है कि स्वयं प्रबन्धक का अपने अधीनस्थों पर विश्वास नहीं रहता। इस विश्वास के बिना वह सत्ता को प्रत्यायोजित नहीं कर सकते।

हेमैन के मतानुसार अपने अधीनस्थों की योग्यता पर अविश्वास करना मुख्य रूप से अध्यक्ष की ही गलती मानी जानी चाहिए क्योंकि यदि अधीनस्थ अधिकारी योग्य है तो उच्च अधिकारी का आरोप झूठा माना जाएगा और यदि वे अयोग्य हैं तो उनको प्रशिक्षित करना तथा योग्य बनाना स्वयं उच्च अधिकारी का कर्त्तव्य है। अधीनस्थों के प्रति अविश्वास के अतिरिक्त प्रत्यायोजन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण बाधा यह है कि उच्चाधिकारी को अपने अधीनस्थों की उन्नति से भय होने लगता है। सत्ता के प्रत्यायोजन में एक अन्य तथ्य द्वारा भी बाधा पहुँचती है। जब प्रत्यायोजन करने वाला व्यक्ति अपनी प्रगति की सीमा पर पहुँच जाता है तो उसमें प्रत्यायोजन के प्रति अनेक अवरोध हो जाते हैं। हेमैन के कथनानुसार

मनुष्य प्राय उसी परिस्थिति म अपनी सत्ता को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रत्यायोजित कर सकते है जब उनको अपनी प्रगति की सम्भावनाए दिखाई दे रही हो। किन्तु जब एक बार यह निश्चित हो जाता है कि वह आगे प्रगति नही कर सकता तो वह अपनी स्थिति की रक्षा के प्रति अधिक सजग हो जाता है और कई लोगो का यह विश्वास है कि इस स्थिति म सत्ता कम से कम प्रत्यायोजित करनी चाहिए।[1]

प्रत्यायोजन (Delegation) करने के माग म एक बाधा यह आती है कि जो व्यक्ति सगठन के अध्यक्ष पद पर होता है और जिसके पास प्रत्यायोजन शक्तिया होती हैं उस पर अनेक उत्तरदायित्व भी होते हैं। जब वह अपने अधीनस्थ अधिकारियो को सत्ता सौंपता है तो उत्तरदायित्व भी उसके साथ प्रत्यायोजित नही कर देता। इसका अर्थ यह है कि सत्ता सौंपने के बाद भी उसके प्रयोग के लिए वही उत्तरदायी माना जाता है और कई लोग यहा एस एस खेरा (S S Khera) की भाँति यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि जब मैं उत्तरदायी हू तो मैं प्रत्यायोजन कैसे कर सकता हू। जिस काय का उत्तरदायित्व एक अधिकारी को सौंपा गया है उस काय को करने की शक्ति भी उसी अधिकारी के हाथो मे होनी चाहिए। हेमेन का सुझाव है कि प्रत्यायोजन करते समय सोच समझ कर तथा न्यायसगत रूप मे आगे बढ़ना चाहिए[2] क्योंकि यह सम्भव नही होता कि वह अपने उत्तरदायित्व अधीनस्थो को सौंप दे और फिर भी जो कुछ अधीनस्थो द्वारा किया जाए उसके लिए वह स्वय उत्तरदायी रहे। सत्ता का प्रत्यायोजन करते समय उच्च अधिकारी के लिए जरूरी है कि कोई एसी व्यवस्था करे जिसके द्वारा अधीनस्थो के कार्यों पर नियन्त्रण रखा जा सके तथा यह देखा जा सके कि सत्ता का प्रयोग सही रूप म किया जा रहा है। नियन्त्रण के उचित तरीके न होने पर कई बार प्रत्यायोजन प्रभावहीन बन जाता है।

सत्ता के प्रत्यायोजन की ये बाधाए भारतीय प्रशासन के सन्दभ म अत्यन्त प्रभावशाली हैं। भारतीय प्रशासन के वास्तविक व्यवहार पर एक विहगम दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ प्रत्यायोजन के माग म अनेक बाधाए हैं जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती। सवप्रथम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बाधा अतीत की परम्पराए हैं वतमान भारतीय प्रशासन को अनेक बातें ब्रिटिश प्रशासन से प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष और चाहे अनचाहे विरासत म मिली हैं। ब्रिटिश प्रशासन साम्राज्यवादियो का प्रशासन होने के कारण अधीनस्थ भारतीय अधिकारियो को सत्ता का प्रत्यायोजन केवल तभी करता था जबकि एसा करना बहुत आवश्यक बन जाता था। इसके अतिरिक्त उस समय सत्ता का जो प्रत्यायोजन किया जाता था वह वास्तविक कम और दिखावटी अधिक था। अधीनस्थ अधिकारी जब प्राप्त

1—2 *Hamann op cit p 53*

सत्ता का उपयोग करते थे तो उनके कार्यों में अत्यधिक हस्तक्षेप किया जाता था। उनको निर्णय लेने की स्वतन्त्रता केवल नाममात्र की थी। उच्च अधिकारी अहंकारी थे क्योंकि वे अपने आप को स्वामी और अधीनस्थ भारतीय अधिकारियों को दास समझते थे। इस प्रकार की परम्पराओं में विकसित भारतीय प्रशासन आज भी प्रत्यायोजन की प्रक्रिया के प्रति अधिक उत्साहपूर्ण नहीं है।

भारतीय प्रशासन के अधिकांश उच्च अधिकारी प्रायः वही है जो ब्रिटिश प्रशासन के समय अधीनस्थ पदों पर कार्य कर चुके थे। इन अधिकारियों में अहंकार की भावना उनके विगत इतिहास का परिणाम है। उनके विचारों पर आज भी सामन्तशाही एवं जागीरदारी प्रवृत्तियों का प्रभाव है। फलस्वरूप संगठन के अधीनस्थ अधिकारियों से वे सहयोग की माँग नहीं करते बल्कि केवल आज्ञा पालन चाहते हैं। इन अधिकारियों में अपनी योग्यता और सामर्थ्य के प्रति अनेक गलत फहमियाँ है। जब संविधान एवं ऐसे ही लिखित नियमों द्वारा प्रत्यायोजन की व्यवस्था कर दी जाती है तो भी अनेक उच्च अधिकारी अपनी सत्ता का हस्तान्तरण नहीं करना चाहते।

प्रशासकीय संगठनों में अधिक एवं उचित प्रत्यायोजन केवल तभी हो सकता है जब उच्च अधिकारी उदार दृष्टिकोण अपनाएं तथा मानवीय भूलों के प्रति अधिक कठोर रुख न अपनाएं। भारतीय प्रशासन के कर्णधारों में प्रायः यह प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। यहाँ जब कोई अधिकारी अपनी सत्ता का प्रत्यायोजन करता है तो उसे अनेक दृष्टियों से विचार करना पड़ता है। उस पर कई बार राजनीतिक दबाव डाले जाते है सामाजिक मूल्यों द्वारा उनको विचलित किया जाता है उसके उत्तरदायित्व उसे सत्ताप्रेमी बना देते हैं वह अधीनस्थ अधिकारियों की योग्यता के प्रति सन्देहशील दृष्टि से देखने लगता है। इस प्रकार परिस्थितियों एवं दृष्टिकोणों का एक चक्रव्यूह सा बन जाता है। सत्ता का प्रत्यायोजन करने से पूर्व प्रत्येक उच्च अधिकारी के लिए इस चक्रव्यूह को तोड़ना जरूरी होता है।

यह अधिकांश में सत्य है कि भारतीय प्रशासन में योग्य अधिकारियों का अभाव है। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन में जिन व्यक्तियों का प्रवेश दिया गया उनमें से अधिकांश में वे मौलिक योग्यताएं नहीं थी जो एक कुशल प्रशासक के लिए आवश्यक समझी जाती हैं। इन योग्यताओं का विकास केवल पुस्तकीय अध्ययन से नहीं होता। इसके लिए उपयुक्त सामाजिक परिस्थितियों का निर्माण किया जाता है। कार्य का अनुभव किया जाता है तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण की प्रणालियाँ विकसित की जाती हैं।

एक अच्छा प्रत्यायोजक
(A Good Delegator)

प्रश्न है—एक अच्छा प्रत्यायोजन कौनसा होता है और एक अच्छे प्रत्यायोजक

मे कौन कौन से गुण पाए जाने चाहिए ? प्रत्यायोजन के सिद्धान्तों के अध्ययन में के अन्तर्गत उन विशेषताओं पर विचार किया गया था जो एक अच्छे प्र यायोजक के लिए अनिवाय होती हैं। अच्छा प्रत्यायोजक प्राय वह है जो प्रत्यायोजन के सिद्धान्तों को अपनी प्रक्रिया का आधार बनाता है तथा प्रत्यायोजन के मार्ग की बाधाओं को कम करने के प्रयास करता है। उसमे मुख्य रूप से ये गुण पाए जाने चाहिए—

1 उदारता—उसे प्रत्यायोजन करते समय उदार दृष्टिकोण अपनाकर चलना चाहिए अर्थात् वह सारी सत्ता का प्रयोग स्वयं ही करने में रुचि न ले तथा अधीनस्थ अधिकारियों को भी कुछ अवसर प्रदान करे ताकि वे अपनी योग्यताओं का विकास कर सकें।

2 सीमाओं का ध्यान—एक अच्छे प्रत्यायोजक को इतना अधिक उदार भी नहीं होना चाहिए कि वह प्रत्यायोजन की सीमाओं का ध्यान न रखे और अपना प्रत्येक अधिकार अधीनस्थों को सौंपने की प्रवृत्ति अपना ले। जिस प्रकार उदार दृष्टिकोण न अपनाने पर एक उच्च अधिकारी कर्त्तव्य भार से दब सकता है उसी प्रकार अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाने पर वह प्रभावहीन भी बन सकता है।

स्पष्टता—प्रत्यायोजन करते समय उच्च अधिकारी को चाहिए कि वह स्पष्ट रूप से अपने अधीनस्थों को बता दे कि उन्हें क्या करना है। प्रत्येक अधीनस्थ को यह ज्ञात होना जरूरी है कि उनको किन विषयों में निर्णय लेने की शक्ति सौंपी गई है तथा उनके निर्णय लेने की शक्तियों पर क्या सीमाएं लगाई गई हैं।

4 पर्यवेक्षण—एक अच्छा प्रत्यायोजक शक्ति प्रदान करने के बाद उनकी ओर से निश्चिन्त नहीं हो जाता बल्कि समय समय पर इस बात की जाँच करता रहता है कि प्रत्यायोजित की गई शक्तियों का सही प्रकार से तथा उचित सीमाओं में प्रयोग किया जा रहा है अथवा नहीं। एक अच्छे प्रत्यायोजक को अधीनस्थों को सौंपे गए कार्य शक्ति एवं उत्तरदायित्व में सन्तुलन स्थापित करना चाहिए। उसे यह देखते रहना चाहिए कि नवीन परिस्थितियों के कारण अधीनस्थों की सत्ता कर्त्तव्य या उत्तरदायित्व में क्या परिवर्तन किया जाए।

5 सीमित हस्तक्षेप—प्रत्यायोजन करते समय अधीनस्थ अधिकारियों को जो सत्ता सौंपी जाती है उस पर लगी सीमाओं के कारण एक ऐसा क्षेत्र बच जाता है जिसमें इसे निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता। इस क्षेत्र की समस्याओं को उच्चस्तर के अधिकारियों के सामने रखना जरूरी होता है। इसे सामान्य रूप से अपवाद सिद्धान्त (Exceptional Principle) कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस क्षेत्र को अधीनस्थ अधिकारियों की निर्णय शक्ति से बाहर रखा जाता है वह भी स्पष्ट कर देना चाहिए। कई बार इस अपवाद सिद्धान्त का दुरुपयोग कर

प्रधीनस्थ अधिकारी अपने अधिकांश विषयों को अनावश्यक रूप से उच्च अधिकारियों के पास भेजते रहते हैं अथवा स्वयं उच्च अधिकारी इस सिद्धान्त के नाम पर अनावश्यक रूप से अधीनस्थों के कार्यों में हस्तक्षेप करते रहते हैं। एक अच्छा प्रत्यायोजक वह होता है जो इस अपवाद का दुरुपयोग किए जाने की सम्भावनाओं का निराकरण कर सके।

6 योग्यता का ध्यान—सत्ता का प्रत्यायोजन करते समय अधीनस्थ अधिकारियों की योग्यता का ध्यान रखना परमावश्यक है। यदि गलती से अयोग्य व्यक्तियों को सत्ता सौंप दी गई तो वे उसका दुरुपयोग करेंगे और संगठन को उसके दुष्परिणाम भुगतने होंगे।

7 पूर्व कल्पनाएं—प्रत्यायोजन करते समय यह ध्यान में रखा जाता है कि इससे उच्च अधिकारी क्या प्राप्त करना चाहता है। प्रत्येक उच्च अधिकारी का यह गुण माना जाता है कि जब वह सत्ता का प्रत्यायोजन करे तो अपने मस्तिष्क में यह बात रखे कि अधीनस्थ अधिकारियों के कार्य एवं कर्त्तव्य क्या होंगे। साथ ही उसे उन परिणामों को भी ध्यान में रखना चाहिए जिनकी वह आशा करता है। आशानुकूल परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रत्यायोजक द्वारा यह स्पष्ट रूप से बता देना चाहिए कि वह क्या आशा करता है तथा इस आशा को वह कब तक और किसके द्वारा पूर्ण हुई देखना चाहता है। हेमेन के शब्दों में प्रत्यायोजक का यह भी उत्तरदायित्व होता है कि वह ऐसी व्यवस्था करे जिसमें जिसे प्रत्यायोजन किया गया है वह यह जान ले कि उससे क्या आशा की जा रही है। जब एक प्रत्यायोजक कुछ परिणामों की आशा करता है तो उसे चाहिए कि वह अपने अधीनस्थों को इतनी सत्ता दे कि वे उसकी आशाओं को पूरी कर सकें। कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यकता से अधिक सत्ता प्रत्यायोजित करना जरूरी नहीं है तथापि अधीनस्थों के पास इतनी सत्ता होनी ही चाहिए कि वे अपने कार्यों को भली प्रकार सम्पन्न कर सकें। एक अधीनस्थ से केवल उसी कार्य के बारे में उत्तरदायी होने की आशा की जा सकती है जिसके लिए उसे सत्ता सौंपी गई है।

18

सहभागा प्रबन्ध, समूह गतिशीलता
(Participative Management, Group Dynamics)

सहभागी प्रबन्ध
(Participative Management)

अनेक परिस्थितिक अन्तरों के कारण वर्तमान प्रबन्धकों को जिन नवीन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है उनकी दृष्टि से प्रबन्ध के कार्य और सगठन में भी तदनुकूल परिवर्तन वांछनीय बन जाते हैं। नवीन उद्यमों के बड़े आकार और उनसे उभरी हुई समस्याओं की व्यवस्था करने के लिए किस प्रकार का प्रबन्ध होना चाहिए जो कि आने वाले अपरिहार्य कष्टों को कम कर सके प्रतिभा और शक्ति का पूरा प्रयोग कर सके तथा आने वाले परिवर्तनों के अनुसार मुख्यवान लोगों को कुछ योगदान करने योग्य बना सके। इस प्रकार के प्रबन्ध की खोज का कार्य व्यवहार वादी वैज्ञानिकों जैसे—मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्री एव मानवशास्त्रियों को सौंपा गया जिनके अध्ययन आज ज्येष्ठ व्यावसायिक स्कूलों के आरम्भ बन गए हैं। अमेरिका जैसे बड़े देशों के प्रमुख निगमों ने समाज वैज्ञानिकों को अपने स्टाफ में रखना प्रारम्भ कर दिया है। इन समाज वैज्ञानिकों ने अपने सद्धान्तिक अध्ययन द्वारा *सगठन के कार्य मे लागत कम करने और कार्य कुशलता सुधारने की दृष्टि से अनेक* महत्त्वपूर्ण अध्ययन किए हैं। इन अध्ययनों में से एक का महत्त्वपूर्ण सन्देश यह है कि किसी भी सगठन के कार्य स्तर को सुधारने के लिए उसका प्रबन्ध सहभागी प्रकृति का होना चाहिए। यदि सगठन के कार्यकर्त्ताओं को सगठन की नीति सबंधी *सभी महत्त्वपूर्ण निर्णयों में सहभागी बनाया जाएगा तो वे निश्चित ही कार्यों को* विशेष अपनत्व एव रुचि के साथ करेंगे साधनों का अपव्यय नहीं होगा लागत कम आएगी और कार्य का स्तर सन्तोषजनक होगा। व्यवहारवादी समाज वैज्ञानिकों ने यह सुझाया कि कार्य करने वाले कर्मचारियों की सामाजिक आवश्यकताओं तथा उनकी धन सम्बन्धी आवश्यकताओं को पहचाना जाए तो वे अधिक प्रतिश्रुत प्रतिक्रिया करेंगे और श्रेष्ठतर कार्य सम्पन्न करेंगे। वे सगठन के परिवर्तित उद्देश्यों की रूपरचना में सहायता करेंगे तथा उन्हें अपना बना लेंगे। यही सहभागी प्रबन्ध का अर्थ है। इस मान्यता के अनुसार न्यून स्तर कार्यकर्ता एव मध्यवर्ती तथा उच्च प्रबन्धक सभी को सहभागी बनाया जाना चाहिए। न्यून स्तर कार्यकर्त्ताओं के लिए इस सहभागिता का अर्थ यह है कि सगठन के विभिन्न कार्यों को सगठित करने के लिए

कदम उठाए जाएँ और उनके सम्बन्ध में कार्यकर्त्ताओं के विचार आमन्त्रित किए जाएँ। मध्यवर्ती एवं उच्चतर प्रबन्ध के लिए इसका अर्थ यह है कि उनका निर्णय निर्माण में अधिक सहभागिता दी जाए, सत्ता एवं दायित्वों की व्यापक भागीदारी दी जाए, ऊपर नीचे तथा समकक्ष स्तरों पर सम्प्रेषण की व्यवस्था अधिक खुली तथा प्रभावशाली हो। इस सहभागी दृष्टिकोण में पूरा समूह काय करता है इसलिए इसे समूह दृष्टिकोण भी कहा जाता है। अवस्थी एवं महेश्वरी के अनुसार सहभागी प्रबन्ध का अर्थ है कर्मचारियों द्वारा सम्बन्धित संगठन की निर्णय लेने वाली प्रक्रिया में उस सीमा तक भाग लेना जहाँ तक यह उनके हितों पर तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभाव डालता हो। संगठनों में लोकतन्त्रीय नेतृत्व और प्रशासन में मानवीय तत्व की नवीन माँग आज की जाने लगी। इस मांग के समर्थकों का कहना है कि सहभागी प्रबन्ध के परिणामस्वरूप—

(1) संगठन के प्रति सहभागियों में हम की भावना या तादात्म्यता की प्रवृत्ति की वृद्धि होती है

(2) अति संकुचित परम्परागत विभागीय दृष्टिकोण के स्थान पर सहभागियों में समग्र संगठनात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है

(3) सहभागियों में विरोध शत्रुता तथा तीव्र प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है

(4) सभी एक दूसरे को भली प्रकार समझने एवं जानने लगते हैं जिससे उनमें एक दूसरे के प्रति सहनशीलता तथा धैर्य की वृद्धि होती है

(5) अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत स्वतन्त्र रूप से प्रकट कर सकना है जिसके फलस्वरूप कर्मचारी या संगठन में अधिक तनाव उत्पन्न हो जाता है तथा

(6) अन्य प्रवृत्तियों के फलस्वरूप कार्य सम्बन्धी ऐसा वातावरण विकसित हो जाता है जिसमें अधीनस्थों को अधिक सृजनात्मक रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। यह संगठन के लिए लाभप्रद है।[1]

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि सहभागी प्रबन्ध कोई ऐसा जादू नहीं है जिससे मालिकों और कर्मचारियों की सभी समस्याओं का समाधान हो जाए। किसी भी संगठन में इसका सफलतापूर्वक आरम्भ विभिन्न तत्वों पर निर्भर करता है जैसे—संगठनात्मक संरचना, संगठन के भीतर अनौपचारिक समूहों के निर्णय, संगठन की सेवी वर्ग सम्बन्धी नीतियाँ और उसके प्रति प्रबन्ध के उच्चाधिकारियों का दृष्टिकोण आदि।

सहभागी प्रबन्ध की आलोचना
(Criticism of the Participative Management)

सहभागी प्रबन्ध के सम्बन्ध में किए गए नए अध्ययनों के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि इस प्रबन्ध शैली का न तो मूल दर्शन और न प्रारम्भिक

1 अवस्थी एवं महेश्वरी लोक प्रशासन पृष्ठ 189

निर्णान ही वनानिक रूप से सशक्त अथवा सावभौम रूप से कायशील थे। इस दृष्टिकोण की मुख्य आलोचनाए निम्नलिखित हैं—

(1) सहभागी अथवा समूह दृष्टिकोण सभी व्यक्तियों के साथ और सभी परिस्थितियो मे काय नही कर पाता। शोध के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि सन्तुष्ट और प्रसन्न कमचारी कभी कभी अधिक उत्पादक होते हैं और कभी मात्र प्रसन्न रहते हैं। कुछ प्रबन्धक और कर्मचारी ऐसी प्रकृति के होते हैं कि उन्हें कम्पनी चाहे कितने ही दायित्व सौंपने का प्रयास करे किन्तु वे मात्र सीमित उत्तरदायित्व लेने को राजी होते हैं। कुछ लोग अपनी सत्ता हस्तान्तरित करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं किन्तु ऐसा कर नहीं पाते। सगठन में लाभ की दृष्टि से लागत को नियन्त्रित करने का मुख्य तरीका सहभागी प्रबन्ध न हो कर प्राय कानून एव कठोर प्रबन्ध होता है।

(2) सगठन में कुछ लोग इस प्रकृति के होते हैं कि वे काय करने के प्रजातान्त्रिक तरीकों के अनुकूल नहीं होते।

(3) सहभागी प्रब ध के सफलतापूवक काय सचालन हेतु निष्पादकों के कठोर मनोवज्ञानिक प्रशिक्षण प्रदान करना अनिवाय बन जाता है।

(4) व्यवहारवादी विचारक अपने इस सहभागी सिद्धा त को अधिक प्रभावशाली रूप से लागू करने के लिए अधिक व्यवस्थित काय प्रक्रिया का समथन करते है और इस प्रकार वे सामान्यत कुछ सिद्धान्तो के ढाचे पर काय करने वाले सत्तावादी प्रबन्ध की ओर लौट आते हैं।

(5) अधिकाँश निष्पादकों द्वारा सहभागी होने की केवल घोषणा की जाती है किन्तु वास्तव मे वे ऐसा बन नहीं पाते। स्टानले सीशार (Stanley Seashore) के कथनानुसार ऐसे बहुत सारे निष्पादक हैं जो एक सुबह अधिक सहभागी बनने का निर्णय लेते हैं तथा दोपहर बाद यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह नीति सफल नहीं होती।[1] लिकर्ट ने अनेक अमरिकी उद्योगो का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि अधिकाश प्रबन्धक दूसरे सगठनो मे अपने निरीक्षण के आधार पर सोचते हैं कि सहभागी दृष्टिकोण अधिक अच्छा रहता है। किन्तु वास्तविक व्यवहार मे वे स्वय नीति को नहीं अपनाते।

(6) यदि सहभागी प्रबन्ध को तजी के साथ अपनाया जाए तो इसके कारण स्वयं प्रबन्धक बड़े सकट मे पड जाता है। इसके फलस्वरूप आजकल अनेक व्यवहारवादी यह प्रश्न करने लगे हैं कि क्या सहभागी शैली कोई आदश है जिसके लिए प्रत्येक प्रबन्ध को प्रयास करना चाहिए? प्रारम्भ में सहभागी प्रबन्ध का विचार प्रशासनिक प्रबन्ध के यान्त्रिक दृष्टिकोण के विरुद्ध एक नए विज्ञान के रूप मे विकसित होता था किन्तु अब अनुभवो के बाद इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

1 *St nl y Se sho e* Quot d by R b rt C Albr ok op t p 614

(7) सहभागी दृष्टिकोण केवल नवीन उद्योगों में भली प्रकार कार्य करता है जो परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील होते हैं।

(8) कुछ व्यवहारवादी वैज्ञानिक प्रबन्ध शैली को तय करने के लिए किसी विशेष व्यवसाय की प्रकृति का आधार न मानकर उसमें कार्य करने वाले लोगों के व्यक्तित्व के गुणों को मानते हैं। अतः किसी व्यक्ति को सही प्रकार के कार्य में लगाने के लिए उसकी मनोवैज्ञानिक परीक्षा पर जोर दिया जाता है। इस प्रकार की परीक्षा का महत्त्व आज विवादपूर्ण बन गया है। क्योंकि इसके कारण लोगों के सम्बन्ध में अतिसरलीकृत विचार बना लिए जाते हैं।

(9) जिन व्यवहारवादियों ने प्रबन्धकीय समस्याओं का अध्ययन मानव शास्त्रीय दृष्टि से किया था उन्होंने व्यक्तिगत अन्तरों की अपेक्षा सांस्कृतिक अन्तरों पर जोर दिया। सहभागी प्रबन्ध की सफलता के लिए कतिपय सांस्कृतिक विशेषताएं सहयोगी मानी गयी।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध के सहभागी स्वरूप का प्रभाव एवं उपयोगिता का निर्णय अनेक तत्त्वों के आधार पर होता है। इनमें उल्लेखनीय हैं समय का महत्त्व, कार्य की प्रकृति, बड़े संगठन में अन्तर के बिन्दु, लोगों की प्रकृति, सांस्कृतिक रूप रचना, प्रबन्ध की मनोवैज्ञानिक तैयारी एवं तकनीकी से सम्बन्ध आदि।

समूह गतिशीलता की अवधारणा
(The Concept of Group Dynamics)

समूह में रहना व्यक्ति की प्राकृतिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के कारण उसका स्वभाव बन चुका है फलतः व्यक्ति के सामाजिक जीवन में अनेक समूह, उपसमूह तथा छोटे मोटे वर्ग बन जाते हैं। ये समूह व्यक्ति का सामाजीकरण करते हैं और उसे सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने की प्रेरणा देते हैं। विभिन्न समूहों में व्यक्ति का जीवन कुछ विशेष नियमों एवं सिद्धान्तों से प्रशासित होता है। जो उसके व्यक्तिगत जीवन के नियमों से भिन्न होते हैं। आजकल समाज वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न प्रशासनिक एवं प्रबन्धकीय समस्याओं के समाधान की दृष्टि से विशेष रूप से समूह का अध्ययन किया जाता है। 20वीं शताब्दी में इस प्रकार के अध्ययन अनुसन्धान की क्रान्ति के रूप में प्रकट हुए हैं। ज्ञान की वृद्धि के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक समूहों, छोटे समूहों, मनोरंजन एवं पड़ौसी समूहों तथा इन समूहों के गुणों, सम्पर्कों तथा नेतृत्व, उनके संघर्ष तथा इनके समाधानों, दबावों और मूल्यों आदि का अध्ययन किया जाने लगा है। इनके अतिरिक्त समूहों की अनुभूतियों, दृष्टिकोणों, अन्तःक्रियाओं आदि से सम्बन्धित अनेक अध्ययन हुए हैं। ये सब अध्ययन समूह गतिशीलता (Group Dynamics) के विकास में सहायक बने हैं।

समूह-गतिशीलता एक आन्दोलन है। मानव समूह की संरचना, स्वरूप तथा कार्यों में जो परिवर्तन होते रहते हैं उनके क्रम का समाजशास्त्र में समूह की

गतिशीलता कहा जाता है। समूह गतिशीलता की अवधारणा के सर्वप्रथम प्रचलन का श्रेय कुर्ट लेविन (Kurt Lewin) को जाता है जिसके अनुसार समूह गतिशीलता से अर्थ उन सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रियाओं के सामूहिक रूप से है जो समूह के सदस्यों में अन्तःक्रिया के विभिन्न स्वरूपों के रूप में प्रदर्शित होता है। मानव समूह में जो परिवर्तन घटित होते हैं उनके मुख्यतः तीन कारक हैं—परिस्थिति में परिवर्तन, सदस्यों में परिवर्तन एवं सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन। इन कारकों के प्रभाव से प्रत्येक समूह निरन्तर गतिशील रहता है। अतः समूह की अनेक समस्याओं का समाधान करने के लिए इस गतिशीलता का अध्ययन वांछनीय समझा जाता है। व्यवहारवादियों की भांति समूह गतिशीलता एक ऐसा आन्दोलन है जो समूह से सम्बन्धित प्रत्येक अध्ययन के लिए कठोर वैज्ञानिक प्रविधि अपनाने पर जोर देता है। यह आन्दोलन कठोर अनुभववाद और प्रत्यक्ष निरीक्षण पर आधारित जांच पर अवलम्बित है। दूसरे अर्थों में समूह गतिशीलता समूह के परिवेश के विभिन्न आयामों का अध्ययन करने के लिए उपयुक्त औजारों एवं तकनीकों के विकास का आन्दोलन है। इस आन्दोलन के अन्तर्गत विद्वानों का उद्देश्य यह था कि समूह के व्यवहार की कुछ समानताओं की खोज की जाए और सम्बन्धित नियम विकसित किए जाएं। यह माना जाता है कि समूह तथा अन्तःसमूह का परिवेश एक जटिल तत्त्व है इसके मूल्यों एवं लक्ष्यों का अध्ययन अत्यन्त कठिन कार्य है। वर्तमान समाज में दिखने वाली अनेक बीमारियों की पृष्ठभूमि में समूह के अध्ययन ने पर्याप्त महत्त्व प्राप्त कर लिया है। समूहों के परिवेश का सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण समाज पर गहरा प्रभाव होता है। प्रबन्ध की दृष्टि से समूह उत्पादकता एवं उत्पादन वृद्धि में उल्लेखनीय भूमिका निभाता है।

समूह गतिशीलता के सिद्धान्त की मान्यता के अनुसार प्रत्येक समूह एक परिवर्तनशील इकाई है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि समूह में स्थिरता या स्थायित्व का पूर्ण अभाव रहता है। अधिकांश समूह कुछ अर्थों में स्थिरता लिए हुए परिवर्तन के लिए सदैव अपने दरवाजे खुले रखते हैं। आन्तरिक रूप से प्रत्येक समूह में हमेशा कुछ न कुछ क्रियाएं निरन्तर होती रहती हैं। ये क्रियाएं समूह के संगठन संरचना और उसके कार्य संचालन की प्रक्रिया में परिवर्तन ला देती हैं। इस परिवर्तन के कारण एक नवीन सन्तुलन व्यवस्था का जन्म होता है।

व्यक्तित्व की भांति समूह का भी अध्ययन किया जा सकता। जैसे कि समूह में भी ऐसी विशेषताएं तथा गुण पाए जाते हैं जिनका मापतोल अवलोकन वर्गीकरण और भविष्यवाणी की जा सके। किसी विशेष प्रकार की परिस्थितियों में विशेष समूह के सदस्यों का व्यवहार किस प्रकार का होगा इसका पूर्वज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। समूह व्यवहार की इन गतिविधियों को ही आजकल समूह प्रक्रियाएं (Group Processes) अथवा समूह गतिशीलता (Group Dynamics)

कहा जाता है। समूह के स्थायित्व में परिवर्तनशील प्रक्रिया को समूह गतिशीलता का नाम दिया गया है।

कुर्ट लेविन ने इस दृष्टि से क्षेत्र सिद्धान्त (Field Theory) का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन उसके जीवन के पर्यावरण की सीमा में किया जाए अर्थात् मानव व्यवहार का निरूपण उन विभिन्न तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए जो परिस्थिति विशेष में एक साथ पाए जाते हैं। ये तथ्य व्यवहार क्षेत्र को गतिशील बना देते हैं क्योंकि क्षेत्र की विभिन्न वस्तुओं का एक दूसरे पर अपना अपना प्रभाव पड़ता है।

समूह की प्रकृति एवं लक्षण
(The Nature and Attributes of the Group)

समूह की रचना करने वाले विभिन्न तत्त्वों के आधार पर समूह की प्रकृति एवं लक्षणों को समझा जाता है। समूह के निर्माण के लिए कम से कम दो व्यक्तियों का होना अनिवार्य है। इससे अधिक वे चाहे जितने हो सकते हैं। समूह के सदस्य पारस्परिक अन्त क्रिया करते हैं। इसके अभाव में समूह की रचना सम्भव नहीं है। समूह के सभी सदस्यों की भावनाएं, आकांक्षाएं तथा उद्देश्य समान होते हैं। समूह के सदस्यों की भूमिकाएं एवं उनकी प्रस्थिति समान होती है। समूह के सभी सदस्य अपने पर्यावरण की वस्तुओं से समान रूप से सम्बन्धित होते हैं। समूह के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे होने चाहिए जिसके आधार पर उस समूह का साधारण कार्य सचालन हो सके। समूह के सदस्यों के व्यवहार प्रतिमानों, व्यवहार सम्बन्धी मान्यताओं तथा मानकों में समानता पायी जाती है। समूह के सदस्यों में मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध उत्पन्न होते हैं। इसके सदस्य एक दूसरे के प्रति अनुभूति रखते हैं और तदनुकूल व्यवहार भी करते हैं। समूह के सभी सदस्यों की भूमिकाओं में निकटता एवं सानिध्य होता है। समूह के सदस्यों में अन्य समूह के सदस्यों से पृथक्कता की भावना रहती है। समूह के कार्यों की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसके सदस्यों को सौंपे गए कार्यों का विशेषीकरण कितना प्रभावशाली है। समूह की संरचना इसके सामाजिक परिवेश से गहन रूप से प्रभावित होती है। समूह का व्यवहार दो मुख्य तत्त्वों की उपज है ये हैं व्यक्तिगत गुण एवं संगठन जनवायु और नेतृत्व आदि सामूहिक गुण। दूसरे प्रकार के तत्त्व समूह के सदस्यों के बीच अन्त क्रिया से जन्म लेते हैं। समूह के प्रति उसके सदस्यों का आकर्षण इसके उद्देश्यों, कार्यक्रमों तथा समाज में इसके स्तर पर निर्भर है।

———

19

प्रबन्ध के आधुनिक प्रसाधन आटोमेशन, साइबरनेटिक्स

(Modern Aids to Management Automation Cybernatics)

आजकल व्यवसाय एवं उद्योग का आकार निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इसी प्रकार के प्रशासनिक दायित्व भी अधिक होते जा रहे हैं। इनके फलस्वरूप प्रबन्ध की समस्याएं दिनों दिन जटिल होती जा रही हैं। प्रबन्ध के नियोजन अनुसूचियन समन्वय तथा नियन्त्रण आदि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने के लिए अनेक प्रबन्धकीय तकनीकों का विकास किया गया है। प्रबन्ध के इन आधुनिक प्रसाधनों ने 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रबन्ध की प्रक्रिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। ये आधुनिक प्रसाधन प्रबन्ध एवं अभियान्त्रिकी दोनों में आन्तरिक रूप से सम्बन्धित हैं। इनके द्वारा उच्च स्तरीय तकनीकी एवं जटिल प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं के बीच एक मनुष्य का काम लिया जाता है।

प्रबन्ध के इन आधुनिक प्रसाधनों का उद्देश्य प्रबन्धकीय निर्णय और कार्यों को सहज करना है। दूसरे शब्दों में ये आधुनिक प्रसाधन व्यवसाय को एकीकृत करने और समग्र संगठन में उद्देश्य पूर्ण कार्य करने का प्रयास करते हैं। दूसरे, इन नए प्रसाधनों द्वारा व्यवसाय के उद्देश्यों तथा मान्यताओं में सुधार करना सम्भव बनाया जाता है और इस प्रकार लक्ष्य प्राप्ति के जोखिम कम किए जाते हैं तथा व्यवसाय की अधिक सम्पन्नता को सुधारा जाता है। तीसरे इन प्रसाधनों द्वारा यह सम्भव हुआ है कि भावी निर्णयों का तर्कपूर्ण नियोजन किया जा सके और इन्हें भविष्य के लिए अधिक सही तथा प्रभावशाली निर्णय बनाया जा सके। इन आधुनिक प्रसाधनों का प्रयोग करके संगठन की भावी आवश्यकताओं को अधिक बुद्धिपूर्ण एवं व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना सम्भव हो सका है। यहाँ हम प्रबन्ध के प्रमुख आधुनिक प्रसाधनों का संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं।

आटोमेशन
(Automation)

यह एक नया शब्द है जो स्वचालन एवं चीजों को स्वचालित बनाने की क्रिया देने के लिए प्रयुक्त होता है। यह नियन्त्रणकारी प्रयास है जिसके

माध्यम से कार्य की प्रक्रिया को इस प्रकार समायोजित किया जाता है ताकि नियोजित परिणाम प्राप्त किए जा सकें। इस तकनीकी का प्रमुख उद्देश्य सगठन में स्थायित्व एवं भविष्यवाणी की क्षमता पैदा करना है। इसके अतिरिक्त इसका अन्य लक्ष्य ऐसी सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया को अपनाना है जिसके द्वारा कम से कम लागत एवं प्रयासों में अधिकतम स्थायित्व के साथ विभिन्न प्रकार की चीजें प्राप्त की जा सकें। आटोमेशन तकनीकों के माध्यम से सम्भरण व्यवस्था द्वारा नियन्त्रण प्रयुक्त किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि यन्त्रों द्वारा उड़ते हुए वायुयान को निर्देशित और नियन्त्रित किया जाता है।

आटोमेशन का महत्त्व 50वीं के आरम्भ में संयुक्तराज्य अमरिका की काँग्रेस की आर्थिक स्थायित्व पर उपसमिति की जाँच में स्वीकार किया गया था। समिति ने सार्वजनिक सुनवाई तथा केस अध्ययनों के माध्यम से द्रुतगामी तकनीकी परिवर्तनों की दृष्टि से अर्थव्यवस्था के लिए इसके तत्कालीन एवं भावी महत्त्व का उल्लेख किया था। समिति के मतानुसार अर्थव्यवस्था के कुछ भागों में श्रम बचत यन्त्र एवं तकनीकें तथा आटोमेशन अपनाकर नए उद्योग जन्मे हैं तथा इनके जन्मने की सम्भावनाएं हैं। स्वचालित प्रक्रियाओं को अपनाकर व वस्तुएं और सेवाएं सम्भव हो सकी है जो पहले सम्भव नहीं थीं। आटोमेशन के परिणामस्वरूप जो अतिरिक्त अवकाश और अतिरिक्त उत्पादन एवं आराम उपलब्ध हुआ है उसने मजदूरों और उपभोक्ताओं को अधिक चयन का अवसर दिया है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत में कमी और उसके गुणों में सुधार हुआ है। इसके द्वारा निश्चय ही प्रशासनिक एवं अन्य प्रकार के मानवीय कार्यों का स्थान ग्रहण नहीं किया जा सकता विशेषत ऐसे कार्य जिनमें निर्णय और तर्क की आवश्यकता होती है।

आटोमेशन की दृष्टि से कतिपय मूलभूत बातें सम्भरण कम्प्यूटर का उपयोग विनियोग की आवश्यकता मानवीय सम्बन्ध एकीकृत व्यवस्था में यान्त्रिकीकरण आदि आवश्यक हैं। वास्तव में आटोमेशन विभिन्न प्रकार की अभियान्त्रिकी का बड़े स्तर के उत्पादन में सकलपण करता है।

साइबरनेटिक्स
(Cybernatics)

साइबरनेटिक्स शब्द ग्रीक भाषा के गवनर शब्द से बना है। साइबरनेटिक्स शब्द की व्याख्या करते हुए इसे विद्युत मेकेनिकल व्यवस्था कहा जाता है जो किसी चीज को स्थायी बनाने की दृष्टि से स्वत चालित होती है। साइबरनेटिक व्यवस्था के उदाहरण की दृष्टि से एक वायुयान के स्वचालित पायलट का उल्लेख किया जा सकता है जो उसे सीधा और एक स्तर पर उड़ाए रखता है। साइबरनेटिक व्यवस्था एक एकीकृत इकाई है जिसके पाँच अंग हैं—इन्पुटस डेटा प्रोसेसिंग आउटपुटस वेरीफायर्स एवं फीडबेक। इनमें अन्तिम के द्वारा किसी न किसी रूप में

भावी इन्पुट्स को प्रभावित किया जाता है। यदि इस व्यवस्था को सही रूप मे सरचित किया जाए तो यह व्यवस्था के बाहर से आने वाले अवरोधों और आन्तरिक रूप से प्रकट होने वाले अन्तरों के होते हुए भी काय को निरन्तर गतिशील रख सकेगी।

पर्ट
(Pert)

अर्थ एवं परिभाषा

पर्ट का पूरा नाम है—Programme Evaluation and Review Technique जिसका हिन्दी रूपान्तर हुआ—कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षा तकनीक। पर्ट एक आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीक है जिसे कुछ वर्षों पूर्व मान्यता प्राप्त हुई है। यह अंग्रेजी के चार अक्षरों से मिलकर बना है। इससे पी का अर्थ कार्यक्रम (Programme) से है। किसी कार्य को करने से पूर्व उसका व्यापक कार्यक्रम बना लेना चाहिए। यह उस कार्य में सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ई का अर्थ मूल्यांकन (Evaluation) से है अर्थात् कार्यक्रम बनाने के बाद उसका सही रूप में मूल्यांकन किया जाना चाहिए। आर का अर्थ है कार्यक्रम की पुनरीक्षा (Review) करना और टी का अर्थ है तकनीकी (Technique) अर्थात् कार्य करने की विधि। इस प्रकार शाब्दिक अर्थ के अनुसार पर्ट द्वारा किसी परियोजना की व्याख्या की जाती है उसकी क्रियाओं में समन्वय स्थापित किया जाता है और समय के आधार पर सफलतापूर्वक उसके लक्ष्य प्राप्त किए जाते हैं। पर्ट एक ऐसी तकनीक है जिसके अन्तर्गत बड़ी परियोजनाओं को छोटे छोटे कार्यों (Jobs) में विभक्त कर दिया जाता है और बाद में इन कार्यों को तर्कसंगत क्रम में रखा जाता है। कार्य की प्रत्येक कार्य को कार्यान्वित करने के लिए अनुमानित समय तय कर लिया जाता है और इसी समय सीमा के अन्तर्गत प्रत्येक कार्य पूरा करने की चेष्टा की जाती है। प्रत्येक कार्य के मार्ग में आने वाली सम्भावित बाधाओं एवं समस्याओं को उनके उत्पन्न होने से पहले ही समाप्त कर दिया जाता है ताकि निर्धारित लक्ष्य को निर्धारित समय में प्राप्त किया जा सके। पर्ट नामक तकनीक का जन्म एवं विकास सन् 1958 में अमरिका में पोलारिस परियोजना के सन्दर्भ में किया गया था जिसके परिणामस्वरूप इस निर्धारित समय से दो वर्ष पूर्व ही समाप्त किया जा सका।

पर्ट का उद्देश्य

पर्ट का उद्देश्य किसी भी परियोजना के नियोजन समन्वय तथा नियन्त्रण में सहायता करना और उसे पूरा करने के मार्ग में आने वाली भावी कठिनाइयों एवं बाधाओं को दूर करते हुए निर्धारित समय में अथवा उससे भी पूर्व परियोजना को पूरा करना है। पर्ट द्वारा परियोजना की लागत में कमी की जाती है इसके समय

की बचत की जाती है इसमें मानवीय तथा भौतिक साधनों का श्रेष्ठ तथा प्रभावी उपयोग किया जाता है और बडी परियोजना को छोटे-छोटे तकसंगत कार्यों में विभाजित किया जाता है।

पट की प्रमुख अवधारणाएं

इस तकनीक की अवधारणाएं मुख्यतः तीन हैं—

1 घटनाओं एवं क्रियाओं का जाल (Network of Events and Activities)—पट के अन्तर्गत सबसे पहले यह ज्ञात किया जाता है कि किसी विशेष परियोजना को पूरा करने के लिए कौन-सी विभिन्न क्रियाएं सम्पन्न की जाएंगी। इन विभिन्न क्रियाओं के निष्पादन में लगने वाले समय को निर्धारित किया जाता है। ये क्रियाएं तर्कसंगत क्रम में प्रस्तुत की जाती हैं। प्रत्येक क्रिया के प्रारम्भिक एवं अन्तिम बिन्दु घटना के नाम से सम्बोधित किए जाते हैं। किसी परियोजना की समस्त क्रियाओं एवं घटनाओं को तर्कसंगत रूप में समन्वित किया जाता है। इसके फलस्वरूप घटनाओं एवं क्रियाओं का एक जाल बन जाता है।

2 अनुमानित समय (Expected Time)—क्रियाओं एवं घटनाओं को तर्कसंगत रूप से क्रम में रखने के बाद प्रत्येक क्रिया में लगने वाले समय का निर्धारण किया जाता है। इन क्रियाओं से भली प्रकार परिचित व्यक्तियों को यह दायित्व सौंपा जाता है। समय का अनुमान आशावादी निराशावादी और अधिकतम संभावित समय की दृष्टि से लगाया जाता है।

3 क्रान्तिक मार्ग (Critical Path)—उक्त दोनों कार्यों के बाद यह ज्ञात हो जाता है कि घटनाओं के किस क्रम को अपनाने से कम समय लगेगा और किसमें अधिकतम समय लगेगा। क्रान्तिक मार्ग क्रियाओं तथा घटनाओं के उस क्रम को कहा जाता है जिसे पूरा करने में अधिकतम समय लगने की सम्भावना है। यदि परियोजना में समय कम लगाना हो तो इसके लिए क्रान्तिक मार्ग को कम करना होगा।

पट की उपयोगिता या इससे लाभ

प्रबंध की नई तकनीक के रूप में पट की उपयोगिता एवं लाभ अनेक हैं—

1 पहला प्रमुख लाभ यह है कि परियोजना को पूरा करने में लगने वाली अवधि पर्याप्त कम हो जाती है। विभिन्न अध्ययनों से यह अनुमान लगाया गया है कि किसी परियोजना के क्रियान्वयन में पट तकनीक को प्रभावी ढंग से लागू करने पर समय में लगभग 30 प्रतिशत कमी होती है। वास्तव में इस तकनीक का उद्गम और विकास ही किसी परियोजना में लगने वाले समय में प्रभावी बचत करने के लिए हुआ है।

2 पट तकनीक को लागू करने से परियोजना की कुल लागत में पर्याप्त कमी आ जाती है। विभिन्न अध्ययनों से अनुमान लगाया गया है कि कुल लागत में लगभग 20 प्रतिशत की कमी सम्भव है।

3 भावी कठिनाइयों और रुकावटों का पता लगाकर उन्हें दूर करने के कारण अनिश्चितताओं में कमी आ जाती है। (पट के अन्तर्गत किसी क्रिया को पूरा करने में आने वाली बाधाओं और रुकावटों का पहले से ही पता लगाकर उनका उन्मूलन कर दिया जाता है। इस प्रकार पर्ट तकनीक के कारण नियोजकों में विश्वास की भावना विकसित होती है और परियोजना निर्धारित अवधि में पूरी हो जाने की प्रबल सम्भावना रहती है।)

4 इसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्रियाओं के भूल जाने की जोखिम काफी कम हो जाती है। (यह एक ऐसी तकनीक है जिसके अन्तर्गत किसी योजना को पूरा करने के लिए सर्वप्रथम विभिन्न क्रियाओं को ज्ञात किया जाता है फिर उन क्रियाओं का तर्कसंगत क्रम निर्धारित किया जाता है और तत्पश्चात् उनके मध्य पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के कारण क्रियाओं के भूल जाने की आशंका प्राय नहीं रहती अथवा बहुत कम रहती है।)

5 पट तकनीक के प्रयोग से नियोजन कार्य सरल हो जाता है। किसी परियोजना को छोटे छोटे भागों में विभक्त करना नियोजन का ही अग है और यह काय पट तकनीक द्वारा भली प्रकार सम्पन्न किया जाता है।

6 इसके द्वारा परियोजना के नियन्त्रण में सहायता मिलती है और काय की विभिन्न इकाइयों में समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

7 इसकी सहायता से प्रबन्धक अनावश्यक परेशानी और तनाव से बच जाता है। यह स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि काय कहाँ और कब प्रारम्भ होगा तथा कहाँ और कब समाप्त हो जाएगा।

8 पट तकनीक पर्याप्त लोचशील है जो नियोजकों को अपनी परियोजनाओं में तथा लागत विधियों के उपयोग में आवश्यक संशोधन करने की अनुमति प्रदान करती है।

9 पट तकनीक के प्रयोग के फलस्वरूप अनावश्यक कार्यों पर रोकथाम लग जाती है क्योंकि यह निश्चित रहता है कि कौनसी प्रक्रिया पहले सम्पन्न की जाएगी और कौनसी उसके बाद।

10 किसी काय के विभिन्न विकल्प पहचान कर उनका मूल्यांकन कर लिया जाता है। कोई काय करने अथवा नियोजन के सम्बन्ध में निर्णय लेने में पट तकनीक बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है।

11 इस तकनीक के आधार पर परियोजना के निष्पादन सम्बन्धी आंकड़े प्राप्त किए जा सकते हैं। ये आंकड़े परियोजना की प्रगति का मूल्यांकन करने और लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होते हैं।

12 नियोजन के मुकाबले में वास्तविक निष्पादन की तुलना करने में पट तकनीक बड़ी सहायक होती है। इसमें गणित का उपयोग भी किया जाता है।

13 इस तकनीक के द्वारा उपलब्ध मानवीय एव भौतिक साधनो का अधिकतम उपयोग हो पाता है। किसी भी परियोजना की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि उसके लिए काम म आने वाले मानवीय एव भौतिक साधनो का श्रेष्ठतम उपयोग कहा तक हो पाता है।

14 पट तकनीक निर्णय निर्माण मे सहायता देती है उत्तरदायित्व की भावना म वृद्धि करती है और प्रारम्भिक नियोजन म भागीदारी का सम्भव बनाती है। यह प्रब ध क प्राथमिक कार्यों (यथा नियोजन नियन्त्रण समन्वय अनुसूचियन आदि) क निष्पादन मे सहायक है।

पट तकनीक की सीमाए

प्रब ध की इस तकनीक के अनेक लाभ हैं किन्तु साथ ही इसकी कुछ सीमाए भी हैं यथा—

1 यह तकनीक नियोजन सम्ब धी सभी कठिनाइयो का निराकरण नही कर पाती।

2 पट के अ तगत क्रियाओ और घटनाओ का स्पष्ट एव तकसगत जाल तयार करना निश्चय ही एक कठिन काय है।

3 इस तकनीक का उपयोग करने के लिए प्रशिक्षित कमचारी आवश्यक हैं जो प्राय मिल नही पाते।

4 जटिल पद्धति (Complex System) मे पट तकनीक खर्चीली है।

5 कुछ परियोजनाओ मे सभी क्रियाओ को पहचानना बडा कठिन है। कुछ न कुछ क्रियाए रह ही जाती हैं और फलस्वरूप निर्धारित लक्ष्यो का प्राप्त करना यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य हो जाता है।

6 परियोजनाओ का सही समय ज्ञात करना भी निश्चय ही एक कठिन काय है।

7 उन परियोजनाओ मे जिनकी योजना परिवर्तित होती रहती है पट तकनीक का उपयोग लाभप्रद सिद्ध नही होता।

सी पी एम
(C P M)

पट की भाति प्रब ध की यह तकनीक भी पर्याप्त लोकप्रिय होती जा रही है। इसका शाब्दिक अथ क्रान्तिक माग विधि (Critical Path Method) है। इसके अ तगत क्रियाओ को तर्कसगत रूप से क्रमबद्ध करने पर जोर दिया जाता है जबकि पट के अ तगत घटनाओ पर जोर दिया जाता है। इन दोनो तकनीको म अनेक समानताए होते हुए भी पर्याप्त अ तर है। सी पी एम की तकनीक मुख्य रूप से समय निर्धारण से सम्बन्ध रखती है। यह मूलत नियोजन सरचना प्रदान करती है। दूसरी ओर यह प्राय बडी परियोजनाओ के लिए तथा उन परिस्थितियों

के लिए जहा निर्णायक अगा म अन्तर्निमरता होती है अधिक उपयुक्त है। यन्त्र अनुसूचियन एव नागत नियन्त्रण के लिए एक तकसगत रूप रचना प्रदान करने के अतिरिक्त एक ऐसा यन्त्र प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा वकल्पिक काय परियोजनाओं प्रसाधनो क प्रकारा काय की विधियो आदि का तुरन्त मूल्याकन किया जा सक। इस तकनीक का प्रयोग करके लागत घटाने और कायकुशलता बढाने की सम्भावना रहती है।

यह तकनीक समय पर परियोजनाओं का पूरा करने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों को पृथक करने तथा साधन स्रोतो के आवटन की दृष्टि से प्राथमिकता वाले क्षेत्र तय करन म सहायता करती है। जिस समय परियोजना को काय रूप दिया जा रहा है उस समय भी इस तकनीक द्वारा प्रबन्ध का प्रत्यक योजना क प्रभावो सम्बन्धी आवश्यक सूचनाए प्राप्त हो जाती हैं।

पट तथा सी पी एम में अन्तर

पट और सी पी एम दोनो ही प्रबन्ध की आधुनिकतम तकनीकें हैं और दोनो म काफी समानताए है तथापि निम्नलिखित प्रमुख अन्तर दोनो को भिन्न करत हैं—

1 पट तकनीक घटना प्रमुख है अर्थात् इसमे घटनाओं पर प्रमुख रूप से ध्यान दिया जाता है जबकि सी पी एम तकनीक क्रिया प्रमुख है अर्थात् इसमे मन्तत क्रियाओं पर ही ध्यान दिया जाता है।

2 पट म समय अनुमान सम्बन्धी अनिश्चितताओं को पूरी तरह ध्यान म रखा जाता है जबकि सी पी एम म समय का कवल एक ही अनुमान काम म लिया जाता है अर्थात् क्रिया क निष्पादन से सम्बन्धित समय की अनिश्चितताओं पर ध्यान नही दिया जाता।

3 सी पी एम मे समय का सम्बन्ध लागतो से होता है अर्थात् अधिक समय का अर्थ होगा अधिक लागत जबकि पट म एसा नहीं होता।

पट एव सी पी एम का प्रयोग
(Application of PERT and C P M)

आधुनिक समय म परियोजना कार्यों के लिए पट तथा सी पी एम तकनीकों का प्रयोग निरन्तर बढता जा रहा है। विद्वानो क अनुसार निम्नलिखित क्षेत्रो म इनका प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक लाभप्रद है—

1 किसी भी बड भवन अथवा लम्ब माग के निमाण म।
2 किसी बड जनरेटर का निर्माण करन म।
3 किसी बड जलयान का निर्माण करन म अथवा उसकी मरम्मत करन म।
4 कम्प्यूटर व्यवस्था की स्थापना करन म।
5 किसी भी नए उत्पाद निर्माण सम्बन्धी परियोजना क अध्ययन म।

6 किसी बड़ी परियोजना के तयार करने मे और उसे क्रियान्वयन करने मे।

7 दूरमारक अस्त्र जस मिसाइल की प्रविधिया को गिनती करने मे।

8 एक निश्चित अवधि क उपरान्त किसी परियोजना का लेखा जोखा लेने मे।

पर्ट एव सी पी एम दोनो ही आधुनिकतम प्रबन्ध तकनीकें हैं किन्तु अनेक व्यावहारिक कठिनाइया क कारण दोनो ही तकनीकों का प्रयोग कितनी ही बार सम्भव नहीं हो पाता। इन दोनो तकनीकों का मुख्य आधार यह है कि परियोजना सम्बन्धी समस्त घटनाओं तथा क्रियाओ एव उनक निष्पादन म लगने वाली अवधि की पूर्ण जानकारी हो। लेकिन व्यवहार मे कितना ही बार ऐसी पूर्ण जानकारी सम्भव नहीं हो पाती। अनेक समस्याए इतनी जटिल होती है कि उनमे घटनाओं का क्रम निर्धारित करना असम्भव हो जाता है। इसके अतिरिक्त कई बार जटिल समस्याओं म इन तकनीकों का प्रयोग इतना महगा पडता है कि इन तकनीकों को अपनाने से प्रबन्धक हिचकिचाने लगते हैं।

प्रश्नावली

(University Questions)

अध्याय 1 (लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान भारत म लोक प्रशासन के अनुशासन का विकास)

1 लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिए। इसके भारत तथा विदेश म अध्ययन के विषय क रूप म विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1980)
Define Public Administration Give a brief account of its development as an academic discipline in India as well as abroad

2 लोक प्रशासन म वे सभी काय आते हैं जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीति को पूरा करना अथवा लागू करना होता है। (व्हाइट) क्या यह लोक प्रशासन की एक सन्तोषजनक परिभाषा है ? सकारण उत्तर दीजिए।
' Public Administration consists of all those operations having for their purpose the fulfilment of enforcement of Public Policy (White) Is this a satisfactory definition of Public Administration ? Give reasons for your answer

3 लोक प्रशासन का अथ बताइये तथा इसका निजी प्रशासन से अन्तर बताइये। निजी एव लोक प्रशासन का अन्तर घटता जा रहा है। टीका कीजिए। (1983)
Define Public Administration and distinguish it from Private Administration The gap between Private and Public Admini stration is narrowing Comment

4 लोक प्रशासन को निजी प्रशासन म कौन-कौनसी विशेषताए उधार लेनी चाहिए। इनका विलोम भी समझाइये।
What characteristics should Public Administration borrow from Private Administration and vice versa ?

5 लोक प्रशासन की प्रकृति तथा क्षेत्र का वणन कीजिए तथा इस पर भी विचार कीजिए कि यह विज्ञान है या कला या दोनों।
Discuss the nature and scope of Public Administration and examine whether Public Administration is science or art or both

6 क्या लोक प्रशासन के अध्ययन को वैज्ञानिक कहा जाना चाहिए ?
Should be the study of Public Administration be called a Science ?

7 यदि हमारी सभ्यता तो असफल होती है तो ऐसा मुख्यतया लोक प्रशासन के क्षय के कारण होगा। आधुनिक समाज म लोक प्रशासन के महत्त्व पर टिप्पणी कीजिए।

If our civilisation fails it will be mainly because of a breakdown of Public Administration Comment on the significance of Public Administration in modern society

8 आज लोक प्रशासन सभ्य जीवन का रक्षक मात्र ही नहीं है वह सामाजिक न्याय तथा सामाजिक परिवर्तन का भी महान् साधक है। इस कथन को स्पष्ट कीजिए तथा लोक प्रशासन के नए क्षितिज की विवेचना कीजिए।

Today Public Administration is not only a custodian of civilised life It is also a names for social justice and social change Clarify this statement and explain the new horizons of Public Administration

9 लोक प्रशासन के सिद्धान्तों की बात करना मिथ्या है। अन्य विज्ञानों की भांति लोक प्रशासन के भी अपने सिद्धान्त हैं। इन कथनों का परीक्षण कीजिए।

It is useless to talk about principles of Public Administration Like other sciences Public Administration has also got its Principles Examine these statements

10 लोक प्रशासन को समाज विज्ञान के रूप म स्वीकार किए जाने के पक्ष तथा विपक्ष म तर्कों का परीक्षण कीजिए।

Examine the arguments for the against accepting Public Administration as a discipline of Social Science

11 लोक प्रशासन को एक समाज विज्ञान के रूप म मान्यता दी जानी चाहिए। इस मान्यता का परीक्षण कीजिए।

Examine the claims of Public Administration to be recognised as a social science

12 राजनीति विज्ञान एव समाजशास्त्र के विद्वानों का लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र मे योगदान की व्याख्या करें। (1981)

Explain the contribution of Political Scientists and Sociologists to the field of Public Administration

13 भारत म लोक प्रशासन विषय के विकास का समाधान करें। (1981)

Examine the evolution of the discipline Public Administration in India

14 एक अध्ययन शास्त्र के रूप म भारत म लोक प्रशासन के विकास का इतिहास बतलाते हुए एक समाज विज्ञान के रूप म उसकी वतमान स्थिति पर प्रकाश डालिए।

Trace the development of the discipline of the Public Administration in India and comment upon its present state as a Social Science

15 लोक प्रशासन के बढ़ते महत्व का खाका खास तौर पर विकासशील देशों में चीचिए।
Discuss the growing importance of Public Administration particularly in the developing countries

16 लोकतान्त्रिक प्रशासन से आप क्या समझते हैं ? एक विकासशील देश में लोक प्रशासन की जनतान्त्रिक सीमाएँ समझाइए।
What do you understand by Democratic Administration ? Discuss some of the democratic constraints of Public Administration in a developing society

17 कुछ गम्भीर चुनौतियों को स्पष्टता से बतलाइए जो विकासशील देशों में लोक प्रशासन के सम्मुख मुँह बाँए खड़ी हैं। अपने उत्तर को भारतीय अनुभव के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
Mention precisely some of the serious challenges which Public Administration confronts in the developing countries Illustrate your answer from Indian experience

18 विकासशील देशों में लोक प्रशासन किन किन विशेष समस्याओं का सामना कर रहा है ?
What special problems does public administration confronts in developing countries ?

अध्याय 2 (लोक प्रशासन के अध्ययन के समकालीन दृष्टिकोण—व्यवहारवादी व्यवस्था और संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण —राजनीति शास्त्र अर्थशास्त्र समाजशास्त्र कानून और मनोविज्ञान से लोक प्रशासन का सम्बन्ध)

19 लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न समसामयिक उपागम कौन कौन से हैं ? स्ट्रक्चरल फंक्शनल एप्रोच को विस्तार सहित समझाइए।
What are the various contemporary approaches to the study of Public Administration ? Comment upon the structural functional approach in details

20 समाज विज्ञान के रूप में लोक प्रशासन के स्वरूप का चित्रण कीजिए एवं इसके अध्ययन के व्यवहारवादी उपागम की विवेचना कीजिए। (1983)
Describe the nature of Public Administration as a social science and discuse the behavioural approach to its study

21 व्यवहारवाद से आपका क्या अभिप्राय है ? लोक प्रशासन के अध्ययन में इसे कहाँ तक प्रयुक्त किया गया है ? (1980)
What do you understand by Behaviouralism ? To what extent has it been applied in the study of Public Administration ?

22 लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी उपागम की व्याख्या कीजिए। (1980)

Discuss the behavioural approach to the study of Public Administration

23 व्यवहारवादी अभिगम की मुख्य विशेषताओं को समझाइये। लोक प्रशासन के अध्ययन में इसका उपयोग किस सीमा तक किया गया है ? (1981)

Discuss the major features of Behavioural Approach To what extent has it been applied in the study of Public Administration ?

24 व्यवहारवादी लेखकों द्वारा लोक प्रशासन के क्षेत्र में दिए गए योगदान की आलोचनात्मक समीक्षा की जाए।

Critically examine the contributions of behaviouralist writers to Public Administration

25 लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी दृष्टि या उपागम से आप क्या समझते हैं ? कुछ व्यवहारवादी लेखकों का लोक प्रशासन के क्षेत्र में योगदान बतलाइये।

What do you understand by Behavioural Approach to the study of Public Administration ? Discuss the contributions of some behaviouralist writers to Public Administration

26 व्यवहारवाद की परिभाषा कीजिए तथा लोक प्रशासन के अध्ययन पर इसके प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए। (1985)

What is Behavioralism ? How has it effected the study of Public Administration as an academic discipline ?

27 लोक प्रशासन के अध्ययन में तन्त्र अथवा व्यवस्था अभिगम की मुख्य विशेषताओं की विवेचना करें। इस अभिगम की क्या सीमाएं हैं ? (1982)

Examine the essential features of systems approach to the study of Public Administration What are the limitations of this approach

28 व्यवस्था सिद्धान्त तथा व्यवस्था उपागम (एप्रोच) ने प्रशासकीय यथार्थताओं को वैज्ञानिक ढंग से समझने में किस प्रकार योगदान दिया है ?

How have systems theory and approach contributed to the scientific understanding of administrative realities ?

29 प्रशासनिक संगठनों के अध्ययन में व्यवस्था अभिगम की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ? इस अभिगम की क्या सीमाएं हैं ? (1980)

Examine the major characteristics of systems approach to th study of Administrative organisations What are the limitations of this approach ?

30 लाक प्रशासन के अध्ययन म स्ट्रक्च न फक्श न एप्रोच क मुख्य तत्वा का वर्णन कीजिए। इम अवध रणा की क्या सीमाए हैं ? (1984)

Point out the main elements of Structural Function.l App roach in the study of Public Administration What are the limitations of this approach ?

31 लाक प्रशासन म यवस्था तथा तन्त्र अभिगम की प्रमुख विशेषताओं की सक्षिप्त विवचना कीजिए। सरच ामक-कार्या मक अभिगम से यह किस प्रकार भिन्न है ? (1979)

Briefly discuss the major f atures of the systems approach of Public Administration How is it related to the structural functional approach ?

31 (a) यवहारवाद की परिभाषा कीजिए तथा लोक प्रशासन के अध्ययन पर इसके प्रभाव का मूल्याकन कीजिए। (1985)

Define behaviouralism and evaluate its impact on the study of Public Administration

32 स्टक्चर न फक्शनल एप्रोच से आप क्या समझते हैं ? लोक प्रशासन के क्षेत्र म हुए इस प्रकार के अध्ययनो की सहायता से उदाहरण दत ए स्पष्ट कीजिए। (1981)

What do you understand by Structural Functional App roach ? *Illustrate your answer with the help of studies made* in the field of Public Administration

33 स्टक्चरल फक्शनल एप्रोच से लाक प्रशासन क अध्ययन म आप क्या समझते हैं ? क्या आपके मत म इसने हमार क्षेत्र मे वज्ञानिक अध्ययनो क विकास म सहायता दी है ?

What do you understand by Structural functional approch to the study of Public Administration ? Do you think it has reasulted in the growth of scientific studies in the field ?

34 लोक प्रशासन क अध्ययन मे स्टक्चरल फक्शनल एप्रोच की विवेचना कीजिए।

Discuss the Structural Functional Approach to the study of Public Administration

35 राजनीति तथा प्रशासन सरकार क दो विभिन्न काय हैं। यदि राजनीति का सम्ब ध नीतियो स है तो प्रशासन का सम्बन्ध नीतियो के कार्या वय स है। उक्त कथन का समीक्षा मक परीक्षण कीजिए।

Pol tics and Administration are two distinct functions of a government While politics has to do with policies admini stration has to do with the execution of those policies Critically examine the above statement

36 राजनीति और प्रशासन म अन्तर बतलाइये । क्या आप मानते है कि राजनीति एक नीति विज्ञान है जबकि प्रशासन ऐसा नही है ।

Distinguish between Politics and Administration Do you think Politics is a Policy Science which Administration is not ?

37 क्या आप लोक प्रशासन को समाज विज्ञान मानते ह ? लोक प्रशासन के राजनीति एव समाज शास्त्र स सम्बन्धो की विवेचना कीजिए ।

Do you think Public Administration is a Social Science? Discuss its relations with Politics and Sociology

38 इस कथन का विवेचना कीजिए कि लोक प्रशासन का अध्ययन केवल वधिक सरचना क आधार पर तब तक अपूर्ण ही रहेगा जब तक कि परिस्थितिक तथा सामाजिक आयामो को भी ध्यान म नही रखा जाएगा । (1984)

Discuss the statement that the study of Public Administration in the light of juridical structure is incomplete unless the ecological and sociological dimensions are also taken into consideration

39 प्रतिमान विधियो एव तथ्यो क क्षेत्र म लोक प्रशासन से समाजशास्त्र एव मनोविज्ञान स काफी कुछ ग्रहण किया है । समझाइये । (1982)

The Study of Public Administration has borrowed a great deal from Sociology and Psychology in the spheres of models methods and data Discuss

40 "लोक प्रशासन का अध्ययन राजनीति एव कानून पर बहुत अधिक निर्भर करता है । स्पष्ट कीजिए । (1983)

The study of Public Administration draws heavily upon Politics and Law Elucidate

41 लोक प्रशासन क समाजशास्त्र एव मनोविज्ञान से सम्बन्धो की समीक्षा कीजिए। (1979)

Examine the relation of Public Administration with Sociology and Psychology

42 (a) लोक प्रशासन लोक नीति के कार्यान्वयन से सम्बन्धित है तथा राजनीति विज्ञान विधिशास्त्र अर्थ विज्ञान और समाज विज्ञान स उसका निकट सम्बन्ध है । स्पष्ट कीजिए ।

Public Administration is concerned with the execution of Public Policies and is closely related with Political Science Jurisprudence Economics and Sociology Explain

42 (b) राजनीति प्रशासन विभाजन एक काल्पनिक बात है। इस कथन के सन्दर्भ में लोक प्रशासन के क्षेत्र तथा राजनीति से इसके सम्बन्धों का परीक्षण कीजिए। (1985)

The Politics-administration dichotomy is a myth In the light of this statement examine the scope of public administration and its relations with politics

अध्याय 3 (औपचारिक संगठन की अवधारणा—आदेश की एकता मुख्य कार्यपालिका कार्य का विभाजन पद सोपान नियन्त्रण का क्षेत्र)

43 औपचारिक संगठन से आपका क्या अभिप्राय है? अनौपचारिक संगठन से इसकी अन्तर्क्रिया किस प्रकार होती है? (1981)

What is a formal organization? How does it interact with informal organization?

44 औपचारिक संगठन के अवधारणा की व्याख्या कीजिये। यह अनौपचारिक संगठन से किस प्रकार भिन्न है? औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों में सम्बन्ध बताइये। (1985)

Explain the concept of Formal organisation How does it differ from informal organisation? Bring out the relationship between the two

45 संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों का परीक्षण कीजिये। आपकी राय में कौनसा सिद्धान्त सर्वाधिक विश्वासोत्पादक है? (1984)

Examine the various theories of organisation which according to you is the most convincing theory

46 औपचारिक संगठन से आप क्या समझते हैं? इसके सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये।

What do you understand by formal organisation? Discuss its principles

47 अनौपचारिक संगठनों की अवधारणा एवं कार्य प्रणाली की विवेचना कीजिये।

Discuss the concept and working of informal organisations

48 संगठन की औपचारिक तथा अनौपचारिक अवधारणाओं की तुलना कीजिए। ये दोनों एक दूसरे के पूरक किस प्रकार हैं?

Compare and contrast the concepts of Formal and Informal organisations How do the two supplement each other?

49 औपचारिक संगठन के पुराने सिद्धान्त का विवेचना कीजिए एवं इसमें मूनी और उर्विक का योगदान समझाइये।

Discuss the old theory of formal organisation as expounded by Mooney and Urwick

50 पदसोपान एव आदेश की एकता के प्रत्ययो की आलोचनात्मक समीक्षा करें। इन प्रत्ययो की सीमाओ की भी विवेचना करें। (1982)

Critically explain the concepts of hierarchy and unity of command Also examine their limitations

51 पदसोपान का सिद्धान्त या नियन्त्रण की सीमा पर एक टिप्पणी लिखें।

Write a note on the principl of hierarchy or th span of control (1979)

52 सगठन के कतिपय सिद्धान्तो का परीक्षण कीजिए और पदसोपान तथा नियन्त्रण रखा पर विशेष रूप म अपने विचार प्रकट कीजिए।

Examine some of the princip s of organisation with special reference to hierarchy and span of control

53 एक औपचारिक सगठन म पदसोपान सिद्धान्त का परीक्षण कीजिए। इसके लाभ क्या हैं ?

Examine Hierarchy as principle of formal organisation What are its merits ?

54 पदसोपान क्या है ? पदसोपान सिद्धान्त के प्रमुख गुण एव दोषो की विवेचना की जए।

What is hierarchy ? Discuss the merits and demerits of the principle of hierarchy

55 निर्देश की एकता तथा नियन्त्रण म विस्तार क्षेत्र अवधारणाओकी सोदाहरण विवेचना कीजिए।

Discuss and illustrate the concepts of Unity of Command and Span of Control

56 मुख्य निष्पादक स आप क्या समझते हैं ? उसके कार्यों का विश्लेषण कीजिए।

What do you understand by Chief Executive ? Analyse his functions

57 किसी आधुनिक सगठन के मुख्य कार्यपाल के कार्यों की विवेचना कीजिए एव सगठन के सचालन म उसकी भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

Discuss the functions of the Chief Executive in a modern organisation and evaluate his role in running the organisation

58 मुख्य कार्यकारी को राजनीति के नेता एव प्रशासन के प्रधान दोनो के काय सम्पन्न करने पडते हैं। इस कथन को स्पष्ट कीजिए तथा महा प्रबन्धक के रूप म मुख्य कार्यकारी के कार्यों की विवेचना कीजिए।

Chief Executive has to do duties both of a political leader and head of the Administration Clar fy this statement and describe the functions of the Chief Executive as a General Manager

59 प्रशासन म मुख्य प्रशासक के क्या कत्तव्य है ? भारतीय प्रशासन के सन्दर्भ म प्रधान मन्त्री कहाँ तक मुख्य प्रशासक की स्थिति मे गिना जा सकता है ?
What are the duties of a General Manager in Administration ? How far can the Prime Minister in India be said to correspond to a General Manager in relation to Indian Administration ?

60 एक मुख्य निष्पादक के काय कौन कौन स हैं ? सगठन म लाइन और स्टाफ के सन्दभ म उसका परीक्षण कीजिए।
What are the functions of the Chief Executive ? Examine and clarify this statement in the context of line and staff in the organisation

61 नियन्त्रण क विस्तार क्षेत्र के सिद्धान्त का वणन कीजिए तथा प्रशासन म उसके महत्त्व को समझाइए। उन बातो की भी विवेचना कीजिए जो नियन्त्रण क विस्तार क्षेत्र पर सीमा निर्धारित करती है।
Discuss Span of Control and its significance in administration Also describe the factors which set a limit to Span of Control

62 काय के विभाजन स आप क्या समझते है ?
What do you understand by the Division of Work ?

63 किसी कायपालक को प्रशासन पर नियन्त्रण रखने क लिए उपलब्ध विभिन्न नियन्त्रण के तरीको का परीक्षण कीजिए। (1983)
Examine the various methods available to an executive to exercise control over the administration

अध्याय 4 (सूत्र और स्टाफ—गुलिक उर्विक और मूने के योगदान के विशेष सन्दभ सहित)

64 सूत्र एव स्टाफ की अवधारणाओ की व्याख्या कीजिये। सगठन क सदभ मे उनकी भूमिका एव सम्बन्धो का स्पष्ट कीजिये। (1980)
Explain the concepts of Line and Staff Discuss their role and relationship in an organisation

65 बरनार्ड के अनुसार एक कायकारी निष्पादक के प्रमुख काय कौन-कौन स हैं ? स्टाफ और लाइन इन कार्यों का पूरा करने म क्या भूमिका निभाते हैं।
What according to Barnard are the functions of the Executive ? What role do the staff and line play in the discharge of these functions ?

66 आधुनिक सगठनो म स्टाफ के बढ़ते हुए महत्त्व का कारण बतलाइय। एक विकासशील सगठन म स्टाफ-लाइन सम्बन्धो की समीक्षा कीजिय।
(1984)

Account for the growing importance of staff in modern organisations Comment upon staff and line relationship in developing organisation

67 आधुनिक संगठनों में स्टाफ लाइन सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए लाइन के घटते हुए महत्त्व के कारण समझाइये।

Comment upon line staff relations in modern organisations and account for the diminishing importance of the line

68 आधुनिक संगठनों में स्टाफ के बढ़ते हुए महत्त्व के कारण बतलाते हुए स्टाफ लाइन विरोधों के कुछ क्षेत्रों की ओर संकेत कीजिये।

Account for the growing importance of staff in modern organisations and also point out some major areas of staff line conflict

69 संगठनों में लाइन और स्टाफ के मध्य विरोधों के कारण बतलाइये। आधुनिक संगठनों में स्टाफ के बढ़ते हुए महत्त्व के लिए उत्तरदायी तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।

Account for line and staff conflict in organisations Mention some of the factors responsible for the growing importance of staff in modern organisation

70 एक आधुनिक संगठन में स्टाफ और लाइन के प्रमुख कार्य कौन-कौन से हैं ? अभी हाल में लाइन की अपेक्षा स्टाफ अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों हो गया है ?

What are the major functions of staff and line in a modern organisation ? Why has staff become more importance than line in recent years ?

71 प्रशासन विज्ञान के विषय में गुलिक और उर्विक के विचारों की समीक्षा कीजिये।

Discuss the views of Gullick and Urwick on the Science of Administration

72 संगठन सिद्धान्त को गुलिक और उर्विक के योगदान का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

Critically evaluate the contribution of Gullick and Urwick to the Theory of Organisation

73 सूत्र और मन्त्रणा अभिकरणों को समझाइये। इनके बीच सम्बन्ध मधुर करने के उपाय भी बताइये।

Explain Line and Staff agencies Suggest methods of improving the relationship between two

74 (a) स्टाफ और लाइन में क्या अन्तर है ? यह भी स्पष्ट कीजिये कि इन दोनों के बीच अन्तर किस प्रकार से कम हो रहा है ?

Distinguish between Staff and Line and state how the difference between the two are diminishing

74 (b) सूत्र व मन्त्रण के बीच सही सम्बन्ध स्थापित करना प्रबन्ध के सबसे कठिन क्षेत्रों में एक है। इसके कारण बताइये तथा सुधार के उपाय भी बताइये। (1985)

The right adjustment between Line and Staff constitutes one of the most difficult areas of management Trace the causes of this phenomenon and suggest remedial measures

अध्याय 5 (वैज्ञानिक प्रबन्ध टेलर तथा फयोल का योगदान)

75 संगठन के एफ डब्ल्यू टेलर और एच फयोल द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिए। (1984)

Critically examine the Scientific management principle of Organisation as developed by F W Taylor and H Fayol

76 फेयोल के अनुसार शासन के प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिए। (1983)

Discuss the main elements of administration according to Fayol

77 प्रबन्ध विज्ञान का टेलर और मेयो के योगदानों की तुलना कीजिए। क्या आपके मत में वे एक दूसरे के पूरक हैं? (1981)

Compare and contrast the contributions of Taylor and Mayo to the science of management Do you think they supplement each other?

78 सांइटिफिक मैनेजमेन्ट आन्दोलन के प्रशासकीय विचारधारा तथा प्रशासकीय प्रक्रिया में योगदान की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। (1980)

Critically examine the contribution of Scientific Management movement to administrative thought and administrative process

79 एफ डब्ल्यू टेलर द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबन्ध की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या करें। इसकी क्या प्रमुख आलोचना थी? (1982)

Bring out the salient features of Scientific Management as propounded by F W Taylor What were the criticisms against it?

80 एफ डब्ल्यू टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रमुख सिद्धान्त कौन से हैं? इनके गुण एवं दोष क्या हैं (1979)

What are the major principles of Scientific management enunciated by F W Taylor? What are their merits and demerits?

81 वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन क्या था? इसके प्रमुख समर्थकों की भूमिका एवं योगदान की विवेचना कीजिए।

What was scientific management movement ? Discuss the role and contributions of some of it pioneers

82 टेलर द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबंध सिद्धान्तों की आलोचना के प्रमुख आधारों की विवेचना कीजिये। क्या आपके मत में ये सिद्धान्त सार्वदेशिक हैं ? (1978)

Discuss the major planks of attack on the scientific management principl propounded by Taylor Do you think these principles are universal ?

83 संगठन की वैज्ञानिक प्रबंधात्मक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। यह सिद्धान्त कहाँ तक परम्परागत सिद्धान्त की तुलना में एक सुधार है ? (1985)

Examine the Scientific Management theory of Organisation To what extent is it an improvement upon the traditional theory ? —

अध्याय 6 (चेस्टर बर्नार्ड का संगठन विश्लेषण)

84 चेस्टर बर्नार्ड के प्रशासन सम्बन्धी विचारों का विवेचन कीजिए। (1980)

Discuss Chester Barnard s ideas on administration

85 सांगठनिक विश्लेषण में चेस्टर बर्नार्ड के योगदान पर एक निबन्ध लिखें। (1985)

Write an e say on the contribution of Chester Barnard to organisational analysis

86 संगठन में निष्पादक के कार्यों के सम्बन्ध में चेस्टर बर्नार्ड के विचारों को स्पष्ट कीजिए। (1980)

Discuss the ideas of Chester Barnard on the functions of the executive in the organisation

अध्याय 7 (हाथर्न प्रयोग—अनौपचारिक संगठन की अवधारणा अभिप्रेरण—एल्टन मेयो मैक ग्रेगर निदट के योगदान के विशेष संदर्भ में अनुशासन)

87 हाथर्न प्रयोग क्या थे ? इन प्रयोगों के कुछ शोध निष्कर्षों पर प्रकाश डालिए।

What were Hawthorne experiments ? Discuss some of the research findings of these experiments

88 हाथर्न प्रयोग क्या थे ? प्रो एल्टन मेयो ने वैज्ञानिक प्रबंध की अवधारणा को किस प्रकार संशोधित किया ?

What were Howthorn Experiments ? How did Prof E Mayo revise the concept of Scientific Management?

89 हाथर्न प्रयोगों की मानवीय सम्बन्धों के आन्दोलन के सन्दर्भ में व्याख्या कीजिए। (1980)

Discuss the Hawthorn experiments with reference to the Human Relations Movement

90 हाथन प्रयोगा की क्या मुख्य विशषताएँ थी ? सगठन के औपचारिक सिद्धान्त पर इनका क्या प्रभाव पडा ? (1984)

What were the principal features of Hawthorne Experiments ? In what way did they influence the formal theory of organisation ?

91 एल्टन मयो के इस सिद्धान्त की समीक्षा कीजिये कि सगठन म सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध हैं। (1983)

Evaluate Elton Mayo s theory that the most important factors in organisation are psychological relations

92 हाथन प्रयोग क्या थे ? हाथन शोध न प्रशासकीय प्रबन्ध अध्ययना का किस प्रकार प्रभावित किया है ?

What were the Howthorn experiments ? How has the Hawthorn research effected the studies in administrative management ?

93 मानव सम्बन्ध उपागम से आप क्या समझते है ? प्रो एल्टन मेयो न प्रबन्ध म मानव सम्बन्धो की जानकारी को किस प्रकार आगे बढ़ाया ?

What do you understand by Human Relations Approach ? How did Prof E Mayo further our understanding of Human Relations in Management ?

94 प्रो एल्टन मयो की शोधा न अनौपचारिक सगठन क काय व्यापार के विषय म हमारी अन्तर्दृष्टियो का किस प्रकार बढ़ाया ?

How did researches of Prof E Mayo add to our insights in the working of informal organisation ?

95 हाथन प्रयाग क्या थ ? उनका महत्त्व समझाइये।

What were Hawthorn experiments ? Discuss their importance

96 एक अनौपचारिक सगठन की अवधारणा समझाइये। यह एक औपचारिक सगठन की कार्यप्रणाली को किस प्रकार प्रभावित करता है ?

Discuss the concept of informal organisation How does it influence the workin of a formal organisation ?

97 हाथन प्रयोग तथा प्रो एल्टन मयो की शोध ने सगठन व्यवहार को समझने म हमारे ज्ञान म किस प्रकार वृद्धि की है ?

How do Hawthorn experiments and researches of Prof E Mayo added to our understanding of Organisational behaviour ?

98 अनौपचारिक सगठन या सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त समझाइये। क्या आप यह मानते हैं कि इसने प्रशासनिक यथार्थ को समझने म हमारी सहायता की है ? (1981)

Di cuss the Socio psychological theory of Informal Organisa tions Do you think it has helped in understandin, the adminis trative reality ?

99 डगलस मकग्रगर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त एक्स व सिद्धान्त वाई की मुख्य अवधारणाओं का विश्लेषण करें। भारत जस देश के लिए कौनसा सिद्धान्त अधिक उपयुक्त है ?

(1981)

Analyse the major assumptions of Theory X and Theory Y as propounded by Duglas Mc Gregor Which theory is more applicable to a country like India?

100 मकग्रगर का प्रबन्ध के मानव पक्ष से क्या अभिप्राय है ? क्या आप समझते हैं कि वाई सिद्धान्त की अपेक्षा एक्स सिद्धान्त आज के बड़े सगठन म कम सगतिपूर्ण है ?

(1985)

What does Mc Gregor mean by Human side of the Enter pri e ? Do you think Theory X is less relevant than Theory Y in the modern large scale organisations ?

101 अभिप्रेरण के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए। अभिप्रेरण तथा मनोबल का सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये।

(1980)

Discuss theories of motivation Bring out the relationship between motivation and morale

102 मजलो एवं हर्जबर्ग के विशेष सन्दर्भ में अभिप्रेरणा के मुख्य सिद्धान्तों का विश्लेषण करें।

(1982)

Analyze the major theories of motivation with special reference to Maslow and Herzberg

103 अभिप्रेरणा के सिद्धान्त म अब्राहम मजलो के योगदान को समझाए।

(1980)

Explain the contribution of Abraham Maslow to the theory of motivation

104 अभिप्रेरणा से आप का अभिप्राय क्या है ? लोक प्रशासन संस्थाओं म कार्यरत कार्मिकों की अभिप्रेरणा म कैसे वृद्धि की जा सकती है ?

(1979)

What do you understand by Motivation ? How can we increase the motivation of employee working in public adm n strative organizations ?

105 उत्प्रेरणा के विभिन्न सिद्धान्त कौन कौन से हैं ? इस सन्दर्भ म डगलस मक्ग्रगर के एक्स और वाई सिद्धान्तों का परीक्षण कीजिये।

What are the va ious theories of motivation ? Examine Douglas Mc Gregor s theories X and Y in this regard

106 उत्प्रेरणा की परिभाषा दीजिये और मजलो और मेक्ग्रेगर के विचारों की विवेचना कीजिये।

Define Motivation and comment upon the views of Maslow and Mc Gregor

107 प्रेरणा की परिभाषा दीजिए तथा कुछ महत्वपूर्ण उत्प्रेरक सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए मैक्ग्रेगर के योगदान का परीक्षण कीजिए।

Define motivation and discuss some of the theories of motivation with special reference to the contributions of Mac Gregor in this field

108 प्रबन्ध में उत्प्रेरणा और मनोबल का क्या महत्व है? इस सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये विभिन्न दृष्टिकोणों को समझाये। (1985)

What is the significance of motivation and morale in management? Discuss different approaches presented in this regard

109 मनोबल को परिभाषित कीजिए। मनोबल को प्रभावित करने वाले कौन से तत्व हैं?

Define Morale What are the factors influencing the morale?

110 मनोबल को नष्ट या प्रभावहीन बनाने वाले कारणों का उल्लेख कीजिए।

Describe the causes which destroy or undermine morale

111 कैसे मनोबल न कि केवल मात्र सेवा शर्तों के नियम निर्धारण से लोक सेवकों में ईमानदारी राजनैतिक तटस्थता तथा अनुशासन बनाए रखा जा सकता है? उदाहरण सहित समझाइये।

How morale and nor mere framing of rules in service conditions can ensure integrity political neutrality and discipline amount the Civil Servants? Discuss with illustrations

112 भारत के सन्दर्भ में मनोबल को प्रभावित करने वाले तत्वों की परीक्षा कीजिए।

Examine the factors influencing morale in India

113 मनोबल के परिणामों पर एक लेख लिखिए।

Write an essay on The Consequences of Morale

अध्याय 8 (प्रशासनिक व्यवहार–निर्णय प्रक्रिया एवं साइमन)

114 प्रशासनिक व्यवहार' पर एक निबन्ध लिखिये।

Write an essay on Administrative Behaviour

115 प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया के विषय में हरबर्ट साइमन के विचारों की विवेचना कीजिये।

Discuss the view of H Simon on Administrative Decision Making

116 प्रशासनीय निर्णय प्रक्रिया में निहित विभिन्न स्तरों को समझाइये और यह बतलाइये कि प्रत्येक स्तर पर कौन-कौन सी सावधानियां एक अच्छी निर्णय क्रिया में सहायक सिद्ध हो सकती हैं?

Explain the various stages in pro ess of administrative deci sion makin What precautions can help in sound decision making at every stage ?

117 हरबट स इमन क निणय प्रक्रिया प्रतिमान (माडल) का परीक्षण कीजिय और प्रश सन निणय प्रक्रिया म तथ्य मू य विभाजन पर प्रकाश डालिए।

Examine the Herbert Simonian model of decision making and comment upon fact value dichtomy in admini trative decision makin

118 हरबट स इमन क निणय निरपण सिद्धा त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये। (1980)

Critically analyse the decision making theory of Herbert Simon

119 हरबट साइमन के अनुसार निणय प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाए कौन सी हैं ? (1979)

Di cuss the various stages in administrative decision makin according to Herbert Simon

120 प्रश सनिक निणय प्रक्रिया म अन्वेषण अवस्था और चयन क स्तरा पर तथ्य मू य विभ जन की समस्या की आलोचनात्मक विवेचना कीजिय। उत्तर का उदा रण स स्पष्ट कर। (198)

Critically examine the problem of fact value dichtomy at the level of intelligence desien and choice in administrative decision making Illustrate your answer

121 लोक प्रशासन म निणय लेन की प्रक्रिया क अध्ययन के बारे म हरबट साइमन के योगदान की व्याख्या कीजिय। (1984)

Di cuss Herbert Simon s contribution to the study of decision making process in Public Adm nistration

122 हरबट सा मन द्व रा प्रतिपादित निणय प्र क्रया के मुख्य चरणा को समझाए। क्या साइमन के निणय प्रक्रिया सिद्धा त क विरुद्ध कोई आलोचनाए ह ? (1981)

Explain the main stages of decision making discussed by Herbe t Simon Are there any criticisms against Simon s decision making theory ?

123 हरबट सा मन द्वारा बनाए गए प्रश स नक निणय प्रक्रिया म तथ्य मू य विभाजन पर टिप्पणी कीजिय।

Comment upon Fact Value Dichotomy in administrative decision making as po nted out by H S mon

124 हबट साइमन की पुस्तक एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर म उल्लिखित विचारो का साराश प्रस्तुत कीजिये।

Summarise in brief the main ideas of Herbert Simon Conta ined in his book Administrat ve Behaviour

125 प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया म अन्वेषण व्यवस्था और चयन के स्तरा पर तथ्य म-य िभाजन की समस्या का परीक्षण कीजिये। उत्तर को सोदाहरण स्पष्ट कीजिय। (1981)

Critically examine the problem of Fact Value dichotomy at the levels of intelligence design and choice in administrative decision making Illustrate your answer

अध्याय 9 (प्रबन्ध की अवधारणा और उसकी प्रविधियां)

126 आधुनिक प्रबन्ध विचारा के विकास का इतिहास बताते हुए म विकास के प्रमख चरणो पर प्रकाश डालिए।

Trace the evolution of modern management thought and comment upon the major landmarks of this evolution

127 प्रबन्ध विकास विषय पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिए और सकी वतमान स्थिति तथा भावी सम्भावनाओ की ओर सकेत कीजिए।

Write a brief essay on Management Developm nt pointing out its present status and future propects

128 प्रबन्ध के प्रति मानव-सम्बन्ध दृष्टिकोण का परीक्षण कीजिए। प्रबन्ध के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण उसस किस प्रकार भिन्न है ?

Examine the Human Relation Approach to management How does it mark a departure from scientific approach to management ?

129 एक प्रबन्ध निर्णय का जिन स्तरों स गुजरना पडता है उनम स कुछ को बतलाइय। प्रत्येक स्तर की समस्याओ पर भी प्रकाश डालिए।

Trace some of the stages through which a managerial decision has to pass Discuss the problems confronted at each stage

130 प्रबन्ध म आधुनिक सहायक तकनीकें एव उपकरणा एव लोक प्रशासन म उनके प्रयोग पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

Write a detailed note on the modern aids to management and their application in Public Administration

131 प्रबन्ध काय म आधुनिक सहायताओ स आप क्या समझते हैं ? विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए। (1985)

What do you understand by Modern Aids to Management ? Discuss in detail

अध्याय 10 (सत्ता)

132 सत्ता की अवधारणा समझाइये। प्रशासन म इसका क्या भूमिका है ? सत्ता की विभिन परिसीमाओ की व्याख्या कीजिए।

Explain the concept of Authority What is its role in administration ? Discuss the various limits to Authority

133 किसी सगठन म प्राधिकार क विभिन्न स्रोतो को समझाइय तथा उन

परिसीमाओं का वर्णन कीजिए जिनके भीतर प्राधिकार को काम करना पड़ता है। (1983)

Explain the various sources of Authority in an organisation and bring out the limitation within which it has to function

134 साइमन की उद्गामी सत्ता से क्या अभिप्राय है ? एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रशासकीय सत्ता की सीमायें विवेचित कीजिए। (1981)

What does Simon mean by Bottom up Authority ? Discuss the limits of administrative authority in a democratic system

अध्याय 11 (नेतृत्व)

135 प्रशासकीय संगठन में नेतृत्व का क्या महत्त्व है ? प्रशासन में नेतृत्व निर्माण के लिए उचित सुझाव दीजिए।

Discuss th importance of leadership in Administrative Organisation Suggest ways of ensuring leadership in Administration

136 एक प्रशासकीय नेता के कार्य कौन से हैं ? प्रशासकीय नेतृत्व को प्रभावी बनाने के लिए कुछ उपाय सुझाइये।

What are the functions of an Administrative leader ? Suggest some methods to make administrative leadership effective

137 एक संगठन में प्रशासकीय नेतृत्व के कार्यों की समीक्षा कीजिए। (1981)

Examine the functions of Administrative leadership in an organisation

138 एक प्रशासकीय नेता के कार्य और भूमिका की विवेचना कीजिए। उसे क्या करना चाहिए यदि—

(अ) उसके अधीनस्थ कर्मचारी यह अनुभव करते हैं कि उनका शोषण हो रहा है।

(ब) उसके अधीनस्थ कर्मचारियों की यह मान्यता हो कि नेतृत्व अधिनायकवादी है।

(स) उसके सहयोगी यह आरोप लगाते हों कि वह गुटबन्दी में विश्वास करता है। (1979)

Discuss th functions and role of an administrative leader What should he do if

(a) his juniors feel that they are being exploited ?
(b) his subordinate think that the l adership is authoritarian ?
(c) his colleagues allege that he is partisan ?

139 प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया में प्रशासनिक नेतृत्व क्या भूमिका निभाता है ? हरबर्ट साइमन के इस विषय में दिए गए विचारों का विवेचन कीजिए।

What role does administrative leadership play in administrative decision making ? Discuss the ideas of H Simon in this regard

140 (A) सगठन के नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्तो की समीक्षा कीजिए। प्रशासकीय नतृत्व गैर प्रशासकीय स्थितियो की नतृत्व भूमिकाओ से किस प्रकार भिन्न है?
Critically examine the various theories of organisational leadership How does administrative leadership differ from leadership roles in other non admini trative situations ?

140 (B) एक प्रबन्धकारी नता के कार्यों का परीक्षण कीजए। नेतृत्व शैली सामूहिक कार्य म मनोबल तथा प्ररणा सम्बन्धी समस्याओ को किस प्रकार प्रभावित करती है ?
Examine the functions of a managerial leader How does leadership style effect the morale and motivating problems of group working ?

141 नतृत्व के महत्वपूर्ण सिद्धान्तो क मुख्य तत्वो की विवेचना कर। इनम म किस सिद्धान्त को आप अधिकतम रूप से यथार्थवादी मानते है व क्यो ?
Discuss the important elements of major theories of leader ship Which theory do you consider to be most realistic and why ?

(1982)

142 नतृत्व के प्रमुख सिद्धान्तो की विशेषताए बताइये। (1980)
Examine the salient features of important theories of leader ship

143 नेतत्व की अवधारणा की व्याख्या कीजिए। नेतत्व के विभिन्न सिद्धान्तो का सक्षिप्त परिचय दीजिए। (1980)
Critically examine the concept of leadership Give in brief the features of various theories of leadership

144 एक प्रशासकीय नेता के काय कौन-कौन से हैं ? नतृत्व निर्णय निर्माण प्रक्रिया को किस तरह प्रभावित करता है ? (1979)
What are the functions of an administrative leader ? How does leadership influence decision making process ?

145 नतत्व के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो क मुख्य तत्त्वो की विवेचना करें। इनम से किस सिद्धान्त को आप अधिकतम रूप से यथार्थवादी मानते हैं व क्यो ? (1982)
Discuss the important elements of major theories of leader ship What theory do you consider to be most realistic and why ?

अध्याय 12 (पर्यवेक्षण और नियन्त्रण)

146 पर्यवेक्षण और नियन्त्रण म अन्तर बतलाइये। एक सगठन म ये दोनो प्रशासनिक प्रक्रियाओ के रूप म किस प्रकार व्यवहार म आते हैं ? (1985)
Distin uish between supervision and control How do the two operate as administrative processes in an organisa tion ?

147 संगठन प्रक्रियाओं के रूप में पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए और एक पर्यवेक्षक तथा नियन्त्रक के कार्यों पर भी प्रकाश डालिए।

Distinguish between Supervision and control as processes in an organisation Also comment upon the functions of a supervisor and a controller

148 नियन्त्रण की परिभाषा दीजिए। एक नियन्त्रण व्यवस्था सत्ता के द्वारा किस प्रकार प्रयोग में लायी जाती है? समझाकर लिखिए।

Define Control How does control system become operative through authority ?

149 एक पर्यवेक्षक के कार्यों की विवेचना कीजिए। अधीनस्थ कर्मचारियों के विकास के लिए आप कौन कौन सी पर्यवेक्षक तकनीकें प्रस्तावित करना चाहेंगे ?

Discuss the functions of a supervisor What supervisory techniques would you recommend for subordinate develop ment ?

150 पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण के मध्य अन्तर बतलाइये। किसी भी संगठन में इन दोनों प्रक्रियाओं का एक साथ सम्भव बनाने के लिए क्या किया जाना चाहिए।

Distinguish between Supervision and Control What should be done to make the two processes comparable in an organi sation ?

151 नियन्त्रण के विस्तार पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

Write an essay on the Expansion of Control

अध्याय 13 (समन्वय)

152 समन्वय की परिभाषा दीजिये तथा लोक प्रशासन में इसका महत्त्व निर्धारित कीजिये। आधुनिक संगठनों में समन्वय किन रीतियों से उपलब्ध किया जाता है ?

Define Co ordination and indicate its significance in Public Administration How is co ordination achieved in modern organisation ?

153 सहयोग तथा समन्वय के मध्य अन्तर बतलाइये। किसी संगठन में समन्वयकर्ता के कार्य भी समझाइये।

Distinguish between co operation and co ordination Also discuss the functions of a co ordinators in an organisation

154 समन्वय, नियन्त्रण और पर्यवेक्षण के बीच अन्तर समझाइये। एक प्रशासकीय संगठन के व्यवहार में ये तीनों क्रियायें किस प्रकार एक दूसरे को आच्छादित करती हैं और अन्तर क्रियाओं को जन्म देती हैं ?

Distinguish between Co ordination Control and Supervision How the three overlap and interact in the workin, of an administrative organisation ?

155 समन्वय से आप क्या समझते हैं ? किसी बड़े संगठन में समन्वय किस प्रकार स्थापित किया जाता है ? (1983)

What do you mean by co ordination ? How is co ordination effected in a large scale organisation ?

156 समन्वय एक पृथक क्रिया नहीं है अपितु यह एक ऐसा शर्त है जो प्रशासन की सभी अवस्थाओं में व्याप्त रहनी चाहिए। (न्यूमन)। इस कथन के सन्दर्भ में किसी संगठन में समन्वय को सुनिश्चित करने के लिए जिस मशीनरी एवं साधना की आवश्यकता है उनका विवेचन कीजिये। (1982)

Co ordination is not a separate activity but a condition that should penetrate all phases of Administration (Neuman) In the light of this statement discuss the machinery and methods necessary for securing Co ordination in an Organisation

157 समन्वय से आप क्या समझते हैं और यह प्रशासन में किस प्रकार प्राप्त किया जाता है ? इस कथन पर टिप्पणी कीजिये कि समन्वय के पथ में बहुत सी बाधाएं हैं।

What is co ordination and how is it secured in Administration ? Comment on the observation that the path of co ordination is best with difficulties

अध्याय 14 (सम्प्रेषण अथवा संदेशवाहन)

158 सम्प्रेषण की परिभाषा दीजिये तथा इसके बाधक एवं सहायक तत्वों की विवेचना कीजिये।

Define Communication Discuss the hinderances conditions conducive for effective communications

159 आधुनिक प्रबन्ध में कौन-कौन सी बातें सम्प्रेषण को प्रभावी एवं सोद्देश्य बनाती हैं ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

What makes communication effective and purposeful in modern management ? Give examples

160 संचार की परिभाषा दीजिये। आधुनिक संगठन में संचार इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया है ? (1980)

Define Communication Why has communication assumed importance in the modern organisation ?

161 सरकारी प्रशासन में एक सही सम्प्रेषण व्यवस्था के लक्षण आपके विचार में क्या क्या होने चाहिए ? इस व्यवस्था के मार्ग में क्या बाधाएं हैं ? (1982)

What in your view should be the characteristics of a sound

communicational system in governmental administration? What are the barriers to such a system?

162 संचार प्रशासनिक संगठन की रक्त धारा है। उचित उदाहरणों सहित इस कथन की विवेचना कीजिये। (1984)

Communication is the blood stream of administrative organisation Discuss giving suitable examples

अध्याय 15 (लोक सम्पर्क)

163 लोक सम्पर्क से आप क्या समझते हैं? प्रशासन के क्षेत्र में इसका महत्त्व इंगित कीजिये।

What do you understand by Public Relations? Point out its significance in the field of administration

164 वर्तमान प्रशासन में लोक सम्पर्क के कार्यों एवं महत्त्व की व्याख्या कीजिये।

Discuss the functions and importance of public relations in modern administration

165 लोक सम्पर्क की परिभाषा दीजिये। सूचना प्रचार और लोक सम्पर्क में विभेद कीजिये।

Define the Public Relations Distinguish between Publicity Propaganda and Public Relations

166 लोक सम्पर्क वस्तुतः कार्य और कारण का सावधानीपूर्वक संकलित किया गया ऐसा विश्लेषण है जिसे आचार व्यवहार में मार्गदर्शन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस कथन के सन्दर्भ में लोक सम्पर्क के अर्थ और महत्त्व का विवेचन कीजिये। उन्हें संगठित करने का सबसे अच्छा तरीका कौन सा है? (1982)

Public elation is really carefully compiled analysis of cause and effe t used as a guide to conduct In the light of this st tement discus the me ning and importance of Public relations Which s the best mothod of organizing them?

अध्याय 16 (केन्द्रीकरण व विकेन्द्रीकरण)

167 केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण का अर्थ बताइये तथा इनके लाभों व दोषों पर प्रकाश डालिए।

Define Centralisation and Decentralisation and discuss their advantages and disadvantages

168 प्रतिनिधान एवं विकेन्द्रीकरण में क्या अन्तर है? मुख्य कार्यपालक द्वारा शक्तियों के प्रतिनिधान की क्या सीमाएं हैं? (1981)

How do you distinguish between delegation and Decentralisation? What are the limitations to delegation of administrative powers by the Chief Executive?

169 विकेन्द्रीकरण पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

Write an short essay on Decentralisation

170 केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के निर्धारक तत्त्वों पर प्रकाश डालिये।
Describe the determining factors of Centralisation and Decentralisation

अध्याय 17 (प्रत्यायोजन)

171 प्रत्यायोजन क्या है ? संगठन में प्रत्यायोजन के क्या सिद्धान्त तथा सीमाएं हैं ? (1985)
What is delegation ? What are the principles and limits of delegation in an Organisation ?

172 प्रत्यायोजन की परिभाषा दीजिये। प्रत्यायोजन को वैज्ञानिक बनाने के लिए आप क्या-क्या सावधानियां बरतने के सुझाव देंगे ?
Define Delegation What precautionary measures you will recommend to make delegation scientific ?

173 कार्यों के प्रशासकीय प्रत्यायोजन में जो कठिनाइयां अनुभव की जाती हैं उनका परीक्षण कीजिये। प्रत्यायोजन को वैज्ञानिक बनाने के लिए क्या-क्या उपाय किये जाने चाहिए ?
Examine the difficulties experienced in the process of generous delegation of administrative function What measures should be taken to make delegation scientific

174 प्रत्यायोजन एवं समन्वय की परिभाषाएं दीजिये। विरोधी आचरण की संगठनात्मक स्थिति में एक प्रत्यायोजक एवं समन्वयकर्ता को किन किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?
Define Delegation and Co-ordination What difficulties have a Delegator and Coordinator to confront in an organisation situation of conflicting behaviour ?

175 प्रत्यायोजन समन्वय तथा पर्यवेक्षण की परिभाषाएं दीजिए और प्रत्येक स्थिति में उनकी कुछ समस्याओं पर विचार व्यक्त कीजिये।
Define Delegation Co-ordination and Supervision and discuss some of the problems involved in each case

176 प्रत्यायोजन का अर्थ बताइये व उसके गुण-दोषों की समीक्षा कीजिये। प्रत्यायोजन तथा विकेन्द्रीकरण में भेद बताइये।
Explain Delegation and analyse its advantages and limitations Distinguish it from Decentralisation

177 कार्यों के प्रशासकीय प्रत्यायोजन में जो कठिनाइयां अनुभव की जाती हैं उनका परीक्षण कीजिये। प्रत्यायोजन को वैज्ञानिक बनाने के लिए क्या क्या उपाय किये जाने चाहिये ?
Examine the difficulties which are experienced in the process of generous delegation of administrative function What measures should be taken to make delegation scientific ?

178 प्रत्याधिकरण से आप क्या समझते है ? एक बड़े संगठन में इसकी आवश्यकता का स्पष्टीकरण कीजिये।
What do you understand by Delegation ? Explain its need in a big Organisation

अध्याय–18 (सहभागी प्रबन्ध समूह गतिशीलता)

179 सहभागी प्रबन्ध की परिभाषा दीजिये। इस प्रकार के प्रबन्ध में अन्तर्निहित जोखिमों और खतरों की विवेचना कीजिये। (1981)
Define participative management Discuss the dangers and risks in-herent in it

180 सहभागी प्रबन्ध की परिभाषा दीजिये तथा उन घटकों अथवा तत्त्वों की समीक्षा कीजिये जो सहभागी प्रबन्ध को विकसित एवं बाधित करते हैं ?
Define participative management and comment on the factors that promote and inhibit participative management (1979)

181 एक सहभागी प्रबन्ध व्यवस्था को विकसित करने के लिए प्रबन्ध को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उनकी विवेचना कीजिये। (1979)
Discuss the obstacles the management has to encounter in developing a pattern of participative management

182 एक संगठन में सहभागी प्रबन्ध प्रबन्धकीय व्यवहार का क्या योगदान देता है ? सहभागी प्रबन्ध की सीमाएं भी समझाइये।
How does Participation Management contribute to the growth of managerial practice in an organisation Discuss its limitations also

183 अनौपचारिक संगठन के सन्दर्भ में 'समूह सक्रियता' की अवधारणा की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिये।
Critically examine the concept of Group Dynamics in relation to informal organisation

अध्याय 19 (प्रबन्ध के आधुनिक प्रसाधन आटोमेशन साइबरनेटिक्स पर्ट एवं सी पी एम)

184 समूह गतिकी से आप क्या समझते हैं ? समूह गतिकी के विभिन्न सिद्धान्तों की संक्षिप्त समीक्षा कीजिये। (1980)
What do you understand by Group Dynamics ? Give a brief review of theories of group dynamics

185 प्रबन्ध कार्य में आधुनिक सहायताओं पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
Write a brief essay on Modern Aids to Management (1981)

186 पर्ट एवं सी पी एम पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
Write a brief essay on PERT and C P M

अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न एव टिप्पणियाँ।

187 एक मुख्य कार्यपालक द्वारा किन शक्तियों का प्रतिनिधान किया जा सकता है तथा किन का नहीं किया जा सकता है ? प्रतिनिधान एव विकेन्द्रीकरण म अन्तर स्पष्ट करें। (1979)
What powers can and can not be delegated by the Chief Executive to his subordinates ? Distinguish between delega tion and decentralization

188 प्राधिकार एव सम्प्रेषण प्रत्ययों के सम्बन्ध म चेस्टर बर्नार्ड के मुख्य विचारों की विवेचना कीजिये। (1979)
Explain the salient ideas of Chester Barnard on the concepts of authority and communication

189 निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखें — (1979)
(क) प
(ख) समूह गत्यात्मकता।
Write notes on the following
(a) PERT
(b) Group Dynamics

190 निम्न म स किन्हीं दो विचारकों के प्रशासनिक सिद्धान्तों के क्षेत्र म योगदान का सक्षिप्त उल्लेख करें — (1979)
(क) एल्टन मेयो
(ख) लूथर गुलिक
(ग) डागलस मेक ग्रगर
(घ) हेनरी फयाल

191 हाथर्न प्रयोग का प्रशासनिक विचारों के विकास म योगदान का व्याख्या कीजिये। (1980)
Ex mine the major contributions of the Hawthorne experi ments to the development of administrative thought

19_ निम्न म से किन्हीं दो विषयों पर टिप्पणियाँ लिखें — (1980)
(क) पट
(ख) प्रबन्ध विकास
(ग) कम्प्यूटर का उपयोग
(घ) सहभागीय प्रब ध

193 निम्नलिखित म से किन्हीं दो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये — (1981)
(क) सम्प्रेषण की बाधायें
(ख) समूह गतिकी
(ग) लिकर्ट का योगदान
(घ) उत्प्रेरणा पर मेजलो के विचार

194 निम्न म स कि ही दो पर सक्षिप्त टिप्पणिया लिखें – (198)

(अ) पट

(ब) प्रव्यवहारवादी अभिगम

(स) मनोबल

(द) प्राधिकार

Write short notes on any two of the following

(a) PERT
(b) Behavioural Approach
(c) Morale
(d) Authority

195 निम्नलिखित मे स कि ही दो पर सक्षिप्त टिप्पणिया लिखिय – (1983)

(अ) प्रबन्ध म भागीदारी

(ब) सूत्र एव स्टाफ

(स) लिकट का योगदान

(द) प्रत्यायोजन

Write short notes on any two of the following

(a) Participative Management
(b) Line and Staff
(c) Contribution of Likert
(d) Delegation

196 निम्नलिखित म से कि ही दो पर सक्षिप्त टिप्पणिया लिखिय – (1984)

(अ) समन्वय

(ब) केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण

(स) उत्प्रेरणा पर मेजलो के विचार

(द) प्राधिकार

Write short notes on any two of the following –

(a) Co-ordination
(b) Centralisation and Decentralisation
(c) Meslow on Motivation
(d) Authority

197 निम्नलिखित म स कि ही दो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिय (1985)

(अ) निणय-प्रक्रिया

(ब) औपचारिक व अनौपचारिक सगठन

(स) समूह गतिकी

(द) जन सपक।

Write short notes on any two of the follow ng

(a) Decis on Making
(b) Formal and Informal Organisation
(c) Group Dynamics
(d) Public Relations